प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में

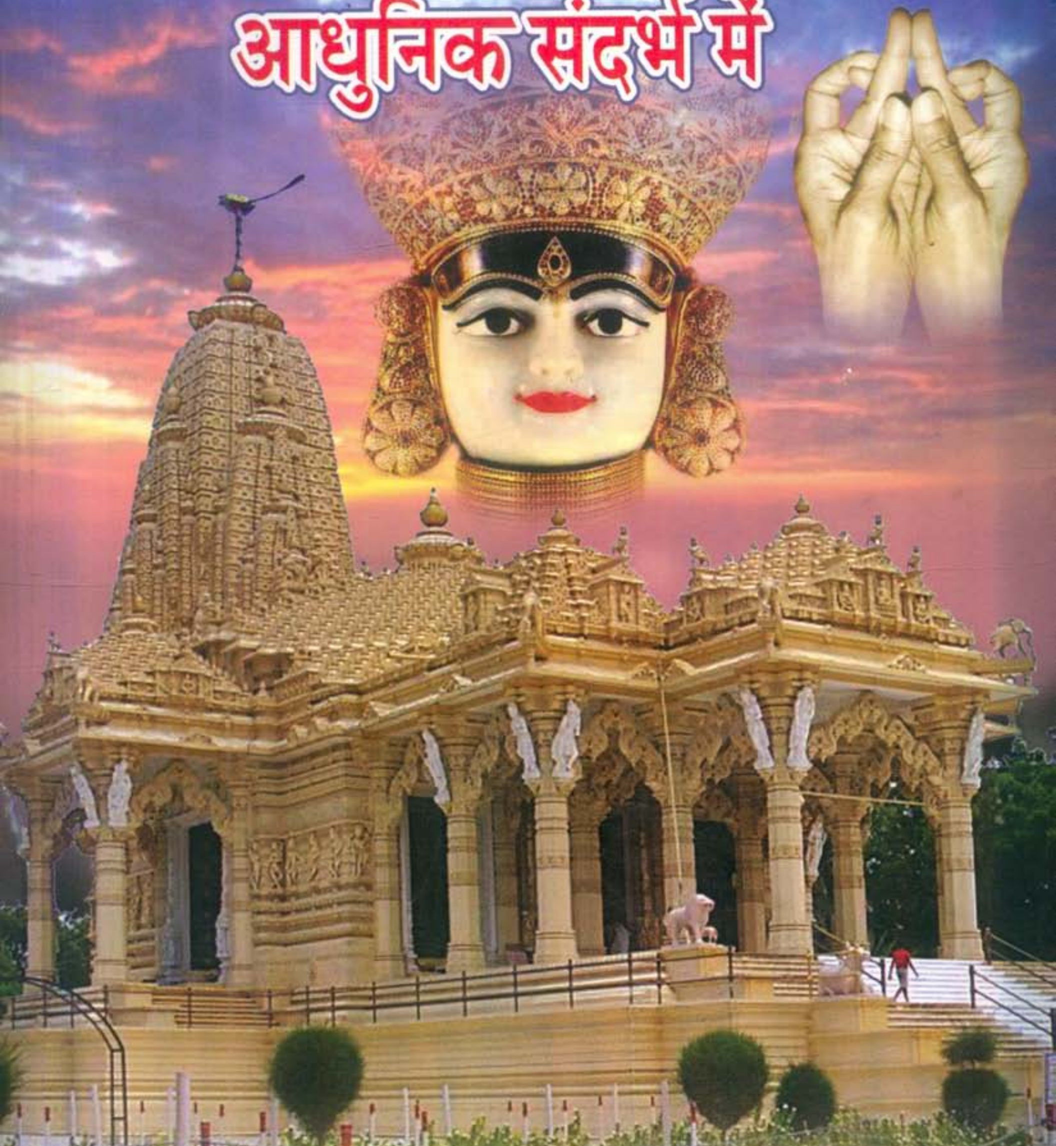

सम्बोधिका

पूज्या प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा.
परम विदुषी शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

श्री जिनदत्तसूरि अजमेर दादाबाड़ी

श्री मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादाबाड़ी (दिल्ली)

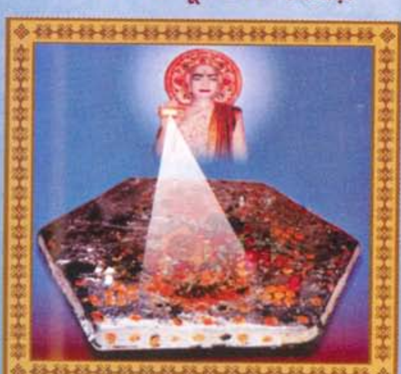

श्री जिनकुशलसूरि मालपुरा दादाबाड़ी (जयपुर)

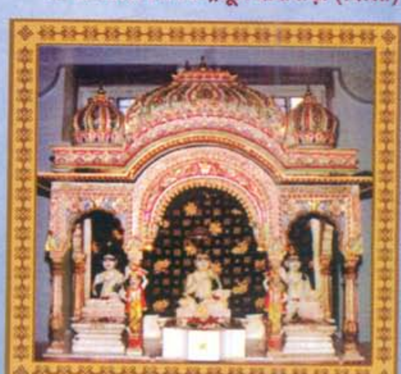

श्री जिनचन्द्रसूरि बिलाडा दादाबाड़ी (जोधपुर)

प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-14

2012-13

R.J. 241 / 2007

णाणस्स सारमायारो

शोधार्थी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

निर्देशक

डॉ. सागरमल जैन

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय

लाडनूं-341306 (राज.)

ACHARYA SRI KA

प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-14

णाणस्स सारमायारो

स्वप्न शिल्पी

आगम मर्मज्ञा प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.

संयम श्रेष्ठा पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

मूर्त्त शिल्पी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

(विधि प्रभा)

शोध शिल्पी

डॉ. सागरमल जैन

प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन

कृपा वृष्टि : पूज्य आचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा.

मंगल वृष्टि : पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.

आनन्द वृष्टि : आगमज्योति प्रवर्तिनी महोदया पूज्या सज्जन श्रीजी म.सा.

प्रेरणा वृष्टि : पूज्य गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

वात्सल्य वृष्टि : गुर्वाज्ञा निमग्ना पूज्य प्रियदर्शना श्रीजी म.सा.

स्नेह वृष्टि : पूज्य दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य सम्यक्दर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य शुभदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य मुदितप्रज्ञाश्रीजी म.सा., पूज्य शीलगुणाश्रीजी म.सा., सुयोग्या कनकप्रभा जी, सुयोग्या संयमप्रज्ञा जी आदि भगिनी मण्डल

शोधकर्त्री : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)

ज्ञान वृष्टि : डॉ. सागरमल जैन

प्रकाशक :
- प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर-465001
  email : sagarmal.jain@gmail.com
- सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
  बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड, पालीताणा-364270

प्रथम संस्करण : सन् 2014

प्रतियाँ : 1000

सहयोग राशि : ₹ 200.00

(पुन: प्रकाशनार्थ)

कम्पोज : विमल चन्द्र मिश्र, वाराणसी

कॅवर सेटिंग : शम्भू भट्टाचार्य, कोलकाता

मुद्रक : Antartica Press, Kolkata

ISBN : 978-81-910801-6-2 (XIV)

© All rights reserved by Sajjan Mani Granthmala.

प्राप्ति स्थान

1. श्री सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड,
पो. पालीताणा-364270 (सौराष्ट्र)
फोन : 02848-253701

2. श्री कान्तिलालजी मुकीम
श्री जिनरंगसूरि पौशाल, आड़ी बांस
तल्ला गली, 31/A, पो. कोलकाता-7
मो. 98300-14736

3. श्री भाईसा साहित्य प्रकाशन
M.V. Building, Ist Floor
Hanuman Road, PO : VAPI
Dist. : Valsad-396191 (Gujrat)
मो. 98255-09596

4. पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.T.I. रोड, करौंदी वाराणसी-5 (यू.पी.)
मो. 09450546617

5. डॉ. सागरमलजी जैन
प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड
पो. शाजापुर-465001 (म.प्र.)
मो. 94248-76545
फोन : 07364-222218

6. श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर
तीर्थ, कैवल्यधाम
पो. कुम्हारी-490042
जिला– दुर्ग (छ.ग.)
मो. 98271-44296
फोन : 07821-247225

7. श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर
84, अमन कोविल स्ट्रीट
कोण्डी थोप, पो. चेन्नई-79 (T.N.)
फोन : 25207936,
044-25207875

8. श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी,
महावीर नगर, केम्प रोड
पो. मालेगाँव
जिला- नासिक (महा.)
मो. 9422270223

9. श्री सुनीलजी बोथरा
टूल्स एण्ड हार्डवेयर,
संजय गांधी चौक, स्टेशन रोड
पो. रायपुर (छ.ग.)
फोन : 94252-06183

10. श्री पदमचन्द चौधरी
शिवजीराम भवन, M.S.B. का रास्ता,
जौहरी बाजार
पो. जयपुर-302003
मो. 9414075821, 9887390000

11. श्री विजयराजजी डोसी
जिनकुशल सूरि दादाबाड़ी
89/90 गोविंदप्पा रोड
बसवनगुडी, पो. बैंगलोर (कर्ना.)
मो. 093437-31869

संपर्क सूत्र

श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत
9331032777
श्री रिखबचन्दजी झाड़चूर
9820022641
श्री नवीनजी झाड़चूर
9323105863
श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख
8719950000
श्री जिनेन्द्र बैद
9835564040
श्री पन्नाचन्दजी दूगड़
9831105908

विनयार्पण

जिनके मन, वचन और कर्म में
सत्य का तेज आप्लावित है।
जिनके आचार, विचार और व्यवहार में
जिन वाणी का सार समाहित है।
जिनके कथन, वर्तन और चिंतन में
अनुभव का नवनीत है।
जिनके कुम्हार वत अनुशासन में
अखिल विश्व का हित है।।

ऐसे

शासन के सरताज,
अध्यात्म के आगाज,
जन-मन की आवाज,
गच्छ प्रवर्त्तक समस्त आचार्य भगवन्तों के पाद प्रसूनों में
सश्रद्धा, सविनय, सभक्ति
सादर समर्पित

सज्जन अन्तस् भावना

प्रतिष्ठा करनी किसी ओर की है और हो रही किसी ओर की
स्थापना हृदय में हो रही मिथ्यात्व और भौतिक शोर की
दसों दिशि में गूँज रही है वीणा, विज्ञान और विकास के दौड़ की
ऐसे समय में
जिन वाणी को अन्तर हृदय में स्थापित करने
जिनेन्द्र गुणों को अपने मन मानस में अवतरित करने
निज स्वरूप को जिन स्वरूप में रूपान्तरित करने
प्रतिष्ठा आदि अनुष्ठानों को आत्म श्रेयस्कर बनाने
के लिए आज आवश्यक है–
जिनालय के महत्त्व एवं प्रभाव से परिचित होने की
जिन प्रतिष्ठा के सम्यक स्वरूप को समझने की
बाह्य आडंबर एवं आवश्यक विधानों में भेद करने की
जिन प्रतिमा को जिनत्व के रूप में उपदर्शित करने की
इस आशा के साथ चार कदम
मोक्षाभिलाषियों के उन्नयन में...

हार्दिक अनुमोदन

जिन शासन प्रभाविका,

संघरत्ना, बंग देश उद्धारिका, सज्जनमणि

परम पूज्या श्री शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

की

पावन प्रेरणा से

श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर, चेन्नई

के

ज्ञान खाते से प्रकाशित

श्रुत समृद्धि के पुण्य भागी
श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर, चेन्नई

जैन इतिहास के नभांगण में दक्षिण भारत का स्थान तारों में चन्द्र के समान रहा है। पूर्वकाल से ही कला, साहित्य, स्थापत्य, धार्मिक एवं सामाजिक विकास में दक्षिण भारतीयों ने अपनी सर्वाधिक भूमिका अदा की है। आज भी कलाकारी के बेजोड़ नमूने के रूप में कई प्राचीन तीर्थ एवं मन्दिर भारतवर्ष के भाल पर तिलक के समान शोभित हैं। इसी श्रृंखला में सुविख्यात है चेन्नई तमिलनाडु में स्थित श्री केशरवाडी तीर्थ। आज से लगभग 200 वर्ष प्राचीन इस तीर्थ रूप मन्दिर को मद्रास के जैन समाज का हृदय माना जाता है।

आज से 45 वर्ष पूर्व प्रवर्तिनी श्री विचक्षण श्रीजी म.सा. का आगमन इस पावन धरा पर हुआ। उन्हीं की प्रेरणा से श्री जिनदत्तसूरि जैन मण्डल की स्थापना हुई। पूज्याश्री के आशीर्वाद से यह मण्डल आज भी उसी प्रकार विविध कार्य क्षेत्रों में गतिशील हैं। सन् 1987 में पूज्य आचार्य पद्मसागर सूरीश्वरजी म.सा. एवं श्रीपूज्य जिनचन्द्रसूरिजी की निश्रा में दादाबाडी की प्रतिष्ठा हुई। सन् 1999 में वहाँ एक विशाल भवन का उद्घाटन किया गया जहाँ प्रवचन हॉल, लाइब्रेरी, यात्रिक भवन, भोजनशाला आदि समस्त सुविधाएँ हैं। आज दादाबाडी में साधु-साध्वियों के चातुर्मास और कई धार्मिक आराधनाएँ सम्पन्न करवाई जाती हैं। पुस्तक प्रकाशन, जिनालय-दादावाडी निर्माण एवं जिर्णोद्धार हेतु यह संस्था सदा प्रयासरत रहती हैं। वहाँ एक शोध संस्थान प्रारम्भ करने एवं आगम प्रकाशन करवाने की कल्पना शीघ्र ही साकार रूप लेने वाली है।

श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध इस संस्था से अनेक सुप्रसिद्ध जैन हस्तियाँ जुड़ी हुई हैं। उन्हीं में से एक है-- आचारनिष्ठ, कर्तव्य परायण, कर्मठ कार्यकर्त्ता फलोदी निवासी श्री शांतिलालजी गुलेच्छा। मण्डल के गठन काल से आप संस्था को अपनी अनवरत सेवाएँ बिना किसी पद को ग्रहण किए भी प्रदान कर रहे हैं। आपका जीवन पूर्ण रूपेण एक जैन श्रावक की चर्या से सम्पन्न हैं। गत 10 वर्षों से आप एकांतर उपवास कर रहे हैं। बृहद स्तर पर

आयोजित होने वाला कोई भी कार्यक्रम या अनुष्ठान हो आपकी उपस्थिति एक कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप में वहाँ अवश्य रहती है। दुबली-पतली देह में भी आपकी फुर्ती एवं सक्रियता युवाओं को भी लज्जित कर देती है। इसी कारण खरतरगच्छ जैन संघ में आप एक अनुभवी एवं कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप में सुप्रसिद्ध हैं।

पूज्य गुरुवर्य्याश्री से आपका जुड़ाव कई वर्षों से रहा है। साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी को शोध कार्य एवं श्रुतसेवा के लिए आप हमेशा उत्साहित करते रहते हैं। शाजापुर में शोध कार्य प्रारम्भ हुआ तभी से धर्मनाथ जैन मंदिर के द्वारा पुस्तक प्रकाशन की भावना को आप सदा संस्था की तरफ से अभिव्यक्त करते रहे। आपकी इच्छा थी कि इस शोध कार्य में भी सबसे बड़े Volume का प्रकाशन धर्मनाथ ट्रस्ट के द्वारा हो। आपकी प्रेरणा एवं मंगल कामनाओं के मधुरिम सहयोग से आज 23 चरणों में सम्पन्न यह शोध कार्य पूर्णता पर है। संस्था की इच्छा के अनुरूप प्रतिष्ठा विधान के रहस्यमयी तथ्यों को उजागर करने वाला यह शोध भाग (खण्ड 14वाँ) धर्मनाथ जैन ट्रस्ट के ज्ञानखाते से प्रकाशित हो रहा है।

सज्जनमणि ग्रंथमाला आप जैसे श्रावक रत्नों से सुशोभित ट्रस्ट का हार्दिक आभारी है। ट्रस्ट के समस्त अधिकारी एवं कार्यकर्त्तागण अपनी सेवाओं के लिए अनुमोदना के पात्र हैं। इस श्रुत प्रकाशन में शांतिलालजी गुलेच्छा मुख्य रूप से माध्यम बने एवं उनसे परिचित होने के कारण ट्रस्ट के प्रतिनिधि के रूप में उन्हीं का उल्लेख कर पाए हैं। आपका ट्रस्ट अपनी समस्त कल्पनाओं को साकार रूप देते हुए जैन समाज के उत्थान में इसी भाँति गतिशील रहे, यही मंगल भावना करते हैं।

●

सम्पादकीय

भारत देश संस्कृति, कलाकृति एवं प्रकृति का अद्वितीय संगठन है। यहाँ की प्रत्येक संरचना में इसका साक्षात दर्शन होता है। यहाँ के मन्दिरों की दिव्य छटा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। सिंधु घाटी की प्राचीनतम सभ्यता हो अथवा आज की आधुनिक Multistore buildings। हर गली के नुक्कड़ और Well designed society में कोई न कोई प्रार्थना स्थल अवश्य दिखाई पड़ेगा। इन मंदिरों एवं प्रार्थना स्थलों के समक्ष व्यक्ति स्वयमेव ही झुक जाता है।

जिनालय एवं परमात्मा को प्रभावशाली बनाने का रहस्यपूर्ण विधान है प्रतिष्ठा। सामान्यत: देव मूर्ति को एक स्थान पर स्थापित करना प्रतिष्ठा कहलाता है परंतु जैनाचार्यों ने विभिन्न परिप्रेक्ष्य में प्रतिष्ठा को परिभाषित किया है।

आचार्य हरिभद्रसूरि षोडशक प्रकरण में प्रतिष्ठा का अर्थ विन्यास करते हुए कहते हैं– देवता के उद्देश्य से आगमोक्त विधि पूर्वक आत्मा में ही परमात्म भावों की स्थापना करना प्रतिष्ठा है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि मूल रूप में प्रतिष्ठाकर्त्ता के विशिष्ट परिणामों की स्थापना करना ही प्रतिष्ठा है। बाह्य रूप से तो मन्दिर में मूर्ति की स्थापना होती है परंतु आध्यात्मिक स्तर पर मानवीय गुणों का जागरण एवं वीतरागत्व आदि स्वाभाविक गुणों की प्रतिष्ठा होती है।

प्रतिष्ठा एक आगमिक विधान है। आगम अग्नि रूप होते हैं। अग्नि का संयोग पाकर ही धातु का मल दूर होता है वैसे ही आगमोक्त प्रक्रिया कर्ममल को दूर करती है। वर्तमान में प्रतिष्ठा का अभिप्राय जिनबिम्ब स्थापना एवं जिनालय को पूर्णता देने वाला महा महोत्सव किया जाता है। पूजन-महापूजन, साधर्मिक भक्ति, लोगों की भीड़ और प्रतिष्ठा की आवक आदि जितनी अधिक हो उसे उतनी ही सफल और श्रेष्ठ प्रतिष्ठा माना गया है। परन्तु शास्त्रोक्त उल्लेखों के अनुसार प्रतिष्ठाचार्य की साधना, आचरण पक्ष तथा प्रतिष्ठा करवाते समय ऊर्ध्वगामी शुभ भाव जितने उत्कृष्ट हो प्रतिष्ठा उतनी ही उत्तम मानी जाती है, किन्तु वर्तमान में यह विचारधारा प्रायः विलुप्त सी हो चुकी है।

आजकल अधिकांश विधि-विधानों की सत्ता विधिकारकों के हाथ में जा चुकी है। अपवादतः साधु-साध्वी न हो तो प्रतिष्ठा विधान हो सकता है परन्तु विधिकारकों की अनुपस्थिति में नहीं। ऐसी ही अनेक भ्रान्त मान्यताएँ जन मानस में स्थापित हो चुकी है। शास्त्रों में प्रतिष्ठा करवाने का अधिकार जहाँ मात्र आचार्य को था वहीं आज हर कोई साधु-साध्वी या गृहस्थ विधिकारक भी यह विधान सम्पन्न करवा देते हैं। इसी प्रकार शास्त्रों में प्रतिष्ठाकारक, स्नात्रकार (विधिकारक) गृहस्थ, शिल्पी आदि की योग्यताओं के संबंध में भी नहीवत ध्यान दिया जाता है। जैनाचार्यों ने प्रतिष्ठा सम्बन्धी अनेक कर्त्तव्यों का भी वर्णन प्रतिष्ठाकल्पों में किया है परन्तु आज इन सबसे हमारा ध्यान हटता जा रहा है अतः आज के समय में साध्वी सौम्यगुणाजी का यह प्रयास अत्यंत सराहनीय है।

प्रतिष्ठा जैसे मुख्य विधान की विस्तृत चर्चा हमें सर्वप्रथम आचार्य पादलिप्तसूरि रचित निर्वाणकलिका नामक प्रतिष्ठाकल्प में मिलती है।यद्यपि इससे पूर्व भी कुछ ग्रन्थ उपलब्ध थे जिनका उल्लेख ग्रन्थकार ने किया है, परंतु आज उनका अस्तित्व नहीं देखा जाता। यह प्रतिष्ठा कल्प 5वीं शती की रचना माना जाता है।

वर्तमान में मुख्य रूप से आठ प्रतिष्ठाकल्प उपलब्ध हैं किन्तु अधिकांश विधि-विधान गणि सकलचंद्रजी द्वारा रचित आठवें प्रतिष्ठा कल्प के आधार पर करवाए जाते हैं।

वैदिक परम्परा में भी मंदिरों की प्राण प्रतिष्ठा करवाई जाती है। यद्यपि मंत्रोच्चार एवं विधि प्रक्रिया अलग हैं फिर भी एक दूसरे का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी द्वारा किया गया यह शोध कार्य प्रतिष्ठा जैसे महत्त्वपूर्ण विधान की सूक्ष्मता को समझने में एक सार्थक कदम होगा।

प्रतिष्ठा एक बृहद् विधान है और इसमें बहुत से रहस्य समाहित हैं जिन तथ्यों पर विस्तृत कार्य किया जा सकता है। शोध समय की अल्पता के कारण साध्वीजी की योग्यता एवं इच्छा होने पर भी इसे विस्तृत स्वरूप नहीं दे पाई हैं। परन्तु आशा है भविष्य में वह अपनी अध्ययन यात्रा को गतिशील रखते हुए ऐसे ही अनछुए विषयों पर अपनी कलम चलाएंगी।

जैनाचार्यों एवं ज्ञानपिपासु मुनिजनों से निवेदन हैं कि वे ऐसे सूक्ष्म एवं गंभीर विषयों के शास्त्रोक्त सत्य स्वरूप को जन सामान्य के समक्ष प्रस्तुत करें।

मैं साध्वीजी को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने विषय की दुरुहता एवं परिश्रम की चिंता किए बिना डी.लिट् में ऐसे विषयों का समावेश किया जिन पर वह चाहती तो अलग-अलग डी.लिट् कर सकती थी। श्रुत सरिता ऐसे ही साधु-साध्वियों के कारण निराबाध प्रवाहित है। श्रुत देवी से यही प्रार्थना है कि सौम्यगुणाजी पर इसी प्रकार अपनी अनवरत कृपा बनाए रखें तथा जिनशासन के साम्राज्य को विस्तृत एवं अमर बनाएं।

डॉ. सागरमल जैन
प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

आशीर्वचन

भारतीय वांगमय ऋषि-महर्षियों द्वारा रचित लक्षाधिक ग्रन्थों से शोभायमान है। प्रत्येक ग्रन्थ अपने आप में अनेक नवीन विषय एवं नव्य उन्मेष लिए हुए हैं। हर ग्रन्थ अनेकशः प्राकृतिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक रहस्यों से परिपूर्ण है। इन शास्त्रीय विषयों में एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है विधि-विधान। हमारे आचार-पक्ष को सुदृढ़ बनाने एवं उसे एक सम्यक दिशा देने का कार्य विधि-विधान ही करते हैं। विधि-विधान सांसारिक क्रिया-अनुष्ठानों को सम्पन्न करने का मार्ग दिग्दर्शित करते हैं।

जैन धर्म यद्यपि निवृत्तिमार्गी है जबकि विधि-विधान या क्रिया-अनुष्ठान प्रवृत्ति के सूचक हैं परंतु यथार्थतः जैन धर्म में विधि-विधानों का गुंफन निवृत्ति मार्ग पर अग्रसर होने के लिए ही हुआ है। आगम युग से ही इस विषयक चर्चा अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होती है। जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा वर्तमान विधि-विधानों का पृष्ठाधार है। साध्वी सौम्यगुणाजी ने इस ग्रंथ के अनेक रहस्यों को उद्घाटित किया है।

साध्वी सौम्याजी जैन संघ का जाज्वल्यमान सितारा है। उनकी ज्ञान आभा से मात्र जिनशासन ही नहीं अपितु समस्त आर्य परम्पराएँ शोभित हो रही हैं। सम्पूर्ण विश्व उनके द्वारा प्रकट किए गए ज्ञान दीप से प्रकाशित हो रहा है। इन्हें देखकर प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की सहज स्मृति आ जाती है। सौम्याजी उन्हीं के नक्शे कदम पर चलकर अनेक नए आयाम श्रुत संवर्धन हेतु प्रस्तुत कर रही है।

साध्वीजी ने विधि-विधानों पर बहुपक्षीय शोध करके उसके विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। इस शोध कार्य को 23 पुस्तकों के रूप में प्रस्तुत कर उन्होंने जैन विधि-विधानों के समग्र पक्षों को जन सामान्य के लिए सहज ज्ञातव्य बनाया है।

जिज्ञासु वर्ग इसके माध्यम से मन में उद्वेलित विविध शंकाओं का समाधान कर पाएगा।

साध्वीजी इसी प्रकार श्रुत रत्नाकर के अमूल्य मोतियों की खोज कर ज्ञान राशि को समृद्ध करती रहे एवं अपने ज्ञानालोक से सकल संघ को रोशन करें यही शुभाशंसा...

आचार्य कैलास सागर सूरि
नाकोड़ा तीर्थ

विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाश्रीजी ने विधि विधान सम्बन्धी विषयों पर शोध-प्रबन्ध लिख कर डी.लिट् उपाधि प्राप्त करके एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

सौम्याजी ने पूर्व में विधिमार्गप्रपा का हिन्दी अनुवाद करके एक गुरुत्तर कार्य संपादित किया था। उस क्षेत्र में हुए अपने विशिष्ट अनुभवों को आगे बढ़ाते हुए उसी विषय को अपने शोध कार्य हेतु स्वीकृत किया तथा दत्त-चित्त से पुरुषार्थ कर विधि-विषयक गहनता से परिपूर्ण ग्रन्थराज का जो आलेखन किया है, वह प्रशंसनीय है।

हर गच्छ की अपनी एक अनूठी विधि-प्रक्रिया है, जो मूलतः आगम, टीका और क्रमशः परम्परा से संचालित होती है। खरतरगच्छ के अपने विशिष्ट विधि विधान हैं... मर्यादाएँ हैं... क्रियाएँ हैं...। हर काल में जैनाचार्यों ने साध्वाचार की शुद्धता को अक्षुण्ण बनाये रखने का भगीरथ प्रयास किया है। विधिमार्गप्रपा, आचार दिनकर, समाचारी शतक, प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत शतक, साधु विधि प्रकाश, जिनवल्लभसूरि समाचारी, जिनपतिसूरि समाचारी, षडावश्यक बालावबोध आदि अनेक ग्रन्थ उनके पुरुषार्थ को प्रकट कर रहे हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विधि विधान संबंधी बृहद् इतिहास की दिव्य झांकी के दर्शन कराते हुए गृहस्थ-श्रावक के सोलह संस्कार, व्रतग्रहण विधि, दीक्षा विधि, मुनि की दिनचर्या, आहार संहिता, योगोद्वहन विधि, पदारोहण विधि, आगम अध्ययन विधि, तप साधना विधि, प्रायश्चित्त विधि, पूजा विधि, प्रतिक्रमण विधि, प्रतिष्ठा विधि, मुद्रायोग आदि विभिन्न विषयों पर अपना चिंतन-विश्लेषण प्रस्तुत कर इन सभी विधि विधानों की मौलिकता और सार्थकता को

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उजागर करने का अनूठा प्रयास किया है।

विशेष रूप से मुद्रायोग की चिकित्सा के क्षेत्र में जैन, बौद्ध और हिन्दु परम्पराओं का विश्लेषण करके मुद्राओं की विशिष्टता को उजागर किया है।

निश्चित ही इनका यह अनूठा पुरुषार्थ अभिनंदनीय है। मैं कामना करता हूँ कि संशोधन-विश्लेषण के क्षेत्र में वे खूब आगे बढ़ें और अपने गच्छ एवं गुरु के नाम को रोशन करते हुए ऊँचाईयों के नये सोपानों का आरोहण करें।

उपाध्याय श्री मणिप्रभसागर

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि विदुषी साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी ने डॉ. श्री सागरमलजी जैन के निर्देशन में 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' इस विषय पर 23 खण्डों में बृहदस्तरीय शोध कार्य (डी.लिट्) किया है। इस शोध प्रबन्ध में परंपरागत आचार आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक परिचय देने का सुंदर प्रयास किया गया है।

जैन परम्परा में क्रिया-विधि आदि धार्मिक अनुष्ठान कर्म क्षय के हेतु से मोक्ष को लक्ष्य में रखकर किए जाते हैं।

साध्वीश्री ने योग मुद्राओं का मानसिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से क्या लाभ होता है? इसका उल्लेख भी बहुत अच्छी तरह से किया है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने निःसंदेह चिंतन की गहराई में जाकर इस शोध प्रबन्ध की रचना की है, जो अभिनंदन के योग्य है।

मुझे आशा है कि विद्वद गण इस शोध प्रबन्ध का सुंदर लाभ उठायेंगे।

मेरी साध्वीजी के प्रति शुभकामना है कि श्रुत साधना में और अभिवृद्धि प्राप्त करें।

आचार्य पद्मसागर सूरि

विनयाद्यनेक गुणगण गरीमायमाना विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्रीजी एवं सौम्यगुणा श्रीजी आदि सपरिवार सादर अनुवन्दना सुखशाता के साथ।

आप शाता में होंगे। आपकी संयम यात्रा के साथ ज्ञान यात्रा अविरत चल रही होगी।

आप जैन विधि विधानों के विषय में शोध प्रबंध लिख रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

ज्ञान का मार्ग अनंत है। इसमें ज्ञानियों के तात्पयर्थि के साथ प्रामाणिकता पूर्ण व्यवहार होना आवश्यक रहेगा।

आप इस कार्य में सुंदर कार्य करके ज्ञानोपासना द्वारा स्वश्रेय प्राप्त करें ऐसी शासन देव से प्रार्थना है।

आचार्य राजशेखर सूरि
भद्रावती तीर्थ

महत्तरा श्रमणीवर्या श्री शशिप्रभाश्री जी
योग अनुवंदना!

आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। इसी के साथ 'शोध प्रबन्ध सार' को देखकर ज्ञात हुआ कि आपकी शिष्या साध्वी सौम्यगुणा श्री द्वारा किया गया बृहदस्तरीय शोध कार्य जैन समाज एवं श्रमण-श्रमणी वर्ग हेतु उपयोगी जानकारी का कारण बनेगा।

आपका प्रयास सराहनीय है।

श्रुत भक्ति एवं ज्ञानाराधना स्वपर के आत्म कल्याण का कारण बने यही शुभाशीर्वाद।

आचार्य रत्नाकरसूरि

जो कर रहे स्व-पर उपकार
अन्तर्हृदय से उनको अमृत उद्गार

मानव जीवन का प्रासाद विविधता की बहुविध पृष्ठ भूमियों पर आधृत है। यह न तो सरल सीधा राजमार्ग (Straight like highway) है न पर्वत का सीधा चढ़ाव (ascent) न घाटी का उतार (descent) है

अपितु यह सागर की लहर (sea-wave) के समान गतिशील और उतार-चढ़ाव से युक्त है। उसके जीवन की गति सदैव एक जैसी नहीं रहती। कभी चढ़ाव (Ups) आते हैं तो कभी उतार (Downs) और कभी कोई अवरोध (Speed Breaker) आ जाता है तो कभी कोई (trun) भी आ जाता है। कुछ अवरोध और मोड़ तो इतने खतरनाक (sharp) और प्रबल होते हैं कि मानव की गति-प्रगति और सन्मति लड़खड़ा जाती है, रुक जाती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने के लिए जैन दर्शन के आप्त मनीषियों ने प्रमुखतः दो प्रकार के विधि-विधानों का उल्लेख किया है– 1. बाह्य विधि-विधान 2. आन्तरिक विधि-विधान।

बाह्य विधि-विधान के मुख्यतः चार भेद हैं– 1. जातीय विधि-विधान 2. सामाजिक विधि-विधान 3. वैधानिक विधि-विधान 4. धार्मिक विधि-विधान।

1. जातीय विधि-विधान– जाति की समुत्कर्षता के लिए अपनी-अपनी जाति में एक मुखिया या प्रमुख होता है जिसके आदेश को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। मुखिया नैतिक जीवन के विकास हेतु उचित-अनुचित विधि-विधान निर्धारित करता है। उन विधि-विधानों का पालन करना ही नैतिक चेतना का मानदण्ड माना जाता है।

2. सामाजिक विधि-विधान– नैतिक जीवन को जीवंत बनाए रखने के लिए समाज अनेकानेक आचार-संहिता का निर्धारण करता है। समाज द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों की आचार-संहिता को ज्यों का त्यों चुपचाप स्वीकार कर लेना ही नैतिक प्रतिमान है। समाज में पीढ़ियों से चले आने वाले सज्जन पुरुषों का अच्छा आचरण या व्यवहार समाज का विधि-विधान कहलाता है। जो इन विधि-विधानों का आचरण करता है, वह पुरुष सत्पुरुष बनने की पात्रता का विकास करता है।

3. वैधानिक विधि-विधान– अनैतिकता-अनाचार जैसी हीन प्रवृत्तियों से मुक्त करवाने हेतु राज सत्ता के द्वारा अनेकविध विधि-विधान बनाए जाते हैं। इन विधि-विधानों के अन्तर्गत 'यह करना उचित है' अथवा

'यह करना चाहिए' आदि तथ्यों का निरूपण रहता है। राज सत्ता द्वारा आदेशित विधि-विधान का पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। इन नियमों का पालन करने से चेतना अशुभ प्रवृत्तियों से अलग रहती है।

4. **धार्मिक विधि-विधान**– इसमें आप्त पुरुषों के आदेश-निर्देश, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निर्धारित रहते हैं। जैन दर्शन में "आणाए धम्मो" कहकर इसे स्पष्ट किया गया है। जैनागमों में साधक के लिए जो विधि-विधान या आचार निश्चित किए गये हैं, यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो आप्त के अनुसार यह कर्म अनैतिकता की कोटि में आता है। धार्मिक विधि-विधान जो अर्हत् आदेशानुसार है उसका धर्माचरण करता हुआ वीर साधक अकुतोभय हो जाता है अर्थात वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार नहीं करता। यही सद्व्यवहार धर्म है तथा यही हमारे कर्मों के नैतिक मूल्यांकन की कसौटी है। तीर्थंकरोपदिष्ट विधि-निषेध मूलक विधानों को नैतिकता एवं अनैतिकता का मानदण्ड माना गया है।

लौकिक एषणाओं से विमुक्त, अरहन्त प्रवाह में विलीन, अप्रमत्त स्वाध्याय रसिका साध्वी रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन वाङ्मय की अनमोल कृति खरतरगच्छाचार्य श्री जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित **विधिमार्गप्रपा** में गुम्फित जाज्वल्यमान विषयों पर अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन को मुख्यतः चार भाग (23 खण्डों) में वर्गीकृत करने का अतुलनीय कार्य किया है। शोध ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्टतः हो जाता है कि साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में जिन आज्ञा का निरूपण किसी परम्परा के दायरे से नहीं प्रज्ञा की कसौटी पर कस कर किया है। प्रस्तुत कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हर पंक्ति प्रज्ञा के आलोक से जगमगा रही है। बुद्धिवाद के इस युग में विधि-विधान को एक नव्य-भव्य स्वरूप प्रदान करने का सुन्दर, समीचीन, समुचित प्रयास किया गया है। आत्म पिपासुओं के लिए एवं अनुसन्धित्सुओं के लिए यह श्रुत निधि आत्म

सम्मानार्जन, भाव परिष्कार और आन्तरिक औज्ज्वल्य की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।

अल्प समयावधि में साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने जिस प्रमाणिकता एवं दार्शनिकता से जिन वचनों की परम्परा के आग्रह से रिक्त तथा साम्प्रदायिक मान्यताओं के दुराग्रह से मुक्त रखकर सर्वग्राही श्रुत का निष्पादन जैन वाङ्मय के क्षितिज पर नव्य नक्षत्र के रूप में किया है। आप श्रुत साभिरुचि में निरन्तर प्रवहमान बनकर अपने निर्णय, विशुद्ध विचार एवं निर्मल प्रज्ञा के द्वारा सदैव सरल, सरस और सुगम अभिनव ज्ञान रश्मियों को प्रकाशित करती रहें। यही अन्तःकरण आशीर्वाद सह अनेकशः अनुमोदना... अभिनंदन।

जिनमहोदय सागर सूरि चरणरज
मुनि पीयूष सागर

जैन विधि की अनमोल निधि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी म.सा. द्वारा "जैन-विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर सुविस्तृत शोध प्रबन्ध सम्पादित किया गया है। वस्तुतः किसी भी कार्य या व्यवस्था के सफल निष्पादन में विधि (Procedure) का अप्रतिम महत्त्व है। प्राचीन कालीन संस्कृतियाँ चाहे वह वैदिक हो या श्रमण, इससे अछूती नहीं रही। श्रमण संस्कृति में अग्रगण्य है– जैन संस्कृति। इसमें विहित विविध विधि-विधान वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक जीवन के विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपादित करता है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध।

इस शोध प्रबन्ध की प्रकाशन वेला में हम साध्वीश्री के कठिन प्रयत्न की आत्मिक अनुमोदना करते हैं। निःसंदेह, जैन विधि की इस अनमोल निधि से श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी, विद्वान-विचारक सभी लाभान्वित होंगे। यह विश्वास करते हैं कि वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए भी यह कृति अति प्रासंगिक होगी, क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें

आचार-पद्धति यानि विधि-विधानों का वैज्ञानिक पक्ष भी ज्ञात होगा और वह अधिक आचारनिष्ठ बन सकेगी।

साध्वीश्री इसी प्रकार जिनशासन की सेवा में समर्पित रहकर स्व-पर विकास में उपयोगी बनें, यही मंगलकामना।

मुनि महेन्द्रसागर
1.2.13 भद्रावती

विदुषी आर्या साध्वीजी भगवंत श्री सौम्यगुणा श्रीजी सादर अनुवंदना सुखशाता !

आप सुखशाता में होंगे।

ज्ञान साधना की खूब अनुमोदना!

वर्तमान संदर्भ में जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध पढ़ा।

आनंद प्रस्तुति एवं संकलन अद्भुत है।

जिनशासन की सभी मंगलकारी विधि एवं विधानों का संकलन यह प्रबन्ध की विशेषता है।

विज्ञान-मनोविज्ञान एवं परा विज्ञान तक पहुँचने का यह शोध ग्रंथ पथ प्रदर्शक अवश्य बनेगा।

जिनवाणी के मूल तक पहुँचने हेतु विधि-विधान परम आलंबन है। यह शोध प्रबन्ध अनेक जीवों के लिए मार्गदर्शक बनेगा। सही मेहनत की अनुमोदना।

नयपद्म सागर

'जैन विधि विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' शोध प्रबन्ध के सार का पल्लवग्राही निरीक्षण किया।

शक्ति की प्राप्ति और शक्ति की प्रसिद्धि जैसे आज के वातावरण में श्रुत सिंचन के लिए दीर्घ वर्षों तक किया गया अध्ययन स्तुत्य और अभिनंदनीय है।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रवर्त्तित परम्परा विरोधी आधुनिकता के प्रवाह में बहे बिना श्री जिनेश्वर परमात्मा द्वारा प्ररूपित मोक्ष मार्ग के अनुरूप

होने वाली किसी भी प्रकार की श्रुत भक्ति स्व-पर कल्याणकारी होती है।

शोध प्रबन्ध का व्यवस्थित निरीक्षण कर पाना सम्भव नहीं हो पाया है परन्तु उपरोक्त सिद्धान्त का पालन हुआ हो उस तरह की तमाम श्रुत भक्ति की हार्दिक अनुमोदना होती ही है।

आपके द्वारा की जा रही श्रुत सेवा सदा-सदा के लिए मार्गस्थ या मार्गानुसारी ही बनी रहे ऐसी एक मात्र अंतर की शुभाभिलाषा।

संयम बोधि विजय

विदुषी आर्या रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन विधि विधानों पर विविध पक्षीय बृहद शोध कार्य संपन्न किया है। चार भागों में विभाजित एवं 23 खण्डों में वर्गीकृत यह विशाल कार्य निःसंदेह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है।

शासन देव से प्रार्थना है कि उनकी बौद्धिक क्षमता में दिन दुगुनी रात चौगुनी वृद्धि हो। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान गुण की वृद्धि के साथ आत्म ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनें।

यह शोध ग्रन्थ ज्ञान पिपासुओं की पिपासा को शान्त करे, यही मनोहर अभिलाषा।

महत्तरा मनोहर श्री चरणरज
प्रवर्त्तिनी कीर्तिप्रभा श्रीजी

दूध को दही में परिवर्तित
करना सरल है। जामन डालिए
और दही तैयार हो जाता है।
किन्तु, दही से मक्खन निकालना
कठिन है। इसके लिए दही को
मथना पड़ता है। तब कहीं
जाकर मक्खन प्राप्त होता है।
इसी प्रकार अध्ययन एक
अपेक्षा से सरल है, किन्तु

तुलनात्मक अध्ययन कठिन है।
इसके लिए कई शास्त्रों को
मथना पड़ता है।
साध्वी सौम्यगुणा श्री ने जैन
विधि-विधानों पर रचित साहित्य
का मंथन करके एक सुंदर चिंतन
प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है
वह अत्यंत अनुमोदनीय एवं
प्रशंसनीय है।
शुभकामना व्यक्त
करती हूँ कि यह
शास्त्रमंथन अनेक साधकों
के कर्मबंधन तोड़ने में
सहायक बने।

साध्वी संवेगनिधि

सुश्रावक श्री कान्तिलालजी मुकीम द्वारा शोध प्रबंध सार संप्राप्त हुआ। विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाजी के शोधसार ग्रन्थ को देखकर ही कल्पना होने लगी कि शोध ग्रन्थ कितना विराट्काय होगा। वर्षों के अथक परिश्रम एवं सतत रुचि पूर्वक किए गए कार्य का यह सुफल है।

वैदुष्य सह विशालता इस शोध ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारी हार्दिक शुभकामना है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका बहुमुखी विकास हो! जिनशासन के गगन में उनकी प्रतिभा, पवित्रता एवं पुण्य का दिव्यनाद हो। किं बहुना!

साध्वी मणिप्रभा श्री
भद्रावती तीर्थ

अन्तर्नाद

जैन विधि-विधानों में प्रतिष्ठा एक बहुचर्चित महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है। सामाजिक एवं सामुदायिक स्तर पर आयोजित होने वाले क्रिया विधानों में यह शीर्ष स्थान पर रहा हुआ है। जिस प्रकार एक लड़की का दाम्पत्य सम्बन्ध किसी पुरुष के साथ तब ही माना जाता है जब उसके साथ उसका विवाह सम्पन्न हो जाए उसी प्रकार नव निर्मित मन्दिर में पूर्णता तब ही आती है जब मंत्र विधानों द्वारा परमात्मा जिनालय में ही नहीं जन-जन के मन मन्दिर में भी प्रतिष्ठित हो जाए।

वस्तुत: प्रतिष्ठा का मूल उद्देश्य जन मानस में परमात्मा एवं परमात्म वाणी को स्थापित करना तथा उसे आचरण का आधार बनाना है। वर्तमान में प्रतिष्ठा का स्वरूप, उसके मूलभूत हेतु एवं लक्ष्यों के प्रति किसी की दृष्टि नहीं है। अधिकांश प्रतिष्ठाओं की सफलता का अनुमान उपस्थित जन मेदिनी एवं चढ़ावों द्वारा हुई आवक के द्वारा किया जाता है। जबकि इसकी मौलिकता एवं प्रभावकता प्रतिष्ठाकर्त्ता तथा जन समुदाय में हुए धर्म संस्कारों के सिंचन पर निर्भर है। एक प्रतिष्ठा विधान के द्वारा किसी नगर के हजारों वर्षों तक के सुन्दर भविष्य की स्थापना हो जाती है।

विदुषी साध्वी सौम्यगुणाजी द्वारा किया गया यह शोध कार्य नव्य उन्मेषक, तथ्यपूर्ण एवं श्लाघनीय है। इन्होंने अथक परिश्रम करके न केवल सामग्री का संचय किया, अपितु उसे एक समीक्षक की दृष्टि से भी उसका विवेचन किया है। साध्वीजी की दृष्टि अनुसंधित्सु की है, जिसके फलस्वरूप उन्होंने जैनागमों का विस्तृत अध्ययन कर तथा विषय सम्बन्धी सामग्री का संकलन कर उसका विषयवार वर्गीकरण किया है। यह उनकी सूक्ष्मग्राही शक्ति का भी परिचायक है।

आशा है कि यह पुस्तक जैन साधकों को प्रतिष्ठा विधान के नव्य घटकों से परिचित करवाएगी। विविध विधानों की वैज्ञानिकता, ऐतिहासिकता एवं मौलिकता से मुखर करवाते हुए युवा वर्ग को धर्म अनुष्ठानों की ओर आकर्षित करेगी। इस पुस्तक की रचना में साध्वीजी की प्रज्ञा, साधना और श्रम अत्यंत स्पष्ट है। यह कृति सबके लिए ज्ञानवर्धक, उपयोगी और संग्रहणीय सिद्ध हो यही शुभाशंसा है।

आर्य्या शशिप्रभा श्री

दीक्षा गुरु प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.
एक परिचय

रजताभ रजकणों से रंजित राजस्थान असंख्य कीर्ति गाथाओं का वह रश्मि पुंज है जिसने अपनी आभा के द्वारा संपूर्ण धरा को देदीप्यमान किया है। इतिहास के पन्नों में जिसकी पावन पाण्डुलिपियाँ अंकित है ऐसे रंगीले राजस्थान का विश्रुत नगर है जयपुर। इस जौहरियों की नगरी ने अनेक दिव्य रत्न इस वसुधा को अर्पित किए। उन्हीं में से कोहिनूर बनकर जैन संघ की आभा को दीप्त करने वाला नाम है– पूज्या प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.।

आपश्री इस कलियुग में सतयुग का बोध कराने वाली सहज साधिका थी। चतुर्थ आरे का दिव्य अवतार थी। जयपुर की पुण्य धरा से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। आपके जीवन की अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जैसे– जन्म, विवाह, दीक्षा, देह विलय आदि इसी वसुधा की साक्षी में घटित हुए।

आपका जीवन प्राकृतिक संयोगों का अनुपम उदाहरण था। जैन परम्परा के तेरापंथी आम्नाय में आपका जन्म, स्थानकवासी परम्परा में विवाह एवं मन्दिरमार्गी खरतर परम्परा में प्रव्रज्या सम्पन्न हुई। आपके जीवन का यही त्रिवेणी संगम रत्नत्रय की साधना के रूप में जीवन्त हुआ।

आपका जन्म वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा के पर्व दिवस के दिन हुआ। आप उन्हीं के समान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म योगी, प्रज्ञाशील साधक थी। सज्जनता, मधुरता, सरलता, सहजता, संवेदनशीलता, परदुःखकातरता आदि गुण तो आप में जन्मतः परिलक्षित होते थे। इसी कारण आपका नाम सज्जन रखा गया और यही नाम दीक्षा के बाद भी प्रवर्त्तित रहा।

संयम ग्रहण हेतु दीर्घ संघर्ष करने के बावजूद भी आपने विनय, मृदुता, साहस एवं मनोबल डिगने नहीं दिया। अन्ततः 35 वर्ष की आयु में पूज्या प्रवर्त्तिनी ज्ञान श्रीजी म.सा. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीवान परिवार के राजशाही ठाठ में रहने के बाद भी संयमी जीवन का हर छोटा-बड़ा कार्य आप अत्यंत सहजता पूर्वक करती थी। छोटे-बड़े सभी की

सेवा हेतु सदैव तत्पर रहती थी। आपका जीवन सद्गुणों से युक्त विद्वत्ता की दिव्य माला था। आप में विद्यमान गुण शास्त्र की निम्न पंक्तियों को चरितार्थ करते थे–

शीलं परहितासक्ति, रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः, परिपाकोज्ज्वलं फलः ।।

अर्थात शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य, निर्लोभता आदि विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

अहिंसा, तप साधना, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता, विनम्रता एवं विद्वानों के प्रति असीम श्रद्धा उनकी विद्वत्ता की परिधि में शामिल थे। वे केवल पुस्तकें पढ़कर नहीं अपितु उन्हें आचरण में उतार कर महान बनी थी। आपको शब्द और स्वर की साधना का गुण भी सहज उपलब्ध था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात आप 20 वर्षों तक गुरु एवं गुरु भगिनियों की सेवा में जयपुर रही। तदनन्तर कल्याणक भूमियों की स्पर्शना हेतु पूर्वी एवं उत्तरी भारत की पदयात्रा की। आपश्री ने 65 वर्ष की आयु और उसमें भी ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में सिद्धाचल तीर्थ की नव्वाणु यात्रा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में धर्म की सरिता प्रवाहित करते हुए भी आप सदैव ज्ञानदान एवं ज्ञानपान में संलग्न रहती थी। इसी कारण लोक परिचय, लोकैषणा, लोकाशंसा आदि से अत्यंत दूर रही।

आपश्री प्रखर वक्ता, श्रेष्ठ साहित्य सर्जिका, तत्त्व चिंतिका, आशु कवयित्री एवं बहुभाषाविद थी। विद्वदवर्ग में आप सर्वोत्तम स्थान रखती थी। हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं पर आपका सर्वाधिकार था। जैन दर्शन के प्रत्येक विषय का आपको मर्मस्पर्शी ज्ञान था। आप ज्योतिष, व्याकरण, अलंकार, साहित्य, इतिहास, शकुन शास्त्र, योग आदि विषयों की भी परम वेत्ता थी।

उपलब्ध सहस्र रचनाएँ तथा अनुवादित सम्पादित एवं लिखित साहित्य आपकी कवित्व शक्ति और विलक्षण प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

प्रभु दर्शन में तन्मयता, प्रतिपल आत्म रमणता, स्वाध्याय मग्नता, अध्यात्म लीनता, निस्पृहता, अप्रमत्तता, पूज्यों के प्रति लघुता एवं छोटों के प्रति मृदुता आदि गुण आपश्री में बेजोड़ थे। हठवाद, आग्रह, तर्क-वितर्क,

अहंकार, स्वार्थ भावना का आप में लवलेश भी नहीं था। सभी के प्रति समान स्नेह एवं मृदु व्यवहार, निरपेक्षता एवं अंतरंग विरक्तता के कारण आप सर्वजन प्रिय और आदरणीय थी।

आपकी गुण गरिमा से प्रभावित होकर गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा आपको आगम ज्योति, शास्त्र मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, अध्यात्म योगिनी आदि सार्थक पदों से अलंकृत किया गया। वहीं सकल श्री संघ द्वारा आपको साध्वी समुदाय में सर्वोच्च प्रवर्त्तिनी पद से भी विभूषित किया गया।

आपश्री के उदात्त व्यक्तित्व एवं कर्मशील कर्तृत्व से प्रभावित हजारों श्रद्धालुओं की आस्था को 'श्रमणी' अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में लोकार्पित किया गया। खरतरगच्छ परम्परा में अब तक आप ही एक मात्र ऐसी साध्वी हैं जिन पर अभिनन्दन ग्रन्थ लिखा गया है।

आप में समस्त गुण चरम सीमा पर परिलक्षित होते थे। कोई सद्गुण ऐसा नहीं था जिसके दर्शन आप में नहीं होते हो। जिसने आपको देखा वह आपका ही होकर रह गया।

आपके निरपेक्ष, निस्पृह एवं निरासक्त जीवन की पूर्णता जैन एवं जैनेतर दोनों परम्पराओं में मान्य, शाश्वत आराधना तिथि **'मौन एकादशी'** पर्व के दिन हुई। इस पावन तिथि के दिन आपने देह का त्याग कर सदा के लिए मौन धारण कर लिया। आपके इस समाधिमरण को श्रेष्ठ मरण के रूप में सिद्ध करते हुए उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. ने लिखा है–

महिमा तेरी क्या गाये हम, दिन कैसा स्वीकार किया।
मौन ग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं।।

आज परम पूज्या संघरत्ना शशिप्रभा श्रीजी म.सा. आपके मंडल का सम्यक संचालन कर रही हैं। यद्यपि आपका विचरण क्षेत्र अल्प रहा परंतु आज आपका नाम दिग्दिगन्त व्याप्त है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही हर प्रकार की Tension एवं विपदाएँ दूर हो जाती है।

●

शिक्षा गुरु पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.
एक परिचय

'धोरों की धरती' के नाम से विख्यात राजस्थान अगणित यशोगाथाओं का उद्भव स्थल है। इस बहुरत्ना वसुंधरा पर अनेकशः वीर योद्धाओं, परमात्म भक्तों एवं ऋषि-महर्षियों का जन्म हुआ है। इसी रंग-रंगीले राजस्थान की परम पुण्यवंती साधना भूमि है श्री फलौदी। नयन रम्य जिनालय, दादाबाड़ियों एवं स्वाध्याय गुंज से शोभायमान उपाश्रय इसकी ऐतिहासिक धर्म समृद्धि एवं शासन समर्पण के प्रबल प्रतीक हैं। इस मातृभूमि ने अपने उर्वरा से कई अमूल्य रत्न जिनशासन की सेवा में अर्पित किए हैं। चाहे फिर वह साधु-साध्वी के रूप में हो या श्रावक-श्राविका के रूप में। वि.सं. 2001 की भाद्रकृष्णा अमावस्या को धर्मनिष्ठ दानवीर ताराचंदजी एवं सरल स्वभावी बालादेवी गोलेछा के गृहांगण में एक बालिका की किलकारियां गूंज रही थी। अमावस्या के दिन उदित हुई यह किरण भविष्य में जिनशासन की अनुपम किरण बनकर चमकेगी यह कौन जानता था? कहते हैं सज्जनों के सम्पर्क में आने से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तब सम्यकदृष्टि जीव तो निःसन्देह सज्जन का संग मिलने पर स्वयमेव ही महानता को प्राप्त कर लेते हैं।

किरण में तप त्याग और वैराग्य के भाव जन्मजात थे। इधर पारिवारिक संस्कारों ने उसे अधिक उफान दिया। पूर्वोपार्जित सत्संस्कारों का जागरण हुआ और वह भुआ महाराज उपयोग श्रीजी के पथ पर अग्रसर हुई। अपने बाल मन एवं कोमल तन को गुरु चरणों में समर्पित कर 14 वर्ष की अल्पायु में ही किरण एक तेजस्वी सूर्य रश्मि से शीतल शशि के रूप में प्रवर्त्तित हो गई। आचार्य श्री कवीन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में मरूधर ज्योति मणिप्रभा श्रीजी एवं आपकी बड़ी दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई।

इसे पुण्य संयोग कहें या गुरु कृपा की फलश्रुति? आपने 32 वर्ष के गुरु सान्निध्य काल में मात्र एक चातुर्मास गुरुवर्य्याश्री से अलग किया और वह भी पूज्या प्रवर्त्तिनी विचक्षण श्रीजी म.सा. की आज्ञा से। 32 वर्ष की सान्निध्यता में आप कुल 32 महीने भी गुरु सेवा से वंचित नहीं रही। आपके जीवन की यह

विशेषता पूज्यवरों के प्रति सर्वात्मना समर्पण, अगाध सेवा भाव एवं गुरुकुल वास के महत्त्व को इंगित करती है।

आपश्री सरलता, सहजता, सहनशीलता, सहृदयता, विनम्रता, सहिष्णुता, दीर्घदर्शिता आदि अनेक दिव्य गुणों की पुंज हैं। संयम पालन के प्रति आपकी निष्ठा एवं मनोबल की दृढ़ता यह आपके जिन शासन समर्पण की सूचक है। आपका निश्छल, निष्कपट, निर्दम्भ व्यक्तित्व जनमानस में आपकी छवि को चिरस्थापित करता है। आपश्री का बाह्य आचार जितना अनुमोदनीय है, आंतरिक भावों की निर्मलता भी उतनी ही अनुशंसनीय है। आपकी इसी गुणवत्ता ने कई पथ भ्रष्टों को भी धर्माभिमुख किया है। आपका व्यवहार हर वर्ग के एवं हर उम्र के व्यक्तियों के साथ एक समान रहता है। इसी कारण आप आबाल वृद्ध सभी में समादृत हैं। हर कोई बिना किसी संकोच या हिचक के आपके समक्ष अपने मनोभाव अभिव्यक्त कर सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है 'सन्त हृदय नवनीत समाना'– आपका हृदय दूसरों के लिए मक्खन के समान कोमल और सहिष्णु है। वहीं इसके विपरीत आप स्वयं के लिए वज्र से भी अधिक कठोर हैं। आपश्री अपने नियमों के प्रति अत्यन्त दृढ़ एवं अतुल मनोबली हैं। आज जीवन के लगभग सत्तर बसंत पार करने के बाद भी आप युवाओं के समान अप्रमत्त, स्फुर्तिमान एवं उत्साही रहती हैं। विहार में आपश्री की गति समस्त साध्वी मंडल से अधिक होती है।

आहार आदि शारीरिक आवश्यकताओं को आपने अल्पायु से ही सीमित एवं नियंत्रित कर रखा है। नित्य एकाशना, पुरिमड्ढ प्रत्याख्यान आदि के प्रति आप अत्यंत चुस्त हैं। जिस प्रकार सिंह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पूर्णत: सचेत एवं तत्पर रहता है वैसे ही आपश्री विषय-कषाय रूपी शत्रुओं का दमन करने में सतत जागरूक रहती हैं। विषय वर्धक अधिकांश विगय जैसे– मिठाई, कढ़ाई, दही आदि का आपके सर्वथा त्याग है।

आपश्री आगम, धर्म दर्शन, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध विषयों की ज्ञाता एवं उनकी अधिकारिणी है। व्यावहारिक स्तर पर भी आपने एम.ए. के समकक्ष दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययन के संस्कार आपको गुरु परम्परा से वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी निश्रागत गुरु भगिनियों एवं शिष्याओं के अध्ययन, संयम पालन तथा आत्मोकर्ष के प्रति

आप सदैव सचेष्ट रहती हैं। आपश्री एक सफल अनुशास्ता हैं यही वजह है कि आपकी देखरेख में सज्जन मण्डल की फुलवारी उन्नति एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर रही हैं।

तप और जप आपके जीवन का अभिन्न अंग है। 'ॐ ह्रीं अर्हं' पद की रटना प्रतिपल आपके रोम-रोम में गुंजायमान रहती है। जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप तदनुकूल मन:स्थिति बना लेती हैं। आप हमेशा कहती हैं कि

जो-जो देखा वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

आपकी परमात्म भक्ति एवं गुरुदेव के प्रति प्रवर्धमान श्रद्धा दर्शनीय है। आपका आगमानुरूप वर्तन आपको निसन्देह महान पुरुषों की कोटी में उपस्थित करता है। आपश्री एक जन प्रभावी वक्ता एवं सफल शासन सेविका हैं।

आपश्री की प्रेरणा से जिनशासन की शाश्वत परम्परा को अक्षुण्ण रखने में सहयोगी अनेकश: जिनमंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ है। श्रुत साहित्य के संवर्धन में आपश्री के साथ आपकी निश्रारत साध्वी मंडल का भी विशिष्ट योगदान रहा है। अब तक 25-30 पुस्तकों का लेखन-संपादन आपकी प्रेरणा से साध्वी मंडल द्वारा हो चुका है एवं अनेक विषयों पर कार्य अभी भी गतिमान है।

भारत के विविध क्षेत्रों का पद भ्रमण करते हुए आपने अनेक क्षेत्रों में धर्म एवं ज्ञान की ज्योति जागृत की है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छ.ग., यू.पी., बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की यात्रा कर आपने उन्हें अपनी पदरज से पवित्र किया है। इन क्षेत्रों में हुए आपके ऐतिहासिक चातुर्मासों की चिरस्मृति सभी के मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। अन्त में यही कहूँगी-

चिन्तन में जिसके हो क्षमता, वाणी में सहज मधुरता हो।
आचरण में संयम झलके, वह श्रद्धास्पद बन जाता है।
जो अन्तर में ही रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।
जो भीतर में ही भ्रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।।

ऐसी विरल साधिका आर्यारत्न पूज्याश्री के चरण सरोजों में मेरा जीवन सदा भ्रमरवत् गुंजन करता रहे, यही अन्तरकामना।

साध्वी सौम्याजी की शोध यात्रा के स्वर्णिम पल

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

आज सौम्यगुणाजी को सफलता के इस उत्तुंग शिखर पर देखकर ऐसा लग रहा है मानो चिर रात्रि के बाद अब यह मनभावन अरुणिम वेला उदित हुई हो। आज इस सफलता के पीछे रहा उनका अथक परिश्रम, अनेकशः बाधाएँ, विषय की दुरूहता एवं दीर्घ प्रयास के विषय में सोचकर ही मन अभिभूत हो जाता है। जिस प्रकार किसान बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक अनेक प्रकार से स्वयं को तपाता एवं खपाता है और तब जाकर उसे फल की प्राप्ति होती है या फिर जब कोई माता नौ महीने तक गर्भ में बालक को धारण करती है तब उसे मातृत्त्व सुख की प्राप्ति होती है ठीक उसी प्रकार सौम्यगुणाजी ने भी इस कार्य की सिद्धि हेतु मात्र एक या दो वर्ष नहीं अपितु सत्रह वर्ष तक निरन्तर कठिन साधना की है। इसी साधना की आँच में तपकर आज 23 Volumes के बृहद् रूप में इनका स्वर्णिम कार्य जन ग्राह्य बन रहा है।

आज भी एक-एक घटना मेरे मानस पटल पर फिल्म के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है मानो अभी की ही बात हो, सौम्याजी को हमारे साथ रहते हुए 28 वर्ष होने जा रहे हैं और इन वर्षों में इन्हें एक सुन्दर सलोनी गुड़िया से एक विदुषी शासन प्रभाविका, गूढ़ान्वेषी साधिका बनते देखा है। एक पाँचवीं पढ़ी हुई लड़की आज D.LIt की पदवी से विभूषित होने वाली है। वह भी कोई सामान्य D.Lit. नहीं, 22-23 भागों में किया गया एक बृहद् कार्य और जिसका एक-एक भाग एक शोध प्रबन्ध (Thesis) के समान है। अब तक शायद ही किसी भी शोधार्थी ने डी.लिट् कार्य इतने अधिक Volumes में सम्पन्न किया होगा। लाडनूं विश्वविद्यालय की प्रथम डी.लिट्. शोधार्थी सौम्याजी के इस कार्य ने विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक कार्यों में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हुए श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सत्रह वर्ष पहले हम लोग पूज्या गुरुवर्य्याश्री के साथ पूर्वी क्षेत्र की स्पर्शना कर रहे थे। बनारस में डॉ. सागरमलजी द्वारा आगम ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को

जानने का यह एक स्वर्णिम अवसर था अतः सन् 1995 में गुर्वाज्ञा से मैं, सौम्याजी एवं नूतन दीक्षित साध्वीजी ने भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी की ओर अपने कदम बढ़ाए। शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए हम लोग धर्म नगरी काशी पहुँचे।

वाराणसी स्थित पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वहाँ के मन्दिरों एवं पंडितों के मंत्रनाद से दूर नीरव वातावरण में अद्भुत शांति का अनुभव करवा रहा था। अध्ययन हेतु मनोज्ञ एवं अनुकूल स्थान था। संयोगवश मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. की निश्रावर्ती, मेरी बचपन की सखी पूज्या विद्युतप्रभा श्रीजी आदि भी अध्ययनार्थ वहाँ पधारी थी।

डॉ. सागरमलजी से विचार विमर्श करने के पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा पर शोध करने का निर्णय लिया गया। सन् 1973 में पूज्य गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. बंगाल की भूमि पर पधारी थी। स्वाध्याय रसिक आगमज्ञ श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भँवलालजी नाहटा से पूज्याश्री की पारस्परिक स्वाध्याय चर्चा चलती रहती थी। एकदा पूज्याश्री ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों का अनुवाद हो। पूज्याश्री योग-संयोग वश उसका अनुवाद नहीं कर पाई। विषय का चयन करते समय मुझे गुरुवर्य्या श्री की वही इच्छा याद आई या फिर यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौम्याजी की योग्यता देखते हुए शायद पूज्याश्री ने ही मुझे इसकी अन्तस् प्रेरणा दी।

यद्यपि यह ग्रंथ विधि-विधान के क्षेत्र में बहु उपयोगी था परन्तु प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध होने के कारण उसका हिन्दी अनुवाद करना आवश्यक हो गया। सौम्याजी के शोध की कठिन परीक्षाएँ यहीं से प्रारम्भ हो गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण का ज्ञान किया। तत्पश्चात दिन-रात एक कर पाँच महीनों में ही इस कठिन ग्रंथ का अनुवाद अपनी क्षमता अनुसार कर डाला। लेकिन यहीं पर समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। सौम्यगुणाजी जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दर्शनाचार्य (एम.ए.) थीं, बनारस में पी-एच.डी. हेतु आवेदन नहीं कर सकती थी। जिस लक्ष्य को लेकर आए थे वह कार्य पूर्ण नहीं होने से मन थोड़ा विचलित हुआ परन्तु विश्वविद्यालय के नियमों के कारण हम कुछ भी करने में असमर्थ थे अतः पूज्य गुरुवर्य्याश्री के चरणों में पहुँचने हेतु

पुन: कलकत्ता की ओर प्रयाण किया। हमारा वह चातुर्मास संघ आग्रह के कारण पुन: कलकत्ता नगरी में हुआ। वहाँ से चातुर्मास पूर्णकर धर्मानुरागी जनों को शीघ्र आने का आश्वासन देते हुए पूज्याश्री के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर में आगम ज्योति, पूज्या गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की समाधि स्थली मोहनबाड़ी में मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन था अत: उग्र विहार कर हम लोग जयपुर पहुँचें। बहुत ही सुन्दर और भव्य रूप में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जयपुर संघ के अति आग्रह से पूज्याश्री एवं सौम्यगुणाजी का चातुर्मास जयपुर ही हुआ। जयपुर का स्वाध्यायी श्रावक वर्ग सौम्याजी से काफी प्रभावित था। यद्यपि बनारस में पी-एच.डी. नहीं हो पाई थी किन्तु सौम्याजी का अध्ययन आंशिक रूप में चालू था। उसी बीच डॉ. सागरमलजी के निर्देशानुसार जयपुर संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. शीतलप्रसाद जैन के मार्गदर्शन में धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी श्रीमाल के डेढ़ वर्ष के अथक प्रयास से उनका रजिस्ट्रेशन हुआ। सामाजिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने अपने कार्य को गति दी।

पी-एच.डी. का कार्य प्रारम्भ तो कर लिया परन्तु साधु जीवन की मर्यादा, विषय की दुरूहता एवं शोध आदि के विषय में अनुभवहीनता से कई बाधाएँ उत्पन्न होती रही। निर्देशक महोदय दिगम्बर परम्परा के होने से श्वेताम्बर विधि-विधानों के विषय में उनसे भी विशेष सहयोग मिलना मुश्किल था अत: सौम्याजी को जो करना था अपने बलबूते पर ही करना था। यह सौम्याजी ही थी जिन्होंने इतनी बाधाओं और रूकावटों को पार कर इस शोध कार्य को अंजाम दिया।

जयपुर के पश्चात कुशल गुरुदेव की प्रत्यक्ष स्थली मालपुरा में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर लाइब्रेरी आदि की असुविधाओं के बीच भी उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया। तदनन्तर जयपुर में एक महीना रहकर महोपाध्याय विनयसागरजी से इसका करेक्शन करवाया तथा कुछ सामग्री संशोधन हेतु डॉ. सागरमलजी को भेजी। यहाँ तक तो उनकी कार्य गति अच्छी रही किन्तु इसके बाद लम्बे विहार होने से उनका कार्य प्राय: अवरूद्ध हो गया। फिर अगला चातुर्मास पालीताणा हुआ। वहाँ पर आने वाले यात्रीगणों की भीड़ और तप साधना-आराधना में अध्ययन नहींवत ही हो पाया। पुन: साधु जीवन के नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर कदम बढ़ाए। रायपुर (छ.ग.)

जाने हेतु लम्बे विहारों के चलते वे अपने कार्य को किंचित भी संपादित नहीं कर पा रही थी। रायपुर पहुँचते-पहुँचते Registration की अवधि अन्तिम चरण तक पहुँच चुकी थी अत: चातुर्मास के पश्चात मुदितप्रज्ञा श्रीजी और इन्हें रायपुर छोड़कर शेष लोगों ने अन्य आसपास के क्षेत्रों की स्पर्शना की। रायपुर निवासी सुनीलजी बोथरा के सहयोग से दो-तीन मास में पूरे काम को शोध प्रबन्ध का रूप देकर उसे सन् 2001 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया। येन केन प्रकारेण इस शोध कार्य को इन्होंने स्वयं की हिम्मत से पूर्ण कर ही दिया।

तदनन्तर 2002 का बैंगलोर चातुर्मास सम्पन्न कर मालेगाँव पहुँचे। वहाँ पर संघ के प्रयासों से चातुर्मास के अन्तिम दिन उनका शोध वायवा संपन्न हुआ और उन्हें कुछ ही समय में पी-एच.डी. की पदवी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। सन् 1995 बनारस में प्रारम्भ हुआ कार्य सन् 2003 मालेगाँव में पूर्ण हुआ। इस कालावधि के दौरान समस्त संघों को उनकी पी-एच.डी. के विषय में ज्ञात हो चुका था और विषय भी रुचिकर था अत: उसे प्रकाशित करने हेतु विविध संघों से आग्रह होने लगा। इसी आग्रह ने उनके शोध को एक नया मोड़ दिया। सौम्याजी कहती 'मेरे पास बताने को बहुत कुछ है, परन्तु वह प्रकाशन योग्य नहीं है' और सही मायने में शोध प्रबन्ध सामान्य जनता के लिए उतना सुगम नहीं होता अत: गुरुवर्य्या श्री के पालीताना चातुर्मास के दौरान विधिमार्गप्रपा के अर्थ का संशोधन एवं अवान्तर विधियों पर ठोस कार्य करने हेतु वे अहमदाबाद पहुँची। इसी दौरान पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी इस कार्य का पूर्ण सर्वेक्षण कर उसमें अपेक्षित सुधार करवाए। तदनन्तर L.D. Institute के प्रोफेसर जितेन्द्र भाई, फिर कोबा लाइब्रेरी से मनोज भाई सभी के सहयोग से विधिमार्गप्रपा के अर्थ में रही त्रुटियों को सुधारते हुए उसे नवीन रूप दिया।

इसी अध्ययन काल के दौरान जब वे कोबा में विधि ग्रन्थों का आलोडन कर रही थी तब डॉ. सागरमलजी का बायपास सर्जरी हेतु वहाँ पदार्पण हुआ। सौम्याजी को वहाँ अध्ययनरत देखकर बोले– "आप तो हमारी विद्यार्थी हो, यहाँ क्या कर रही हो? शाजापुर पधारिए मैं यथासंभव हर सहयोग देने का प्रयास करूँगा।" यद्यपि विधि विधान डॉ. सागरमलजी का विषय नहीं था परन्तु उनकी ज्ञान प्रौढ़ता एवं अनुभव शीलता सौम्याजी को सही दिशा देने हेतु पर्याप्त थी। वहाँ से विधिमार्गप्रपा का नवीनीकरण कर वे गुरुवर्य्याश्री के साथ

मुम्बई चातुर्मासार्थ गईं। महावीर स्वामी देरासर पायधुनी से विधिप्रपा का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ।

किसी भी कार्य में बार-बार बाधाएँ आए तो उत्साह एवं प्रवाह स्वत: मन्द हो जाता है, परन्तु सौम्याजी का उत्साह विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धिंगत रहा। मुम्बई का चातुर्मास पूर्णकर वे शाजापुर गईं। वहाँ जाकर डॉ. साहब ने डी.लिट करने का सुझाव दिया और लाडनूं विश्वविद्यालय के अन्तर्गत उन्हीं के निर्देशन में रजिस्ट्रेशन भी हो गया। यह लाडनूं विश्व भारती का प्रथम डी.लिट. रजिस्ट्रेशन था। सौम्याजी से सब कुछ ज्ञात होने के बाद मैंने उनसे कहा– प्रत्येक विधि पर अलग-अलग कार्य हो तो अच्छा है और उन्होंने वैसा ही किया। परन्तु जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वह इतना विराट रूप ले लेगा यह अनुमान भी नहीं था। शाजापुर में रहते हुए इन्होंने छ:सात विधियों पर अपना कार्य पूर्ण किया। फिर गुर्वाज्ञा से कार्य को बीच में छोड़ पुन: गुरुवर्य्या श्री के पास पहुँची। जयपुर एवं टाटा चातुर्मास के सम्पूर्ण सामाजिक दायित्वों को संभालते हुए पूज्याश्री के साथ रही।

शोध कार्य पूर्ण रूप से रूका हुआ था। डॉ.साहब ने सचेत किया कि समयावधि पूर्णता की ओर है अत: कार्य शीघ्र पूर्ण करें तो अच्छा रहेगा वरना रजिस्ट्रेशन रद्द भी हो सकता है। अब एक बार फिर से उन्हें अध्ययन कार्य को गति देनी थी। उन्होंने लघु भगिनी मण्डल के साथ लाइब्रेरी युक्त शान्त-नीरव स्थान हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। इस बार लक्ष्य था कि कार्य को किसी भी प्रकार से पूर्ण करना है। उनकी योग्यता देखते हुए श्री संघ एवं गुरुवर्य्या श्री उन्हें अब समाज के कार्यों से जोड़े रखना चाहते थे परंतु कठोर परिश्रम युक्त उनके विशाल शोध कार्य को भी सम्पन्न करवाना आवश्यक था। बनारस पहुँचकर इन्होंने मुद्रा विधि को छोटा कार्य जानकर उसे पहले करने के विचार से उससे ही कार्य को प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उस कार्य ने भी एक विराट रूप ले लिया। उनका यह मुद्रा कार्य विश्वस्तरीय कार्य था जिसमें उन्होंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, योग एवं नाट्य परम्परा की सहस्राधिक हस्त मुद्राओं पर विशेष शोध किया। यद्यपि उन्होंने दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को 6-7 महीने में एक बार पूर्ण कर लिया, किन्तु उसके विभिन्न कार्य तो अन्त तक चलते रहे। तत्पश्चात उन्होंने अन्य कुछ विषयों पर और भी कार्य किया। उनकी

कार्यनिष्ठा देख वहाँ के लोग हतप्रभ रह जाते थे। संघ-समाज के बीच स्वयं बड़े होने के कारण नहीं चाहते हुए भी सामाजिक दायित्व निभाने ही पड़ते थे।

सिर्फ बनारस में ही नहीं रायपुर के बाद जब भी वे अध्ययन हेतु कहीं गई तो उन्हें ही बड़े होकर जाना पड़ा। सभी गुरु बहिनों का विचरण शासन कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने से इस समस्या का सामना भी उन्हें करना ही था। साधु जीवन में बड़े होकर रहना अर्थात संघ-समाज-समुदाय की समस्त गतिविधियों पर ध्यान रखना, जो कि अध्ययन करने वालों के लिए संभव नहीं होता परंतु साधु जीवन यानी विपरीत परिस्थितियों का स्वीकार और जो इन्हें पार कर आगे बढ़ जाता है वह जीवन जीने की कला का मास्टर बन जाता है। इस शोधकार्य ने सौम्याजी को विधि-विधान के साथ जीवन के क्षेत्र में भी मात्र मास्टर नहीं अपितु विशेषज्ञ बना दिया।

पूज्य बड़े म.सा. बंगाल के क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। कोलकाता वालों की हार्दिक इच्छा सौम्याजी को बुलाने की थी। वैसे जौहरी संघ के पदाधिकारी श्री प्रेमचन्दजी मोघा एवं मंत्री मणिलालजी दुसाज शाजापुर से ही उनके चातुर्मास हेतु आग्रह कर रहे थे। अत: न चाहते हुए भी कार्य को अर्ध विराम दे उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। शाजापुर एवं बनारस प्रवास के दौरान किए गए शोध कार्य का कम्पोज करवाना बाकी था और एक-दो विषयों पर शोध भी। परंतु "जिसकी खाओ बाजरी उसकी बजाओ हाजरी" अत: एक और अवरोध शोध कार्य में आ चुका था। गुरुवर्य्या श्री ने सोचा था कि चातुर्मास के प्रारम्भिक दो महीने के पश्चात इन्हें प्रवचन आदि दायित्वों से निवृत्त कर देंगे परंतु समाज में रहकर यह सब संभव नहीं होता।

चातुर्मास के बाद गुरुवर्य्या श्री तो शेष क्षेत्रों की स्पर्शना हेतु निकल पड़ी किन्तु उन्हें शेष कार्य को पूर्णकर अन्तिम स्वरूप देने हेतु कोलकाता ही रखा। कोलकाता जैसी महानगरी एवं चिर-परिचित समुदाय के बीच तीव्र गति से अध्ययन असंभव था अत: उन्होंने मौन धारण कर लिया और सप्ताह में मात्र एक घंटा लोगों से धर्म चर्चा हेतु खुला रखा। फिर भी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति संभव नहीं थी। इसी बीच कोलकाता संघ के आग्रह से एवं अध्ययन हेतु अन्य सुविधाओं को देखते हुए पूज्याश्री ने इनका चातुर्मास कलकत्ता घोषित कर दिया। पूज्याश्री से अलग हुए सौम्याजी को करीब सात महीने हो चुके थे।

चातुर्मास सम्मुख था और वे अपनी जिम्मेदारी पर प्रथम बार स्वतंत्र चातुर्मास करने वाली थी।

जेठ महीने की भीषण गर्मी में उन्होंने गुरुवर्य्याश्री के दर्शनार्थ जाने का मानस बनाया और ऊपर से मानसून सिना ताने खड़ा था। अध्ययन कार्य पूर्ण करने हेतु समयावधि की तलवार तो उनके ऊपर लटक ही रही थी। इन परिस्थितियों में उन्होंने 35-40 कि.मी. प्रतिदिन की रफ्तार से दुर्गापुर की तरफ कदम बढ़ाए। कलकत्ता से दुर्गापुर और फिर पुनः कोलकाता की यात्रा में लगभग एक महीना पढ़ाई नहींवत हुई। यद्यपि गुरुवर्य्याश्री के साथ चातुर्मासिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारियाँ इन्हीं की होती है फिर भी अध्ययन आदि के कारण इनकी मानसिकता चातुर्मास संभालने की नहीं थी और किसी दृष्टि से उचित भी था। क्योंकि सबसे बड़े होने के कारण प्रत्येक कार्यभार का वहन इन्हीं को करना था अतः दो माह तक अध्ययन की गति पर पुनः ब्रेक लग गया। पूज्या श्री हमेशा फरमाती है कि–

जो जो देखा वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

सौम्याजी ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर संघ-समाज को समय ही नहीं अपितु भौतिकता में भटकते हुए मानव को धर्म की सही दिशा भी दिखाई। वर्तमान परिस्थितियों पर उनकी आम चर्चा से लोगों में धर्म को देखने का एक नया नजरिया विकसित हुआ। गुरुवर्य्याश्री एवं हम सभी को आन्तरिक आनंद की अनुभूति हो रही थी किन्तु सौम्याजी को वापस दुगुनी गति से अध्ययन में जुड़ना था। इधर कोलकाता संघ ने पूर्ण प्रयास किए फिर भी हिन्दी भाषा का कोई अच्छा कम्पोजर न मिलने से कम्पोजिंग कार्य बनारस में करवाया गया। दूरस्थ रहकर यह सब कार्य करवाना उनके लिए एक विषम समस्या थी। परंतु अब शायद वे इन सबके लिए सध गई थी, क्योंकि उनका यह कार्य ऐसी ही अनेक बाधाओं का सामना कर चुका था।

उधर सैंथिया चातुर्मास में पूज्याश्री का स्वास्थ्य अचानक दो-तीन बार बिगड़ गया। अतः वर्षावास पूर्णकर पूज्य गुरूवर्य्या श्री पुनः कोलकाता की ओर पधारी। सौम्याजी प्रसन्न थी क्योंकि गुरूवर्य्या श्री स्वयं उनके पास पधार रही थी। गुरुजनों की निश्रा प्राप्त करना हर विनीत शिष्य का मनेच्छित होता है। पूज्या श्री

के आगमन से वे सामाजिक दायित्वों से मुक्त हो गई थी। अध्ययन के अन्तिम पड़ाव में गुरूवर्य्या श्री का साथ उनके लिए सुवर्ण संयोग था क्योंकि प्राय: शोध कार्य के दौरान पूज्याश्री उनसे दूर रही थी।

शोध समय पूर्णाहुति पर था। परंतु इस बृहद कार्य को इतनी विषमताओं के भंवर में फँसकर पूर्णता तक पहुँचाना एक कठिन कार्य था। कार्य अपनी गति से चल रहा था और समय अपनी धुरी पर। सबमिशन डेट आने वाली थी किन्तु कम्पोजिंग एवं प्रूफ रीडिंग आदि का काफी कार्य शेष था।

पूज्याश्री के प्रति अनन्य समर्पित श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा को जब इस स्थिति के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने युनिवर्सिटी द्वारा समयावधि बढ़ाने हेतु अर्जी पत्र देने का सुझाव दिया। उनके हार्दिक प्रयासों से 6 महीने का एक्सटेंशन प्राप्त हुआ। इधर पूज्या श्री तो शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा सम्पन्न कर अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने की इच्छुक थी। परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है यह कोई नहीं जानता। कुछ विशिष्ट कारणों के चलते कोलकाता भवानीपुर स्थित शंखेश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा चातुर्मास के बाद होना निश्चित हुआ। अत: अब आठ-दस महीने तक बंगाल विचरण निश्चित था। सौम्याजी को अप्रतिम संयोग मिला था कार्य पूर्णता के लिए।

शासन देव उनकी कठिन से कठिन परीक्षा ले रहा था। शायद विषमताओं की अग्नि में तपकर वे सौम्याजी को खरा सोना बना रहे थे। कार्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता इसी से पूर्व उनके द्वारा लिखित 23 खण्डों में से एक खण्ड की मूल कॉपी गुम हो गई। पुन: एक खण्ड का लेखन और समयावधि की अल्पता ने समस्याओं का चक्रव्यूह सा बना दिया। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जिनपूजा क्रिया विधानों का एक मुख्य अंग है अत: उसे गौण करना या छोड़ देना भी संभव नहीं था। चांस लेते हुए एक बार पुन: Extension हेतु निवेदन पत्र भेजा गया। मुनि जीवन की कठिनता एवं शोध कार्य की विशालता के मद्देनजर एक बार पुन: चार महीने की अवधि युनिवर्सिटी के द्वारा प्राप्त हुई।

शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा निमित्त सम्पूर्ण साध्वी मंडल का चातुर्मास बकुल बगान स्थित लीलीजी मणिलालजी सुखानी के नूतन बंगले में होना निश्चित हुआ।

पूज्याश्री ने खडगपुर, टाटानगर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। पाँच-छह साध्वीजी अध्ययन हेतु पौशाल में ही रूके थे। श्री जिनरंगसूरि पौशाल

कोलकाता बड़ा बाजार में स्थित है। साधु-साध्वियों के लिए यह अत्यंत शाताकारी स्थान है। सौम्याजी को बनारस से कोलकाता लाने एवं अध्ययन पूर्ण करवाने में पौशाल के ट्रस्टियों की विशेष भूमिका रही है। सौम्याजी ने अपना अधिकांश अध्ययन काल वहाँ व्यतीत किया।

ट्रस्टीगण श्री कान्तिलालजी, कमलचंदजी, विमलचंदजी, मणिलालजी आदि ने भी हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। संघ-समाज के सामान्य दायित्वों से बचाए रखा। इसी अध्ययन काल में बीकानेर हाल कोलकाता निवासी श्री खेमचंदजी बांठिया ने आत्मीयता पूर्वक सेवाएँ प्रदान कर इन लोगों को निश्चिन्त रखा। इसी तरह अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत (लालाबाबू) जो सौम्याजी को बहनवत मानते हैं उन्होंने एक भाई के समान उनकी हर आवश्यकता का ध्यान रखा। कलकत्ता संघ सौम्याजी के लिए परिवारवत ही हो गया था। सम्पूर्ण संघ की एक ही भावना थी कि उनका अध्ययन कोलकाता में ही पूर्ण हो।

पूज्याश्री टाटानगर से कोलकाता की ओर पधार रही थी। सुयोग्या साध्वी सम्यग्दर्शनाजी उग्र विहार कर गुरुवर्य्याश्री के पास पहुँची थी। सौम्याजी निश्चिंत थी कि इस बार चातुर्मासिक दायित्व सुयोग्या सम्यग दर्शनाजी महाराज संभालेंगे। वे अपना अध्ययन उचित समयावधि में पूर्ण कर लेंगे। परंतु परिस्थिति विशेष से सम्यगजी महाराज का चातुर्मास खड़गपुर ही हो गया।

सौम्याजी की शोधयात्रा में संघर्षों की समाप्ति ही नहीं हो रही थी। पुस्तक लेखन, चातुर्मासिक जिम्मेदारियाँ और प्रतिष्ठा की तैयारियाँ कोई समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। अध्ययन की महत्ता को समझते हुए पूज्याश्री एवं अमिताजी सुखानी ने उन्हें चातुर्मासिक दायित्वों से निवृत्त रहने का अनुनय किया किन्तु गुरु की शासन सेवा में सहयोगी बनने के लिए इन्होंने दो महीने गुरुवर्य्या श्री के साथ चातुर्मासिक दायित्वों का निर्वाह किया। फिर वह अपने अध्ययन में जुट गई।

कई बार मन में प्रश्न उठता कि हमारी प्यारी सौम्या इतना साहस कहाँ से लाती है। किसी कवि की पंक्तियाँ याद आ रही है–

सूरज से कह दो बेशक वह, अपने घर आराम करें।
चाँद सितारे जी भर सोएं, नहीं किसी का काम करें।

अगर अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है।
तो सौम्य गुणा सा जुगनु सारा, अंधकार हर लेता है।।

जिन पूजा एक विस्तृत विषय है। इसका पुनर्लेखन तो नियत अवधि में हो गया परंतु कम्पोजिंग आदि नहीं होने से शोध प्रबंध के तीसरे एवं चौथे भाग को तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अब तीसरी बार लाडनूं विश्वविद्यालय से Extension मिलना असंभव प्रतीत हो रहा था।

श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा समस्त परिस्थितियों से अवगत थे। उन्होंने पूज्य गुरूवर्य्या श्री से निवेदन किया कि सौम्याजी को पूर्णतः निवृत्ति देकर कार्य शीघ्रातिशीघ्र करवाया जाए। विश्वविद्यालय के तत्सम्बन्धी नियमों के बारे में पता करके डेढ़ महीने की अन्तिम एवं विशिष्ट मौहलत दिलवाई। अब देरी होने का मतलब था Rejection of Work by University अतः त्वरा गति से कार्य चला।

सौम्याजी पर गुरुजनों की कृपा अनवरत रही है। पूज्य गुरूवर्य्या सज्जन श्रीजी म.सा. के प्रति वह विशेष श्रद्धा प्रणत हैं। अपने हर शुभ कर्म का निमित्त एवं उपादान उन्हें ही मानती हैं। इसे साक्षात गुरु कृपा की अनुश्रुति ही कहना होगा कि उनके समस्त कार्य स्वतः ग्यारस के दिन सम्पन्न होते गए। सौम्याजी की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्याश्री को समर्पित उनकी कृति पूज्याश्री की पुण्यतिथि के दिन विश्वविद्यालय में Submit की जाए और निमित्त भी ऐसे ही बने कि Extension लेते-लेते संयोगवशात पुनः वही तिथि और महीना आ गया।

23 दिसम्बर 2012 मौन ग्यारस के दिन लाडनूं विश्वविद्यालय में 4 भागों में वर्गीकृत 23 खण्डीय Thesis जमा की गई। इतने विराट शोध कार्य को देखकर सभी हतप्रभ थे। 5556 पृष्ठों में गुम्फित यह शोध कार्य यदि शोध नियम के अनुसार तैयार किया होता तो 11000 पृष्ठों से अधिक हो जाते। यह सब गुरूवर्य्या श्री की ही असीम कृपा थी।

पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. की हार्दिक इच्छा थी कि सौम्याजी के इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान किया जाए जिससे जिन शासन की प्रभावना हो और जैन संघ गौरवान्वित बने।

भवानीपुर–शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा का पावन सुयोग था। श्रुतज्ञान के बहुमान रूप 23 ग्रन्थों का भी जुलूस निकाला गया। सम्पूर्ण कोलकाता संघ द्वारा उनकी वधामणी की गई। यह एक अनुमोदनीय एवं अविस्मरणीय प्रसंग था।

बस मन में एक ही कसक रह गई कि मैं इस पूर्णाहुति का हिस्सा नहीं बन पाई।

आज सौम्याजी की दीर्घ शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर देखकर नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पूज्या प्रवर्त्तिनी म.सा. जहाँ भी आत्म साधना में लीन है वहाँ से उनकी अनवरत कृपा दृष्टि बरस रही है। शोध कार्य पूर्ण होने के बाद भी सौम्याजी को विराम कहाँ था? उनके शोध विषय की त्रैकालिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य शेष थे तथा पुस्तकों का प्रकाशन कोलकाता से ही हो रहा था। अत: कलकत्ता संघ के प्रमुख श्री कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, श्राविका श्रेष्ठा प्रमिलाजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा आदि ने पूज्याश्री के सम्मुख सौम्याजी को रोकने का निवेदन किया। श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत, श्री मणिलालजी दूसाज आदि भी निवेदन कर चुके थे। यद्यपि अजीमगंज दादाबाड़ी प्रतिष्ठा के कारण रोकना असंभव था परंतु मुकिमजी के अत्याग्रह के कारण पूज्याश्री ने उन्हें कुछ समय के लिए वहाँ रहने की आज्ञा प्रदान की।

गुरूवर्य्या श्री के साथ विहार करते हुए सौम्यागुणाजी को तीन Stop जाने के बाद वापस आना पड़ा। दादाबाड़ी के समीपस्थ शीतलनाथ भवन में रहकर उन्होंने अपना कार्य पूर्ण किया। इस तरह इनकी सम्पूर्ण शोध यात्रा में कलकत्ता एक अविस्मरणीय स्थान बनकर रहा।

क्षणै: क्षणै: बढ़ रहे उनके कदम अब मंजिल पर पहुँच चुके हैं। आज जो सफलता की बहुमंजिला इमारत इस पुस्तक श्रृंखला के रूप में देख रहे हैं वह मजबूत नींव इन्होंने अपने उत्साह, मेहनत और लगन के आधार पर रखी है। सौम्यगुणाजी का यह विशद् कार्य युग-युगों तक एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में स्मरणीय रहेगा। श्रुत की अमूल्य निधि में विधि-विधान के रहस्यों को उजागर करते हुए उन्होंने जो कार्य किया है वह आने वाली भावी पीढ़ी के लिए आदर्श रूप रहेगा। लोक परिचय एवं लोकप्रसिद्धि से दूर रहने के कारण ही आज वे इस

बृहद् कार्य को सम्पन्न कर पाई हैं। मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि वे सदा इसी तरह श्रुत संवर्धन के कल्याण पथ पर गतिशील रहे। अंतत: उनके अडिग मनोबल की अनुमोदना करते हुए यही कहूँगी-

प्रगति शिला पर चढ़ने वाले बहुत मिलेंगे,
कीर्तिमान करने वाला तो विरला होता है।
आंदोलन करने वाले तो बहुत मिलेंगे,
दिशा बदलने वाला कोई निराला होता है।
तारों की तरह टिम-टिमाने वाले अनेक होते हैं,
पर सूरज बन रोशन करने वाला कोई एक ही होता है।
समय गंवाने वालों से यह दुनिया भरी है,
पर इतिहास बनाने वाला कोई सौम्य सा ही होता है।
प्रशंसा पाने वाले जग में अनेक मिलेंगे,
प्रिय बने सभी का ऐसा कोई सज्जन ही होता है ।।

●

हार्दिक प्रसन्नता

किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर कहा है-

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आवत फल होय।।

हर कार्य में सफलता समय आने पर ही प्राप्त होती है। एक किसान बीज बोकर साल भर तक मेहनत करता है तब जाकर उसे फसल प्राप्त होती है। चार साल तक College में मेहनत करने के बाद विद्यार्थी Doctor, Engineer या MBA होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी आज सफलता के जिस शिखर पर पहुँची है उसके पीछे उनकी वर्षों की मेहनत एवं धैर्य नींव रूप में रहे हुए हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व सौम्याजी का आगमन हमारे मण्डल में एक छोटी सी गुड़िया के रूप में हुआ था। व्यवहार में लघुता, विचारों में सरलता एवं बुद्धि की श्रेष्ठता उनके प्रत्येक कार्य में तभी से परिलक्षित होती थी। ग्यारह वर्ष की निशा जब पहली बार पूज्याश्री के पास वैराग्यवासित अवस्था में आई तब मात्र चार माह की अवधि में प्रतिक्रमण, प्रकरण, भाष्य,कर्मग्रन्थ, प्रात:कालीन पाठ आदि कंठस्थ कर लिए थे। उनकी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण पूज्य छोटे म.सा. (पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा.) उन्हें अधिक से अधिक चीजें सिखाने की इच्छा रखते थे।

निशा का बाल मन जब अध्ययन से उक्ता जाता और बाल सुलभ चेष्टाओं के लिए मन उत्कंठित होने लगता, तो कई बार वह घंटों उपाश्रय की छत पर तो कभी सीढ़ियों में जाकर छुप जाती ताकि उसे अध्ययन न करना पड़े। परंतु यह उसकी बाल क्रीड़ाएँ थी। 15-20 गाथाएँ याद करना उसके लिए एक सहज बात थी। उनके अध्ययन की लगन एवं सीखने की कला आदि के अनुकरण की प्रेरणा आज भी छोटे म.सा. आने वाली नई मंडली को देते हैं। सूत्रागम अध्ययन, ज्ञानार्जन, लेखन, शोध आदि के कार्य में उन्होंने जो श्रृंखला प्रारम्भ की है आज सज्जनमंडल में उसमें कई कड़ियाँ जुड़ गई हैं परन्तु मुख्य कड़ी तो

मुख्य ही होती है। ये सभी के लिए प्रेरणा बन रही हैं किन्तु इनके भीतर जो प्रेरणा आई वह कहीं न कहीं पूज्य गुरुवर्य्या श्री की असीम कृपा है।

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत कर्म के लिए चाहिए
महत प्रेरणा बल भी भीतर

यह महत प्रेरणा गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। विनय, सरलता, शालीनता, ऋजुता आदि गुण गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सौम्याजी का मन शुरू से सीधा एवं सरल रहा है। सांसारिक कपट-माया या व्यवहारिक औपचारिकता निभाना इनके स्वभाव में नहीं है। पूज्य प्रवर्तिनीजी म.सा. को कई बार ये सहज में कहती **'महाराज श्री!' मैं तो आपकी कोई सेवा नहीं करती, न ही मुझमें विनय है, फिर मेरा उद्धार कैसे होगा, मुझे गुरु कृपा कैसे प्राप्त होगी?' तब पूज्याश्री फरमाती– 'सौम्या! तेरे ऊपर तो मेरी अनायास कृपा है, तूं चिंता क्यों करती है? तूं तो महान साध्वी बनेगी।'** आज पूज्याश्री की ही अन्तस शक्ति एवं आशीर्वाद का प्रस्फोटन है कि लोकैषणा, लोक प्रशंसा एवं लोक प्रसिद्धि के मोह से दूर वे श्रुत सेवा में सर्वात्मना समर्पित हैं। जितनी समर्पित वे पूज्या श्री के प्रति थी उतनी ही विनम्र अन्य गुरुजनों के प्रति भी। गुरु भगिनी मंडल के कार्यों के लिए भी वे सदा तत्पर रहती हैं। चाहे बड़ों का कार्य हो, चाहे छोटों का उन्होंने कभी किसी को टालने की कोशिश नहीं की। चाहे प्रियदर्शना श्रीजी हो, चाहे दिव्यदर्शना श्रीजी, चाहे शुभदर्शनाश्रीजी हो, चाहे शीलगुणा जी आज तक सभी के साथ इन्होंने लघु बनकर ही व्यवहार किया है। कनकप्रभाजी, संयमप्रज्ञाजी आदि लघु भगिनी मंडल के साथ भी इनका व्यवहार सदैव सम्मान, माधुर्य एवं अपनेपन से युक्त रहा है। ये जिनके भी साथ चातुर्मास करने गई हैं उन्हें गुरुवत सम्मान दिया तथा उनकी विशिष्ट आन्तरिक मंगल कामनाओं को प्राप्त किया है। पूज्या विनीता श्रीजी म.सा., पूज्या मणिप्रभाश्रीजी म.सा., पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या सुलोचना श्रीजी म.सा., पूज्या विद्युतप्रभाश्रीजी म.सा. आदि की इन पर विशेष कृपा रही है। पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा., आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी म.सा., आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी आदि ने इन्हें अपना

स्नेहाशीष एवं मार्गदर्शन दिया है। आचार्य श्री राजयशसूरिजी म.सा., पूज्य भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. एवं पूज्य वाचंयमा श्रीजी (बहन) म.सा. इनका Ph.D. एवं D.Litt. का विषय विधि-विधानों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'विधिप्रभा' नाम से ही बुलाते हैं।

पूज्या शशिप्रभाजी म.सा. ने अध्ययन काल के अतिरिक्त इन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं किया और आज भी हम सभी गुरु बहनों की अपेक्षा गुरु निश्रा प्राप्ति का लाभ इन्हें ही सर्वाधिक मिलता है। पूज्याश्री के चातुर्मास में अपने विविध प्रयासों के द्वारा चार चाँद लगाकर ये उन्हें और भी अधिक जानदार बना देती हैं।

तप-त्याग के क्षेत्र में तो बचपन से ही इनकी विशेष रुचि थी। नवपद की ओली का प्रारम्भ इन्होंने गृहस्थ अवस्था में ही कर दिया था। इनकी छोटी उम्र को देखकर छोटे म.सा. ने कहा– देखो! तुम्हें तपस्या के साथ उतनी ही पढ़ाई करनी होगी तब तो ओलीजी करना अन्यथा नहीं। ये बोली– मैं रोज पन्द्रह नहीं बीस गाथा करूंगी आप मुझे ओलीजी करने दीजिए और उस समय ओलीजी करके सम्पूर्ण प्रातःकालीन पाठ कंठाग्र किये। बीसस्थानक, वर्धमान, नवपद, मासक्षमण, श्रेणी तप, चत्तारि अट्ठ दस दोय, पैंतालीस आगम, ग्यारह गणधर, चौदह पूर्व, अट्ठाईस लब्धि, धर्मचक्र, पखवासा आदि कई छोटे-बड़े तप करते हुए इन्होंने अध्ययन एवं तपस्या दोनों में ही अपने आपको सदा अग्रसर रखा।

आज उनके वर्षों की मेहनत की फलश्रुति हुई है। जिस शोध कार्य के लिए वे गत 18 वर्षों से जुटी हुई थी उस संकल्पना को आज एक मूर्त्त स्वरूप प्राप्त हुआ है। अब तक सौम्याजी ने जिस धैर्य, लगन, एकाग्रता, श्रुत समर्पण एवं दृढ़निष्ठा के साथ कार्य किया है वे उनमें सदा वृद्धिंगत रहे। पूज्य गुरुवर्य्या श्री के नक्शे कदम पर आगे बढ़ते हुए वे उनके कार्यों को और नया आयाम दें तथा श्रुत के क्षेत्र में एक नया अवदान प्रस्तुत करें। इन्हीं शुभ भावों के साथ–

गुरु भगिनी मण्डल

अनुभूति के बोल

श्रमण परम्परा निवृत्ति एवं अध्यात्म मूलक परम्परा है। निवृत्ति मार्ग पर आरूढ़ होने के लिए सर्वप्रथम असद्प्रवृत्ति से सद्प्रवृत्ति के मार्ग पर आना आवश्यक है। द्रव्य और भाव दोनों सापेक्ष चलते हैं तथा एक दूसरे की अभिवृद्धि में हेतुभूत बनते हैं। जिन धर्म की प्रत्येक क्रिया में द्रव्य शुद्धि एवं भाव शुद्धि दोनों को प्रमुखता दी गई है। वस्तुतः जैन संस्कृति का मूलोद्देश्य निवृत्ति ही है तथा उसी हेतु से कुछ प्रवृत्तियाँ की जाती है। प्रतिष्ठा भी एक ऐसा ही अनुष्ठान है। यद्यपि इसे देखने पर यही प्रतिभासित होता है कि यह एक आडम्बर युक्त बृहद् अनुष्ठान है, परन्तु इसके रहस्यों को जाना और समझा जाए तो यही आध्यात्मिक उन्नति का प्रथम सोपान हो सकता है।

चौतीस अतिशयों से शोभित अरिहंत परमात्मा जब पैंतीस गुणों से युक्त वाणी द्वारा देशना देते हैं तब समस्त अमंगल दूर हो जाते हैं तथा सुख-शांति और समृद्धि लहलहाने लगती है। इसी प्रकार जिनालय में परमात्मा की प्रतिष्ठा चतुर्विध संघ में आनंद का प्रसरण करती है। इससे आधि-व्याधि-उपाधि का परिहार होता है तथा धन पिपासुओं की धन लालसा, भोगी जनों की भोगवृत्ति एवं अनैतिकता, तृष्णा आदि दुर्गुणों का निर्गमन होता है।

प्रतिष्ठा का अभिप्राय जिनालय में जिनबिम्ब की स्थापना, आठ दिन का भव्यातिभव्य उत्सव, राजशाही भोजन व्यवस्था आदि करना नहीं है। इस अनुष्ठान के द्वारा बाह्योपचार से प्रतिमा की स्थापना होती है और भावों से हमारे हृदय मन्दिर में जिनेश्वर परमात्मा के साथ-साथ जिनवाणी एवं जिनाज्ञा की प्रतिष्ठा होती है। षोडशक प्रकरण में आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं-

भवति च खलु प्रतिष्ठा निजभावस्यैव देवतोद्देशात्

देवता के उद्देश्य से निज आत्मा में निज भावों की आगमोक्त रीति से अत्यंत श्रेष्ठ स्थापना करना यही प्रतिष्ठा है।

इस प्रकार प्रत्येक आत्मा में परमात्म पद प्राप्त करने की जो शक्ति है उसे प्रकट करना अथवा अभिव्यक्त करने का प्रयास करना प्रतिष्ठा है।

प्रतिष्ठा के विषय में कई गलत धारणाएँ भी आज लोक व्यवहार में प्रचलित हो गई हैं तो कुछ प्रमुख क्रियाओं का स्वरूप परिवर्तित होते-होते अपने मूल उद्देश्य से भटक गया है। कई मुख्य क्रियाएँ उनके यथार्थ रहस्यों को समझे बिना परम्परा अनुकरण के रूप में की जाती है। यथार्थत: प्रतिष्ठा एक परम मंगलकारी अनुष्ठान है तथा उसकी सार्थकता एवं सफलता प्रतिष्ठाचार्य के भावों पर निर्भर करती है।

प्रस्तुत शोध खण्ड में इस विषयक कई तथ्यों पर विचार किया गया है। यह सुविदित है कि जिनालय निर्माण हेतु भूमि खनन से प्रारम्भ करके प्रभु स्थापना तक अनेकविध अनुष्ठान किये जाते हैं। इस कृति में तत्सम्बन्धी आवश्यक विधियाँ, ऐतिहासिक अवधारणा, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनकी उपादेयता, अभिषेक आदि क्रियाओं के मार्मिक रहस्यों आदि विविध पक्षीय अनुसंधानात्मक चिन्तन प्रस्तुत किया है। यद्यपि इस विषय पर और अधिक बृहद् रूप में कार्य किया जा सकता था किन्तु साधु जीवन की मर्यादा, शोध की समय सीमा और योग्य दिशा निर्देश के अभाव में इसके कई पहलू अभी भी मेरे लिए प्रश्न चिह्नवत ही है।

सामान्यतया यह शोध प्रबन्ध सप्तदश अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय में शास्त्रनुसार प्रतिष्ठा के विभिन्न अर्थ, उनके अभिप्रायार्थ एवं उनमें अन्तर्भूत रहस्यों को उजागर किया गया है। इसी के साथ प्रतिष्ठा की विभिन्न परिभाषाएँ और प्रकार भी बताए गए हैं। सामान्य रूप से प्रतिष्ठा का अर्थ जिनबिम्ब में प्राणों का आरोपण समझा जाता है। कहीं-कहीं तो यह भी कहा जाता है कि भगवान को स्वर्ग से बुलाकर मूर्ति में प्रतिष्ठित किया जाता है। जबकि यथार्थत: तो जिनबिम्ब में प्रतिष्ठाकारक आचार्य आदि के शुभ भावों का आरोपण किया जाता है। इसी तरह की कई मिथ्या धारणाओं का खण्डन करने का प्रयास इस अध्याय में युक्ति पूर्वक किया गया है।

दूसरे अध्याय में प्रतिष्ठा के मुख्य अधिकारियों की चर्चा की गई है। उसमें प्रतिष्ठा कर्त्ता आचार्य, प्रतिष्ठा कारक गृहस्थ, पौंखण आदि क्रिया में सहयोगी महिलाओं एवं शिल्पी आदि की योग्यताओं का वर्णन किया गया है।

तीसरे अध्याय में प्रतिष्ठा सम्बन्धी आवश्यक तत्त्वों का मूल्यपरक विश्लेषण किया गया है। आज का वैज्ञानिक युग शोध परक युग है। आज युवा वर्ग प्रत्येक क्रिया-अनुष्ठान करने से पूर्व उनके रहस्यों के विषय में जानना

चाहता है। ताकि अपने व्यस्त Schedule में समय का सम्यक् नियोजन कर सकें। वर्तमान मानसिकता को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में प्रतिष्ठा का स्वरूप, प्रतिष्ठा आवश्यक क्यों, विविध संदर्भों में प्रतिष्ठा के लाभ, प्रतिष्ठा सम्बन्धी बोलियों का विवरण, प्रतिष्ठाचार्य की वेश-भूषा आदि अनेक रूचिकर विषयों की चर्चा की गई है।

आज लोगों के पास Theatre, club, Mall, Community Centres में जाने के लिए समय है परन्तु मंदिर या उपाश्रय आदि धार्मिक स्थलों में जाने के लिए कहा जाए तो वहाँ से बचने के सौ बहाने उनके पास हैं। **चौथे अध्याय** में जिनालय आदि का मनोवैज्ञानिक एवं प्रासंगिक स्वरूप बतलाते हुए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उसकी प्रासंगिकता एवं उपादेयता को सिद्ध किया है। जिनालय के विशुद्ध परमाणु एवं जिनबिम्ब से निकलती सकारात्मक शक्ति सम्पन्न किरणें मनुष्य के उद्वेलित मन को शान्त करने एवं Positive energy देने में Battery का कार्य करती हैं। वर्तमान भागमभाग की जिन्दगी में शान्ति पाने के लिए व्यक्ति ध्यान, विपश्यना आदि प्रयोगों हेतु इधर-उधर भटक रहा है, जबकि जिनमंदिर में विराजित प्रशान्त मुखमुद्रा युक्त तेजस्वी जिन प्रतिमा का मनोयोग पूर्वक किया गया ध्यान एवं दर्शन स्वत: बड़ी से बड़ी Tension से मुक्त कर देता है। इस अध्याय में जिनबिम्ब की आवश्यकता एवं उसके महत्त्व आदि विषयक उपयोगी चर्चा की गई है।

समय एक अमूल्य निधि है तथा इसका मूल्य सभी को ज्ञात है। प्रत्येक क्रिया का एक समय होता है और उस समय में की गई क्रिया सर्वाधिक लाभकारी होती है। इसीलिए ज्योतिष शास्त्र में मुहूर्त्त को एक महत्त्वपूर्ण घटक माना गया है। नगर स्थित जिनालय स्थानीय श्री संघ के अभ्युदय में परम निमित्तभूत बनता है अत: उसके निर्माण हेतु कैसे मुहूर्त्त का चयन करना इत्यादि की सम्यक् जानकारी **पाँचवें अध्याय** में प्रस्तुत की गई है।

जिनमंदिर निर्माण कोई सामान्य बिल्डिंग या गृह निर्माण का कार्य नहीं कि उसे इंजिनियर को कोन्ट्रेक्ट पर दे दिया जाए। आज एक घर बनाने से पहले भी व्यक्ति कई लोगों के सुझाव लेता है। ऐसी स्थिति में जिन मंदिर निर्माण में तो सावधानी रखना अत्यावश्यक है। गीतार्थ आचार्यों ने इस सम्बन्ध में सटीक दिशा-निर्देश देते हुए जिनमन्दिर निर्माण हेतु भूमि कैसी हो? जिनालय का निर्माण करवाते समय किन मुद्दों पर ध्यान दिया जाए? जिनालय हेतु कैसे द्रव्यों का उपयोग किया

जाये? शिल्पकार का बहुमान क्यों और कैसे करें? आदि तथ्यभूत जिज्ञासाओं का समाधान किया गया है। **छठवाँ अध्याय** इन्हीं विषयों से सम्पृक्त है।

सातवें अध्याय में जिनबिम्ब निर्माण की शास्त्रोक्त विधि दर्शायी गई है।

आठवाँ अध्याय 'जिनप्रतिमा प्रकरण' से सम्बन्धित है। इसमें प्रतिमा शब्द का अर्थ, प्रतिमा के प्रकार, विभिन्न द्रव्यों से निर्मित प्रतिमाओं के फल, हीनांग प्रतिमाओं की अशुभता, खण्डित प्रतिमाओं की विसर्जन विधि ऐसे अनेक पहलुओं पर चिन्तन किया गया है। जिस तरह विवाह करने से पूर्व लड़के-लड़की की कुंडली के आधार पर उनके गुण आदि मिलाए जाते हैं उसी प्रकार नगर एवं प्रतिष्ठाकारक आदि से भी जिनप्रतिमा के नाम का मिलान किया जाता है। इस नियमानुसार श्रावक स्वयं के लिए अधिक से अधिक लाभकारी प्रतिमा का निर्णय कर उस प्रतिमा को भरवा सकता है।

प्रश्न हो सकता है कि तीर्थंकर परमात्मा तो सभी के लिए समभाव रखते हैं, फिर उनकी प्रतिमा किसी के लिए कम या अधिक लाभकारी कैसे हो सकती हैं?

इसका समाधान यह है कि तीर्थंकर की प्रतिमा लाभ या हानि नहीं पहुँचाती परन्तु संसारी मनुष्य के ग्रह, नक्षत्र, राशि आदि उसे प्रभावित करते हैं। जिस तीर्थंकर के नाम से प्रतिष्ठा कर्त्ता के अधिक गुण मिले, वह उसके लिए व्यावहारिक तौर पर अधिक लाभकारी होती है। संसारी लोग व्यावहारिक लाभ-हानि को अधिक प्रधानता देते हैं। अत: जैनाचार्यों ने तीर्थंकर नाम से स्वयं की राशि मिलान का विधान किया है। इससे जिनेश्वर परमात्मा से शुभ और फिर शुद्ध राग उत्पन्न होता है जो अनंतर और परम्परा से मोक्ष सुख का कारण बनता है। इस प्रकार **नौवें अध्याय** में किसे-कौनसी प्रतिमा भरवानी या प्रतिष्ठित करवानी चाहिए? इसका संयुक्त वर्णन किया है।

दसवें अध्याय में अरिहन्त परमात्मा के पाँच कल्याणकों का सहेतुक निरूपण किया गया है जिससे तीर्थंकरों के अतिशय, लब्धि आदि का ज्ञान होता है तथा परमात्मा के प्रति अन्तरंग अहोभाव उत्पन्न होता है।

प्रतिष्ठा एक बृहद् विधि विधानमय अनुष्ठान है। इसके अन्तर्गत अनेक विधियों का समावेश होता है जैसे– जिनमंदिर निर्माण, खनन, शिलान्यास, गृह मंदिर निर्माण, वज्रलेप, मूर्ति विसर्जन, ध्वजारोहण आदि। **ग्यारहवें अध्याय** में प्रतिष्ठा सम्बन्धी मुख्य विधियों एवं उपविधियों की चर्चा की गई है।

बारहवें अध्याय में अठारह अभिषेक का चिंतन आधुनिक एवं मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में किया गया है। अठारह अभिषेक क्यों, अभिषेक के प्रकार, प्रतिमा अभिषेक की परम्परा कब से, अभिषेक क्रिया सावद्य है या नहीं, ऐसे अनेक विषयों का युक्ति पूर्वक निरूपण किया है। इसी के साथ अठारह अभिषेक क्रिया में प्रयुक्त विविध औषधियों का प्रभाव जिन प्रतिमा एवं अभिषेक कर्त्ता पर कैसे पड़ता है? उसके द्वारा शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों का शमन किस तरह हो सकता है? इस तरह वर्तमान में प्रचलित अठारह अभिषेक विधि का प्रामाणिक स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। स्वाध्यायी वर्ग इससे तत्सम्बन्धी अनेक छोटे-बड़े विधानों के रहस्यों का भी ज्ञान कर सकता है।

तेरहवें अध्याय के माध्यम से प्रतिष्ठा विषयक शंका-समाधान वर्तमान आवश्यकता के आधार पर किए गए हैं। प्रतिष्ठा सम्बन्धित प्रत्येक विधान जैसे- खनन, शिलान्यास, कुंभस्थापना, दीपक स्थापना, जवारारोपण, अधिवासना आदि अनेक विषयों की विस्तृत जानकारी सामान्य पाठक वर्ग की अपेक्षा से दी गई है। जिससे इन विधानों का शास्त्रीय स्वरूप जानकर तत्सम्बंधी क्रियाओं को अधिक मनोयोग पूर्वक किया जा सके।

चौदहवें अध्याय में प्रतिष्ठा विधान से सम्बन्धित उठती प्रासंगिक शंकाओं का समाधान किया गया है। जैसे कि जिनबिम्ब की प्रौंखण क्रिया किसलिए? जिन प्रतिमा के हाथ में सरसव पोटली क्यों बांधी जाए? मींढ़ल एवं मरडाशिंग बांधना जरूरी क्यों? आदि अनेक तथ्यभूत प्रश्नों पर विमर्श किया गया है। इनमें कई क्रियाएँ लोग व्यवहार के अनुकरण रूप तो कई महोत्सव में मंगल आदि की अपेक्षा से की जाती है।

इस अध्याय के द्वारा ज्ञान पिपासु वर्ग क्रियाओं का मात्र अनुकरण न करते हुए उनका सही समझ पूर्वक आचरण कर सकेगा।

पन्द्रहवें अध्याय में वर्तमान उपलब्ध प्रतिष्ठा कल्पों का समीक्षात्मक एवं ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके द्वारा प्रतिष्ठा विधि की प्राचीनता एवं उसमें आए कालगत परिवर्त्तन आदि का सम्यक्ज्ञान हो जाता है।

सोलहवें अध्याय में सम्यक्त्वी देवी-देवताओं का शास्त्रीय स्वरूप दर्शाते हुए उस विषय में जैन धर्म की अवधारणा को स्पष्ट किया है। गृहस्थ के लिए सम्यक्त्वी देवी-देवताओं का स्थान कितना ऊँचा है और उनका सत्कार-

बहुमान कितने स्तर तक किया जाना चाहिए? इस सम्बन्धी सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

सत्रहवाँ अध्याय पूर्व विवक्षित समस्त अध्यायों का सारगर्भित विवेचन करते हुए उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

जिनालय निर्माण सम्बन्धी विशिष्ट शब्दों के संकेतार्थ परिशिष्ट के रूप में दिए गए हैं। इससे पाठक वर्ग को शिल्पशास्त्र के परम्परागत शब्दों का सुगम बोध हो सकेगा।

अंजनशलाका-प्रतिष्ठा भावगर्भित एवं रहस्यमयी क्रिया होने से इसके मुख्य अधिकारी आचार्य माने गये हैं और उन्हें यह अधिकार गुरु परम्परा से प्राप्त होता है इसलिए वे इस विषयक गुप्त मन्त्रों एवं तत्सम्बन्धी रहस्यों के पूर्ण ज्ञाता होते हैं अत: इस सम्बन्ध में जितना स्पष्ट वर्णन आचार्य या गीतार्थ मुनि कर सकते हैं उतना मुझ अल्पज्ञा द्वारा अशक्य है।

त्रियोग की शुद्धि पूर्वक इस शोध कार्य को करते हुए छद्मस्थ बुद्धिवश जिनाज्ञा एवं आचरण विरुद्ध कुछ भी लिखने में आया हो तो मिच्छामि दुक्कडं। प्रबुद्ध वर्ग अज्ञानतावश हुई भूलों से अवश्य अवगत करवाएँ, यह नम्र निवेदन है।

अन्त में कहना चाहूँगी कि जिनबिम्ब एवं प्रतिष्ठा सम्बन्धी यह कृति हमारे मन मन्दिर में परमात्म शक्ति का प्रस्फुटन करें, आत्मभावों का निर्मलीकरण करें एवं कल्याण मार्ग का पथ प्रशस्त करें इन्हीं शुभाशंसाओं के साथ।

●

कृतज्ञता ज्ञापन

जगनाथ जगदानंद जगगुरू, अरिहंत प्रभु जग हितकरं
दिया दिव्य अनुभव ज्ञान सुखकर, मारग अहिंसा श्रेष्ठतम्
तुम नाम सुमिरण शान्तिदायक, विघ्न सर्व विनाशकम्
हो वंदना नित वन्दना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।1।।

संताप हर्ता शान्ति कर्ता, सिद्धचक्र वन्दन सुखकरं
लब्धिवंत गौतम ध्यान से, विनय हो वृद्धिकरं
दत्त-कुशल मणि-चन्द्र गुरुवर, सर्व वांछित पूरकम्
हो वंदना नित वन्दना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।2।।

जन जागृति दिव्य दूत है, सूरिपद वलि शोभितम्
सद्ज्ञान मार्ग प्रशस्त कर, दिया शास्त्र चिन्तन हितकरं
कैलाश सूरिवर गच्छनायक, सद्बोधबुद्धि दायकम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।3।।

श्रुत साधना की सफलता में, जो कुछ किया निस्वार्थतम्
आशीष वृष्टि स्नेह दृष्टि, दी प्रेरणा नित भव्यतम्
सूरि 'पद्म' 'कीर्ति' 'राजयश' का, उपकार मुझ पर अगणितम्।
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।4।।

ज्योतिष विशारद युग प्रभाकर, उपाध्याय मणिप्रभ गुरुवरं
समाधान दे संशय हरे, मुझ शोध मार्ग दिवाकरम्
सद्भाव जल से मुनि पीयूष ने, किया उत्साह वर्धनम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।5।।

उल्लास ऊर्जा नित बढ़ाते, आत्मीय 'प्रशांत' गणिवरं
दे प्रबोध मुझको दूर से, भ्राता 'विमल' मंगलकरं
विधि ग्रन्थों से अवगत किया, यशधारी 'रत्न' मुनिवरं
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।6।।

हाथ जिनका थामकर, किया संयम मार्ग आरोहणम्
अनुसरण कर पाऊं उनका, है यही मन वांछितम्
सज्जन कृपा से होत है, दुःसाध्य कार्य शीघ्रतम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।7।।

कल्पतरू सा सुख मिले, शरणागति सौख्यकरम्
तप-ज्ञान रूचि के जागरण में, आधार हैं जिनका परम्
मुझ जीवन शिल्पी-दृढ़ संकल्पी, गुरू 'शशि' शीतल गुणाकरम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।8।।

'प्रियदर्शना' सत्प्रेरणा से, किया शोध कार्य शतगुणम्
गुरु भगिनी मंडल सहाय से, कार्य सिद्धि शीघ्रतम्
उपकार सुमिरण उन सभी का, धरी भावना वृद्धिकरं
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।9।।

जिन स्थानों से प्रणयन किया, यह शोध कार्य मुख्यतम्
पार्श्वनाथ विद्यापीठ (शाजापुर, बनारस) की, मिली छत्रछाया सुखकरम्
जिनरंगसूरि पौशाल (कोलकाता) है, पूर्णाहुति साक्ष्य जयकरं
हो वन्दना नित वन्दना, है नगर कार्य सिद्धिकरम् ।।10।।

साधु नहीं पर साधकों के, आदर्श मूर्ति उच्चतम्
श्रुत ज्ञानसागर संशय निवारक, आचरण सम्प्रेरकम्
इस कृति के उद्धार में, निर्देश जिनका मुख्यतम्
शासन प्रभावक सागरमलजी, किं करुं गुण गौरवम्।।11।।

अबोध हूँ, अल्पज्ञ हूँ, छद्मस्थ हूँ कर्म आवृतम्
अनुमोदना करुं उन सभी की, त्रिविध योगे अर्पितम्
जिन वाणी विपरीत हो लिखा, तो क्षमा हो मुझ दुष्कृतम्
श्रुत सिन्धु में अर्पित करुं, शोध मन्थन नवनीतम्।।12।।

●

मिच्छामि दुक्कडं

आगम मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, जैन जगत की अनुपम साधिका, प्रवर्तिनी पद सुशोभिता, खरतरगच्छ दीपिका पू. गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की अन्तरंग कृपा से आज छोटे से लक्ष्य को पूर्ण कर पाई हूँ।

यहाँ शोध कार्य के प्रणयन के दौरान उपस्थित हुए कुछ संशय युक्त तथ्यों का समाधान करना चाहूँगी–

सर्वप्रथम तो मुनि जीवन की औत्सर्गिक मर्यादाओं के कारण जानते-अजानते कई विषय अनछुए रह गए हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार ही विषय का स्पष्टीकरण हो पाया है अतः कहीं-कहीं सन्दर्भित विषय में अपूर्णता भी प्रतीत हो सकती है।

दूसरा जैन संप्रदाय में साध्वी वर्ग के लिए कुछ नियत मर्यादाएँ हैं जैसे प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, उपस्थापना, पदस्थापना आदि करवाने एवं आगम शास्त्रों को पढ़ाने का अधिकार साध्वी समुदाय को नहीं है। योगोद्वहन, उपधान आदि क्रियाओं का अधिकार मात्र पदस्थापना योग्य मुनि भगवंतों को ही है। इन परिस्थितियों में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या एक साध्वी अनधिकृत एवं अननुभूत विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर सकती है?

इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' यह शोध का विषय होने से यत्किंचित लिखना आवश्यक था अतः गुरु आज्ञा पूर्वक विद्वद्वर आचार्य भगवंतों से दिशा निर्देश एवं सम्यक जानकारी प्राप्तकर प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

तीसरा प्रायश्चित्त देने का अधिकार यद्यपि गीतार्थ मुनि भगवंतों को है किन्तु प्रायश्चित्त विधि अधिकार में जीत (प्रचलित) व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त योग्य तप का वर्णन किया है। इसका उद्देश्य मात्र यही है कि भव्य जीव पाप भीरु बनें एवं दोषकारी क्रियाओं से परिचित होवें। कोई भी आत्मार्थी इसे देखकर स्वयं प्रायश्चित्त ग्रहण न करें।

इस शोध के अन्तर्गत कई विषय ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र की दूरी के कारण यथोचित जानकारी एवं समाधान प्राप्त नहीं हो पाए, अतः तद्विषयक पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं कर पाई हूँ।

कुछ लोगों के मन में यह शंका भी उत्पन्न हो सकती है कि मुद्रा विधि के अधिकार में हिन्दू, बौद्ध, नाट्य आदि मुद्राओं पर इतना गूढ़ अध्ययन क्यों?

मुद्रा एक यौगिक प्रयोग है। इसका सामान्य हेतु जो भी हो परंतु इसकी अनुश्रुति आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता के रूप में ही होती है।

प्रायः मुद्राएँ मानव के दैनिक चर्या से सम्बन्धित है। इतर परम्पराओं का जैन परम्परा के साथ पारस्परिक साम्य-वैषम्य भी रहा है अतः इनके सद्पक्षों को उजागर करने हेतु अन्य मुद्राओं पर भी गूढ़ अन्वेषण किया है।

यहाँ यह भी कहना चाहूँगी कि शोध विषय की विराटता, समय की प्रतिबद्धता, समुचित साधनों की अल्पता, साधु जीवन की मर्यादा, अनुभव की न्यूनता, व्यावहारिक एवं सामान्य ज्ञान की कमी के कारण सभी विषयों का यथायोग्य विश्लेषण नहीं भी हो पाया है। हाँ, विधि-विधानों के अब तक अस्पृष्ट पन्नों को खोलने का प्रयत्न अवश्य किया है। प्रज्ञा सम्पन्न मुनि वर्ग इसके अनेक रहस्य पटलों को उद्घाटित कर सकेंगे। यह एक प्रारंभ मात्र है।

अन्ततः जिनवाणी का विस्तार करते हुए एवं शोध विषय का अन्वेषण करते हुए अल्पमति के कारण शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा की हो, आचार्यों के गूढ़ार्थ को यथारूप न समझा हो, अपने मत को रखते हुए जाने-अनजाने अर्हतवाणी का कटाक्ष किया हो, जिनवाणी का अपलाप किया हो, भाषा रूप में उसे सम्यक अभिव्यक्ति न दी हो, अन्य किसी के मत को लिखते हुए उसका संदर्भ न दिया हो अथवा अन्य कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध किया हो या लिखा हो तो उसके लिए त्रिकरण-त्रियोगपूर्वक श्रुत रूप जिन धर्म से मिच्छामि दुक्कड़म् करती हूँ।

•

विषयानुक्रमणिका

अध्याय-1 : प्रतिष्ठा का अर्थ विन्यास एवं प्रकार 1-10

1. प्रतिष्ठा का शाब्दिक अर्थ 2. प्रतिष्ठा की सैद्धान्तिक परिभाषाएँ 3. प्रतिष्ठा के अन्य अर्थ 4. जैन वाङ्मय में प्रतिष्ठा के प्रकार।

अध्याय-2 : प्रतिष्ठा के मुख्य अधिकारियों का शास्त्रीय स्वरूप 11-26

1. प्रतिष्ठा करवाने का अधिकारी कौन? 2. जिनालय निर्माण का मुख्य अधिकारी कौन? 3. कैसा गृहस्थ प्रतिष्ठा करवा सकता है? 4. प्रतिष्ठा के मुख्य सूत्रधार इन्द्र का स्वरूप 5. शिल्पी का स्वरूप 6. औषधियाँ घोंटने एवं पौंखण करने वाली नारियों का स्वरूप।

अध्याय-3 : प्रतिष्ठा सम्बन्धी आवश्यक पक्षों का मूल्यपरक विश्लेषण 27-52

1. जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा कब की जानी चाहिए? 2. सुप्रतिष्ठा के लिए आवश्यक तत्त्व 3. अंजनशलाका-प्रतिष्ठा उत्सव के प्रारम्भिक कृत्य 4. प्रतिष्ठाचार्य की वेशभूषा 5. प्रतिष्ठा संस्कार किन-किनका किया जाए? 6. किस प्रतिष्ठा में किनका अन्तर्भाव? 7. वास्तु पूजा कब की जाए? 8. शान्ति पूजा कब की जानी चाहिए? 9. प्रतिष्ठा विधान में उपयोगी मुद्राएँ 10. वर्तमान प्रचलित प्रतिष्ठा महोत्सव का क्रम 11. प्रतिष्ठा सम्बन्धी बोलियों का स्पष्टीकरण।

अध्याय-4 : जिनालय आदि का मनोवैज्ञानिक एवं प्रासंगिक स्वरूप 53-69

1. प्रतिष्ठा एक मंगल अनुष्ठान कैसे? 2. मूर्ति आदि की प्रतिष्ठा आवश्यक क्यों? 3. जिनालय की आवश्यकता क्यों? 4. जिनालय का माहात्म्य 5. जिनालय एवं जिनबिम्ब निर्माण के लाभ 6. एक प्रतिमा के निर्माण से अनेक प्रतिमा बनवाने का लाभ कैसे? 7. सुप्रतिष्ठा के परिणाम।

अध्याय-5 : मंदिर निर्माण का मुहूर्त विचार 70-84

1. खनन मुहूर्त्त 2. शिलास्थापना मुहूर्त्त 3. वेदी निर्माण मुहूर्त्त 4. मंडप निर्माण मुहूर्त्त 5. किवाड़ स्थापना मुहूर्त्त 6. जिनप्रतिमा निर्माण मुहूर्त्त 7. शिला हेतु जाने का मुहूर्त्त 8. प्रतिष्ठा मुहूर्त्त।

अध्याय-6 : जिनमन्दिर निर्माण की शास्त्रोक्त विधि 85-170

1. भूमि शुद्धि द्वार • भूमि कैसी हो? • शुभ भूमि के लक्षण • शुभ लक्षणवाली भूमि के फल • अशुभ भूमि के लक्षण • अशुभ लक्षणवाली भूमियों के फल • शुभाशुभ लक्षण वाली भूमियों के प्रकार एवं उसके फल • भूमि परीक्षण की विधियाँ • भूमि परीक्षा की अन्य विधि • शल्य शोधन की विधियाँ।

2. दल विशुद्धि द्वार 3. भृतकानति सन्धान द्वार 4. स्वाशय वृद्धि द्वार 5. यतना द्वार 6. जिनालय निर्माणगत हिंसा निर्दोष कैसे? 7. जिनमंदिर निर्माण सम्बन्धी कुछ आवश्यक जानकारी 8. जिनालय : एक परिचय 9. जिनालय की अन्य रचनाएँ 10. मन्दिर निर्माण के उपविभागों का परिचय 11. प्रासादों के प्रकार एवं उनकी उत्पत्ति के कारण 12. मन्दिर निर्माण सम्बन्धी सावधानियाँ 13. जिनालय के परिसर में होने वाली अशुभताएँ एवं अपशकुन 14. जिनालय में संभावित महादोष 15. जिनालय निर्माण में सम्भावित वास्तु दोष 16. वास्तु पुरुष की स्थापना क्यों और कहाँ?

अध्याय-7 : जिनबिम्ब निर्माण की शास्त्र विहित विधि 171-185

1. शिल्पकार कैसा हो? 2. शिल्पकार के प्रति कर्त्तव्य 3. दूषित शिल्पी के साथ मूल्य का निर्धारण क्यों? 4. श्रावक और शिल्पी का पारस्परिक व्यवहार 5. शिल्प निर्माण के अष्ट सूत्र 6. दिशा निर्णय 7. जिनप्रतिमा निर्माण प्रारम्भ का शुभ मुहूर्त्त 8. शिला लाने हेतु जाने का शुभ मुहूर्त्त 9. शिला की परीक्षा विधि 10. जिनप्रतिमा निर्माण विधि।

अध्याय-8 : जिनप्रतिमा प्रकरण 186-204

1. मंदिर के गर्भगृह में किस आकार की प्रतिमा स्थापित की जाए? 2. गर्भगृह में प्रतिमा की स्थापना कहाँ हो? 3. प्रतिमा शब्द के विभिन्न अर्थ 4. प्रतिमा और मूर्ति में अन्तर 5. प्रतिमा के मुख्य प्रकार 6. प्रतिमाओं का प्राचीन

इतिहास 7. प्रतिमाएँ किन आसनों में हो? 8. जिन प्रतिमाएँ किन लक्षणों से युक्त हो? 9. जिन प्रतिमाएँ किस वर्ण में निर्मित हो? 10. गृह चैत्यालय और संघ चैत्यालय में प्रतिमा की ऊँचाई कितनी हो? 11. प्राचीन प्रतिमा के सम्बन्ध में शुभाशुभ फल का विचार • हीनांग प्रतिमा का फल • खण्डित प्रतिमा का फल • विभिन्न द्रव्यों की प्रतिमा निर्माण का शुभाशुभ फल • प्रतिमा निर्माण के लिए शुभाशुभ द्रव्य • पोली एवं कृत्रिम द्रव्यों की प्रतिमा का निषेध 12. जिनमन्दिर की गिरती छाया का शुभाशुभ फल 13. क्या करें यदि?

अध्याय-9 : किसे-कौनसे तीर्थंकर की प्रतिमा भरवानी चाहिए? 205-227

1. चौबीस तीर्थंकरों के जन्म नक्षत्र आदि का कोष्ठक 2. तीर्थंकर राशि मेलापक चक्र 3. दिगम्बर परम्परानुसार चौबीस तीर्थंकर एवं प्रतिमा स्थापनकर्त्ता की नवांश राशि का मिलान चक्र।

अध्याय-10 : पंच कल्याणकों का प्रासंगिक अन्वेषण 228-273

1. तीर्थंकर : एक परिचय • तीर्थंकर परम्परा • तीर्थंकरत्व और अवतारवाद • तीर्थंकर का पुनर्जन्म क्यों नहीं? • मात्र तीर्थंकर ही निर्वाण के अधिकारी नहीं? • कैसे बनते हैं तीर्थंकर? • तीर्थंकर प्रकृति बन्ध के नियम • तीर्थंकर के अतिशय • तीर्थंकर परमात्मा के गुण 2. पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के सारगर्भित प्रयोजन 3. पाँच कल्याणकों का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य • पंच कल्याणक कल्याणकारी कैसे? • पंच कल्याणक के आध्यात्मिक प्रयोजन

♦ **च्यवन कल्याणक** • च्यवन कल्याणक का अर्थ • च्यवन कल्याणक क्यों मनाएं? • च्यवन कल्याणक कौन मनाते हैं? • च्यवन कल्याणक की जानकारी कैसे होती है? • चौदह स्वप्नों की अलौकिकता एवं प्रतिकात्मकता • च्यवन कल्याणक की वर्तमान प्रासंगिकता • च्यवन कल्याणक के समय क्या भावना करें?

♦ **जन्म कल्याणक** • जन्म कल्याणक का अर्थ • जन्म कल्याणक क्यों मनाना चाहिए? • जन्म कल्याणक मनाते समय क्या भावना करें?

♦ **दीक्षा कल्याणक** • दीक्षा कल्याणक का अर्थ • दीक्षा को कल्याणक रूप में क्यों मनाएं? • तीर्थंकरों का दीक्षा कल्याणक स्थान • दीक्षा कल्याणक

कौन-कौन मनाते हैं? • दीक्षा कल्याणक की भव्यता एवं महत्ता • दीक्षा कल्याणक के समय क्या भावना करें?

• **केवलज्ञान कल्याणक** • केवलज्ञान कल्याणक का अर्थ • केवलज्ञान कल्याणक का वैशिष्ट्य • केवलज्ञान कल्याणक कौन-कौन मनाते हैं? • केवलज्ञान कल्याणक की महिमा • केवलज्ञान कल्याणक के समय क्या भावना करें?

• **निर्वाण कल्याणक** • निर्वाण, कल्याणक रूप कैसे? • निर्वाण कल्याणक कैसे मनाया जाता है? • निर्वाण कल्याणक कौन-कौन मनाते हैं? • निर्वाण कल्याणक के समय क्या भावना करें?

4. विविध दृष्टियों से पंच कल्याणक महोत्सव की उपादेयता।

5. पंच कल्याणक महोत्सव के दौरान विभिन्न पात्र एवं उनके भाव।

अध्याय-11 : प्रतिष्ठा उपयोगी विधियों का प्रचलित स्वरूप 274-446

1. खात मुहूर्त विधि 2. कूर्म प्रतिष्ठा विधि 3. शिलाओं की स्थापना विधि 4. कुंभस्थापना विधि 5. दीपक स्थापना विधि 6. जवारारोपण विधि 7. पाटला पूजन विधि 8. क्षेत्रपाल स्थापना विधि 9. मंडप निर्माण विधि 10. वेदिका निर्माण एवं पूजन विधि 11. अठारह अभिषेक विधि • ध्वजदंड-कलश अभिषेक विधि • गुरूमूर्त्ति अभिषेक विधि • स्थापनाचार्य आदि की अभिषेक विधि 12. जलयात्रा विधि 13. जलानयन विधि 14. जिनबिम्ब प्रवेश विधि 15. जिनबिम्ब प्रतिष्ठा विधि 16. वर्तमान प्रचलित जिनबिम्ब प्रतिष्ठा विधि 17. नन्द्यावर्त्त आलेखन पूजन विधि 18. यन्त्र निर्माण, स्थापना एवं पूजन विधि 19. कलशारोहण प्रतिष्ठा विधि 20. ध्वजारोहण प्रतिष्ठा विधि 21. चैत्य प्रतिष्ठा विधि 22. जिनबिम्ब परिकर प्रतिष्ठा विधि 23. चैत्यद्वार प्रतिष्ठा विधि 24. गृह चैत्य निर्माण विधि 25. जीर्णोद्धार विधि 26. वज्रलेप विधि 27. प्रतिमा विसर्जन विधि 28. स्थापनाचार्य प्रतिष्ठा विधि 29. सिद्धमूर्ति प्रतिष्ठा विधि 30. सरस्वती आदि प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा विधि 31. मंत्रपट्ट प्रतिष्ठा विधि 32. साधु मूर्ति स्तूप प्रतिष्ठा विधि 33. पितृमूर्ति प्रतिष्ठा विधि 34. चतुर्निकाय देव-मूर्ति प्रतिष्ठा विधि 35. ग्रहों की प्रतिष्ठा विधि 36. क्षेत्रपाल प्रतिष्ठा विधि 37. गणपति प्रतिष्ठा विधि 38. जलाशय प्रतिष्ठा विधि 39. लवणोत्तारण,

जलप्रक्षेपण एवं आरात्रिक विधि 40. विसर्जन विधि 41. जल आदि अभिमंत्रण विधि 42. प्रतिवर्ष ध्वजा चढ़ाने की विधि 43. श्री शान्तिकलश विधि 44. प्रतिष्ठा उपयोगी मन्त्र।

अध्याय-12 : अठारह अभिषेकों का आधुनिक एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन 447-472

1. अठारह अभिषेक की आवश्यकता क्यों? 2. अठारह अभिषेक कब किए जाएं? 3. अठारह अभिषेक का अधिकारी कौन? 4. अभिषेक कर्त्ता क्या भावना करें? 5. अठारह अभिषेक के विषय में जन मान्यताएँ 6. अभिषेक के प्रकार 7. प्रतिमा अभिषेक की परम्परा कब से? 9. अभिषेक क्रिया सावद्यकारी किन्तु निर्जरा प्रधान कैसे? 9. अभिषेक जल वंदनीय क्यों? 10. अभिषेक क्रिया के लाभ 11. अठारह अभिषेक में प्रयुक्त औषधियों का महत्त्व एवं रहस्य।

अध्याय-13 : प्रतिष्ठा सम्बन्धी मुख्य विधियों का बहुपक्षीय अध्ययन 473-525

1. **अधिवासना विधि का मार्मिक स्वरूप** • अधिवासना कब और कहाँ की जाए? • अधिवासना में प्रयुक्त मुद्राएँ • नूतन जिनबिम्बों के हाथ में मींढ़ल-मरडाशिंगी का बंधन क्यों? • जिनबिम्ब के समीप किन-किनकी स्थापना की जाए? • अधिवासना के समय क्या भावना करें?

2. **जवारारोपण विधि का प्राकृतिक स्वरूप** • जवारारोपण किस दिन और कहाँ करना चाहिए? • जवारारोपण किसके द्वारा किया जाना चाहिए? • जवारारोपण की मूल्यवत्ता।

3. **कलशारोहण विधि का पारमार्थिक स्वरूप** • कलशारोहण की आवश्यकता क्यों? • कलश कैसा हो? • कलशारोहण कब किया जाए? • कलशारोहण कहाँ-कहाँ किए जाएं? • कलशारोहण कौन करें? • कलशारोहण करते समय क्या भावना करें? • कलशारोहण में प्रयुक्त मुद्राएँ • कलशारोहण के सम्बन्ध में जन धारणाएँ • कलशारोहण की उपादेयता विविध दृष्टियों से।

4. **ध्वजारोहण विधि का प्रतीकात्मक स्वरूप** • ध्वजारोहण की आवश्यकता क्यों? • ध्वजदंड और ध्वजा कैसी हो? • ध्वजारोहण किस दिशा

में करें? • ध्वजा किन दिनों चढ़ाई जाए? • ध्वजा कौन चढ़ाएं? • ध्वजा बनाने की विधि • ध्वजा की ऊँचाई और उसका फल • मन्दिर पर ध्वजा चढ़ाने एवं फड़कने का फल • ध्वजदंड के विभिन्न नाम • ध्वजदंड कैसा हो? • ध्वजारोहण करते समय क्या भावना करें? • ध्वजारोहण सम्बन्धी लौकिक धारणाएँ • ध्वजारोहण की उपादेयता।

5. कुंभ स्थापना विधि का मांगलिक स्वरूप • कुंभ स्थापना की आवश्यकता क्यों? • कुंभ स्थापना किस दिन करें? • कुंभ स्थापना किस दिशा में की जाए? • कुंभ कैसा हो? • कुंभ स्थापना कौन करें? • कुंभ स्थापना करते समय क्या भावना करें? • कुंभ स्थापना सम्बन्धी जन धारणा।

6. दीपक स्थापना विधि का वैज्ञानिक स्वरूप • दीपक स्थापना की आवश्यकता क्यों? • दीपक स्थापना कब और कहाँ की जाए? • दीपक कैसा हो? • दीपक स्थापना कौन करें? • दीपक स्थापना के समय क्या भावना करें? • दीपक स्थापना के सम्बन्ध में लौकिक धारणाएँ।

7. पाटला पूजन विधि का परम्परिक स्वरूप • पाटला पूजन की आवश्यकता क्यों? • पाटला पूजन कब और कहाँ किया जाए? • पाटला पूजन के अधिकारी कौन? • पाटला कैसा हो? • पाटला पूजन में क्या भावना करें? • पाटला पूजन सम्बन्धी आम मान्यताएँ • पाटला पूजन की उपादेयता

8. खनन विधि का प्रचलित स्वरूप • खनन की आवश्यकता क्यों? • खनन विधि कब और किस दिशा तरफ की जाए? • खनन के अधिकारी कौन? • भूमि परीक्षण की विधि? • खनन करते समय क्या भावना करें? • खनन के विषय में जन धारणाएँ।

9. शिलान्यास विधि का पौराणिक स्वरूप • शिला स्थापना की आवश्यकता क्यों? • शिलाएँ कैसी हो? • शिलाएँ कितनी हों? • शिलाओं की स्थापना कहाँ हो? • शिलान्यास की सामान्य विधि • शिलान्यास किनके द्वारा किया जाए? • शिला स्थापना के समय क्या भावना करें? • शिलान्यास का क्रम • शिलान्यास के वास्तु स्थान • शिलान्यास कितना नीचे करें? • शिलाओं का ढाल किस तरफ हो? • शिला स्थापना सम्बन्धी जन मान्यताएँ • शिला स्थापना के लाभ • शिला स्थापना सम्बन्धी

विशिष्ट निर्देश।

10. अंजनशलाका विधि का आगमिक स्वरूप • अंजनशलाका का शाब्दिक अर्थ • अंजनशलाका की तात्त्विक परिभाषाएँ • अंजनशलाका की आवश्यकता क्यों? • अंजनशलाका का अधिकारी कौन? • अंजनशलाका कब और कहाँ की जानी चाहिए • अंजनशलाका के समय करने योग्य भावना • अंजनशलाका विधि के लाभ • अंजनविधि की मूल्यवत्ता विविध दृष्टियों से • प्राण प्रतिष्ठा : एक चिन्तन।

11. क्रयाणक अर्पण का ऐतिहासिक स्वरूप 12. मन्त्रन्यास का प्रासंगिक स्वरूप 13. प्रतिष्ठा विषयक शंका-समाधान।

अध्याय-14 : प्रतिष्ठा विधानों के अभिप्राय एवं रहस्य 526-555

1. देवी-देवताओं को फल आदि क्यों चढ़ाए जाते हैं? 2. प्रतिष्ठा के दिनों में सकलीकरण के पश्चात शुचिविद्या आरोपण करने का क्या हेतु है? 3. प्रतिष्ठाचार्य को स्वर्ण मुद्रिका एवं स्वर्ण कंकण पहनकर ही सकलीकरण क्यों करना चाहिए? 4. नूतन बिम्बों को तर्जनी और रौद्र मुद्रा क्यों दिखायी जाती है? 5. नूतन बिम्बों को मुद्गर आदि अन्य मुद्राएँ दिखाने का अभिप्राय क्या है? 6. नूतन बिम्बों के दाहिने हाथ में पंचरत्न की पोटली एवं सफेद सरसों की पोटली क्यों बाँधते हैं? 7. अठारह अभिषेक के दरम्यान गरूड़, मुक्ताशुक्ति एवं परमेष्ठी मुद्राएँ क्यों दिखाते हैं? 8. नूतन बिम्बों को दीपक क्यों दिखाना चाहिए? 9. नूतन बिम्बों के समक्ष स्वर्ण पात्र में ही अर्घ्य का अर्पण क्यों? 10. नूतन बिम्बों का सर्वाङ्ग लेपन क्यों? 11. चल और अचल प्रतिष्ठा का तात्पर्य क्या है? 12. नूतन बिम्बों को अखण्ड लाल वस्त्र से आच्छादित करने का प्रयोजन क्या है? 13. नूतन बिम्बों के आगे घृतपात्र क्यों रखते हैं? 14. नूतन जिनबिम्बों के दाहिने कर्ण में मंत्र क्यों सुनाते हैं? 15. नूतन बिम्बों पर मातृशाटिका (ननिहाल की साड़ी) का आरोपण क्यों करते हैं? 16. नूतन बिम्बों पर प्रौंखण क्रिया क्यों? 17. प्रतिष्ठा कार्यों में उत्तम वस्त्रों का परिधान क्यों? 18. अधिवासना के समय उत्कृष्ट पूजा क्यों? 19. प्रतिष्ठा विधि सम्पन्न होने पर मांगलिक गाथाओं का पाठ क्यों? 20. मुखोद्घाटन किन दृष्टियों से आवश्यक है? 21. न्यास एवं सकलीकरण क्यों किया जाना चाहिए?

22. छोटिका प्रदर्शन क्यों आवश्यक है? 23. दिगबंधन एवं कवच निर्माण क्यों किया जाता है? 24. प्रतिष्ठा के पश्चात लवणोत्तारण क्यों 25. प्रतिष्ठा विधानों में असंयमी देवों का आह्वान और पूजन क्यों? 26. भूतबलि का प्रक्षेपण क्यों? 27. श्मशान भूमि में भोजन दान की परम्परा कब से और क्यों? 28. रक्षा पोटली क्यों बांधनी चाहिए 29. घण्टा नाद क्यों करना चाहिए? 30. शंख ध्वनि से वातावरण कैसे प्रभावित होता है? 31. बलिप्रक्षेपण क्यों और किसे? 32. सफेद सरसों की पोटली का उपयोग क्यों? 33. मींढ़ल और मरडाशिंग हाथ में क्यों बांधें? 34. नूतन बिम्बों पर सप्तधान्य का प्रक्षेपण किस अभिप्राय से किया जाता है? 35. प्रतिष्ठा के पश्चात अट्ठाई महोत्सव क्यों? 36. मूलनायक भगवान की गादी के नीचे स्वर्ण या चाँदी का कूर्म किस प्रयोजन से रखा जाता है? 37. क्षेत्रपाल आदि देवों की स्थापना डाभ में ही क्यों की जाती है? 38. कुंभस्थापना आदि का विसर्जन क्यों आवश्यक है? 39. प्रतिष्ठा विधान में कुंभ आदि की स्थापना क्यों करनी चाहिए? 40. मांगलिक कार्यों में सुहागिन स्त्रियों को शुभ मानने का प्रयोजन? 41. धर्म आराधना हेतु अखण्ड वस्त्रों का विधान किसलिए? 42. मांगलिक अनुष्ठानों में लड्डु चढ़ाने की परम्परा क्यों? 43. महापूजन आदि में उपयोगी सामग्रियों का महत्त्व।

अध्याय-15 : प्रतिष्ठा सम्बन्धी विधि-विधानों का ऐतिहासिक एवं आधुनिक परिशीलन 556-590

1. वर्तमान में उपलब्ध श्वेताम्बर प्रतिष्ठा कल्पों का एक समीक्षात्मक अध्ययन 2. प्राचीन और अर्वाचीन प्रतिष्ठा ग्रन्थों एवं विधियों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन 3. आधुनिक प्रतिष्ठा सम्बन्धी विधि-विधानों के आधार ग्रन्थ एवं उनका समालोचनात्मक अध्ययन 4. पूर्वकालीन प्रतिष्ठाओं और उसके फल के विषय में लौकिक कल्पनाएँ 5. विधिकारकों एवं स्नात्रकारों से कुछ निवेदन 6. प्रतिष्ठा विधियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कब से और कैसे? 7. आज के कतिपय अनभिज्ञ प्रतिष्ठाचार्य 8. प्रतिमाओं में कला प्रवेश क्यों नहीं होता? 9. प्रतिष्ठाचार्य और स्नात्रकार 10. प्रतिष्ठाचार्य, स्नात्रकार और प्रतिमागत गुण दोष।

अध्याय-16 : सम्यक्त्वी देवी-देवताओं का शास्त्रीय स्वरूप 591-649

1. श्वेताम्बर एवं दिगम्बर मतानुसार 24 तीर्थंकरों के शासन देवी-देवताओं का सचित्र स्वरूप 2. तीर्थंकर पुरुषों के चिह्न 3. श्वेताम्बर एवं दिगम्बर के अनुसार सोलह विद्या देवियों का सचित्र परिचय 4. दस दिक्पाल देवों का ऐतिहासिक अनुशीलन • दिक्पाल की स्थापना एवं पूजा कब और क्यों? • दिक्पाल की स्थापना कहाँ और किसके द्वारा? • दिक्पाल पूजा की अवधारणा कब से और क्यों? • दिक्पाल देवों का सचित्र स्वरूप 5. नवग्रह देवों का ऐतिहासिक विश्लेषण • नवग्रह की स्थापना एवं पूजा क्यों और कब? • नवग्रह की स्थापना कहाँ और किसके द्वारा? 6. नवग्रहों का सचित्र स्वरूप • क्षेत्रपाल आदि देवों का सचित्र स्वरूप।

अध्याय-17 : उपसंहार 650-656

परिशिष्ट 657-674

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 675-681

●

अध्याय-1

प्रतिष्ठा का अर्थ विन्यास एवं प्रकार

प्रतिष्ठा यह श्रमण एवं ब्राह्मण परम्परा का एक अत्यंत प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण विधान है। यह एक सामूहिक अनुष्ठान है। संघ-समाज का हर एक व्यक्ति एवं हर तबका किसी न किसी रूप में इस विधान का अंश बनता है। सकल संघ को जोड़ने के लिए यह एक महत अभियान है।

प्रतिष्ठा एक ऐसा वैज्ञानिक विधिक्रम है कि जिसका प्रभाव व्यक्ति, समाज, संघ, गाँव, नगर, शहर और देश के ऊपर प्रत्यक्ष रूप से देखा जाता है।

प्रतिष्ठा पाषाण को पूज्य, कंकर को शंकर और जिन प्रतिमा को साक्षात जिन रूप में स्थापित करने की अद्भुत प्रक्रिया है, प्रतिष्ठाचार्य के सम्पूर्ण जीवन की साधना का निचोड़ है, श्रेष्ठ भावों की अभिवृद्धि का मंगल उपक्रम है तथा बहिरात्मा से अंतरात्मा में प्रवेश करने का श्रेष्ठ आलम्बन है।

यह संस्कार स्वानुभव की प्राप्ति एवं शुद्ध अवस्था की उपलब्धि के उद्देश्य से किया जाता है। इस अनुष्ठान का मुख्य प्रयोजन अनादिकाल से आवृत्त परमात्म स्वरूप को प्रकट करना है।

प्रतिष्ठा का शाब्दिक अर्थ

प्रति उपसर्ग + स्था धातु + आङ्. + टाप् प्रत्यय के संयोग से प्रतिष्ठा शब्द निष्पन्न है।

• यहाँ 'प्रति' उपसर्ग विशेष के अर्थ में है तथा 'स्था' धातु ठहरना, रहना, स्थिरता, स्थिति, स्थैर्य आदि के प्रसंग में है। इसका सामान्य अर्थ होता है कि विशिष्ट रूप से स्थिर करना अथवा किसी वस्तु का अच्छी तरह से रहना प्रतिष्ठा है।

• संस्कृत हिन्दी कोश के अनुसार किसी देव प्रतिमा की स्थापना करना प्रतिष्ठा है। प्रस्तुत सन्दर्भ में प्रतिष्ठा का यही अर्थ अभीष्ट है।[1]

• प्राकृत कोश में सन्दर्भित अर्थ के सूचक दो शब्द हैं– पइट्ठव और पइट्ठा।

पइट्ठा (प्रतिष्ठा) के निम्न अर्थ किये गये हैं- आदर, सम्मान, स्थापना, अवस्थान, स्थिति और मूर्ति में ईश्वर के गुणों का आरोपण। पइट्ठव (प्रति+स्थापय्) का भावार्थ मूर्ति आदि की विधिपूर्वक स्थापना करना है।[2]

वस्तुत: 'प्रतिष्ठा' शब्द में पूर्वोक्त सभी अर्थ घटित होते हैं। स्थानांग टीका और पंचाशक टीका में प्रतिष्ठा शब्द अवस्थान यानी किसी वस्तु या देव प्रतिमा को अच्छी तरह से अवस्थित करने के अर्थ में है।[3]

• एक अर्थ के अनुसार 'प्रतिष्ठापनं प्रतिष्ठा'- स्थापित करने योग्य पूजनीय देवों की स्थापना करना प्रतिष्ठा है।

• प्रतिष्ठा शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार 'प्रतिष्ठान्त्यस्यामिति प्रतिष्ठा' जिसमें ईश्वरीय गुणों का स्थैर्य किया जा रहा है वह प्रतिष्ठा है।[4]

सार रूप में कह सकते हैं कि पूज्य प्रतिमा में तदयोग्य शक्तियों का आरोपण करते हुए उनकी विधिपूर्वक स्थापना करना प्रतिष्ठा कहलाता है।

प्रतिष्ठा की सैद्धान्तिक परिभाषाएँ

• सूत्रकृतांग टीका में प्रतिष्ठा का आत्मलक्षी अर्थ करते हुए कहा गया है कि **''संसार भ्रमण विरतौ''**–

संसार परिभ्रमण से विरत (निवृत्त) करने वाली क्रिया का नाम प्रतिष्ठा है।[5]

• धवलाटीका में धारणा ज्ञान के नामान्तर के रूप में 'प्रतिष्ठा' शब्द का उल्लेख है। तदनुसार **''प्रति तिष्ठन्ति विनाशेन विना अस्याअर्थो इति प्रतिष्ठा''**–

जिसमें पदार्थ विनाश के बिना प्रतिष्ठित रहते हैं वह प्रतिष्ठा है।[6] यह परिभाषा प्रतिमा स्थापना के सन्दर्भ में भी प्रयुक्त की जा सकती है चूंकि प्रतिमा में आरोपित गुण सदैव विद्यमान रहते हैं।

• आचार्य पादलिप्तसूरि ने निर्वाणकलिका में प्रतिष्ठा का निम्न लक्षण बतलाया है-

''तत्र स्थाप्यस्य जिन बिम्बादेर् भद्रपीठादौ विधिना न्यसनं प्रतिष्ठा।''

स्थाप्य जिनबिम्ब आदि का योग्य आसन पर विधिवत स्थापन करना प्रतिष्ठा कहलाता है।[7]

• आचार्य नेमिचन्द्रसूरि ने प्रतिष्ठासारोद्धार में उपर्युक्त अर्थ का अनुकरण करते हुए प्रतिष्ठा की किंचित विस्तृत परिभाषा दी है-

श्रुतेन सम्यग्ज्ञातस्य, व्यवहार प्रसिद्धये।
स्थाप्य कृतनाम्नोऽन्तः स्फुरतो न्यासगोचर।।
साकारे वा निराकारे, विधिना यो विधियते।
न्यासस्तदिदमित्युक्त्वा, प्रतिष्ठा स्थापना च सा।।

श्रुत के द्वारा समीचीन रूप से जाने गये स्थाप्य के विषय भूत ऋषभ आदि तीर्थंकर की साकार या निराकार पाषाण आदि में जो विधिपूर्वक स्थापना की जाती है उसका नाम प्रतिष्ठा है। इसे दूसरे शब्दों में स्थापना और न्यास भी कहा जाता है।[8]

• आचार्य हरिभद्रसूरि कृत षोडशकप्रकरण में प्रतिष्ठा का भावात्मक स्वरूप विश्लेषित करते हुए कहा गया है कि

भवति च खलु प्रतिष्ठा, निज भावस्यैव देवतोद्देशात्।
स्वात्मन्येव परं यत्स्थापनमिह वचननीत्योच्चैः।।

अर्थात देवता (परमात्मा) के उद्देश्य से आगमोक्त विधिपूर्वक आत्मा में आत्मभावों की अत्यंत श्रेष्ठ स्थापना करना प्रतिष्ठा है। दूसरे शब्दों में प्रतिष्ठा के प्रयोजक कर्ता के विशिष्ट परिणाम की प्रधान रूप से स्थापना करना प्रतिष्ठा है।[9]

• उपाध्याय यशोविजयजी ने आचार्य हरिभद्रसूरि के मत का अनुकरण करते हुए कहा है कि इष्टदेव के उद्देश्य से स्वयं की आत्मा में आत्मबुद्धि का स्थापन करने पर वीतरागता की प्राप्ति होती है। और यही भाव प्रतिष्ठा है। बाह्य प्रतिष्ठा उपचारपूर्वक होती है।[10] स्पष्टीकरण हेतु मूल पाठ निम्न है–

देवोद्देशेन मुख्येयमाऽऽत्मन्येवात्मनो धियः।
स्थाप्ये समरसापत्ते, रूपचाराद् बहिः पुनः।।

इस परिभाषा का गूढ़ आशय यह है कि प्रकृष्ट रीति से स्थापना करना प्रतिष्ठा है।

पूर्वोक्त अर्थ के अनुसार वीतरागता, चिन्मयत्वता आदि गुणों का अवगाहन करने वाली बुद्धि की स्वयं में प्रकृष्ट रूप से स्थापना करना प्रतिष्ठा है। द्रव्यत: वीतरागता आदि गुणों का आरोपण मूर्ति में किया जाता है तथा भावत: जिनागम के अनुसार स्वयं में ही वीतरागत्व आदि भावों की स्थापना की जाती है।

प्रत्येक संसारी आत्मा कर्म से मलीन है। आत्मागत कर्ममल को विनष्ट करने का सामर्थ्य जिनवचन स्वरूप अग्नि की क्रिया में अर्थात जिनाज्ञा पालन में है। इस प्रकार अग्नि स्वरूप जिनवचन का अनुसरण करने से कर्मरूपी कचरा जल जाता है और आत्मा में वीतरागत्व रूपी सुवर्णत्व की प्राप्ति होती है। यही परम प्रतिष्ठा है।

अनुयोगद्वार की परिभाषा के अनुसार आगमत: भाव वीतराग अवस्था भी नोआगमत: भाव वीतराग अवस्था का कारण है ऐसा यहाँ कह सकते हैं। नोआगम से भाव वीतराग अवस्था की प्राप्ति परम प्रतिष्ठा है तथा उसके कारणभूत वीतराग उद्देश्यक स्वभाव का आत्मा में स्थापन करना आगमत: भाव वीतराग अवस्था कहलाती है।

संक्षेप में कहा जाए तो आत्मा में आत्म भाव की स्थापना करना ही मुख्य प्रतिष्ठा है तथा भाव में सहकारी आगम रूपी अग्नि की क्रिया से (आगमोक्त विधि पालन से) कर्म रूपी ईंधन के जलने पर सिद्ध भाव स्वरूप सुवर्णता प्रकट होती है इस कारण कर्तव्यपूर्वक बाह्य प्रतिष्ठा भी सफल होती है।

उपर्युक्त प्रसंग को स्पष्ट करते हुए आचार्य हरिभद्रसूरि ने यह भी कहा है कि भाव रसेन्द्र के वेध से जैसे तांबा स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता है वैसे ही स्वयं में वीतरागता की स्थापना करने से जीव कालान्तर में सिद्ध बनता है। यहाँ उपमा रूप भाव रसेन्द्र की अपेक्षा वीतरागता आदि की स्थापना करने का महत्त्व अधिक है कारण कि प्रधान प्रतिष्ठा द्वारा जीव में आविर्भूत वीतरागता प्रकृष्ट होती है वह किसी भी स्थिति में नष्ट नहीं होती है। स्पष्ट है कि वीतरागी जीव कभी भी रागी नहीं बनता है किन्तु रसेन्द्र द्वारा स्वर्ण में रूपान्तरित होने वाला तांबा कालान्तर में अन्य धातु रूप भी परिणमित हो सकता है क्योंकि किसी भी पुद्‌गल स्कंध की स्थिति असंख्य कालचक्र से अधिक नहीं है।[11]

शंका– यहाँ प्रश्न हो सकता है कि आत्मा में आत्मबुद्धि की स्थापना करने पर प्रतिष्ठा करने वाले व्यक्ति में ही प्रतिष्ठा की कार्यान्विती होती है, ऐसी स्थिति में प्रतिमा को उद्दिष्ट करके 'यह प्रतिमा प्रतिष्ठित है' यह व्यवहार कैसे संभव हो सकता है? कारण कि उपर्युक्त परिभाषा में आत्मा प्रतिष्ठित हुई है प्रतिमा की प्रतिस्थापना नहीं हुई है। दूसरे, अप्रतिष्ठित प्रतिमा की पूजा करने से प्रयोजक को पूजा का फल किस प्रकार प्राप्त हो सकता है? यदि अप्रतिष्ठित

प्रतिमा की पूजा करने से भी पूजा का फल प्राप्त होता हो तो प्रत्येक पत्थर की पूजा से उसका फल प्राप्त करने में आपत्ति आयेगी अर्थात किसी भी पत्थर को पूजने से इच्छित लाभ नहीं मिलता है।

समाधान— इसका समाधान करते हुए उपाध्याय यशोविजयजी कहते हैं कि बाह्य प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा उपचार से होती है, क्योंकि षोडशक प्रकरण की टीका में यशोभद्रसूरि ने बताया है कि बाह्य जिन प्रतिमा में की गई प्रतिष्ठा स्वयं के बहिर्भावों के उपचार द्वारा जाननी चाहिए। मुख्य तो वीतराग स्वरूप के अवलंबन से जागृत होने वाला आत्मा का भाव ही प्रतिमा में आरोपित किया जाता है। इस प्रकार जिस देव का स्वरूप प्रतिमा में आरोपित करते हैं उसी को लक्षित करके यह कहा जाता है कि वे ही यह वीतराग भगवान है।[12]

प्रस्तुत समाधान का आशय यह है कि प्रतिष्ठाकर्ता स्वयं में भाव अरिहंत के स्वरूप का अवधारण करता है और तद्रूप भावों का ही आरोपण प्रतिमा में किया जाता है इससे प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है। इस रीति से प्रतिष्ठित हुई प्रतिमा को देखने से भक्त को यह बुद्धि उत्पन्न होती है कि 'यह वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा है।' इस प्रकार स्थापना अरिहंत में भाव अरिहंत का अभेद उपचार होता है।

शंका— दूसरा प्रश्न यह उठता है कि प्रतिमा में की गई प्राण प्रतिष्ठा वीतराग के अभेद उपचार द्वारा प्रतिमा को पूज्य बनाती है, ऐसा माना जाये तो उस अभेद उपचार (अभेद अध्यवसाय) का नाश होने पर उस प्रतिमा में अपूज्य भाव (अप्रतिष्ठित भाव) की आपत्ति आयेगी, क्योंकि पूज्यता प्रयोजक की अभेद बुद्धि का वहाँ अभाव है?

समाधान— उपर्युक्त कथन उचित नहीं है क्योंकि प्रतिष्ठित प्रतिमा में अभेद उपचार बुद्धि का नाश होने पर भी प्रतिष्ठाकर्ता के निजभाव के उपचार द्वारा प्रतिमा में किया गया उपस्थित विशिष्ट स्वभाव नष्ट नहीं होता है इसलिए अभेद उपचार से प्रतिष्ठित प्रतिमा के अपूज्य होने का कोई अवकाश नहीं रहता।

इसका स्पष्टार्थ है कि स्वभाव दो प्रकार के होते हैं अनुपचरित और उपचरित। उसमें उपचरित स्वभाव भी दो प्रकार का है-स्वाभाविक उपचरित स्वभाव और औपाधिक उपचरित स्वभाव। आत्म स्वभाव का अनुसरण करते हुए उपचार से प्रकट हुआ स्वभाव स्वाभाविक उपचरित स्वभाव कहलाता है तथा प्रतिमा में केवलज्ञानादि गुणों का उपचार करने पर उसमें जो स्वभाव उत्पन्न

होता है वह औपाधिक उपचरित स्वभाव कहलाता है। उपाधि–निमित्त, प्रतिमा में अंकित शिल्प शास्त्रोक्त मुद्रा आदि निमित्त के आलम्बन से प्रतिष्ठाकारक वीतरागता आदि गुणों का उपचार करता है। इस उपचार के द्वारा प्रतिमा में औपाधिक उपचरित स्वभाव प्रकट होता है और वह प्रतिष्ठा के पश्चात भी प्रतिमा में अवस्थित रहता है। इसलिए प्रतिष्ठाकारक के अध्यवसाय का अभाव होने पर भी प्रतिमा के अपूज्य होने का दोष नहीं आता है।

शंका– प्रस्तुत सन्दर्भ में स्वाभाविक रूप से यह शंका भी की जा सकती है कि केवल भावआरोपण से जीव शिव बन जाता है तब बाह्य प्रतिमा में प्रतिष्ठा करवाने की आवश्यकता क्या?

समाधान– इसके जवाब में कहा गया है कि जैसे रथ दो पहिये से चलता है वैसे ही जीव भी निश्चय और व्यवहार द्वारा मोक्षमार्ग में आगे बढ़ता है। भाव प्रतिष्ठा निश्चय है और प्रतिमा में प्रतिष्ठा करना व्यवहार है।

प्रतिष्ठा आगम विहित क्रिया स्वरूप है। आगम अग्नि रूप है। अग्नि की प्रज्वलन रूपी क्रिया से धातु का मल दूर हो जाता है, वैसे ही आगम प्रणीत विशिष्ट प्रकार की क्रिया से जीव के कर्म समाप्त हो जाते हैं। केवल रसेन्द्र के द्वारा तांबा सोना नहीं बनता है बल्कि अग्नि क्रिया द्वारा धातु मल के जलने के पश्चात ही तांबा स्वर्ण बनता है। इस प्रकार रसेन्द्र की प्राप्ति के बाद भी अग्नि क्रिया की अपेक्षा रहती ही है। वैसे ही जीव को सिद्ध बनने के लिए भाव प्रतिष्ठा के उपरान्त आगमोक्त क्रिया प्रतिमागत प्रतिष्ठा द्वारा कर्म रूपी कचरे को जला डालने की अपेक्षा रहती ही है। इस वर्णन से सिद्ध होता है कि बाह्य प्रतिष्ठा भी सार्थक और अत्यावश्यक है।

आचार्य वर्धमानसूरिकृत आचार दिनकर में प्रतिष्ठा पूर्ववर्णित परिभाषाओं से कुछ भिन्न लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि

''प्रतिष्ठा नाम देहिनां वस्तुनश्च प्राधान्य -मान्यता हेतुकं कर्म।''

अर्थात किसी व्यक्ति और वस्तु को प्रधानता या पूज्यता प्रदान करने के लिए जो क्रिया की जाती है उसे प्रतिष्ठा कहते हैं।[13]

गणि कल्याण विजयजी रचित कल्याण कलिका में प्रतिष्ठा का निम्न स्वरूप बताया गया है–

''सजीवे निर्जिवे वा विशिष्ट-वस्तुनि-अनुष्ठान विशेषेण कलोत्पादनं

प्रतिष्ठा।''

सजीव अथवा निर्जीव पदार्थ विशेष में योग्य अनुष्ठान के द्वारा प्रभाव उत्पन्न करना, उसका नाम प्रतिष्ठा है।[14]

समाहारत: कहा जा सकता है कि जैनाचार्यों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से प्रतिष्ठा को परिभाषित किया है। जिनमें कुछ बाह्य स्वरूप को प्रमुखता देती है तो कुछ में आभ्यन्तर स्वरूप को।

प्रतिष्ठा के अन्य अर्थ

षट्खण्डागम में प्रतिष्ठा के निम्न अर्थ बतलाये गये हैं-

धरणी, धारणा, स्थापना, कोष्ठा और प्रतिष्ठा।[15]

धरणी, पृथ्वी का अपर नाम हैं। जैसे पृथ्वी स्थिर रहती है वैसे ही प्रतिष्ठा भी मूर्ति को स्थिर रखने के हेतु से की जाती है।

धारणा, मतिज्ञान का अन्तिम चौथा भेद है। धारणात्मक ज्ञान दीर्घ काल तक स्थिर रहता है, वैसे ही प्रतिष्ठा भी दीर्घकालिक स्थैर्यता की द्योतक है।

प्रतिष्ठा संस्कार के द्वारा मूर्ति की स्थापना की जाती है इसलिए इसका दूसरा नाम स्थापना है।

प्रतिष्ठा संस्कार के माध्यम से देव प्रतिमा प्रतिष्ठित हो जाती है अतएव इस अनुष्ठान को प्रतिष्ठा नाम दिया गया है।

जैन वांङ्मय में प्रतिष्ठा के प्रकार

आचार्य हरिभद्रसूरि, उपाध्याय यशोविजयजी आदि मुनि पुंगवों ने प्रतिमा की संख्या के आधार पर प्रतिष्ठा के तीन प्रकार बतलाए हैं 1. व्यक्ति प्रतिष्ठा 2. क्षेत्र प्रतिष्ठा और 3. महाप्रतिष्ठा।[16]

1. **व्यक्ति प्रतिष्ठा-** जिस स्थान विशेष में जो वर्तमान तीर्थंकर हो, जैसे जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में भगवान महावीर का शासन चल रहा हो तो उन्हें वर्तमान तीर्थंकर जानना चाहिए। इस प्रकार अमुक-अमुक स्थानवर्ती वर्तमान तीर्थंकर भगवान की प्रतिष्ठा करना व्यक्ति प्रतिष्ठा है तथा उपलक्षण से शांतिनाथ भगवान आदि एक-एक भगवान की प्रतिष्ठा करना भी व्यक्ति प्रतिष्ठा कहलाती है।

2. **क्षेत्र प्रतिष्ठा-** अपने-अपने क्षेत्र में होने वाले ऋषभदेव आदि चौबीस

तीर्थंकरों की प्रतिष्ठा करना, क्षेत्र प्रतिष्ठा है।

यह क्षेत्र प्रतिष्ठा पाँच भरत क्षेत्र और पाँच ऐरवत क्षेत्र की अपेक्षा जाननी चाहिए क्योंकि वहाँ प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल में 24-24 तीर्थंकर होते हैं।

3. महा प्रतिष्ठा- भरत, ऐरावत और महाविदेह इन सर्व क्षेत्रों की अपेक्षा एक सौ सत्तर तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ विराजमान करना महा प्रतिष्ठा है।

उपर्युक्त त्रिविध प्रतिष्ठा के नाम गुण निष्पन्न, सान्वर्थ, यथार्थ एवं अर्थानुसारी हैं। प्रथम भेद वाली प्रतिष्ठा का विषय एक व्यक्ति है। एक तीर्थंकर व्यक्ति विषयक होने से उसका नाम व्यक्ति प्रतिष्ठा है। दूसरी प्रतिष्ठा का विषय तीर्थंकर योग्य क्षेत्र है। चौबीस तीर्थंकर योग्य क्षेत्र में उत्पन्न होने से उसका नाम क्षेत्र प्रतिष्ठा है। इन दोनों प्रतिष्ठा के विषयी भूत तीर्थंकरों की अपेक्षा तृतीय प्रतिष्ठा का विषय अधिक है इसलिए उसका नाम महाप्रतिष्ठा है।

प्रतिष्ठा के इन त्रिविध भेदों की चर्चा देवभद्रसूरिकृत कथारत्नकोश[17] शांतिसूरिकृत चैत्यवन्दनमहाभाष्य[18] संबोधप्रकरण[19] धर्मसंग्रह[20] श्राद्धविधिटीका[21] आदि ग्रन्थों में भी परिलक्षित होती है।

वर्तमान में प्रतिष्ठा के पूर्वोक्त तीनों प्रकार प्रचलित हैं।

शंका– मुक्ति प्राप्त मुख्य देवता विशेष का सान्निध्य प्रतिष्ठा है अथवा मुक्ति प्राप्त सिद्ध भगवान का अनुसरण करने वाले संसारी देवता विशेष का सन्निधान प्रतिष्ठा है?

समाधान– इन दो विकल्पों में से प्रथम विकल्प स्वीकार करने योग्य नहीं है क्योंकि मुक्त जीवों का मंत्रादि के विशिष्ट संस्कारों से भी पुनः आगमन होना संभव नहीं है। दूसरा विकल्प भी मानने योग्य नहीं है। इसका कारण यह है कि संसार में रहे हुए देवों का मन्त्रादि के विशिष्ट संस्कारों द्वारा नियम से (मूर्ति में) सन्निधान होता ही हो, ऐसा देखा नहीं जाता है। कदाचित संसारी देवता का सन्निधान हो भी जाये तो वह प्रतिष्ठा से संपाद्य नहीं कहलाता यानी संसारी देव आत्मोपलब्धि के निमित्त नहीं बन सकते। अतः यहाँ पूर्व चर्चा के आधार पर प्रतिष्ठाकर्ता का विशिष्ट भाव और परिणाम विशेष ही प्रतिष्ठा है, ऐसा सिद्ध होता है।

प्रयोजनों की भिन्नता के आधार पर प्रतिष्ठा पाँच प्रकार की होती है। प्रवचनसारोद्धार में उन चैत्यों का निम्न स्वरूप बताया गया है-

1. **भक्ति चैत्य-** स्वगृह में त्रिकाल पूजन आदि के लिए प्रतिमा की स्थापना करना, भक्ति चैत्य है।
2. **मंगल चैत्य-** गृह द्वार के ऊपर काष्ठ के मध्य भाग में अथवा तोरणद्वार के ऊपर जिन बिम्ब की स्थापना करना, मंगल चैत्य है।
3. **निश्राकृत चैत्य-** किसी गच्छ विशेष से सम्बन्धित जिनालय में मूर्ति को प्रतिष्ठित करना, निश्राकृत चैत्य है।
4. **अनिश्राकृत चैत्य-** सभी गच्छों से सम्बन्धित जिनालय में मूर्ति की स्थापना करना अनिश्राकृत चैत्य है।
5. **शाश्वत चैत्य–** नन्दीश्वर आदि शाश्वत जिनालयों में प्रतिष्ठित मूर्ति शाश्वत चैत्य के रूप में मानी जाती है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों एवं हेतुओं की दृष्टि से जिनबिम्ब की स्थापना पाँच प्रकार से की जाती है।[22]

यदि जिन बिम्ब के अतिरिक्त क्षेत्रपाल, शासनदेव, परिकर, मुख्यद्वार, स्थापनाचार्य, गुरु भगवन्त आदि अन्य प्रतिमाओं एवं चैत्य के भाग-विभाग आदि की अपेक्षा से कहा जाए तो प्रतिष्ठा अनेक प्रकार की होती है।

सन्दर्भ-सूची

1. *संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 656*
2. *प्राकृत हिन्दी कोश, संपा. डॉ. के. आर. चन्द्र, पृ. 490*
3. *अभिधानराजेन्द्रकोश, भा. 5, पृ.1*
4. *वही, भा. 5, पृ. 1*
5. *सूत्रकृतांगसूत्र, 1/11 की टीका*
6. *धवला टीका, 13/243*
7. *निर्वाणकलिका, पृ. 23*
8. *प्रतिष्ठासारोद्धार, 1/84-85*
9. *षोडशक प्रकरण, 8/4*
10. *द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका, 5/18*
11. *षोडशक प्रकरण, 8/8-9*

12. द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका, भा. 2, 5/18 की व्याख्या पृ. 323
13. आचार दिनकर, पृ. 141
14. कल्याण कलिका, प्रस्तावना, पृ. 3
15. धरणी धारणाड्डवणा कोट्ठा पदिट्ठा। षट्खण्डागम, 13/5-5/सू.40/243
16. निष्पन्नस्यैव खलु....।

    दश दिवसाभ्यन्तरतः, सा च त्रिविधा समासेन।
    व्यक्त्याख्या खल्वेका, क्षेत्राख्या चापरा महाख्या च।
    यस्तीर्थकृद्यदा किल, तस्य तदाद्येति समयविदः ।।
    ऋषभाद्यानां तु तथा, सर्वेषामेव मध्यमा ज्ञेया।
    सप्तत्यधिक शतस्य तु, चरमेह महाप्रतिष्ठेति ।।

    (क) षोडशकप्रकरण, 8/1-3

    इत्थं निष्पन्नबिम्बस्य, प्रतिष्ठाप्तै स्त्रिधोदिता।
    दिनेभ्योऽर्वाग्दशभ्यस्तु, व्यक्ति-क्षेत्र-महाह्वयाः ।।

    (ख) द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका, 5/17

17. कथारत्नकोश, भा.1, पृ. 145
18. चैत्यवन्दन महाभाष्य, 26-30
19. सम्बोधप्रकरण, 1/180-183
20. धर्मसंग्रह, गा. 61
21. श्राद्धविधि टीका, प्रकाश 6, पृ. 41
22. प्रवचनसारोद्धार, 659

●

अध्याय-2

प्रतिष्ठा के मुख्य अधिकारियों का शास्त्रीय स्वरूप

भाव एवं क्रिया जैन धर्म के दो मुख्य पहलू हैं जिनका महत्व नदी एवं नाव की भाँति रहा हुआ है। एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है, परंतु इन दोनों का होना तभी सार्थक होता है जब नाविक श्रेष्ठ हो वरना कभी भी किनारा नहीं मिल सकता। इसी भाँति क्रिया अनुष्ठानों में भी अनुष्ठान कर्ता अधिकारियों का तद्योग्य होना अत्यावश्यक है। अन्यथा वे क्रिया अनुष्ठान कभी भी उत्तम फलप्राप्ति में हेतुभूत नहीं बनते।

जैन विधिग्रन्थों में इस विषयक पर्याप्त विवेचन किया गया है। प्रतिष्ठा एक विराट अनुष्ठान है जिसका प्रभाव पारिवारिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, स्तर पर स्पष्ट रूप से देखा जाता है अतः जैनाचार्यों ने प्रतिष्ठा कर्ता आचार्य, स्नात्रकार, श्रावक, शिल्पी आदि समस्त पक्षों का निरूपण किया है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए इस अध्याय में प्रतिष्ठा के मुख्य अधिकारियों का शास्त्रीय स्वरूप बताया जा रहा है।

प्रतिष्ठा करवाने का अधिकारी कौन?

जैन धर्म की श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों परम्पराओं में प्रतिष्ठा का अधिकारी आचार्य को माना गया है। कुछ ग्रन्थों में प्रतिष्ठाचार्य के लक्षण भी निरूपित किये गये हैं जिससे निर्णीत होता है कि अमुक लक्षण युक्त आचार्य ही प्रतिष्ठा के लिए अधिकृत है।

निर्वाणकलिका के अनुसार–

सूरिश्चार्य-देश-समुत्पन्नः, क्षीण प्रायः कर्ममलो, ब्रह्मचर्यादि-गुण-गणालंकृतः, पञ्चविधाचार- युतो, राजादीनाम-द्रोहकारी, श्रुताध्ययन-सम्पन्नस्तत्वज्ञो, भूमि-गृह-वास्तु-लक्षणानां ज्ञाता, दीक्षा-कर्मणि प्रवीणो, निपुणः सूत्रपातादि विज्ञाने, सृष्टा सर्वतोभद्रादि मण्डलानां सर्जकः अतुलः

प्रभावी, आलस्य वर्जितः, प्रियंवदो, दीनानाथ-वत्सलः सरल-स्वभावी वा सर्व गुणान्वितश्चेति। जो आर्य देश में उत्पन्न हुआ हो, लघुकर्मी हो, नैष्ठिक-ब्रह्मचर्य आदि गुणों से अलंकृत हो, पंचाचार से युक्त हो, राजादि से किसी प्रकार का मन-मुटाव नहीं हो, जिनागमों का तलस्पर्शी अभ्यास किया हुआ हो, तत्त्वज्ञ हो, भूमि-गृह-वस्तु लक्षणों का ज्ञाता हो, दीक्षा विधि में पारंगत हो, सर्वतोभद्रादि मण्डलों का सर्जक हो, अतुल प्रभावी हो, अप्रमत्त एवं सक्रिय हो, प्रियभाषी हो, दीन-दुःखियों के नाथ हो, वात्सल्य भाव से सम्पृक्त हो, सरल स्वभावी अथवा सर्वगुण सम्पन्न हो, वही आचार्य प्रतिष्ठा के अधिकारी होते हैं।[1]

इन लक्षणों से सम्पन्न आचार्य के मुखारविन्द से किये जाते शुद्ध मन्त्रोच्चार और वरदहस्त से दिया जाता अभिमन्त्रित वासचूर्ण आदि जिनशासन की आराधना, प्रभावना और अविचल धर्मश्रद्धा में प्रबल निमित्त बनते हैं। इसी के साथ प्रतिष्ठा अनुष्ठान सुप्रतिष्ठा के रूप में फलीभूत होता है।

आचार्य जयसेन के अनुसार–

स्याद्वादधुर्योऽक्षरदोषवेत्ता, निरालसो रोगविहिनदेहः।
प्रायः प्रकर्त्ता दमदानशीलो, जितेन्द्रियो देवगुरूप्रमाणः।।
शास्त्रार्थसंपत्तिविदीर्णवादो, धर्मोपदेशप्रणयः क्षमावान्।
राजादिमान्यो नययोगभाजी, तपोव्रतानुष्ठितपूतदेहः।।
पूर्वं निमित्ताद्यनुमापकोऽर्थ, संदेहहारी यजनैकचित्तः।
सद्ब्राह्मणो ब्रह्मविदां पटिष्ठो, जिनैकधर्मा गुरूदत्तमंत्रः।।
भुक्त्वा हविष्यान्नमरात्रिभोजी, निद्रां विजेतुं विहितोद्यमश्च।
गतस्पृहो भक्तिपरात्मदुःख, प्रहाणये सिद्धि मनुर्विधिज्ञः।
कुलक्रमा पात सुविद्यया यः, प्राप्तोपसर्गं परिहर्त्तुमीशः
सोऽयं प्रतिष्ठा विधिषु प्रयोक्ता, श्लाघ्योऽन्यथा दोषवती प्रतिष्ठा।।

प्रतिष्ठाचार्य स्याद्वाद विद्या में प्रवीण हो, मंत्रोच्चारण के दोषों का ज्ञाता हो, प्रमाद एवं रोग रहित हो, क्रियाओं में कुशल हो, कषायजयी हो, दान-शील-तप-भावनादि चतुर्विध धर्म का प्ररूपक हो, जितेन्द्रिय हो, अरिहन्त प्रभु एवं गुरु द्वारा प्रज्ञप्त मार्ग का अनुसरण करने वाला हो, शास्त्रज्ञ हो, उपदेश कुशल हो, क्षमावान हो, राजादि पुरुषों द्वारा सम्मानित और प्रशंसित हो, नय सिद्धान्त का प्रतिपालक हो, तप-व्रत आदि अनुष्ठान से निर्मल शरीर वाला हो,

निमित्तज्ञानी हो, एक बार भोजन करने वाला हो, रात्रि भोजन का त्यागी हो, किसी भी प्रकार के संदेह का निवारक हो, एकाग्र चित्त वाला हो, ब्रह्मविद्या का पाठी हो, गुरु सिद्ध मन्त्र से अधिवासित हो, निद्राजित हो, मन्त्र शास्त्र का ज्ञाता हो, कुल क्रम से प्राप्त विद्या को धारण करने वाला हो और उपसर्ग निवारक हो।[2]

उक्त गुणों से सुशोभित आचार्य प्रतिष्ठा कर्म के लिए सुयोग्य कहे गये हैं इससे विपरीत प्रतिष्ठा दोषयुक्त मानी गई है।

आचार्य जयसेनकृत प्रतिष्ठा पाठ में प्रतिष्ठाचार्य के दोषों का वर्णन भी किया गया है। तदनुसार यदि आचार्य शास्त्रज्ञान से रहित, विकथा एवं प्रलापकारी, अत्यन्त लोभी, अशांत स्वभावी, परम्परा ज्ञान से हीन और अर्थ का ज्ञाता नहीं हो तो वह प्रतिष्ठा के लिए अयोग्य है।[3]

प्रतिष्ठासारोद्धार के उल्लेखानुसार प्रतिष्ठाचार्य में निम्न योग्यताएँ आवश्यक है–

देश-जाति-कुलाचारैः, श्रेष्ठो दक्षः सुलक्षणः।
त्यागी वाग्मी शुचिः शुद्ध, सम्यक्त्वः सद्व्रता युवा।।
श्रावकाध्ययनज्योति, र्वास्तुशास्त्र पुराणवित्।
निश्चय-व्यवहारज्ञः, प्रतिष्ठावित् प्रभुः।।
विनीतः सुभगो मन्द, कषायो विजितेन्द्रियः।
जिनेज्यादिक्रियानिष्ठो, भूरिसत्त्वार्थबान्धवः।।
दुष्टसृष्टक्रियो वार्तः, सम्पूर्णाङ्ग परार्थकृत्।
वर्णी गृही वा सद्वृत्तिरशुद्रो याजको ध्रुराट्।।

जो देश, जाति, कुल और आचार से श्रेष्ठ हो, उत्तम लक्षणों से संयुक्त हो, त्यागी हो, वक्ता हो, शुद्ध सम्यग्दर्शन से युक्त हो, उत्तम व्रतों का पालन करने वाला हो, युवा हो, श्रावकाचार, ज्योतिषशास्त्र, वास्तुशास्त्र और पुराण का वेत्ता हो, निश्चय एवं व्यवहार का ज्ञाता हो, प्रतिष्ठा विधि को जानने वाला हो, विनयशील हो, सुन्दर हो, मन्द कषायी हो, जितेन्द्रिय हो, जिनपूजा आदि में निष्ठावान हो तथा सम्पूर्ण अंगों वाला हो इत्यादि गुणों से जो विभूषित हो वह प्रतिष्ठाचार्य या याजक (यज्ञ कराने वाला) होता है। वह ब्रह्मचारी अथवा गृहस्थ भी हो सकता है। विशेष इतना है कि वह शूद्र नहीं होना चाहिए।[4]

पिछले कुछ वर्षों से किंचिद परम्पराओं में आचार्य के अतिरिक्त उपाध्याय आदि अन्य पदस्थ मुनि, सामान्य मुनि एवं साध्वी भी प्रतिष्ठा करवाती हैं किन्तु पंचकल्याणक- अंजनशलाका की विधि आचार्य ही सम्पन्न करते हैं।

निष्पत्ति– उल्लेखनीय है कि आचार्य पादलिप्तसूरि ने प्रतिष्ठाचार्य का स्वरूप बतलाते हुए मुख्य रूप से 'भूमि-गृहवास्तुलक्षणानां ज्ञाता, निपुण, सूत्रपातादि विज्ञाने, स्रष्टा सर्वतो भद्रादिमण्डलानां' आदि विशेषणों की ओर जो ध्यान आकृष्ट किया है, उससे वे यह अवगत करवाते हैं कि प्रतिष्ठा करवाने वाला आचार्य सर्व साधारण एवं नामधारी आचार्य न हो, परन्तु उक्त विशेषणों से युक्त हो वही प्रतिष्ठाचार्य के योग्य है। इस वर्णन के अनुसार यह सिद्ध होता है कि यदि कोई मुनि आचार्य पदस्थ हो या उपाध्याय अथवा सामान्य साधु हो किन्तु पूर्वोक्त गुणों से सम्पन्न हो तो वह भी प्रतिष्ठाचार्य ही है, क्योंकि प्रतिष्ठाचार्य में पद की अपेक्षा योग्यता का महत्त्व है। इसी प्रयोजन से क्वचित् प्रतिष्ठा कल्पकारों ने आचार्य को 'प्रतिष्ठाचार्य' अथवा 'प्रतिष्ठागुरु' इस नाम से भी संबोधित किया है।

आचार्य वर्धमानसूरि ने स्वयं के प्रतिष्ठाकल्प में पूर्वमत का स्पष्टीकरण करते हुए कहा भी है कि

आचार्यैः पाठकैश्चैव, साधुभिर्ज्ञानसत् क्रियैः ।
जैन विप्रैः क्षुल्लकैश्च, प्रतिष्ठा क्रियतेऽर्हतः ।।

आचार्य, उपाध्याय, ज्ञान क्रियावान साधु, जैन ब्राह्मण और क्षुल्लकों द्वारा अरिहन्त परमात्मा की प्रतिष्ठा करवायी जाती है।

पन्यास एवं गणि आदि के हाथ से प्रतिष्ठित हजारों प्राचीन प्रतिमाएँ आज भी उपलब्ध हैं। इससे भी निर्विवादतः सिद्ध होता है कि 'आचार्य ही अंजन-शलाका प्रतिष्ठा करवा सकता है।' यह मान्यता पूर्व काल में नहीं थी। आज भी गीतार्थ मुनि इस तरह का आग्रह नहीं रखते हैं। बशर्ते प्रतिष्ठा करवाने वाला मुनि भूमि-गृह का ज्ञाता आदि पूर्वोक्त लक्षणों से समन्वित होना चाहिए। यदि उक्त विशेषताएँ पदस्थ आचार्य में न हों तो वह आचार्य भी प्रतिष्ठा करवाने का अधिकारी नहीं हो सकता।

जिनालय निर्माण का मुख्य अधिकारी कौन?

जिनभवन का निर्माण योग्य व्यक्ति के द्वारा करवाया जाना चाहिए। अयोग्य व्यक्ति से करवाने पर अशुभ कर्मों का बन्ध होता है, क्योंकि अयोग्य व्यक्ति जिनभवन का निर्माण करवायेगा तो जिनाज्ञा का भंग हो सकता है। जबकि धर्म आज्ञा पालन में निहित है इसलिए आज्ञा भंग से दोष लगता है।

जिनशासन में आज्ञा का अत्यन्त महत्त्व है। पूर्वाचार्यों ने इस सम्बन्ध में कहा है कि आप्त वचन का पालन करने से शुभ कर्म का बन्ध होता है और उसकी विराधना करने से अशुभ कर्म का बन्ध होता है यही धर्म का रहस्य है। इसलिए जिनभवन निर्माण के लिए योग्य व्यक्ति होना चाहिए।[5]

पंचाशक प्रकरण के अनुसार जिनभवन निर्माण करवाने का अधिकारी वह गृहस्थ है जो शुभ भाव वाला स्वधर्मी हो, समृद्ध हो, कुलीन हो, उदार हो, धैर्यवान हो, बुद्धिमान हो, गुरु (माता, पिता और धर्माचार्य आदि) की स्तुति करने में तत्पर हो, शुश्रुषा आदि आठ गुणों से युक्त हो, जिनभवन की निर्माण विधि का ज्ञाता हो और आगमों को अधिक महत्त्व देने वाला हो।[6]

षोडशक प्रकरण के अनुसार जो न्यायोपार्जित धन का मालिक हो, बुद्धिमान हो, भविष्य के हित का ज्ञाता हो, सुंदर विचार प्रकृष्टत: बढ़े हुए हों, सदाचारी हो तथा गुरु आदि संघमान्य एवं राजमान्य व्यक्तियों से बहुसंमत हो, वह जिनालय निर्माण का अधिकारी होता है।[7]

सम्यक्त्व प्रकरण के मतानुसार कौटुम्बिक सुख से युक्त, धनिक, कुलोत्पन्न, अक्षुद्र, धृतिवान , मतिमान और धर्मानुरागी इन गुणों से सम्पन्न गृहस्थ जिनभवन बनवाने के योग्य होता है।[8]

कथारत्नकोश के कथनानुसार निर्मल कुल में उत्पन्न होने वाला, वैभव का उपभोग करने वाला, गुरु भक्त, शुभ चित्त में प्रवृत्त, अत्यन्त धर्म प्रतिबद्ध, संस्कारी परिवार से युक्त, शुश्रूषा आदि प्रमुख गुणों का संग्रह करने वाला, विशुद्ध मतिवाला और आज्ञा प्रधान चित्त वाला जिनालय निर्माण के लिए योग्य है।[9]

उपाध्याय यशोविजयजी ने पूर्वाचार्यों का अनुसरण करते हुए जिनभवन निर्माता के लिए उक्त गुणों का होना अनिवार्य माना है।[10]

इन गुणों से सम्पन्न श्रावक जिनालय निर्माण का उत्तम अधिकारी माना जा

सकता है, कुछ गुणों से रहित हो तो मध्यम अधिकारी कहा जा सकता है इत्यादि विवरण गुरुगम से जानना चाहिए।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि मन्दिर निर्माण हेतु अपेक्षित योग्यताएँ होना आवश्यक क्यों? इस विषय का स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य हरिभद्रसूरि ने कहा है कि यदि व्यक्ति जिनमन्दिर का निर्माण करवाते समय उक्त गुणों की ऋद्धि से युक्त हो तो उनको अनेक जीवों में संचरित कर उनका हित करते हुए अपना भी हित करता है।

योग्य व्यक्ति को मन्दिर निर्माण करवाते देखकर कुछ गुणानुरागी मोक्ष मार्ग को प्राप्त करते हैं तथा दूसरे गुणानुराग रूप शुभ परिणाम से मोक्ष प्राप्ति के लिए बीज स्वरूप सम्यग्दर्शन आदि को प्राप्त करते हैं।[11]

इस तरह स्पष्ट है कि योग्य व्यक्ति द्वारा जिनचैत्य का निर्माण करवाये जाने पर सकल संघ का कल्याण होता है तथा सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति और मोक्षमार्ग की उपलब्धि हो सकती है।

कैसा गृहस्थ प्रतिष्ठा करवा सकता है?

प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्यों में द्रव्य का व्यय करने वाला और जिन प्रतिमा को शुभ मुहूर्त्त में प्रतिष्ठित करने वाला व्यक्ति योग्य होना चाहिए। सुयोग्य गृहस्थ के शुभ परिणाम एवं न्याय संचित द्रव्य का उपयोग करने से तज्जनित सभी विधि-विधान पूर्णत: सफल होते हैं।

श्वेताम्बर ग्रन्थों में इस विषयक स्पष्ट वर्णन प्राप्त नहीं होता है किन्तु दिगम्बर आचार्य जयसेन के प्रतिष्ठा पाठ में कहा गया है कि प्रतिष्ठा करवाने वाला निम्नोक्त लक्षणों से युक्त होना चाहिए।

वह न्यायपूर्वक आजीविका का सम्पादन करनेवाला हो, गुरु भक्त हो, अनिन्दक हो, विनयवान हो, ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यवर्णी हो, व्रत क्रिया में संलग्न हो, प्रभु वन्दना में तत्पर हो, शीलवान हो, श्रद्धावान हो, उदार हो, शुभाकांक्षी हो, शास्त्र का ज्ञाता हो, कषाय मुक्त हो, पापक्रिया, उन्माद, अपवाद, कुकर्म आदि से रहित उदार बुद्धि वाला हो, ऐसा व्यक्ति प्रतिष्ठा का अधिकारी माना गया है।[12]

इसके अतिरिक्त निम्न श्रेणी का व्यापार करने वाला, कुदेवों की पूजा करने वाला, चौर्य कर्म करने वाला, व्यभिचार द्वारा धन संग्रह करने वाला, जुआरी,

व्यसनी, रौद्र कर्मकारी, मदिरा पान करने वाला, कृषि कर्म करने वाला, दूसरों का धन व्यय कर अपनी प्रशंसा कराने वाला, संघ निन्दक, राज्य का धन हरण करने वाला, निर्माल्य धन का उपयोग करने वाला ऐसे व्यक्तियों का धन प्रतिष्ठा कार्य में नहीं लगाना चाहिए।[13]

प्रतिष्ठा के मुख्य सूत्रधार इन्द्र का स्वरूप

आचार्य पादलिप्तसूरि ने निर्वाण कलिका में प्रतिष्ठाचार्य गुरु, इन्द्र (स्नात्रकार) और शिल्पी इन तीनों को प्रतिष्ठा के मुख्य सूत्रधार के रूप में स्वीकार किया है।

अन्य प्रतिष्ठाकारों की तुलना में आचार्य पादलिप्तसूरि ने इन्द्र, शिल्पी और प्रतिष्ठाचार्य का स्वरूप विस्तार से वर्णित किया है।

उपर्युक्त निरूपण से इतना स्पष्ट होता है कि आचार्य पादलिप्तसूरि के मन में एक वस्तु निश्चित थी कि प्रतिष्ठा महोत्सव में प्रतिष्ठाचार्य महाराज, इन्द्र महाराज और शिल्पी की सर्वतोमुखी प्राधान्यता होना परम अनिवार्य है। प्रतिष्ठा कार्य में विशेष प्रभावोत्पादक कोई हो तो प्रतिष्ठाचार्य आदि त्रिपुटी ही है। त्रिपुटी जितने अंश में गुणसमृद्ध हो उतने अंश में प्रतिष्ठित जिनबिम्ब विशेष प्रभावकारी होते हैं।

निर्वाणकलिका के मतानुसार

इन्द्रोषऽपि विशिष्ट जाति कुलान्वितो युवा कान्त शरीरः कृतज्ञः रूप लावण्यादि गुणाधारः सकल जननयना नन्दकारी, सर्वलक्षणोपेतो, देवता-गुरूभक्तः, सम्यक्त्व-रत्नालंकृतो, व्यसनाऽऽसंग पराङ्.मुखः, शीलवान, पञ्चाणुव्रतादि-गुणपेतो, गम्भीरः, सितदुकूल परिधानः, कृतचन्दनाङ्गरागो, मालती-रचित-शेखरः, कनक-कुण्डलादि विभूषित-शरीर, तारहार-विराजित-वक्षस्थलः स्थपति गुणान्वितश्चेति।।

इन्द्र भी उत्तम जाति का कुलवान, युवावस्था वाला, मनोहर देह वाला, कृतज्ञ एवं लावण्य आदि गुणों का आधार, सर्वजन प्रिय, सकल सुलक्षण-सम्पन्न, देव-गुरु का परम भक्त, धर्म के प्रति अखण्ड श्रद्धाशील, व्यसनों से सर्वथा विमुख, सदाचारशील, पंच अणुव्रतादि से युक्त, गम्भीर प्रकृति वाला, उत्तम श्वेत-वस्त्र धारक, चन्दनादि सुवासित द्रव्यों से विलेपित अंग वाला, मालती जैसे सुगन्धित पुष्पों द्वारा विभूषित मस्तक वाला, कनक-कुण्डल-कंकण

आदि आभूषणों से विभूषित देह वाला, उत्तम कोटि के हार से सुशोभित उर:स्थल वाला, शिल्पकला का परम ज्ञाता इन लक्षणों से युक्त होना चाहिए।[14]

दिगम्बर मतानुयायी पं. आशाधर रचित प्रतिष्ठा सारोद्धार के उल्लेखानुसार इन्द्र उत्तम कुलवान, संपत्तिवान, सुन्दर, भाग्यवान, बलवीर्यादि गुणोपेत, युवावस्था वाला, मनोज, बहुमूल्य आभूषण धारण किया हुआ, शुद्ध विचारवान, दृढ़ चित्त वाला, परमात्म भक्त, तीनों सन्ध्याओं में सामायिक करने वाला, प्रतिष्ठा विधि का ज्ञाता, मंत्र शास्त्र का अनुभवी, इन्द्रिय विजेता, व्रत-नियमों में दृढ़संकल्पी, रात्रि भोजन का त्यागी, विनयी, शान्ति-क्षमा-तप-वैराग्य आदि से युक्त, समस्त विधियों का ज्ञाता इत्यादि गुणों से सम्पन्न होना चाहिए।[15]

इससे भिन्न अंगहीन वाला, मिथ्यादर्शनी, अभक्ष्य भोजी, मिथ्या भाषी, विपरीत श्रद्धावान आदि इन्द्र के दोष माने गये हैं। विक्रम की दसवीं शती के परवर्ती ग्रन्थों में इन्द्र के स्थान पर 'स्नात्रकार' शब्द का उल्लेख मिलता है। वर्तमान में प्राय: पूजादि अनुष्ठान करवाने वाले विधिकारक ही स्नात्रकार की भूमिका निभाते हैं। केवल पूजा आदि की सामग्री हेतु तद्योग्य एक-दो गृहस्थ को नियुक्त कर देते हैं जिससे तत्सम्बन्धी अव्यवस्था न हो। प्रत्येक गाँव या शहर की प्रतिष्ठा के हिसाब से भिन्न-भिन्न स्नात्रकार की व्यवस्था विलुप्त होती जा रही है। जबकि प्रत्येक गाँव या देश के स्वतन्त्र स्नात्रकार होने चाहिए।

उक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि निर्वाण कलिका की रचना तक स्नात्रकार का कोई महत्त्व नहीं था। उस युग में प्रतिष्ठा महोत्सव के अधिकांश कार्य प्रतिष्ठाचार्य स्वयं कर लेते थे तथा गृहस्थोचित विधान इन्द्र के द्वारा करवाया जाता था। इन्द्र के सहयोग में अन्य श्रावक की अपेक्षा रहती, तो अन्य स्नात्रकारों का स्मरण करते थे। इसके सिवाय स्नात्रकारों का कोई स्थान नहीं था। जब परवर्ती काल में स्नात्रकारों की परम्परा प्रारम्भ हुई। तद्युगीन आचार्यों को उनका स्वरूप बतलाना आवश्यक हो गया। उस सन्दर्भ में श्रीचन्द्रसूरि संकलित प्रतिष्ठा पद्धति में स्नात्रकार के निम्नोक्त लक्षण बताए गए हैं-

स्नपनकाराश्च समुद्राः सकंकणा, अक्षतांग, दक्षा, अक्षतेन्द्रियाः कृतकवचरक्षा, अखण्डितोज्ज्वलवेषा, उपोषिता, धर्मबाहुमानिनः कुलीनाश्चत्वारः करणीयाः।

मुद्रिका सहित कंकण धारण किया हुआ अक्षत अंग वाला, प्रवीण,

अखण्ड इन्द्रिय वाला, मन्त्र कवच से रक्षित, अखण्डित-उज्ज्वल वेश से विभूषित, उपवासी, धर्म का बहुमान करने वाला और कुलीन ऐसे चार स्नात्रकार प्रतिष्ठा कार्य हेतु नियुक्त करने चाहिए।[16]

आचार्य वर्धमानसूरि के अनुसार स्नात्रकार निम्न गुणों से युक्त होने चाहिए–

चतुर्णां स्नपनकाराणा-मुभय कुल-विशुद्धाना-मखण्डितांगानां नीरोगाणां सौम्यानां दक्षाणामधीत स्नपनविधीनां कृतोपवासानां प्रगुणी करणम् ।

अर्थात जिसके माता पिता दोनों का ही कुल विशुद्ध हों, अखण्ड अंग वाला हो, निरोगी हो, सौम्य स्वभावी हो, विचक्षण हो, स्नात्र-प्रतिष्ठा विधि का ज्ञाता हो और उपवास किया हुआ हो, ऐसे चार स्नात्रकार प्रतिष्ठा के लिए होने चाहिए।[17]

आचार्य गुणरत्नसूरि ने पूर्वमत का समर्थन करते हुए स्नात्रकार का उपर्युक्त लक्षण ही बतलाया है। स्पष्ट बोध के लिए मूल पाठ यह है–

सरत्न मुद्रिका-कंकण-सहिता-अक्षतांग-अक्षतेन्द्रिया दक्षा अखण्डोल्बणवेषा धर्मवन्त उपोषिता सतते दिन-ब्रह्मचारिणः कुलीनाश्चत्वारोऽधिका वा स्नात्रकारो कर्त्तव्याः।

अर्थात प्रतिष्ठा हेतु चार अथवा उससे अधिक स्नात्रकार रत्नजड़ित एवं कंकण युक्त मुद्रिका पहने हुए, अक्षत अंग वाले, पाँचों इन्द्रियों से परिपूर्ण, विचक्षण, अखण्ड-उज्ज्वल श्रेष्ठ वेशभूषा धारण किये हुए, धर्मनिष्ठ, उपवास तपधारी और मर्यादित रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले इत्यादि गुणों से परिपूर्ण होने चाहिए।[18]

उपाध्याय सकलचन्द्रकृत प्रतिष्ठाकल्प में स्नात्रकारों का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है कि विनयवान, बुद्धिमान, लोकप्रिय, न्यायोपार्जित धन सम्पन्न, शील-सदाचार आदि गुणों से युक्त श्रावक प्रतिष्ठा कार्यों में प्रशंसनीय है।

इस प्रकार जिनबिम्ब का अतिशय बढ़ाने हेतु पूर्व-परवर्ती गीतार्थ आचार्यों ने स्नात्रकारों के लिए कुछ आवश्यक योग्यताओं का निर्धारण किया है।

शिल्पी का स्वरूप

मूर्ति आदि का निर्माण करने वाला कारीगर शिल्पी कहलाता है। प्राचीन काल में परमतारक प्रतिष्ठाप्य जिनबिम्बों के अभिषेक का प्रथम अधिकार शिल्पी

को होने से अठारह अभिषेक में सर्वप्रथम स्वर्ण जल का अभिषेक शिल्पी के हाथों से करवाया जाता था और उसके बाद अन्य स्नात्रकार स्वर्ण जल से अभिषेक करते थे। कालान्तर में शिल्पी का अधिकार लुप्त हो गया। पूर्व काल में शिल्पी का सत्कार करने हेतु उसे चाँदी की छोटी तगारी और करणी अर्पित करके प्रतिष्ठा करवायी जाती थी। यदि तगारी और करणी श्री संघ की अथवा व्यक्तिगत हो और उन्हें अर्पित न कर सकें तो शिल्पी का कुंकुम से तिलक कर लगभग तगारी और करणी मूल्य जितनी राशि अर्पण कर सत्कार करना चाहिए, जिससे शिल्पी प्रसन्न रहे। अन्य कर्मचारियों को यथायोग्य राशि देकर संतुष्ट करना चाहिए।

निर्वाण कलिका में शिल्पी का स्वरूप निरूपित करते हुए कहा गया है कि **तत्राद्यः सर्वावयवरमणीयः क्षान्तिमार्दवार्जवसत्यशौचसम्पन्नः मद्यमांसादि भोग रहितः, कृतज्ञो विनीतः शिल्पी सिद्धान्तवान् विचक्षणो घृतिमान् , विमलात्मा शिल्पिनां प्रधानो जितारिषड्वर्गः कृतकर्मा निराकुल इति।**

शिल्पी सर्व अवयवों से सुशोभित अंग वाला, क्षमाशील, नम्र, सरल, सत्यभाषी, पवित्रता युक्त, मद्य-मांसादि का त्यागी, कृतज्ञ, विनीत, शिल्प क्रियाओं में प्रवीण, शिल्प शास्त्र का ज्ञाता, चतुर, धैर्यवान, निर्मल भावना युक्त, शिल्पियों में अग्रणी, मोहादि षड् रिपुओं का विजेता, स्थापत्य कला कौशल में सिद्धहस्त और आकुल-व्याकुलता से रहित स्थितप्रज्ञ होना चाहिए।[19]

उपर्युक्त मूल पाठ में 'मद्यमांसादि भोग रहितः' यह वाक्यांश वर्तमान सन्दर्भ में मुख्य रूप से ध्यान देने योग्य है। क्योंकि आजकल कारीगरों के खान-पान के विषय में उतना ख्याल नहीं रखा जाता जबकि जिन मन्दिर निर्माता को इस सम्बन्ध में पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए।

औषधियाँ घोटने एवं पौंखण करने वाली नारियों का स्वरूप

नवीन जिनबिम्बों का अभिषेक एवं अंजनशलाका आदि विधानों में अनेक औषधियों का उपयोग किया जाता है। वे औषधियाँ मूल रूप में लाई जाती हैं। उसके बाद गुण सम्पन्न स्त्रियों के द्वारा उसका विधिवत चूर्ण तैयार करवाया जाता है। इसी भाँति नवीन बिम्बों के प्रवेश आदि के समय लोक व्यवहार के रूप में पौंखन (नेकाचार की) क्रिया की जाती है। उसके लिए भी सुयोग्य नारियों का होना आवश्यक है ऐसा पूर्वाचार्यों का अभिमत है।

निर्वाण कलिका के रचयिता आचार्य पादलिप्तसूरि ने औषधिचूर्णकर्त्री एवं पौखणकर्त्री नारियाँ कैसी हों, इस सम्बन्ध में आगम परम्परा का समर्थन करते हुए लिखा है-

तदनुरूपयौवन-लावण्यवत्यो रुचिरोदारवेषा अविधवाः सुकुमारिका, गुडपिण्डपिहितमुखान् चतुरः कुम्भान् कोणेषु संस्थाप्य कांस्यपात्रे विनिहितदूर्वादध्यक्षत तर्कुकाद्युपकरण समन्विताः सुवर्णादिदान पुरस्सरमष्टौ चतस्रो वा नार्यो रक्तसूत्रेण स्पृशेयुः।

श्री जिनेन्द्र परमात्मा के लिए औषधियों को घोटना एवं पौंखन करना, सुश्राविकाओं के लिए प्रभु भक्ति का प्रधान अंग है। इस प्रधान अंग का अपूर्व लाभ लेने वाली पुण्यवती नारियाँ रूप, यौवन और लावण्य से युक्त हों, अशुभ पुद्गलों से प्रभावित नहीं हो सकें ऐसे विशुद्ध एवं शकुनकारी उत्तम रेशमी वस्त्र धारण की हुई हों, रत्नजड़ित सुवर्ण के विविध आभूषणों से विभूषित हों।

इन लक्षणों से युक्त अखंड सौभाग्यवती आठ या चार सुश्राविकाएँ अथवा कुमारिकाएँ सुसज्जित होकर, अष्टमंगल से आलेखित स्वर्ण, चाँदी या मिट्टी के चार कलशों के मुखभाग पर एक सुंहाली (मीठा खाजा) और गोल पापड़ी रखें। फिर उन कलशों के मुख भाग को कांसी की थाली अथवा रकेबी से ढंककर उन थालियों में दुर्वा, दही पात्र, अक्षत एवं ट्राक रखें। फिर उन कलशों को मस्तक पर धारण करते हुए जिनबिम्बों का पौंखण करें।

तदनन्तर उन कलशों को महोत्सव मंडप अथवा मंगल गृह के एक-एक कोने में स्थापित करें और सोना-चाँदी का दान दें। फिर कलशों पर बंधे हुए रक्तवर्णीय ग्रीवासूत्र का स्पर्श करें।[20]

निर्वाणकलिका के उक्त पाठ में रचनाकार ने पौंखण करने वाली नारियों का स्वरूप एवं उसकी विधि दोनों का उल्लेख किया है। इससे पौंखण कर्त्री कैसी वेशभूषादि से मण्डित होनी चाहिए और यह विधि किस प्रकार की जाती है दोनों का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। आचार्य पादलिप्तसूरि के उक्त वर्णन से यह भी फलित होता है कि जिनबिम्ब का पौंखण करने वाली स्त्रियाँ कुरूपा, वृद्धा, निस्तेज और घृणित वेश धारण की हुई नहीं होनी चाहिए।

निर्वाणकलिका में औषध घोटने वाली स्त्रियों के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है किन्तु वेशभूषादि की अपेक्षा परवर्ती आचार्यों ने उन श्राविकाओं को भी औषधि चूर्ण के योग्य माना है।

तदनन्तर सर्वप्रथम आचार्य चन्द्रसूरि संकलित प्रतिष्ठाकल्प में निम्नोक्त लक्षण वाली सन्नारियों के शुभ हाथ से औषधि घुटवानी चाहिए, ऐसा कहा गया है–

तत्रैव मङ्गलाचार पूर्वकमविधवाभिश्चतुः प्रभृतिभिः प्रधानोज्ज्वलनेपथ्याभिर्विशुद्धशीलाभिः सकंकणहस्ताभिर्नारिभिः पञ्चरत्न-कषायमाङ्गल्यमृत्तिकाऽष्टवर्ग सर्वोषध्यादीनां वर्तनं कारणीयं क्रमेण।

स्नात्रकारों को सुसज्जित करते समय ही मंगलाचारपूर्वक जो उत्तम वेशभूषा एवं आभूषणों से अलंकृत हो, विशुद्ध शीलवती हो, हाथ में कंकण पहनी हुई हो ऐसी चार सौभाग्यवती सन्नारियों के हाथ से पंचरत्न-कषाय-मंगल मृत्तिका-अष्टवर्ग-सर्वौषधि आदि को अनुक्रम से घुटवानी चाहिए।[21]

सुबोधा सामाचारी के उक्त पाठ में औषध चूर्णकर्त्री नारियाँ कैसी हों तथा औषध कब और किस क्रम से घुटवाना चाहिए? इन तीनों विषयों का निरूपण किया गया है।

तत्पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि ने अपने प्रतिष्ठाकल्प में औषधि घोटने वाली स्त्रियों के सम्बन्ध में **'जीवित पितृमातृ-श्वसुरादिभिः'**– जिसके माता-पिता, सास-श्वसुर जीवित हों ऐसी सौभाग्यवती नारी, यह विशेषण अतिरिक्त कहा है शेष पाठ श्रीचन्द्रसूरि के अनुसार ही अवतरित किया है।[22]

उसके पश्चात आचार्य वर्धमानसूरि ने आचार दिनकर की प्रतिष्ठा पद्धति में औषधि घोटने वाली सन्नारियों के सम्बन्ध में निम्न विशेषणों का प्रयोग किया है–

चतुसृणां औषधि पेषणकारिणीनामुभय-कुलविशुद्धानां, सपुत्र-भतृकाणां सती नामखण्डितांगीनां दक्षाणां शुचीनां सचेतनानां प्रगुणीकरणम्।

अर्थात जिसके माता-पिता के उभय कुल विशुद्ध हों, पुत्र सहित हो, अखंड सौभाग्यवती हो, पतिव्रता हो, अखण्डित अंग वाली हो, चतुर, पवित्र और जागृत मन वाली हो ऐसी चार सन्नारियों को औषधि घोटने के लिए प्राधान्यता देकर उत्साहित करना चाहिए।

आचार दिनकर के इस पाठ में औषध चूर्णकर्त्री नारियों की विशेषताएँ एवं उन्हें उत्साहित करने की विधि बताई गई है।[23]

इसी क्रम में आचार्य गुणरत्नसूरि ने औषधि घोटने वाली महिलाओं के लिए अत्यावश्यक योग्यताओं का उल्लेख करते हुए उनकी महिमा को अधिक दर्शाया है। तदनुसार

अथ जीवित श्वस्रू-श्वसुरक-मातृ-पितृ-पतिकाश्चतस्रः कुलीनाः प्रधानवेषाभरणाः सुशीलाः पवित्राश्च समाकार्याः सर्वाणि स्नात्रौषधानि वर्तनीयानि तासां च प्रत्येकं कर्पट-नालिकेर-सुख भक्षिकार्पणाऽऽद्युपचारः कार्यः कुंकुम-कुसुम-ताम्बूलपूर्वकं, ताभिश्च यथाशक्तिदेवाय परिधापनिकादि भक्तिः कार्या।

अर्थात जिसके सास-श्वसुर, माता-पिता और पति जीवित हों, उत्तम वेशभूषा और आभूषणों से अलंकृत हो तथा सुशील, पवित्र आचार वाली और सुकुलीन हो ऐसी चार सन्नारियों को निमन्त्रित कर उनके शुभ हाथों द्वारा स्नात्र और पूजा की सर्व सामग्रियाँ (औषधियाँ) घुटवायें। फिर चारों सौभाग्यवती महिलाओं का कुंकुम से तिलक कर वस्त्र, श्रीफल, मीठा खाजा, पुष्प और तांबूल अर्पित करते हुए सत्कार करें। उस समय सौभाग्यवती सुश्राविकाएँ भी यथाशक्ति जिनबिम्ब को कुछ मूल्यवान द्रव्य (सोना, चाँदी, रुपया आदि) समर्पित कर उनकी भक्ति करें।[24]

आचार्य गुणरत्नसूरि के इस प्रतिष्ठापाठ में श्रीसंघ द्वारा औषधि घोटने वाली स्त्रियों का सम्मान और उनके द्वारा नवीन बिम्बों की विशिष्ट भक्ति इन दो बिन्दुओं की चर्चा अन्य प्रतिष्ठाकल्पों की तुलना में स्वतन्त्र रूप से की गई है। इससे सिद्ध होता है कि प्रतिष्ठा कृत्यों में औषधि पीसने वाली नारियों की अहम भूमिका होती है इसलिए उक्त लक्षणों से युक्त प्रत्येक नारी को इस अवसर का लाभ निश्चित रूप से उठाना चाहिए, क्योंकि यह प्रभु भक्ति और पुण्य उपार्जन का अद्भुत माध्यम है।

श्री विशालराज शिष्य संकलित प्रतिष्ठाकल्प में सन्नारियों का लक्षण जिनप्रभसूरि एवं वर्धमानसूरि के प्रतिष्ठा कल्पों में से अवतरित किया गया है।

अनिश्चितकर्ता नामक सातवें प्रतिष्ठाकल्प में औषधि घोटने वाली सुश्राविकाओं के लक्षण श्रीचन्द्रसूरि संकलित प्रतिष्ठा विधि के अनुसार बताए गए हैं।

सकलचन्द्रगणिकृत आठवें प्रतिष्ठाकल्प में औषधि चूर्ण निर्मात्री स्त्रियों की योग्यताओं के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है।

निष्पत्ति– ऊपर वर्णित चर्चा के आधार पर यह कहना आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न प्रतिष्ठा कल्पकारों ने स्नात्रकार सुश्रावकों और पौंखण आदि कर्म करने वाली सुश्राविकाओं के सुलक्षण और योग्यता के सम्बन्ध में 'अक्षताङ्गः' 'अक्षतेन्द्रियः' 'कुलीनः' 'धर्म बहुमानी' 'उपवासी' 'जीवित मातृपितृश्वसूरासुरादिभिः' जैसे सौभाग्यसूचक विशेषणों का प्रयोग किया है। आधुनिक प्रतिष्ठा तन्त्र वाहकों को इस सन्दर्भ में पूर्ण ध्यान देना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो श्रीअंजनशलाका-प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रमुख अनुष्ठान जिन स्नात्रकारों के शुभ हाथ से सम्पादित करवाये जाएं और जिन सौभाग्यवती नारियों के द्वारा जिनेश्वर परमात्मा को पौंखणे की मंगल विधि की जाए उन स्नात्रकारों और सुश्राविकाओं में 'अक्षताङ्गः' आदि सुलक्षण अवश्य होने चाहिए।

वर्तमान में जिनबिम्ब के नगर प्रवेश या नूतन चैत्य प्रवेश के शुभ अवसर पर अथवा रथयात्रा आदि के पुण्य प्रसंग पर प्रायः एक सन्नारी के द्वारा जिनेन्द्र परमात्मा के पौंखने की मंगल विधि की जाती है। वह किसी भी स्थिति में उचित नहीं है। प्राचीन प्रतिष्ठाकल्पों में चार सुश्राविकाओं के द्वारा पौंखने का विधान किया गया है। इसी के साथ उन सौभाग्यवती नारियों के माता-पिता और सास-श्वसुर जीवित होने चाहिए, ऐसा अत्यावश्यक माना गया है जो लोक व्यवहार सम्मत भी है।

दिगम्बर परम्परा में प्रतिष्ठा सम्बन्धी स्त्रियोचित कार्यों के लिए इन्द्राणी शब्द व्यवहृत है किन्तु उसके लिए भी निम्न गुणों का होना आवश्यक माना गया है।

आचार्य जयसेन प्रतिष्ठा पाठ के अनुसार इन्द्राणी सौभाग्यशालिनी, सर्वांगसुन्दर, बहुमूल्य वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित, सदाचारी, श्रेष्ठ कुलवन्ती, व्रत-नियम-संयमधारी, शीलवती, रात्रि भोजन एवं अभक्ष्य त्यागी, उत्तम गुणों को धारण की हुई, कृतकर्म की ज्ञाता, परमात्म भक्त और विनयवती इन गुणों से ओतप्रोत होनी चाहिए।[25]

यहाँ इन्द्राणियों की संख्या के सम्बन्ध में कोई निर्देश नहीं है किन्तु प्रतिष्ठा विधि के उपयोगी पात्रों में इन्द्र और इन्द्राणी शब्दों का उल्लेख है इससे सम्भव है कि सन्नारी के रूप में एक इन्द्राणी की अपेक्षा रहती होगी। दूसरे यजमान (प्रतिष्ठापक) की तरह यजमान की पत्नी की गणना भी प्रतिष्ठा के उपयोगी पात्रों

में की गयी है। इससे निर्णीत होता है कि पूजा आदि के कुछ आवश्यक कृत्य यजमान पत्नी के द्वारा सम्पन्न करवाये जाते होंगे।[26]

प्रतिष्ठा विधान सामुहिक स्तर पर प्रभावित करता है। इसका सम्यक नियोजन एवं इस अनुष्ठान के विभिन्न मुख्य घटकों का शास्त्रोक्त गुणयुक्त जीवन परमावश्यक है। आम जन मानस प्रतिष्ठा कर्त्ता आचार्य, गृहस्थ, विधिकारक, शिल्पी आदि के सम्यक स्वरूप को जान पाए एवं एक लोक कल्याणकारी प्रतिष्ठा महोत्सव का समायोजन कर सके तथा स्वयं को तद्योग्य बना सकें इसी भावना के साथ।

सन्दर्भ-सूची

1. *निर्वाण कलिका, पृ. 23*
2. *आचार्य जयसेन प्रतिष्ठापाठ, श्लो. 81-85*
3. *वही, श्लो. 86*
4. *प्रतिष्ठा सारोद्धार, 1/111-14*
5. *पंचाशक प्रकरण, 7/2-3*
6. *अहिगारी उ गिहत्थो, सुहसयणो वित्तसंजुओ कुलजो।*
   अक्खुद्दो धिइबलिओ, मइमं तह धम्मरागी अ॥
   गुरूपूयाकरणरई सुस्सूसाइगुणसंगओ चेव।
   णायाऽहिगयविहाणस्स धणियं माणप्पहाणो य॥
   वही, 7/4-5
7. *न्यायार्जितवित्तेशो मतिमान्, स्फीताशयः सदाचारः।*
   गुर्वादिमतो जिनभवन, कारणस्याऽधिकारीति॥
   षोड़शक प्रकरण, 6/2
8. *अहिगारी उ गिहत्थो, सुहसयणो वित्तसंजुओ कुलजो।*
   अक्खुद्दो धिइबलिओ, मइमं तह धम्मरागी य॥
   सम्यक्त्व प्रकरण, 1/21
9. *अहियारी य इह च्चिय, निम्मलकुलसंभवो विभवभागी।*
   गुरुभत्तो सुहचित्तो, अच्चतं धम्मपडिबद्धो॥
   बहुसुहिसयणो सुस्सूस, पमुहगुणसंगओ विसुद्धमई।
   आणापहाणचिट्ठो, दट्ठव्वो जिणहरविहाणे॥
   कथारत्नकोश, भा.1, पृ. 123

10. *न्यायाऽर्जितधनो धीरः, सदाचारः शुभाशयः ।*
भवनं कारयेज्जैनं, गृही गुर्वादिसम्मतः ।।
द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका, 5/2

11. *पंचाशकप्रकरण, 7/6-7*

12. *न्यायोपजीवी गुरुभक्तिधारी, कुत्सादिहीनो विनयप्रपन्नः ।*
विप्रस्तथा क्षत्रियवैश्यवर्गो, व्रतक्रियावन्दनशीलपात्रः ।।
श्रद्धालुदातृत्व महेच्छुभावो, ज्ञाता श्रुतार्थस्य कषायहीनः ।
कलंकपंकोन्मदतापवाद, कुकर्मदूरोऽर्हदुदारबुद्धिः ।।
आचार्य जयसेन प्रतिष्ठापाठ, 75-78

13. *निषादनाडिंधममुण्डिचण्डी, परीष्टिपाटच्चरदारपण्यं ।*
द्यूतव्यवस्योपजनरथसीधु, कृषीवलाद्यर्जनमत्रवर्ज्यं।।
परोपदानी किल संघपिंजो, भूपार्थि निर्माल्यधनप्रहर्त्ता ।
न शस्यते क्वापि महोपयोगं, कर्तुं जनस्तद् धृतहेमभोक्ता ।।
वही, 79

14. *निर्वाण कलिका, पृ. 23*
15. *प्रतिष्ठा सारोद्धार, पं. आशाधर, पृ. 13*
16. *सुबोधा सामाचारी, पृ. 39*
17. *आचार दिनकर, पृ. 145*
18. *प्रतिष्ठाकल्प, गुणरत्नसूरि, जिन बिम्ब प्रवेश-प्रतिष्ठा शान्ति स्नात्रादि विधि समुच्चय, भा. 1 प्रस्तावना, पृ. 47*
19. *निर्वाणकलिका, पृ. 23*
20. *वही, पृ. 45*
21. *सुबोधासामाचारी, पृ. 39*
22. *विधिमार्गप्रपा, पृ. 101*
23. *आचारदिनकर, पृ. 145*
24. *गुणरत्नसूरि प्रतिष्ठाकल्प, प्रस्तावना, पृ. 41*
25. *प्रतिष्ठा पाठ, आचार्य जयसेन, 716*
26. *वही, 52-53*

●

अध्याय-3

प्रतिष्ठा सम्बन्धी आवश्यक पक्षों का मूल्यपरक विश्लेषण

जिनालय में जिनबिम्ब की स्थापना करना द्रव्य प्रतिष्ठा है और तीर्थंकर परमात्मा को हृदय में स्थापित करना भाव प्रतिष्ठा है। इसे द्रव्यानुयोग की भाषा में व्यवहार और निश्चय प्रतिष्ठा कह सकते हैं। प्रत्येक निश्चय का व्यवहार पर भारी प्रभाव होता है और प्रत्येक व्यवहार निश्चय को हासिल करने हेतु होता है।

प्रतिष्ठा शब्द के अनेक तात्पर्य कहे जा सकते हैं जैसे अरिहंत परमात्मा के गुणों की हृदय मंदिर में स्थापना करना प्रतिष्ठा है, प्रभु के प्रतीक स्वरूप तीर्थंकर परमात्मा की जिनालय में स्थापना करना प्रतिष्ठा है, भक्त की भगवान में तदाकारता प्रतिष्ठा है, प्रतिमा में अरिहंत प्रभु के तेजोमय चैतन्य की प्रतिस्थापना प्रतिष्ठा है, प्रतिमा में ईश्वरीय श्रद्धा का अनुष्ठान प्रतिष्ठा है, अनेक आत्मा में सन्निहित आस्तिक्यता का दर्शन प्रतिष्ठा है, जिन धर्म के श्रद्धालुओं की श्रद्धा का सर्जन प्रतिष्ठा है।

उक्त परिभाषाएँ धर्म और अध्यात्म से सम्बन्धित हैं। प्रतिष्ठा का अभिप्राय पारिवारिक, सामाजिक, वैश्विक आदि दृष्टिकोणों से भी घटित होता है। प्रतिष्ठाचार्य के हृदय में जब परमात्मा प्रतिष्ठित होते हैं तब केवल मंदिर की ही प्रतिष्ठा नहीं होती, बल्कि भाई-भाई में प्रेम की प्रतिष्ठा, परिवार में समन्वय की प्रतिष्ठा, शरीर में स्वास्थ्य की प्रतिष्ठा, मन मन्दिर में प्रसन्नता की प्रतिष्ठा, देश में सुरक्षा और सदाचार की प्रतिष्ठा, मानव मात्र में श्रद्धा की प्रतिष्ठा, सभी धर्मों में परस्पर सौहार्द की प्रतिष्ठा, हृदय में सुमति और सद्भाव की प्रतिष्ठा, विश्व में शांति और अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है। प्रतिष्ठाचार्य इन्हीं भावों के साथ प्रतिष्ठा करते हैं इसीलिए यह प्रतिष्ठा विश्व के जीव मात्र का कल्याण करती है। जितना महत्त्व प्रतिष्ठा का है उतना ही महत्त्व प्रतिष्ठाचार्य और प्रतिष्ठा विधि का होता है। प्रतिष्ठाचार्य और प्रतिष्ठा विधि दोनों की अपूर्वता प्रतिष्ठा प्रसंग में महनीय

होती है। जितनी शुद्धि प्रतिष्ठा विधि की आवश्यक है इससे भी कई गुणा अधिक प्रतिष्ठाचार्य में सात्विकता होनी चाहिए। एकाग्रता, निर्भीकता और कार्यदक्षता से ही प्रतिष्ठा सफल होती है। प्रतिष्ठा की सफलता के लिए समय की सतर्कता और सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रिया में भी दत्तचित्त होना आवश्यक है। सही मुहूर्त्त में हुई प्रतिष्ठा परिवार-समाज-गाँव-राष्ट्र और विश्व का कल्याण करने वाली होती है।

एक मंदिर की प्रतिष्ठा वर्षों का इतिहास लिखती है। एक तीर्थ की प्रतिष्ठा युग-युग की गौरवगाथा होती है। अत: प्रतिष्ठाचार्य का भी समर्थ और गुणसम्पन्न होना अति आवश्यक है क्योंकि समग्र प्रतिष्ठा विधि और प्रतिष्ठा महोत्सव की आधारशिला प्रतिष्ठाचार्य होते हैं। सामान्यत: एक प्रतिष्ठाचार्य में गुरुकुलवास, ज्ञान प्रतिभा, श्रुत ज्ञान, अनुभव ज्ञान, वक्तृत्व शक्ति, भाषा ज्ञान, कार्यदक्षता, सहज सूझबूझ, संचालन सामर्थ्य, मिलनसारिता, सात्विकता, निर्णायक शक्ति, उदार विचारधारा, सहिष्णुता, आग्रहरहितता आदि गुणों का होना आवश्यक है।

जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा कब की जानी चाहिए?

जिनबिम्ब घड़कर तैयार हो जाये, उसके पश्चात दस दिन के अन्तराल में उसकी प्रतिष्ठा कर देनी चाहिए, ऐसा पूर्वाचार्यों का अभिमत है।

यहाँ दस दिन के भीतर प्रतिष्ठा करने का जो निर्देश दिया गया है उसका रहस्य यह है कि कोई भी अच्छी वस्तु मालिक के अधिकार की न हो तो वह बहुत जल्दी व्यंतर-वाणव्यंतर आदि देवों से अधिष्ठित हो जाती है। इस दोष से बचने के लिए ही दस दिन के अन्दर प्रतिष्ठा कर देनी चाहिए। यदि दस दिन का उल्लंघन हो जाए तो अशुभता का निवारण करने के लिए एक विशिष्ट विधि करनी पड़ती है। इसलिए प्रतिमा के तैयार हो जाने पर दस दिन के भीतर ही प्राण प्रतिष्ठा हो जानी चाहिए। यहाँ प्रतिष्ठा का अभिप्रेत अंजनशलाका (पंच कल्याणक) विधि है केवल मूल गादी पर आसीन करना नहीं है।[1]

सुप्रतिष्ठा के लिए आवश्यक तत्त्व

जिनेश्वर प्रभु की प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा के रूप में फलदायी हो उसके लिए कुछ ऐसे विशिष्ट तत्त्व हैं जिन्हें आज अनदेखा किया जा रहा है–

1. सर्वप्रथम कुंभ स्थापना, कुंभ जलयात्रा, औषधि पिष्टपेषण आदि कृत्य सौभाग्यवती महिलाओं (जिसके माता-पिता, सास-ससुर जीवित हैं और जो पुत्रवती भी हैं) के द्वारा होने चाहिए।

2. तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा कल्याणक के दिन माता-पिता, भाई-बहिन, इन्द्र-इन्द्राणी एवं समस्त प्रजाजनों को उपवास करना चाहिए।
3. अंजन चूर्ण कुमारिकाओं द्वारा पिसवाना चाहिए।
4. अठारह अभिषेक में प्रयुक्त औषधियों का चूर्ण मन्दिर के परिसर में तैयार किया जाना चाहिए।
5. बारह व्रतधारी अथवा कम से कम सप्त व्यसन के त्यागी, रात्रिभोजन से विरत एवं देव-गुरु-धर्म की आराधना में निरत गृहस्थ को भगवान का माता-पिता बनना चाहिए।
6. उच्च कुलीन एवं सुसंस्कारी युवतियों तथा बालिकाओं के द्वारा छप्पन दिक्कुमारी का दृश्य उपस्थित किया जाना चाहिए।
7. प्रतिष्ठा के प्रत्येक विधान में स्नात्रकार शुद्ध वस्त्रों में होने चाहिए।
8. विधिकारकों को सब कुछ प्रतिष्ठाचार्य से पूछकर करना चाहिए।
9. प्रतिष्ठा के सभी कार्यों में क्रियाकारक एवं प्रतिष्ठाकारक के अध्यवसायों में शुद्ध भावों की अभिवृद्धि होती रहनी चाहिए। ऐसी ही कई महत्त्वपूर्ण क्रियाएँ हैं जिनके प्रति जागरूक रहना अत्यावश्यक है।

अञ्जनशलाका-प्रतिष्ठा उत्सव के प्रारम्भिक कृत्य

नवनिर्मित जिनालय में जिनप्रतिमा को विराजमान करने से पहले उसकी अंजनशलाका एवं प्राण प्रतिष्ठा आदि विधियाँ सम्पन्न करना आवश्यक है। उसके बाद ही नवीन बिम्बों की प्रतिष्ठा की जाती है। प्रतिष्ठा करवाने की भावना रखने वाला श्री संघ अथवा पुण्यशाली परिवार यह ध्यान रखे कि उन्हें निम्न कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए अंजनशलाका-प्रतिष्ठा का महामांगलिक महोत्सव प्रारम्भ करना चाहिए।

प्रतिष्ठा कल्पकारों ने प्रतिष्ठा उत्सव से सम्बन्धित बारह कर्तव्य बतलाये हैं उनका सामान्य वर्णन इस प्रकार है-

1. मुहूर्त निर्णय 2. राज्यपृच्छा 3. भूमि शुद्धि 4. मण्डप निर्माण 5. वेदिका रचना 6. श्रीसंघ भक्ति 7. श्री संघ निमन्त्रण पत्रिका 8. औषधि घोटने वाली चार सुलक्षण सन्नारियाँ 9. प्रतिष्ठाचार्य का स्वरूप 10 स्नात्रकार इन्द्र का स्वरूप 11. अमारि उद्घोषणा 12. प्रतिष्ठा उपयोगी सामग्री का संचय और श्रद्धाशील स्नात्रकारों की नियुक्ति।

नवनिर्मित जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा शीघ्र क्यों?– शास्त्र विधि के अनुसार जिन चैत्य और जिनबिम्ब का निर्माण हो जाने पर उसकी प्रतिष्ठा शीघ्र करवानी चाहिए। आचार्य हरिभद्रसूरि के मतानुसार सुविधि युक्त जिनबिम्ब तैयार हो जाने के पश्चात दस दिनों के अन्तर्गत उसकी प्रतिष्ठा करवा देनी चाहिए।[2] यहाँ प्रश्न होता है कि प्रतिमा तैयार होने के पश्चात उसकी प्रतिष्ठा शीघ्र क्यों करवायें? इसका रहस्य उद्घाटित करते हुए षोडशक प्रकरण की टीका में बतलाया है कि कोई भी अच्छी वस्तु (मकान, वस्त्र, स्थान आदि) यदि बिना मालिक की हो तो वह अतिशीघ्र व्यंतर-वाणव्यंतर आदि देवों से अधिष्ठित हो जाती हैं। व्यन्तर आदि निम्न जाति के देव मन्दिर पर अधिकार कर लेते हैं, इससे जिनालय मिथ्यात्व वासित हो जाता है। फिर उस जिनालय में कुछ महीनों के बाद प्रभु प्रतिमा को विराजमान किया जाये तो भी वह चैत्य व्यन्तर देवों का निवास स्थान होने के कारण उस जिनालय में रोजाना क्लेश-लड़ाई होती रहती है इसीलिए प्रतिमा को शीघ्र प्रतिष्ठित करना चाहिए।[3]

उक्त वर्णन से पुष्ट होता है कि जिनालय और जिनबिम्ब का निर्माण हो जाने पर प्रतिष्ठा का मांगलिक उत्सव शीघ्र सम्पन्न करना चाहिए। उसके लिए सर्वप्रथम मुहूर्त का निर्णय करना आवश्यक है।

1. **मुहूर्त्त निर्णय–** प्रतिष्ठा मुहूर्त्त का निर्णय करने के लिए मूलनायक तीर्थंकर भगवान का नाम, श्रीसंघ का नाम, यदि व्यक्तिगत प्रतिष्ठा हो तो परिवार के मुखिया का नाम, नगर और नगरपति (राजा, सेठ आदि) के नाम इन सभी के राशियों का परस्पर मिलान करना चाहिए। फिर ज्योतिषाचार्य इन नामों के साथ मेल खाए ऐसे श्रेष्ठ दिन को प्रतिष्ठा मुहूर्त्त के रूप में चुने। तत्पश्चात चयनित शुभ मुहूर्त्त का प्रतिष्ठाचार्य के सम्मुख निवेदन करें और उनके कर-कमलों से मुहूर्त्त पत्र को ग्रहण करें। उसके बाद मुहूर्त्त का निर्णय हो जाने से प्रतिष्ठा उत्सव प्रारम्भ न हो तब तक प्रसन्नचित्त पूर्वक परमात्मा की पूजा, सेवा, भक्ति, दान, पुण्य, तप, जप, व्रत, प्रत्याख्यान आदि धार्मिक अनुष्ठान वैयक्तिक और सामूहिक रूप से आयोजित करते रहना चाहिए क्योंकि उसके अचिन्त्य प्रभाव से सर्वतोमुखी अभ्युदय होता रहता है।

वर्तमान में ज्योतिषाचार्य, प्रतिष्ठाचार्य अथवा ज्योतिर्विद मुनि इनमें से किसी के भी द्वारा निकाला गया मूहूर्त्त मान्य होता है।

2. राज्यपृच्छा– प्रतिष्ठा उत्सव प्रारम्भ करने से पूर्व राजा की सम्मति प्राप्त करनी चाहिए। वर्तमान में राजा शब्द से तात्पर्य राष्ट्रपति, राज्यपाल, प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री या शासकीय अधिकारी वर्ग है अत: इनमें से किसी की भी अनुमति लेनी चाहिए। राजाज्ञा अथवा शासन सरकार की स्वीकृति प्राप्त करने से प्रतिष्ठा महोत्सव में निम्न लाभ होते हैं–

- प्रतिष्ठा जैसा बृहद् उत्सव सुख-शान्ति पूर्वक सम्पन्न होता है।
- उस गाँव या शहर सम्बन्धी कोई उपद्रव नहीं होता।
- सरकार के द्वारा किसी तरह की बाधा उत्पन्न नहीं होती। यदि बाधा उत्पन्न हो तो उसका शीघ्र निवारण हो जाता है।
- राजा आदि की अनुमति प्राप्त करने पर उनकी उपस्थिति अनिवार्य हो जाती है। राजा आदि की उपस्थिति से समस्त नगर जनों की उपस्थिति स्वयमेव हो जाती है। इस प्रकार सर्व जनों के सहयोग से उत्सव कई गुणा अधिक शोभायमान होता है।
- राजा की अनुमति लेने पर सभी वर्गों के लोग सम्मिलित होते हैं। इसमें जातिवाद का भी कोई स्थान नहीं रहता, जो जैन धर्म की मूल दृष्टि है।
- राज्य व्यवस्था का अनुपालन करने से राजा सदैव प्रसन्न रहता है तथा राजा की प्रसन्नता से सम्पूर्ण नगर में आनन्द एवं हर्षोल्लास का वातावरण बना रहता है। साथ ही उत्साह एवं उल्लास पूर्वक किया गया अनुष्ठान नि:सन्देह सफल होता है।

इस प्रकार राज पृच्छा से श्रीसंघ, नगरवासी एवं राजा तीनों अत्यन्त लाभान्वित होते हैं।

3. भूमि शुद्धि– पंचाशक प्रकरण के अनुसार प्रतिष्ठा उत्सव शुरू करने से पूर्व जिन मन्दिर के चारों ओर सौ हाथ जमीन को शुद्ध कर लेना चाहिए। उसके पश्चात उस स्थान पर प्रतिष्ठा के दिन तक दशांग आदि सुगन्धित धूप प्रज्वलित रखना चाहिए, इससे जिनालय के आस-पास का वातावरण निर्मल रहता है।[4]

4. मण्डप निर्माण– मण्डप प्रतिष्ठा महोत्सव का एक महत्वपूर्ण अंग है। पूर्वकाल में प्रतिष्ठा महोत्सव से सम्बन्धित मण्डपों और वेदिकाओं का निर्माण

प्रतिष्ठाप्य जिन बिम्बों की लम्बाई-चौड़ाई के प्रमाणानुसार करवाया जाता था, परन्तु आधुनिक प्रतिष्ठा महोत्सवों में यह सिद्धान्त प्राय: लागू नहीं किया जाता है। यदि इस नियम का पालन किया जाता भी हो तो भी अल्प आय-व्यय और नक्षत्र इन तीन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया मण्डप सुलाक्षणिक माना जाता है। परन्तु आधुनिक मण्डपों में इनमें से कुछ भी नहीं देखा जाता है।

मण्डप का स्वरूप– समचौरस अथवा लम्ब चौरस भूमि भाग को शुद्ध कर एवं उसे लगभग डेढ़ हाथ ऊँचा करके उसके ऊपर मण्डप का निर्माण करवाना चाहिए। ऐसा मण्डप श्रेष्ठ गिना जाता है। यह मण्डप पूजा-विधि के अनुष्ठानों में अधिक उपयोगी होता है।

प्रतिष्ठा मण्डप की लम्बाई और चौड़ाई दोनों विषम (1, 3, 5, 7, 9 आदि) अंकों के परिमाण की लेने से मण्डप का आय शुभ आता है और आय की अपेक्षा 'व्यय' हीन लेना चाहिए। इस नियम को ध्यान में रखते हुए प्रतिष्ठा मण्डप की भूमि निश्चित करनी चाहिए।

मण्डप का द्वार एक ही दिशा में रखना हो तो उस दिशा के नक्षत्र काल में द्वार का निर्माण करवाना चाहिए। यदि मण्डप निर्माता इस सम्बन्ध में अनभिज्ञ हो तो शिल्पी द्वारा तद्विषयक मार्गदर्शन प्राप्त कर फिर मण्डप निर्माण करवाये।[5]

मण्डप कैसा हो? निर्वाणकलिका आदि प्रतिष्ठाकल्पों के अनुसार मण्डप निर्मल, विस्तीर्ण, श्रेष्ठ वेदिकायुक्त, तोरण वाला, लटकती हुई फूल मालाओं वाला, चार द्वार वाला और विविध वाजिंत्र शब्दों एवं मांगलिक गीतों से गुंजायमान होना चाहिए।

सामान्यतया मण्डप रचना आकर्षक और चित्तप्रसन्नक हो उस रीति से उसे अलंकृत करना चाहिए। वहाँ किसी भी प्रकार के भय, खेद, दु:ख, उपद्रव अथवा शोकजनक दृश्यों का आलेखन या वैसे चित्रपट्ट नहीं लगाने चाहिए।

मण्डप को कैसे सजाएँ? मंडप को सोना और चाँदी की जरी से युक्त रेशमी वस्त्रों से सजाना चाहिए, क्योंकि उत्तम वर्ण वाले वस्त्रों की सजावट को देखने पर आन्तरिक प्रसन्नता में अभिवृद्धि होती है। इसके साथ ही तीर्थंकर परमात्मा के कल्याणक प्रसंगों, उद्बोधक घटनाओं, महातीर्थों की रचना, धार्मिक और ऐतिहासिक वैराग्योत्पादक दृश्यों की रचनाओं से मण्डप को विशेष सुशोभित करना चाहिए।

मण्डप भूमि कैसी हो? जहाँ मण्डप का निर्माण करना हो वह भूमि स्वाभाविक रूप से शुद्ध, हड्डी आदि शल्य से रहित, मल-मूत्र आदि अपवित्र वस्तुओं से रिक्त और आमिषभोजी निवास स्थानों से दूर होनी चाहिए। प्रतिष्ठा उत्सव से पूर्व ही उक्त लक्षण वाली भूमि देखकर मण्डप हेतु निश्चित कर लेनी चाहिए।

मण्डप भूमि कहाँ हो? जहाँ तक संभव हो प्रतिष्ठा मंडप की भूमि जिनालय के सामने (पूर्व दिशा में) होनी चाहिए। यदि जिनालय के सम्मुख पर्याप्त भूमि न मिले तो मन्दिर के दाहिनी ओर (उत्तर दिशा में) पूर्वोक्त लक्षण वाली भूमि का शोधन कर वहाँ मंडप बनवाना चाहिए, परन्तु जिनालय के पृष्ठ भाग में कभी भी मंडप नहीं बनवाना चाहिए।[6]

मण्डप के प्रकार– आचार्य पादलिप्तसूरि ने बिम्ब प्रतिष्ठा के निमित्त दो मण्डप बनाने का निर्देश किया है– 1. अधिवासना मंडप (प्रतिष्ठा मंडप) और 2. स्नान मंडप।[7] वर्तमान में तीन मण्डपों की रचना की जाती है– 1. प्रतिष्ठा मंडप 2. स्नान मंडप और 3. सभा मंडप। इन तीनों मंडपों के लिए जो भूमि पर्याप्त हो उसे ही मंडप के लिए योग्य मानना चाहिए।

स्नान मंडप प्रतिष्ठा मंडप से पूर्व या ईशान दिशा में बनवाना चाहिए और सभा मंडप की रचना उसके सम्मुख करवानी चाहिए।

प्रतिष्ठा मंडप में नवीन बिम्बों की अधिवासना आदि विधियाँ और महापूजन आदि अनुष्ठान सम्पन्न करते हैं। सभा मंडप में पंच कल्याणक महोत्सव, प्रवचन आदि कार्यक्रम किये जाते हैं।

5. वेदिका रचना– जिन प्रतिमाओं को विराजमान करने का ऊँचा स्थान वेदिका कहलाता है। संस्कृत कोश के अनुसार उच्च समतल भूमि एवं आंगन के बीच में बना चबूतरा वेदी कहा जाता है। यहाँ प्रस्तुत अर्थ भी इष्ट है।

प्राचीन काल में मंडप के अनुसार वेदिका का निर्माण किया जाता था, परन्तु आज यह पद्धति प्रचलित नहीं है। आधुनिक प्रतिष्ठाकल्पों में तीन हाथ परिमाण समचौरस और डेढ़ हाथ प्रमाण ऊँची वेदिका निर्मित करने का विधान है किन्तु इस सिद्धान्त का अनुकरण भी नहींवत किया जाता है।

वेदिका कैसी हो? यदि मंडप समचौरस हो तो वेदिका भी चौरस बनवाई जाती है और यदि मंडप उत्तर-दक्षिण दिशा में लम्बा हो तो वेदिका भी उत्तर-

दक्षिण दिशा में (बायें-दायें) लम्बी करवाई जाती है। कुछ भी हो, वेदी की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई में शुभ आय अवश्य देखनी चाहिए।

यदि जिनबिम्बों की संख्या अधिक हो तो मण्डप का मध्यपद विस्तृत होना चाहिए अर्थात जिनबिम्बों की संख्या के अनुसार पीठिका (वेदी) लम्बी-चौड़ी और उन्नत बनवानी चाहिए। फिर जिनबिम्बों की अपेक्षा के अनुसार वेदिका (पीठिका) की चारों दिशाओं में तीन, पाँच, सात अथवा उससे भी अधिक मेखलाओं (सहारा दे सके ऐसे ऊँचे स्थान) का निर्माण करवायें, जिससे अनेक जिन बिम्बों का समावेश अच्छी तरह हो सके और सभी प्रतिमाओं के दर्शन भी भलीभाँति किए जा सकें।

वेदिका के प्रकार– निर्वाण कलिका के अनुसार वेदिका आठ प्रकार की होती है। आचार्य पादलिप्तसूरि ने प्रत्येक वेदी के भिन्न-भिन्न नाम बतलाये हैं– 1. नन्दा 2. सुनन्दा 3. प्रबुद्धा 4. सुप्रभा 5. सुमंगला 6. कुमुदमाला 7. विमला और 8. पुण्डरीकिणी।

1. एक हाथ चौकोर और चार अंगुल ऊँची वेदिका नन्दा कहलाती है।

2. दो हाथ चौकोर और आठ अंगुल ऊँची वेदिका सुनन्दा कहलाती है।

3. तीन हाथ चौकोर और बारह अंगुल ऊँची वेदिका प्रबुद्धा कहलाती है।

4. चार हाथ चौकोर और सोलह अंगुल ऊँची वेदिका सुप्रभा कहलाती है।

5. पाँच हाथ चौरस और बीस अंगुल ऊँची वेदिका सुमंगला कहलाती है।

6. छह हाथ चौरस और चौबीस अंगुल ऊँची वेदिका कुमुदमाला कहलाती है।

7. सात हाथ चौरस और अट्ठाईस अंगुल ऊँची वेदिका विमला कहलाती है।

8. आठ हाथ चौरस और बत्तीस अंगुल ऊँची वेदिका पुण्डरीकिणी कहलाती है।

शुभ आय लाने हेतु वेदिकाओं के उपर्युक्त माप में एक-एक अंगुल की वृद्धि कर सकते हैं।[8]

आचार्य पादलिप्तसूरि के पश्चाद्वर्ती प्रतिष्ठाकल्पों में वेदिकाओं का स्वरूप एवं परिमाण उससे भिन्न बतलाया गया है। इसका मुख्य कारण प्रतिष्ठा मंडप का रूपान्तरण होना माना जा सकता है। आचार्य पादलिप्तसूरि ने प्रतिष्ठा मंडप को अधिवासना मंडप कहा है। इसका अर्थ यही है कि वह मण्डप

अधिवासना और प्रतिष्ठा सम्बन्धी मुख्य क्रियाओं के लिए बनवाया जाता था, उसमें प्रतिष्ठाचार्य, शिल्पी और चार इन्द्र प्रमुख स्नात्रकार ही जाते थे और प्रतिष्ठा सम्बन्धी विधि-विधान करते-करवाते थे। प्रतिष्ठा मंडप के द्वार के सामने दर्शकों के लिए सभा मंडप बनवाया जाता था। कालान्तर में इस चतुर्मुख प्रतिष्ठा मण्डप के स्थान पर एक ही दिशा में तीन द्वार और पांच द्वार के मण्डप बनने लगे हैं तथा चौकोर मण्डप के स्थान पर लम्ब चौरस और माप में उत्कृष्ट परिमाण से भी अधिक माप वाले प्रतिष्ठा मंडप बनने लगे हैं। क्रियाकारकों और दर्शकों का एक ही मंडप में समावेश होने लगा है, इसी कारण वेदिकाएँ भी मध्य भाग की जगह सामने की दीवार के समीप बनने लगी हैं और वह भी चौकोर के स्थान पर लम्ब चौरस आकार में बनती है।

वेदिका और मंडप के सम्बन्ध में यह परिवर्तन अंजन प्रतिष्ठा और स्थापना प्रतिष्ठा के अन्तर को विस्मृत करने के कारण आया है। स्थापना प्रतिष्ठा के लिए मंडप और वेदिका का यह परिवर्तित स्वरूप भले ही स्वीकार कर लिया जाये तो भी अंजनशलाका-प्रतिष्ठा के प्रसंग पर मंडप और वेदी का निर्माण शास्त्रोक्त विधि के अनुसार ही करना चाहिए।

दिगम्बरीय आचार्य जयसेन के अनुसार वेदी चार प्रकार की होती है– 1. चौकोर वेदी 2. कमलाकार वेदी 3. अर्ध चन्द्राकार वेदी 4. अष्टकोण वेदी। इनमें प्रथम वेदी सुखदायिनी है और उसका उपयोग बिम्ब प्रतिष्ठा में, द्वितीय वेदी का उपयोग ज्ञान कल्याणक में, तृतीय वेदी का जन्म कल्याणक में तथा चतुर्थ का उपयोग तप कल्याणक में होता है। इस प्रकार मंदिरों में अधिकांश चौकोर एवं कमलाकार वेदी पर बिम्ब स्थापित किए जाते हैं।[9]

वेदिका निर्माण के साधन– वेदी किन सामग्रियों से बनवाई जाये? आचार्य पादलिप्तसूरि ने इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं दी है किन्तु परवर्ती विधि ग्रन्थों में शुद्ध जल एवं शुद्ध मिट्टी से निर्मित कच्ची ईंटों से वेदी बनवाने का उल्लेख है। तदनुसार वेदिका का निर्माण कच्ची ईंटों से करवाना चाहिए।

वेदिका निर्माण कब और उसके अधिकारी? सामान्यत: अंजनशलाका-प्रतिष्ठा और बृहद महापूजाओं के समय वेदिका की रचना होती है। आजकल दीक्षा आदि में भी वेदिका बनवाते हैं। उस वेदी पर चल प्रतिष्ठित जिन प्रतिमा या पंच धातु की प्रतिमा विराजमान करते हैं। इन वेदिकाओं का निर्माण शुभ भाव युक्त कारीगरों के द्वारा करवाया जाता है।

वेदिका रचना आवश्यक क्यों? प्रतिष्ठा मंडप में वेदिका का निर्माण नूतन प्रतिमाओं को उच्च आसन प्रदान करने एवं उनकी श्रेष्ठता को दर्शाने के प्रयोजन से किया जाता है।

दूसरा हेतु यह माना जा सकता है कि प्रतिमाओं को मूल गादी पर विराजमान करने से पूर्व उनके ऊपर कुछ विधि-विधान किये जाते हैं। एतदर्थ वेदिका के रूप में एक निश्चित स्थान तैयार कर लेने पर प्रतिदिन के अनुष्ठान व्यवस्थित सम्पन्न हो सकते हैं। प्रतिमाओं को वेदी पर विराजमान करने से दूर से भी दर्शन किए जा सकते हैं। वेदिका के माध्यम से नूतन बिम्बों के सभी कार्य एक स्थान पर सम्पन्न होने से प्रतिमाएँ अधिक प्रभावी बनती हैं। यदि प्रतिमाएँ अधिक संख्या में हों और अधिवासना आदि के लिए पुनः पुनः स्थान परिवर्तन करना पड़े तो उनके नीचे गिरने, खंडित होने एवं अस्त-व्यस्त होने आदि संबंधी आशातनाएँ हो सकती हैं। प्रतिमाओं को ऊँचे आसन पर विराजमान करना सम्मानजनक होने से सभी अनुष्ठान पूर्णतः फलदायी और सार्थक बनते हैं।

वेदिका निर्माण का एक हेतु यह भी है कि वेदिका पुरुष के नाभि प्रमाण से ऊपर होनी चाहिए, जिससे अभिषेक आदि करते समय स्नात्रकारों के अधोभाग का स्पर्श प्रतिमा से न हो। हर जगह प्रमाणोपेत चौकी या सिंहासन आदि उपलब्ध हो, यह जरूरी नहीं है अतः इस दृष्टि से भी वेदिका की उपयोगिता सिद्ध होती है।

एक अन्य कारण यह माना जा सकता है कि कदाचित प्रमाणोपेत चौकी या त्रिगड़ा आदि प्राप्त हो भी जाये तो उन पर एक या दो जिनबिम्ब ही रखे जा सकते हैं। दूसरा, प्रतिष्ठा सम्बन्धी क्रिया-विधियों को सम्पन्न करने के लिए अचल आसन चाहिए। सिंहासन आदि चल होते हैं किन्तु वेदिका अचल होती है इसलिए भी वेदिका की रचना आवश्यक है। हिन्दू परम्परा में भी मांगलिक कार्यों में वेदिका का उपयोग किया जाता है।

6. श्रीसंघ भक्ति– अंजनशलाका-प्रतिष्ठा के पुण्य प्रसंग पर साधर्मिक वात्सल्य करना भी प्रतिष्ठा महोत्सव का एक आवश्यक अंग है।

यदि एक व्यक्ति प्रतिष्ठा का आयोजन कर रहा हो तो उसे स्वयं की बाह्य शक्ति का विचार कर साधर्मी वात्सल्य अथवा नवकारसी की व्यवस्था करनी

चाहिए और उसके अनुसार ही संघ समुदाय एकत्रित करना चाहिए। प्रतिष्ठा का महत्त्व खाने-पीने या मौज-शोक करने में नहीं है प्रत्युत उसके क्रिया विधान की शुद्धता में और मानसिक उल्लास में है। इसलिए पहले से ही शक्ति का अनुमान कर खर्च करना चाहिए जिससे अधिक व्यय होने के कारण मानसिक प्रसन्नता खण्डित न हो।

यदि प्रतिष्ठा का आयोजन स्थानीय संघ अथवा सकल संघ कर रहा हो और संघ भक्ति के निमित्त साधर्मिक वात्सल्य अथवा नवकारसी करवाने वाले कई व्यक्ति हों तो शुभ मुहूर्त्त में चढ़ावा बोलकर आदेश देना चाहिए।

मारवाड़ में नवकारसी के निमित्त जो चढ़ावे बोले जाते थे उस समय नवकारसी का आदेश लेने वाला गृहस्थ परिवार ही नवकारसी का पूरा खर्च देता था, परन्तु कालान्तर में अन्य प्रदेशों की तरह वहाँ भी बोली गई रकम में से ही नवकारसी का खर्च किया जाता है। इस स्थिति में चढ़ावे की रकम नवकारसी खर्च के जितनी भी आना संभव न हो तो एक निश्चित संख्या में रकम का निर्णय कर वहाँ से चढ़ावा बोलने की शुरुआत करनी चाहिए। जिससे साधारण खाता में कमी न हो और नवकारसियों के सहयोग से प्रतिष्ठा के आयोजन कर्त्ताओं को अधिक खर्च भी नहीं करना पड़े।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि महोत्सव में भिन्न-भिन्न नगरों से पधारे हुए पुण्यवन्त साधर्मिकों और स्थानीय साधर्मिकों की भक्ति करने हेतु उन्हें अभक्ष्य, अनन्तकाय और रात्रिभोजन आदि का दोष न लगे, ऐसे जैनाचार की परिपाटी के अनुसार साधर्मी भक्ति का आयोजन करना चाहिए।

पूर्वकाल में साधर्मिक वात्सल्य में हरी सब्जियों का उपयोग नहीं होता था। आजकल जीव रक्षा का विवेक नहींवत रखा जाता है। प्राचीनकाल में धार्मिक आयोजनों में भोजन करने के पश्चात थाली-कटोरी को राख से मांजकर उन्हें सूखे वस्त्रों से पोंछा जाता था, जिससे अप्काय जीवों की विराधना के महापाप से बच जाते थे। आज आधुनिक साधनों के जाल में इतने फंस गए हैं कि पाप कार्यों से छूटने के भाव विस्मृत होते जा रहे हैं।

7. श्रीसंघ निमन्त्रण पत्रिका– प्रतिष्ठा उत्सव की शोभा बढ़ाने एवं जिनशासन की प्रभावना करने हेतु विभिन्न देशों और नगरों के स्थानीय संघों को

आमन्त्रित करना चाहिए। लगभग 100 वर्ष पहले तक प्रतिष्ठा महोत्सवादि के पुण्य प्रसंग पर परिमित शब्दों में सारभूत अर्थ वाली निमन्त्रण पत्रिका लिखी जाती थी, परन्तु विगत 40 वर्ष से शनैः शनैः आडम्बर युक्त पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी हैं। आजकल प्रतिष्ठा की आमंत्रण पत्रिका डेढ़ हाथ लम्बी एवं एक हाथ चौड़ी न हो तो आम जनता उस प्रतिष्ठा को सामान्य मानती है तथा पत्रिका में आकर्षक रंग आदि न हों तो वह कई लोगों को पसंद तक नहीं आती है।

पत्रिका सम्बन्धी यह परिवर्तन विचारणीय है। सच तो यह है कि पत्रिका को चित्ताकर्षक बनाने मात्र से उसका मूल्य नहीं बढ़ जाता।

पत्रिका में विशेष आमन्त्रण के रूप में हस्ताक्षर करने का भी रिवाज है। किसी स्थान पर नगर सेठ के द्वारा तो किसी जगह संघ के अग्रगण्यों द्वारा हस्ताक्षर करने का भी चढ़ावा बोला जाता है, उससे लाखों की आवक होती है। अनेक नगरों में प्रतिष्ठा दिन की नवकारसी (फले चुंदडी) का लाभ लेने वाला गृहस्थ आमंत्रण पत्रिका में हस्ताक्षर करता है। इसमें भी यह विवेक रखना जरूरी है कि हस्ताक्षर करने वाला श्रावक प्रसिद्ध और संघ का अग्रगण्य होना चाहिए। वर्तमान में हस्ताक्षर की इस पद्धति को 'जय जिनेन्द्र' के रूप में दर्शाया जाता है।

श्री संघ निमन्त्रण पत्रिका लिखने का मूल ध्येय यह था कि अन्य गाँव एवं नगर के संघ इस महामांगलिक महोत्सव में सम्मिलित होकर पुण्यानुबन्धी पुण्य का उपार्जन करें। परन्तु आजकल की श्रीसंघ पत्रिका में प्रायः लाभार्थी परिवारों के नाम और उनके फोटों के ही दर्शन होते हैं। आधुनिक युग की निमन्त्रण पत्रिका में मूलभूत उद्देश्य की गन्ध ही समाप्त हो गई है।

श्रीसंघ को निमन्त्रित एवं उनकी भक्ति करने से गृहस्थ के वार्षिक कर्तव्य का पालन होता है, समस्त संघाधिकारियों में पारस्परिक सद्भाव एवं समन्वय वृत्ति का वर्धन होने से जिन धर्म की महिमा बढ़ती है, पूजादि अनुष्ठानों में उत्साहवर्द्धन होता है, धर्म आराधनों में मार्गदर्शन प्राप्त होता है तथा अनेकों के सहयोग से कठिन कार्य भी सहज हो जाते हैं। इस तरह प्रतिष्ठा उत्सव के पूर्व कृत्यों में छठवाँ-सातवाँ कर्तव्य कई दृष्टियों से अनुकरणीय है।

8. औषधियों को चूर्ण करने वाली स्त्रियाँ– प्रतिष्ठा उत्सव प्रारम्भ होने से पहले ही औषधियाँ घोटने वाली एवं पौंखणा आदि का कार्य करने वाली

नारियों की व्यवस्था कर देनी चाहिए। निर्वाण कलिका आदि ग्रन्थों में औषधि चूर्ण और पौंखण आदि करने वाली सन्नारियाँ कैसी हो, इसका विस्तृत वर्णन अध्याय-2 में किया जा चुका है।

9-10. प्रतिष्ठाचार्य एवं स्नात्रकार का स्वरूप– इन कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन अध्याय-2 में कर चुके हैं।

11. अमारी घोषणा– प्रतिष्ठा उत्सव के दरम्यान 'हिंसा निषेध की उद्घोषणा' करवानी चाहिए। इस पुण्य प्रसंग पर प्राणी मात्र की रक्षा के लिए अभयदान देना या दिलवाना भी प्रतिष्ठा का एक मुख्य अंग है।

यदि राज्य शासक जैन धर्म का अनुयायी हो तो उसके माध्यम से सम्पूर्ण देश में 'अमारी' की घोषणा करवानी चाहिए, यदि ऐसा न बन सके तो जहाँ प्रतिष्ठा हो उस गाँव या नगर में अमारी घोषणा करवाये। कदाचित उत्सव के सभी दिनों में हिंसा को नहीं रोका जा सके तो प्रतिष्ठा के दिन तो राजा, राजाधिकारी या ग्रामाधिपति से प्रार्थना कर हिंसा रोकनी ही चाहिए। किसी भी उपाय से देश, मंडल या नगर में एक दिन के लिए भी अमारी की घोषणा नहीं करवायी जा सके तो जिस संघ में प्रतिष्ठा उत्सव चल रहा हो उतने दिन के लिए उस समाज में आरम्भ निषेध की घोषणा तो करवानी ही चाहिए।

आरम्भ जन्य प्रवृत्तियों को रोकने से प्रत्येक जन उत्सव में भाग ले सकते हैं तथा सांसारिक कार्यों के निमित्त हिंसा प्रवृत्ति भी कम होगी।

अमारी घोषणा से अमुक दिनों तक मूक पशुओं की करुण आहें न निकलने से देश का वायुमण्डल शुद्ध बनता है, अहिंसात्मक विचारों के प्रसरण से जनमानस की प्रसन्नता में अभिवृद्धि होती है जिससे उनके विपुल पुण्य का संचय होता है। कदाचित यह उद्घोषणा सुनकर तस्कर वृत्ति एवं नृशंस हत्याएँ करने वालों में भी अद्भुत परिवर्तन आ सकता है। इस तरह अनेक दृष्टियों से अमारी घोषणा लाभदायी है।

12. प्रतिष्ठा योग्य सामग्री– अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव को सम्पन्न करने के लिए तद्योग्य आवश्यक सामग्री पहले से ही एकत्रित कर लेनी चाहिए, जिससे महोत्सव के दरम्यान भागमभाग न करनी पड़े।

यदि प्रतिष्ठा सामग्री के सम्बन्ध में ऐतिहासिक अनुशीलन किया जाए तो ज्ञात होता है कि इस विषय में प्रतिष्ठा कल्पकारों के भिन्न-भिन्न मत हैं। निर्वाण

कलिका में प्रतिष्ठा सामग्री अत्यन्त सीमित है, परन्तु उससे परवर्ती पद्धतियों में अनुक्रम से सामग्री में बढ़ोत्तरी होती गई है और जब से प्रतिष्ठा विधियों में पंच कल्याणकों को उत्सव के रूप में मनाने की परिपाटी शुरू हुई है उस समय से सामग्री में अनेक गुणा वृद्धि हो गई है। ऐसी स्थिति में सामग्री सूची के अन्तर्गत क्या ग्रहण करें और क्या छोड़ें? एक विकट समस्या उत्पन्न हो जाती है। यहाँ वर्तमान प्रचलित सूची को उपदर्शित करेंगे क्योंकि लोक प्रवाह में उसी को अधिक मान्यता प्राप्त है और विधिकारक भी उसी के अनुसार प्रतिष्ठा आदि कृत्य सम्पन्न करते हैं।

13. व्यवस्थापक– अंजनशलाका-प्रतिष्ठा महोत्सव के कार्य जिन आज्ञा सापेक्ष और जिनशासन की अपूर्व प्रभावना पूर्वक अस्खलित गति से प्रवर्तित हों, ऐसा आयोजन करवाने की तलस्पर्शी समझ रखने वाले 18-20 सक्षम श्रावकों का एक व्यवस्थापक मण्डल तैयार करना चाहिए। उसमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की योग्यता एवं रुचि के अनुसार समितियाँ बनानी चाहिए। इस प्रणाली से प्रतिष्ठा का आयोजन कर्ता अधिकांश जिम्मेदारियों से मुक्त होकर प्रतिष्ठा का पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकता है।

किस कार्य के लिए कितने व्यक्तियों की समिति होनी चाहिए। उसकी एक अनुमानित तालिका नीचे दी जा रही है। देश-काल और कार्य का विचार कर इस मंडल संख्या में परिवर्तन कर सकते हैं–

- भोजन प्रबन्ध समिति-8
- जल प्रबन्ध समिति-2
- नगर सफाई समिति-2
- छाया प्रबन्ध समिति-2
- वरघोड़ा व्यवस्था समिति-4
- पूजा-स्नात्रकार प्रबन्ध समिति-4
- मंगलघर प्रबन्ध समिति-2
- सामग्री प्रबन्ध समिति-4
- संघ स्वागत समिति-5
- प्रतिष्ठा मण्डप समिति-2
- नगर श्रृंगार समिति-2
- यान वाहन समिति-2
- सुरक्षा प्रबन्ध समिति-2
- अतिथि सत्कार प्रबन्ध समिति-4
- वैयावच्च प्रबन्ध समिति-4

प्रतिष्ठाचार्य की वेशभूषा

सामान्यतया प्रतिष्ठाचार्य साधु वेश में होते हैं, परन्तु प्रतिष्ठा के दिन उनकी वेश भूषा में थोड़ा-सा परिवर्तन होता है। निर्वाणकलिका में इस सम्बन्ध

में लिखा गया है कि

वासुकिनिर्मोकलघुनी, प्रत्यग्रवाससी दधानः करांगुली विन्यस्तकाञ्चनमुद्रिकः प्रकोष्ठदेशनियोजितकनककंकणः, तपसा विशुद्धदेही वेदीकायामुदङ्मुखमुपविश्य।

अर्थात बहुत महीन श्वेत और मूल्यवान दो नये वस्त्र धारण किये हुए, हस्तांगुली में सुवर्ण मुद्रिका और मणिबन्ध में सुवर्ण का कंकण धारण किये हुए, उपवास से विशुद्ध देह वाले प्रतिष्ठाचार्य वेदिका पर उत्तराभिमुख बैठकर।[10]

आचार्य पादलिप्तसूरि के उक्त शब्दों का अनुसरण करते हुए श्रीचन्द्रसूरि, जिनप्रभसूरि, वर्धमानसूरि ने भी अपने प्रतिष्ठा कल्पों में **'ततः सूरिः कंकणमुद्रिकाहस्तः सदशवस्त्र परिधानः'** इस वाक्य पद से प्रतिष्ठाचार्य की वेश भूषा का संकेत किया है।

यहाँ प्रश्न होता है कि जैन आचार्य निर्ग्रन्थ साधुओं में मुख्य माने जाते हैं उनके लिए सुवर्ण मुद्रिका और सुवर्ण कंकण धारण करना कहाँ तक उचित है? सुवर्ण-मुद्रा एवं कंकण पहने बिना अंजनशलाका नहीं हो सकती?

इसका समाधान यह है कि प्रतिष्ठाचार्य के लिए मुद्रा-कंकण धारण करना अनिवार्य नहीं है। आचार्य पादलिप्तसूरि ने जिन मूल गाथाओं को अपनी प्रतिष्ठा-पद्धति का मूलाधार माना है और अनेक स्थानों पर 'यदागमः' इत्यादि शब्द के उल्लेख द्वारा जिसका आदर किया है उस मूल प्रतिष्ठागम में सुवर्ण मुद्रा अथवा सुवर्ण कंकण धारण करने का संकेत तक नहीं है। आचार्य पादलिप्तसूरि ने जिस मुद्रा कंकण एवं परिधान का उल्लेख किया है वह तत्कालीन चैत्यवासियों की प्रवृत्ति का प्रतिबिम्ब है। आचार्य पादलिप्तसूरिजी चैत्यवासी थे या नहीं? यह तो ज्ञात नहीं है परन्तु इन्होंने आचार्याऽभिषेक विधि में और प्रतिष्ठा विधि में जो कतिपय बातें लिखी हैं वे चैत्यवासियों की पौषध शालाओं में रहने वाले शिथिलाचारी साधुओं की हैं, इसमें शंका नहीं है। जैन सिद्धान्त के साथ इन बातों का कोई सम्बन्ध नहीं है।

आचार्याऽभिषेक के प्रसंग में इन्होंने भावी आचार्य के लिए तेल मर्दन एवं सधवा स्त्रियों द्वारा वर्णक (पीठी) करवाने तक का विधान किया है। यह सब पढ़कर यही लगता है कि श्री पादलिप्तसूरि स्वयं चैत्यवासी होने चाहिए। कदापि ऐसा मानने में कोई आपत्ति हो तो न भी मानें, फिर भी यह निर्विवाद तथ्य है

कि आचार्य पादलिप्तसूरि के समय चैत्यवासियों का प्राबल्य था। इससे इनकी प्रतिष्ठा पद्धति आदि कृतियों पर भी चैत्यवासियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। साधु द्वारा सचित्त जल, पुष्पादि द्रव्यों से जिन पूजा आदि करने का विधान जैसे चैत्यवासियों की आचरणा है वैसे ही सुवर्ण मुद्रा, कंकणधारण आदि चैत्यवासियों का लक्षण है, सुविहितों का नहीं।

गणि कल्याणविजयजी के मतानुसार श्रीचन्द्रसूरि, आचार्य जिनप्रभसूरि, आचार्य वर्धमानसूरि स्वयं चैत्यवासी नहीं थे किन्तु उनके साम्राज्य काल में अवश्य विद्यमान थे। इसीलिए श्रीचन्द्रसूरि आदि ने प्रतिष्ठाचार्य के लिए मुद्रा एवं कंकण धारण करने का उल्लेख किया है। दूसरा, प्रतिष्ठा-विधि जैसे विषयों में तो पूर्व ग्रन्थों का सहारा लिये बिना चल भी नहीं सकता है। इस विषय में आचारदिनकर ग्रन्थ स्वयं साक्षी है। इसमें जो कुछ संगृहीत है वह सब चैत्यवासियों और दिगम्बर भट्टारकों का है।[11]

प्रतिष्ठा संस्कार किन-किनका किया जाए?

यहाँ प्रश्न होता है कि जिनबिम्ब, क्षेत्रपाल, कलश, ध्वजा आदि की प्रतिष्ठा तो जन सामान्य में प्रसिद्ध है फिर भी जैन मत से किन-किन पदार्थों की प्रतिष्ठा की जा सकती है। आचार दिनकर के अनुसार निम्नोक्त देव-देवियों एवं स्थान विशेषों की प्रतिष्ठा की जानी चाहिए। उनके नाम इस प्रकार हैं– 1. जिनबिम्ब 2. चैत्य (जिनालय) 3. कलश 4. ध्वजा 5. बिम्ब परिकर 6. देवी 7. क्षेत्रपाल 8. गणेश आदि देव 9. सिद्ध मूर्ति 10. समवशरण 11. मन्त्र पट्ट 12. पितृ मूर्ति 13. आचार्य या मुनि की मूर्ति 14. नवग्रह मूर्ति 15. चतुर्निकाय देव 16. गृह (मकान) 17. कुँआ आदि जलाशय 18. वृक्ष 19. अट्टालिका आदि राज भवन 20. दुर्ग और 21 भूमि आदि।

आचार्य वर्धमानसूरि ने जिन वस्तुओं की प्रतिष्ठा करना आवश्यक माना है उनके नाम निर्देश से ऐसा ज्ञात होता है कि विक्रम की 16वीं शती के समय उन सभी की प्रतिष्ठा की जाती होगी इसीलिए उनकी विधियाँ भी उल्लेखित की गई हैं परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो आज इनमें से कुछ प्रतिष्ठाएँ व्युच्छिन्न हो गई हैं। जैसे कई जगह पितृ मूर्ति की स्थापना तो होती है लेकिन उसका प्रतिष्ठा संस्कार किया जाता हो, ऐसा देखने में नहीं आया है। नव निर्मित मकान आदि की वास्तु पूजा, स्नात्र पूजा आदि के द्वारा शुद्धि तो करते

हैं लेकिन प्रतिष्ठा के नाम से कोई क्रिया नहीं होती है। राजभवन और दुर्ग आदि का नव निर्माण कल्पना मात्र रह गया है। चतुर्निकाय-भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष आदि देवों के नाम से पृथक प्रतिष्ठा होती हो, ऐसा प्रचलित व्यवहार में नहीं है। फिलहाल तो घण्टाकर्ण, मणिभद्र, भैरूंजी, भोमियाजी आदि देवों की प्रतिष्ठा ही देखी जाती है। जलाशय एवं वृक्ष स्थानों को पूजनीक और देवाधिष्ठित अवश्य मानते हैं किन्तु इन स्थानों का प्रतिष्ठा संस्कार किया जाता हो, ऐसा ज्ञात नहीं है।

इस प्रकार आचार दिनकर द्वारा मान्य सभी वस्तुओं की प्रतिष्ठा शाश्वत नहीं है काल क्रम के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। किन्तु जिनबिम्ब, कलश, ध्वजा, परिकर, चैत्य, मंत्रपट्ट आदि की प्रतिष्ठाएँ प्रत्येक काल में विद्यमान रहती हैं।[12]

किस प्रतिष्ठा में किनका अन्तर्भाव

यह जानने योग्य है कि जिनबिम्ब आदि की प्रतिष्ठा में अवान्तर रूप से किनका समावेश किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि

- जिनबिम्ब प्रतिष्ठा में पाषाण, काष्ठ, हाथी दाँत, धातु एवं लेप्य (मिट्टी, चूने आदि का घोल तैयार कर उससे) निर्मित प्रतिमाओं का समावेश होता है।
- चैत्य प्रतिष्ठा में महाचैत्य, देवकुलिका, मण्डप, मण्डपिका, कोष्ठ आदि की प्रतिष्ठा सम्मिलित होती है।
- कलश प्रतिष्ठा में स्वर्ण एवं मिट्टी के कलशों की प्रतिष्ठा माननी चाहिए।
- ध्वज प्रतिष्ठा में महाध्वजराज, ध्वजा, पताका आदि का अन्तर्भाव होता है।
- बिम्ब परिकर की प्रतिष्ठा में जल, पट्टासन, तोरण आदि की प्रतिष्ठा अन्तर्निहित है।
- देवी प्रतिष्ठा विधि में अम्बिका आदि सर्व देवियों, गच्छ देवता, शासन देवता, कुल देवता आदि का सन्निवेश होता है।
- क्षेत्रपाल की प्रतिष्ठा में नगर में पूजे जाने वाले एवं देश में पूजे जाने वाले बटुकनाथ, हनुमान, नृसिंह आदि का समावेश होता है।
- गणेश आदि देवों की प्रतिष्ठा में मानू, धनादि की प्रतिष्ठा भी समाहित है।

• सिद्ध मूर्ति प्रतिष्ठा में गणधर गौतम स्वामी आदि जो भी सिद्ध हो गए हैं उनकी प्रतिष्ठा को माना गया है।

• समवशरण की प्रतिष्ठा में वलयाकार कोड़ी के स्थापनाचार्य, पंच परमेष्ठी एवं समवशरण की प्रतिष्ठा भी अन्तर्निहित है।

• मंत्र पट्ट प्रतिष्ठा में धातु उत्कीर्ण वस्त्र से निर्मित पट्ट की प्रतिष्ठा की जाती है।

• पितृमूर्ति प्रतिष्ठा में जिन प्रासाद का निर्माण करवाने वाले, चैत्यगृह बनवाने वाले, फलक (तख्त नाम पट्ट) को स्थापित करने वाले एवं छोटा धड़ा, जिसे शिव आदि की मूर्ति पर टांगते हैं और जिसकी पेंदी के छेद से प्रति समय जल टपकता रहता है ऐसे गलछिब्बरिका से युक्त देव मूर्ति को स्थापित करने वाले पितृ की प्रतिष्ठा की जाती है।

• यतिमूर्ति प्रतिष्ठा में आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि की मूर्ति अथवा स्तूप की प्रतिष्ठा की जाती है।

• ग्रह प्रतिष्ठा में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारा, नक्षत्र आदि की प्रतिष्ठा की जाती है।

• चतुर्निकाय देव प्रतिष्ठा में दिक्पाल, इन्द्र आदि सभी प्रकार के देव, शासन देवता, यक्ष आदि की प्रतिष्ठा की जाती है।

• गृह प्रतिष्ठा में भित्ति, स्तम्भ, देहली, द्वार आदि का भी समावेश होता है।

• वापी आदि जलाशयों की प्रतिष्ठा में बावड़ी, कुआँ, तालाब, झरना, तड़ागिका, विवरिका आदि धर्म कार्यों में उपयोगी जलाशयों को सम्मिलित किया गया है।

• वृक्ष प्रतिष्ठा में उद्यान, वन देवता आदि की प्रतिष्ठा की जाती है।

• अट्टालिक आदि भवन प्रतिष्ठा में शरीर के दाह-संस्कार आदि की भूमि पर चरण प्रतिष्ठा आदि भी समाहित है।

• दुर्ग प्रतिष्ठा में मुख्य मार्ग, यंत्र आदि की प्रतिष्ठा की जाती है।

• भूमि आदि की प्रतिष्ठा विधि में पूजा भूमि, संवेश भूमि, आसन भूमि, विहार भूमि, निधि भूमि आदि भूमियों एवं जल, अग्नि, चूल्हा, बैलगाड़ी, वस्त्र, आभूषण, माला, गंध, ताम्बूल, शय्या, गज-अश्व आदि की अंबाड़ी,

भोजन, भाण्डागार, कोष्ठागार, पुस्तक, जप माला, वाहन, शस्त्र, कवच आदि गृह उपयोगी समस्त उपकरण, सभी तरह के वादिंत्र– इन सर्व वस्तुओं की स्थापना विधि पूर्वक की जाती है।

प्रस्तुत निरूपण आचार दिनकर के आधार पर किया गया है।[13]

वास्तु पूजा कब की जाए?

कूर्म, द्वार, पद्म शिला, प्रासाद पुरुष, कलश, ध्वजा और अरिहंत देव– इन सात की प्रतिष्ठा करते समय वास्तु पूजन करना चाहिए, क्योंकि उक्त सात दिन पुण्य दिन कहलाते हैं।[14]

शान्ति पूजा कब की जानी चाहिए?

भूमि खनन, कूर्म शिला की स्थापना, शिलास्थापन सूत्रपात का समय, खुर शिला की स्थापना, धार प्रतिष्ठा, स्तंभ स्थापना का समय, पाद पद्म शिला, शुकनास, प्रासाद पुरुष, आमलसार, कलश और ध्वजा चढ़ाने के समय– इन चौदह शुभ कार्यों में शान्ति पूजा अवश्य करनी चाहिए।[15]

प्रतिष्ठा विधान में उपयोगी मुद्राएँ

प्रतिष्ठा विधि में मुख्य रूप से 12 मुद्राओं का प्रयोग होता है। किस विधि हेतु कौन सी मुद्रा प्रयुक्त की जाए? इसका वर्णन विधिमार्गप्रपा के अनुसार निम्न प्रकार है[16] –

- जिनमुद्रा से चार कलशों की स्थापना और उनका स्थिरीकरण करें।
- आसन मुद्रा आदि से अधिवासन और मंत्रन्यास करें।
- कलश मुद्रा से कलश का स्नान करें।
- परमेष्ठी मुद्रा से आह्वान मन्त्रों का उच्चारण करें।
- अंग मुद्रा से प्रतिमा, कलश आदि के अंग का विलेपन करें।
- अंजलि मुद्रा से पुष्पादि का आरोपण करें।
- आसन मुद्रा से नन्द्यावर्त्त पट्ट का पूजन करें।
- चक्र मुद्रा से जिनबिम्ब आदि के अंग का स्पर्श करें।
- सुरभि मुद्रा के द्वारा समस्त विकारों से मुक्त होना चाहिए।
- प्रवचन मुद्रा से आचार्य धर्मोपदेश दें।
- गरुड़ मुद्रा के द्वारा दुष्ट शक्तियों से रक्षा करें।

- सौभाग्य मुद्रा से मन्त्र का सौभाग्य करें।
- कृतांजलि मुद्रा से शेष सभी कार्यों को सम्पन्न करें।

वर्तमान प्रचलित प्रतिष्ठा महोत्सव का क्रम

उपलब्ध प्रतिष्ठा कल्पों के अनुसार प्रतिष्ठा के अनन्तर 8-9 या 11 दिन का उत्सव करना चाहिए, परन्तु आजकल प्रतिष्ठा सम्बन्धी सारे उत्सव पहले फिर प्रतिष्ठा होती है। मुख्यतया अंजनशलाका-प्रतिष्ठा में मूलनायक भगवान के पाँच कल्याणक विधिवत सम्पन्न किए जाते हैं। इस विधि को वर्तमान में निम्न क्रमानुसार दस दिन में पूर्ण करते हैं–

प्रथम दिन जलयात्रा, कुंभस्थापना, दीपक स्थापना और जवारारोपण की विधि सम्पन्न की जाती है।

दूसरे दिन नंद्यावर्त्त आलेखन और नंद्यावर्त्तपूजन किया जाता है।

तीसरे दिन क्षेत्रपाल पूजन, दशदिक्पालों की स्थापना एवं पूजन, नवग्रहों की स्थापना एवं पूजन तथा अष्टमंगल स्थापना एवं पूजन की विधि सम्पन्न करते हैं।

चौथे दिन मुख्य रूप से सिद्धचक्र पूजन एवं तत्सम्बन्धी विधि-अनुष्ठान सम्पन्न किए जाते हैं।

पाँचवें दिन तीर्थंकर गोत्र उत्पादक बीसस्थानक पूजन किया जाता है।

छठे दिन च्यवन कल्याणक विधि करते हुए उसके अन्तर्गत इन्द्र-इन्द्राणी की स्थापना, माता-पिता की स्थापना, धर्माचार्य पूजन, कलश में बिम्ब स्थापना, चौदह स्वप्न दर्शन आदि विधि-विधान किए जाते हैं।

सातवें दिन जन्म कल्याणक विधि के अन्तर्गत आत्मरक्षा, शुचिकरण, सकलीकरण, विघ्नोत्त्रासन, जलोच्छाटन, कवच करण, दिग्बंधन, सप्त धान्य वृष्टि, छप्पन दिक्कुमारी उत्सव, शक्र सिंहासन कंपन, मेरूपर्वत पर 250 अभिषेक, माता समीप जिनबिम्ब स्थापन आदि की विधियाँ की जाती हैं।

आठवें दिन पुत्र जन्म की बधाई, अठारह अभिषेक एवं नाम स्थापना आदि क्रियाएँ की जाती हैं।

नौवें दिन पाठशाला गमन, विवाह महोत्सव, कंकण बंधन, पौंखण कर्म, आरती-मंगल दीपक, बिम्ब विलेपन, चंवरी बंधन, मंडप में जिनबिम्ब की स्थापना, घृत गुड़ युक्त चार दीपक की स्थापना, चार कलशों की स्थापना, बिम्ब

के ऊपर कुसुंबी वस्त्र आच्छादन, राज्याभिषेक और दीक्षा कल्याणक विधि की जाती है।

दसवें दिन अधिवासना विधि के अन्तर्गत नवग्रह, दश दिक्पाल पूजन, शान्ति बलि प्रक्षेप, आत्मरक्षा-सकलीकरण आदि तथा परमेष्ठी मुद्रा से जिन आह्वान, अधिष्ठायक देव-देवियों का आह्वान एवं स्थापना विधि की जाती है।

इसी दिन अंजनशलाका विधि, केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव एवं निर्वाण कल्याणक उत्सव की क्रिया भी की जाती है। अंजन विधि के अन्तर्गत दर्पण दर्शन, जिनबिम्ब के दाहिने कर्ण में मन्त्र न्यास, दाहिने कर्ण पर चन्दन विलेपन, सर्वांग स्पर्श, दधि पात्र का दर्शन आदि क्रियाएँ मध्य रात्रि में होती हैं।

केवलज्ञान एवं निर्वाण कल्याणक विधि के अन्तर्भूत समवसरण की स्थापना, 360 क्रयाणकों की पुटिका अर्पण, पुष्प वृष्टि, देववंदन, नव अंगपूजन, 108 अभिषेक, नैवेद्य अर्पण, धर्मदेशना आदि क्रियाएँ की जाती है।

ग्यारहवें दिन मूलनायक आदि जिन बिम्बों की गर्भ गृह में प्रतिष्ठा करते हैं। मध्याह्न में बृहत्शांति स्नात्र महापूजन किया जाता है। तदनन्तर शुभ वेला में नंद्यावर्त्त, प्रतिष्ठा देवता एवं सर्व देवता का विसर्जन करके कंकण मोचन किया जाता है। कंकण मोचन कुछ दिन पश्चात भी किया जा सकता है।

बारहवें दिन द्वारोद्घाटन विधि सम्पन्न करते हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि कलशारोपण एवं ध्वजारोहण की प्रतिष्ठा बिम्ब प्रतिष्ठा के साथ ही की जाती है।

प्रतिष्ठा सम्बन्धी बोलियों का स्पष्टीकरण

जैन धर्म में दीक्षा, प्रतिष्ठा, पदारोहण आदि के अवसर पर बोलियाँ बोलने की परम्परा प्राचीन है। यहाँ चढ़ावाँ, उछामणी, घी आदि बोली के समानार्थक शब्द हैं। भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर चढ़ावे के उद्देश्य भी पृथक-पृथक होते हैं। सामान्यतया संस्था की आमदनी का सरल, सुयोजित एवं संस्कारमय क्रम है।

प्रतिष्ठा की बोलियाँ

प्रतिष्ठा की प्रत्येक बोली देव द्रव्य की कहलाती है। इसकी विशेषता यह है कि ऐसी बोलियों से अच्छी आमदनी होती है। राजस्थान में प्राय: यह रिवाज हो चुका है कि वह बोलियाँ पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में प्रतिष्ठा के पहले दिन या रविवार के दिन रखने से अच्छी होती है। प्रतिष्ठा की बोलियाँ बड़ी होने से इनके लिये जाजम बिछाई जाती है। जाजम बिछाने की भी बोली होती है पर

जाजम ऋतुवती न हुई हो ऐसी कुमारी कन्याओं के हाथ से पूज्य गुरु भगवंत से मुहूर्त्त लेकर बिछाने की पद्धति है। जाजम बिछाने के बाद पूज्य आचार्य भगवंतों के कर-कमलों से जाजम पर वासक्षेप कराने की भी परम्परा है।

इन बोलियों के लाभ लेने वाले भाइयों का नाम देना या नहीं, देना हो तो कितने अक्षरों में देना, उनका शिलालेख मंदिर में किस स्थान पर लगाना इत्यादि श्रीसंघ की साधारण सभा सर्वानुमति से तय कर सकती हैं।

प्राचीन युग में प्रतिष्ठा के शिलालेख मंदिर के गर्भगृह में पबासन के नीचे लगाये जाते थे परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उसे मंदिर के भीतर में न रखकर बाहर की दिवार पर या अन्य किसी स्थान में लगाया जाये, किन्तु प्रतिष्ठा का शिलालेख होना जरूरी माना गया है।

पाँचों कल्याणकों की बोलियाँ भगवान की भक्ति के निमित्त ही की जाती हैं। इन बोलियों से एकत्रित हुई राशि के द्वारा भगवान की आंगियाँ, आभूषण आदि करवायें तो अत्यधिक अच्छा है। मन्दिर के कोई भी विभाग को बनाने में और मरम्मत करवाने में भी यह आमदनी काम में ली जा सकती है।

कई अल्पज्ञ यह कहते हैं कि भगवान की प्रतिमा पूजनीय तो तब बनती है जब अंजनशलाका हो जाये, अत: अंजन के पहले की सभी बोलियों का उपयोग साधारण में भी किया जा सकता है।

प्रथम तो यह कोरा युक्तिवाद है। दूसरी बात यह है कि अंजनशलाका महोत्सव ही जिन भक्ति महोत्सव है, अत: वह प्रतिमा कब पूजनीय बनी यह नहीं देखते हुए गलती से भी इन बोलियों की आमदनी देवद्रव्य के सिवाय और किसी खाते में जमा न करें। जिनप्रतिमा एवं जिनमन्दिर इन दो क्षेत्रों के सिवाय और कोई क्षेत्र में उनका व्यय न करें।

पूजनों की बोली

अंजनशलाका एवं प्रतिष्ठा के दिनों में अनेक पूजन किये जाते हैं जैसे- बीस स्थानक पूजन, नंद्यावर्त पूजन, दिक्पाल पूजन, अष्ट मंगल पूजन, नवग्रह पूजन (पाटला पूजन) देवी-देवता पूजन, ध्वजदंड पूजन, प्रासाद पुरुष पूजन- इन प्रत्येक पूजनों में अनेक विभाग हैं। उदाहरण के लिए देखा जाए तो बृहद नंद्यावर्त पूजन में ही कुल 360 पूजन किये जाते हैं।

इस तरह के विधानों में अधिक से अधिक लोगों को लाभ देकर जोड़ा जा

सकता है। कई बार बोलियाँ अधिक होने पर तत्र उपस्थित गुरु भगवंत एवं श्रीसंघ की सम्मति से रात्रि भोजन त्याग, अभक्ष्य त्याग, सामायिक पूजा आदि नियमों को भी चढ़ावे के रूप में बोला जाता है, जिससे संघ का आचार पक्ष उन्नत बने एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोग भी परमात्म भक्ति का लाभ ले सकें। कुछ स्थानों पर सम्पूर्ण पूजन का एक ही चढ़ावा बोला जाता है तो कहीं-कहीं पर अलग-अलग विभाग की बोलियाँ होती है। वर्तमान में एक नियत नकरा रखने का प्रचलन भी कहीं-कहीं देखा जाता है।

यह सब बोलियाँ देवद्रव्य की गिनी जाती हैं। यदि संघ में साधारण की आवक कम हो और देव द्रव्य से साधारण में उधार लेना पड़े तो इन बोलियों में से पूजन उपयोगी द्रव्य का खर्च किया जा सकता है। पर अधिक श्रेयस्कर यह है कि महोत्सव पर देवद्रव्य की निधि न खर्चनी पड़े। पूजन उत्तम द्रव्य से ही होना चाहिए। लाखों रुपये के इधर-उधर के खर्च करने वाले जब पूजन में तुच्छ द्रव्यों से काम चला लेते हैं तो बड़ा दुःख होता है। इस विषय में सुज्ञ श्रावक वर्ग से यही निवेदन है कि शास्त्रीय तरीकों से बने हुए द्रव्यों की प्राप्ति के लिये एक विश्वसनीय स्थान बनाना चाहिए जहाँ से भारत भर के सभी मंदिर वालों को सम्पूर्ण शुद्ध सामग्री प्राप्त हो सके। शास्त्रों में कहा गया है कि तुच्छ द्रव्यों से पूजा करने से नीच गोत्रकर्म का बंध होता है।

रथयात्रा की बोलियाँ

अंजनशलाका महोत्सव में पाँच कल्याणक मनाये जाते हैं। कल्याणक के विधान एवं उजवणी के बाद में रथयात्रा निकालना जरूरी होता है, पर दीक्षा कल्याणक में प्रथम रथयात्रा होती है बाद में उजवणी होती है। इस प्रकार पाँच कल्याणक की पृथक-पृथक रथयात्रा निकाली जा सकती है। पर बहुधा निर्वाण कल्याणक की यात्रा निकालने का समय नहीं रहता है, अतः चार रथयात्रा चारों कल्याणक की और एक प्रारम्भ में शांतिस्नात्र के लिये जल लाने हेतु जलयात्रा भी निकाली जाती है। ये पाँचों रथयात्राएँ बड़ी शान से निकालनी चाहिए।

जिस देश में जिनेश्वर भगवंत की प्रतिमा की प्रतिष्ठा अच्छी तरह से होती है, उस देश का राजा सैन्य शक्ति से वृद्धि पाता है, उनका यश समस्त दिशाओं में फैल जाता है एवं उनका पुण्य विस्तृत होता हुआ वृद्धिंगत होता है।

विशिष्ट भावों से की गई जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा उस देश के समस्त

उपद्रवों का हरण करती है, दुर्भिक्ष-अकाल आदि का शमन करती हैं तथा सुख-सौहार्द एवं शांति का वातावरण निर्मित करती है। जो भक्तिपूर्ण हृदय से जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा करते हैं, अन्यों से करवाते हैं और प्रतिदिन प्रतिष्ठा की प्रशंसा गुणगान करते हैं वे सभी सुखी होते हैं।

इससे भी दीक्षा कल्याणक की यात्रा भव्यातिभव्य होनी चाहिए। इस रथयात्रा में शोभा वृद्धि हेतु जितने भी साधन लाना चाहें सब ला सकते हैं। इससे सम्बन्धित सभी बोलियाँ देव द्रव्य की होती हैं। उसे जिनप्रतिमा एवं जिनमंदिर इन दो क्षेत्रों में व्यय कर सकते हैं।

इस प्रकार मूलनायक भगवान के पाँचों कल्याणक की यात्रा का आयोजन करना चाहिए।

भगवान के प्रवेश की बोलियाँ

अंजनशलाका का विधान हो जाने के बाद जिनबिम्ब का मंदिर के मूल गंभारे में प्रवेश करवाते हैं। प्रवेश का मुहूर्त्त जटिल है। कभी-कभी मुहूर्त अच्छा होने पर भी विलम्ब करना पड़ता है।

प्रवेश करवाना यह भी एक महामांगलिक कृत्य है। इस प्रसंग से सन्दर्भित सब बोलियाँ देवद्रव्य की मानी गई हैं। उनका उपयोग आगे बताए अनुसार कर सकते हैं।

प्राय: जहाँ आबादी कम हो और बोली बोलने वाले अधिक नहीं हों वहाँ पर जिन्होंने प्रतिष्ठा करवाने का चढ़ावा लिया है उनको ही यह आदेश दिया जा सकता है। परन्तु प्रतिष्ठा की बोली वालों को ही प्रवेश का अधिकार है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। उनका चढ़ावा संघ अलग ही बुलवाता है। अंजनशलाका एवं प्रतिष्ठा महोत्सव की बोलियों की सूची इतनी विस्तृत होती है कि संघ के आगेवान कितना भी चाहें पर निर्णीत कार्यक्रम के अनुसार आदेश देने में अशक्त रहते हैं। अत: इन दिनों में संघ के भाविकों को जागृत रहना चाहिए, क्योंकि आदेश देने हेतु निर्धारित समय में परिवर्तन हो गया हो तो यह लाभ गंवाना न पड़े और निरर्थक वाद-विवाद न करना पड़े। वस्तुत: बोली बुलवाना भी एक कला है जो सबको हासिल नहीं होती है। इसलिए ऐसे समय पर बोली बुलवाने वाले कुशल भाविकों को बुलाना चाहिए। बोली बोलने वाले में हृदय

की भक्ति, ऊँची आवाज, तीक्ष्ण नजर, सबसे प्रेम, जोड़ने में कुशलता इत्यादि आवश्यक गुण होने चाहिए।

प्रतिष्ठा जिनशासन का एक महत्त्वपूर्ण विधान है। इसमें सम्पन्न किए जाने वाले विधि-विधान अपने आप में विशिष्ट एवं मौलिक हैं। उन क्रिया-विधानों के छोटे-छोटे पक्षों को जानना एवं समझना नितांत जरूरी है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर इस अध्याय में कुछ सार्वजनिक विषयों को अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इस अध्याय के द्वारा जनमानस में रही भ्रान्त मान्यताएँ समाप्त हो सके एवं आवश्यक तथ्यों का ज्ञान हो सकें यही अन्तर प्रयास।

सन्दर्भ-सूची

1. *निष्पन्नस्यैवं खलु, जिनबिम्बस्योदिता प्रतिष्ठाऽऽशु।*
   दशदिवसाभ्यन्तरतः, सा च त्रिविधा समासेन॥
   षोडशकप्रकरण, 8/1
2. *वही, 8/1*
3. *वही, भा. 1, पृ. 181, 162*
4. *पंचाशकप्रकरण, 8/17*
5. *कल्याणकलिका, भा.2, पृ. 48*
6. *वही, भा. 2, पृ. 47*
7. *(क) निर्वाणकलिका, पृ. 24*
   (ख) कल्याणकलिका, भा. 2, पृ. 20
8. *निर्वाणकलिका, पृ. 63*
9. *प्रतिष्ठा पाठ, श्लोक 228-229*
10. *निर्वाणकलिका, पृ. 12-1*
11. *कल्याणकलिका, पृ. 208-209*
12. *आचारदिनकर, पृ. 141*
13. *वही, पृ. 141-142*
14. *प्रासाद मंडन, 1/36*
15. *वही, 1/37*
16. *जिणमुद्द[1] कलस[2] परमेट्ठि[3],*
    अंग[4] अंजलि[5] तहासणा[6] चक्का[7]।

सुरभी[8] पवयण[9] गरुडा[10],
सोहग्ग[11] कयंजली[12] चैव ॥
जिण मुद्दाए चउकलस ठावणं, तह करेइ थिरकरणं ।
अहिवासमंतनसणं, आसण मुद्दाइ अन्ने उ ॥
कलसाए कलसन्हवणं, परमेट्ठीए उ आहवणमंतं ।
अंगाइ समालभणं, अंजलिणा पुप्फ रूहणाई ॥
आसणयाए पट्टस्स, पूयणं अंगफुसण चक्काए ।
सुरभीइ अभयमुत्ती, पवयण मुद्दाइ पडिवूहो ॥
गरूडाइ दुट्ठरक्खा, सोहग्गए य मंत सोहग्गं ।
तह अंजलीइ देसण, मुद्दाहिं कुणह कज्जइं ॥

विधिमार्गप्रपा, प्रतिष्ठाविधि, पृ. 109

●

अध्याय-4

जिनालय आदि का मनोवैज्ञानिक एवं प्रासंगिक स्वरूप

मानव मन की चंचलता लोक प्रसिद्ध है। चंचल मन को स्थिर करने के लिए आलम्बन नितांत आवश्यक है। विविध धर्म एवं संप्रदाय के धर्माचार्यों ने इस सत्य को जाना एवं अनुभव किया। इसीलिए मन्दिर, मस्जिद, चर्च, ध्यान केन्द्र जैसे अध्यात्म स्थलों का निर्माण प्रत्येक संस्कृति में आज भी जीवंत है। इसी सच्चाई को ध्यान में रखकर इस अध्याय में मन्दिर सम्बन्धी कई ऐसे पक्षों को उजागर किया जा रहा है जिसका सम्बन्ध मनुष्य के मन से है। इन क्रियाओं में यदि व्यक्ति का मानसिक जुड़ाव हो जाए तो वह श्रेष्ठ मनोदशा को प्राप्त कर वीतराग मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

प्रतिष्ठा एक मंगल अनुष्ठान कैसे?

वीतराग जैसे आराध्य देवों को प्रतिमा के रूप में स्थापित करना एक शुभ क्रिया है। प्रत्येक शुभ क्रिया मांगलिक रूप से सम्पन्न की जानी चाहिए। जैन धर्म में अरिहंत परमात्मा और गुरु को वन्दन करना तथा उनका स्मरण करना, इसे उत्कृष्ट मंगल माना गया है। प्रतिष्ठा में देव तत्त्व एवं गुरु तत्त्व दोनों का समावेश होता है।

लोक व्यवहार में देखते हैं कि किसी भी अच्छे कार्य को प्रारंभ करने से पूर्व शुभ या मंगल के रूप में कुछ विधान अथवा शुभ शकुन के रूप में किसी का दर्शन आदि किया जाता है जिससे कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो सके।

कुछ लोग इसे श्रद्धा का विषय मानते हैं तो कई अंधविश्वास। कुछ जनों का मत है कि यह एक सहायक तत्त्व के रूप में कार्य करता है तो कई मानते हैं कि यह पुरुषार्थ में कमी लाता है। आखिर वस्तु स्थिति क्या है? इसे दर्शाने वाले कुछ तथ्य निम्नोक्त हैं–

प्रश्न हो सकता है कि अच्छा कार्य करना हो तो कर लेना चाहिए, उसमें मंगल आदि की क्या आवश्यकता?

समाधान- एक बहु प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'– श्रेष्ठ कार्यों में अनेक विघ्न आते हैं। परीक्षा हमेशा सत्यवादी, दृढ़ मनोबली, साहसी, पराक्रमी लोगों की ही होती है ताकि वे स्वर्ण की भाँति विघ्न रूपी अग्नि में तपकर अधिक खरे और निर्मल हो जाएँ।

सामान्य स्थिति में भी हम देखते हैं कि किसी श्रेष्ठ या मांगलिक कार्य में हजारों रोड़े एवं विपदाएँ आती हैं। परन्तु बेईमानी, झूठ-कपट, विश्वासघात, चोरी जैसे कार्यों में कभी कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती। कंजूस को धन संग्रह में अन्तराय नहीं आता किन्तु दान आदि क्रिया करनी हो तो बहुत विघ्न आ जाते हैं। खाने में विघ्न नहीं आता परन्तु तपस्या करनी हो तो कोई न कोई परेशानी जरूर आयेगी। विघ्न की उपस्थिति में मनोबल कमजोर हो सकता है, जबकि मंगल रूप क्रिया करने से विघ्नों का निवारण होता है तथा एक विधेयात्मक शक्ति की प्राप्ति होती है। संभावित विघ्नों को निरस्त करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है और मानसिक रूप से भी एक विशेष दृढ़ता आती है, बशर्ते श्रद्धा मजबूत हो।

यहाँ पुनः प्रश्न होता है कि मंगल क्रियाओं से विघ्नों का नाश कैसे संभव है?

समाधान- विघ्न आने का मुख्य कारण व्यक्ति के स्वयं के अशुभ कर्म होते हैं। उन दुष्कर्मों के उदय से ही आपत्तियाँ आती हैं। अशुभ कर्मबन्ध का मुख्य कारण है अशुभ भाव। ऐसी स्थिति में शुभ भावों के द्वारा, शुभ अध्यवसायों का निर्माण कर सहज रूप से अशुभ भावों का नाश किया जा सकता है। उत्कृष्ट मंगल करने वाले अरिहंत देव और गुरु की आराधना करने से हमारे चित्त में उत्तम भावनाओं का निर्माण होता है, जो अशुभ के निवारण में कार्यकारी सिद्ध होती हैं।

इसके उपरान्त भी एक समस्या यह उत्पन्न होती है कि कई बार मंगल रूप वंदन आदि क्रियाएँ करने पर भी विघ्न उपस्थित होते रहते हैं तो उस स्थिति में मंगल से अशुभ कर्मों का नाश कैसे संभव है?

समाधान- इसका जवाब यह है कि कई बार बंधे हुए अशुभ कर्मों के

दलिक मांगलिक भावों से अधिक बलवान होते हैं, अत: उन प्रगाढ़ कर्मों के निवारण हेतु मंगल भी उतना ही प्रबल होना चाहिए।

कदाचित कोई निकाचित अशुभ कर्म उदय में आ जाएँ तो वे भोगे बिना क्षय नहीं होते, ऐसी स्थिति में मंगल अनुष्ठान कर्मों के क्षय में कार्यकारी नहीं होता।

इससे यह विदित होता है कि हमारे पुरुषार्थ में कमी होने के कारण अथवा अशुभ निकाचित के उदय के कारण मंगल अनुष्ठान कार्य नहीं कर सकता, परन्तु वह कार्य सिद्धि में सहायक अवश्य होता है अत: उसके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करना किसी भी प्रकार से योग्य नहीं है।

दूसरा तथ्य यह है कि निकाचित कर्म बहुत ही अल्प होते हैं और अनिकाचित ज्यादा। इसलिए मंगल के अनुवर्त्तन में लापरवाही और प्रमाद न करते हुए उत्कृष्ट मंगल के शुभ भाव रखने चाहिए, जिससे प्रगाढ़ अशुभ कर्मों का भी क्षय किया जा सके।

तीसरा उल्लेखनीय यह है कि किया गया मंगल कभी निष्फल नहीं जाता। कदाच किसी निकाचित कर्म का उदय आ भी जाए तो भी मंगल अनुष्ठान निष्फल नहीं होते और यह विज्ञान सिद्ध भी है कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है "Every action has an equal and opposite reaction"।

यहाँ यह तथ्य ध्यातव्य है कि भले ही विघ्न नाश की अपेक्षा मंगल अकार्यकारी सिद्ध हो, परन्तु मंगल के दौरान की गई देव-गुरु-धर्म की आराधना पुण्य बन्ध और शुभ संस्कारों के उपार्जन में अवश्य हेतुभूत बनती हैं। इसी के साथ अन्य शुभ कर्म प्रकृतियों के बंधन में भी निमित्त बनती हैं।

प्रश्न– शंका होती है कि आत्म शुद्धि हेतु किस प्रकार के चैत्यों में जाना चाहिए? क्योंकि जैन मतानुसार कई मन्दिरों के स्थल मिथ्यात्व के पोषक हैं अत: कल्याणकारी चैत्यों का स्वरूप जानना आवश्यक है।

समा. चैत्यवन्दन कुलकवृत्ति (पृ. 74) के आधार पर जैन शासन में तीन प्रकार के चैत्य मुक्ति प्राप्त कराने वाले माने गये हैं– 1. आयतन 2. अनिश्राकृत और 3. विधि चैत्य।

1. **आय–** जहाँ ज्ञान, दर्शनादि का लाभ, **तन–** विस्तृत होता हो उसे आयतन कहते हैं। आशय यह है कि जिस चैत्य में मूल गुण– पंचमहाव्रत,

उत्तरगुण-अष्ट प्रवचन माता इन गुणों से भ्रष्ट साधु न रहते हों वह आयतन कहलाता है।

2. जिस चैत्य की व्यवस्था, आय-व्यय लेखन और उगाही आदि श्रावक करते हों और जो शिथिलाचारी साधुओं के उद्देश्य से उनके भक्त श्रावकों द्वारा द्रव्य व्यय कर बनाया गया हो, वह अनिश्राकृत कहलाता है।

3. जिस चैत्य में रात्रि के समय न नन्दी होती हो, न पूजा बलि आदि होती हो, न स्त्रियाँ जाती हों, न नृत्य होता हो और न साधु जाते हों, वह विधि चैत्य कहलाता है।

उत्सर्गतः सम्यग्दृष्टि श्रावकों और साधुओं को उपर्युक्त तीन प्रकार के चैत्यों में ही जाना चाहिए। आपवादिक कारण उपस्थित होने पर अनायतन आदि चैत्यों में भी जा सकते हैं जैसे– निश्राकृत आदि चैत्य में महापूजा आदि हो, राजा की ओर से निमन्त्रण हो, पार्श्वस्थ आदि साधुओं के आज्ञाकारी श्रावकों का आग्रह हो, न जाने पर शंका करते हो, शासन प्रभावना होती हो, जाने से कई अन्यजन धर्म प्रवृत्ति करते हों, न जाने से शासन की निन्दा एवं तिरस्कार होता हो, ऐसी स्थिति में जाना उचित है।

यहाँ कोई शंका करे कि जो मुक्ति के साधनभूत नहीं है वहाँ क्यों जाना चाहिए? उसका समाधान यह है कि जहाँ विधि चैत्य नहीं होता, वहाँ के 'निश्राकृत आयतन' चैत्य बनाने वाले श्रावक व्याख्यान के लिए सद्गुरुओं को निमन्त्रण देते हैं और सद्गुरु उन श्रावकों की भाववृद्धि के लिए चैत्य में जाकर व्याख्यान करते हैं।

श्रुतधरों ने सामान्यतः पाँच प्रकार के चैत्यों का प्रतिपादन किया है-

भत्ती मंगल चेइय, निस्सकड अनिस्सकड चेइए वावि ।
सासय चेइय पंचम, उवइट्ठं जिणवरिं देहिं ।।

1. भक्तिकृत चैत्य 2. मंगलकृत चैत्य 3. निश्राकृत चैत्य 4. अनिश्राकृत चैत्य और 5. शाश्वत चैत्य।

1. श्री तीर्थंकर परमात्मा की भक्ति से आप्लावित होकर भरत चक्रवर्ती आदि श्रावकों ने अपरिमित धन का सदुपयोग कर श्री अष्टापद, श्री शत्रुंजय आदि महातीर्थों पर विशाल मन्दिरों का निर्माण करवाया, जो अनेक जीवों के सम्यक्त्व प्राप्ति एवं सम्यग्दर्शन के स्थिरीकरण में निमित्तभूत बनें, वे भक्ति चैत्य हैं।

2. सकल श्रीसंघ के मंगल के लिए जो चैत्य बनाये जाते हैं, वे मंगल चैत्य कहलाते हैं।

इसे एक कथानक द्वारा स्पष्ट करते हैं–

बात उस समय की है जब मथुरा नगरी अपनी समृद्धि, सौंदर्य, अनुशासन आदि के लिए विश्वविख्यात थी। विजय का तो उसे वरदान ही प्राप्त था, उसे देखने पर ऐसा प्रतीत होता था कि मानो कोई नवयौवना हरे रंग के वस्त्रों को पहनकर अतिथियों का स्वागत कर रही हो। राजा शत्रुदमन की नीतिसम्पन्नता ऐसी थी कि एक बार अनीतिवान व्यक्ति भी अपना मार्ग भूलकर न्याय नीति को अपना लेता था। पुण्य ऐसा था कि प्रकृति स्वयं खाई और समुद्र का परकोटा (Boundary) बनाकर नगर की रक्षा करती थी।

नगर की इसी सुंदरता को किसी की ऐसी नजर लगी कि रक्षक प्रकृति ही उसकी भक्षक बन गई। खाई में चारों और किसी ऐसे विष की उत्पत्ति हुई कि मन्त्र-तन्त्र आदि विद्याओं का प्रयोग भी विफल होने लगा। महामारी की वजह से सम्पूर्ण नगरी में लाशों का ढेर सा लग गया। स्वर्ग सी मथुरा नगरी श्मशान से भी भयानक लगने लगी। मांस भक्षी पक्षियों का मानो मेला ही लग गया था। वृद्ध हो या युवा सभी के सामने काल विकराल बनकर अपना आँचल फैलाए खड़ा था।

नगरी का कोई पूर्वपुण्य पुनः जागृत हुआ और सौभाग्य से धर्मघोष एवं धर्मरुचि नामक दो चारण लब्धिधर मुनियों का वहाँ पर आगमन हुआ। उनके आने मात्र से नगर में पूर्ववत शान्ति हो गई। मुनि जीवन के सिद्धान्तानुसार दोनों मुनियों ने वहाँ से विहार किया। परन्तु उनके जाते ही महामारी ने पुनः अपना जाल फैला दिया। नगरवासियों को उन्हीं मुनिराजों का स्मरण हो आया और वे उन्हें वापस बुलाकर ले आए तथा मारि निवारण का निवेदन किया। तब चारण मुनियों ने अपने-अपने घर के तोरणद्वार पर अरिहंत भगवान की प्रतिमा को स्थापित कर उनके पूजन का निर्देश दिया जिससे इस भव में सुख-समृद्धि की प्राप्ति होगी और विघ्नों का नाश होगा तथा जन्मान्तर में कल्याण की भूमिका (नींव) स्थापित होगी। नगरवासियों ने ऐसा ही किया जिससे सम्पूर्ण प्रदेश में शान्ति एवं समाधि की स्थापना हुई।

इस प्रकार मथुरा के नगर वासियों ने सद्गुरु के आदेश से मंगल बिम्बों की स्थापना कर पूजा की, वे मंगल चैत्य कहलाते हैं। जैसा कि कहा है–

जिणबिंब पइट्ठाए, महुरा नयरीए मंगलाइं तु।
गेहेसु चच्चरेसु, छन्नवइ ग्गाम मज्झेसु।।''

अर्थ: मथुरा नगरी में मंगल आदि चैत्यों में जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा-पूजा करने से एवं गृह, चत्त्वर (चौराहा) आदि पर छियानवें ग्रामों में भी वैसा करने से सर्वत्र उपद्रव से शान्ति हो गयी।

3. नन्दीश्वर द्वीप, रूचक द्वीप, वक्षस्कार, वैताढ्य, मेरू आदि पर्वतों पर तथा असुर, व्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक आदि के भवन विमानों में ऋषभानन, चन्द्रानन, वारिषेण और वर्धमान– इन चार जिनेश्वरों की रत्नमय शाश्वत प्रतिमाएँ हैं जो सभी कालों में एक समान रहती हैं, वे शाश्वत चैत्य कहे जाते हैं।

4-5. निश्राकृत और अनिश्राकृत चैत्य का स्वरूप कह चुके हैं।

पूर्व वर्णित मंगल, भक्ति एवं शाश्वत चैत्यों का समावेश आयतन और विधि चैत्य-इन दो प्रकार के चैत्यों में हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि सिद्धान्त प्रणीत एवं अहिंसा आदि श्रेष्ठ धर्म से युक्त मन्दिर ही वन्दनीय और पूजनीय हैं। जहाँ निराकार स्वरूपी प्रतिमाएँ स्थापित हों, गुण सम्पन्न गृहस्थ वर्ग के द्वारा जिनकी सार संभाल की जाती हों और मूर्ति के दर्शन मात्र से स्वयं के आत्मस्वरूप की प्राप्ति हो, ऐसे स्थलों को यथार्थ चैत्य के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि जहाँ व्यक्ति स्वार्थ पूर्ति के लिए मस्तक झुकाता हो अथवा सांसारिक कामनाओं की प्राप्ति हेतु हाथ जोड़ता हो ऐसे देवी-देवताओं के मन्दिर आत्मज्ञान की प्रतीति के कारण नहीं हो सकते।

मूर्ति आदि की प्रतिष्ठा आवश्यक क्यों?

यह एक प्रासंगिक प्रश्न है कि जिनप्रतिमा आदि को पूज्यता प्रदान करने के लिए एवं परिकर आदि को स्थिर करने के लिए प्रतिष्ठा आदि अनुष्ठान करना आवश्यक क्यों? व्यक्ति की आन्तरिक श्रद्धा या शुभ भावना के आधार पर भी प्रतिमा पूजनीय बन सकती है।

इसका सहेतुक उत्तर देते हुए आचार्य वर्धमानसूरि कहते हैं कि जैसे मुनि आचार्य पद या अन्य योग्य पद से, ब्राह्मण वेद संस्कार से, क्षत्रिय किसी महत्त्वपूर्ण पद पर अभिसिक्त होने से, वैश्य श्रेष्ठिपद से, शूद्र राज्य-सम्मान से

एवं शिल्पी शिल्प के सम्मान से प्रतिष्ठा को प्राप्त करते हैं; ब्राह्मण जाति को तिलक, अभिषेक, मंत्र क्रिया आदि के द्वारा पूज्यता प्रदान की जाती है परन्तु तिलकादि द्वारा या पदाभिषेक द्वारा उनकी दैहिक पुष्टि नहीं होती, परन्तु उक्त क्रियाओं द्वारा दिव्य शक्ति का संचरण किया जाता है उसी प्रकार पाषाण से निर्मित अथवा किसी अन्य वस्तु से निर्मित जिनेश्वर परमात्मा, शिव, विष्णु, बुद्ध, क्षेत्रपाल आदि की प्रतिमाओं को भी प्रतिष्ठा विधि के द्वारा विशिष्ट नाम देकर पूज्यता प्रदान करते हैं। इसी के साथ भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव उनके अधिष्ठायक होने के कारण मूर्ति को प्रभावक शक्ति प्राप्त हो जाती है।

प्रचलित व्यवहार में देखा जाता है कि लोग मकान, कुँआ, बावड़ी आदि की विधिवत प्रतिष्ठा करके उनकी प्रभावकता में वृद्धि करते हैं उसी प्रकार अरिहंत और सिद्ध परमात्मा की भी विधि उपचार पूर्वक प्रतिष्ठा करने से उनकी प्रतिमा के प्रभाव में अभिवृद्धि होती है।

दूसरा तथ्य यह है कि प्रतिष्ठा विधि के द्वारा उन प्रतिमाओं में मोक्ष स्थित परमात्मा का अवतरण तो नहीं होता, किन्तु पूर्वाचार्यों द्वारा शास्त्रीय विधि से प्रतिष्ठा संस्कार करने पर सम्यग्दृष्टि देव और अधिष्ठायक देव मूर्ति के प्रभाव में अभिवृद्धि करते हैं तथा प्रतिष्ठाचार्य की विशिष्ट साधना शक्ति साक्षात परमात्म शक्ति के रूप में संक्रमित होती है, जिसके कारण उसमें भगवद् स्वरूप की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है और इसी कारण अरिहंत प्रतिमा पूजा और वन्दना के योग्य बनती हैं।

तीसरा तथ्य यह है कि जैन परम्परा में प्रतिष्ठा कार्य यौगिक साधना में निपुण, मंत्र-तंत्रादि विद्याओं में पारंगत, अहिंसादि महाव्रतों के पालक, संयमनिष्ठ आचार्य आदि पदस्थ मुनियों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस क्रिया के द्वारा केवल मूर्ति की प्रतिष्ठा ही नहीं करते, अपितु अपनी साधना शक्ति एवं तेज का भी उसमें आरोपण करते हैं। जिससे प्रतिमा की शक्ति एवं प्रभाव में एक विशिष्ट वृद्धि होती है, जो उसे अन्य देवी-देवताओं की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली बनाती है।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि मूर्ति की अतिशयता एवं प्रभाव शीलता बढ़ाने हेतु प्रतिष्ठा विधि की जाती है।

जिनालय की आवश्यकता क्यों?

अर्हत धर्म में राग-द्वेष के विजेता पुरुष को जिन कहा गया है अथवा हिंसा आदि अठारह दोषों पर विजय प्राप्त करने वाली आत्मा जिन कहलाती है। जिस स्थान पर जिन प्रतिमा विराजमान की जाती है उसे जिनालय अथवा जिनमन्दिर कहते हैं।

जिस प्रकार धर्म पूज्य है, धर्मनायक पूज्य है, धर्मगुरु पूज्य है, धर्म संस्थापक महापुरुष की प्रतिमा पूज्य है उसी प्रकार उनकी प्रतिमा के रहने का स्थान भी पूजनीय होता है। जैसे भगवान पूज्य होते हैं वैसे ही प्रभु का मन्दिर भी पूज्य होता है। श्रमण संस्कृति में मन्दिर को देवता स्वरूप माना गया है। यही वह स्थान है जहाँ चंचल मन विश्रांति पाता है तथा संसार सागर से पार उतरने का आश्रय प्राप्त करता है। इस देव स्वरूप आराधना स्थल को देवालय, प्रासाद, जिनभवन, चैत्य आदि भिन्न-भिन्न नामों से वर्णित किया गया है।

जिनालय की आवश्यकता को सिद्ध करने वाला प्राथमिक हेतु यह है कि अति प्राचीन काल से ही मनुष्य साकार धर्म की उपासना कर रहा है। मध्यकाल में कुछ समय तक विधर्मियों के द्वारा साकार पूजा पद्धति को समूल नष्ट करने के लिए लाखों मन्दिरों एवं प्रतिमाओं का निर्दयता पूर्वक विध्वंस किया गया, उन भीषण आघातों के उपरान्त भी देव तुल्य मन्दिरों की धर्म रूप शक्ति को जड़ से उखाड़ न सके, अपितु कालक्रम में पुनः तद्रूप धर्म मार्ग की स्थापना हो गई। पिछले वर्षों में कुछ सम्प्रदायों ने मूर्ति पूजा का विरोध कर उस पद्धति को तो समाप्त कर दिया है किन्तु गुरु मूर्ति के रूप में मन्दिरों का निर्माण आज भी जारी है। इस प्रकार मन्दिरों के माध्यम से धर्म का आधार दीर्घ काल तक टिका रहता है।

जिनालय की आवश्यकता का दूसरा पहलू उसका ऊर्जामय वातावरण है। मन्दिर की आकृति एवं वहाँ होता निरन्तर मन्त्रों के पाठ की ध्वनि का पुनरावर्तन आराधक को ऊर्जा प्रदान करता है। जब हम हिंसक या विकारयुक्त स्थानों में जाते हैं तो स्वाभाविक रूप से हमारे मन में पाप करने के विचार आते हैं जबकि जिन मन्दिर में इसके विपरीत आराध्य प्रभु के प्रति विनय, श्रद्धा एवं शरणागति के भाव उत्पन्न होते हैं। मन्दिर का शांत वातावरण चित्त की कलुषित वृत्तियों को समाप्त कर मन की चंचल गति को स्थिरता देता है। देवालय के पवित्र

वायुमण्डल के प्रभाव से हमारे मन में अनायास प्रभु भक्ति, परमात्म अनुराग तथा उनके गुणों को ग्रहण करने की भावना उत्पन्न होती है।

जिनालय की सर्वाधिक आवश्यकता का तीसरा कारण यह है कि जन सामान्य की आराधना के लिए यह स्थान उपयुक्त माना गया है।

मन्दिर स्थापनकर्ता के अतिरिक्त हजारों वर्षों तक असंख्य लोग भगवान की निरन्तर पूजा-अर्चना करते हुए अपना आत्म कल्याण करते हैं। उन लोगों की विशुद्ध आराधना में मन्दिर निमित्त बनता है।

जिनालय की आवश्यकता का एक मुख्य कारण यह भी कहा जा सकता है कि जिस स्थल पर चिरकाल तक पीढ़ी दर पीढ़ी उपासना होती हो उस जगह का कण-कण पूजनीय होने से वह मन्दिर तीर्थ रूप बन जाता है। तीर्थ अर्थात तारने वाला। मन्दिरों में निरन्तर पूजा-पाठ होते रहने से उसकी शक्ति अपरिमित हो जाती है और फिर वह एक सच्चे तीर्थ के रूप में प्राणी मात्र के लिए उपकारक बनता है।

जिनमन्दिर की उपयोगिता को दर्शाते हुए शास्त्रों में कहा गया है कि

दर्शनात् दुरितध्वंसी, वन्दनात् वांछित प्रदः ।
पूजनात्पूरकः श्रीणां, जिन साक्षात् कल्पद्रुमः ।।

अर्थात प्रभु दर्शन से दुरितों (पाप कर्मों) का क्षय होता है, प्रभु को वन्दन करने से सर्व इच्छाएँ पूर्ण होती हैं तथा प्रभु पूजा से अपार समृद्धि की प्राप्ति होती है, क्योंकि परमात्मा साक्षात् कल्पवृक्ष के समान है। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे जिनबिम्ब का दर्शन कर्म क्षय का हेतु है वैसे ही प्रतिमा का आधारभूत स्थल जिनमन्दिर भी दूर से ही दर्शकों के लिए पुण्य बन्ध का कारण है।

शास्त्रों में उल्लेख आता है कि पहली बार सम्यग्दर्शन की प्राप्ति जिनेश्वर परमात्मा के पाद मूल में ही होती है। इस दृष्टि से माना जा सकता है कि जिनबिम्ब का आधार होने से जिनालय भी सम्यग्दर्शन प्राप्ति में सशक्त निमित्त बनता है। इस तरह विविध पहलुओं से जिनमन्दिर की उपादेयता सिद्ध होती है।

पं. आशाधर रचित प्रतिष्ठा सारोद्धार के अनुसार धर्म साधना एवं आत्म कल्याण के लिए देव-गुरु-शास्त्र का सान्निध्य आवश्यक है। मंदिर के माध्यम से इन तीनों का सान्निध्य प्राप्त होता है अतः मंदिर का होना अनिवार्य है।

जिनालय का माहात्म्य

भारतीय संस्कृति तत्त्वतः धार्मिक है। मंदिर और तीर्थ इस संस्कृति के संदेशवाहक हैं। इस विश्व में ऐसी कोई जाति या समाज नहीं, जिनमें मन्दिर की परम्परा और उसके प्रति आस्था न हो। विश्व को अनादिकालीन माना जाता है, क्योंकि कालक्रम के अनुसार उसमें ह्रास और विकास की प्रक्रिया बनती बिगड़ती रहती है किन्तु मंदिर शाश्वत भी होते हैं। जैन ग्रन्थों के अनुसार ऊर्ध्व-अधो एवं मध्य लोकों में हजारों की संख्या में शाश्वत चैत्य हैं जो सृष्टि के परिवर्तन के समय भी अक्षुण्ण रहते हैं।

ऐसे शाश्वत मंदिरों के दर्शन प्रायः लब्धिधारी मुनि एवं सम्यक्त्वी देवी-देवता ही कर सकते हैं। वर्तमान में सिद्धाचल तीर्थ को शाश्वत माना जाता है। उपाध्याय समयसुंदरजी ने शत्रुंजय रास की रचना में स्पष्टतः उल्लिखित किया है कि यह तीर्थ प्रत्येक काल खण्ड में अमुक-अमुक योजन परिमाण रहता है। आशय यह है कि इस तीर्थ का बाह्य भू-भाग (पर्वतीय क्षेत्र) द्रव्य- काल के अनुरूप कम अधिक होता है किन्तु मूल स्वरूप में परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार जिन प्रासाद संसार की अमिट धरोहर है।

जैन धर्मावलम्बियों के अतिरिक्त अन्य समाज एवं राष्ट्र के लिए भी मंदिर मंगलकारी और उपासना स्थल है। शास्त्रकारों ने जिनालयों का महत्त्व एवं उसके प्रभाव को दिग्दर्शित करते हुए कहा है कि जो व्यक्ति अपने पूरे जीवन काल में एक चावल के दाने के बराबर भी जिन प्रतिमा बनावाकर मंदिर में स्थापित करता है वह जन्म-जन्मान्तर के पाप कर्मों का क्षय कर अनन्त सुख का अधिकारी बनता है। अरिहंत प्रभु स्वयं तो अव्याबाध सुख को प्राप्त कर लोकाग्र भाग स्थित सिद्धशिला पर विराजमान हैं लेकिन उनकी प्रतिमा एवं मंदिर के दर्शन से भी असीम सुख की प्राप्ति होती है। अतएव किसी भी परिस्थिति में अपनी शक्ति के अनुरूप यह कार्य जीवन में करने का लक्ष्य रखना चाहिए।

प्रासाद मंडन में जिनालय का महत्त्व दर्शाते हुए कहा गया है कि

प्रासादाः पूजिता लोके, विश्व कर्मणा भाषितः ।
चतुर्विंश विभक्तीनां, जिनेन्द्राणां विशेषतः।।
चतुर्दिशि चतुर्द्वाराः, पुरमध्ये सुखावहाः ।
भ्रमाश्च विभ्रमाश्चैव, प्रशस्ताः सर्वकामदाः।।

शान्तिदाः पुष्टिदाश्चैव, प्रजाराज्य सुखावहाः।
अश्वैर्गजै र्बलियानै- र्महिषी नन्दी भिस्तथा।।
सर्वश्रिय माप्नुवन्ति, स्थापिताश्च महीतले।
नगरे ग्रामे पुरे च, प्रासादा ऋषभादयः।।
जगत्या मण्डपैर्युक्ताः, क्रीयन्ते वसुधातले।
सुलभं दीयते राज्यं, स्वर्गे चैवं महीतले।।
दक्षिणोत्तरमुखाश्च, प्राचीपश्चिमदिग्मुखाः।
वीतरागस्य प्रासादाः, पुरमध्ये सुखावहाः।।

जिनालय इस लोक में सर्वदा पूजित होते हैं उनमें चौबीस तीर्थंकरों के मन्दिर विशेष रुप से पूजनीय है।

जिनमंदिर सभी के लिए पूज्य हैं, प्रजा के लिए सुखदायक हैं, सर्व कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। सभी को तुष्टि, पुष्टि, सुख, समृद्धि की प्राप्ति करवाने में समर्थ कारण हैं। सर्व लोक में शांति का प्रसार करने वाले तथा राजा-प्रजा सभी के लिए मंगल स्वरूप है।

मंडन सूत्रधार के अनुसार नगर के मध्य में परिक्रमा वाला जिनालय हो या बिना परिक्रमा वाला, यदि चार द्वार वाला जिनालय बनवाकर उसमें चौमुखी प्रतिमा स्थापित की जाये तो वह मंदिर श्रेष्ठ, सभी के इच्छित फलों को प्रदान करने वाला और सर्वदा सुखकारी होता है।

यदि गाँव, नगर और शहर में ऋषभ आदि चौबीस तीर्थंकरों के प्रासाद बनवाकर उन्हें प्रतिष्ठित किये जाये तो इस पृथ्वी तल पर रहने वाले समस्त प्राणियों का कल्याण होता है।

यदि इस वसुधा पर जगती और मण्डपों से युक्त प्रासादों का निर्माण किया जाता है तो उससे इहलौकिक राज्य सुख एवं पारलौकिक स्वर्गादि सुख सुलभता से प्राप्त होते हैं।

यदि इस मध्य लोक में दक्षिणोत्तर मुख वाले और पूर्व पश्चिम मुख वाले वीतराग के प्रासाद बनवाये जाते हैं तो उस नगर में उत्तरोत्तर सुख-समृद्धि बढ़ती है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के जिनालय सम्पूर्ण विश्व के लिए कल्याणकारी, शिवसुखकारी और मंगलकारी होते हैं।[1]

प्रासाद मंडन में यह भी कहा गया है कि अरिहंत देव की प्रतिष्ठा, पूजा

और दर्शन करने से मनुष्यों के समग्र पाप नष्ट होते हैं, धर्म की वृद्धि होती है तथा अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है।[2]

जिनालय एवं जिनबिम्ब निर्माण के लाभ

भारतीय परम्परा में मन्दिरों एवं प्रतिमाओं का अपना विशिष्ट स्थान है। सामान्य उपासक भी अपने आराध्य देव का स्मरण एवं दर्शन कर कल्याण के मार्ग पर आरूढ़ हो जाता है। जैन शास्त्रों में परमात्म उपासना के साथ-साथ प्रभु मन्दिर एवं प्रभु प्रतिमा बनवाने का भी अत्यधिक महत्त्व बतलाया गया है।

सामान्यत: जो गृहस्थ श्रावक अपनी क्षमता के अनुरूप प्रभु का मंदिर बनवाता है, वह असीम पुण्य का अर्जन करता है तथा वर्तमान एवं भविष्य दोनों को सुख-समृद्धि से भरपूर करता है। प्रभु मन्दिर बनवाने का अवसर अनेकों जन्म के पुण्य संचय से उपस्थित होता है।

शिल्प रत्नाकर में जिनमन्दिर के निर्माण का पुण्य फल दर्शाते हुए कहा गया है कि

कोटि वर्षोपवासश्च, तपो वै जन्म जन्मनि।
कोटि दानं कोटि दाने, प्रासाद फल कारणे।।

एक नूतन जिनालय का निर्माण कराने वाले उपासक को करोड़ों वर्षों के उपवास, जन्म-जन्मान्तर में किया गया तप तथा करोड़ों दानों में करोड़ दान इन सभी सुकृत्यों का एक साथ फल मिलता है।[3]

प्रासाद मंडन में जिनालय निर्माण की फलश्रुति का निरूपण करते हुए बताया गया है कि

काष्ठ पाषाण निर्माण, कारिणो यत्र मन्दिरे।
भुंजतेऽसौ च तत्र सौख्यं, शंकर त्रिदशैः सहः।।
स्वशक्त्या काष्ठ मृदिष्टका, शैल धातु रत्नजम् ।
देवतायतनं कुर्याद्, धर्मार्थ काममोक्षदम् ।।
देवानां स्थापनं पूजा, पापघ्नं दर्शनादिकम् ।
धर्मवृद्धि र्भवेदर्थः, कामो मोक्षस्ततो नृणाम् ।।
कोटीघ्न तृणजे पुण्यं, मृण्मये दशसं गुणम्
ऐष्टके शतकोटिघ्नं, शैलेऽनन्तं फलं स्मृतम् ।।

जो उपासक लकड़ी अथवा पाषाण का मन्दिर निर्मित करवाता है उसे

इतना अधिक पुण्य मिलता है कि वह चिरकाल तक देवलोक में सुख भोगता है।

प्रासादमंडन में यह भी कहा गया है कि सुश्रावक को स्वशक्ति के अनुरूप लकड़ी, ईंट, पाषाण, स्वर्ण आदि धातु एवं रत्नादि के जिनालय का निर्माण अवश्य करवाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से चारों पुरुषार्थ- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है।

प्रासाद मंडन के अनुसार वीतराग प्रतिमाओं की स्थापना, पूजा एवं दर्शन करने से मनुष्य के पापों का क्षय होता है तथा उसको धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यदि कोई घास का देवालय बनवाता है तो वह भी कोटि गुणा पुण्य का अर्जन करता है। इसी भाँति मिट्टी का देवालय बनाने वाला उससे दस गुणा अधिक पुण्य कमाता है, ईंट का देवालय बनाने वाला उससे भी सौ गुणा पुण्य अर्जन कर अपना जीवन सुखी करता है, पाषाण का जिनालय निर्मित करवाने वाला उपासक अनन्त गुणा पुण्य फल प्राप्त करता है।[4]

अतएव शाश्वत सुख की इच्छा रखने वाले गृहस्थ को चाहिए कि वह अपने जीवन काल में स्वशक्ति के अनुरूप जिनेश्वर परमात्मा का मन्दिर निश्चित बनवाये। इस सृष्टि में जिनालय एक ऐसा माध्यम है जो भव्यजनों के लिए अनेक पीढ़ियों तक कर्म निर्जरा का निमित्त बनता है। यह प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों दृष्टियों से आराधकों के लिए उपकारी है। जैनेतर ग्रन्थों में भी मन्दिर निर्माण कर्ता के लिए असीम पुण्य फल प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

उमास्वामी श्रावकाचार में जिनमन्दिर एवं जिन प्रतिमा निर्माण का फल बतलाते हुए उल्लिखित किया है कि

अंगुष्ठ मात्रं बिम्बं यत् , यः कृत्वा नित्यमर्चयेत् ।
तत्फलं न च वस्तुं हि, शक्यते ऽ संख्यपुण्ययुक्।।
बिम्बादल समे चैत्ये, यवमानं तु बिम्बकम् ।
यः करोति तस्येन, मुक्ति र्भवति सन्निधिः।।

जो भव्य प्राणी एक अंगुल प्रमाण की प्रतिमा भी निर्मित करवाकर उसकी नित्य पूजा करता है उसके पुण्य संचय को शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं है।

जो पुरुष बिम्बाफल (भिलावा-एक छोटा लाल फल) के पत्ते के समान अत्यन्त लघु चैत्यालय बनवाता है तथा उसमें जौ के आकार की प्रतिमा स्थापित कर उसकी नित्य पूजा करता है वह शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त करता है।[5]

आचार्य जयसेन के प्रतिष्ठापाठ में कहा गया है कि जो श्रावक माया, मिथ्यात्व, निदान और ख्याति की कामना से रहित होकर जिनबिम्ब की स्थापना करते हैं वे पुण्य एवं यश की वृद्धि करते हुए मोक्ष मार्ग की विशेष प्रभावना करते हैं तथा इस लोक में जब तक सूर्य-चन्द्र हैं तब तक भव्य जीवों के लिए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में निमित्त बनते हैं। जैसे दीवार के अनुसार चित्र अंकित होता है वैसे ही जिनबिम्ब के दर्शन से आत्म परिणाम निर्मल बनते हैं।

इसी क्रम में आचार्य जयसेन यह भी कहते हैं कि जो भव्य आत्मा बदरी (बोर) के बराबर जिनालय और धनिये के बीज के बराबर भी जिनबिम्ब स्थापित करते हैं वे पूर्व संचित अनन्त भवों के पापों को क्षीण कर सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं। उन्होंने गृहस्थ द्वारा न्यायोपार्जित उस संपत्ति को श्रेष्ठ कहा है जो 1.जिनमन्दिर निर्माण 2. प्रतिष्ठा 3. जीर्णोद्धार 4.जिनबिम्ब स्थापना 5. तीर्थयात्रा 6. चारों दान और 7. जिन पूजा– इन सात कार्यों में उपयोगी बनती है।[6]

उपाध्याय समयसुंदरजी ने सिद्धाचल तीर्थ पर नवीन चैत्य बनवाने एवं जीर्णोद्धार करवाने का सुफल दिखलाते हुए कहा है-

श्री शत्रुंजय ऊपरे, चैत्य करावे जेह।
दल परिणाम समुं लहे, पल्योपम सुख तेह।।
शत्रुंज ऊपर देहरूँ, नवुं नीपावे कोय।
जीर्णोद्धार करावतां, आठ गणुं फल होय।।

प्रस्तुत सन्दर्भ में शंका उठती है कि रत्न, स्वर्ण आदि उच्च कोटि की जिन प्रतिमा बनवाने में विशिष्ट फल की प्राप्ति होती है अथवा उत्कृष्ट परिणाम से?

इस जिज्ञासा को शान्त करते हुए आचार्य हरिभद्रसूरि षोडशक प्रकरण में कहते हैं कि जिन प्रतिमा प्रमाण से अधिक हो, विशिष्ट अंग-अवयवों की रचना सुंदर हो और स्वर्ण-रत्नादि श्रेष्ठ धातुओं से निर्मित हो, इन बाह्य विशेषताओं से विशिष्ट फल नहीं मिलता है, परन्तु आशय विशेष से विशिष्ट फल की प्राप्ति होती है।[7] इसका तात्पर्य है कि जहाँ भावों की अधिकता होती है वहीं अधिक फल मिलता है। इसके उपरान्त अतिशय प्रधान भावों की अभिवृद्धि हेतु वस्तुगत बाह्य विशेषता भी आवश्यक है। जैसा कि व्यवहार भाष्य में कहा गया है लक्षणयुक्त अलंकारों से सुसज्जित प्रसन्न मुख मुद्रा वाली प्रतिमा जितनी मात्रा में मन को आनन्दित करती है उतनी निर्जरा जाननी चाहिए।[8]

आशय यह है कि व्यवहार नय से रत्नादि श्रेष्ठ धातुओं की प्रतिमा विशिष्ट फल देती है तथा निश्चय नय से व्यक्ति के उत्कृष्ट परिणाम लाभदायी होते हैं। अतएव श्रावक को व्यवहार धर्म का पालन करते हुए स्वशक्ति के अनुरूप उत्तम प्रतिमा बनवानी चाहिए तथा निश्चय धर्म के अनुसार भावों में उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिए।

यहाँ जिन बिम्बादि के निर्माण फल की चर्चा को पढ़कर कुछ लोगों में यह प्रश्न हो सकता है कि जिनबिम्ब निर्माण से स्वर्गादि सांसारिक सुखों की भी प्राप्ति होती है जो भव परम्परा की वृद्धि का कारण है तब यह सुकृत क्यों किया जाये?

इसका समाधान करते हुए षोडशक प्रकरण में बताया गया है कि जिस प्रकार खेती करने का मुख्य प्रयोजन धान्य की प्राप्ति है किन्तु धान्य के साथ-साथ घास-पलाल आदि सहज प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार बिंब निर्माण का मुख्य फल मोक्ष है फिर भी घास-फूस की तरह स्वर्गादि सुख स्वयं उपलब्ध हो जाते हैं। यह आनुषांगिक फल है किन्तु एक सीमा तक स्वर्गादि पुण्य फल भी मोक्ष प्राप्ति में पारम्परिक कारण बनते हैं। अतएव जिनबिम्ब या जिनालय निर्माण करवाते समय मोक्ष प्राप्ति का ही लक्ष्य होना चाहिए।[9]

एक प्रतिमा के निर्माण से अनेक प्रतिमा बनवाने का लाभ कैसे?

जिन शासन के प्रत्येक अनुष्ठान में भावोल्लास की प्रधानता है। इस सिद्धान्त को पुष्ट करते हुए पूर्वाचार्यों ने कहा है

यावन्तः परितोषाः कारयितुस्तत्समुद्भवाः केचित्।
तद्बिम्ब कारणानीह, तस्य तावन्ति तत्त्वेन।।

जिनबिम्ब निर्माणकर्ता को जिनबिम्ब से जितनी मात्रा में आनन्द उत्पन्न होता है उसे परमार्थतः उतने ही परिमाण में जिन प्रतिमा बनवाने का लाभ मिलता है। इसका आशय यह है कि आन्तरिक उत्साह के परिमाण में जिनबिम्ब तैयार करवाने से जितना फल प्राप्त होता है उतना फल उस श्रावक को मिलता है।[10]

इस प्रसंग में प्रश्न होता है कि प्रतिमा के द्वारा आनन्द कैसे उत्पन्न हो? इसका खुलासा करते हुए व्याख्याकार गणि यशोविजयजी ने समझाया है कि प्रतिमा निर्माण करवाने वाला श्रावक कदाचित शिल्पीकार के समीप पहुँच जाये और वहाँ घड़न की जा रही प्रतिमा की प्रसन्न मुख मुद्रा, आरोह-अवरोह आदि

देखकर 50 जिनबिम्ब तैयार करवाने पर सामान्यत: जितने आनन्द की संभावना हो उतना आनन्द श्रावक के हृदय में उमड़ आये तो परमार्थ से उस श्रावक ने 50 जिनबिम्बों का निर्माण करवाया, ऐसा जानना चाहिए। इस तरह प्रतिमा का शान्त, सुरम्य, पवित्र, निर्दोष मुख मंडल देखकर प्रीति उत्पन्न होती है।

सुप्रतिष्ठा के परिणाम

विधिमार्गप्रपा आदि प्रतिष्ठाकल्पों में सुप्रतिष्ठा का फल बताते हुए कहा गया है कि

राया बलेण वड्ढइ, जसेण धवलेइ सयल दिसिभाए ।
पुण्णं वड्ढइ विउलं, सुपईट्ठा जस्स देसंमि ।।

जिस देश में अरिहंत परमात्मा के जिन बिम्ब की प्रतिष्ठा (स्थापना) अच्छी तरह से होती है उस देश का राजा सैन्य शक्ति से वृद्धि पाता है, उसका यश समस्त दिशाओं में फैल जाता है और वह विपुल पुण्य से बढ़ता है।

उवहणइ रोगमारी, दुब्भिक्खं हणइ कुणइ सुहभावे
भावेण कीरमाणा, सुपइट्ठा सयल लोयस्स।।

शुभ भाव से की गई जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा सकल लोक में होने वाली हैजा, प्लेग जैसी महामारी का नाश करती है, दुर्भिक्ष को दूर करती है और सुख भाव को उपलब्ध करती है।

जिणबिंब पइट्ठं जे, करिंति तह कारविंति भत्तीए।
अणुमन्नइ पइदियहं, सव्वे सुहभायणं हुंति।।

जो भक्तिपूर्ण हृदय से जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा करते हैं, अन्यों के द्वारा करवाते हैं और प्रतिदिन प्रतिष्ठा कर्ता की अनुमोदना करते हैं वे सभी सुखी होते हैं।

दव्वं तमेव मन्नइ, जिणबिंब पइट्ठणाइ कज्जेसु
जं लग्गइ तं सहलं, दुग्गइजणणं हवइ सेसं।।

जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा आदि कार्यों में जिस द्रव्य का उपयोग होता है वही धन सफल माना गया है शेष दुर्गति का जनक है।

एवं नाऊण सया, जिणवरबिंबस्स कुणह सुपइट्ठं।
पावेह जेण जरमरण, वज्जियं सासयं ठाणं।।

इस प्रकार जिनेश्वर बिम्ब की महिमा को जानकर सदा सुप्रतिष्ठा करो, जिस सुप्रतिष्ठा के द्वारा जन्म-मरण से मुक्त होकर शाश्वत स्थान को प्राप्त कर सको।[11]

वर्तमान की भोगवादी भौतिक जीवनशैली में दो तरह की विचारधारा देखी जाती है। एक वर्ग है जो मात्र भोग एवं वासनाओं में लिप्त रहकर संसार के समस्त सुखों का उपभोग करना चाहता है। उनके लिए विज्ञान एवं वैज्ञानिक खोजें ही सर्वोपरि है तथा मन्दिर स्थानक एवं अन्य धार्मिक स्थान या क्रियाएँ मात्र अंधविश्वास। वहीं एक वर्ग ऐसा भी है जो यह मानता है कि आज की भाग-दौड़ वाली जिंदगी में आत्मिक एवं मानसिक शान्ति की उपलब्धि मात्र मंदिर आदि धार्मिक स्थलों पर जाकर ही प्राप्त हो सकती है।

इस अध्याय में इसी विचारशैली का समर्थन करते हुए जिनालय, जिनबिम्ब एवं तत्सम्बन्धी विधि-विधानों की वर्तमान प्रासंगिकता को पुष्ट करने का प्रयास किया गया है। इसी के साथ आध्यात्मिक, भौतिक एवं मानसिक जगत के समुत्थान में यह क्रियाएँ कैसे सहायक बनें? सामान्य जन मानस में इनके प्रति कैसे अनुरागभाव जगे? तथा इनके माध्यम से इहलौकिक एवं परलौकिक कल्याण मार्ग को कैसे प्राप्त किया जा सके? ऐसी कई शंकाओं का समाधान करते हुए आधुनिक भोगप्रमुख विचारधारा को बदलने की कोशिश की है।

सन्दर्भ-सूची

1. *दीपार्णव, 2/127-132*
2. *देवानां स्थापनं पूजा, पापघ्नं दर्शनादिकम् ।*
   धर्मवृद्धिर्भवेदर्थः, कामो मोक्षस्ततो नृणाम् ॥
   प्रासाद मंडन, 1/34
3. *शिल्प रत्नाकर, 13/85*
4. *प्रासाद मंडन, 8/84, 1/33-35*
5. *उमास्वामी श्रावकाचार, 114-115*
6. *प्रतिष्ठा पाठ, 105-107*
7. *षोडशक प्रकरण, 7/12*
8. *व्यवहारभाष्य, 6/189*
9. *षोडशक प्रकरण, 7/15-16*
10. *वही, 7/6*
11. *विधिमार्गप्रपा, पृ. 308*

●

अध्याय-5

मन्दिर निर्माण का मुहूर्त्त विचार

जिनालय का निर्माण कार्य श्रेष्ठ मुहूर्त्त में प्रारम्भ करना आवश्यक है जिससे वह कार्य द्रुत गति से निर्विघ्न सम्पन्न हो सके। यह मुहूर्त्त प्रतिष्ठाचार्य अथवा ज्योतिर्विद मुनि भगवन्त आदि से परामर्श करके उन्हीं के द्वारा निकलवाना चाहिए। जब मुहूर्त्त का निर्णय हो जाये तब शास्त्र वर्णित विधि के अनुसार चतुर्विध संघ की उपस्थिति में निर्माण कार्य शुरू करना चाहिए।

खनन मुहूर्त्त

मन्दिर प्रारम्भ हेतु राशिगत सूर्य का फल

मन्दिर निर्माण आरंभ करते समय सूर्य किस राशि में है यह निर्णय करने के पश्चात ही मुहूर्त्त निकालना चाहिए।

राशियों पर सूर्य का फल इस प्रकार कहा गया है–

1. मिथुन, कन्या, धनु और मीन– इन राशियों पर सूर्य हो तो मन्दिर प्रारम्भ नहीं करें।[1]
2. मेष, वृषभ, तुला और वृश्चिक– इन राशियों पर सूर्य हो तो पूर्व-पश्चिम द्वार वाले मन्दिर प्रारम्भ न करें, किन्तु उत्तर-दक्षिण द्वार वाले मन्दिर आरम्भ कर सकते हैं।
3. कर्क, सिंह, मकर और कुम्भ-इन राशियों पर सूर्य हो तब उत्तर-दक्षिण द्वार वाले मन्दिर प्रारम्भ न करें, परन्तु पूर्व-पश्चिम दिशा वाले मन्दिरों का निर्माण शुरू कर सकते हैं।[2]

मूलनायक की राशिगत सूर्य का फल

जिस दिन मन्दिर निर्माण का कार्य प्रारम्भ करना हो उस दिन मूलनायक की राशि से किस राशि पर सूर्य है, यह देखना जरूरी है। जब सूर्य बलवान हो तभी जिनालय बनवाने का कार्य शुरू करना चाहिए।

मूलनायक भगवान की नाम राशि से अन्य राशियों पर स्थित सूर्य निम्न

फल देता है[3]–

सूर्य स्थान	परिणाम
मूलनायक भगवान की नाम राशि से प्रथम राशि में सूर्य होने पर	उदर पीड़ा
प्रभु की नाम राशि से दूसरी राशि में सूर्य होने पर	धन नाश
प्रभु की नाम राशि से तीसरी राशि में सूर्य होने पर	धन लाभ
प्रभु की नाम राशि से चौथी राशि में सूर्य होने पर	समाज में भय
प्रभु नाम की राशि से पाँचवी राशि में सूर्य होने पर	पुत्र नाश
प्रभु नाम की राशि से छठवीं राशि में सूर्य होने पर	शत्रु विजय
प्रभु नाम की राशि से सातवीं राशि में सूर्य होने पर	स्त्री कष्ट
प्रभु नाम की राशि से आठवीं राशि में सूर्य होने पर	प्रमुख व्यक्ति का अवसान
प्रभु नाम की राशि से नौवीं राशि में सूर्य होने पर	धर्म में अरुचि
प्रभु नाम की राशि से दसवीं राशि में सूर्य होने पर	कार्य सिद्धि
प्रभु नाम की राशि से ग्यारहवीं राशि में सूर्य होने पर	लक्ष्मी लाभ
प्रभु नाम की राशि से बारहवीं राशि में सूर्य होने पर	धन लाभ

ग्रह शुद्धि- मन्दिर निर्माण का कार्य प्रारम्भ करने हेतु उस दिन की ग्रह स्थितियों का भी अवलोकन करना चाहिए। निम्न स्थितियों में ग्रह निर्बल माने जातें हैं अतएव उनमें कार्यारम्भ नहीं करना चाहिए-

1. जो ग्रह अस्त हो
2. नीच राशि में स्थित हो
3. शत्रु ग्रह से पराजित हो
4. शत्रु ग्रह द्वारा दृष्ट हो
5. जो ग्रह बाल या वृद्ध हो
6. जो ग्रह वक्री हो
7. जो ग्रह अतिचारी हो
8. जो ग्रह उल्कापात के कारण दूषित हो

राहु शुद्धि

ग्रहों के आधार पर– आचार्य जयसेन प्रतिष्ठापाठ के अनुसार यदि मीन, मेष, वृषभ का सूर्य हो तो राहु मुख ईशान कोण में होता है। मिथुन, कर्क, सिंह का सूर्य हो तो राहु मुख वायव्य कोण में होता है। कन्या, तुला, वृश्चिक का सूर्य हो तो राहु मुख नैऋत्य कोण में होता है। धनु, मकर, कुम्भ का सूर्य हो तो राहु मुख आग्नेय कोण में होता है।

जिस दिशा में राहु मुख हो उसके पृष्ठ भाग में नींव का खनन करना चाहिए। भूमि को सुप्त नक्षत्रों में न खोदें।[4]

महीनों के आधार पर

मिगसर, पौष, माघ महीनों में राहु पूर्व दिशा में वास करता है।
फाल्गुन, चैत्र, वैशाख महीनों में राहु दक्षिण दिशा में वास करता है।
ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण मास में राहु पश्चिम दिशा में वास करता है।
भाद्र पद, आसोज, कार्तिक मास में उत्तर दिशा में वास करता है।[5]

वारों के आधार पर

वार	राहु मुख
रविवार	नैऋत्य दिशा
सोमवार	उत्तर दिशा
मंगलवार	आग्नेय दिशा
बुधवार	पश्चिम दिशा
गुरुवार	ईशान कोण
शुक्रवार	दक्षिण दिशा
शनिवार	वायव्य कोण

विश्वकर्मा प्रकाश में कहा गया है कि जिस दिशा में राहु का मुख हो उस दिशा में स्तम्भ स्थापित करने पर वंश नाश, द्वार स्थापित करने पर अग्नि भय, यात्रा करने पर कार्य हानि और मन्दिर निर्माण का कार्य आरंभ करने पर कुल नाश होता है।[6]

लग्न शुद्धि

लग्न राशि सम्बन्धी विचार- मन्दिर निर्माणकर्ता की जन्म राशि से 1–6-10 वाँ और 11 वाँ लग्न तथा निर्माणकर्ता के जन्म लग्न से आठवें लग्न को छोड़कर शेष लग्नों में कार्यारम्भ करें।

मन्दिरकर्ता के लग्न से 3,6,11 वें स्थान में पापग्रह हों तथा केन्द्र (1,4,7,10) और त्रिकोण (5,8) में न हों तब मन्दिर का कार्य शुरू करें।

ग्रह-लग्न सम्बन्धी मन्दिर का आयु विचार– वास्तुसार प्रकरण के अनुसार शुक्र लग्न में, बुध दसवें स्थान में, सूर्य ग्यारहवें स्थान में और बृहस्पति केन्द्र (1-4-7-10 स्थान) में हो और ऐसे लग्न में यदि नूतन वास्तु का खनन किया जाए तो उसकी आयु सौ वर्ष होती है।

दसवें और चौथे स्थान में बृहस्पति और चन्द्रमा हो तथा ग्यारहवें स्थान में शनि और मंगल हो तो ऐसे लग्न में वास्तु का निर्माण आरंभ करने पर लक्ष्मी अस्सी (80) वर्ष स्थिर रहती है। बृहस्पति प्रथम लग्न स्थान में, शनि तीसरे, शुक्र चौथे, रवि छठवें और बुध सातवें स्थान में हो, ऐसे लग्न में खनन करने पर वास्तु में सौ वर्ष तक लक्ष्मी स्थिर रहती है।

शुक्र लग्न में, सूर्य तीसरे में, मंगल छठवें में और गुरु पाँचवे स्थान में हो, ऐसे लग्न में मन्दिर का निर्माण आरंभ किया जाये तो दो सौ वर्ष तक यह वास्तु समृद्धियों से पूर्ण रहता है।

कर्क राशि का चंद्रमा लग्न में हो और बृहस्पति केन्द्र (1-4-7-10 स्थान) में बलवान होकर रहा हो, उस समय वास्तु का आरंभ करें तो उसकी निरंतर प्रगति होती है। गृहारंभ के समय लग्न से आठवें स्थान में क्रूर ग्रह हो तो बहुत अशुभ कारक है और सौम्य ग्रह रहा हो तो मध्यम है।

यदि कोई भी एक ग्रह नीच स्थान का, शत्रु स्थान का अथवा शत्रु के नवांश का होकर सातवें स्थान में अथवा बारहवें स्थान में रहा हो तथा गृहपति के वर्ण का स्वामी निर्बल हो, ऐसे समय में प्रारंभ किया हुआ कार्य दूसरे

विपक्षियों के स्वामित्व में चला जाता है।

लग्न में उच्च का सूर्य, उच्च का गुरु और 11वें भाव में उच्च का शनि हो तो मन्दिर की आयु 1000 वर्ष होती है।

मन्दिर निर्माण आरम्भ के समय उच्च राशि के शुभ ग्रह यदि लग्न अथवा केन्द्र में हो तो मन्दिर की आयु 200 वर्ष की होती है।[7]

लग्न-ग्रह संबंधी मन्दिर का शुभाशुभ विचार

1. मन्दिर निर्माण आरम्भ के समय यदि कर्क में चन्द्रमा हो, केन्द्र में गुरु हो और अपने मित्र की राशि या उच्च की राशि में अन्य ग्रह हो तो उस मन्दिर में चिर काल तक लक्ष्मी निवास करती है।
2. अश्विनी, विशाखा, चित्रा, शतभिंषा, आर्द्रा, पुनर्वसु और धनिष्ठा इन नक्षत्रों में से किसी में शुक्र हो तथा उसी नक्षत्र में शुक्रवार को मन्दिर निर्माण आरम्भ हो तो वह सम्पन्न बना रहता है।
3. रोहिणी, हस्ता, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, अश्विनी और अनुराधा नक्षत्रों में से किसी में बुध हो और उसी नक्षत्र में बुधवार को मन्दिर निर्माण किया जाए तो धन एवं पुत्र सुख मिलता है।
4. पुष्य, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा, पूर्वाषाढ़ा– इन नक्षत्रों में से किसी में गुरु हो और उसी दिन गुरुवार हो तो इस दिन निर्माण प्रारंभ किया गया मन्दिर पुत्र एवं राज्य सुख देता है।[8]

योग शुद्धि- मन्दिर निर्माण का कार्य प्रारम्भ करते समय ग्रह लग्नेश आदि निम्न स्थितियों में हो तो कुयोग होता है और उसका निम्नोक्त फल प्राप्त होता है-

1. एक भी ग्रह शत्रु के नवांश में होकर सप्तम में या दशम में हो तथा लग्न का स्वामी निर्बल हो और उस समय मन्दिर का आरंभ करे तो मन्दिर अल्प समय में ही विपक्षियों के हाथों में चला जाता है।
2. पाप ग्रहों के मध्य में लग्न हो और शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट न हो तथा आठवें भाव में शनि हो तो मन्दिर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।
3. मन्दिर आरंभ के समय यदि दशा का स्वामी और लग्न का स्वामी निर्बल हो तथा सूर्य अनिष्ट में हो तो मन्दिर शीघ्र नष्ट हो जाता है।
4. मन्दिर आरंभ के समय लग्न में क्षीण चन्द्रमा हो तथा अष्टम मंगल हो तो

मन्दिर की आयु अत्यल्प रहती है।

5. मूला, रेवती, कृत्तिका, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त और मघा–इन सात नक्षत्रों पर मंगल हो और मन्दिर निर्माण आरम्भ के समय सूर्य और चन्द्र दोनों कृतिका नक्षत्र पर हों तो वह शीघ्र ही जल जाता है।
6. लग्न में उच्च का सूर्य, उच्च का गुरु और ग्यारहवें भाव में उच्च का शनि हो तो मन्दिर की आयु 1000 वर्ष होती है।
7. ज्येष्ठ, अनुराधा, भरणी, स्वाति, पूर्वाषाढ़ा और धनिष्ठा–इन नक्षत्रों में शनि हो तथा मन्दिर निर्माण आरंभ शनिवार को हो तो पुत्र हानि होती है।
8. मकर, वृश्चिक और कर्क लग्न में मन्दिर आरंभ करने से नाश होता है।
9. *मेष, तुला और धनु में कार्यारंभ करने से मन्दिर का कार्य दीर्घ समय में* पूर्ण होता है।
10. मध्याह्न और मध्य रात्रि में कार्यारंभ करने से मन्दिर के प्रमुख कार्यकर्ताओं का धन नाश होता है।
11. दोनों सन्ध्याओं में भी मन्दिर निर्माण आरंभ न करें।[9]

भाव शुद्धि- मंदिर आरंभ के समय उस दिन की बनी कुंडली के बारह भावों में रहे हुए नव ग्रहों का शुभाशुभ फल इस प्रकार जानना चाहिए-[10]

लग्न में भाव से	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध
पहले लग्न में	वज्रपात	द्रव्य हानि	मृत्यु	आयु पर्यंत कुशलता
दूसरे लग्न में	हानि	शत्रु नाश	बन्धन	बहु सम्पत्ति
तीसरे लग्न में	विलंब से सिद्धि	अपेक्षित सिद्धि	विलंब से सिद्धि	अभीष्ट सिद्धि
चौथे लग्न में	मित्रों से हानि	बुद्धि नाश	मन्त्रणा भेद	धन लाभ
पाँचवें लग्न में	सन्तान नाश	कलह	कार्य अवरोध	रत्न लाभ
छठे लग्न में	रोग नाश	पुष्टि	लाभ	ज्ञान, धन लाभ
सातवें लग्न में	कीर्ति नाश	क्लेश, भ्रम	विपत्ति	अश्व प्राप्ति
आठवें लग्न में	शत्रु भय	हानि	रोग भय	प्रतिष्ठा वृद्धि
नौवें लग्न में	धर्म हानि	धातु क्षय, रोग	धन नाश	अनेक भोग
दशवें लग्न में	मित्रता वृद्धि	शोक	रत्न लाभ	विजय, स्त्री धन लाभ

लग्न में भाव से	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध
ग्यारहवें लग्न में	लाभ	लाभ	लाभ	लाभ
बारहवें लग्न में	व्यय	व्यय	व्यय	व्यय

लग्न में भाव से	गुरु	शुक्र	शनि
पहले लग्न में	धर्म, अर्थ लाभ	पुत्र लाभ	दरिद्रता
दूसरे लग्न में	धर्म सिद्धि	यथेष्ट पूर्ति	विघ्नोत्पत्ति
तीसरे लग्न में	अभीष्ट सिद्धि	अभीष्ट सिद्धि	विलम्ब से सिद्धि
चौथे लग्न में	राज सम्मान	भूमि लाभ	सर्वस्व नाश
पाँचवें लग्न में	मित्र, धन लाभ	पुत्र सुख	बंधु नाश
छठे लग्न में	यंत्रणा	विद्या लाभ	शत्रु नाश
सातवें लग्न में	गज प्राप्ति	धन लाभ	अंगहीनता का भय
आठवें लग्न में	विजय	आपसी कलह	रोग भय
नौवें लग्न में	विद्या लाभ, आनंद	विजय	धर्म दोष
दशवें लग्न में	परम सुख	शय्यासन लाभ	कीर्ति नाश
ग्यारहवें लग्न में	लाभ	लाभ	लाभ
बारहवें लग्न में	व्यय	व्यय	व्यय

नक्षत्र शुद्धि- आचार्य जयसेन के प्रतिष्ठापाठ के अनुसार बुधवार को मूल, आश्लेषा, विशाखा तथा मंगलवार को तीनों पूर्वा, मघा, भरणी नक्षत्र हो तो इस दिन नींव का खनन करना श्रेष्ठ है। ये अधोमुख संज्ञक नक्षत्र हैं।[11]

गुरुवार को मृगशिरा, अनुराधा, आश्लेषा, पूर्वाषाढ़ा, शुक्रवार को चित्रा, धनिष्ठा, विशाखा, अश्विनी, आर्द्रा, शतभिषा तथा बुधवार को अश्विनी, उत्तरा, हस्त और रोहिणी नक्षत्र हो तो इन दिनों में जिनमंदिर निर्माण का कार्य प्रारम्भ करना शुभ है।[12]

मास शुद्धि- आचार्य जयसेन प्रतिष्ठापाठ के अनुसार चैत्र महीने को छोड़कर मिगसर, पौष, वैशाख, श्रावण आदि शेष महीनों में, सूर्य के उत्तरायण महीनों में तथा व्यतिपात आदि योग रहित शुभ दिनों में जिनालय का कार्य शुरू करना श्रेष्ठ है।[13]

तिथि शुद्धि- जिनालय आदि के नव निर्माण का कार्य आरंभ करने के लिए रिक्ता तिथि, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या को छोड़कर शेष सभी तिथियाँ

शुभ मानी गई हैं।

वार शुद्धि- ज्योतिष शास्त्र में खनन कार्य के लिए रवि और मंगल को छोड़कर शेष वार शुभ कहे गये हैं।

द्वारचक्र विचार- सूर्य नक्षत्र से दैनिक नक्षत्र तक गिनने पर प्रारम्भ के 7 नक्षत्र हों तो अशुभ, उससे आगे के 11 नक्षत्र हों तो शुभ और उससे आगे के 11 नक्षत्र हों तो अशुभ है। ऊपर वर्णित शुभ नक्षत्रों में खनन करना चाहिए।

भूमि शयन नक्षत्र विचार- सूर्य जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र से गिनते हुए दैनिक नक्षत्र 5,7,9,12,19,26 की संख्या में आता हो तो उन नक्षत्रों में भूमि शयन करती है। जैसे सूर्य विशाखा नक्षत्र में है और दैनिक नक्षत्र रेवती हो तो विशाखा से रेवती 12 वाँ होने से उस दिन भूमि शयन करती है। भूमि शयन के नक्षत्रों में खनन नहीं करना चाहिए।[14]

नागवास्तु चक्र– तिथि के अनुसार खनन करने की दिशा निश्चित करनी चाहिए। इसे निम्न कोष्ठक द्वारा स्पष्ट समझें।

तिथि	ईशान	आग्नेय	नैऋत्य	वायव्य
12 1 2		खात		
3 4 5	खात			
6 7 8				खात
9 10 11			खात	

शेषनाग चक्र– खनन मुहूर्त में शेषनाग चक्र भी देखा जाता है। वास्तुसार प्रकरण के अनुसार इस चक्र की निर्माण विधि निम्न है– सर्वप्रथम प्रासाद भूमि में समचौरस 64 खंड बनाएं, फिर प्रत्येक खण्ड में रविवार आदि सात वारों का प्रथम अक्षर लिखें। इसमें प्रथम एवं अन्तिम कोठे में रविवार आना चाहिए। फिर इन कोष्ठकों के ऊपर इस रीति से नाग की आकृति बनाएं कि वह प्रत्येक शनिवार एवं मंगलवार के खानों को स्पर्श करती हुई दिखें। जहाँ-जहाँ शनि और मंगल के कोष्ठक हो वहाँ खात नहीं करना चाहिए।[15] स्पष्ट बोध के लिए शेषनाग चक्र इस प्रकार है-

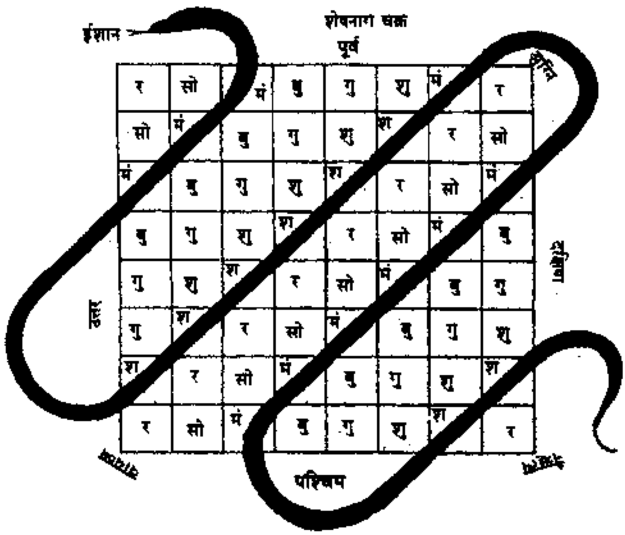

इसका दूसरा नाम राहुचक्र है। राहु ईशान कोण से गमन करता है। राहु के द्वारा उत्क्रम को छोड़कर व्युत्क्रम से गमन करने पर ईशान कोण में मुख, वायव्य कोण में पेट तथा नैऋत्य कोण में पूंछ रहती है। इस प्रकार चौथा आग्नेय कोण खाली रहता है इसलिए प्रथम खात वहाँ करना चाहिए मुख, पेट एवं पूंछ के स्थान पर खात करना हानिकारक है।

राजवल्लभ के अनुसार कन्या, तुला और वृश्चिक में सूर्य हो तो शेषनाग का मुख पूर्व दिशा में रहता है। धन, मकर और कुम्भ में सूर्य हो तो नागमुख दक्षिण में; मीन, मेष और वृषभ में सूर्य हो तो नागमुख पश्चिम में तथा मिथुन, कर्क और सिंह में सूर्य हो तो नागमुख उत्तर में रहता है।

शेषनाग का मुख पूर्वदिशा में हो तो वायव्य कोण में खात करें, दक्षिण में मुख हो तो ईशान कोण में खात करें, पश्चिम में मुख हो तो अग्नि कोण में खात करें और उत्तर में मुख हो तो नैऋत्य कोण में खात करें।

शिलास्थापना मुहूर्त्त

जिनालय का निर्माण करने हेतु सर्वप्रथम खनन विधि करते हैं। उसके पश्चात नींव भरने हेतु मुख्य शिलाओं की स्थापना विधि की जाती है।

वास्तुसार प्रकरण एवं भारतीय ज्योतिष के अनुसार शिलास्थापन के लिए तीनों उत्तरा, पुष्य, रेवती, रोहिणी, हस्त, मृगशिरा और श्रवण- इन नक्षत्रों को

शुभ माना गया है।[16] महीनों में वैशाख, श्रावण, मिगसर और फाल्गुन श्रेष्ठ कहे गये हैं।

तिथियों के लिए कूर्मन्यास चक्र देखना चाहिए। वह इस प्रकार है–

तिथि	नक्षत्र
1.	रोहिणी पुनर्वसु मघा हस्त विशाखा मूल श्रवण पू.भा. अश्विना
2.	मृगशिरा पुष्य पू.फा. चित्रा अनुराधा पू.षा. धनिष्ठा उ.भा. भरणी
3.	कृतिका आर्द्रा आश्लेषा उ.फा. स्वाति ज्येष्ठा उ.षा. शतभिषा रेवती
4.	रोहिणी पुनर्वसु मघा हस्त विशाखा मूल श्रवण पू.मा. अश्विन
5.	मृग. पुष्य पू.फा. चित्रा अनुराधा पू.षा. धनिष्ठा उ.भा. भरणी
6.	कृत्तिका आर्द्रा आश्लेषा उ.फा. स्वाति ज्येष्ठा उ.षा. शतभिषा रेवती
7.	रोहिणी पुनर्वसु मघा हस्त विशाखा मूल श्रवण पू.भा. अश्विना
8.	मृगशिरा पुष्य पू.फा. चित्रा अनुराधा पू.षा. धनिष्ठा उ.भा. भरणी
9.	कृतिका आर्द्रा आश्लेषा उ.फा. स्वाति ज्येष्ठा उ.षा. शतभिषा रेवती
10.	रोहिणी पुनर्वसु मघा हस्त विशाखा मूल श्रवण पू.भा. अश्विना
11.	मृगशिरा पुष्य पू.फा. चित्रा अनुराधा पू.षा. धनिष्ठा उ.भा. भरणी
12.	कृतिका आर्द्रा आश्लेषा उ.फा. स्वाति ज्येष्ठा उ.षा. शतभिषा रेवती
13.	रोहिणी पुनर्वसु मघा हस्त, विशाखा मूल श्रवण पू.भा. अश्विना
14.	मृगशिरा पुष्य पू.फा. चित्रा अनुराधा पू.षा. धनिष्ठा उ.भा. भरणी
15.	कृतिका आर्द्रा आश्लेषा उ.फा. स्वाति ज्येष्ठा उ.षा. शतभिषा रेवती

उपर्युक्त सारणी का आशय यह है कि अमुक तिथि के दिन उसके आगे निर्दिष्ट कोई भी नक्षत्र होने पर शिलास्थापना कर सकते हैं।

वेदी निर्माण मुहूर्त

अरिहंत परमात्मा की मूर्ति को जिस उच्च आसन पर प्रतिष्ठित किया जाता है उसे सामान्यतया वेदी कहते हैं। इस वेदी निर्माण के लिए रोहिणी, मृगशिरा,

रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, स्वाति और तीनों उत्तरा नक्षत्र, तिथि-2,3,5,7,11,13; वार-रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र श्रेष्ठ माने गये हैं।

मण्डप निर्माण मुहूर्त्त

प्रतिष्ठा के दौरान पंच कल्याणक महोत्सव, अंजनशलाका विधान आदि के लिए प्रायः पृथक से मण्डप बनाए जाते हैं। इन मण्डपों का निर्माण भी शुभ दिनों में करना चाहिए।

भारतीय ज्योतिष के अनुसार मण्डप निर्माण हेतु नक्षत्र – मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा, श्रवण, तीनों उत्तरा; तिथि- 2,5,7,11, 12, 13; वार- सोम, बुध, गुरु, शुक्र उत्तम माने गये हैं।

किवाड़ स्थापना मुहूर्त्त

नक्शा के अनुसार मन्दिर बनकर तैयार हो जाये तब गर्भमंडप, रंगमंडप आदि द्वारों के किवाड़ भी शुभ दिन में लगाने चाहिए।

जैन ज्योतिष के अनुसार अनुराधा, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, ज्येष्ठा और अश्विनी शुभ माने गये हैं।[17] इन नक्षत्रों एवं उत्तम महीनों में किवाड़ लगाना चाहिए।

जिनप्रतिमा निर्माण मुहूर्त्त

जिनबिम्ब का निर्माण कार्य श्रेष्ठ दिन में प्रारम्भ करना चाहिए। भारतीय ज्योतिष एवं आचार्य जयसेन प्रतिष्ठापाठ के अनुसार प्रतिमा घड़न हेतु निम्न नक्षत्र उत्तम हैं-

शुभ तिथि- 2,3,5,7,11,13 अथवा जिस तीर्थंकर की प्रतिमा बनवानी हो उनके गर्भकल्याणक की तिथि।

शुभ वार- सोम, बुध, गुरु और शुक्र।

शुभ योग- गुरु, पुष्य, अथवा रवि हस्त योग।

शुभ नक्षत्र- तीनों उत्तरा, पुष्य, रोहिणी, श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा, आर्द्रा। मतांतर से अश्विनी, हस्त, अभिजित , मृगशिरा, रेवती और अनुराधा भी शुभ नक्षत्र हैं।[18]

शिला हेतु जाने का मुहूर्त्त

प्रतिमा निर्माण के लिए तद्योग्य शिला की जरूरत होती है। उस शिला को लाने हेतु शुभ काल में प्रस्थान करना चाहिए।

विद्वज्ञों के मतानुसार रेवती, श्रवण, हस्त, पुष्य, अश्विनी, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, अनुराधा, धनिष्ठा एवं मृगशिरा- ये नक्षत्र शिला लाने हेतु जाने के लिए शुभ हैं। इस कार्य के लिए सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार तथा विषम संख्या वाली तिथियाँ उत्तम हैं।

प्रतिष्ठा मुहूर्त्त

शास्त्रीय विधिपूर्वक अरिहंत परमात्मा के प्रतिबिम्ब को जिनालय में स्थापित करना प्रतिष्ठा कहलाता है। यह अनुष्ठान शुभ काल में करना चाहिए।

उदयप्रभदेवसूरि विरचित आरम्भ सिद्धि[19], आचार्य हरिभद्रसूरि रचित लग्न शुद्धि,[20] रत्नशेखरसूरिकृत दिन शुद्धि,[21] आचार्य जयसेन प्रतिष्ठापाठ,[22] आचार दिनकर[23], भारतीय ज्योतिष वगैरह में जिनबिम्ब स्थापना का मुहूर्त्त विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। यहाँ सुगम बोध के लिए यह मुहूर्त्त संक्षेप में बताया जा रहा है।

तिथि- जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा के लिए द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी और पूर्णिमा– ये तिथियाँ शुभ कही गई हैं।

रिक्ता तिथि (4,9,14) के दिन योग शुद्धि हो तो वह प्रतिष्ठा के लिए ग्राह्य है।

चौबीस तीर्थंकरों के जिन तिथियों में जो कल्याणक हुए उन तिथि दिनों में वह कल्याणक विधि कर सकते हैं।

वार- प्रतिष्ठा हेतु मंगल, रवि और शनि– इन तीन को छोड़कर शेष चार वार शुभ हैं।

नक्षत्र- प्रतिष्ठा विधि के लिए मूल, पुनर्वसु, स्वाति, अनुराधा, हस्त, श्रवण, रेवती, रोहिणी और तीनों उत्तरा नक्षत्र श्रेष्ठ कहे गये हैं। धनिष्ठा, पुष्य और मघा नक्षत्र भी प्रतिष्ठा हेतु सौम्य हैं।

वर्जित नक्षत्र प्रतिष्ठाकर्ता के जन्म नक्षत्र से 1,10,16,18,23,25वाँ नक्षत्र आता हो तो उस दिन प्रतिष्ठा नहीं करें। तीर्थंकर परमात्मा के जन्म नक्षत्र में तथा मघा, विशाखा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में प्रतिष्ठा नहीं करें।

दूसरे ग्रहों से ग्रसित ग्रह, उदित एवं अस्त ग्रह, क्रूर एवं अग्र आक्रान्त नक्षत्रों में प्रतिष्ठा न करें।

योग- विष्कम्भ और मूल की प्रारम्भिक पाँच घड़ी, गंड और अतिगंड की छह घड़ी तथा वज्र और घात की नौ घड़ी वर्जित है। व्यतिपात और परिधि योग हमेशा ही निषिद्ध है।

यदि भूकम्प, दिशा दाह, राजा मृत्यु आदि का उत्पात हो जाये तो तीन दिन तक प्रतिष्ठा नहीं करवानी चाहिए।

लग्न शुद्धि- प्रतिष्ठा आदि शुभ कार्य में द्विस्वभावी लग्न श्रेष्ठ, स्थिर स्वभावी लग्न मध्यम और चर स्वभावी लग्न जघन्य माना गया है परन्तु अत्यन्त बलवान शुभ लग्न युक्त चर लग्न हो तो मान्य है। चर लग्न आदि के स्पष्ट बोध हेतु निम्न कोष्ठक देखिए–

चर लग्न	मेष	कर्क	तुला	मकर	अधम
स्थिर लग्न	वृषभ	सिंह	वृश्चिक	कुंभ	मध्यम
द्विस्वभाव लग्न	मिथुन	कन्या	धनु	मीन	उत्तम

वर्ष शुद्धि– सिंहस्थ-गुरु अस्त वर्ष, मास, दिन, नक्षत्र और मंगलवार को छोड़कर शेष सर्व प्रकार की शुद्धि विवाह मुहूर्त्त की भाँति देखनी चाहिए।

अयन शुद्धि– गृह प्रवेश, देव प्रतिष्ठा, विवाह, मुंडन संस्कार, व्रत स्वीकार आदि शुभ कार्य उत्तरायण में (मकर आदि छह राशियों पर सूर्य हो तब) करना चाहिए। दक्षिणायन– कर्क आदि छह राशियों पर सूर्य हो तो उस समय शुभ कार्य करना वर्जित है।

मास शुद्धि- प्रतिष्ठा के लिए चैत्र, पौष एवं अधिक मास को छोड़कर शेष मिगसर आदि आठ महीने शुभ हैं तथा चैत्र महीने में मेष संक्रान्ति हो और पौष महीने में मकर संक्रान्ति हो तो उक्त दोनों माह भी शुभ हो सकते हैं।

शुभ महीनों में गुरु अथवा शुक्र बाल हो, वृद्ध हो अथवा अस्त हो तो वे महीने अशुभ हैं।

माघ मास में गृहमंदिर निर्माण का कार्य शुरू नहीं करना चाहिए, उससे अग्नि भय होता है परन्तु शिखरबद्ध मन्दिर का प्रारम्भ और बिम्ब प्रवेश हो सकता है।

आषाढ़ महीने में प्रतिष्ठा हो सकती है किन्तु कुछ आचार्यों के मतानुसार गंभारे में बिंब प्रवेश नहीं करवाना चाहिए।

तिथि शुद्धि- प्रतिष्ठा के लिए शुक्ल पक्ष की एकम, दूज, पंचमी,

दशमी, तेरस और पूनम तथा कृष्ण पक्ष की एकम, दूज और पंचमी- ये तिथियाँ शुभ फलदायी हैं।

बिम्ब प्रवेश-वास्तुसार प्रकरण के अनुसार शतभिषा, पुष्य, धनिष्ठा, मृगशिरा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा और रेवती इन नक्षत्रों में, शुभ वारों में तथा चंद्र, गुरु और शुक्र के उदय में जिनबिम्ब का नगर प्रवेश करवाना शुभ है।

नवमांश शुद्धि- लग्न शुभ हो किन्तु नवमांश अशुभ हो तो इष्ट सिद्धि नहीं होती और लग्न अशुभ हो किन्तु नवमांश शुभ हो तो इष्ट सिद्धि होती है, क्योंकि नवमांश बलवान होता है। अशुभ अंश में रहा हुआ शुभ ग्रह भी अशुभ फल देता है और शुभ अंश में रहा हुआ अशुभ ग्रह शुभ फल देता है इसलिए नवमांश शुद्धि अवश्य देखनी चाहिए।

प्रतिष्ठा कार्य में मिथुन, कन्या और धनु का पूर्वार्ध और मीन का नवमांश मध्यम है।

सामान्य शुद्धि— जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा के दिन शनि बलवान हो, मंगल एवं बुध बलहीन हो तथा मेष और वृषभ में सूर्य और चंद्र होना चाहिए।

इस पाँचवें अध्याय में वर्णित विषयों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मन्दिर निर्माण में ग्रह, नक्षत्र आदि ज्योतिष सम्बन्धी पक्षों का भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। योग, लग्न, मुहूर्त्त आदि की शुद्धि के आधार पर ही प्रतिष्ठा का प्रभाव देखा जाता है। वर्जित ग्रह-नक्षत्रों में ली गई प्रतिष्ठा कई बार जिनशासन की हीलना का कारण भी बन जाती है वहीं शुभ नक्षत्रों में किया गया कार्य समूचे राष्ट्र की अभिवृद्धि में सहायक बनता है। पाठक वर्ग इस संदर्भ में अवगत हो पाए यही मंगल भावना।

सन्दर्भ-सूची

1. *वास्तुसार प्रकरण, 1/22*
2. *मुहूर्त्त चिंतामणि टीका, 12/15*
3. *देवशिल्प, पृ. 358*
4. *आचार्य जयसेन प्रतिष्ठा पाठ, श्लो. 43-44*
5. *त्रिषु-त्रिषु च मासेषु, मार्गशीर्षादिषु क्रमात्।*
   पूर्व दक्षिणे तोयेश, पौत्स्लयाशाक्र मादमुः॥
   विश्वकर्मा प्रकाश, गेहारम्भ प्रकरण, 8

6. वही, 9-10
7. भिगु लग्गे बुहु दसमे, दिणयरु लाहे बिहप्फई किंदे।
   जइ गिहनीमारंभे, ता वरिस सयाउयं हवइ॥
   दसमचउत्थे गुरुससि, सणिकुजलाहे अ लच्छि वरिस असी।
   इग ति चउ छ मुणि कमसो, गुरुसणिभिगुरविबुहम्मि सयं॥
   सुक्कुदए रवितइए, मंगलि छट्ठे अ पंचमे जीवे।
   इअ लग्गकए गेहे, दो वरिससयाउयं रिद्धी॥
   सगिहत्थो ससि लग्गे, गुरु किंदे बलजुओ सुविद्धिकरो।
   कूरट्ठम-अइअसुहा, सोमा मज्झिम गिहारंभे॥
   इक्केवि गहे णिच्छइ, परगेहि परेसि सत्त-बारसमे।
   गिहसामिवण्णनाहे, अबले परहत्थि होइ गिहं॥
   वास्तुसार प्रकरण, 1/28-32
8. देवशिल्प, पृ. 361
9. वही, पृ. 361
10. वही, पृ. 363
11. प्रतिष्ठापाठ, श्लो. 145
12. वही, श्लो. 147-148
13. प्रतिष्ठा पाठ, श्लो. 146
14. मुहूर्त्त चक्रावली, पृ. 83
15. वास्तुसार प्रकरण, पृ. 11
16. (क) वास्तुसार प्रकरण, पृ. 213
    (ख) भारतीय ज्योतिष, पृ. 506-507
17. प्रतिष्ठापाठ, श्लो. 145
18. वही, 185-186
19. आरम्भ सिद्धि, 10/1,14, 19, 20, 23, 28
20. लग्न शुद्धि के तीनों द्वार द्रष्टव्य हैं।
21. दिन शुद्धि, श्लो. 121-138
22. आचार्य जयसेन प्रतिष्ठापाठ, श्लो. 187-191
23. आचार दिनकर, भा. 2, पृ. 144

अध्याय-6

जिनमन्दिर निर्माण की शास्त्रोक्त विधि

जिनालय विश्व संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। प्राचीन एवं अर्वाचीन मन्दिरों की बेजोड़ कलाकारी एवं उनके निर्माण में रखी गई जागृति ने आज पर्यन्त उन्हें जीवंत रखा है। यदि जैन श्रुत साहित्य का अवलोकन करे तो मन्दिर वास्तु विषयक भी अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। उन्हीं प्रमाणभूत ग्रन्थों के आधार पर इस अध्याय में जिनमन्दिर निर्माण की शास्त्रोक्त विधि का निरूपण किया जा रहा है।

जिनालय का निर्माण करवाते समय कुछ सावधानियाँ आवश्यक है। आचार्य हरिभद्रसूरि ने इस सम्बन्ध में पाँच द्वारों का उल्लेख किया है जो निम्न प्रकार है-

1. भूमि शुद्धि- जहाँ जिनमन्दिर बनवाना हो वह भूमि निर्दोष होनी चाहिए।
2. दल शुद्धि- जिनमन्दिर निर्माण के साधन चूना, ईंट, काष्ठ आदि शुद्ध होने चाहिए।
3. भृतकानतिसन्धान- शिल्पिकारों का शोषण नहीं करना चाहिए।
4. स्वाशयवृद्धि- शुभ आशय में वृद्धि होते रहना चाहिए।
5. यतना- जिनमन्दिर बनवाते समय कम से कम दोष लगे, एतदर्थ विवेक रखना चाहिए।[1]

शिल्परत्नाकर, प्रासाद मंडन, वास्तुसार प्रकरण, षोडशक प्रकरण, पंचाशक प्रकरण आदि प्रमुख ग्रन्थों के आधार पर उक्त पाँच द्वारों का विस्तृत विवेचन भी किया जा रहा है-

1. भूमि शुद्धि द्वार

जब उपासक के अन्तर्हृदय में जिनमन्दिर निर्माण की भावना उत्पन्न हो जाये तब वह सर्वप्रथम उपयुक्त भूमि का चयन करें। शुभ लक्षणों से युक्त भूमि पर बनाया गया मन्दिर आराधकों के लिए दीर्घ काल तक टिका रहता है। साथ ही भावी पीढ़ियाँ भी परम्परा से सन्मार्ग का आश्रय लेकर आत्म कल्याण करती हैं।

भूमि कैसी हो?

आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वास्तु विद्या और धर्मशास्त्र में अनुज्ञापित मर्यादा का उल्लंघन किये बिना शुद्ध भूमि का ग्रहण करना चाहिए। भूमि दो प्रकार से शुद्ध होनी चाहिए। भूमि में काँटे, हड्डियाँ आदि न हों तथा आस-पास में रहने वाले पड़ोसियों को उद्वेग न हों यह द्रव्य शुद्धि है और जिस भूमि पर भविष्य में अनेक प्रकार के कल्याण की संभावनाएँ प्रतीत होती हो, वह भाव शुद्धि है।[2]

यहाँ प्रश्न होता है कि दूसरों के लिए पीड़ाकारक न हो ऐसी भूमि ग्रहण क्यों करना चाहिए? इसका समाधान करते हुए आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि पर पीड़ा के परिहार हेतु विशेष प्रयत्न करना यह धर्म में प्रवृत्ति करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए धर्म सिद्धि का मुख्य कारण बनता है। पर पीड़ा परिहार की भावना युक्त की गई आराधना से शुभ का अनुबन्ध होता है। इसीलिए भगवान महावीर ने तापस आश्रम के मालिक के मन में हुई अप्रीति को दूर करने के लिए चातुर्मास में भी विहार किया।[3]

मन्दिर निर्माण कर्त्ता को निर्माण काल में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि देरासर के समीप में रहने वाले लोग स्वजना आदि सम्बन्धों से रहित होने पर भी उनका सन्मान करें, क्योंकि उनका बहुमान करने से परमात्म भक्ति के परिणाम प्रकट होते हैं और उससे अन्यों में भी धर्म रुचि उत्पन्न होती है।[4]

शुभ भूमि के लक्षण

भूमि का चयन करते समय उसका रूप, रस, गंध, वर्ण और परिकर देखा जाता है। शास्त्रोक्त विधियों से भूमि के नीचे भी अपवित्र शल्य न हों उसका भी निरीक्षण करते हैं।

बृहत् संहिता के अनुसार जो भूमि अनेक प्रशंसनीय औषधियाँ एवं वृक्ष लताओं से शोभित हो, जिसका स्वाद मधुर हो, गंध उत्तम हो, स्निग्ध हो, गड्ढों एवं छिद्रों से रहित हो, आनन्दवर्धक हो वह मन्दिर निर्माण के लिए श्रेष्ठ है।[5]

वास्तुसार प्रकरण के उल्लेखानुसार जो भूमि वर्गाकार हो, दीमक रहित हो, कटी-फटी न हो, काँटा आदि शल्य से रहित हो तथा उसका उतार (ढलान) पूर्व, ईशान अथवा उत्तर की ओर हो वह भूमि वास्तु निर्माण और मन्दिर निर्माण सभी के लिए सुखकारी होती है।[6]

शुभ लक्षणवाली भूमि के फल

- देवशिल्प में उल्लिखित निर्देश के अनुसार भद्रपीठ भूमि अर्थात जो भूमि मध्य में ऊँची तथा चारों ओर से नीची हो वह जिनालय निर्माण हेतु शुभ

है। इस भूमि पर मन्दिर बनवाने से धन, सुख एवं उत्साह में वृद्धि होती है।

• ध्वजा आकार की भूमि पर किया गया मन्दिर निर्माण उन्नतिकारक है। • दृढ़ भूमि पर निर्मित मन्दिर धनदायक है। • सम भूमि पर निर्मित मन्दिर सौभाग्यदायक है। • उच्च भूमि पर जिनालय बंधवाने से यश सम्पन्न पुत्रों की प्राप्ति होती है। • कुशयुक्त भूमि तेजस्वी पुत्र प्रदान करती है। • दुर्वायुक्त भूमि पर मन्दिर बनवाने से वीर पुत्र की प्राप्ति होती है। • फल युक्त भूमि धन एवं पुत्र प्राप्ति में निमित्त बनती है। • श्वेतवर्णी भूमि सर्वोन्नति, पारिवारिक सुख-समृद्धि एवं संतति दायक होती है।

• पीतवर्णी भूमि पर मन्दिर बंधवाने से राजकीय लाभ एवं यश वर्धन होता है।

• सुखद स्पर्शी भूमि पर मन्दिर बनवाने से मन की शांति, विद्या और वैभव की सहज प्राप्ति होती है।

• सुगंध युक्त भूमि धन-धान्य और यशदायक होती है।[7]

अशुभ भूमि के लक्षण

शिल्पज्ञों के अनुसार जो भूमि नदी के कटाव में हो, पर्वत के अग्रभाग से मिली हुई हो, बड़े पत्थरों से युक्त हो, तेजहीन हो, सूपा की आकृति में हो, मध्य में विकट रूप हो, दीपक एवं सर्प की वामियों से युक्त हो, दीर्घ वृक्षों से युक्त हो, चौराहे की भूमि हो, जहाँ भूत-प्रेत निवास करते हो, श्मशान के निकटस्थ हो, युद्ध स्थली हो, मरुस्थली हो ऐसी भूमियाँ मन्दिर निर्माण के लिए अशुभ मानी गई हैं।[8]

अशुभ लक्षणवाली भूमियों के फल

ऊपर वर्णित एवं अन्य अशुभ भूमियों पर मन्दिर का निर्माण करवाने से वास्तुसार प्रकरण आदि शिल्प ग्रन्थों के अनुसार निम्न परिणाम हासिल होते हैं-

1. कटी-फटी भूमि, हड्डी आदि शल्य युक्त भूमि, दीमक युक्त भूमि एवं उबड़-खाबड़ भूमि पर मन्दिर निर्माण करने से मन्दिर निर्माता की आयु एवं धन दोनों का हरण होता है।
2. दीमक वाली भूमि व्याधि कारक एवं रोगवर्धक होती है।
3. खारी भूमि धन का नाश करती है।
4. शल्य कंटक भूमि दुखकारक बनती है।[9]
5. युद्ध एवं हिंसक भूमि पर किया गया मन्दिर निर्माण शोक कारक, मृत्युकारक और दुःखकारक होता है।
6. श्मशान, कब्रिस्तान एवं पशु बलि के जगहों पर मन्दिर निर्माण करने से

निरन्तर कष्ट एवं वैमनस्य बना रहता है।

7. जहाँ दीर्घकाल से विधवा, परित्यक्ता या नपुंसक रहते हों अथवा जहाँ लम्बे समय से रूदन हो रहा हो वहाँ मन्दिर बनाने से प्रगति अवरुद्ध हो जाती है।
8. कंटीले वृक्षों से निरन्तर बिंधी रहने वाली भूमि पर किया गया मन्दिर निर्माण क्लेश कारक और शत्रुवर्धक होता है।
9. तापसों के आश्रय वाली उजाड़ हुई भूमि पर मन्दिर निर्माण से गाँव उजड़ जाते हैं।
10. शीलहरण आदि पापों से दूषित भूमि पर मन्दिर निर्माण करने से शीलभंग होने का भय रहता है।
11. जिस भूमि पर लम्बे समय तक गर्दभ, शूकर, कौए रहते हों वह मन्दिर के लिए अत्यन्त क्लेशदायी होती है।
12. जहाँ कौए-कबूतर निरन्तर रहते हों वह भूमि जिनालय के लिए रोग, शोक, भय, मृत्यु आदि कष्टों का कारण बनती है।
13. गिद्ध पक्षियों के निवास युक्त भूमि पर मन्दिर निर्माण से धन हानि और मृत्यु सम्भावना रहती है।
14. टेढ़ी-मेढ़ी, रेतीली एवं विकट भूमि पर जिनालय का निर्माण करने से विद्याहीन पुत्रों की प्राप्ति होती है।
15. नुकीली एवं पथरीली भूमि पर मन्दिर निर्माण से दरिद्रता बढ़ती है।
16. भूमि के स्पर्श से यदि हाथ मलिन हो तथा धोने पर भी साफ न हो तो वह भूमि जिनालय निर्माण के लिए अशुभ है।[10]

शुभाशुभ लक्षणवाली भूमियों के प्रकार एवं उसके फल

शिल्प सम्बन्धी ग्रन्थों में आकार की अपेक्षा शुभ-अशुभ भूमि के अनेक प्रकार बताये गये हैं तथा उन भूमियों का फलादेश भी कहा गया है। वह विवरण संक्षेप में निम्न प्रकार है–

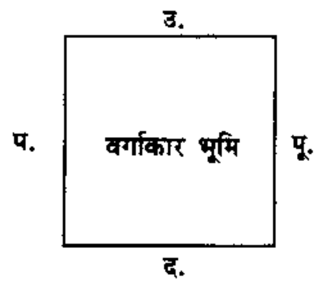

1. **वर्गाकार भूमि–** जिसके चारों कोने बराबर हो वह वर्गाकार भूमि कहलाती है। इसे सुमंगला भूमि कहते हैं। ऐसी भूमि पर जिनालय निर्मित करने से सुख, शांति और समृद्धि की प्राप्ति होती है।

2. आयताकार भूमि– जो उत्तर-दक्षिण में लम्बी हो तथा पूर्व-पश्चिम में अपेक्षाकृत कम चौड़ी हो वह आयताकार भूमि कहलाती है। इसे चन्द्रवेधी भूमि कहते हैं। यह अत्यन्त शुभ होने से मन्दिर निर्माता के धन-धान्य और सुख-सम्पत्ति में वृद्धि करती है।

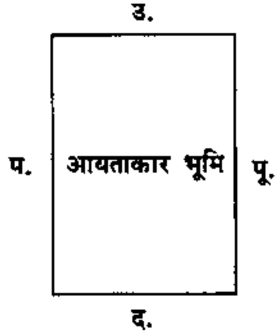

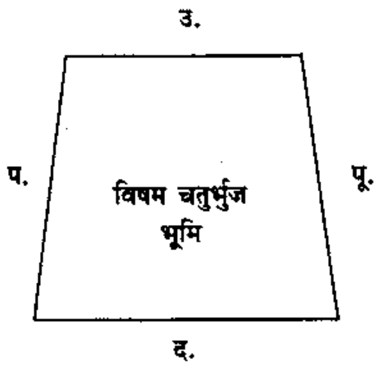

3. विषम चतुर्भुज भूमि– जिस भूमि की मुख भुजा से पृष्ठ भुजा किंचित् दीर्घ हो उसे विषम चतुर्भुज कहते हैं। इस भूमि पर निर्मित मन्दिर यश, सुख एवं सम्पत्ति दायक होता है।

4. ईशान वृद्धि भूमि– जिस भूमि का बढ़ाव किंचित् ईशान कोण में हो वहाँ मन्दिर का निर्माण करवाने वाले गृहस्थ के वैभव और धर्म भावनाओं का विकास होता है।

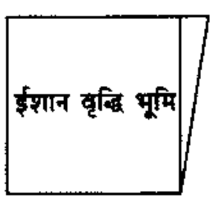

5. वृत्ताकार भूमि– पूरी तरह से गोलाकार भूमि पर निर्मित जिनालय सभी के लिए शुभ एवं सदाचार वर्धक होता है।

6. त्रिकोणाकृति भूमि– तीन कोणों के आकार वाली भूमि मन्दिर के लिए अशुभ है। इस भूमि पर मन्दिर बनाने से पुत्र संतति का अभाव होता है।

7. बैलगाड़ी आकार वाली भूमि– बैलगाड़ी के आकार जैसी भूमि पर किया गया मन्दिर निर्माण धनहानि का कारण बनता है।

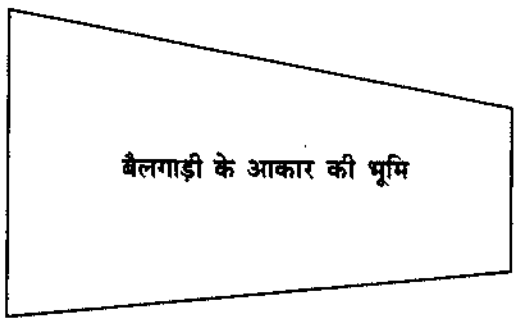

8. पंखाकृति एवं सूपाकार भूमि– सूप और हाथ में ग्रहण की गई पंखी के आकार की भूमि अशुभ है। ऐसी भूमियों पर मन्दिर निर्माण करने से धर्म आराधना में बाधाएँ आती रहती हैं।

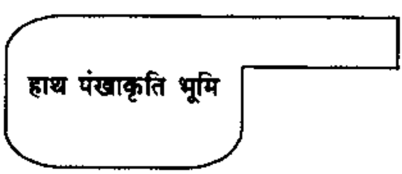

9. मृदंगाकार भूमि– मृदंग के आकार की भूमि पर मन्दिर निर्माण करने से वंश हानि होती है।

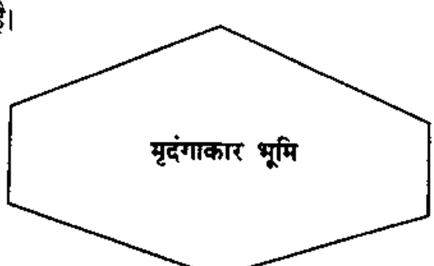

10. सर्पाकार-दर्दुराकार भूमि– सर्प एवं मेंढ़क के आकार की भूमि पर मन्दिर का निर्माण भयकारक होता है।

11. अजगराकार भूमि– अजगर के आकार की भूमि पर किया गया मन्दिर निर्माण निर्माता के लिए अत्यन्त अशुभ एवं मृत्यु कष्टदायी होता है।

12. मृद्गराकार भूमि– मुद्गर के सदृश भूमि पर निर्माण करने से व्यक्ति पुरुषार्थ हीन हो जाता है।

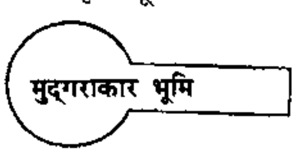

13. वंशाकार भूमि– बांस के आकार वाली भूमि पर मन्दिर निर्माण करने से वंश हानि का भय रहता है।

आचार्य हरिभद्रसूरि के मतानुसार अयोग्य क्षेत्र में जिन मन्दिर निर्माण करवाने पर भूमि एवं परिवेश की अशुद्धता से तथा असदाचारी लोगों के प्रभाव से उस जिन मन्दिर की न तो वृद्धि होती है और न पूजा ही। धर्म हानि के भय से साधु-साध्वी भी दर्शनार्थ नहीं आते हैं। यदि आ भी जाये तो उनके आचार हानि की संभावना रहती है।

अयोग्य स्थान पर मन्दिर निर्माण से जैन शासन की निन्दा होती है। वहाँ कुत्सित लोगों के आने-जाने से कलह होता है तथा आज्ञाभंग, मिथ्यात्व और विराधना रूप भयंकर दोष लगते हैं जो संसार परिभ्रमण के मूल कारण हैं।[11]

भूमि परीक्षण की विधियाँ

मन्दिर निर्माण करवाने का निर्णय हो जाने के पश्चात सर्वप्रथम शुभ लक्षणवाली भूमि का चयन किया जाता है। भूमि चयन के बाद उस भूमि की विभिन्न विधियों से परीक्षा की जाती है। परीक्षा के उपरान्त ही उस जगह जिन मन्दिर बनवाना चाहिए अन्यथा विपरीत परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

वास्तुसार प्रकरण के अनुसार भूमि परीक्षण की कुछ विधियाँ उल्लेखित करेंगे, उनमें से किसी एक का अनुकरण करना चाहिए। यहाँ यह भी स्मरण रहें

कि यह परीक्षण सम शीतोष्ण अथवा शुष्क जलवायु के समय करना चाहिए। यदि तत्काल या कुछ समय पूर्व वर्षा हुई हो तो परीक्षण विधि नहीं करें।

प्रथम विधि– जिस भूमि पर मंदिर निर्माण करना हो वहाँ मध्य भाग में चौबीस अंगुल (एक हाथ) लम्बा, चौड़ा एवं गहरा खड्डा खुदवाये। फिर उसमें से निकली हुई मिट्टी को पुन: उसी में भरे। यदि गड्ढा भरने के उपरान्त मिट्टी बच जाये तो उस भूमि को उत्तम मानना चाहिए। यदि मिट्टी न बचें तो उसे मध्यम जानना चाहिए और यदि गड्ढा खाली रह जाये तो उसे जघन्य समझना चाहिए। जघन्य भूमि अशुभ कही गई है। ऐसी भूमि पर मन्दिर निर्माण से दुख-दारिद्रय का कष्ट भोगना पड़ता है।[12]

द्वितीय विधि– प्रस्तावित भूमि के मध्य भाग में चौबीस अंगुल (एक हाथ) लम्बा, चौड़ा और गहरा गड्ढा खुदवाये। उसमें पूरी तरह से पानी भर दें। फिर 100 कदम चलकर पुन: गड्ढे के समीप आयें और देखें कि यदि एक अंगुल पानी कम हुआ हो तो वह भूमि उत्तम है, यदि दो अंगुल पानी कम हुआ हो तो मध्यम है और तीन अंगुल पानी कम हुआ हो तो जघन्य समझना चाहिए। जघन्य भूमि मंदिर निर्माण के योग्य नहीं होती।[13]

तृतीय विधि– तीसरी विधि के अनुसार सन्ध्या के समय जब कुछ अंधेरा होने लगे तब निर्धारित थोड़ी भूमि के चारों ओर परकोटे की भाँति चटाई को इस प्रकार बांधें कि हवा का जरा भी प्रवेश न हो। फिर उस भूमि पर 'ॐ हूं फुट्' मंत्र लिखें। इस मंत्र पर चार दिशाओं की ओर चार कच्चे घड़े रखें और उन पर कच्ची मिट्टी के चार दीपक घी से भरकर रखें। तदनन्तर पूर्व दिशा में सफेद, दक्षिण दिशा में लाल, पश्चिम दिशा में पीली और उत्तर दिशा में काली बत्ती लगाकर प्रज्वलित करें। वहाँ दो श्रावक नवकार मंत्र का जाप करते हुए रात्रि जागरण करें और दीपकों पर विशेष ध्यान दें। यदि सफेद या पीली बत्ती वाला दीपक पहले बुझ जाये तो अशुभ फलदायक समझें और यदि लाल या काली बत्ती वाला दीपक पहले बुझ जाये तो उत्तम फलदायक समझें।[14]

इस प्रकार भूमि परीक्षा करके मन्दिर निर्माण का कार्य प्रारम्भ करना चाहिए।

भूमि परीक्षा की अन्य विधि

एक अन्य तरह से भी भूमि की परीक्षा की जाती है। इस विधि के अनुसार भी उपयोगी भूमि के मध्य भाग में एक हाथ गहरा गड्ढा खोदें। नीचे की भूमि का

अच्छे से अवलोकन करें। यदि भूमि में धातु कण दिखते हों तो उन्हें अच्छी तरह से परखें। उनमें भिन्न-भिन्न वर्णवाले धातुओं के कण दिखने पर उनका शुभाशुभ फल इस प्रकार होता है–

1. यदि स्वर्ण जैसे धातु कण दिखें तो वह भूमि मन्दिर निर्माता के लिए धन वृद्धिकारक माननी चाहिए।
2. यदि ताम्र सदृश धातु कण दिखें तो वह भूमि मन्दिर निर्माता के लिए धन-धान्य वृद्धि कारक और संघ के लिए सर्व सुखकारक होती है।
3. यदि सिन्दूर जैसे धातु कण दिखें तो वह भूमि मन्दिर निर्माता के यश एवं कीर्ति की हानि करती है।
4. यदि अभ्रक जैसे धातु कण दिखें तो वह भूमि मन्दिर निर्माता के लिए अग्नि भय एवं संताप कारक होती है।
5. यदि कांच या हड्डियों के कण दिखें तो वह भूमि मन्दिर निर्माण के लिए सर्वथा अशुभ और अनुपयुक्त समझनी चाहिए।
6. यदि कोयले जैसे पत्थर के काले कण दिखाई दें तो वह राजभय, अकाल मृत्यु का भय एवं निरन्तर चिन्ताएँ उत्पन्न करती हैं।[15]

यह फलादेश शिल्प शास्त्रियों द्वारा वास्तुज्ञान, स्वानुभव एवं अनुभवी गुरु से परामर्श करके कहा गया है।

शल्य शोधन की विधियाँ

जिस भूमि पर मन्दिर बनवाने का निश्चय कर लिया गया हो उस भूमि के नीचे हड्डी, चमड़ी, बाल, कोयला आदि हो तो उन्हें शल्य कहा जाता है जो मन्दिर निर्माता एवं संघ-समुदाय के लिए अत्यन्त अनिष्टकारक होता है इसलिए भूमि चयन एवं परीक्षण के उपरान्त शल्य का शोधन करना आवश्यक है।

शास्त्रों में शल्य शोधन की दो विधियाँ दी गई है जो इस प्रकार हैं–

प्रथम विधि– यह शल्योद्धार शुभ दिन, शुभ लग्न एवं शुभ मुहूर्त में करना चाहिए। सर्वप्रथम जिस भूमि पर मन्दिर का निर्माण करना हो उसके नौ भाग करें। उन नौ भागों में पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः 'ब, क, च, त, ए ह, स, प, ज' अक्षर लिखें। फिर निम्नलिखित रूप से यन्त्र बनाएं। तदनन्तर कुमारी कन्या के तिलक लगाकर और उसके हाथ में श्रीफल देकर उसे पूर्व दिशा के अभिमुख बिठाएं।

ईशान-प	पूर्व-ब	आग्नेय-क
उत्तर-स	मध्य-ज	दक्षिण-च
वायव्य-ह	पश्चिम-ए	नैऋत्य-त

तत्पश्चात 'ॐ ह्रीँ श्रीँ ऐं नमो वाग्वादिनी मम प्रश्ने अवतर अवतर' इस मन्त्र से खड़िया (सफेद चोक) को 108 बार अभिमन्त्रित कर कुमारी कन्या के हाथ में दें तथा उससे कोई भी प्रश्नाक्षर लिखवायें। लिखे गये अक्षर का कोष्ठक से मिलान करें। यदि कोई भी अक्षर मिल जाये तो उस भाग में शल्य समझें, अन्यथा भूमि को शल्य रहित समझें।[16]

प्रश्नाक्षर से शल्य मिलने का संकेत एवं उसका फल

	कहाँ	**शल्य**	**फल**
ब आये तो	पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ नीचे	मनुष्य की हड्डी	निर्माता की मृत्यु
क आये तो	आग्नेय में दो हाथ नीचे	गधे की हड्डी	राज भय
च आये तो	दक्षिण में कमर जितनी गहराई में	मनुष्य की हड्डी	निर्माता की मृत्यु
त आये तो	नैऋत्य में डेढ़ हाथ नीचे	कुत्ते की हड्डी	बालकों को हानि (संतान सुख का अभाव)
ए आये तो	पश्चिम में दो हाथ नीचे	बच्चे की हड्डी	पति का परदेश वास
ह आये तो	वायव्य में चार हाथ नीचे	कोयले	मित्र नाश
स आये तो	उत्तर में कमर जितनी गहराई में	ब्राह्मण की हड्डी	स्वामी का धन नाश
प आये तो	ईशान में डेढ़ हाथ नीचे	गाय की हड्डी	स्वामी का धन नाश
ज आये तो	मध्य में छाती जितना गहरा	कपाल-केश	स्वामी की मृत्यु[17]

द्वितीय विधि– जिस भूमि पर मन्दिर निर्माण करना अभीष्ट है वहाँ नौ कोष्ठकों का एक चक्र निर्मित करें। उसमें पूर्वादि दिशाओं के क्रम से 'अ, क, च, ट, त, प, य, श' इन वर्णों को लिखें। मध्य में 'ह-प-य' लिखें।

तत्पश्चात 'ॐ ह्रीं कुष्माण्डिनी कौमारी मम ह्रदये ह्रीं कथय कथय स्वाहा'- इस मन्त्र का 21 बार जाप करके कोष्ठक को मन्त्रित करें- करवायें। फिर प्रश्नकर्त्ता से प्रश्न लिखवायें। वह जिस अक्षर से प्रश्न आरम्भ करें वहाँ यथाशक्य निर्दिष्ट शल्य होता है।

ईशान-श	पूर्व-अ	आग्नेय-क
उत्तर-य	मध्य ह-प-य	दक्षिण-च
वायव्य-प	पश्चिम-त	नैऋत्य-ट

प्रश्नकर्त्ता के प्रथमाक्षर के अनुसार शल्य ज्ञान एवं उसका फल

प्रश्नकर्त्ता के प्रथमाक्षर एवं दिशा		शल्य स्थिति	फल
अ	पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ नीचे	मनुष्य की हड्डी	व्यक्ति की मृत्यु
क	आग्नेय में दो हाथ नीचे	गधे की हड्डी	राजभय
च	दक्षिण में कमर भर नीचे	मनुष्य की हड्डी	स्वामी मृत्यु
ट	नैऋत्य में डेढ़ हाथ नीचे	कुत्ते की हड्डी	गर्भ पतन
त	पश्चिम में डेढ़ हाथ नीचे	सियार की हड्डी	परदेश वास
प	वायव्य में चार हाथ नीचे	मनुष्य की हड्डी	मित्रनाश
य	उत्तर में साढ़े चार हाथ नीचे	गधे की हड्डी	पशु हानि
श	ईशान में डेढ़ हाथ नीचे	गाय की हड्डी	गोधन हानि
ह-प-य	मध्य में ह्रदय जितनी गहराई में	केश, कपाल मुर्दा, भस्म, लोह	मृत्यु

शल्योद्धार करने हेतु उपर्युक्त प्रक्रिया करने के उपरान्त भी अनेकों बार हड्डी नहीं निकलती है। ऐसी परिस्थिति में अपेक्षित स्थान को सावधानी से गहराई तक खोद लेना उपयुक्त है क्योंकि दीर्घ काल के पश्चात वहाँ से जानवरों द्वारा भी हड्डी आदि निकाली जा सकती है। इस प्रकार शल्य शोधन करने के बाद ही निर्माण का कार्य प्रारंभ करना चाहिए, नहीं तो अनिष्टकारक घटनाएँ घटित हो सकती है।[18]

आचार्य हरिभद्रसूरि रचित पंचाशक प्रकरण में कहा गया है कि जिन मन्दिर की भूमि में काँटें, हड्डियाँ आदि अशुभ वस्तु रूप शल्य हों तो उससे

अशान्ति, धन हानि, असफलता आदि दुष्परिणामों की संभावना रहती हैं। इन दोषों को दूर करने के लिए शास्त्रोक्त विधि से प्रयत्न करना चाहिए।[19]

यहाँ उल्लेखनीय है कि धर्मसंग्रहवृत्ति (गा. 59, पृ. 354) श्राद्धविधि प्रकाश (6/12 की वृत्ति), बृहत्संहिता (53/91) निर्वाणकलिका (पृ. 10) आचारदिनकर (पृ. 148) इत्यादि ग्रन्थों में भी भूमि शुद्धि, भूमि परीक्षा एवं शल्योद्धार की चर्चा प्राप्त होती है।

2. दल विशुद्धि द्वार

आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि जिनमन्दिर निर्माण के लिए काष्ठ, ईंट पत्थर आदि साधन भी शुद्ध होने चाहिए। तब प्रश्न होता है कि कौनसी ईंट आदि शुद्ध कही जा सकती है? इसके जवाब में चार बिन्दु मननीय हैं–

1. मन्दिर के लिए ऑर्डर देकर ईंट-पत्थर आदि नहीं बनवाने चाहिए। जो लोग आजीविका के उद्देश्य से ईंट आदि बनाते हैं उनसे योग्य कीमत चुकाकर ईंट आदि लाना चाहिए।
2. जिनमन्दिर निर्माण में अपेक्षित सभी ईंटे एक ही व्यक्ति के पास से नहीं लेनी चाहिए, अपितु समान आकार वाली ईंटे जहाँ भी प्राप्त होती हों उन सभी से निश्चित मात्रा में खरीदनी चाहिए क्योंकि एक मालिक के पास ऑर्डर देने पर जिनालय के निमित्त हिंसादि आरम्भ का दोष लग सकता है।
3. उचित कीमत चुकाकर ईंट आदि सामग्री खरीदनी चाहिए, अधिक खींचतान या रोष आदि प्रकट करके वस्तु नहीं लेनी चाहिए।
4. मजदूर की शक्ति के अनुसार उससे ईंट आदि का भार वहन करवाना चाहिए। सामर्थ्य से अधिक भार उचकने पर मणका आदि खिसक जाये तो उसे हमेशा के लिए जैन धर्म के प्रति द्वेष-अरुचि हो सकती है। इससे जिनशासन की निन्दा भी होती है। इसलिए ईंट आदि को स्थानान्तरित करते समय भी विवेक रखना चाहिए।[20]

जिनमन्दिर के लिए कैसा काष्ठ शुद्ध माना गया है? इस विषय में यह कहा गया है कि जो काष्ठ समीपवर्ती जंगल आदि से लाया गया हो, सीधा हो, स्थिर हो, नया हो और गांठ आदि से रहित हो वही शुद्ध जानना चाहिए।

व्यन्तर अधिष्ठित जंगल आदि से लाया गया काष्ठ अशुद्ध है, क्योंकि

व्यन्तराधिष्ठित जंगल से काष्ठ आदि लाने पर वह व्यन्तर क्रोधित होकर जिनमन्दिर को नुकसान पहुँचा सकता है। दूसरे, पशुओं को शारीरिक या मानसिक कष्ट देकर अनुचित रीति से लाया गया काष्ठ आदि भी अशुद्ध है। स्वयं वृक्ष कटवाकर लाया गया काष्ठ आदि भी अशुद्ध है।[21]

काष्ठ आदि दल ग्रहण में शकुन का महत्त्व

जिनालय के महान कार्य का आरम्भ करने हेतु ईंट, काष्ठ, पत्थर आदि के खरीदने की बात चलती हो अथवा उसे खरीदा जा रहा हो तो उस समय शकुन होना चाहिए, क्योंकि शकुन-अपशकुन के आधार पर भी काष्ठ आदि की शुद्धाशुद्धि का निर्णय किया जाता है। यदि शकुन हो तो दल आदि शुद्ध हैं और अपशकुन हो तो उसे अशुद्ध समझना चाहिए।[22]

यहाँ नन्दी आदि बारह प्रकार के वाद्य यन्त्र, घण्टे आदि की शुभ ध्वनि, जल से भरे कलश, सुन्दर आकृति वाले पुरुष और मन आदि योगों की शुभ प्रवृत्ति शकुन है अर्थात इष्ट कार्य की सिद्धि के सूचक हैं तथा आक्रन्दन युक्त शब्द आदि अपशकुन है।[23]

पूर्वाचार्यों के मतानुसार शुभ मुहूर्त्त में खरीदे गये दल को जहाँ खरीदा गया हो वहाँ से दूसरी जगह ले जाने में भी शकुन और शुभ दिन आदि का ध्यान रखना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्दिर निर्माण के सम्बन्ध में जैनाचार्यों का अत्यन्त सूक्ष्म चिन्तन रहा है।[24]

दल शुद्धि एवं शकुन आदि दर्शन के विषय में विवेकविलास, बृहत्संहिता, उपदेशप्रासाद, ओघनिर्युक्ति, बृहत्कल्पभाष्य, शकुनसारोद्धार, योगबिन्दु आदि ग्रन्थ भी पढ़ने योग्य हैं।

3. भृतकानति सन्धान द्वार

यहाँ भृतकान् + अतिसन्धान ऐसे दो शब्दों का संयोग है। इसका अर्थ है कि जिनमन्दिर निर्माण सम्बन्धी कोई भी कार्य करवाते समय मजदूरों (कारीगरों) का शोषण नहीं करना चाहिए, अपितु अधिक मजदूरी देनी चाहिए। अधिक मजदूरी देने से इहलोक और परलोक में शुभ फल मिलते हैं।[25]

इहलौकिक फल यह है कि निश्चित की गई मजदूरी से अधिक मजदूरी देने पर कारीगर सन्तुष्ट होकर पहले से अधिक काम करते हैं तथा पारलौकिक

फल यह है कि अधिक धन देने से जिन शासन की प्रशंसा होती है। इससे कुछ लोग जैन धर्म के प्रति आकर्षित होकर बोधि बीज को प्राप्त करते हैं और लघुकर्मी मजदूर भी प्रतिबोध को प्राप्त करते हैं।[26]

जिनालय का निर्माण विधिपूर्वक हो, इस प्रयोजन से आचार्य हरिभद्रसूरि इस द्वार के अन्तर्गत यह भी कहते हैं कि मन्दिर का कार्य करने वाले कारीगर, सुथार, सोमपुरा आदि के साथ मधुर और उचित व्यवहार रखना चाहिए। यदि अच्छा व्यवहार न हों तो वे अधुरा काम छोड़कर भी जा सकते हैं।

षोडशक प्रकरण में यह भी कहा गया है कि जिनालय के कारीगर धर्म मित्र हैं। जैसे कल्पसूत्र में राजसेवकों के लिए 'भृत्य' शब्द का प्रयोग न करके 'कौटुम्बिक पुरुष' शब्द का उपयोग किया गया है उसी प्रकार यहाँ जिन मन्दिर के सोमपुरा, कारीगर आदि को 'धर्म मित्र' के विशेषण से सम्मानित किया गया है।[27]

इस वर्णन का तात्पर्य है कि कारीगरों आदि के साथ मधुर बर्ताव करना चाहिए और श्रम से अधिक मूल्य चुकाना चाहिए, इससे निर्माण कार्य मन मुताबिक होता है।

4. स्वाशयवृद्धि द्वार

जिनभवन का निर्माण करवाते समय निरन्तर शुभ परिणाम बढ़ते रहने चाहिए। यहाँ स्वाशयवृद्धि का अर्थ है– स्वयं के शुभ परिणामों में वृद्धि करना। आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि जिनालय के निर्माण काल में जिनेश्वर परमात्मा के गुणों का यथार्थ ज्ञान होने से एवं जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा के लिए की गयी प्रवृत्ति से शुभ परिणाम की वृद्धि अवश्य होती है।

प्रभु भक्ति के उद्देश्य से एवं निदान आदि के भाव से रहित होकर मन्दिर निर्माण करवाने से भी शुभ अध्यवसायों की अभिवृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त मुझे जिनमन्दिर में वन्दन-दर्शन के लिए आने वाले साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ को देखने का सौभाग्य प्राप्त होगा।[28]

जिनमन्दिर में वीतराग प्रतिमा को देखकर दूसरे भव्य जीव प्रतिबोध को प्राप्त करेंगे और श्रेष्ठ धर्म का अनुसरण करेंगे। इसलिए जो धन निर्माण कार्य में लगाया जा रहा है वही सच्चा धन है, उसके अतिरिक्त सब कुछ नकली और पराया धन है– इस प्रकार के सतत शुभ विचारों से भी शुभ परिणामों की वृद्धि होती है और उससे मोक्ष रूपी फल मिलता है।[29]

5. यतना द्वार

यतना का अभिप्राय विवेक एवं जागरूकता है। जिनालय के निर्माण हेतु भूमि खोदना, काष्ठ एकत्रित करना, ईंट आदि खरीदना इन सभी कार्यों में जीव हिंसा न हो इसके लिए सावधानी रखनी चाहिए, क्योंकि तीर्थंकर पुरुषों ने जीव रक्षा में विवेक रखने को ही धर्म का सार कहा है।[30]

यतना धर्म की माता है, यतना ही धर्म का पालन करवाती है, यतना धर्म की वृद्धि करती है और यतना सर्वथा सुखकारिणी है।

जिनेश्वर देवों ने यतना पूर्वक कार्य करने वाले जीव को श्रद्धा, बोध और आसेवन के भाव से क्रमशः सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान और सम्यकचारित्र का आराधक कहा है।[31]

आचार्य हरिभद्रसूरि यतना धर्म की श्रेष्ठता बतलाते हुए यह भी कहते हैं कि यद्यपि यतना पूर्वक प्रवृत्ति में थोड़ी आरम्भ आदि हिंसा होने से वह अल्प दोष युक्त है फिर भी इससे नियमतः बड़े-बड़े दोष दूर हो जाते हैं इसलिए यतना को निवृत्ति प्रधान जानना चाहिए। जैसे कि भगवान आदिनाथ ने शिल्पकला, राजनीति आदि का जो उपदेश दिया, वह थोड़ी दोषयुक्त प्रवृत्ति होने पर भी निर्दोष है क्योंकि उससे जन सामान्य की अनेक समस्याएँ दूर हो गई। इसी प्रकार सर्प आदि हिंसक जन्तुओं से रक्षा करने के लिए माता के द्वारा बालक को खींचना पीड़ा युक्त होने पर भी वहाँ माता का आशय शुभ ही माना गया है।[32]

इस प्रकार भूमि शुद्धि आदि में विधि पूर्वक सावधानी रखने पर जिनमन्दिर-निर्माण सम्बन्धी प्रवृत्ति में जीव हिंसा होने पर भी वह अधिक आरम्भजन्य क्रियाओं की निवृत्ति कराने वाली होने के कारण परमार्थ से अहिंसा ही है। इसी प्रकार जिन पूजा, जिन महोत्सव आदि प्रवृत्ति भी अधिक जीव हिंसा से निवृत्ति कराने वाली होने के कारण परमार्थ से अहिंसा ही है।[33]

जिनालय निर्माणगत हिंसा निर्दोष कैसे?

कोई शंका करते हैं कि पृथ्वी आदि जीवों को पीड़ा पहुँचाये बिना जिनालय का निर्माण संभव नहीं है और पृथ्वी आदि को कष्ट पहुँचाना नियम से हिंसा है तब जिनमन्दिर निर्माण से धर्मवृद्धि किस प्रकार हो सकती है?

इसका समाधान करते हुए आचार्य भगवन्त कहते हैं कि राग-द्वेष से रहित एवं शास्त्राज्ञा मुताबिक प्रयत्न करना यतना है इसलिए मन्दिर निर्माण में हिंसा

नहीं है क्योंकि जहाँ यतना (विवेक) हो वहाँ भाव हिंसा घटित नहीं हो सकती। शास्त्रों में भाव हिंसा के त्याग का ही उपदेश दिया गया है। कारण कि द्रव्य हिंसा को सर्वथा छोड़ना मुश्किल है। जैन साधु-साध्वियों के द्वारा विहार आदि प्रवृत्ति करते समय द्रव्य हिंसा हो जाती है पर उसमें यतना धर्म प्रधान होने से वह कर्मबन्ध का हेतु नहीं बनती है।

दूसरा तथ्य यह है कि यतना जनित हिंसा में बृहद् आरम्भ का त्याग हो जाता है। तीसरा कारण यह है कि जिनालय निर्माण आदि कार्यों में तन, मन एवं धन जुटा रहने से उतने समय महारम्भ-महा परिग्रह से छुटकारा मिलता है। इस प्रकार इसमें एक तरफ स्वरूप हिंसा होती है किन्तु दूसरी तरफ हेतु हिंसा और अनुबन्ध हिंसा से निवृत्ति हो जाती है अत: जिनालय निर्माण में जो यतना प्रधान हिंसा है वह निवृत्ति मूलक होने से निर्दोष और अहिंसा रूप है।[34]

जिनमन्दिर निर्माण सम्बन्धी कुछ आवश्यक जानकारी

1. गृहस्थ जिनमन्दिर का निर्माण करवाने के पश्चात उसकी देखभाल और बही खाता आदि का कार्य स्वयं करें, किन्तु प्रेरणा दाता साधु भगवन्त को सुपुर्द न करें। इन कार्यों से मुक्त रहकर साधु-साध्वी चारित्र धर्म की निर्मल साधना कर सकते हैं। चैत्यवास के युग में मुनिजन चैत्य के मालिक होकर जीर्णोद्धार करवाते थे, उसका निषेध किया गया है। साधुओं को धन राशि सुपुर्द कर 'आप जीर्णोद्धार करवा लीजिए' ऐसा श्रावकों को नहीं कहना चाहिए।
2. गृहस्थ को जिनालय का निर्माण करवाते समय (देश-काल के अनुसार) जिनमन्दिर के समीप साधु-श्रावक आदि की आराधना के लिए पौषधशाला या आराधना भवन अवश्य बनवाना चाहिए।
3. कुछ विद्वानों का अभिमत है कि प्राचीन काल में देवद्रव्य आदि के लिए भंडार रखने की प्रथा थी। श्राद्धविधि आदि ग्रन्थों में देवद्रव्य एवं जिनालय की व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में जो वर्णन किया गया है वहाँ जिनप्रतिमा के सम्मुख रखे गये फल, नैवेद्य आदि की ही चर्चा की गई है। कहीं नगद राशि का उल्लेख नहीं है। इससे विदित होता है कि देवद्रव्य आदि की व्यवस्था गृहस्थ अपने घर पर ही करते थे। उसके लिए अलग से डिब्बा, थैली आदि रखते थे और उसमें ही नगद राशि श्रद्धा

सम्पन्न श्रावकों के घर पर रहती थी। इस सम्बन्ध में श्राद्धदिनकृत्य-गाथा 111 की टीका में 'देवगृह भाण्डागार:' शब्द का उल्लेख है वह अत्यन्त मार्मिक है। इससे सिद्ध होता है कि भंडार की प्रथा निकटवर्ती है अति प्राचीन नहीं है।

4. कुछ इतिहासविद् विद्वानों का ऐसा कहना है कि पूर्व काल में जिनालय के गर्भगृह में प्रभु प्रतिमा को विराजमान किया जाता था तथा बाह्य रंगमंडप में व्याख्यान आदि और धार्मिक नृत्य आदि के आयोजन होते थे। प्रेक्षा मंडप में प्रेक्षक वर्ग बैठता था और वसति शब्द से प्रसिद्ध चैत्य विभाग में साधु रहते थे।
5. पूर्वकाल में गृहस्थ श्रावक स्वयं के द्वारा अर्जित राशि से जिनमन्दिर बनवाते थे, आज की परम्परानुसार देवद्रव्य की राशि से जिनालय बंधवाने की प्रवृत्ति नहीं थी। सिद्धाचल, गिरनार, आबू, राणकपुर, कावी आदि में निर्मित जिनालय इसके प्रत्यक्ष साक्षी हैं। देवद्रव्य का उपयोग मन्दिर के जीर्णोद्धार एवं मन्दिर के निर्वाह कार्यों में होना चाहिए, नये मन्दिर के निर्माण में देवद्रव्य का उपयोग कर सकें ऐसा स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।
6. जिनालय का निर्माण करवाने वाले श्रावक परिवार के वंशज स्वयं के पूर्वजों द्वारा बनाये गये मन्दिर में आये-जायें और भक्ति करें, किन्तु अन्य जिनालयों के प्रति अवज्ञा या उपेक्षा के भाव रखें तो मिथ्यात्व पुष्ट होता है और उससे संसार बढ़ता है अतएव अपने और दूसरे सभी जिनमन्दिरों के प्रति समान भाव रखने चाहिए। इसी तरह प्रतिमा पूजा, उपकरण आदि के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

जिनालय : एक परिचय

जिन मन्दिर में मंडप, गर्भगृह, स्तम्भ, द्वार शाख आदि के अतिरिक्त अन्य कई उपयोगी साधनों का भी निर्माण किया जाता है। वास्तु शास्त्र के अनुसार मन्दिर के बाह्य एवं भीतरी परिसर में उनका स्थान कहाँ होना चाहिए? वह विवरण संक्षेप में इस प्रकार है-

जल का बहाव

मन्दिर के बाह्य भाग में जल के निर्गमन हेतु ढलान बनाना आवश्यक है, जिससे वर्षा आदि का पानी निराबाध रूप से बह सके।

वास्तुसार प्रकरण के अनुसार जल प्रवाह के लिए पूर्व, ईशान या उत्तर दिशा में ढलान रखना चाहिए। इन तीन दिशाओं को ढलान हेतु शुभ माना गया है।[35]

पश्चिम, वायव्य एवं नैऋत्य दिशा में जल बहाव रखने से संघ का निष्प्रयोजन व्यय होता है और अर्थ संकट की स्थिति पैदा होती है।

दक्षिण एवं आग्नेय दिशा में जल बहाव रखने पर आकस्मिक धन हानि और मृत्युकारक कष्ट आते हैं।

पानी निकालने की मोरी

मंदिर में पानी निकालने के लिए मोरी या नाली बनाई जाती है उसे वास्तुशास्त्र के नियमानुसार पूर्व, उत्तर अथवा ईशान की ओर निकालनी चाहिए। वास्तुक ग्रन्थों में सभी दिशाओं के हानि-लाभ की चर्चा इस प्रकार की गई है–

मोरी की दिशा	परिणाम
पूर्व दिशा में	वृद्धिकारक
उत्तर दिशा में	धन लाभ
दक्षिण दिशा में	रोगकारक
पश्चिम दिशा में	धन हानि
ईशान कोण में	शुभ
आग्नेय कोण में	अशुभ, हानिप्रद
नैऋत्य कोण में	अशुभ, हानिप्रद
वायव्य कोण में	अशुभ, हानिप्रद

मोरी की शुभता-अशुभता का प्रभाव मन्दिर निर्माण में भाग लेने वाले परिवारों पर पड़ता है।[36]

अभिषेक जल निर्गम द्वार

अभिषेक, जिन पूजा का प्रमुख अंग है। दूध, दही, घृत, जल आदि पंचगव्य से जिनबिम्ब का अभिषेक किया जाता है। अभिषेक जल के निकलने की नाली या नलिका का मुख पूर्व या उत्तर दिशा में रखना चाहिए।[37]

अपराजित पृच्छासूत्र के अनुसार यदि जिन मंदिर पूर्व-पश्चिम दिशा में बना हो तो अभिषेक जल का निर्गम द्वार उत्तर में निकालना चाहिए। यदि जिनमंदिर उत्तर-दक्षिण दिशा में बनाया गया हो तो नाली का मार्ग बायीं ओर अथवा दाहिनी ओर रखना चाहिए।[38] प्रासाद मंजरी के अनुसार दक्षिणाभिमुख प्रासाद में जल निर्गम की नाली बायीं ओर रखें तथा उत्तराभिमुख प्रासाद में अभिषेक जल का प्रवाह दायीं ओर रखें।[39]

मण्डप में मूलनायक प्रतिमा के बायीं ओर स्थापित देवों के अभिषेक जल की नाली बायीं ओर निकालनी चाहिए तथा मण्डप में मूलनायक प्रतिमा के दायीं ओर स्थापित देवों के अभिषेक जल की नाली दायीं ओर निकालनी चाहिए। जगती के चारों ओर जल निकालने की नाली बनाई जा सकती है।[40]

जगती की ऊँचाई में एवं मण्डोवर (भित्ति) के छज्जे के ऊपर चारों दिशाओं में नाली (जल निर्गम द्वार) बनानी चाहिए।[41]

आरती एवं अखण्ड दीपक

प्रभु दर्शन एवं पूजा विधि का एक आवश्यक अंग आरती भी है। मन्दिर में मूलनायक भगवान की प्रतिमा के निकट आग्नेय दिशा में आरती रखनी चाहिए तथा अखण्ड दीपक भी इसी दिशा में स्थापित करना चाहिए।

शिल्प रत्नाकर के अनुसार जिनालय के दाहिने भाग में दीपालय बनाना शुभकारी, यशवर्धक एवं सुखप्रदाता है जबकि बायें भाग में निर्मित दीपालय यश एवं सुख का हरण करता है।[42]

स्नान गृह

पूजा करने के पूर्व शरीर शुद्धि परमावश्यक है। यदि घर से मन्दिर दूर हों तो वहाँ के बाह्य परिसर में स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनने चाहिए। सामान्यतया मन्दिर के पूर्व, उत्तर अथवा ईशान भाग में स्नानगृह का निर्माण करना चाहिए। यदि संभव न हो तो वायव्य कोण में भी स्नान गृह बनाया जा सकता है।

स्नानगृह में जल का प्रवाह उत्तर अथवा ईशान में रखना उपयुक्त है अन्य दिशाओं में अनिष्टकारी माना गया है। आचार्य उमास्वाति के मतानुसार पूर्व दिशा की ओर मुख करके स्नान करें, पश्चिम की ओर मुख करके दन्त धावन करें, उत्तराभिमुख होकर पूजा के वस्त्र धारण करें तथा पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके पूजा विधि करें।[43]

पूजन सामग्री

यद्यपि पूजा करने वाले भाई-बहिन पूजा की कुछ सामग्री जैसे फल, नैवेद्य, अक्षत आदि घर से लेकर आते हैं किन्तु उन द्रव्यों को प्राय: मन्दिर में आकर ही थाली में सजाते हैं तथा दीपक और धूप मन्दिर में ही तैयार किये जाते हैं। यह कार्य मन्दिर के ईशान भाग में करना चाहिए। अपवादत: पूर्व अथवा उत्तर दिशा में भी कर सकते हैं।

वस्त्र परिवर्तन

मन्दिर के बाह्य परिसर में पूजा के लिए वस्त्र परिवर्तन करना हो तो यह कार्य पूर्व, उत्तर अथवा ईशान दिशा में करना चाहिए तथा वस्त्र धारण करते समय उत्तर की ओर मुख रखना चाहिए।

पाद प्रक्षालन

मन्दिर एक पवित्र स्थान है। यहाँ दर्शनार्थियों को शुद्ध वस्त्र आदि पहनकर आना चाहिए। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि देह शुद्धि बनाये रखने के लिए प्रवेश के पूर्व अपने पाँवों का भी प्रक्षालन करें, ताकि अशुचि बाहर रह जाये और प्रवेश कर्त्ता शारीरिक एवं मानसिक दोनों रूप से शुद्ध हो जाये। ऐसी स्थिति में परमात्मा की पूजा सही मायने में सार्थक हो सकती है।

जिनालय सामान्यत: पूर्वाभिमुखी अथवा उत्तराभिमुखी होते हैं। दोनों ही स्थितियों में पाद प्रक्षालन का स्थान प्रवेश द्वार के निकट ईशान दिशा में रखना चाहिए। कदाचित किसी मन्दिर में पश्चिम दिशा में प्रवेश द्वार हो तो वायव्य दिशा की ओर पानी रखना चाहिए। इसी तरह दक्षिण दिशा में प्रवेश द्वार नहीं होता, कदाच ऐसा हो भी तो पाँव धोने का पानी आग्नेय कोण में न रखें। जल प्रवाह के लिए नाली का मुख पूर्व, उत्तर अथवा ईशान दिशा में ही रखना चाहिए।

जूते-चप्पल

जिनालय में जूते-चप्पल पहनकर नहीं आना चाहिए। यदि कारणवश पहनना पड़े तो उन्हें मन्दिर के बाहर आग्नेय अथवा वायव्य कोण में रखना चाहिए।

धर्मायतनों में प्रवेश करने से पूर्व जूते-चप्पल का त्याग करना तो जरूरी है ही, किसी के पास यदि पर्स, बेल्ट, फाइल आदि चमड़े की अथवा अशुद्ध

पदार्थ की बनी हो तो उसे भी प्रवेश द्वार के बाह्य भाग में छोड़कर पश्चात दर्शन-पूजा के लिए मन्दिर में जाना चाहिए।

कूड़ादान

जिनालय की पवित्रता को बनाये रखने के लिए वहाँ प्रतिदिन सफाई करना जरूरी है। यदि नियमित रूप से झाड़ू न लगाया जाये तो दर्शन-पूजन में मन की स्थिरता नहीं रह सकती है। दूसरे, सभ्य व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह निकले हुए कचरे को इधर-उधर न फेंककर निश्चित स्थान पर डालें।

जिनालय के कचरे को डालने हेतु कूड़ादान पश्चिम, दक्षिण अथवा नैऋत्य कोण में रखना चाहिए तथा उस कूड़ेदान को मन्दिर की दीवार से सटाकर नहीं रखना चाहिए।

यदि कूड़ादान पूर्व, उत्तर या ईशान में रखा जाये तो उससे समाज में मतभेद, अकाल मृत्यु, मानसिक अशान्ति आदि की संभावनाएँ बनी रहती है।

माली एवं कर्मचारी कक्ष

मन्दिर की साफ-सफाई एवं पूजा में उपयोगी पुष्प वाटिका आदि का रख-रखाव माली अथवा कर्मचारीगण करते हैं अत: इन लोगों को मन्दिर के निकट रखने की परम्परा है।

वास्तु शास्त्र के अनुसार मन्दिर का परिसर विस्तृत हो तो कर्मचारियों के कक्ष दक्षिण-पश्चिम भाग में बनाने चाहिए। इनके कक्षों के द्वार पूर्व या उत्तर दिशा की ओर ही हों तथा फर्श एवं छत का ढलान भी पूर्व, उत्तर या ईशान तरफ हों। इनके द्वार पश्चिम या दक्षिण की ओर कदापि न रखें।

यदि कारणवश पूर्वी या उत्तरी भाग में कर्मचारी कक्ष बनाना पड़े तो उसे मुख्य दीवार से दूर हटकर बनायें।

कार्यालय एवं सूचना पट्ट

जिनालय एवं तत्स्थानीय समाज की गतिविधियों के सुचारू संचालन के लिए एक कार्यालय का होना नितान्त आवश्यक है।

वास्तु नियम के अनुसार यह कार्यालय मन्दिर परिसर के पूर्व या उत्तर में करें। अपरिहार्य स्थिति में पश्चिम दिशा में भी बना सकते हैं, किन्तु कक्ष का द्वार पूर्व या उत्तर दिशा में ही रखे। कार्यकर्त्ता एवं पदाधिकारी गण कार्य करते

समय स्वयं का मुख पूर्व या उत्तर में रखें। ऐसा करने से सभी कार्य सुनियोजित ढंग से सफल होते हैं।

सूचना पट्ट (बोर्ड) कार्यालय की बाहरी दीवार पर लगायें। इसे मन्दिर के मुख्य प्रवेश द्वार के समीप भी लगा सकते हैं। ध्यातव्य है कि मन्दिर की दीवार पर अलग से कील ठोक कर कोई भी सूचना पत्र अथवा आमन्त्रण पत्रिका नहीं टांगनी चाहिए, अन्यथा समाज में निरर्थक तनाव उत्पन्न हो सकता है।

व्याख्यान हॉल

मन्दिर धर्म मार्ग की प्राप्ति का विशिष्ट आलम्बन होने से गृहस्थ और मुनि सभी उपासक आते रहते हैं इसलिए धर्म सभाएँ भी अधिकतर इस परिसर के निकट ही समायोजित की जाती हैं और इसीलिए प्रवचन हॉल का निर्माण किया जाता है।

वास्तु नियम के अनुसार व्याख्यान हॉल का निर्माण मन्दिर के उत्तरी भाग में करना सर्वश्रेष्ठ है। इसका निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि प्रवचन कर्त्ता की चौकी दक्षिणी भाग में बनायी जाये तथा धर्माचार्य उत्तर की ओर मुख करके धर्म सभा को सम्बोधित करें। यदि दक्षिण में चौकी बनाना संभव न हो तो पश्चिम में बनायें, जिससे गुरु भगवन्त पूर्व मुखी होकर प्रवचन दे सकें।

इस सभागार का द्वार पूर्व, उत्तर या ईशान में ही बनायें। परिस्थिति वश दक्षिण-आग्नेय तथा पश्चिम-वायव्य में भी द्वार बना सकते हैं अन्यत्र नहीं। हॉल की ऊँचाई पर्याप्त रखें, किन्तु वह मुख्य मन्दिर से ऊँचा न हो। हॉल के बाहरी भाग में आग्नेय कोण की तरफ बिजली के मीटर, स्विच बोर्ड आदि लगायें। ईशान में कदापि न लगायें।

धर्म सभा की छत का रंग सफेद रखें अथवा अन्य रंगों का संयोजन इस प्रकार करें कि सभासदों अथवा आराधकों को सुख-शांति का अनुभव हो। यह ध्यान रखें कि प्रवचन की जगह पर ऊपर में बीम न हो।

स्वतन्त्र रूप से स्वाध्याय करने वाले श्रावक पूर्व या उत्तर की तरफ मुख करके बैठें। यदि इस कक्ष में आगम ज्ञान की आलमारियाँ और भंडार रखना हो तो उसे नैऋत्य भाग में ही रखें।

कदाचित सामाजिक अधिवेशन आदि के लिए इस कक्ष का उपयोग कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में सभापति नैऋत्य भाग में बैठें और उसका मुख उत्तर दिशा की ओर हो।

किसी भी स्थिति में मूल मन्दिर में सामाजिक मीटिंग न करें। इससे मन्दिर की पवित्रता नष्ट होती है।

ज्ञान भंडार

जिनालय के परिसर में सत्संस्कारों के अभिसिंचन के लिए समृद्ध लायब्रेरी का होना आवश्यक है। प्राचीन काल में तीर्थंकरों के उपदेश ताड़पत्रों पर लिखे जाते थे। शनैः शनैः वैज्ञानिक युग का विकास हुआ, तब से मशीनों द्वारा मुद्रित कागजों पर शास्त्र लेखन की परम्परा शुरू हुई। हस्तलिखित ताड़पत्रीय शास्त्रों को औषधी आदि से संरक्षित कर नमी आदि की जगह से दूर रखना चाहिए।

वास्तु प्रणाली के अनुसार ज्ञान भंडार की आलमारियाँ दक्षिण, पश्चिम या नैऋत्य भाग में रखें ताकि ये पूर्व या उत्तर की तरफ खुल सकें। सभी आलमारियाँ यथासंभव दीवाल से सटाकर रखना चाहिए। दीवार के अन्दर बनी सभी आलमारियाँ एक ही सीध में बनायें। विषम रखने से मन्दिर में निरर्थक वाद-विवाद की संभावना रहती है।

दीवारगत आलमारियों के ऊपर खूंटी या कील न ठुकवाये, इससे निरर्थक मानसिक तनाव उत्पन्न हो सकता है।

गुप्त भंडार

मन्दिर में दर्शन-पूजा करने वाले श्रद्धालुगण कुछ न कुछ दान अवश्य करते हैं उसे भंडार (तिजोरी) में डाला जाता है। इसमें दान करने वालों का नाम गोपनीय रहता है अतः इसे गुप्त भंडार कहा जाता है।

कुछ प्रसिद्ध तीर्थों एवं मन्दिरों में छत्र, चंवर, भामंडल, कीमती धातुएँ जैसे चाँदी के बर्तन आदि चढ़ाने की भी परम्परा है। ये अमूल्य सामग्री पृथक् कक्ष में रखी जाती है। शास्त्रकारों ने सम्पत्ति कक्ष के लिए उत्तर दिशा को सर्वोत्तम कहा है। यह कुबेर का स्थान माना गया है इसलिए यहाँ पर स्थित भंडार सदैव वृद्धिंगत होते हैं।

गुप्त भंडार निर्माण के कुछ निर्देश इस प्रकार हैं–

1. यदि मन्दिर पूर्वाभिमुखी हो तो भंडार जिन प्रतिमा के दाहिनी ओर इस तरह रखना चाहिए कि वह उत्तर की ओर खुल सकें।
2. यदि मन्दिर उत्तराभिमुखी हो तो तिजोरी जिन बिम्ब के बायीं ओर रखनी चाहिए। इस नियम के अनुपालन से भंडार सदैव भरे रहते हैं।

3. गुप्त भंडार कभी दीवारों के अन्दर न बनायें।
4. गुप्त भंडार की पेटी कभी भी दीवार से सटाकर न रखें।
5. गुप्त भंडार सीढ़ी के अथवा बीम के ठीक नीचे न रखें।
6. मन्दिर के बहुमूल्य उपकरण दक्षिण, पश्चिम या नैऋत्य भाग में रखें। आलमारी का मुख उत्तर की ओर खुले। ऐसा करने पर समाज में सद्भाव बढ़ता है और निरन्तर धन की वृद्धि होती है।

तलघर

मुख्य धरातल के नीचे खुदाई करके कमरा जैसा स्थान तैयार करना उसे तलघर कहा जाता है।

वर्तमान युग में कम भूमि क्षेत्र में अधिक क्षेत्रफल निकालने के लिए बहुमंजिली निर्माण के अतिरिक्त नीचे तलघर बनाये जाते हैं। प्राचीन युग में विधर्मियों के आक्रमण से रक्षा करने हेतु तलघर बनाये जाते थे ताकि संकट के समय जिन प्रतिमाओं को संरक्षित किया जा सके। मध्यकाल में इसी पद्धति ने जिन संस्कृति को बचाया है। आज भी भूमि खनन के समय यत्र तत्र प्राचीन जिनबिम्ब और भग्न जिनालय मिलते रहते हैं।

तलघर का निर्माण अत्यंत आवश्यक होने पर ही करना चाहिए। सिर्फ अधिक जगह निकालने के लिये निरुद्देश्य तलघर नहीं बनाना चाहिए। यदि अपरिहार्य स्थिति में तलघर बनाना ही इष्ट हो तो उस समय निम्न निर्देशों का पालन करते हुए केवल निर्धारित दिशाओं में बनाना चाहिए।

1. तलघर ईशान दिशा में बनायें। यदि कुछ दीर्घाकार अपेक्षित हो तो उत्तर या पूर्व तक बना सकते हैं किन्तु किसी भी स्थिति में आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य एवं मध्य में तलघर नहीं बनायें।
2. तलघर का आकार आयताकार अथवा वर्गाकार ही होना चाहिए।
3. कोई भी तलघर ऊपर की वेदियों के ठीक नीचे नहीं आना चाहिए।
4. तलघर के फर्श का ढलान ईशान, पूर्व या उत्तर की ओर ही होना चाहिए।
5. किसी भी स्थिति में पूरे जिनालय के नीचे तलघर नहीं बनाना चाहिए।
6. तलघर में उतरने की सीढ़ियों का उतार दक्षिण से उत्तर अथवा पश्चिम से पूर्व होना चाहिए।
7. यदि सम्भव हो तो दक्षिणी दीवाल की तरफ से सीढ़ियाँ बनाना चाहिए।

8. ध्यान प्रिय साधु एवं श्रावक वहाँ पर स्थिर चित्त होकर ध्यान कर सकें, इस हेतु समुचित प्रकाश एवं वायु की व्यवस्था रखें।
9. मन्दिर के मुख्य द्वार के नीचे तलघर नहीं बनाना चाहिए।

विभिन्न दिशाओं में तलघर बनाने के शुभाशुभ फल

दिशा	फल
पूर्व	शुभ
आग्नेय	समाज में मन मुटाव एवं विवाद
दक्षिण	समाज एवं मंदिर निर्माता पर आपत्ति
नैऋत्य	सामाजिक सुख-शांति का नाश
पश्चिम	अशुभ
वायव्य	अशुभ, निरंतर परेशानियाँ
उत्तर	शुभ
ईशान	उत्तम, शुभ, प्रशस्त, श्री वृद्धि

जहाँ तक हो तलघर बनाने से बचना चाहिए। अपरिहार्य होने पर भी सही दिशा में ही तलघर बनायें।

पुष्प वाटिका

मन्दिर में पूजा के लिए पुष्पों की आवश्यकता होती है उसके लिए उपयोगी पुष्पों के पौधे एवं वृक्ष लगाने चाहिए। मन्दिर के परिसर में नानाविध पुष्पों की महक से वहाँ का समूचा वातावरण प्रफुल्लित रहता है और अन्य भी कई फायदे होते हैं।

यह पुष्प वाटिका जिनालय के पूर्व, उत्तर या ईशान भाग में लगानी चाहिए, इससे पुत्र एवं धन-धान्य आदि का लाभ होता है।

आग्नेय, नैऋत्य एवं दक्षिण भाग में पुष्प वाटिका लगाने से मानसिक संताप और कष्ट होता है। मन्दिर प्रांगण में फलदार वृक्ष न लगायें, किन्तु दक्षिण एवं नैऋत्य में नारियल लगा सकते हैं। मन्दिर निर्माण के लिए फलदार वृक्षों की लकड़ी का भी उपयोग नहीं करना चाहिए। नीम, इमली इत्यादि वृक्ष असुर प्रिय होने से इन्हें भी मन्दिर के प्रांगण में नहीं लगाना चाहिए। इनसे जन आवागमन बाधित होता है।

आचार्य देवनन्दीजी ने विभिन्न दिशाओं में वृक्षारोपण का निम्न फल बतलाया है–

वृक्ष का नाम	दिशा	फल
पीपल	पूर्व	भय
पीपल	पश्चिम,दक्षिण	शुभ
पाकर	दक्षिण	पराभव
पाकर	उत्तर	धनागम
वट	पश्चिम	राजकीय कष्ट
वट	पूर्व	मनोरथ पूरक
उदुम्बर	उत्तर	नेत्र रोग
उदुम्बर	दक्षिण	शुभ

स्विच बोर्ड

परवर्तीकालीन मन्दिरों में पर्याप्त प्रकाश के लिए विद्युत का प्रयोग भी किया जा रहा है। वास्तु नियम के अनुसार विद्युत् का मीटर एवं स्विच बोर्ड मन्दिर के आग्नेय कोण में ही लगाना चाहिए। यदि असुविधा हो तो वायव्य कोण में लगायें, किन्तु ईशान में कभी भी न लगायें। पानी की बोरिंग मशीन का स्विच बोर्ड भी इन्हीं दिशाओं में लगाना चाहिए।

पानी की टंकी

यद्यपि जिन मन्दिर में कुआँ अथवा बोरवेल से ताजा पानी का प्रयोग कर लिया जाता है फिर भी छोटे-छोटे कार्यों के लिए पानी की टंकी बनाना अपरिहार्य है।

टंकी बनाते समय निम्नलिखित निर्देशों का पालन अवश्य करें-

1. यदि मंदिर में ओवर हैड पानी की टंकी बनाना इष्ट हो तो इसे नैऋत्य कोण में ही बनायें।
2. यदि मन्दिर में भूमिगत जल टंकी बनाना इष्ट हो तो इसे ईशान, उत्तर अथवा पूर्व में बनायें।
3. भूमिगत टंकी इस प्रकार बनायें कि प्रवेश मार्ग उसके ऊपर न आये।
4. किसी भी परिस्थिति में आग्नेय दिशा में पानी की टंकी न बनायें। ऐसा करने से समाज में निरन्तर कलह पूर्ण वातावरण निर्मित हो सकता है।
5. ओवर हैड पानी की टंकी दक्षिण दिशा में बना सकते हैं।

6. ओवर हेड टंकी इस प्रकार बनायें कि मन्दिर के शिखर से स्पर्श न हो। यदि सम्भव हो तो शिखर से दूर बनायें।
7. ओवर हैड पानी की टंकी नैऋत्य दिशा में बनाना श्रेयस्कर है। आग्नेय में इसे कदापि न बनायें।
8. ओवर हैड टंकी को ऊपर से ढकी हुई रखें।

कूप

जिन मन्दिर में पूजा आदि धर्म कार्यों के लिए कुएँ के जल का उपयोग किया जाता है। यदि मन्दिर के परिसर में ही कुएँ का निर्माण किया जाए तो इससे कुएं में भी स्वच्छता बनी रहती है तथा जल लाते समय भी किसी प्रकार की अशुद्धि का भय नहीं रहता है। दर्शनार्थियों एवं मुनि साधकों के लिए भी कूप जल की आवश्यकता होती ही है अतः बहुत-सी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मन्दिर में एक कुँआ निर्मित करना जरूरी है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार विभिन्न दिशाओं में जलाशय बनाने के निम्न लाभ होते हैं-

दिशा	फल
ईशान	तुष्टि, पुष्टि, ऐश्वर्य लाभ, ज्ञानार्जन
पूर्व	धन-ऐश्वर्य का लाभ
आग्नेय	पुत्र नाश, संतति अवरोध, धन हानि
दक्षिण	मानसिक तनाव, स्त्री नाश, धन हानि, अपयश
नैऋत्य	मन्दिर के मुख्य अधिकारियों को मृत्यु भय
पश्चिम	धन लाभ, समाज में वैमनस्य एवं गलत फहमियों का वातावरण
वायव्य	पारस्परिक मैत्री का अभाव, शत्रु वृद्धि, चोर भय
उत्तर	धनागम
मध्य	सर्व हानि

इस कोष्ठक का निष्कर्ष यह है कि कुआँ पूर्व, उत्तर अथवा ईशान दिशा में खुदवाना चाहिए। यह भी अवश्य ध्यान रखें कि कूप ठीक पूर्व, उत्तर या ईशान में न हो। पूर्व से ईशान के मध्य अथवा ईशान से उत्तर के मध्य में खनन करें।

हैण्डपंप

वर्तमान में यह पद्धति चल पड़ी है कि अल्प स्थान एवं सुविधाजनक होने के कारण कुएँ के स्थान पर नलकूप खुदाये जाते हैं। कुआँ खुदवाने के लिए जो दिशाएँ निर्दिष्ट की गई हैं नलकूप हेतु भी उन्हीं दिशाओं को श्रेष्ठ समझना चाहिए। यहाँ यह भी ध्यान रखें कि नलकूप में ऐसी व्यवस्था हो कि जल छानने के उपरान्त जिवानी पुनः जल में डाली जा सके।

यदि कुआँ कम गहरा हों तथा आस-पास की बस्ती के सैप्टिक टेंकों का गन्दा पानी कुएँ में आने लगे तो उस पानी का कदापि प्रयोग न करें। ऐसी स्थिति में नलकूप का पानी उपयोग में लेना चाहिए।

भूमिगत जल टंकी

यदि जिनालय में भूमिगत जल टंकी का निर्माण करना आवश्यक हो तो इसे पूर्व, उत्तर या ईशान दिशा में ही बनवायें। मुख्य द्वार से हटकर बनवायें। किसी भी स्थिति में आग्नेय कोण में जल टंकी न बनायें।

ओवर हेड टेंक सिर्फ नैऋत्य कोण में बनवायें, इसे दक्षिण में भी बना सकते हैं। अन्य दिशाओं में जल टंकी का निर्माण समाज के लिए अनिष्टकारी हो सकता है।

सीढ़ियाँ

मन्दिर अथवा अन्य धर्मायतनों में बहु मंजिला निर्माण होने की स्थिति में सीढ़ियों का निर्माण आवश्यक होता है। इसी तरह मन्दिर के प्रमुख प्रवेश द्वार तक पहुँचने के लिए भी सोपान आवश्यक है। प्रवेश द्वार के सामने जो सीढ़ियाँ बनाई जाये, उनका उतार पूर्व या उत्तर की ओर होना चाहिए। सीढ़ियों का आकार वर्गाकार या आयताकार रखना श्रेयस्कर है। इन्हें गोलाकार या त्रिकोण नहीं बनायें अन्यथा कोण कटने का दोष उत्पन्न होगा।

ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ किसी भी स्थिति में ईशान, पूर्व, उत्तर एवं मध्य में नहीं बनायें। सीढ़ियाँ बनाने के लिये दक्षिण एवं नैऋत्य दिशाएँ उत्तम हैं। पश्चिम, आग्नेय और वायव्य में भी सोपान का निर्माण किया जा सकता है। सीढ़ियों का चढ़ाव पूर्व से पश्चिम अथवा उत्तर से दक्षिण की तरफ ही होना चाहिए। यदि सीढ़ियों को घुमाकर लाना हो तो पूर्व या उत्तर में घूमकर प्रवेश करें।

सीढ़ियों के लिये आवश्यक निर्देश

1. सीढ़ियों के नीचे कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य न करें।
2. किसी भगवान की अथवा यक्ष-यक्षिणी की वेदी न बनायें।
3. शास्त्र भंडार या आलमारी न रखें।
4. सीढ़ियों के ऊपर छत या छपरी अवश्य बनायें, जिसका उतार उत्तर या पूर्व दिशा की ओर होना आवश्यक है।
5. सीढ़ियों के नीचे शास्त्र पठन, जाप, स्वाध्याय, पूजन आदि कभी भी न करें।
6. सीढ़ियों का निर्माण इस प्रकार न करें कि उससे सम्पूर्ण मन्दिर की प्रदक्षिणा हो अन्यथा समाज में अशांति एवं आपत्तियाँ आने की सम्भावना रहती है।
7. सीढ़ियाँ बनाते समय यह भी ध्यान रखें कि ऊपरी मंजिल पर जाने हेतु तथा तलघर में जाने के लिए एक ही स्थान से सीढ़ी न बनायें।
8. सीढ़ियाँ जर्जर हों, हिल रही हों अथवा जोड़ तोड़कर बनायी गई हों तो अशुभ है तथा इससे समाज में मानसिक संताप का वातावरण बनता है।
9. सीढ़ियाँ प्रदक्षिणा क्रम से अर्थात घड़ी की सुई की भाँति (क्लाक वाइज) बनायें।
10. सीढ़ियों का निर्माण गज चित्रों से अलंकृत होना चाहिए।
11. शिल्प रत्नाकर के अनुसार सीढ़ियाँ विषम संख्या में बनानी चाहिए, सम संख्या में नहीं बनायें।[44]

मन्दिर का परकोटा

जिनालय की रक्षा के लिए उसके चारों ओर परकोटा अथवा कम्पाउन्ड बनाना चाहिए। इससे धर्म संघ की रक्षा होती है।

वास्तु नियम के अनुसार परकोटा आयताकार अथवा वर्गाकार बनायें।

परकोटा बनाते समय यह स्मरण रखें कि उसका आकार भी आयताकार अथवा वर्गाकार हो। परकोटे की दीवार मुख्य मन्दिर की दीवार से सटाकर न बनायें। परकोटे एवं मन्दिर के मध्य पर्याप्त अन्तर होना चाहिए। परकोटे के

दीवार की ऊँचाई एवं मोटाई दक्षिण दिशा में उत्तरी दीवार से अधिक होनी चाहिए। इसी भाँति पश्चिमी दीवार की मोटाई एवं ऊँचाई पूर्वी दीवार से मोटी होनी चाहिए। कुल मिलाकर नैऋत्य भाग में परकोटे की दीवार सबसे ऊँची रखें तथा ईशान में सबसे नीची रखें।

यदि परकोटा इस तरह बनता है कि जिससे भगवान की दृष्टि बाधित होती हो तो दृष्टिवेध का परिहार करें। यदि उत्तर अथवा पूर्व में महाद्वार नहीं हो और भगवान की दृष्टि उत्तर या पूर्व में हो तो लघु द्वार बनाकर वेध परिहार करें।

परकोटे की दीवार विभिन्न दिशाओं में अधिक ऊँची होने का फल

उत्तर	मन्दिर का धन व्यय
ईशान	मन्दिर कार्यों में निरन्तर विघ्न-बाधाएँ
पूर्व	ऐश्वर्य हानि, धन हानि
आग्नेय	यश प्राप्ति
दक्षिण	श्रेष्ठ, शुभ
नैऋत्य	समाज में धन, यश लाभ, अभ्युदय
पश्चिम	शुभ
वायव्य	आरोग्य

परकोटा बनाने के लिये पत्थर, ईंट आदि का प्रयोग करें। परकोटे की दीवार पर प्लास्टर करके उस पर चूने या पेंट से पुताई करें। परकोटे पर काला रंग न लगायें, अत्यंत लाल एवं कत्थई रंग भी न लगाएं। जो भी रंग लगायें वह उत्साह वर्धक हो, निराशा वर्धक न हो।

परकोटा बनाते समय ध्यान रखें कि दक्षिण में उत्तर से कम जगह खाली छोड़ें। दक्षिणी भाग में कम से कम जगह खाली छोड़ें। परिक्रमा के लिए लगभग पाँच फुट जगह छोड़ सकते हैं।

परकोटा बनाने से न केवल मन्दिर की सुरक्षा होती है अपितु उसका स्वरूप भी गरिमामयी हो जाता है। इससे अपराधी तत्त्वों, पशुओं एवं प्रेतादि बाधाओं से संरक्षण हो जाता है। अतएव मन्दिर निर्माण करते समय परकोटा अवश्य बनवायें।

जिनालय की अन्य रचनाएँ

मन्दिर के परिसर में तीर्थ यात्रियों के लिए आवास स्थल, भोजनालय, रसोईघर आदि का निर्माण भी किया जाता है। साधुओं एवं साधकों के लिए उपाश्रय, साधना कक्ष आदि का निर्माण भी होता है। धार्मिक शिक्षण के लिए पाठशाला, लायब्रेरी आदि की स्थापना की जाती है। वाहन, रथ आदि रखने के लिए भी समुचित स्थान की आवश्यकता होती है। इस प्रकार प्रासाद के परिसर के विभिन्न भागों में अनेक योजनाएँ साकार की जाती हैं। प्रासाद मंडन में इन निर्माणों के लिए निम्न दिशाओं का निर्देश किया गया है–[45]

प्रासाद भाग की दिशा	निर्माण
पश्चिमी भाग में	रथशाला
उत्तरी भाग में	रथ का प्रवेश द्वार
उत्तर-दक्षिण-आग्नेय-पश्चिम में	साधुओं के लिए उपाश्रय
वायव्य कोण में	धान्य को सुरक्षित रखने का भंडार
आग्नेय कोण में	रसोई घर
ईशान कोण में	पुष्पगृह एवं पूजोपकरण स्थान
नैऋत्य कोण में	आयुध कक्ष
पश्चिमी भाग में	जलाशय
पूर्व भाग में	विद्यालय एवं व्याख्यान कक्ष

रिक्त स्थान का महत्त्व

मन्दिर निर्माण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मन्दिर एवं परकोटा के मध्य पर्याप्त खुली जगह छोड़ी जाये। यह जगह पूर्व और उत्तर दिशा में अधिक छोड़ी जाये तथा दक्षिण और पश्चिम में कम। किसी भी स्थिति में दक्षिण की अपेक्षा उत्तर में दुगुनी भूमि रिक्त रखना चाहिए। इसी प्रकार पश्चिम की अपेक्षा पूर्व में कम से कम दुगुनी भूमि रिक्त रखना चाहिए। ऐसा करने से शुभ फल की प्राप्ति होती है।

यदि मन्दिर के दक्षिण और पश्चिम भाग में रिक्त स्थान अधिक हो तो विद्वानों के परामर्श से वहाँ कोई निर्माण कार्य करवा लेना चाहिए, इससे दोष

कम हो जाते हैं। मन्दिर के चारों दिशाओं में रिक्त स्थान का फल इस प्रकार है-

रिक्त दिशा	फल
पूर्व	कार्य सम्पादन के लिए उत्साह वृद्धि
आग्नेय	महिलाओं को स्वास्थ्य हानि
दक्षिण	सर्वत्र कुफल
नैऋत्य	अशुभ
पश्चिम	अशुभ
वायव्य	मध्यम
उत्तर	ऐश्वर्य लाभ
ईशान	विद्या लाभ

रंग संयोजना

मन्दिर का निर्माण कार्य पूर्ण होने के पश्चात उसके भीतर और बाहर ऐसी रंग योजना की जानी चाहिए कि वह बाहर से आकर्षक एवं शांति प्रदायक हो तथा भीतर से ध्यान योग क्रिया में सहायक और आत्मानुभूति में पुष्ट निमित्त हो। जिस प्रकार वाटिका के पुष्प देह की प्रत्येक रोमावलि को आह्लादित कर देते हैं उसी प्रकार मंदिर का वातावरण भी प्रसन्न करने वाला होना चाहिए। रंग योजना इस प्रक्रिया का अविभाज्य अंग है।

जैन ग्रन्थों में जाप आदि करते समय वस्त्र, माला, पुष्प, आसन इत्यादि के रंगों का स्पष्ट विवेचन प्राप्त होता है।

सामान्यतया मन्दिर के भीतरी भागों में अधिक गाढ़े रंगों का प्रयोग न करें। काला, डार्क चाकलेटी, डार्क नीला, डार्क ब्राउन, डार्क ग्रे कलर कभी भी इस्तेमाल न करें। गुलाबी, आसमानी, सफेद, पीला, केसरिया, हरा इत्यादि रंग यथास्थिति प्रयोग करें।

छत का रंग सफेद या एकदम फीका रखें। मन्दिर का शिखर श्वेत रंग का रखना चाहिए। यही रंग सर्वाधिक प्रभावकारी है। इस तरह सभी प्रकार की रंग संयोजनाओं में यही प्रमुख लक्ष्य रखें कि उनसे वातावरण में शान्ति की स्थापना हो।

रंग विज्ञान के अनुसार विविध रंगों का निम्न प्रभाव होता है–

रंग	प्रभाव
श्वेत	शांति, सौहार्द्र एवं समन्वय का प्रतीक
नीला	शुभ फलदाता
हरा	उत्तम फलदायी
गुलाबी	श्रेष्ठ फल
आसमानी	शान्ति एवं उत्साहवर्धक
लाल	मध्यम
काला	अशुभ एवं शोक कारक
चॉकलेटी	उदासीनता और असफलता कारक

मन्दिर निर्माण के उपविभागों का परिचय

जिन मन्दिर का निर्माण करते समय उसके बाह्य और आभ्यन्तर उपभागों में अन्य कई प्रकार की संरचनाएँ होती हैं जो प्रासाद भूमि की लम्बाई-चौड़ाई के अनुसार प्रमाण युक्त बनाई जाती है। उन संरचनाओं का सामान्य वर्णन इस प्रकार है–

मानस्तम्भ

जिनालय के मुख्य प्रवेश द्वार के बाह्य भाग में एक स्तम्भ की स्थापना की जाती है उसे मान स्तम्भ कहा गया है। यह स्तम्भ मन्दिर के सम्मान का प्रतीक और दर्शकों के अहंकार मर्दन का सूचक है। इस स्तम्भ के ऊपरी भाग में चौमुखी प्रतिमा विराजमान करते हैं जिसका दर्शन करने से मन्दिर में प्रवेश किये बिना भी परम शांति का अनुभव होता है और साक्षात प्रभु दर्शन की भावना तीव्र हो उठती है।

जैन शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक अकृत्रिम चैत्यालयों में मानस्तम्भ होता है। वर्तमान निर्मित चैत्यालयों में यह रचना कहीं देखी जाती है तो कहीं नहीं भी। इससे सिद्ध है कि कृत्रिम चैत्यों में मानस्तम्भ का होना अनिवार्य नहीं है।

मानस्तम्भ निर्माण के आवश्यक निर्देश–

1. देवशिल्प के अनुसार निर्माण करते समय मन्दिर के द्वार के ठीक सामने सम सूत्र में मान स्तम्भ बनायें।

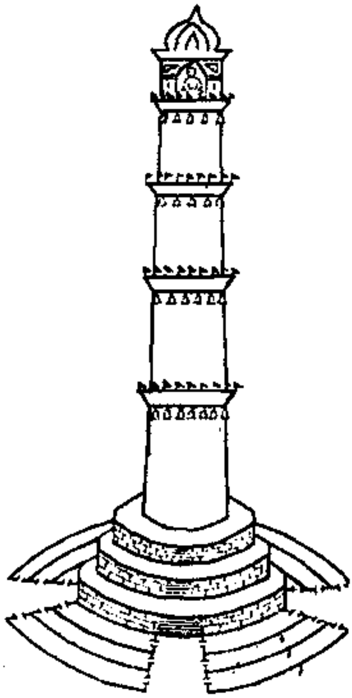

मानस्तम्भ

2. मान स्तम्भ की ऊँचाई का माप मूलनायक प्रतिमा के परिमाण से बारह गुने के बराबर होना चाहिए।
3. मान स्तम्भ वृत्ताकार, चतुरस्त्र अथवा अष्टास्त्र होना चाहिए।
4. ऊपर निर्मित मन्दिरनुमा गुमटी में चार जिन प्रतिमाएँ मूलनायक प्रभु के नाम से एक ही नाप की स्थापित करें। चारों जिन प्रतिमाएँ या तो एक ही पत्थर से निर्मित हों अथवा चार पृथक्-पृथक् हों।
5. मान स्तम्भ के ऊपर शिखर एवं कलश का निर्माण करना चाहिए।
6. मानस्तम्भ में निर्मित जिनालय वर्गाकार ही होना चाहिए।
7. मानस्तम्भ के नीचे के भाग में तीन कटनियां बनाना चाहिए। प्रथम कटनी में तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्न चित्रित करें। द्वितीय कटनी में अष्ट प्रातिहार्यों का चित्रण करें। तृतीय कटनी में चारों ओर चार जिन

प्रतिमाओं की स्थापना करें। मान स्तम्भ की प्रतिमाएँ तीर्थंकर के चिह्नों से युक्त होवें। इन प्रतिमाओं का खड्गासन में होना श्रेष्ठ है।

8. मान स्तम्भ पर स्वर्ण कलश आरोहित करें और ध्वजारोहण करें।
9. मान स्तम्भ की प्रतिमाओं के समीप अष्ट मंगल द्रव्यों की स्थापना करें।
10. मान स्तम्भ के नीचे के भाग की जिन प्रतिमाओं एवं मूलनायक प्रतिमा की दृष्टि एक सूत्र में होना चाहिए।
11. मान स्तम्भ की प्रतिमाओं का दैनिक अभिषेक आवश्यक नहीं है। फिर भी यदि वार्षिक समारोह के दिन अभिषेक किया जाये तो अति उत्तम है।
12. मान स्तम्भ का निर्माण मन्दिर से कुछ दूरी पर करें ताकि दृष्टि भेद न हो।
13. मान स्तम्भ के चारों ओर लगभग एक गज ऊँचा परकोटा बनायें। इसी के साथ चारों दिशाओं के मध्य में शोभा युक्त द्वार बनायें। परकोटे को कलाकृतियों से सुसज्जित करें।
14. परकोटे की सजावट के लिये कलापूर्ण अष्ट मंगल, धार्मिक बोध वाक्य, नवकार मंत्र आदि लिखवाना चाहिए।
15. मान स्तम्भ के आस-पास पूर्ण स्वच्छता रखें।[46]

जगती

प्रासाद निर्मित करने की मर्यादित भूमि अथवा मन्दिर निर्माण हेतु जितने भू-क्षेत्र को ग्रहण किया जाता है उसे जगती कहते हैं। जैसे राजा का सिंहासन स्थापित करने के लिए अमुक स्थान की मर्यादा रखी जाती है वैसे ही प्रासाद निर्मित करने के लिए अमुक भूमि की मर्यादा रखी जाती है।

स्पष्टार्थ है कि मन्दिर बनवाने के लिए निर्धारित भूमि पर एक ऊँची चबूतरानुमा पीठ का निर्माण किया जाता है इसे ही जगती कहते हैं।

यह पीठ पाषाण निर्मित होती है और मन्दिर निर्माण के लिए आधार का काम करता है।[47]

जगती का आकार कैसा हो, जगती का मान क्या हो, ऊँचाई कितनी हो, ऊँचाई में थरो का मान कितना हो इत्यादि जानकारी के लिए प्रासाद मंडन अध्याय-2 का अवलोकन करना चाहिए।

स्पष्ट बोध के लिए जगती का एक चित्र निम्न प्रकार है–

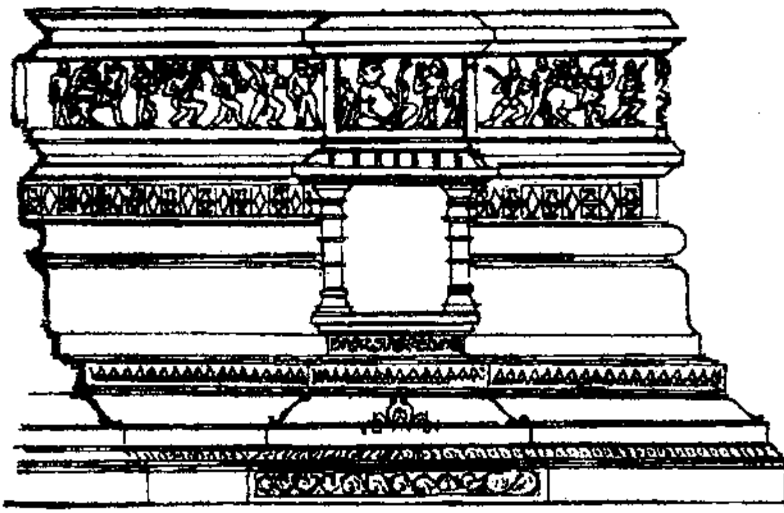

कंदरिया महादेव मंदिर खजुराहो (जगती)

सामान्यतया जगती की संरचना करते समय पूर्वादि दिशाओं के क्रम से कोनों में दिक्पालों की स्थापना करें। फिर जगती को चारों ओर से किले की भाँति सुशोभित करें। फिर उसकी चारों दिशाओं में चार द्वार वाले मंडप बनवायें। तत्पश्चात पानी की निकासी के लिए मगर के मुख वाली नालियाँ बनायें। द्वार के आगे तोरण एवं सीढ़ियों का निर्माण करें। सीढ़ियों के दोनों तरफ हाथी की आकृति बनायें।

यह जगती प्रासाद की पीठ रूप मानी जाती है अतएव इसे अनेक प्रकार से सुशोभित करना चाहिए।[48]

पीठ

यहाँ पीठ का अभिप्राय मन्दिर के आसन से है। प्रासाद की मर्यादित भूमि पर जगती बनाई जाती है और जगती की मर्यादित भूमि पर पीठ बनाई जाती है। मन्दिर की दीवारें पीठ पर उठाई जाती है इसलिए पीठ का प्रमाण एवं अनुपात शिल्पशास्त्र के अनुरूप रखना चाहिए। पीठ के तीन प्रकार कहे गये हैं–

1. **गजपीठ–** गज आदि थरों से युक्त पीठ गजपीठ कहलाती है। ऐसी पीठ का निर्माण अत्यन्त व्यय साध्य कार्य है।

2. **कामद पीठ**– जाड्यकुंभ, कर्णिका, केवाल आदि के साथ ग्रास पट्टी वाली साधारण पीठ कामद पीठ कहलाती है।
3. **कण पीठ**– जाड्यकुम्भ और कर्णिका ऐसे दो थर वाली पीठ कणपीठ कही जाती है।

प्रासाद के लिए पीठ आधार होता है। यदि पीठ न हो तो वह निराधार कहलाता है इसलिए प्रासाद और घर पीठ रहित हो तो उसका शीघ्र विनाश होता है।[49]

पीठ की ऊँचाई का मान, आकार का अनुपात, थर का मान आदि के लिए प्रासादमंडन एवं वास्तुसार प्रकरण के तीसरे अध्याय का अवलोकन करना चाहिए।

त्रिविध पीठों को दर्शाने वाले चित्र निम्न हैं–

महापीठ

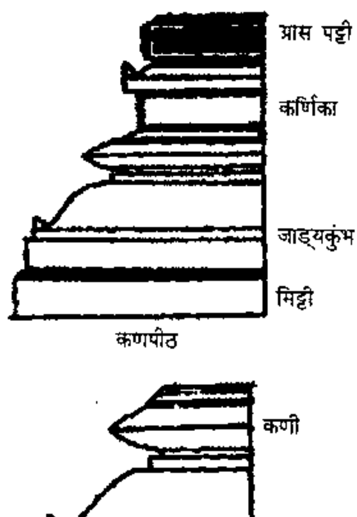

कणपीठ

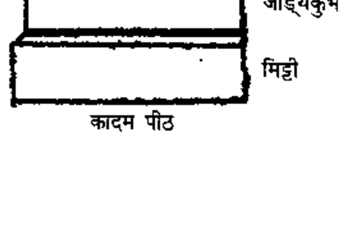

कादम पीठ

पीठ के चित्र

मण्डोवर

मण्डोवर में दो शब्दों का योग है मण्ड + ऊवर। 'मण्ड' का अर्थ है पीठ या आसन और 'ऊवर' का अर्थ है ऊपर। इस अर्थ के अनुसार पीठ के ऊपर जो भाग बनाया जाये वह मण्डोवर कहलाता है। इस प्रकार जिनालय की दीवार मण्डोवर कही जाती है।

वस्तुत: मन्दिर के मर्यादित भू-भाग में जगती का निर्माण करते हैं, जगती पर पीठ का निर्माण किया जाता है तथा पीठ के ऊपर दीवार बनाई जाती है इस दीवार को ही मंडोवर की संज्ञा दी गई है।

पीठ, वेदिबन्ध और जंघा से मिलकर मण्डोवर की रचना होती है। मण्डोवर में तेरह थर होते हैं। उन्हें विभिन्न मतानुसार भिन्न-भिन्न भागों में बाँटा जाता है। ध्यातव्य है कि भिन्न-भिन्न नाम वाले प्रासादों के अनुसार मण्डोवर की रचना भी पृथक्-पृथक् होती है।

मण्डोवर के मान, उन्मान, गणना आदि की विस्तृत जानकारी हेतु प्रासाद मंडन एवं वास्तुसार प्रकरण का तीसरा अध्याय पढ़ना चाहिए।

मण्डोवर के कुछ नमूने निम्न प्रकार हैं–

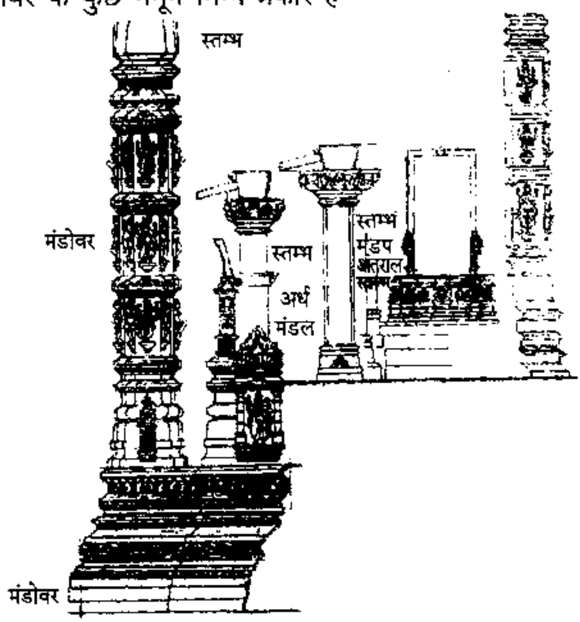

कंदरिया महादेव मंदिर खजुराहो–नागर जाति प्रासाद (आंशिक)

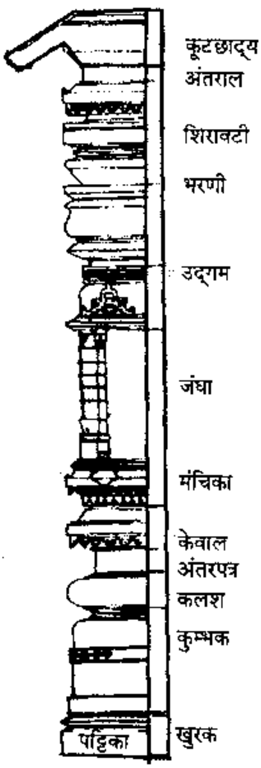

मंडोवर का स्तर विभाग

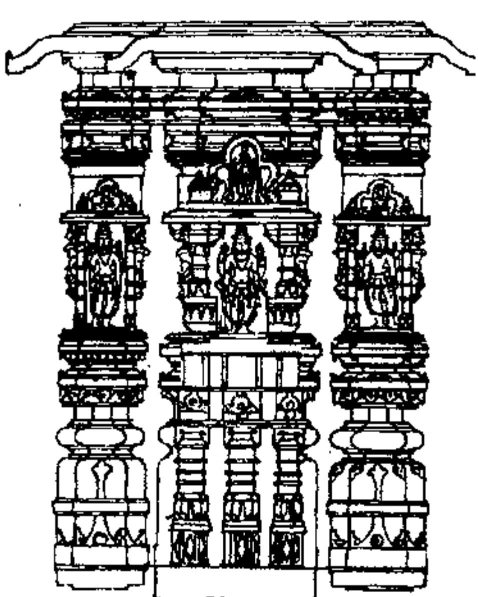

मंडोवर का मुखभद्र

मण्डोवर (भित्ति) निर्माण के कुछ आवश्यक निर्देश–

• मन्दिरों की सभी दीवारें एक सूत्र में बनाई जायें, यदि दीवारों की श्रेणी में एकरूपता नहीं रहती है तो समाज के लिए कष्टदायी होता है।

• मन्दिर की दीवारों में दरार पड़ना, फटना, दीवार सीधी न होना, यह सब मन्दिर एवं संघ दोनों के लिए हानिकारक है। अतएव दीवार का निर्माण सावधानी पूर्वक करवाना चाहिए।

• मन्दिर की दीवारों का कोण 90^0 समकोण रखना आवश्यक है वरना टेढ़ापन रहने पर विघ्नकारी होता है।

• मन्दिर की दीवारों में सीलन (नमी) रहना रोगोत्पत्ति का सूचक है इसलिए ऐसे मटेरियल का उपयोग न करें जिससे सीलन आये।

• पूर्व दिशा की दीवार में दरार पड़ने पर सामाजिक मन-मुटाव होता है। पश्चिम दिशा की दीवार में दरार पड़ने पर सम्पत्ति नाश एवं चोरी का भय उत्पन्न होता है।

• उत्तर दिशा की दीवार के खण्डित होने पर पारस्परिक वैमनस्य बढ़ता है।

• दक्षिण दिशा की दीवार में दरार पड़ने पर रोग वृद्धि एवं मृत्यु तुल्य कष्ट आते हैं।

स्तम्भ

जिनालय के ठोस निर्माण में दीवार और स्तम्भ मुख्य आधार रूप होते हैं। इन दोनों के सहारे मन्दिर का ढाँचा तैयार होता है। यदि स्तंभ न हो तो छत एवं शिखर का सम्पूर्ण भार अकेले मण्डोवर पर आ जाता है अतएव परिमाण के अनुरूप स्तम्भ का निर्माण किया जाना चाहिए।

आकृति की अपेक्षा पाँच प्रकार के स्तम्भ स्थापित किये जाते हैं

1. **चतुरस्र–** चार कोने वाले स्तम्भ 2. **भद्रक–** भद्रयुक्त स्तम्भ, 3. **वर्धमान–** प्रतिरथ युक्त स्तम्भ 4. **अष्टास्र–** आठ कोने वाला स्तम्भ 5. **स्वस्तिक–** साथिया की आकृति वाला स्तम्भ।

ध्यातव्य है कि मण्डोवर एवं स्तम्भ के थरों में एकरूपता रखनी चाहिए, इससे खंभे अधिक शोभायमान होते हैं। प्रासादों की विविधता के अनुसार स्तम्भ रचना भी अनेक प्रकार की होती है।

स्तम्भ की विभिन्न शैलियों के कुछ नमूने–

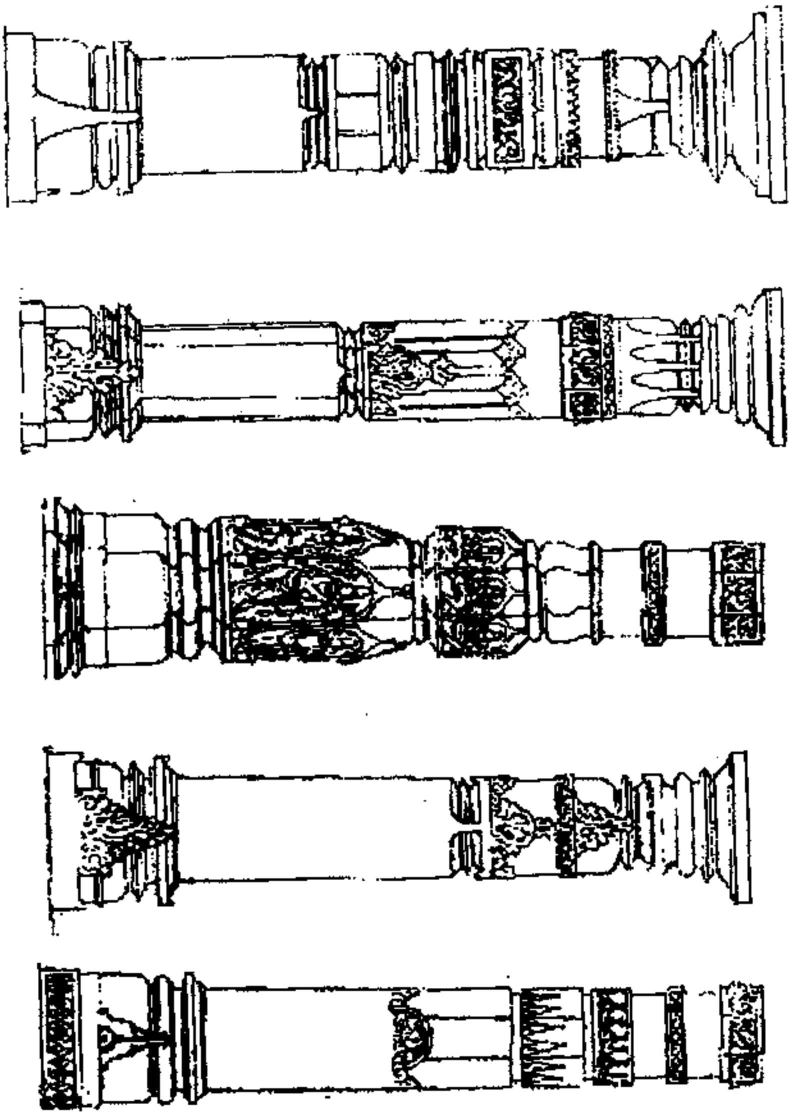

स्तम्भों की विभिन्न शैलियाँ

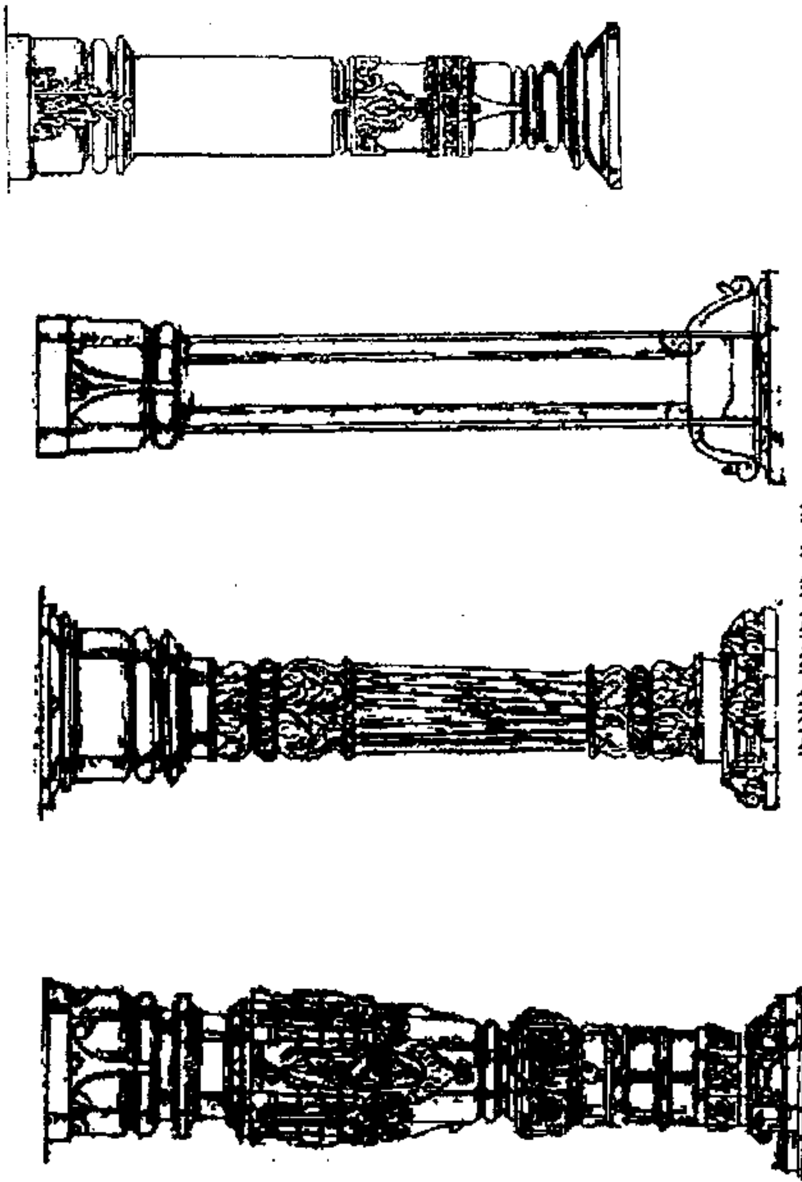

स्तम्भों की विविध शैलियाँ

देहरी

मन्दिर का प्रवेश द्वार चौखट युक्त होना आवश्यक है। चौखट में नीचे की भुजा को उदुम्बर या देहरी कहा जाता है तथा ऊपर की भुजा को उत्तरंग कहते हैं। स्पष्ट है कि प्रवेश (मुख्य) द्वार के नीचे भाग का कुछ उभरा हुआ हिस्सा देहरी कहलाता है।

आवास की भाँति मन्दिर में भी दरवाजों की चोखट एवं देहरी का विशिष्ट महत्त्व है। प्रवेश या निर्गमन करते समय देहरी के ऊपर से ही जाया जाता है। दर्शनार्थी मन्दिर में प्रवेश करने से पूर्व देहरी को नमन करते हैं उसके पश्चात भीतर प्रवेश करते हैं। मुख्य पर्व दिनों में कुंकुम आदि द्रव्यों से देहरी की पूजा की जाती है। बिना देहरी के मुख्य द्वार बनाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

देहरी का व्यावहारिक मूल्य भी है। जैसे कि रेंगकर चलने वाले प्राणी सर्प, गोह, छिपकली आदि देहरी होने से भीतर प्रवेश करने में समर्थ नहीं होते। देहरी के बिना प्रवेश द्वार अत्यन्त अशुभ माना गया है। वर्तमान में बिना चोखट अथवा मात्र तीन भुजाओं के फ्रेम में दरवाजा लगाने की परिपाटी शुरू हुई है जो उपयुक्त नहीं है। दरवाजा चौखट युक्त ही श्रेष्ठ होता है। गर्भगृह में भी देहरी युक्त चौखट अवश्य बनवाना चाहिए। देहरी के आगे बनाई जाने वाली अर्धचन्द्राकृति रचना को शंखावर्त्त कहते हैं।

चौखट युक्त देहरी का चित्र–

उदुम्बर देहरी

उत्तरंग

द्वार शाखा के ऊपर का मथाला (ऊपरी भाग) उत्तरंग कहलाता है। देहरी या उदुम्बर नीचे रहता है जबकि उत्तरंग सिर के ऊपर वाले भाग में होता है।

प्रासाद मंडन के अनुसार जिनालय के गर्भगृह में जिस भगवान की प्रतिमा

स्थापित की गई हो उस देव की मूर्ति द्वार के उत्तरंग में बनाई जानी चाहिए। शाखाओं में उस परमात्मा के यक्ष-यक्षिणी आदि का रूप बनाना चाहिए। अनेक स्थानों पर उत्तरंग की जगह विघ्ननाश के रूप में गणेश प्रतिमा की भी स्थापना करते हैं।[50]

वास्तुविद्या के अनुसार उत्तरंग की ऊँचाई के इक्कीस भाग करें। उनमें ढाई भाग की पत्रशाखा एवं त्रिशाखा बनायें। उसके ऊपर तीन भाग का मालाधर, पौन भाग की छज्जी, पौन भाग की फालना, सात भाग की रथिका, एक भाग का कण्ठ और छह भाग का उद्गम बनायें। इस प्रकार का उत्तरंग मंदिर की शोभा में वृद्धि करने के साथ-साथ पुण्यवर्धक भी माना गया है।[51]

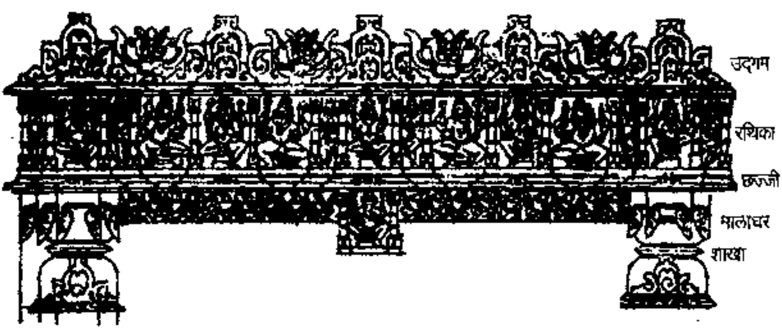

उत्तरंग

महाद्वार

मन्दिर के परिसर में प्रवेश करने के स्थान पर एक द्वार बनाया जाता है उसे महाद्वार कहते हैं। यह द्वार प्रांगण के पूर्व, उत्तर या ईशान कोण में बनाना चाहिए।

इस महाद्वार की रचना दो बड़े चौकोर स्तम्भों के आधार पर की जाती है। इन स्तम्भों के ऊपर नगार खाना और सुन्दर तोरण या कमानी होती है। इस द्वार की ऊँचाई लगभग 15 फुट रखना चाहिए तथा चौड़ाई इतनी रखें कि भारी वाहन, रथ आदि आसानी से प्रवेश कर सकें।

यह द्वार चौकोर एवं भीतर की ओर खुलने वाला होना चाहिए। इस द्वार के निर्माण में चौड़ाई और ऊँचाई का अनुपात प्रवेश द्वार की भाँति ही समझना चाहिए।

महाद्वार के कुछ चित्रांकन

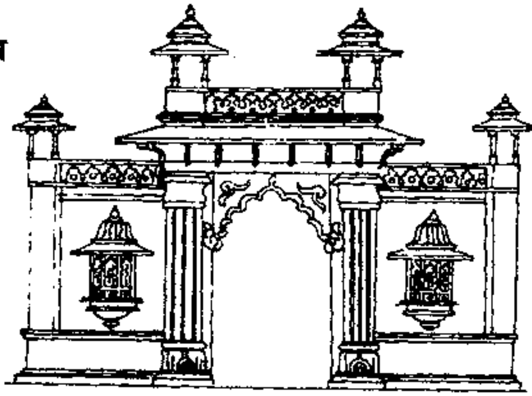

गवाक्ष युक्त प्रवेश द्वार

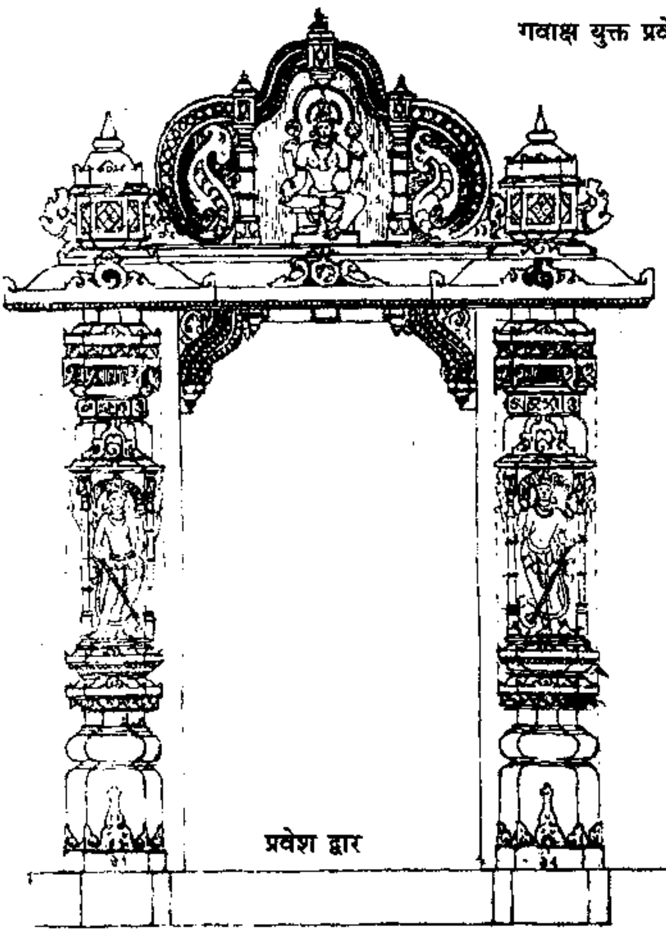

प्रवेश द्वार

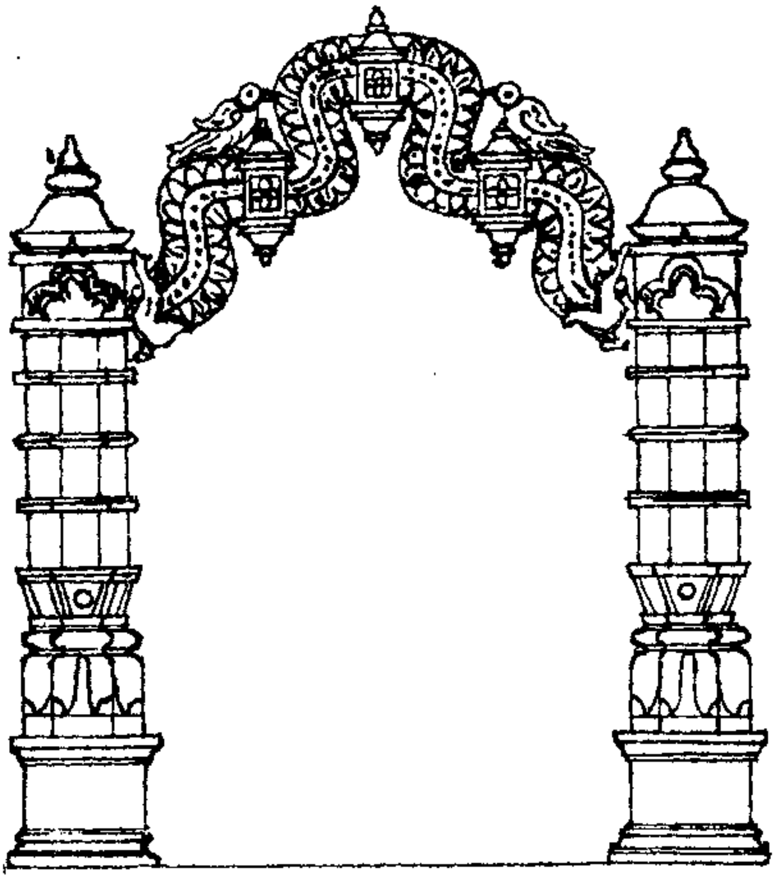

स्तम्भ-तोरण द्वार

खिड़की

सामान्यतया जैन मन्दिरों में सूर्य किरणों का सीधा प्रवेश दोषकारक माना गया है किन्तु वर्तमान शैली के मंदिरों में पर्याप्त वायु प्रवाह एवं प्रकाश के लिए खिड़की बनाना अपरिहार्य हो गया है उपरान्त ऐसी स्थिति में गर्भगृह में खिड़की नहीं बनाना चाहिए।

खिड़कियाँ बनाने के कुछ नियम इस प्रकार हैं–

1. खिड़कियाँ सम संख्या 2, 4, 6, 8 में बनवायें।
2. खिड़कियाँ भीतर की ओर खुलने वाली हो।
3. खिड़की दो पल्ले वाली ही बनवायें।
4. यदि खिड़कियाँ बनाना अपरिहार्य हो तो उन्हें पूर्व या उत्तर दिशा में बनायें।
5. जिन मन्दिरों में सूर्य किरणों का प्रवेश उपयुक्त न हो उनमें खिड़की के ऊपर इस प्रकार का छज्जा लगाये कि सूर्य की किरणे सीधी प्रवेश न कर सकें।
6. गर्भगृह के पीछे परिक्रमा में खिड़की या झरोखा न बनायें। ऐसा करने पर वहाँ पूजा, प्रक्षाल आदि धीरे-धीरे बन्द हो जाते हैं फिर उस स्थान पर राक्षस क्रीड़ा करते हैं।[52]

जाली

मन्दिर में प्रकाश संचरण एवं वायु प्रवाह के लिए जाली की रचना भी की जाती है। द्वार की ऊँचाई के तीन भागों में दो भाग की जाली बनाते हैं। द्वार, जाली एवं गवाक्ष तीनों एक सीध में बनाये जाते हैं।

गवाक्ष

गवाक्ष की रचना मंडोवर पर सजावट के लिए भी की जाती है। इसमें अनेक देव-देवियों के रूप बनाते हैं। इस संरचना से मन्दिर शोभा में अभिवृद्धि होती है।

गवाक्ष के विभिन्न प्रकार

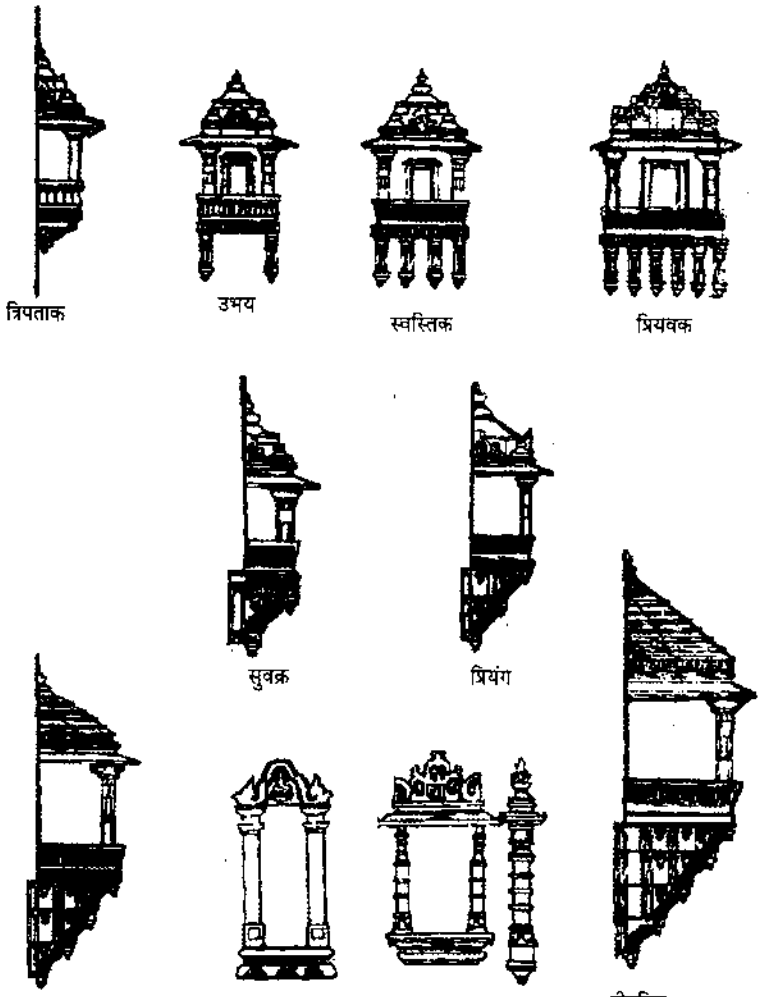

मण्डप

जिनालय का गर्भगृह प्राय: छोटा होने से वहाँ अधिक संख्या में जन समुदाय का बैठना, उपासना-ध्यान आदि करना, नृत्य आदि करना संभव नहीं है। दूसरे, अत्याधिक जनों के एक साथ आवागमन से वहाँ के वातावरण में अशुचि की संभावना भी बढ़ जाती है अतएव गर्भगृह को पवित्र बनाये रखने के

उद्देश्य से अनेक मंडपों का निर्माण किया जाता है। आधुनिक युग में गर्भगृह के सामने के भाग में लम्बा हाल बनाने की प्रथा चल पड़ी है। शिल्प शास्त्रों के निर्देशानुसार गर्भगृह के ठीक बाहर गूढ़ मण्डप का निर्माण करना चाहिए। उसके आगे चौकी मण्डप, उसके आगे रंग मण्डप अथवा नृत्य मण्डप का निर्माण करवाना चाहिए। शेष सभी देवों के गंभारों के आगे तोरण युक्त बलाणक (द्वार के ऊपर का मण्डप) निर्मित करना चाहिए। इस प्रकार गर्भगृह के बाह्य भाग में कुल चार मण्डप की रचना करनी चाहिए।[53]

उल्लेखनीय है कि गूढ़ मण्डप में पूजा करने वाले पंक्ति बद्ध खड़े रहते हैं, चौकी मण्डप में मन्दिर विधि, जाप, ध्यान आदि क्रियाएँ की जाती है तथा रंगमण्डप में बृहद् पूजाएँ, भक्ति गान आदि किये जाने चाहिए।

द्वार

मन्दिर में प्रवेश करने के स्थान पर द्वार का निर्माण किया जाता है। प्रमुख प्रवेश के स्थान पर मुख्य द्वार तथा भीतर में सामान्य द्वारों का निर्माण करते हैं। मुख्य द्वार मन्दिर का प्रमुख अंग माना जाता है इसलिए उसका निर्माण शास्त्र प्रमाण युक्त गंभीरता पूर्वक किया जाना चाहिए।

द्वार निर्माण में रखने योग्य सावधानियाँ

द्वार का निर्माण करते समय कुछ मुद्दों पर विचार करना आवश्यक है जैसे–

1. गर्भगृह, प्रतिमा एवं द्वार इन तीनों के आकार में एक निश्चित अनुपात का होना जरूरी है। अन्यथा विपरीत परिणाम आते हैं।
2. मन्दिर का मुख्य द्वारा मूलनायक प्रतिमा के ठीक सामने होना चाहिए। गर्भालय का द्वार भी आगे के दरवाजे के समसूत्र में रखना चाहिए। गर्भालय एवं आगे के दरवाजों को सम सूत्र में रखना शुभ एवं फलदायक है। किंचित भी विषम सीध में न रखें।
3. दरवाजे के किवाड़ यदि अन्दर के भाग में ऊपर की तरफ झुके हुए हों तो यह मन्दिर के लिए धन नाश का निमित्त बन सकता है।
4. दरवाजे के किवाड़ यदि बाहर के भाग में ऊपर की ओर झुके हुए हों तो समाज में कलह एवं रोग का कारण बनता है।
5. दरवाजा खोलते या बन्द करते समय आवाज निकलना अशुभ एवं भय कारक है।

6. दरवाजा भीतर की ओर ही खुलना चाहिए, अन्यथा रोग का कारण बनता है।
7. दरवाजे की चौड़ाई एवं ऊँचाई निर्धारित मान के अनुकूल रखें अन्यथा विषम परिस्थितियाँ जैसे- भय, अकारण चिन्ता, स्वास्थ्य हानि, अकस्मात धन नाश आदि स्थितियाँ बन सकती हैं।
8. यदि द्वार स्वत: खुले या बन्द होवें तो उसे अशुभ समझें। इससे व्याधि, पीड़ा, वंश हानि की संभावना हो सकती है।
9. यदि द्वार पत्थर का हो तो चौखट पत्थर की बनायें।
10. दरवाजे यदि लकड़ी के हों तो लकड़ी की चौखट तथा लोहे के हों तो लोहे की चौखट लगायें।
11. सुरक्षा की दृष्टि से गर्भगृह एवं मूल द्वार के अन्दर चैनल गेट लगा सकते हैं किन्तु इनसे भगवान की दृष्टि का अवरोध नहीं होना चाहिए।
12. यदि संभव हो तो मन्दिर में चिटखनी, सांकल, कब्जे आदि पीतल के लगायें, लोहे के न लगाएं।
13. बिना द्वार का मन्दिर कदापि न बनायें। यह समाज के लिए अशुभ, हानिकारक एवं नेत्र रोगों की वृद्धि का निमित्त होता है।
14. दरवाजे एवं चौखट एक ही लकड़ी के बनवायें। लोहे के दरवाजे अथवा शटर न बनवायें।
15. एक दीवार में तीन दरवाजे या तीन खिड़की न रखें। एक दरवाजा एवं तीन खिड़की रख सकते हैं।
16. पूरी वास्तु में दरवाजे सम संख्या में हों किन्तु दशक में न हों जैसे- 2, 4, 6, 8, 12, 14, 16 में हों, किन्तु 20, 20, 30 न हों। द्वार का आकार, उसका अनुपात, विविध प्रासादों के आधार पर मान गणना, द्वार की आय आदि की जानकारी शिल्प रत्नाकर आदि ग्रन्थों के आधार पर की जा सकती है।

द्वार शाखा

द्वार के दोनों पार्श्व स्तम्भों में कई फालना या भाग बनाये जाते हैं इन्हें द्वार शाखा कहते हैं अथवा द्वार की चौखट के एक पक्खा को द्वार शाखा कहा जाता है। द्वार एक से प्रारम्भ कर नौ शाखाओं तक के होते हैं।

महेश के प्रासाद में नव शाखा का, अन्य देवों के प्रासाद में सात शाखा

का, चक्रवर्ती-नरेशों के प्रासाद में पाँच शाखा का तथा सामान्य राजाओं के प्रासाद में तीन शाखा का द्वार बनाना चाहिए। जिन मन्दिर में सात या नौ शाखा वाला द्वार बनवाना चाहिए।

प्रासाद मंडन के अनुसार जिनमन्दिर के भद्र आदि तीन, पाँच, सात या नौ अंग होते हैं। जितने अंग का प्रासाद हो उतनी ही शाखाएँ बनानी चाहिए। अंग से कम शाखा न बनायें परन्तु अधिक बनाना सुखद है।[54]

शाखाओं के आधार पर द्वारों के नाम एवं गुण इस प्रकार हैं–

शाखा संख्या	**नाम**	**गुण**	**आय**
नौ	पद्मिनी	उत्तम	ध्वज आय
आठ	मुकुली	ज्येष्ठ	ध्वांक्ष आय
सात	हस्तिनी	उत्तम	गज आय
छह	मालिनी	ज्येष्ठ	खर आय
पाँच	नन्दिनी	उत्तम	वृषभ आय
चार	गांधारी	मध्यम	श्वान आय
तीन	सुभगा	मध्यम	सिंह आय
दो	सुप्रभा	कनिष्ठ	धूम आय
एक	स्मरकीर्ति	कनिष्ठ	

सप्तशाखा द्वार का चित्र

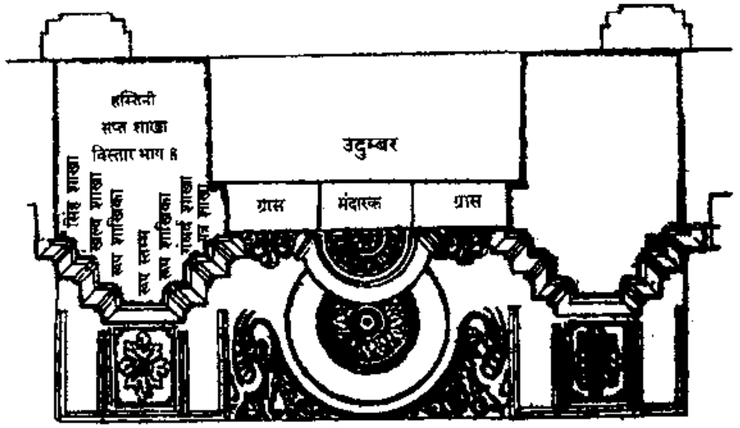

सप्तशाखा द्वार एवं उदुम्बर की रचना

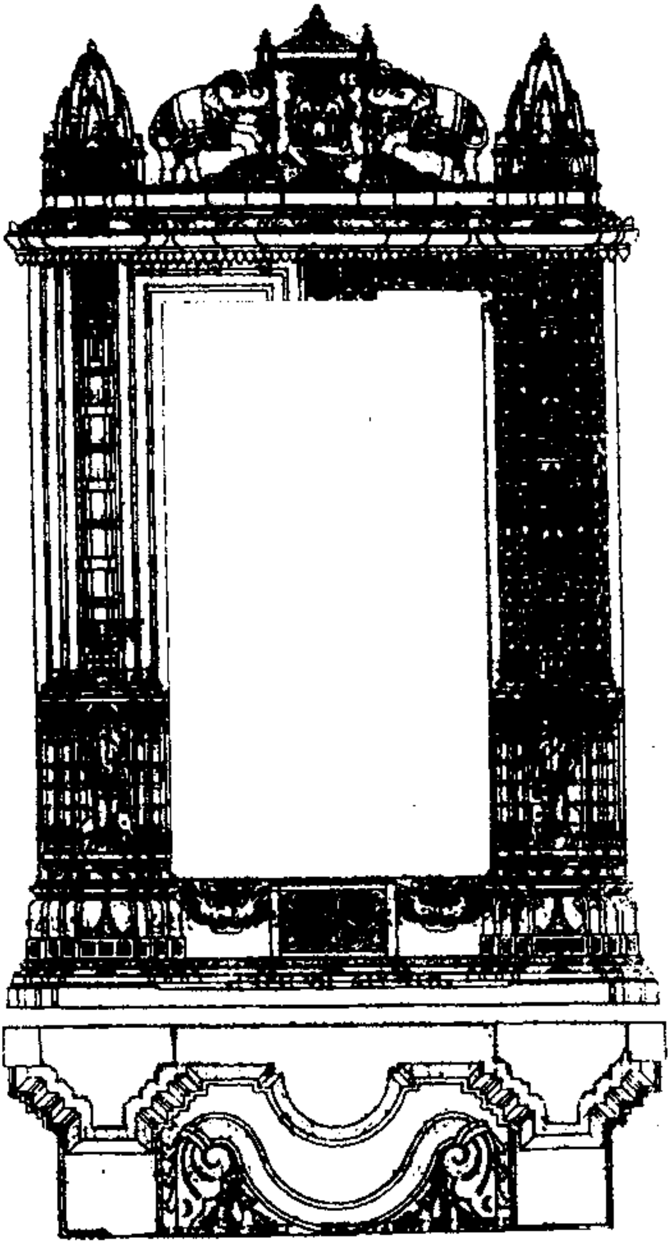

सप्तशाखा द्वार

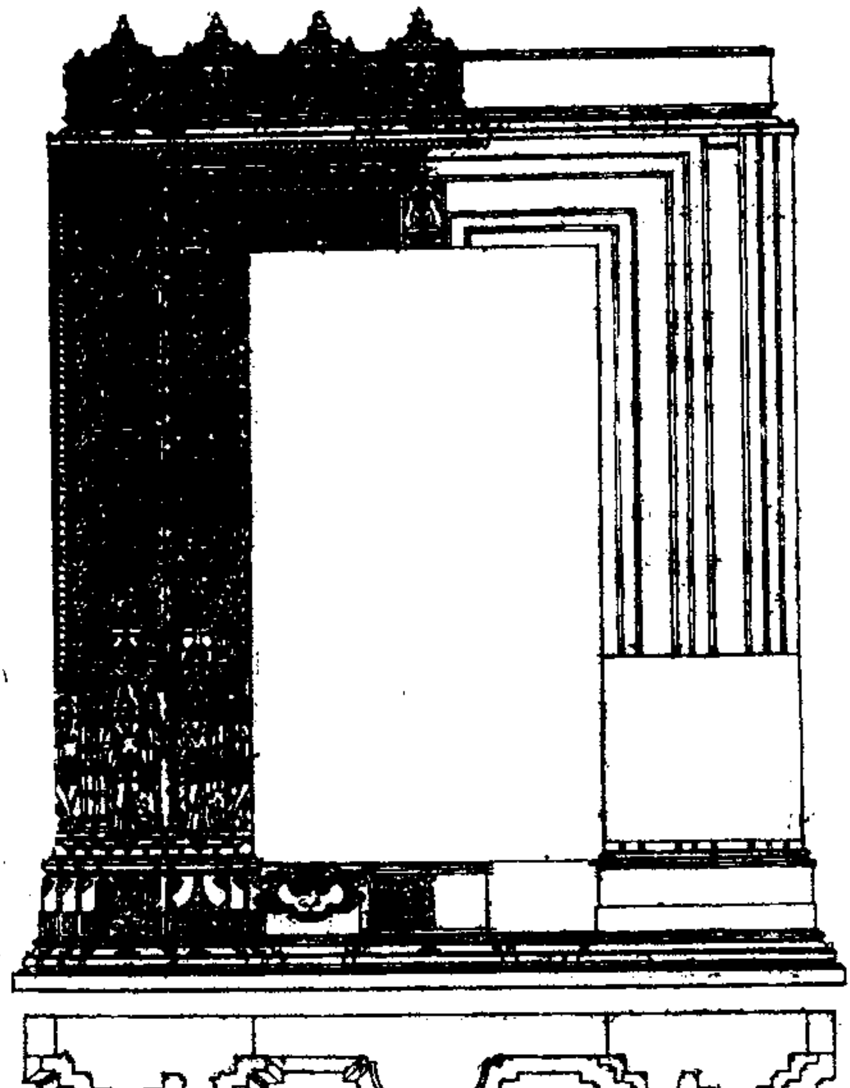

नवशाखा द्वार

बलाणक

देवालय के प्रवेश द्वार के ऊपर जो मण्डप बनाया जाता है उसे बलाणक कहते हैं। इसे मुख मण्डप भी कहा जाता है। यह बलाणक (मण्डप) राजमहल, गृह, नगर, जलाशय आदि के मुख्य द्वार पर बनाना चाहिए।[55]

प्रासाद मंडन में बलाणक के पाँच प्रकार बतलाये गये हैं–

1. जगती के आगे की चौकी पर जो बलाणक बनाया जाता है उसे वामन बलाणक कहते हैं।
2. राजद्वार के ऊपर पाँच या सात भूमि वाला बलाणक उत्तुंग नाम से कहा जाता है।
3. जलाशय द्वार के बलाणक को पुष्कर कहते हैं।
4. गृहद्वार के आगे एक, दो या तीन भूमि वाला बलाणक हर्म्यशाल (विशाल भवन, महल) कहलाता है।
5. किले के द्वार के ऊपर का मण्डप गोपुर कहलाता है।[56]

इस प्रकार बलाणक जिनमन्दिर की प्रमुख संरचना है।

प्रतोली

मन्दिर के प्रवेश द्वार के अग्रभाग के स्थान पर दो अथवा चार स्तम्भ से युक्त तोरण आकृति का निर्माण किया जाता है उसे प्रतोली कहते हैं। यह रचना अत्यन्त कलात्मक रूप से जगती के अग्रभाग में बनाई जाती है।

यह संरचना पाँच प्रकार की होती है–

1. दो स्तम्भ वाली प्रतोली को उत्तंग कहते हैं।
2. जोड़ रूप दो स्तम्भ वाली प्रतोली मालाधर कही जाती है।
3. चार स्तम्भ की चौकी युक्त प्रतोली विचित्र कही जाती है।
4. विचित्र प्रतोली के दोनों ओर कक्षासन वाली प्रतोली चित्र रूप कहलाती है।
5. चौकी युक्त जुड़वा स्तम्भ वाली प्रतोली को मकरध्वज कहते हैं।

प्रतोली को समझने हेतु निम्न चित्र द्रष्टव्य है–

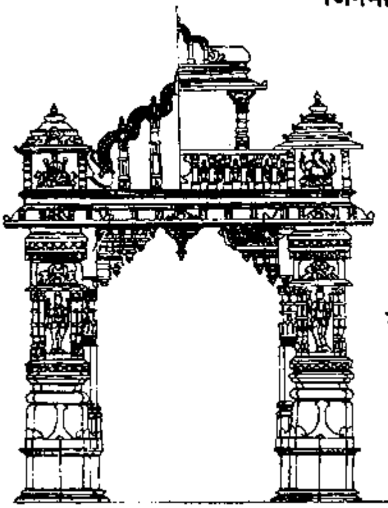

मदल युक्त प्रवेश द्वार
(प्रतोल्या)

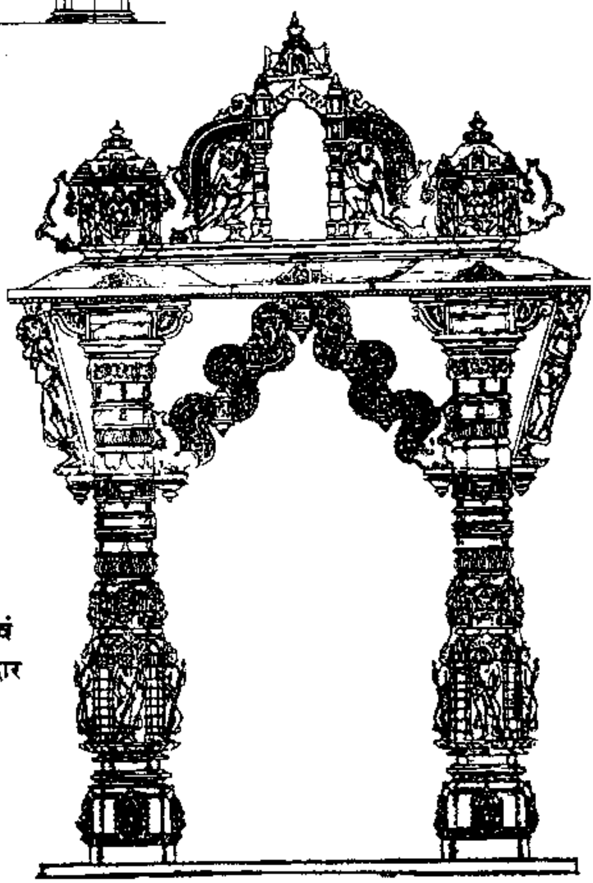

सजावटी तोरण एवं
स्तम्भ युक्त प्रवेश द्वार
(प्रतोल्या)

गूमट (वितान)

गूढ़ मण्डप, रंग मंडप अथवा चौकी मण्डप आदि के अन्दर का कलात्मक भाग गूमट कहलाता है। यह रचना प्रायः वृत्ताकार होती है तथा इस संरचना में लगभग विद्याधर देवियों आदि की आकृतियाँ भी बनाई जाती है।

स्पष्ट बोध के लिए देखिए गूमट की चित्राकृतियाँ–

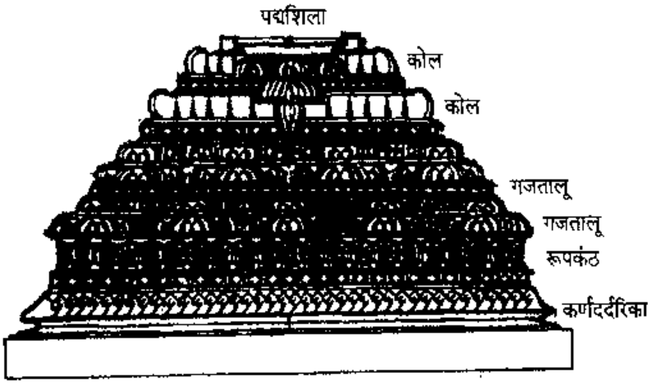

वितान (गूमट) के थर

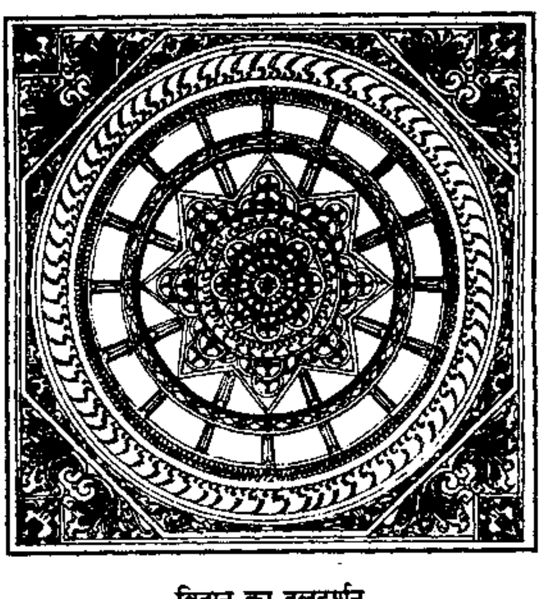

वितान का तलदर्शन

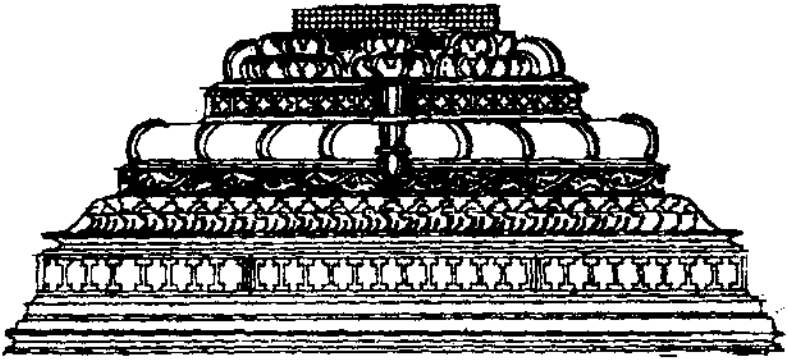

वितान का विभाग

संवरणा

गूढ़ मंडप के बाहर का कलात्मक भाग संवरणा कहलाता है और उसका भीतरी भाग गूमट कहलाता है। सामान्यत: मंडप का आच्छादन संवरणा से किया जाता है। संवरणा की रचना कई भागों में 25 प्रकार से की जाती है।[57]

संवरणा की कुछ चित्राकृतियाँ निम्न प्रकार हैं-

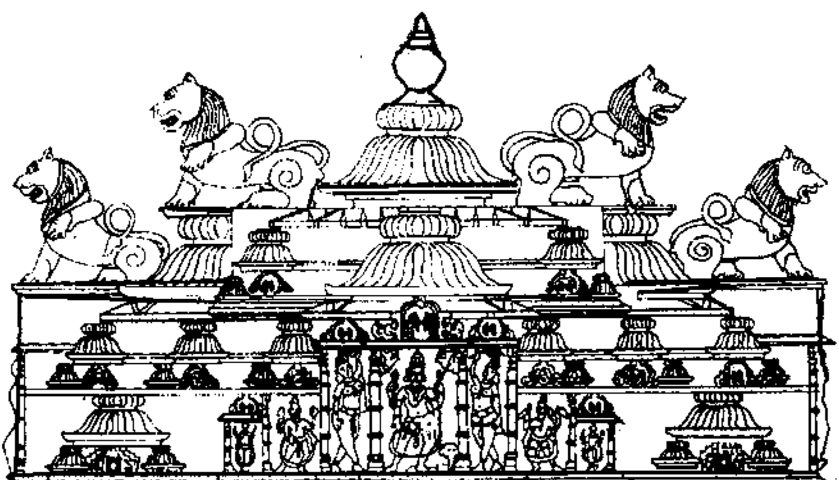

सम्वर्णा की प्राचीन शैली का बाहरी दृश्य

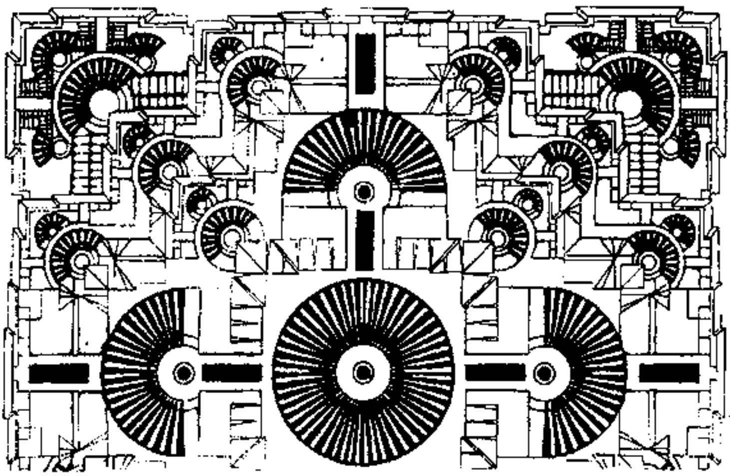

सम्वर्णा की प्राचीन शैली का तलदर्शन रेखांकन

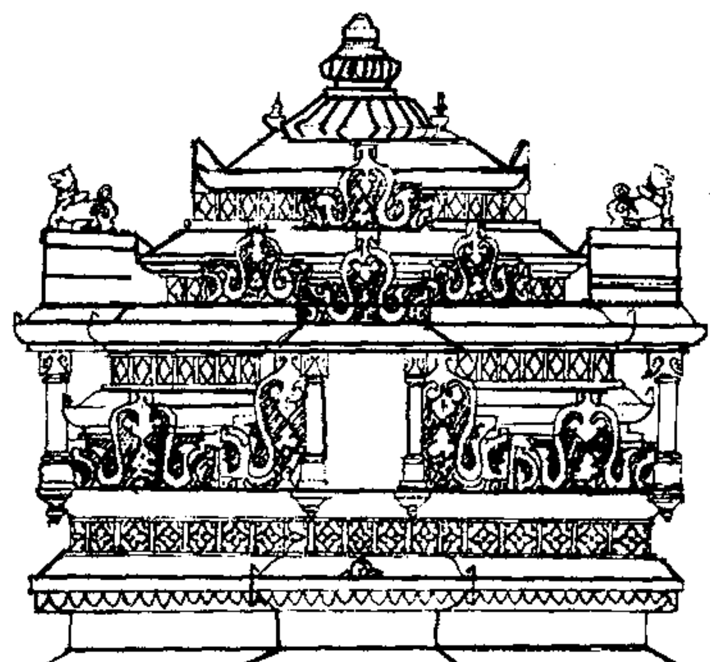

सम्वर्णा

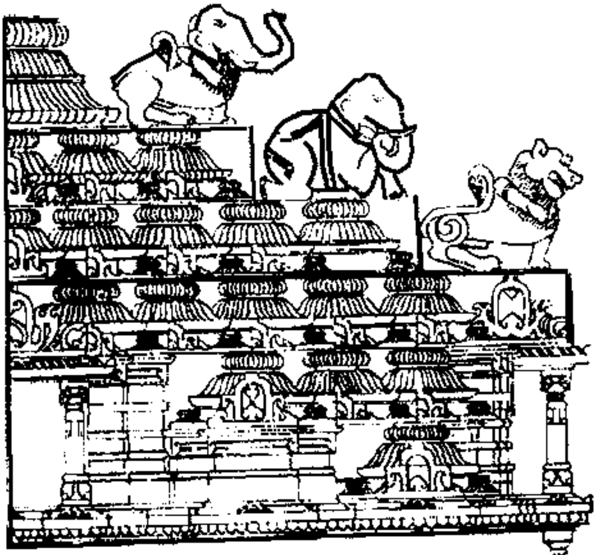

सम्वर्णा का पार्श्वदर्शन

आमलसार

मन्दिर शिखर के स्कन्ध के ऊपर कुम्हार के चाक की आकृति नुमा गोल कलश आमलसार कहलाता है। आमलसार के ठीक नीचे का भाग ग्रीवा कहलाता है तथा आमलसार के ऊपरी भाग में कलश की स्थापना की जाती है। स्पष्टता के लिए निम्न चित्र द्रष्टव्य है–

आमलसार

आमलसार

ग्रीवा, आमलसार एवं कलश

कोली

गर्भगृह के द्वार के आगे वाले मंडप को कोली मंडप कहते हैं। उसके छज्जे के ऊपर शुकनास के दोनों ओर शिखर आकार वाले मंडप होते हैं, जिसे

आधुनिक शिल्पी प्रासाद पुत्र कहते हैं। उसका नाम कपिली अथवा कोली है। गर्भ द्वार के ऊपर दायीं और बायीं तरफ छह प्रकार की कोली बनाते हैं।[58]

पबासन

गर्भगृह में अरिहंत प्रभु की प्रतिमा स्थापित करने हेतु एक ठोस चबुतरानुमा वेदी बनाई जाती है उसे पबासन कहते हैं।

आचार्य जयसेन प्रतिष्ठा पाठ में आकार की अपेक्षा चार प्रकार की वेदी कही गयी है–

1. **चतुष्कोण वेदी–** यह वेदी लम्बाई और चौड़ाई में बराबर होती है तथा प्रतिष्ठित जिनबिम्ब की स्थापना के लिए सर्वश्रेष्ठ मानी गई है।

स्पष्ट बोध के लिए रेखाचित्र इस प्रकार है–

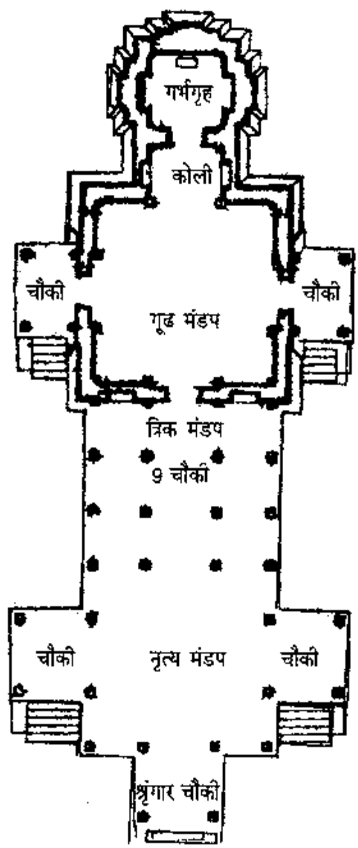

2. **कमलाकृति वेदी–** इसे पद्मिनी वेदी भी कहते हैं। इस वेदी का निर्माण करते समय खिले हुए कमल की आकृति बनाई जाती है और उस पर प्रतिमा की स्थापना करते हैं। इस वेदी का प्रयोग तीर्थंकर प्रभु के केवलज्ञान कल्याणक के समय किया जाता है।
3. **अर्धचन्द्राकृति वेदी–** इस वेदी में अर्धचन्द्र का आकार दिया जाता है जिसका समतल भाग ऊपर रहता है। यह वेदी तीर्थंकर के जन्म कल्याणक के समय उपयोग की जाती है।
4. **अष्टकोण वेदी–** इसे सर्वतोभद्र वेदी भी कहा जाता है। इसमें अष्ट कोण की आकृति बनाई जाती है। इस वेदी का प्रयोग विशेष रूप से तीर्थंकर के दीक्षा कल्याणक के समय किया जाता है।[59]

गर्भगृह की वेदी एक या डेढ़ हाथ ऊँची होनी चाहिए। वेदी निर्माण करते समय ध्यान रखने योग्य निर्देश–

1. वेदी ठोस बनायें, जरा भी पोली न बनायें।
2. वेदी में एक या तीन कटनियों का ही निर्माण करें।
3. मूलनायक प्रतिमा वेदी के ठीक मध्य में स्थापित करें।
4. वेदी दीवार से चिपकाकर न बनाएं।
5. मूलनायक प्रतिमा परिकर सहित स्थापित करें।
6. परिक्रमा के लिए उपयुक्त स्थान रखें।
7. प्रतिमा स्थापन के लिए समचंतुरस्त्र वेदी ही बनायें।
8. प्रतिमाओं की संख्या के अनुसार प्रमाणोपेत वेदी बनायें।

प्रासाद

यहाँ प्रासाद शब्द का अभिप्राय उसकी मूल रचना कृतियों से है। मन्दिर के बाह्य और आभ्यन्तर भाग में जितनी भी आवश्यक संरचनाएँ बनाई जाती है उन सभी को प्रासाद की संज्ञा दी गई है। मन्दिर का आवश्यक भाग-उपविभाग भी प्रासाद कहलाता है।

शिल्प ग्रन्थों के अनुसार जिनालय की रचना आकृतियों में होती है अत: इसके अनेक प्रकार हैं।

प्रथम विभाग– प्रासाद मंडनकार ने शिखर एवं भद्र आदि की अपेक्षा से पच्चीस प्रकार के प्रासाद बतलाये हैं। ये प्रासाद नागर जाति के हैं और उनके

नाम इस प्रकार हैं–

1. वैराज्य 2. नन्दन 3. सिंह 4. श्रीनन्दन 5. मन्दर 6. मलय 7. विमान 8. सुविशाल 9. त्रैलोक्य भूषण 10. माहेन्द्र 11. रत्नशीर्ष 12. शतश्रृंग 13. भूधर 14. भुवन मंडल 15. त्रैलोक्य विजय 16. पृथ्वी वल्लभ 17. महीधर 18. कैलाश 19. नवमंगल 20 गंध मादन 21. सर्वांगसुन्दर 22. विजयानन्द 23. सर्वांगतिलक 24. महाभोग 25. मेरू।

उक्त 25 प्रकार के प्रासादों में कौनसा, किन देव-देवियों के लिए निर्मित करना चाहिए, उसकी सारणी निम्नोक्त है–

प्रासाद नाम	देव	फल
वैराज्य	सर्व देवों के लिए	
सिंह	पार्वती	धन एवं पुत्र लाभ
माहेन्द्र	सर्व देवों के लिए	राज्य लाभ
शतश्रृंग	ईश्वर	शुभ
कैलाश	शंकर	शुभ
महाभोग	सर्व देवों के लिए	सर्व कार्य सिद्धि
महादेव	सर्व देवों के लिए	

मन्दिर निर्माता यह ध्यान रखें कि वह मूलनायक देवों के अनुरूप ही मन्दिर का निर्माण करवाये। यदि तद्रूप सामर्थ्य न हो तो लघु आकार में प्रासाद बनवाये किन्तु यद्वा-तद्वा निर्माण न करें। शास्त्र के अनुरूप निर्माण करने से निर्माण कर्त्ता एवं पूजक दोनों के लिए कल्याण कारक होता है।

इन प्रासादों में शिखर सज्जा, श्रृंग संख्या, तल विभाग आदि कितने और कैसे होते हैं? इस सम्बन्धी स्पष्ट वर्णन प्रासाद मंडन के पाँचवें अधिकार में निरूपित है।[60]

द्वितीय विभाग– शिल्प ग्रन्थों के अनुसार नागर जाति के प्रासादों में केसरी आदि पच्चीस प्रासाद भी प्रमुख माने जाते हैं। ये प्रदक्षिणा युक्त अथवा बिना प्रदक्षिणा के दोनों रूपों में निर्मित किये जाते हैं। प्रासाद मंडन आदि में वर्णित इन प्रासादों के नाम आदि का विवरण इस प्रकार है–

1. केसरी 2. सर्वतोभद्र 3. नन्दन 4. नन्दशालिक 5. नन्दीश 6. मन्दर 7. श्रीवृक्ष 8. अमृतोद्भव 9. हिमवान 10. हेमकूट 11. कैलाश 12. पृथ्वीजय

13. इन्द्रनील 14. महानील 15. भूधर 16. रत्नकूटक 17. वैडूर्य 18. पद्मराग 19. वज्रक 20. मुकुटोज्ज्वल 21. ऐरावत 22. राजहंस 23. गरुड़ 24. वृषभ ध्वज 25. मेरू।

उक्त प्रासादों में कौनसा, किन देव-देवियों के लिए निर्मित करना चाहिए? वह सारणी निम्न है–

प्रासाद नाम	उपयुक्त देव
केसरी	पार्वती देवी
नन्दन	सर्व देवों के लिए
श्रीवृक्ष	विष्णु
अमृतोद्भव	सर्व देव
हिमवान	नागकुमार
कैलास	शिव
इन्द्रनील	सर्व देव, शिव
भूधर	सर्व देव
रत्नकूट	सर्व देव एवं शिव
पद्मराग	सर्व देव
वज्रक	इन्द्र
ऐरावत	इन्द्र
पक्षीराज	विष्णु
वृषभ	शिव
मेरू	ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य

केसरी आदि पच्चीस प्रासादों का तल विभाग, शिखर सज्जा, श्रृंग संख्या इत्यादि की जानकारी हेतु प्रासादमंडन के छठे अध्याय का अवलोकन करना चाहिए।[61]

तृतीय विभाग– जिनेश्वर प्रभु के लिए उत्तम जाति के प्रासादों का निर्माण करना चाहिए। प्रासादों की मुख्य जातियों में निम्न जाति के प्रासाद श्रेष्ठ कहे गये हैं–

1. **नागर प्रासाद–** इस जाति के प्रासाद अनेक प्रकार के तल की आकृति वाले, अनेक गुमटों वाले, अनेक श्रृंगयुक्त फालना वाले और गवाक्ष वाले होते हैं।[62]

2. **द्राविड़ प्रासाद–** इस जाति के प्रासादों में तीन अथवा पाँच पीठ होती है और पीठ के ऊपर वेदी का निर्माण किया जाता है। उनके कोने लताओं अथवा श्रृंगों से युक्त होते हैं।[63]
3. **भूमिज प्रासाद–** इस जाति के प्रासाद एक के ऊपर एक ऐसे नौ मंजिला बनते हैं और उनमें नीचे के माले से ऊपर-ऊपर के माले छोटे होते हैं। इस प्रकार भूमि जाति के प्रासाद पद विभक्ति वाले और ऊपर में श्रृंगों वाले होते हैं।[64]
4. **लतिन प्रासाद–** इस जाति के प्रासाद एक श्रृंग वाले होते हैं।
5. **श्रीवत्स प्रासाद–** ये प्रासाद वारि मार्ग से युक्त होते हैं।
6. **सांधार प्रासाद–** ये प्रासाद परिक्रमा युक्त होते हैं। इनका आकार दस हाथ से बड़ा होता है तथा इनमें सूर्य किरणों का सीधा प्रवेश नहीं होता है।[65]
7. **विमान नागर प्रासाद–** इस जाति में केसरी आदि प्रासादों का सम्मिश्रण होता है। इन प्रासादों के कोनों के ऊपर अनेक विमान श्रृंग और भद्र के ऊपर अनेक उरु श्रृंग चढ़ाते हैं तथा शिखर विमान के आकार वाला पाँच मंजिला होता है।[66]
8. **मेरू प्रासाद–** इस जाति के प्रासाद पाँच हाथ से बड़े बनाये जाते हैं। पाँच हाथ के विस्तार वाले मेरू प्रासाद के शिखर के ऊपर 101 श्रृंग चढ़ाये जाते हैं। फिर पाँच हाथ से एक-एक पचास हाथ तक बढ़ाने पर पैंतालीस भेद होते हैं। उन प्रत्येक के ऊपर अनुक्रम से बीस-बीस श्रृंग अधिक चढ़ाने पर पचास हाथ के विस्तार वाले मेरू प्रासाद के ऊपर 1001 श्रृंग होते हैं जैसे पाँच हाथ के मेरू प्रासाद के ऊपर 101, छह हाथ के प्रासाद के ऊपर 120, सात हाथ के प्रासाद के ऊपर 141 इस प्रकार श्रृंग चढ़ाये जाते हैं।[67]

प्रासाद मंडन में मेरू प्रासाद को नौ भागों में बाँटा गया है उनके नाम ये हैं– 1. मेरू प्रासाद 2. हेम शीर्ष मेरू 3. सुरवल्लभ मेरू 4. भुवन मंडन मेरू 5. रत्न शीर्ष मेरू 6. किरणोद्भव मेरू 7. कमल हंस मेरू 8. स्वर्णकेतु मेरू 9. वृषभ ध्वज मेरू।

मेरू प्रासाद परिक्रमा युक्त एवं बिना परिक्रमा वाले दोनों तरह बनाये जाते हैं। प्रासादमंडन के अनुसार इस जाति के प्रासाद सिर्फ राजाओं को ही बनाना

चाहिए। अकेला धनिक इन्हें न बनायें, यदि वह चाहे तो राजा के साथ बनायें अन्यथा महा अनिष्ट की संभावना रहती है।[68]

चतुर्थ विभाग– शिल्प ग्रन्थों में मेरू जाति के अन्य बीस प्रासादों का भी उल्लेख है। यह भेद शिखर एवं तल के विभागों के अंतर के आधार पर किया गया है। इनके शिखरों की रचना अंडक एवं तिलक पर आधारित है। उनके नाम इस प्रकार हैं– 1. ज्येष्ठ मेरू 2. मध्यम मेरू 3. कनिष्ठ मेरू 4. मन्दिर 5. लक्ष्मी कोटर 6. कैलास 7. पंचवक्त्र 8. विमान 9. गंधमादन 10. मुक्तकोण 11. गिरि 12. तिलक 13. चंद्रशेखर 14. मन्दिर तिलक 15. सौभाग्य 16. सुन्दर 17. श्री तिलक 18. विशाल 19. पर्वतकूट 20. नन्दिवर्धन।[69]

पंचम विभाग– शिल्प रत्नाकर में तिलक सागर आदि पच्चीस मंदिरों का वर्णन किया गया है। इन मंदिरों में कोने एवं फालना (खांचों) के आधार पर तल के विभाग किये जाते हैं तथा पृथक्-पृथक् संरचनाओं के आधार पर शिखर के भेद-प्रभेद किये जाते हैं। फिर उन्हीं के आधार पर इन मन्दिरों के नाम का बोध होता है।

तिलक सागर आदि पच्चीस प्रासाद सभी देवों के लिए उपयुक्त हैं तथा पूजक एवं निर्माणकर्त्ता दोनों के लिए कल्याणकारक है। यद्यपि प्रत्येक प्रासाद शास्त्र सम्मत बनवायें अन्यथा शिल्पकार और स्थापन कर्त्ता दोनों ही वंश नाश को प्राप्त होते हैं।[70]

तिलक सागर आदि 25 प्रासादों की नामावली इस प्रकार है– 1. तिलक सागर 2. गौरी तिलक 3. इन्द्र तिलक 4. श्री तिलक 5. हरि तिलक 6. लक्ष्मी तिलक 7. भू तिलक 8. रंभा तिलक 9. इन्द्र तिलक 10. मन्दिर तिलक 11. हेमवान तिलक 12. कैलास तिलक 13. पृथ्वी तिलक 14. त्रिभुवन तिलक 15. इन्द्रनील तिलक 16. सर्वांग तिलक 17. सुरवल्लभ तिलक 18. सिंह तिलक 19. मकरध्वज तिलक 20. मंगल तिलक 21. तिलकाक्ष 22. पद्म तिलक 23. सोम तिलक 24. विजय तिलक 25. त्रैलोक्य तिलक।[71]

षष्ठम विभाग– यह विभाग केवल जिनेश्वर परमात्मा के प्रासाद से सम्बन्धित है। वास्तुसार प्रकरण में तीर्थंकर प्रभु के लिए अत्यन्त मंगलकारी सात प्रासादों का नामोल्लेख किया गया है और उन्हें परम श्रेष्ठ माना है। वे नाम इस प्रकार हैं– 1. श्री विजय 2. महापद्म 3. नंद्यावर्त्त 4. लक्ष्मी तिलक नरवेद 6. कमलहंस और 7. कुंजर।[72]

दीपार्णव आदि शिल्प ग्रन्थों में चौबीस तीर्थंकरों के मन्दिरों का सविस्तृत वर्णन किया गया है। इनमें चौबीस तीर्थंकरों से सम्बन्धित 72 जिनालयों का सचित्र वर्णन प्राप्त होता है। किस तीर्थंकर के प्रासाद में तल का विभाग, शिखर की सज्जा, श्रृंग संख्या, तिलक संख्या आदि कितनी होनी चाहिए? तद्विषयक जानकारी के लिए शिल्पकार, सोमपुरा एवं जिज्ञासु वर्ग को मूल ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए।[73] यहाँ इतना अवश्य ध्यान रखें कि जिनालय में मूलनायक के रूप में जिस तीर्थंकर की प्रतिमा विराजमान करना हो, मन्दिर उस तीर्थंकर के नाम के अनुरूप उसी जाति का बनाया जाये तो निर्माता एवं समाज दोनों के लिए परम मंगलकारी होता है।

उत्तर भारतीय नागर जाति की शैली के प्रासादों को शास्त्रकार 'वल्लभ' शब्द से सम्बोधित करते हैं इसलिए ऐसे जिनालय आज वल्लभी प्रासाद के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रासादों के प्रकार एवं उनकी उत्पत्ति के कारण

शिल्प सम्बन्धी ग्रन्थों में अनेकविध प्रासादों का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ प्रश्न होता है कि हजारों की संख्या में प्रासादों का उद्भव कैसे हुआ? शिल्प रत्नाकर में इसका वर्णन करते हुए कहा है कि ब्रह्मा के वचन का अनुसरण कर देवों के द्वारा पूजा करने से वैराज्य, पुष्प, कैलाश, मणिपुष्प और त्रिविष्टप– इन पाँच प्रासादों की उत्पत्ति हुई। यदि इन पाँच प्रासादों के अवान्तर भेदों की चर्चा करें तो वैराज्यादि 588, पुष्पकादि 300, कैलाशादि 500, मणिपुष्पादि 150 और त्रिविष्टयादि 350 प्रकार के होते हैं। वैराज्य आदि पाँच प्रासादों का अवान्तर भेदों के साथ जोड़ किया जाये तो कुल 1888 संख्या होती है।[74]

देवताओं के पश्चात दानवों के राजाओं ने महोत्सव पूर्वक पूजा की, उससे स्वस्तिक, सर्वतोभद्र, वर्धमान, सूत्रपद्म और महापद्म– ऐसे द्राविड़ जाति के पाँच प्रासाद उत्पन्न हुए। इनमें से प्रत्येक के 100-100 अवान्तर भेद हैं। इस प्रकार दानवों की पूजा से कुल 500 प्रासादों की उत्पत्ति हुई।[75]

गंधर्वों ने पाँच महोत्सव पूर्वक पूजा की, उससे रूचक, भव, पद्माक्ष, मलय और बक नामक लतिनादि जाति के पाँच प्रासाद उत्पन्न हुए। उनके अवान्तर भेद 25 हैं।[76]

इस प्रकार देव-दैत्य आदि के द्वारा पूजन करने से मूलत: 14 जातियाँ उत्पन्न हुई। उनके अवान्तर अगणित भेद हैं। इसकी संक्षिप्त सारणी निम्न हैं–[77]

किसके द्वारा	**मूल प्रासाद**	**अवान्तर प्रासाद**
• देवताओं के पूजन से नागर जाति के प्रासाद	5	1888
• दानवों के पूजन से द्राविडादि प्रासाद	5	500
• गंधर्वों के पूजन से लतिनादि प्रासाद	5	25
• यक्षों के पूजन से विमानादि प्रासाद	5	525
• विद्याधरों के पूजन से मिश्रकादि प्रासाद	5	118
• अष्ट वसुओं के पूजन से वराटकादि प्रासाद	5	112
• सर्पों के पूजन से सांधारादि प्रासाद	5/25	1250
• महाराजाओं के पूजन से भूमिजादि प्रासाद	3	625
• सूर्य नारायण पूजन से विमाननागरादि प्रासाद		
• चन्द्र के पूजन से विमान पुष्पकादि प्रासाद		
• पार्वती के पूजन से वलभ्यादि प्रासाद		
• हर सिद्धि आदि देवों द्वारा पूजन से सिंहावलोकन दारूजादि प्रासाद		
• पिशाचादि देवों के पूजन से फांसनादि और नपुंसकादि प्रासाद		

इस प्रकार उक्त चौदह जाति के प्रासाद वैराज्यादि प्रासादों में से उत्पन्न हुए जानना चाहिए।

उपरोक्त 14 प्रकारों में से 1. नागर आदि 2. द्राविड आदि 3. भूमिज आदि 4. लतिन आदि 5. सांधार आदि 6. विमान आदि 7. मिश्रक आदि और 8. पुष्पक आदि– ये आठ प्रकार के प्रासाद शुभ माने गये हैं।

प्रासादों की कुछ चित्राकृतियाँ निम्न प्रकार है–

किस लोक में कौनसी धातु के प्रासाद शुभ माने गये हैं? किस देश में कौनसी जाति के प्रासाद बनवाने चाहिए? कौन से प्रासाद किस वर्ण के होते हैं? किन देवों के लिए कौनसा प्रासाद श्रेष्ठ है? इत्यादि जानकारी के लिए शिल्प रत्नाकर अध्याय का अध्ययन करना चाहिए।[78]

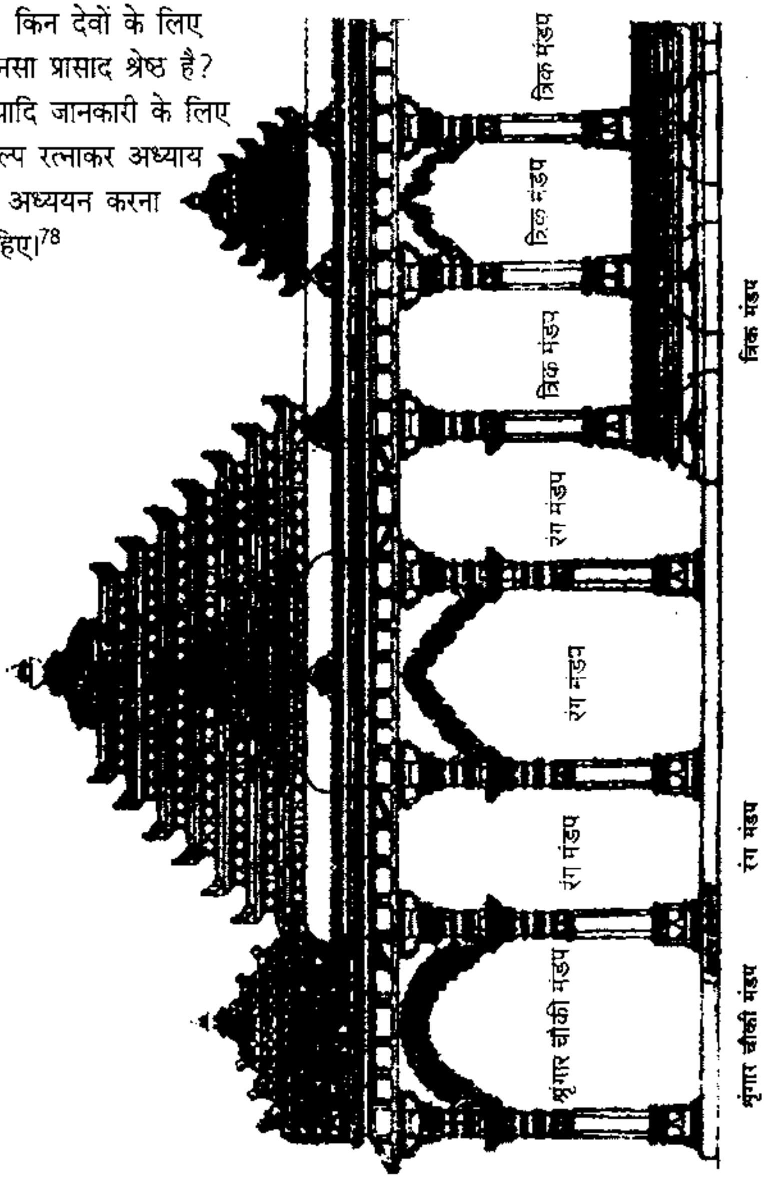

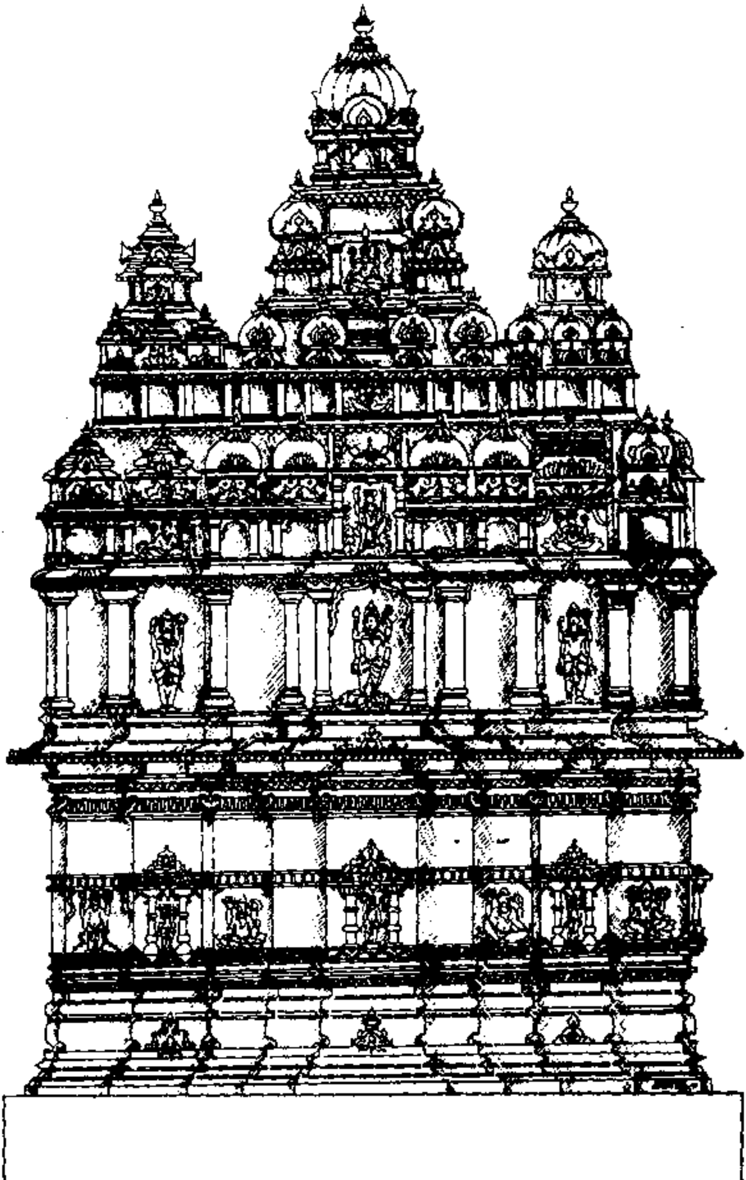

द्रविड़ जाति का चतुरस्त्र प्रासाद

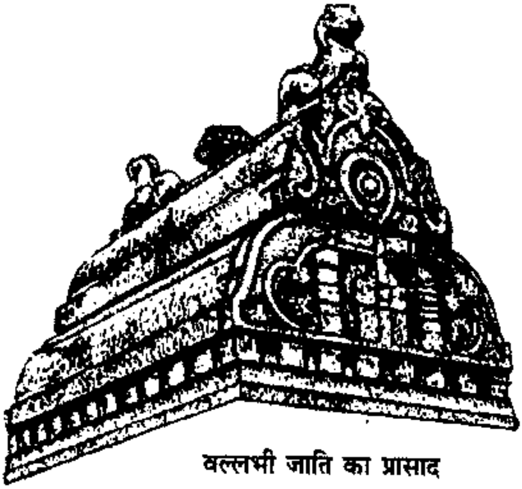

वल्लभी जाति का प्रासाद

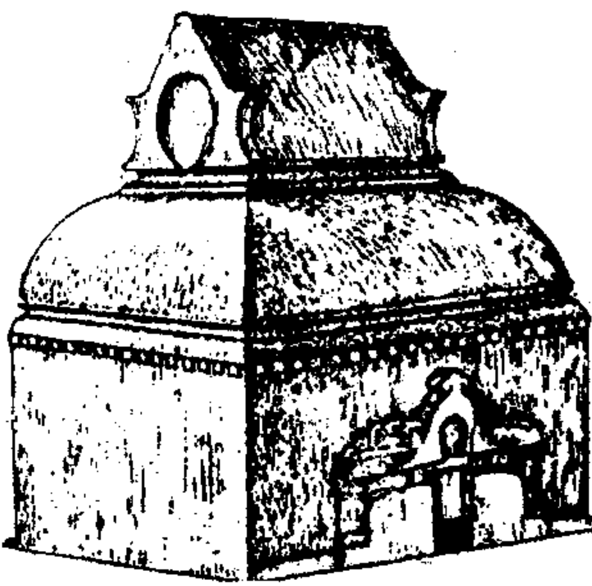

वल्लभी जाति का प्रासाद

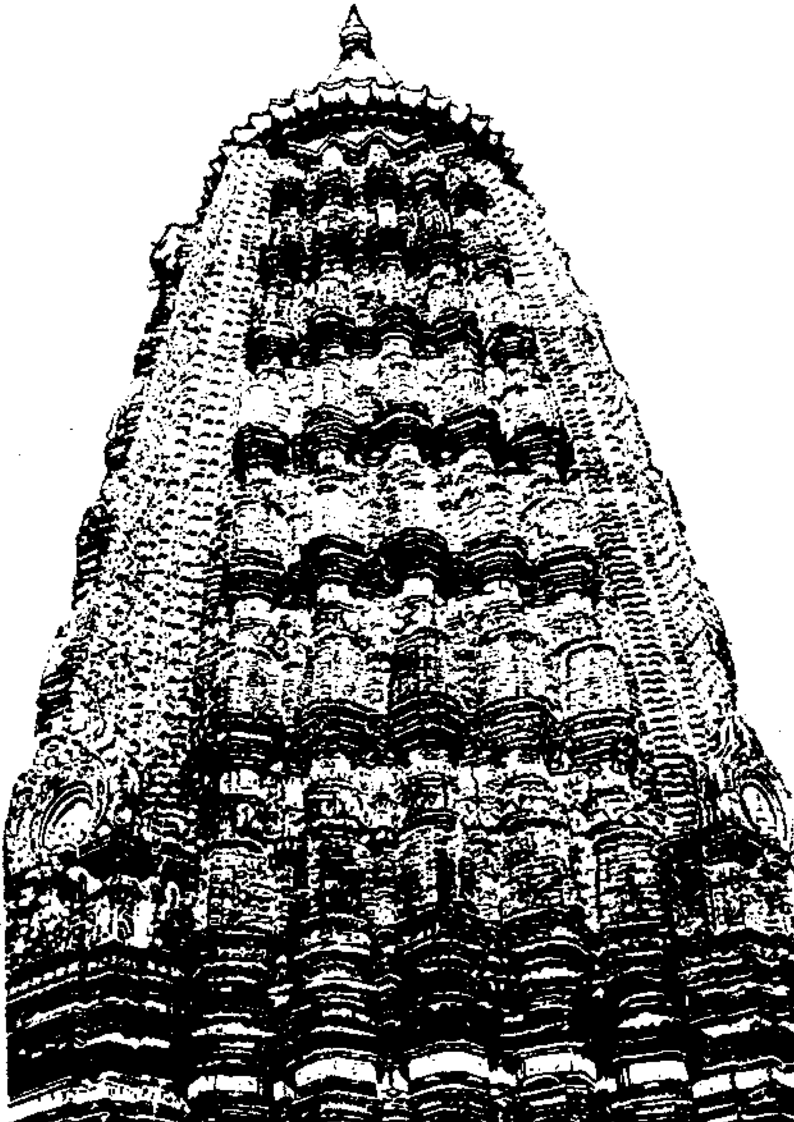

भूमिज जाति के प्रासाद का शिखर

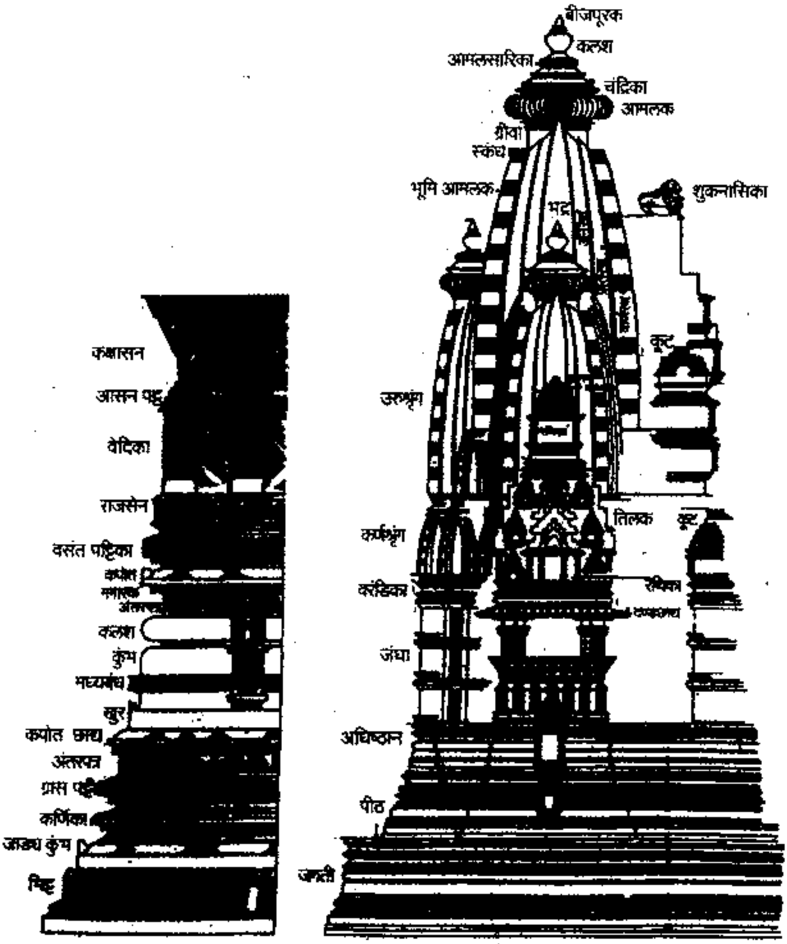
बीजपूरक
कलश
आमलसारिका
चंद्रिका
आमलक
ग्रीवा
स्कंध
भूमि आमलक
शुकनासिका
कूट
उरुश्रृंग
तिलक
कूट
कर्णश्रृंग
जंघा
अधिष्ठान
पीठ
जगती
कक्षासन
वेदिका
राजसेन
वसंत पट्टिका
कलश
कुंभ
खुर
अंतरपत्र
कर्णिका
जाड्य कुंभ

नागर जाति का प्रासाद

मन्दिर निर्माण सम्बन्धी सावधानियाँ

मन्दिर का निर्माण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसमें किसी प्रकार का वेध दोष न आये। वेध दोष कई प्रकार के होते हैं और उनका प्रत्यक्ष फल भी देखा जाता है। उपाश्रय आदि धार्मिक भवनों के निर्माण में भी इन दोषों का परिहार करना चाहिए।

वेध दोष के प्रकार एवं उनका फल

वास्तुसार प्रकरण के अनुसार वेध दोष के प्रकारादि का वर्णन इस प्रकार है-

1. **तल वेध-** जिस भूमि पर चैत्य का निर्माण करवाया जा रहा हो, वह समतल होनी चाहिए। ऊबड़-खाबड़ या गड्डे वाली भूमि होने पर तल वेध नामक दोष आता है और उस भूमि पर किया गया निर्माण अशुभ होता है।
2. **कोण वेध-** यदि वास्तु में कोने समकोण 90^0 के न होकर न्यून अथवा अधिक हों तो उसे कोण वेध कहते हैं। इस दोष युक्त भूमि पर चैत्य का निर्माण करवाने से उस गाँव के परिवारों में निरन्तर अशुभ घटनाएँ, परेशानियाँ, वाहन दुर्घटना इत्यादि की संभावना होती है।
3. **तालू वेध-** मन्दिर की दीवारों के पीढ़े अथवा खूंटी ऊँची-नीची होने पर तालु वेध होता है। इससे अनायास गाँव और समाज में चोरी का भय उत्पन्न होता है।
4. **शिर वेध-** मन्दिर के किसी द्वार के ऊपर मध्य भाग में खूंटी आदि लगाने से शिर वेध होता है। इससे समाज में दरिद्रता तथा शारीरिक एवं मानसिक संताप बना रहता है।
5. **हृदय वेध-** मन्दिर के ठीक मध्य में स्तम्भ होने पर हृदय वेध होता है। इससे समाज में कुल क्षय, वंश नाश आदि परेशानियाँ बनी रहती है।
6. **तुला वेध-** मन्दिर में विषम संख्या में खूंटी अथवा पीढ़े हो तो उसे तुला वेध कहते हैं। इसके दुष्प्रभाव से समाज में अशुभ घटनाओं की सम्भावनाएँ बनी रहती है।
7. **द्वार वेध-** मन्दिर द्वार के ठीक सामने अथवा मध्य में स्तम्भ अथवा वृक्ष हो तो उसे द्वार वेध कहते हैं। किसी अन्य गृह अथवा मन्दिर का कोना

द्वार के सामने पड़ता हो तो भी द्वार वेध होता है। यह दोष भी संघ के लिए हानिकारक है।

8. मन्दिर के सामने कीचड़ हो अथवा सूअर आदि निम्न श्रेणी के पशु बैठे रहते हों तो महादोष है। इससे शोक उत्पन्न होता है।
9. किसी के घर का रास्ता मन्दिर से होकर जाता हो अथवा किसी घर के गन्दे पानी के निकास की नाली मन्दिर द्वार के सामने से जाती हो तो भी अत्यंत अशुभ होता है और वह समाज के लिए क्षतिकारक है।
10. मन्दिर के मुख्य द्वार से अन्य वास्तु का मार्ग जाना भी हानिकारक माना गया है।

संख्या के अनुसार वेध दोष का फल

- यदि जिनालय एक वेध से दूषित हो तो पारस्परिक कलह का कारण बनता है।
- यदि जिनालय दो वेध से दूषित हो तो अतिहानि होती है।
- यदि जिनालय तीन वेध से दूषित हो तो मन्दिर में सूनापन रहता है और वहाँ भूत-प्रेत निवास करते हैं।
- यदि जिनालय चार वेध से दूषित हो तो मन्दिर की सम्पत्ति नष्ट होती है।
- यदि जिनालय पाँच वेध से दूषित हो तो गाँव ही उजड़ जाता है तथा महामारी आदि महान उत्पात होने की सम्भावना रहती है।

द्वार वेध का विचार

मुख्य द्वार के समक्ष जो संरचना मन्दिर आदि के लिए अकल्याणकारी होती है उसे द्वार वेध कहते हैं। इससे सम्बन्धित दोष एवं उनका फल यह है–

1. यदि मुख्य द्वार के नीचे पानी के निकलने का मार्ग हो तो वह वेध निरन्तर धन के अपव्यय का कारण बनता है।
2. द्वार के सामने निरन्तर कीचड़ जमा रहे तो इससे समाज में शोक पूर्ण घटना क्रम होते हैं।
3. यदि द्वार के समक्ष वृक्ष आ जाये तो यह वेध बच्चों एवं संतति के लिए कष्टकारक होता है।
4. यदि द्वार के सम्मुख कुआँ, नलकूप आदि जलाशय हो तो रोगकारक एवं अशुभ होता है।

5. यदि द्वार के ठीक सामने से मार्ग आरम्भ होता है तो यह यजमान एवं मन्दिर निर्माता के लिए अति अशुभ एवं विनाशकारी हो सकता है।
6. द्वार में छिद्र धनहानि का सूचक है।

मन्दिर निर्माण का कार्य करने से पूर्व ही वेध दोष के परिहार का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

यहाँ ध्यातव्य है कि यदि मुख्य द्वार की ऊँचाई से दुगुनी दूरी छोड़कर कोई वेध हो तो वह प्रभावकारी नहीं होता।

इसी भाँति द्वार एवं वेध के मध्य प्रमुख मार्ग हो जिस पर निरन्तर आवागमन होता हो तो भी वेध का दुष्प्रभाव नहीं रहता है। जिस तरह गृह भवन का निर्माण करते समय वेध विचार एवं उसका परिहार किया जाता है उसी तरह प्रासाद के निर्माण के समय भी वेध परिहार करना अत्यन्त आवश्यक है।

जिनालय के परिसर में होनी वाली अशुभताएँ एवं अपशकुन

जैन ज्योतिष शास्त्र में जिनालय की पवित्रता बनी रहे, इस सन्दर्भ में शकुन विचार भी किया गया है। इस शास्त्र के अनुसार मंदिर परिसर में निम्न लक्षण उपस्थित होने पर उनका परिहार करना चाहिए, अन्यथा अनेक दोषों की संभावनाएँ रहती है–

1. देव शिल्प में कहा गया है कि मन्दिर में मधुमक्खी का छत्ता लगने पर, कुकुरमुत्ता होने पर एवं खरगोश के प्रवेश करने पर छह माह का दोष रहता है। गिद्ध पक्षी, कौआ, उल्लु एवं चमगादड़ आदि मंदिर में प्रवेश कर जाए तो पंद्रह दिन तक दोष रहता है तथा गोह के प्रवेश करने पर तीन माह तक दोष रहता है।
2. प्रासाद की छत पर, दरवाजे पर, दीवारों पर अथवा झरोखों में एकाएक टिड्डियाँ या मधुमक्खियाँ आकर गिर जाती हैं तो भय, शोक, कलह, जनहानि आदि कष्ट हो सकते हैं।
3. यदि मन्दिर में उल्लू या बाज पक्षी घोंसले बनाकर रहे तो इससे समाज में दरिद्रता आती है।
4. यदि मन्दिर में बिल्ली या कुतिया प्रसव कर दें तो संघ के वरिष्ठ सदस्य की मृत्यु संभावना होती है।
5. यदि मन्दिर में अग्नि के बिना ही धुएं जैसा वातावरण प्रतीत हो तो इससे समाज में कलह एवं अशान्ति का वातावरण बनता है।

6. यदि कौआ मन्दिर में हड्डी-मांस गिराए तो समाज में अमंगल, विवाद एवं मन्दिर में चोरी की संभावना होती है।
7. मन्दिर का कलश अथवा ध्वज यदि अचानक टूटकर गिर जाए तो अनेकों उपद्रव की संभावना रहती है।
8. यदि मन्दिर का मुख्य द्वार अचानक गिर जाये तो यह महान अनिष्ट कारक है इसे संघ प्रमुख व्यक्ति के मरण का संकेत माना गया है।
9. यदि मूर्ति एवं मन्दिर में से अकस्मात जलधारा बहती हुई दिखाई दे तो इसे राष्ट्र विप्लव का सूचक कहा गया है।[79]
10. रूप मंडल के अनुसार यदि ऐसा आभास हो कि देव प्रतिमा नाच रही है, रो रही है, हंस रही है अथवा नेत्रों को खोल-बन्द कर रही है तो समझना चाहिए कि महाभय है। इसे अत्यन्त अशुभ संकेत माना गया है।[80]

ऊपर वर्णित अशुभ प्रसंगों के उपस्थित होने पर आचार्य आदि विद्वज्ञों से परामर्श कर उसका अविलम्ब परिहार करना चाहिए।

जिनालय में संभावित महादोष

प्रासाद मंडन एवं शिल्प रत्नाकर के अनुसार यदि मन्दिर में निम्नलिखित सात प्रकार की स्थितियाँ घटित होती है तो उन्हें महादोष के रूप में मानना चाहिए और उनका विधि पूर्वक निराकरण करना आवश्यक है–

1. मन्दिर के दीवारों से चूना उतर गया हो।
2. मकड़ी के जाले लगे हो।
3. मन्दिर के दीवारों या थंभों पर कीलें लगी हो।
4. मन्दिर के किसी भी भाग में पोलापन हो गया हो।
5. छेद पड़ गये हों।
6. मन्दिर के किसी भाग विशेष में सांध एवं दरारें दिखती हो।
7. मन्दिर को कारागृह में परिवर्तित कर दिया गया हो।[81]

जिनालय निर्माण में संभावित वास्तु दोष

गृह भवनों के समान ही मन्दिरों का निर्माण करते समय भी किसी तरह के वास्तु दोष की संभावना न रह जाये, यह ध्यान रखना आवश्यक है। यदि निर्माण काल के दौरान वास्तु दोष का पता चल जाये तो शिल्पज्ञों से परामर्श कर उसका तत्काल निराकरण कर देना चाहिए। इस विषय में सावधानी न रखने

पर मन्दिर निर्माता, निर्माण शिल्पी और समाज भी दीर्घ काल तक कष्ट पाता है।

शिल्पियों की अज्ञानता एवं असावधानी से निम्नोक्त कुछ दोषों का होना संभव है–

दिग्मूढ़ दोष एवं उसका फल– दिग्मूढ़ दोष से तात्पर्य है कि मूल दिशाओं से हटकर वास्तु का निर्माण करना। जैसे कि पूर्व-पश्चिम दिशा की लम्बाई में मन्दिर बना हो और उसका प्रवेश द्वार अथवा प्रतिमा का मुख, आग्नेय अथवा वायव्य की ओर हो जाये तो यह महा अनर्थकारी है। ऐसा होने पर मन्दिर निर्माता, प्रतिष्ठाकारक या समाज के प्रमुख सदस्य को स्त्री मरण का कष्ट होता है। यदि जिनालय उत्तर-दक्षिण दिशा की लम्बाई में बना हो और उसका प्रवेश द्वार अथवा प्रतिमा का मुख आग्नेय अथवा वायव्य की तरफ हो जाए तो मन्दिर निर्माता, प्रतिष्ठाकारक समाज के प्रमुख सदस्यों के लिए महा अनिष्टकारी एवं सर्व विनाश का कारण होता है। अतएव मन्दिर निर्माण करते समय दिग्मूढ़ दोष का सतर्कता पूर्वक निराकरण करें।[82]

छाया भेद दोष– प्रासाद की ऊँचाई एवं चौड़ाई के अनुसार बायीं और दाहिनी तरफ की जगती का मान होना चाहिए। ऐसा न होने पर छाया भेद दोष होता है।[83]

छन्द भेद दोष एवं उसका फल– जैसे छन्दों में गुरु-लघु यथास्थान न होने पर छन्द दूषित होता है उसी प्रकार प्रासाद की अंग विभक्ति शास्त्र नियमानुसार न करने पर प्रासाद दूषित होता है। इससे स्त्री मृत्यु, शोक, संतापादि होता है तथा पुत्र, पति एवं धन का क्षय होता है। मन्दिर वास्तु का निर्माण करते समय यदि पद लोप, दिशा लोप अथवा गर्भ लोप हो तो मन्दिर निर्माता एवं निर्माण कर्त्ता (बनाने वाला और बनवाने वाला) दोनों ही अधोगति को प्राप्त होते हैं।

जिनालय में स्तम्भों के पाषाणों का थर भंग होने पर शासन देव कुपित होते हैं तथा शिल्पी का मरण होता है अतएव शास्त्र विधियुक्त मंदिर निर्माण करवाना चाहिए।[84]

प्रमाण दोष एवं उसके फल– मन्दिर का निर्माण शास्त्रोक्त विधि के अनुसार प्रमाणोपेत होना चाहिए। यदि प्रमाण से विरुद्ध कम-ज्यादा हो तो नाना प्रकार के संकटों का कारण बनता है। प्रमाण से युक्त मन्दिर आयु, सौभाग्य एवं पुत्र-पौत्र आदि संतति दायक होता है।

1. प्रासाद मंडन आदि शिल्प ग्रन्थों के अनुसार यदि जिन प्रासाद प्रमाण हीन होता है तो अनपेक्षित परेशानियों का आगमन होता है।
2. यदि प्रासाद की पीठ प्रमाण हीन हो तो मन्दिर निर्माता को वाहन हानि एवं दुर्घटना की आशंका होती है।
3. यदि मंदिर के रथ, उपरथ आदि अंग प्रमाण से हीन हो तो समाज को पीड़ादायक होता है।
4. यदि प्रासाद की जंघा प्रमाण से हीन हो तो मन्दिर निर्माता एवं समाज के लिए हानिकारक है।
5. यदि मन्दिर का शिखर प्रमाण हीन (कम ऊँचा) हो तो पुत्र-पौत्र धन की हानि एवं रोगों की उत्पत्ति होती है तथा प्रमाण से ऊँचाई में अधिक हो तो निर्माता के उल्लास का कारक होता है।
6. यदि मन्दिर का द्वार मान हीन हो तो धन क्षय होता है।
7. यदि स्तम्भ अपद में हो तो रोगोत्पत्ति होती है।[85]

वास्तु पुरुष की स्थापना क्यों और कहाँ?

किसी भी वास्तु संरचना का निर्माण करने से पूर्व उसका मानचित्र बनाकर एक संकल्पना तैयार की जाती है। जिस भूखण्ड पर मन्दिर वास्तु का निर्माण करना हो वहाँ स्तम्भ, दीवार या द्वार आदि कहाँ बनायें और कहाँ नहीं? इसका निर्णय करने के लिए अनुभवी शास्त्रकारों ने वास्तु पुरुष मंडल की संयोजना दी है। उसके लिए निर्धारित भूमि पर उसका मानचित्र बनाकर उसमें वास्तु पुरुष की आकृति बनाई जाती है।

वास्तु पुरुष की आकृति इस प्रकार बनायें कि एक औंधा गिरा हुआ पुरुष जिसकी दोनों जानु एवं हाथ की कोहनियाँ वायु कोण और अग्नि कोण में आयें तथा चरण नैऋत्य कोण में और मस्तक ईशान कोण से आये।

इस आकृति के मर्म स्थानों अर्थात मुख, हृदय, नाभि, मस्तक, स्तन एवं लिंग के स्थान पर दीवार, स्तम्भ या द्वार नहीं बनाना चाहिए।

वास्तु पुरुष में स्थित देवताओं को यथायोग्य नैवेद्य अर्पण कर उन्हें सन्तुष्ट रखना चाहिए।

जैनेतर पुराणों में वास्तु पुरुष की उत्पत्ति महादेव के पसीने की बूंद से बताई जाती है तथा उसकी शान्ति के लिए उस पर स्थित देवताओं को विधि पूर्वक बलि देने का विधान किया गया है।

वास्तु पुरुष चित्र

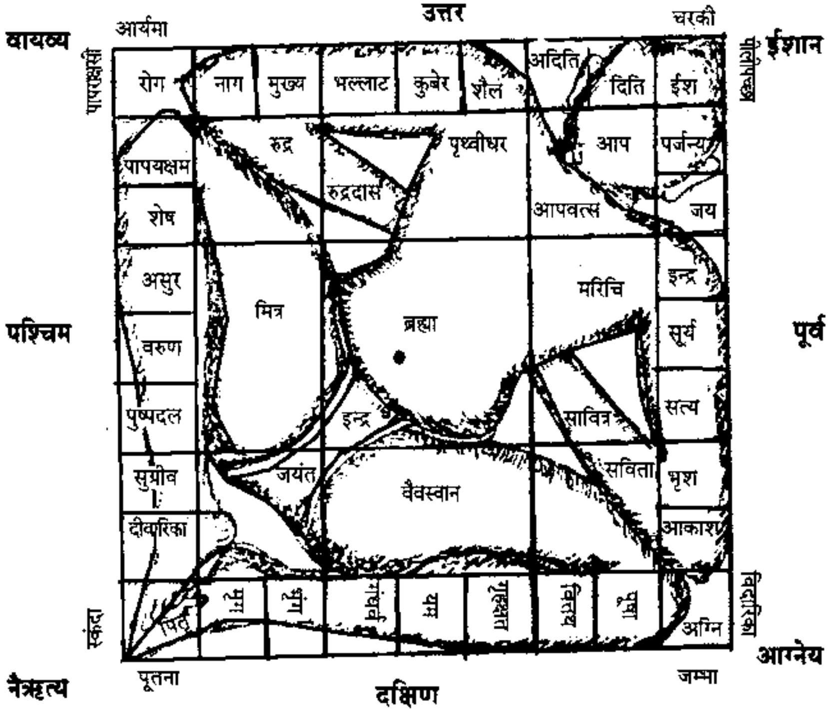

वास्तु पुरुष मंडल में स्थित देवों के नाम

प्रासाद मंडन के अनुसार वास्तु मंडल में 45 देवों की उपस्थिति रहती है उनकी दिशा एवं पुरुष के अंगोपांग स्थान पर इस प्रकार हैं–

ईशान कोण में	ईश
दोनों कान पर	पर्जन्य दिति
गला	आप
दोनों कंधे	दिति-अदिति
दोनों स्तन	आर्यमा-पृथ्वीधर
हृदय	आपवत्स
दाहिनी भुजा	इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश व आकाश
बायीं भुजा	नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर, शैल
दाहिना हाथ	सावित्र-सविता

बायां हाथ	रूद्र-रूद्र दास
जंघा	मृत्यु-मैत्र देव
नाभि का पृष्ठ भाग	ब्रह्मा
गुह्येन्द्रिय स्थान	इन्द्र + जय
दोनों घुटने	अग्नि-रोग देव
दायें पाँव की नली	पूषा, वित्तथ, गृहक्षत, यम, गंधर्व, भृंगमृगमृग
बायें पाँव की नली	नंदी, सुग्रीव, पुष्पदंत, वरुण, असुर, शेष, पापयक्ष्मा
पाँव	पितृदेव

वास्तु मंडल में उक्त देवों के अतिरिक्त दिशा-विदिशाओं के बाह्य भाग पर आठ देवियाँ निवास करती हैं उनका क्रम निम्न प्रकार है–

ईशान कोण में चरकी, पूर्व दिशा में पीली पीछा, अग्नि कोण में विदारिका, दक्षिण दिशा में जम्भादेवी, नैऋर्त्य कोण में पूतना, पश्चिम दिशा में स्कन्दा, वायु कोण में पापा राक्षसिका, उत्तर दिशा में अर्यमा देवी। इस वास्तु मंडल पर वास्तु शांति पूजन करना चाहिए।[86]

जिन मन्दिर निर्माण अनेक जिम्मेदारियों से युक्त एक विशाल कार्य माना जाता है। एक घर जिसका नवीनिकरण 10-15 वर्षों में होना ही है उसके निर्माण में हजारों बातों का ध्यान रखा जाता है तो फिर मन्दिर जो कि सैकड़ों वर्षों के लिए बनाया जाता है उसमें कितनी अधिक सावधानी अपेक्षित हो सकती है यह सहज सिद्ध है। मन्दिर का एक-एक भाग साधक के मनो-मस्तिष्क को प्रभावित करता है और उसमें रही छोटी सी चूक उसके असर को न्यून कर देती है। छठवें अध्याय के माध्यम से श्रावक वर्ग मन्दिर सम्बन्धी सूक्ष्मताओं को जान सकें एवं निर्माण काल में सचेत रहकर सुंदर एवं प्रभावशाली जिनमन्दिरों का निर्माण कर सकें यही अन्तर प्रयास।

सन्दर्भ-सूची

1. *जिणभवण कारावण विही, सुद्धा भूमी दलं च कट्ठाई।*
भियगाणइ संधाणं, सासयवुड्डी य जयणा य॥
पंचाशकप्रकरण, 7/9

2. (क) द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, 5/3
   (ख) षोडशक प्रकरण, 6/4
   (ग) पंचाशक प्रकरण, 7/10
3. द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, 5/4
4. वही, 5/5
5. शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगंधा ।
   स्निग्धा समा न सुषिरा च मही नराणाम् ॥
   अप्य ध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां ।
   धत्ते श्रियं किमुत शाश्वत मन्दिरेषु ॥
   बृहत्संहिता, 52/86
6. दिणतिग वीयप्पसवा, चउरंसाऽवम्मिणी अफुट्टाय ।
   अक्कल्लर भू सुहया, पुव्वेसाणुत्तरं बुवहा ॥
   वास्तुसार, 1/9
7. देव शिल्प, पृ. 28
8. वही, पृ. 24
9. वास्तुसार प्रकरण, 1/10
10. देव शिल्प, पृ. 29
11. पंचाशक प्रकरण, 7/11-12
12. चउवीसंगुल भूमी खणेवि, पूरिज्ज पुण वि सा गत्ता ।
    तेणेव मट्टियाए, हीणाहिय सम फला णेया ॥
    (क) वास्तुसार, 1/3
    (ख) शिल्प रत्नाकर, 3/85
13. अह सा भरिय जलेण व, चरणसयं गच्छमाण जो सुमइ ।
    ति दु इग अंगुल भूमी, अहम मज्झम उत्तमाजाण ॥
    (क) वास्तुसार, 1/4
    (ख) शिल्प रत्नाकर, 3/86-87
14. प्रतिष्ठा रत्नाकर, 3/12
15. देव शिल्प, पृ. 30
16. (क) देव शिल्प, पृ. 32-33
    (ख) वास्तुसार प्रकरण, 1/11-12

17. वास्तुसार प्रकरण, पृ. 1/13-17
18. देव शिल्प, 33-34
19. पंचाशक प्रकरण, 7/13
20. (क) षोडशक प्रकरण, 6/7
(ख) द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, 5/6
21. (क) षोडशक प्रकरण, 6/8
(ख) पंचाशक प्रकरण, 7/17
22. (क) षोडशक प्रकरण, 6/9
(ख) पंचाशक प्रकरण, 7/18
23. पंचाशक प्रकरण, 7/19
24. वही, 7/20
25. पंचाशक प्रकरण, 7/21
26. वही, 7/22-23
27. (क) षोडशक प्रकरण, 6/10-11
(ख) द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका, 5/7
28. पंचाशक प्रकरण, 7/25-26
29. वही, 7/27-28
30. वही, 7/29
31. वही, 7/30-31
32. वही, 7/32, 35
33. वही, 7/42
34. षोडशक प्रकरण, 6/16
35. पुव्वेसाणुत्तरं बुवहा। वास्तुसार, 1/9 उत्तरार्ध
36. पूर्व प्लवो वृद्धिकरो, धनदश्चोत्तरे तथा।
याम्यां रोगप्रदो ज्ञेयो, धनहा पश्चिम प्लवः ॥
ईशान्ये प्रागुदकप्लव, स्त्वत्यन्त वृद्धिद्रोनृणाम्।
अन्यादिक्षु प्लवो नेष्ट, शश्वदत्यन्त हानिदः ॥
वृहद्वास्तुमाला, श्लो. 31-32
37. पूर्वापर मुखे द्वारे प्रणालं शुभमुत्तरे।
प्रासादमंडन, 2/35 पूर्वार्ध

38. *पूर्वापरं यदा द्वारं प्रणालं चोत्तरे शुभम्....*
जैन मुक्ता: समस्ताश्च, याम्योत्तर क्रमै: स्थिता: ।
वाम दक्षिण योगेन, कर्त्तव्यं सर्व कामदम् ।।
अपराजित पृच्छासूत्र, 108

39. *पूर्वापरस्य प्रासादे, नालं सौम्ये प्रकारयेत् ।*
तत् पूर्वे याम्यसौम्यास्ये, मण्डपे वाम दक्षिणे ।।
प्रासादमंजरी, 50

40. *मण्डपे ये स्थिता देवस, तेषां वामे च दक्षिणे ।*
प्रणालं कारयेद् धीमान्, जगत्यां च चतुर्दशम् ।।
प्रासादमंडन, 2/36

41. *जगई अ भित्ति उदए छज्जइ सम चउदिसेहिं पि*
वास्तुसार प्रकरण, 3/54

42. *दीपालयं प्रकर्त्तव्यं, ग्रहस्य दक्षिणांगके ।*
वामांगे तु न कर्त्तव्यं, स्वामियशः सुखापहम् ।।
शिल्प रत्नाकर, 3/123

43. *स्नानं पूर्वमुखी भूय, प्रतीच्यां दन्त धावनम् ।*
उदीच्यां श्वेतवस्त्राणि, पूजा पूर्वोत्तरामुखी ।।
उमास्वामी श्रावकाचार, 97

44. *शिल्प रत्नाकर, 4/30-32*

45. *प्रासाद मंडन, 2/25, 8/33, 8/35-36*

46. *देवशिल्प, 85-86*

47. *प्रासादानामधिष्ठानं, जगती सा निगद्यते ।*
यथा सिंहासनं राज्ञः, प्रासादस्य तथैव सा ।।
प्रासादमंडन, 2/1

48. *वही, 2/15-18*

49. *गजपीठं विना स्वल्प, द्रव्ये पुण्यं महत्तरम् ।*
जाड्यकुम्भश्च कर्णाली, ग्रास पट्टी तदा भवेत् ।।
कामदं कणपीठं च, जाड्यकुम्भश्च कर्णिका ।
लतिने निर्गमं हीनं, सान्धारे निर्गमाधिकम् ।।
प्रासाद मंडन, 3/12-13

50. वही, 3/68
51. वास्तु विद्या, अधिकार छटवाँ
52. शुचीमुखं भवेत्छीद्रं, पृष्ठे यदा करोति च ।
प्रासादे न भवेत् पूजा, गृहे क्रीडन्ति राक्षसाः ।
शिल्प दीपक, 4/30
53. गूढ़स्त्रिकस्तथा नृत्यः, क्रमेण मण्डपास्त्रयः ।
जिनस्याग्रे प्रकर्त्तव्याः, सर्वेषां तु बलाणकम् ।।
प्रासादमंडन, 7/3
54. प्रासादमंडन, 3/56
55. बलाणं देवगेहाग्रे, राजद्वारे गृहे पुरे ।
जलाश्रयेऽथ कर्त्तव्यं, सर्वेषां मुखमण्डपम् ।।
प्रासाद मंडन, 7/38
56. वही, 7/43-46
57. वही, 7/47
58. प्रासाद मंडन, अध्याय चौथा
59. वेदी चतुर्विधा तत्र, चतुरस्रा च पद्मिनी ।
श्री धरी सर्वतो भद्रा, दीक्षासु स्थापनादिषु ।।
चतुरस्रा चतुःकोणा, वेदी सौख्य फलप्रदा ।
केचिच्चैत्य प्रतिष्ठायां, पद्मिनी पद्मसंनिभा ।।
जयसेन प्रतिष्ठापाठ, श्लो. 228-229
60. प्रासादमंडन, पांचवाँ अध्याय
61. केसरी सर्वतो भद्रो, नन्दनो नन्दशालिकः ।
नन्दीशो मन्दरश्चैव, श्री वृक्षश्चामृतोद्भवः ।।
हिमवान् हेमकूटश्च, कैलासः पृथिवीजयः ।
इन्द्रनीलो महानीलो, भूधरो रत्न कूटकः ।।
वैडूर्यः पद्मरागश्च, वज्रको मुकुटोज्ज्वलः ।
ऐरावतो राजहंसो, गरुडो वृषभध्वजः ।।
(क) प्रासाद मंडन, 6/1-3
(ख) शिल्प रत्नाकर, 6/5-8

62. प्रासाद मंडन, 6/27
63. वही, 6/28
64. वही, 6/29
65. वही, 6/30
66. वही, 6/34
67. वही, 6/31-32
68. वही, 6/35-46
69. वही, 6/45-46
70. शिल्प रत्नाकर, 7/106-107
71. तिलकसागरश्चाद्यो, गौरीतिलकरूद्रकौ ।
श्रीतिलको हरिश्चैव, लक्ष्मीभूतिलकौ तथा ।।
रंभातिलक इन्द्रश्च, मंदिरो हेमवांस्तथा ।
कैलासतिलकः पृथ्वी, तिलकश्च त्रयोदशः ।।
त्रिभुवनेन्द्रनीलौ च, सर्वांगतिलकस्तथा ।
सुरवल्लभनामा च, सिंहश्च मकरध्वजः ।।
मंगलस्तिलकाक्षश्च, पद्मकः सोमकस्तथा ।
विजयतिलकश्चैव, त्रैलोक्यतिलकस्तथा ।।
पंचविंश इमे प्रोक्ताः, प्रासादास्तिलकाभिधाः ।
तिलकसागरनाम्ना, प्रसिद्धा भुवनोत्तमाः ।।
शिल्प रत्नाकर, 7/7-11
72. सिरिविजय महापउमो, नंदावत्तो अ लच्छि तिलओ अ ।
नरवेय कमल हंसो, कुंजरपासाय सत्त जिणे ।।
वास्तुसार प्रकरण, 3/5
73. (क) वास्तुसार प्रकरण, पृ. 103
(ख) देव शिल्प, पृ. 427-461
(ग) शिल्प रत्नाकर, 8/12-24
74. शिल्प रत्नाकर, 2/11-14
75. वही, 2/15-17
76. वही, 2/18-20

77. *सुरैस्तु नागरा: ख्याता, द्राविडा दान वेन्द्रकै: ।*
लतिना: किन्न गन्धर्वै, यक्षैश्चापि विमानजा: ।।
विद्याधरैस्तथा मिश्रा, वसुभिश्च वराटका: ।
उरगैश्चैव सांधारा, नृपै रम्यास्तु भूमिजा: ।।
विमाननागरच्छंदा:, सूर्यलोक समुद्भवा: ।
चंद्रलोक समुत्पन्ना:, छंदा विमान पुष्पका: ।।
पार्वति संभवा: सेना, वल्भ्याकार संस्थिता: ।
हरसिद्ध्यादिदेविभि, र्जाता: सिंहावलोकना: ।।
व्यन्तरावस्थितैर्देवै:, फांसनाकारिणो मता: ।
नपुंसकाश्च विज्ञेया:, सर्वे वैराग्य संभवा: ।।
शिल्प रत्नाकर, 2/40-44

78. *शिल्प रत्नाकर, 2/45-75*
79. *देव शिल्प, पृ. 367*
80. *नर्त्तनं रोदनं हास्य, मुन्मीलननिमीलने ।*
देवा यत्र प्रकुर्वन्ति, तत्र विद्यान्महाभयम् ।।
रूपमंडन, 1/19
81. *मंडलं जालकं चैव, कीलं सुषिरं तथा ।*
छिद्रं सन्धिश्च काराश्च, महादोषा इति स्मृता ।।
(क) प्रासाद मंडन, 8/16
(ख) शिल्प रत्नाकर, 5/132
82. *शिल्प रत्नाकर, 5/126-129*
83. *प्रासाद मंडन, 8/28*
84. *शिल्प रत्नाकर, 5/147, 152*
85. *(क) प्रासाद मंडन, 8/22-26*
(ख) शिल्प रत्नाकर, 12/147-148
86. *प्रासादमंडन, 8/103-111*

●

अध्याय-7

जिनबिम्ब निर्माण की शास्त्रविहित विधि

कोई व्यक्ति विशेष अथवा संघ विशेष जब मन्दिर निर्माण का निर्णय करता है तब सबसे पहले यह निर्धारण करना भी आवश्यक है कि कार्य किस सूत्रधार या शिल्पकार के निर्देशन में करवाया जाये। उसमें भी मुख्य रूप से जिनबिम्ब का निर्माण किसके द्वारा करवाया जाये।

शिल्पकार कैसा हो?

जिनमन्दिर एवं जिनबिम्ब का निर्माण सामान्य नहीं है इसलिए गुणसम्पन्न शिल्पी के हाथों में यह कार्य सुपुर्द करना चाहिए।

शिल्परत्नाकर के अनुसार जो सुशील हो, चतुर हो, कार्यकुशल हो, शिल्पशास्त्र का ज्ञाता हो, निर्लोभी हो, क्षमाशील हो और ब्राह्मण हो– इन विशेषताओं से युक्त व्यक्ति को योग्य शिल्पकार मानना चाहिए।[1]

शिल्पकार के लिए यह आवश्यक है कि वह शिल्पशास्त्र की आधुनिक एवं प्राचीन शैलियों से सुपरिचित हो। साथ ही आधुनिक शैली के बेहतर साधनों को अपनाने में भी सिद्धहस्त हो।

सूत्रधार को कार्यकुशल होना और भी जरूरी है। वह केवल वास्तु निर्माण की योजना ही नहीं बनाता अपितु उसे क्रियान्वित करके मन्दिर भी तैयार करता है। उसे लम्बे समय तक शिक्षित, अल्पशिक्षित अथवा अशिक्षित कार्यकर्ताओं एवं श्रमिकों से काम करवाना होता है। कारीगरों आदि की संख्या भी सामान्यतः काफी होती है। एक सुयोग्य सूत्रधार ही उनकी समुचित व्यवस्था कर सकता है।

सूत्रधार प्रतिभावान होना चाहिए। उसकी कल्पना शक्ति और विशिष्ट प्रज्ञा ही यह निर्णय करती है कि मन्दिर किस शैली का, किस आकार का और किस प्रकार के कलात्मक चित्रों से युक्त होगा। सूत्रधार संजोयी कल्पना को यथावत प्रत्यक्ष रूप भी प्रदान करता है। उसे अपनी वास्तुकला से गहरा लगाव होता है। जिस तरह एक पिता अपने गुणों एवं विद्या आदि शक्तियों को पुत्र में आरोपित कर उसे स्वयं से भी श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न करता है। उसी प्रकार प्रतिभासम्पन्न

शिल्पकार भी अपनी पूर्ण योग्यता को नवनिर्मित जिनालय, प्रतिमा एवं शिखर आदि में उड़ेल देता है।

शिल्पकार को शीलनिष्ठ और सदाचारनिष्ठ होना चाहिए। उसे अपने मालिक के प्रति ईमानदारी, योजना के अनुरूप कार्यनिष्ठता, दायित्व निर्वहन की सद्भावना आदि नियमों का प्रतिपालक होना चाहिए। यदि सूत्रधार चरित्रहीन हो तो उसके द्वारा निर्मित मूर्ति आदि पर भी वैसा ही दुष्प्रभाव पड़ता है जिससे मन्दिर का स्थायी प्रभाव मन्द या क्षीण हो जाता है। षोडशक प्रकरण के अनुसार जिन प्रतिमा गढ़ने वाला शिल्पी परस्त्रीगमन, मांसाहार, धूम्रपान, दारू आदि व्यसनों से मुक्त होना चाहिए।[2]

इस प्रकार शिल्पकार को अनेक गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। मन्दिर निर्माता को भी इस संबंध में ध्यान देना चाहिए कि वह उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न शिल्पी की खोज कर उसी के निर्देशन में मूर्तिघड़न आदि का कार्यपूर्ण करवाये।

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि सूत्रधार को शिल्पी, शिल्पकार, शिल्पाचार्य, शिल्प शास्त्रज्ञ आदि भी कहते हैं। ये सभी समान अर्थवाची शब्द हैं।

शिल्पकार के प्रति कर्तव्य

ऊपर वर्णित निर्देशानुसार योग्य शिल्पी की प्राप्ति हो जाये तभी मन्दिर निर्माण से सम्बन्धित कार्यों का प्रारम्भ करें।

- जिनालय का निर्माण प्रारम्भ करने से पूर्व मन्दिर निर्माता सर्वप्रथम भोजन, पत्र, पुष्प, फल आदि द्वारा शिल्पकार का शुभ मुहूर्त्त में सम्मान करें।
- फिर अपनी शक्ति के अनुसार प्रशस्त अध्यवसायपूर्वक उसे उचित मूल्य दें।
- तदनन्तर यदि प्रतिमा का निर्माण करवाना हो तो शिल्पी के सामने मूलनायक तीर्थंकर भगवान का हृदय स्पर्शी जीवन चरित्र तथा उनकी वीतरागता आदि गुण समृद्धि का कथन करें, जिससे शिल्पी के हृदय में प्रभु के प्रति अहोभाव उत्पन्न हो और जिन प्रतिमा में उस तरह के निर्विकार, प्रसन्न एवं सौम्य मुखाकृति जैसे भाव उड़ेलने का प्रयत्न कर सके।[3]
- प्रासादमंडन के अनुसार मन्दिर निर्माण एवं मूर्तिघड़न आदि का कार्य पूर्ण हो जाने पर निम्न रीति से शिल्पकार का सम्मान करें।

निर्माणकर्ता सूत्रधार से अनुरोधपूर्वक यह कहे कि 'हे सूत्रधार! इस निर्माण कार्य के द्वारा आपने जो पुण्य-धन प्राप्त किया है वह मुझे प्रदान कीजिए।'

इसके प्रत्युत्तर में सूत्रधार आदरपूर्वक यह कहे कि- 'हे स्वामिन्! आपका यह निर्माण कार्य अक्षय रहे। आज तक मेरा था, अब यह आपका हुआ।'

तत्पश्चात निर्माणकर्ता विपुल धन, वस्त्र, अलंकार, वाहन आदि के द्वारा शिल्पकार का योग्य सम्मान करें।

इसी के साथ स्वयं की क्षमता के अनुरूप सहयोगी कारीगरों तथा व्यक्तियों का भी भोजन, ताम्बूल आदि के द्वारा यथोचित सम्मान करना चाहिए।[4]

आचार्य हरिभद्रसूरि ने शिल्पी के मूल्य को चुकाने के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात कही है कि शिल्पी के परिश्रम अथवा कार्य के अनुसार उसकी कीमत नहीं चुकाये, अपितु स्वयं की धन-समृद्धि के अनुसार भुगतान करे। इसका रहस्य यह है कि शिल्पी को सेठ की संपत्ति का अनुमान हो जाये। जिससे प्रतिमा गढ़ने का कार्य उत्तरोत्तर उल्लास पूर्वक हो इसलिए निज वैभव के अनुरूप मूल्य देना चाहिए।

- जिन प्रतिमा के निर्माण काल में शिल्पी प्रसन्नचित्त रहे, तद्हेतु उसके अनुकूल भोजन, स्थान आदि का ध्यान रखना चाहिए। शिल्पी प्रसन्न हो तभी प्रतिमा में नूर आ सकता है यह स्मरण में रखना चाहिए।
- जिन प्रतिमा के निर्माण काल में शिल्पी की प्रशंसा आदि करते रहना चाहिए, जिससे उसका उत्साह प्रवर्धमान रहे।

दूषित शिल्पी के साथ मूल्य आदि का निर्धारण क्यों?

प्राचीन ग्रन्थों के मतानुसार मन्दिर निर्माण, मूर्ति घड़न आदि का कार्य व्यसन मुक्त एवं निर्लोभता आदि गुणों से सम्पन्न शिल्पी के निर्देशन में ही करवाना चाहिए। योग्य शिल्पी की प्राप्ति न होने पर दूषित शिल्पी से मूर्ति का निर्माण करवाना पड़े तो उससे पहले ही मूल्य निर्धारित कर लेना चाहिए जैसे- अमुक परिमाण में पच्चीस बिम्बों का निर्माण करना है उसके लिए अमुक राशि का भुगतान अंशतः किया जायेगा।

दूषित शिल्पी के साथ मूल्य निश्चित करने का आशय यह है कि वह उस राशि का उपयोग परस्त्रीगमन, जुआ, शराब आदि दुर्व्यसनों में नहीं कर सकेगा और इस प्रकार देवद्रव्य के भक्षण का दोष भी नहीं लगेगा। दूसरे, अंशतः भुगतान करने पर वह उपयोगी वस्तुओं को ही खरीद सकेगा।

यदि व्यसन युक्त शिल्पी से प्रतिमा निर्माण करवाने का मूल्य निश्चित नहीं किया जाये तो उसके द्वारा देवद्रव्य का भक्षण हो सकता है। देवद्रव्य का भक्षण करने से अशुभ कर्म का बन्ध होगा, जिससे नरकादि गतियों में अनन्त भावों तक परिभ्रमण करता रहेगा। इसलिए अयोग्य शिल्पी की नियुक्ति मूल्य निश्चित किये बिना नहीं करनी चाहिए।

इसी चर्चा को पुष्ट करते हुए आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि जिस प्रकार अत्यधिक बीमार व्यक्ति को अपथ्य भोजन नहीं देना चाहिए क्योंकि वह भोजन उसके लिए हानिकारक है उसी प्रकार भलीभाँति विचारकर जो कार्य परिणाम स्वरूप सबके लिए दारूण हो उसे नहीं करना चाहिए।[5]

यदि जिनबिम्ब का मूल्य जिनाज्ञा के अनुसार चुकाने पर भी छद्मस्थता के कारण देवद्रव्य के रक्षण के बदले भक्षण हो जाये तो भी उक्त विधि के अनुरूप कार्य करने वाला दोषी नहीं होता है, क्योंकि आज्ञा का आराधक होने से उसका परिणाम शुद्ध है।[6]

श्रावक और शिल्पी का पारस्परिक व्यवहार

षोड़शक प्रकरण में कहा गया है कि यदि प्रभावशाली जिनबिम्ब का निर्माण करवाना हो तो मूर्ति निर्माता और शिल्पी का पारस्परिक सम्बन्ध मधुर रहना चाहिए। यदि शिल्पी का मन थोड़ा भी विचलित होता है तो प्रतिमा के प्रभाव में न्यूनता आ सकती है।

यदि प्रतिमा उत्तम लक्षणों से युक्त हो तो उसके दर्शन मात्र से विशिष्ट भावोल्लास उत्पन्न होता है। यह उल्लासभाव आठों ही कर्मों की निर्जरा में सहायक बनता है। देशविरति, सर्वविरति एवं सर्वांगमुक्ति के बाद हृदय में जागृत करता है। नयनाभिराम प्रतिमा के दर्शन ही भाव जगत एवं विचार जगत को शांत एवं निर्मल बनाते है।

यदि श्रावक और शिल्पी के विचारों में मतभेद न हो, शिल्पी-श्रावक के उचित व्यवहार से प्रसन्न हो तो वह जिनबिम्ब में ऐसे भावभरे प्राण उड़ेल सकता है कि प्रतिमा के दर्शन आदि करते हुए दिल नाच उठे। इसलिए श्रावक और शिल्पी का परस्पर अटूट मेल रहना चाहिए। यदि थोड़ी-सी भी खटास आ जाये तो प्रतिमा विशिष्ट फल संपन्न नहीं बन सकती। उस प्रतिमा में तथाविध सौम्य भाव आदि उभर नहीं सकते, जिसके परिणाम स्वरूप दर्शक के हृदय में भी

विशिष्ट भक्ति भाव जागृत नहीं हो सकते। श्रावक और शिल्पी के मध्य संघर्ष हो जाए तो सत्कार्य की भी सज्जन-वर्ग में निन्दा होती है और उसके निमित्त प्रवचन हीलना भी होती है। अतएव मूर्ति निर्माता को किसी भी स्थिति में शिल्पी के साथ सद्व्यवहार रखना चाहिए।[7]

'शिल्पी का मन खण्डित नहीं करना चाहिए' इस कथन का समर्थन करते हुए आचार्य हरिभद्रसूरि यहाँ तक कहते हैं कि शिल्पी के साथ अप्रीति रखना वास्तविक रूप से भगवान के ऊपर अप्रीति जाननी चाहिए, क्योंकि यह अप्रीति भारी नुकसान का कारण है। इसलिए शिल्पी के प्रति यत्किंचिद भी मन मुटाव नहीं रखना चाहिए।[8]

शिल्प निर्माण के अष्टसूत्र

शिल्पकार जिनमन्दिर निर्माण आदि के लिए प्रमुख रूप से आठ उपकरणों का सहयोग लेता है। राजवल्लभ के अनुसार उसका वर्णन इस प्रकार है-

1. **दृष्टि सूत्र-** इस साधन के द्वारा औजारों के सहयोग के बिना नेत्रों से ही सही नाप-जोख कर लिया जाता है।
2. **हस्त सूत्र-** यहाँ हस्त से तात्पर्य एक पट्टी से है जो एक हाथ के नाप की होती है। इसके नौ भाग होते हैं। वर्तमान में आधुनिक शिल्पी हाथ या गज का प्रमाण दो फुट तथा अंगुल का प्रमाण एक इंच से करते हैं।
3. **मुंज सूत्र-** घास की बनी डोरी मुंज कहलाती है। इसके आधार से लम्बी-सरल रेखा खींची जा सकती है। दीवार को सरल रेखा में बनाने के लिए इसे एक छोर से दूसरे छोर तक बांधा जाता है।
4. **कार्पासक सूत्र-** कपास से बना हुआ मजबूत सूत कार्पासक कहलाता है। यह अवलम्ब या साहुल (प्लम्ब लाइन) लटकाने में काम आता है।
5. **अवलम्ब सूत्र-** इस साधन का तात्पर्य साहुल या प्लम्ब लाइन से है। इसके एक छोर पर लोहे का एक लट्टू होता है जिसे सूत के सहारे लटकाकार दीवार की ऊँचाई अर्थात ऊपर से नीचे की सीधाई नापी जाती है।
6. **काष्ठ सूत्र-** यहाँ काष्ठ का अभिप्राय त्रिकोण से है। इस साधन के द्वारा कोण बनाने या नापने में सहायता ली जाती है।
7. **सृष्टि सूत्र-** यहाँ सृष्टि का तात्पर्य फर्श को समतल बनाने में सहयोगी उपकरण से है। इसका स्पिरिट लेवल की तरह उपयोग किया जाता है।

8. **विलेख्य सूत्र**- इस साधन के द्वारा रेखाओं की दूरी तुलनात्मक दृष्टि से नापी जाती है।[9]

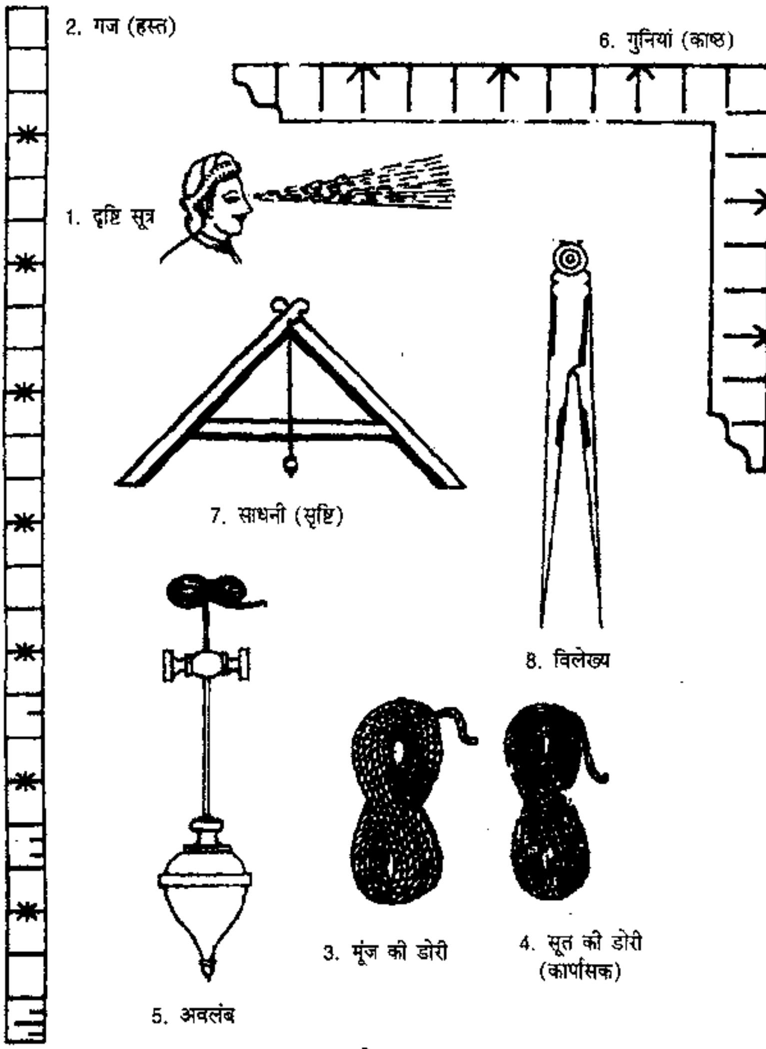

सूत्रधार के अष्ट सूत्र

दिशा निर्णय

जिनालय का निर्माण कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व निर्धारित भूमि पर दिशा का निर्धारण करना भी अत्यन्त आवश्यक है। मन्दिर के निर्माण काल में प्रवेश-

द्वार की दिशा, गर्भगृह की स्थिति एवं प्रतिमाओं की दृष्टि वास्तुशास्त्र के अनुरूप होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में थोड़ी सी भी लापरवाही हो जाये तो इसके भीषण परिणाम आ सकते हैं। दिशा स्थिति को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया मन्दिर न केवल मनोरम एवं अतिशय सम्पन्न होता है, बल्कि दर्शकों के स्वानुभूति का सशक्त निमित्त भी बनता है।

प्रवेश द्वार आदि दिशाओं के निर्धारण हेतु विभिन्न उपायों का आश्रय लिया जाता है। इसकी मुख्यत: प्राचीन एवं आधुनिक दो विधियाँ हैं-

प्राचीन विधि- प्राचीन काल में दिन में दिशा का निर्धारण सूर्योदय और सूर्यास्त के आधार पर किया जाता था तथा रात्रि में ध्रुव तारा अथवा श्रवण नक्षत्र के आधार पर किया जाता था। इन विधियों से मौटे तौर पर दिशाओं का ज्ञान तो हो जाता है। किन्तु असावधानी की स्थिति में भूल होने की संभावना अधिक रहती है। इसलिए दिन के समय दिशा निर्धारण की प्रचलित विधि शंकू के आधार पर थी। वह निम्न प्रकार से है-

समतल भूमि पर दिशा निर्धारण करने के लिए सर्वप्रथम दो हाथ के विस्तार का एक वृत्त बनायें।

इस वृत्त के केन्द्र बिन्दु पर अंगुल का एक शंकु स्थापन करें। अब उदयार्ध (आधा सूर्य उदय हो चुके तब) शंकु की छाया का अंतिम भाग वृत्त की परिधि में जहां लगे वहां एक चिह्न लगा दें। यही प्रक्रिया सूर्यास्त के समय दोहराएं। इन दोनों बिन्दुओं को केन्द्र से मिला दें। यह पूर्व-पश्चिम दिशाओं का दर्शक है। अब इस रेखा को त्रिज्या मानकर एक पूर्व तथा एक पश्चिम बिन्दु से दो वृत्त बनाएं। इससे पूर्व पश्चिम रेखा पर मत्स्य आकृति बनेगी। इसके मध्य बिन्दु से एक सीधी रेखा इस प्रकार खींचें जो गोल के सम्पात के मध्य भाग लगें और ऊपर के भाग में स्पर्श करे। उसके उत्तर और नीचे के भाग का स्पर्श बिन्दु दक्षिण दिशा है।

'अ' बिन्दु पर शंकु स्थापन करें। इस बिन्दु से दो हाथ त्रिज्या का एक वृत्त बनायें। सूर्योदय के समय शंकु की छाया 'क' बिन्दु पर स्पर्श करती है। मध्याह्न के समय 'अ' बिन्दु से निकलती है तथा सूर्यास्त के समय यह 'च' बिन्दु से निकलती है। 'क' से 'अ' को मिलाते हुए 'च' तक एक रेखा खींचें। यह 'च' 'अ' पूर्व दिशा है तथा 'अ' 'क' पश्चिम दिशा है।

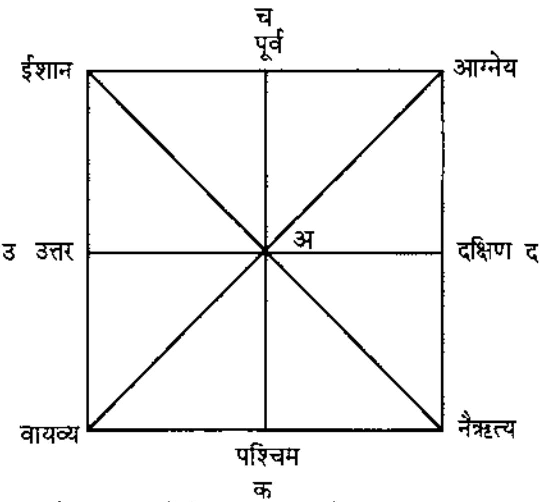

'च अ क' रेखा पर दोनों तरफ समकोण अथवा लम्ब बनाने के लिए 'च क' को त्रिज्या मानकर 'क' केन्द्र एवं 'च' केन्द्र से दो वृत्त बनायें। ये दोनों वृत्त 'उ' एवं 'द' बिन्दु पर एक दूसरे को काटेंगे। अब 'उ द' रेखा को 'अ' पर मिलाएँ। इस प्रकार हमें चारों दिशाओं की रेखाएँ मिल जायेंगी।

'अ द'	दक्षिण
'अ उ'	उत्तर
'अ क'	पश्चिम
'अ च'	पूर्व दिशा बतलाती है।

आधुनिक विधि– दिशा निर्धारण के लिए वर्तमान काल में चुम्बकीय सुई का प्रयोग किया जाता है। इसमें एक चुम्बकीय सुई अपनी धुरी पर घूमती रहती है। सुई एक डायल पर स्थित होती है। डायल में उत्तर-दक्षिण एवं पूर्व-पश्चिम दिशाएँ 90^0-90^0 कोण पर दिखाई जाती है। ऐसे कुल 360^0 में डायल विभाजित रहता है। चुम्बक का यह गुण होता है कि स्वतन्त्रता पूर्वक घूमने पर कुछ ही समय में वह पृथ्वी की चुम्बकीय धारा के समानान्तर हो जाता है तथा सुई उत्तर-दक्षिण दिशा में स्थिर हो जाती है। सुई के उत्तरी ध्रुव पर लाल निशान अथवा तीर का निशान लगा रहता है। इस डायल को घुमाकर उत्तर दिशा में तीर पर लाया जाता है। इससे हमें सारी दिशाओं का ज्ञान हो जाता है। अच्छे किस्म के यन्त्रों में आजकल सुई को डायल में ही फिट कर देते हैं तथा पूरा डायल

ही घूमकर स्थिर हो जाता है। कुछ यन्त्रों में डायल, पारे अथवा अन्य द्रव (जलीय पदार्थ) पर तैरता है। खुले मैदान, रेगिस्तान, जंगल, समुद्र, पर्वतादि किसी भी जगह यह यन्त्र क्षण मात्र में सही दिशा का ज्ञान करा सकता है। प्राचीन विधि की अपेक्षा यही विधि सही, सरल एवं उपयुक्त है।

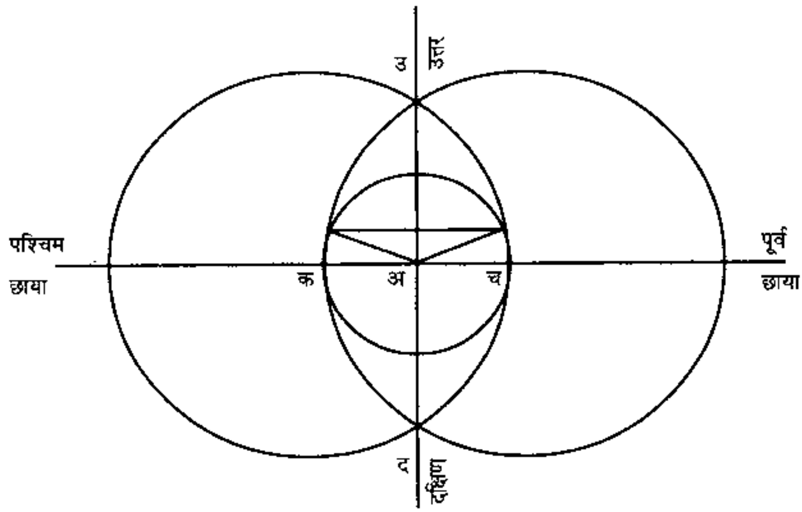

यन्त्र को लोहे के किसी टेबल अथवा फर्नीचर पर या ऐसे स्थान पर जहाँ लोहा अथवा बिजली का तीव्र प्रवाह समीप न हो वहाँ रखें। जिन यन्त्रों में बिजली की मदद से चुम्बक निर्माण होता है जैसे- बिजली मीटर अथवा स्थायी चुम्बक वाले स्पीकर, माइक आदि के समीप भी यन्त्र को रखने से सही दिशा का ज्ञान नहीं होगा, क्योंकि सुई बाहरी विद्युत या चुम्बकीय प्रभाव से प्रभावित होती है। इसलिए तीव्र चुम्बक की तरफ आकर्षित होकर गलत निर्देश करेगी।

दिशा निर्धारण की दोनों विधियों में आधुनिक विधि का अधिक प्रयोग होता है। अतएव चुम्बकीय सुई के प्रयोग द्वारा दिशा निर्धारण करना श्रेयस्कर है।

जिन प्रतिमा निर्माण प्रारंभ का शुभ मुहूर्त्त

किसी श्रावक को गृह चैत्य या साधारण चैत्य के लिए प्रतिमा का निर्माण करवाना हो तो निम्नलिखित विधि के अनुसार तदयोग्य पाषाण आदि मंगवाये अथवा स्वयं लेकर आये। उसके पश्चात प्रतिमा निर्माता प्रसन्न चित्त से शिल्पी

का सम्मान कर उससे प्रतिमा निर्माण के लिए प्रार्थना करें। तब शिल्पी अत्यन्त भावोल्लास पूर्वक जिनबिम्ब बनाने का कार्य शुभ मुहूर्त में प्रारम्भ करे।

आचार्य जयसेन प्रतिष्ठा पाठ के अनुसार प्रतिमा निर्माण हेतु सोम, गुरु, शुक्र तथा मतांतर से बुधवार भी शुभ है।

नक्षत्रों में तीनों उत्तरा, पुष्य, रोहिणी, श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा, आर्द्रा तथा मतांतर से अश्विनी, हस्त, अभिजित, मृगशिरा, रेवती, अनुराधा नक्षत्र भी शुभ हैं।

तिथियों में दूज, तीज, पंचमी, सप्तमी, ग्यारस, तेरस अथवा जिस तीर्थंकर की प्रतिमा बनवानी हो उनकी गर्भ कल्याणक तिथि शुभ कही गई है।

योगों में रवि पुष्य अथवा रविहस्त योग शुभ माना गया है।[10]

शिला लाने हेतु जाने का शुभ मुहूर्त

प्रतिमा निर्माणकर्ता को निम्न नक्षत्रों में शिला लेने के लिए जाना चाहिए-

रेवती, अश्विनी, हस्त, पुष्य, श्रवण, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, अनुराधा, धनिष्ठा एवं मृगशिरा।

यात्रा के लिए हस्त, पुष्य, अश्विनी एवं अनुराधा नक्षत्र भी शुभ हैं, किन्तु दक्षिण दिशा में मंगल, बुध और रविवार को न जायें।

यात्रा के लिए गमन करने से पहले नक्षत्र, लग्न एवं गोचर शुद्धि अवश्य देखनी चाहिए।

जिन प्रतिमा का निर्माण प्रारम्भ करने से पूर्व आचार्य भगवन्त एवं गुरुजनों से आशीर्वादपूर्वक अनुमति लेनी चाहिए। तत्पश्चात तीर्थंकर भगवान, स्थापनकर्ता एवं नगर इन तीनों की राशियों का मिलान करवाकर उपयुक्त दिशानिर्देश ग्रहण करना चाहिए। उसके बाद ही शिला लाने हेतु जाने का समय, शिला परीक्षण एवं प्रतिमा निर्माण का समय निर्धारित करना चाहिए। यह विशेष ध्यान रहे कि गुरु या आचार्य की अनुमति एवं आशीर्वाद के बिना जिन प्रतिमा एवं मन्दिर निर्माण का कार्य नहीं करना चाहिए।

शिला की परीक्षा विधि

जिस शिला पर प्रतिमा का निर्माण करना हो उसके भीतर के दोषों को प्रकट करने हेतु एवं उसके शुद्धिकरण हेतु उस पर निम्न औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

सर्वप्रथम उस शिला पर सहदेवी, विष्णुक्रान्ता, शतावरी आदि सप्तौषधियों का चूर्ण मिश्रित जल डालें।

उसके बाद जातीफल, लवंग, बिल्ब आदि पाँच फलौषधियों के चूर्ण मिश्रित जल का क्षेपण करें।

उसके पश्चात पलाश, उदुम्बर, अश्वत्थ, न्यग्रोध, शमी-इन पाँचों की छाल से युक्त जल का सिंचन करें। तदनन्तर मूलाष्टक नाम की औषधियों का चूर्ण मिश्रित जल डालें। उसके बाद पत्थर को सर्वौषधियों से अभिसिंचित करें।

फिर उसके ऊपर अगर, तगर, चन्दन, कपूर, हरताल, हिंगुल, हेम आदि अष्टगंध के द्रव्यों का लेप करें। तदनन्तर जायफल, हल्दी, कपूर आदि मिलाकर उसका उबटन करें। यदि पत्थर के अन्दर दाग आदि हों तो इन औषधियों के स्पर्श से प्रकट हो जाते हैं।

प्राचीन युग में समान वर्ग की औषधियों को हाथ से पीसा जाता था। फिर उन्हें मिलाकर उसी का मूर्ति पर उबटन करते थे। उबटन को कुछ समय तक ऐसे ही रखते थे। तब यथार्थ में भीतर के दोष दूर होते थे और चमक बढ़ती थी। आजकल लोक प्रवाह रूप से एक बाल्टी पानी में अमुक-अमुक प्रकार की औषधियों के चूर्ण को मिलाकर अभिषेक कर लेते हैं, जो विधिवत प्रणाली नहीं है।

वास्तुसार प्रकरण के अनुसार शिला परीक्षण हेतु निर्मल कांजी के साथ बेल वृक्ष के फल की छाल का उबटन करना चाहिए, इससे भीतरी दाग स्पष्ट हो जाते हैं।[11]

पंडित मन्नूलाल जैन प्रतिष्ठाचार्य की हस्त डायरी के अनुसार पानी के साथ छिला हुआ गोटा रगड़ने से रेखाओं की जानकारी हो जाती है। वर्तमान में क्वाथ औषधियाँ उपलब्ध न होने पर सर्वौषधि से शुद्धि करते हैं।

पूर्व काल में शास्त्रानुसार स्वयं खड़े रहकर प्रतिमा बनवायी जाती थी। आज तैयार की हुई प्रतिमा ली जाती है। वस्तुतः परीक्षणपूर्वक प्रतिमा का निर्माण करवाना चाहिए।

यदि हृदय, मस्तक, कपाल, दोनों स्कन्ध, दोनों कान, मुख, पेट, पीठ, दोनों पैर आदि के भागों-उपभागों में नीले आदि रंग की रेखा हो तो प्रतिमा निर्माण के लिए वह शिला निषिद्ध कही गई है। यदि अन्य अंगों पर रेखा हो तो प्रतिमा निर्माण के लिए मध्यम है।

यदि काष्ठ या पाषाण में कील, छिद्र, पोलापन, जीव के जाले, संधि, कीचड़ अथवा मंडलाकार यानी गोलाकार रेखा हो तो वह महादोषकारी माना गया है।

यदि काष्ठ आदि पर मधु जैसा मंडल हो तो भीतर में जुगनू जानें। इसी तरह भस्म जैसा मंडल हो तो रेत, गुड़ जैसा मंडल हो तो लाल मेंढ़क, आकाशी रंग का मंडल हो तो जल, कपोत वर्ण का मंडल हो तो छिपकली, मजीठ रंग का मंडल हो तो मेढ़क, लाल वर्ण का मंडल हो तो गिरगिट, पीले रंग का मंडल हो तो गोह, कपिल वर्ण का मंडल दिखे तो चूहा, काले वर्ण का मंडल दिखे तो सर्प तथा विचित्र वर्ण का मंडल देखने में आये तो बिच्छू समझना चाहिए।

इस प्रकार विभिन्न रंग के मंडल प्रकट होने पर 'भीतर अमुक प्राणी है' ऐसा ज्ञात कर लेना चाहिए और प्रतिमा निर्माण हेतु उस प्रकार के काष्ठ आदि का उपयोग नहीं करना चाहिए।

यदि पत्थर या काष्ठ पर नंद्यावर्त्त, अश्व, श्रीवत्स, शंख, हाथी, गाय, बैल, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, माला, ध्वजा, शिवलिंग, तोरण, हिरणी, कमल, वज्र, गरुड़ जैसी रेखा दिखती हो तो उसे शुभ लक्षण मानना चाहिए और वह प्रतिमा निर्माण के लिए श्रेष्ठ है।

जिन प्रतिमा निर्माण विधि

जिनबिम्ब का निर्माण करवाने वाले को प्रतिमा देखकर जितने परिमाण में आनन्द-उल्लास आदि की अभिवृद्धि होती है उसे उतनी ही संख्या में बिम्ब भरवाने का सच्चा लाभ प्राप्त होता है क्योंकि परमार्थ से जैसे भाव होते हैं वैसा ही फल उपलब्ध होता है।[12]

आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि मूर्ति निर्माण का कार्य शुरू होने के पश्चात शिल्पी के चित्त में थोड़ी भी अप्रीति, दुर्भाव आदि पैदा होते हैं तो वह मूर्ति निर्माण का कार्य उस पर थोपा हुआ या जबर्दस्ती करवाया हुआ प्रतीत होता है इसलिए सर्व आपत्तियों का मूल कारण अप्रीति भाव कभी भी उत्पन्न न होने दें।[13]

श्रावक को अधिक गुण वाली प्रतिमा का निर्माण करवाना हो तो न्यायोपार्जित धन का ही सद्व्यय करना चाहिए और स्वयं के भीतर में भी प्रभु के प्रति अनेक दोहद-भावनाओं को धारण करना चाहिए तथा वैसी भावनाएँ

शिल्पकार के अन्तर्मन में भी उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए।[14]

शास्त्रकारों ने ऐसे मानसिक दोहद-मनोरथ तीन प्रकार के बतलाये हैं-- 1. प्रभु की बाल्यावस्था 2. युवावस्था और 3. प्रौढ़ावस्था। वृद्धावस्था की मूर्तियाँ नहीं बनाई जातीं क्योंकि तीर्थंकर पुरुषो में साधारण मनुष्यों जैसा परिवर्तन नहीं दिखता है। इसलिए उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं के भाव निर्माता स्वयं के मन में उत्पन्न कर उसी प्रकार की सामग्री प्रदान करते हुए शिल्पी के भीतर भी प्रभु की तीनों अवस्थाओं के भाव प्रकट करें, जिससे मूर्ति गढ़ते-गढ़ते बिंब में भी वैसे ही भावों का आरोपण हो।[15]

बाल्यावस्था के मनोरथ उत्पन्न करने के लिए अनेक खिलौने देकर शिल्पी का चित्त बालक की भाँति करें। युवा और मध्यम वय के मनोरथ प्रकट करने के लिए अनेक प्रकार के वस्त्र तथा खाने-पीने की अद्भुत सामग्रियों का अर्पण करें, जिससे शिल्पी के मन में युवावस्था और मध्यम वय के सर्जनात्मक विचार पैदा हों।

इस रीति से शिल्पी के मन में उत्पन्न होते भाव मूर्ति में भी आरोपित होने से भक्तों को प्रभु के दर्शन की अनुभूति तीनों रूपों में होने लगती है।

आजकल कई नगरों में जिन प्रतिमाएँ प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या इन तीन सन्धि कालों में तीन रूप करती हैं। इसके पीछे बिंब निर्माण के समय उसमें आरोपित किये गये अन्तर्भाव ही कारणभूत हैं। जिस पाषाण या धातु के द्वारा मूर्ति का निर्माण करना हो उसके ऊपर तीर्थंकर भगवान के नाम के आगे 'ऊँ नमः' पद अवश्य लिखें। जैसे भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा भरवानी हो तो 'ऊँ नमः ऋषभदेवाय' यह मंत्र लिखें। उसके बाद ही मूर्ति गढ़ने का कार्य प्रारम्भ करें। ऊँकार पद जोड़ने से आलोक संबंधी और मोक्ष संबंधी समस्त फलों की प्राप्ति होती है।[16]

यह सर्वमान्य सत्य है कि सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास में प्रार्थना-स्थलों का विशेष स्थान है। इन स्थानों की प्रभावकता एवं आकर्षण का मुख्य कारण है वहाँ का तनाव रहित वायुमण्डल एवं प्रशांतभावयुत निष्काम प्रार्थना आलंबन। फिर वह चाहे जिस रूप में हो। आलंबन की महत्ता को सर्वत्र स्वीकारा गया है। जिन प्रतिमा, आराधना का प्रमुख आधार है अतः उसके निर्माण में विवेक एवं सावधानी रखना तथा शास्त्र विहित नियमों का पालन करना

अत्यावश्यक है। जिनबिम्ब निर्माण हेतु प्रयुक्त होने वाली शिला, निर्माणकर्ता शिल्पी, बिम्ब निर्माण प्रारंभ का मुहूर्त्त, दिशा आदि का प्रतिमा की प्रभावकता में विशेष स्थान होता है। इनके प्रति जितनी जागरूकता रखी जाएं बिम्ब उतना ही ओजस्वी, प्रभावी एवं स्थायी बनता है तथा भावों में उच्चता, विचारों में उदारता एवं संस्कारों में निर्मलता का निर्माण करता है। अत: शास्त्रोक्त विधि से जिनबिम्ब का निर्माण करना परमावश्यक है।

सन्दर्भ-सूची

1. *सुशीलश्चतुरो दक्षः, शास्त्रज्ञो लोभवर्जितः।*
   क्षमावान स्याद् द्विजश्चैव, सूत्रधारः स उच्यते ॥
   शिल्प रत्नाकर, 1/1
2. *षोडशक प्रकरण, 7/3*
3. *जिनबिम्ब कारणविधिः काले, पूजा पुरस्सरं कर्तुः।*
   विभवोचितमूल्याऽर्पणमनघस्य शुभेन भावेन ॥
   (क) षोडशक प्रकरण, 7/2
   (ख) पंचाशक प्रकरण, 8/7
4. *पुण्यं प्रासाद जं स्वामी, प्रार्थयेत् सूत्रधारतः।*
   सूत्रधारो वदेत् स्वामिन्! अक्षयं भवतात् तव ॥
   इत्येवं विधिवद् कुर्यात्, सूत्र धारस्य पूजनम्।
   भू वित्त वस्त्रालंकारैः, गौ महिष्यश्च वाहनैः ॥
   अन्येषां शिल्पिनां पूजा, कर्त्तव्या कर्मकारिणाम्।
   स्वाधिकारानुसारेण, वस्त्रैस्ताम्बूल भोजनैः ॥
   प्रासाद मंडन, 8/85, 82 83
5. *पंचाशक प्रकरण, 8/8-9*
6. *वही, 8/10-11*
7. *षोडशक प्रकरण, 7/5*
8. *वही, 7/7*
9. *सूत्राष्टकं दृष्टि नृहस्तमौञ्जं।*
   कार्पास स्यादवलम्बसंज्ञम् ॥

काष्ठं च सृष्ट्याख्यमतो विलेख्य।
मित्यष्ट सूत्राणि वदन्ति तज्ज्ञाः॥

राजवल्लभ, 1/40

10. *प्रतिष्ठापाठ, श्लो. 185-186*
11. *वास्तुसार प्रकरण, पृ. 82*
12. *षोडशक प्रकरण, 7/6*
13. *वही, 7/7*
14. *वही, 7/8*
15. *वही, 7/9*
16. *वही, 7/11*

अध्याय-8

जिन प्रतिमा प्रकरण

जिन प्रतिमा का सामान्य अर्थ है अरिहंत परमात्मा की मूर्ति। पाषाण, काष्ठ, रत्न आदि पदार्थों से निर्मित यह कलाकृति परमात्मा के साक्षात स्वरूप का स्मरण एवं आभास करवाती है। यह प्रतिमाएँ अपने गुण विशेष के आधार पर वीतराग प्रभु की छवि का आभास करवाकर हमें उसके समान बनने के लिए प्रेरित करती हैं।

जिनालय में सामान्यतया दो प्रकार की प्रतिमाएँ स्थापित की जाती है– 1. अरिहंत प्रतिमा और 2. सिद्ध प्रतिमा। अरिहंत की प्रतिमा परिकर युक्त होनी चाहिए। यहाँ परिकर से तात्पर्य है कि प्रतिमा समवशरण की दिव्य विभूतियों सहित होनी चाहिए अथवा अरिहंत प्रतिमा के परिकर में अष्ट प्रातिहार्य एवं मांगलिक चित्र होने चाहिए। इस तरह परिकर युक्त प्रतिमा अरिहंत प्रतिमा कहलाती है। सिद्ध बाह्य सर्व विभूतियों से रहित होने के कारण उनकी प्रतिमा परिकर रहित होती है।

जिन प्रतिमा, अरिहंत आदि परमेष्ठी की प्रतिकृति है अत: इसे जिनबिम्ब भी कहते हैं। प्रतिमाओं को जिन चैत्य भी कहा जाता है। इस तरह जिन प्रतिमा अरिहंत एवं सिद्ध गुणों से युक्त होने के कारण समस्त साधकों के लिए तीनों काल में वन्दनीय और पूजनीय है।

मंदिर के गर्भगृह में किस आकार की प्रतिमा स्थापित की जाए?

जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमाओं का निर्माण एवं माप शास्त्रोक्त विधि से ही किया जाना चाहिए। शिल्पशास्त्र में गृह चैत्य एवं नगरस्थ जिनालय में पूजनीय प्रतिमाओं के आकार के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं। यह विवेक रखना अत्यन्त आवश्यक है कि मन्दिर में किस परिमाण की प्रतिमा स्थापित की जाये। जैसे कि जिनालय में एक हाथ से छोटे आकार की प्रतिमा स्थिर रूप से रखने का निषेध है। इस स्थिति में केवल चल प्रतिमा ही रखी जा सकती है।[1] शिल्पज्ञों के अनुसार प्रतिमा के आकार की गणना मन्दिर एवं द्वार के आकार के अनुरूप की जाती है।

शिल्प रत्नाकर, वास्तुसार प्रकरण, बृहत्संहिता, कल्याण कलिका आदि में मूर्ति निर्माण की स्वतन्त्र चर्चा की गई है। यहाँ विस्तार भय से केवल गर्भ गृह में किस आकार वाली प्रतिमा स्थापित की जानी चाहिए, उस सम्बन्ध में कहेंगे–

1. गर्भगृह के अनुपात में प्रतिमा का आकार– प्रासाद मंडन के अनुसार गर्भ गृह की चौड़ाई इस प्रकार रखें कि चौड़ाई के दस भाग में गर्भ गृह बनायें तथा दो-दो भाग की दीवार बनायें।

गर्भगृह की चौड़ाई के तीसरे भाग के मान की प्रतिमा बनाना उत्तम है। इस मान का दसवाँ भाग घटा देने पर प्रतिमा का मध्यम मान आयेगा। यदि पांचवाँ भाग घटा दिया जाए तो प्रतिमा का कनिष्ठ मान आयेगा।[2]

आचार दिनकर के मतानुसार प्रासाद के गर्भ गृह की भित्ति की लम्बाई के पाँच भाग करें, उसके प्रथम भाग में यक्ष की प्रतिमा को, द्वितीय भाग में देवियों की प्रतिमा को, तृतीय भाग में जिन, स्कन्दक, कृष्ण या सूर्य प्रतिमा को, चौथे भाग में ब्रह्मा की प्रतिमा को और पाँचवें भाग में शिव लिंग को स्थापित करें।[3]

2. द्वार के अनुपात में प्रतिमा का आकार– यह गणना अनेक प्रकार से की जाती है। माप उत्तरंग से नीचे और देहली के ऊपर का लेना चाहिए। इसके गुणन की विधियाँ इस प्रकार हैं–

1. प्रासाद मंडन के अनुसार द्वार की ऊँचाई के आठ या नौ भाग करें। ऊपर का एक भाग छोड़ दें। शेष भाग में पुनः तीन भाग करें। उनमें से एक भाग की पीठिका और दो भाग की प्रतिमा बनाना चाहिए।[4]
2. दूसरी गणना के अनुसार द्वार की ऊँचाई के बत्तीस भाग करें। उनमें 14, 15, 16 भाग के मान की प्रतिमा खड्गासन में बनायें और पद्मासन (बैठी) मूर्ति 14, 13, 12 भाग की बनाना चाहिए।[5]
3. तीसरी गणनानुसार द्वार की ऊँचाई के आठ भाग करें, ऊपर का एक भाग छोड़ दें, शेष सात भाग के तीन भाग करें। उनमें दो भाग की प्रतिमा और एक भाग का पबासन (प्रतिमा विराजमान करने की चौकी) बनायें।
4. चौथे माप के अनुसार द्वार की ऊँचाई के सात भाग करें, ऊपर का एक भाग छोड़ दें, शेष छह भाग के तीन भाग करें। उसमें दो भाग की प्रतिमा और एक भाग की पीठ रखें।
5. इसी तरह द्वार की ऊँचाई के छह भाग करें, ऊपर का एक भाग छोड़ शेष

पाँच भाग के तीन भाग करें। उसमें ऊपर के दो भाग की कायोत्सर्ग प्रतिमा तथा एक भाग की पीठ बनायें।

6. वास्तुसार प्रकरण के अनुसार द्वार की ऊँचाई के आठ भाग करें। उसमें ऊपर के एक भाग को छोड़कर नीचे से गिनते हुए ऊपर के सातवें भाग के पुनः आठ भाग करें। इसके सातवें भाग में भगवान की दृष्टि रखना चाहिए।[6]
7. वसुनन्दिकृत प्रतिष्ठासार के निर्देशानुसार द्वार की ऊँचाई के नौ भाग करके नीचे के छह भाग और ऊपर के दो भाग छोड़ दें। शेष सातवें भाग के नौ भाग करके उसके सातवें भाग के ऊपर प्रतिमा की दृष्टि रखनी चाहिए।[7]
8. इसके अतिरिक्त स्फटिक, रत्न, मूंगा, सुवर्ण आदि बहुमूल्य धातुओं की प्रतिमा स्थापित करने के लिए पूर्वोक्त नियमों का पालन करना आवश्यक नहीं है। रत्नादि की प्रतिमाओं को चैत्य के परिमाण के अनुसार या स्वयं की इच्छानुसार भी बना सकते हैं।[8]

गर्भगृह में प्रतिमा की स्थापना कहाँ हो?

गर्भ गृह की पिछली दीवार से गर्भ गृह के मध्य बिन्दु तक के मध्य पृथक्-पृथक् स्थानों में विभिन्न देवताओं की प्रतिमा स्थापित की जाती है अतः इस सम्बन्ध में तीन मतान्तर हैं–

प्रथम मत– वास्तुसार प्रकरण के उल्लेखानुसार गर्भ गृह के पृष्ठ भाग की दीवार से गर्भ गृह के मध्य बिन्दु तक पाँच भाग करें। मध्य बिन्दु से प्रारम्भ कर पाँचवें भाग में यक्ष, गंधर्व, क्षेत्रपाल को स्थापित कर सकते हैं। चौथे भाग में देवियों की स्थापना, तीसरे भाग में जिनेश्वर देव, कृष्ण, सूर्य, कार्तिकेय, दूसरे भाग में ब्रह्मा तथा प्रथम भाग में मध्य बिन्दु से थोड़ा हटकर शिवलिंग स्थापित करें।[9]

द्वितीय मत– दूसरे मत के अनुसार गर्भ गृह की पिछली दीवार से गर्भ गृह के मध्य बिन्दु तक दस भाग करें। मध्य बिन्दु से प्रारम्भ कर पहले भाग में ब्रह्मा, दूसरे भाग में हर और उमा, तीसरे भाग में उमा और देवियाँ, चौथे भाग में सूर्य, पाँचवें भाग में बुद्ध, छठें भाग में इन्द्र, सातवें भाग में अरिहंत देव, आठवें भाग में गणेश और मातृका, नौवें भाग में गंधर्व, यक्ष एवं क्षेत्रपाल तथा दसवें भाग में दानव, राक्षस, ग्रह और मातृका की स्थापना करनी चाहिए।[10]

तृतीय मत– शिल्प रत्नाकर के अनुसार गर्भ गृह के पृष्ठ भाग की दीवार से मध्य बिन्दु तक अट्ठाईस भाग करें। फिर मध्य बिन्दु से प्रारम्भ कर दूसरे भाग में शालिग्राम और ब्रह्मा, तीसरे भाग में नकुलीश, चौथे भाग में सावित्री, पाँचवें भाग में रुद्र एवं अर्धनारीश्वर, छठें भाग में कार्तिकेय, सातवें भाग में ब्रह्मा, सावित्री, सरस्वती एवं हिरण्यगर्भ, आठवें भाग में दशावतार, उमा, शिव, शेषशायी, नौवें भाग में मत्स्य, वराह, पद्मासन एवं ऊर्ध्वासन विष्णु, दसवें भाग में विश्वरूप, उमा एवं लक्ष्मी, ग्यारहवें भाग में अग्नि, बारहवें भाग में सूर्य, तेरहवें भाग में दुर्गा एवं लक्ष्मी, चौदहवें भाग में गणेश, लक्ष्मी, वीतराग देव, पन्द्रहवें भाग में गृह, सोलहवें भाग में मातृका, लक्ष्मी, देवियाँ, सत्रहवें भाग में गणदेव, अठारहवें भाग में भैरव, उन्नीसवें भाग में क्षेत्रपाल, बीसवें भाग में यक्षराज, इक्कीसवें भाग में हनुमान, बाईसवें भाग में मृगघोर, तेईसवें भाग में अघोर, चौबीसवें भाग में दैत्य, पच्चीसवें भाग में राक्षस, छब्बीसवें भाग में पिशाच तथा सत्ताईसवें भाग में भूत की मूर्ति स्थापित कर सकते हैं। पहले और अट्ठाईसवें भाग में किसी भी मूर्ति को स्थापित नहीं करना चाहिए।[11]

शिल्प रत्नाकर के आधार पर स्पष्ट होता है कि स्थापित प्रतिमा दीवार से संलग्न नहीं होनी चाहिए। इसे अशुभ माना गया है। इसी तरह दीवार स्थित अलमारी या आले में प्रतिमा की स्थापना करना भी अशुभ है। इसी प्रकार दो स्तम्भों के पाटे के नीचे, बीम आदि के नीचे भी जिनबिम्ब स्थापित नहीं करना चाहिए।[12] शिल्पज्ञों के मत से गर्भ गृह के छः भागकर दीवार के समीप का एक भाग छोड़कर पाँचवें भाग अथवा गर्भ गृह के आठ भागकर पीछे का एक भाग छोड़कर सातवें भाग में जिनेन्द्र देव को स्थापित करना चाहिए।[13]

कुछ आचार्यों के मतानुसार गर्भगृह के चार भाग करें, उसमें दीवार से प्रथम भाग राक्षस का, द्वितीय भाग ब्रह्म का, तृतीय भाग देव का एवं चतुर्थ भाग मनुष्य का माना गया है। इस नियमानुसार दो भाग छोड़कर देव के स्थान में जिनबिम्ब स्थापित करना चाहिए।[14]

शिल्प शास्त्रों के निर्देशानुसार यह भी ध्यातव्य है कि देवालय के पीछे की दीवार में सुई की नोक के बराबर भी छिद्र नहीं रखना चाहिए क्योंकि उसमें असुर देवों का निवास हो जाता है। इससे यह भी सिद्ध है कि वेदी के पीछे कोई अलमारी, रोशनदान आदि नहीं बनाना चाहिए।[15]

प्रतिमा शब्द के विभिन्न अर्थ

प्रतिमा का शाब्दिक अर्थ है प्रतिबिम्ब। इस अर्थगत भाव को स्पष्ट करने के लिए बिम्ब, प्रतिकृति, आकृति, प्रतिरूप आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बिम्ब का एक अर्थ छाया है। यह शब्द पारलौकिक प्रतिमाओं के लिए प्रयुक्त होता है। कहीं-कहीं प्रतिमा और बिम्ब दोनों को समान अर्थ में ग्रहण करते हैं।[16] शुक्रनीति में 'अपि श्रेयस्करं नृणां देव बिम्बम लक्षणम्' कहकर प्रतिमा के लिए बिम्ब शब्द का व्यवहार किया गया है।

पाणिनी ने व्याकरणसूत्र 'इव प्रतिकृतौ' में समान आकृति के लिए प्रतिकृति शब्द का प्रयोग किया है।[17]

प्रतिमा शब्द अति प्राचीनकाल से विश्रुत है। ऋग्वेद में यज्ञ के रूप में प्रतिमा शब्द का प्रयोग हुआ है।[18] पतञ्जलि ने महाभाष्य में 'मौर्यैर्हिरण्यर्थिभि: अर्चा प्रकल्पिता' कहते हुए प्रतिमा के लिए अर्चा शब्द का प्रयोग किया है तथा कुछ ऐसी प्रतिमाओं का उल्लेख किया है जिन्हें मौर्य राजा ने स्वर्ण प्राप्ति की इच्छा से बनवाई थी।[19]

वस्तुत: प्रतिमा शब्द का प्रयोग उन्हीं मूर्तियों के लिए किया जाता है जो किसी न किसी धर्म या दर्शन से सम्बन्धित हो।

प्रतिमा और मूर्ति में अन्तर

सामान्य मनुष्यों की आकृति मूर्ति कहलाती है जबकि तीर्थंकर पुरुषों, देवी-देवताओं एवं महापुरुषों की आकृति को प्रतिमा कहा जाता है। यद्यपि प्रतिमा और मूर्ति निर्माण की क्रिया दोनों ही शिल्पकला के प्रकार हैं परन्तु प्रतिमा निर्माण के लिए निश्चित नियमों एवं लक्षणों का विधान होता है जिसके फलस्वरूप कलाकार पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र होकर उसका निर्माण नहीं कर सकता। साथ ही उसकी आन्तरिक कला की अभिव्यक्ति भी उसमें सम्पूर्ण रूप से संभव नहीं है। इसके विपरीत मूर्ति निर्माण में कलाकार स्वतन्त्र होता है और उसकी समस्त शिल्पगत दक्षता उसमें प्रस्फुटित हो जाती है। प्रतिमा का स्वरूप प्रतिकात्मक भी हो सकता है किन्तु मूर्ति का एक निश्चित आकार-प्रकार होना अवश्यंभावी है।

प्रतिमा के प्रकार

प्रतिमा के भेद-प्रभेदों की चर्चा विविध दृष्टिकोणों से की गई है। श्रीमद् भागवत के अनुसार **'चलाचलेति त्रिविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम्'**– चल और अचल के भेद से प्रतिमा दो प्रकार की होती है।[20]

चल प्रतिमा– जो प्रतिमाएँ अस्थिर हों एवं आवश्यकतानुसार जिनका स्थानान्तरण किया जा सके वे चल प्रतिमा कहलाती है। यह हल्की होती है और इन्हें सरलता से सब स्थानों पर ले जाया जा सकता है। प्रतिमा विज्ञान में पूजा आदि के आधार पर इसके चार भेदों का उल्लेख प्राप्त होता है जैसे– नवरात्रि, गणेशपूजा आदि में स्थापित होने वाली मूर्तियाँ।[21]

अचल प्रतिमा– जो प्रतिमाएँ एक स्थान पर स्थिर रहती हैं उन्हें अचल या स्थिर प्रतिमा कहते हैं। पाषाण, काष्ठ, मणि, धातु आदि की प्रतिमाएँ अचल होती हैं। इनकी अर्चना एवं उपासना नित्य होती है पर इनका आह्वान, विसर्जन आदि नहीं होता। गोपीनाथ राव ने अचल प्रतिमा तीन प्रकार की बतलायी है।[22]

1. स्थानक– खड़ी हुई प्रतिमा
2. आसन– बैठी हुई प्रतिमा
3. शयन– लेटी हुई प्रतिमा

इसी प्रकार उपासना, उपकरण आदि के आधार पर भी प्रतिमाओं के विविध भेद किए गए हैं। इस विषयक विस्तृत जानकारी हेतु प्रतिमा विज्ञान (इन्दुमती मिश्र), प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्ति कला (वज्रभूषण श्रीवास्तव), जैन प्रतिमा विज्ञान (मारुति नन्दन तिवारी), हिन्दू और जैन प्रतिमा विज्ञान (पंकजलता श्रीवास्तव) आदि पुस्तकें पठनीय हैं।

प्रतिमाओं का प्राचीन इतिहास

पूर्वकाल से ही प्रतिमा निर्माण के लिए अनेक प्रकार की वस्तुओं का उपयोग होता रहा है। प्राचीन ग्रन्थों में अनेकविध प्रतिमाओं का उल्लेख प्राप्त होता है जैसे कि रत्न प्रतिमा, स्वर्ण प्रतिमा, रजत प्रतिमा, ताम्र प्रतिमा, काष्ठ प्रतिमा, बालु प्रतिमा आदि। भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित अष्टापद तीर्थ में तीर्थंकरों के वर्ण अनुसार रत्न प्रतिमाएँ स्थापित की गई है। उपाध्याय समयसुन्दर रचित शत्रुंजय रास में उस तीर्थ के उद्धार काल में विविध द्रव्यों से निर्मित मूर्तियों का उल्लेख मिलता है।

वैदिक ग्रन्थों में भी इस विषय में विशद चर्चा उपलब्ध होती है। रामायण में एक प्रसंग का उल्लेख करते हुए कहा है कि **'कांचनी मम पत्नीं च दीक्षायज्ञांश्च कर्मणि'**– जब सीता वाल्मीकि के आश्रम में रहती थी उस समय राम ने अश्वमेध यज्ञ में सीता की सोने की प्रतिमा बनवाकर स्थापित की।[23] महाभारत में भीम की लोह प्रतिमा का उल्लेख मिलता है।[24]

श्रीमद् भागवत में कहा गया है कि मिट्टी और शिला की बनी हुई प्रतिमाओं के समक्ष अधिक दिन उपासना करने पर मनुष्यों को प्रसन्न करती हैं।[25] इसमें मिट्टी, काष्ठ, पत्थर, धातु, चन्दन, बालुका, मनोमयी और मणि– ऐसे आठ प्रकार की प्रतिमाओं का भी उल्लेख है।[26]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि की प्रतिमाएँ लोक में दिखानी चाहिए।[27] शुक्रनीति में सैकती, पैष्टी, लेख्या,लेप्या, मृण्मयी, वार्क्षी, पाषाणमयी तथा धातु की बनी हुई प्रतिमाओं का उल्लेख है।[28]

इस प्रकार जैन एवं हिन्दू परम्परावर्ती ग्रन्थों में प्रतिमा की प्राचीनता को सुसिद्ध करने वाले कई सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं। इससे यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि दीर्घ काल से प्रतिमाओं के विविध प्रकार भी प्रचलित रहे हैं।

प्रतिमाएँ किन आसनों में हों?

सामान्य रूप से बैठक की मुद्रा आसन कहलाती है। प्रतिमा विधान में अनेक आसनों (84 तक) के उल्लेख हैं। प्रतिमाएँ प्राय: आठ प्रकार के आसनों में देखी जाती है। उनका सचित्र वर्णन इस प्रकार है–

1. **कायोत्सर्ग प्रतिमा–** जिन प्रतिमाओं में सिर से पाँव तक एक समान खड़ी हुई मुद्रा होती है, वह कायोत्सर्ग प्रतिमा कहलाती है।
2. **पद्मासन प्रतिमा–** जिन प्रतिमाओं में पालथी लगाकर दोनों हाथ गोद में रखे जाते हैं उसे पद्मासन कहते हैं।
3. **बद्धपद्मासन प्रतिमा–** जिन प्रतिमाओं में दायें पंजे को बायीं साथली के ऊपर और बायें पंजे को दायीं साथली के ऊपर रखकर (इसमें दोनों पंजे खुले दिखाई देते हैं) बायें हाथ के ऊपर दायां हाथ गोद में रखा हो, उसे बद्ध पद्मासन कहते हैं। जैन तीर्थंकरों एवं बुद्ध की प्रतिमाएँ प्राय: इसी आसन में होती है।
4. **अर्ध पर्यंकासन प्रतिमा–** जिस प्रतिमा में एक पैर मोड़कर और दूसरे को

नीचे लटकाते हुए रखा जाता है उसे अर्ध पर्यंकासन कहते हैं।

5. **भद्रासन प्रतिमा–** जिस प्रतिमा में भद्रासन पर बैठकर दोनों पैर खुले रखे जाते हैं उसे भद्रासन कहते हैं।
6. **गोपालासन प्रतिमा–** कृष्ण की बंसी बजाते हुए खड़ी मूर्ति गोपालासन कहलाती है।
7. **वीरासन प्रतिमा–** जिस प्रतिमा में एक पैर आधा खड़ा हुआ और दूसरा घुटने से मोड़कर आधी बैठी हुई स्थिति होती है उसे वीरासन कहते हैं।
8. **पर्यंकासन प्रतिमा–** शेषशायी विष्णु अथवा बुद्ध निर्वाण की लेटी हुई मुद्रा पर्यंकासन कहलाती है।

उपलब्ध प्रतिमाओं के कुछ चित्र निम्न प्रकार हैं–

उत्कटासन

पद्मासन

वीरासन

गोपाल आसन

भंगासन

अर्धपर्यंकासन

प्रेतासन

ललित आसन

तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ सामान्यत: दो आसनों में देखी जाती है। 1. खड्गासन अथवा कायोत्सर्ग आसन और 2. पद्मासन।[29] इन्हीं आसनों में तीर्थंकरों का मोक्ष गमन होता है।

तीर्थंकरों का जिस आसन में मोक्ष हुआ, उस आसन में अथवा दूसरे आसन में भी मूर्त्ति बनाई जा सकती है। वर्तमान के चौबीस तीर्थंकरों में प्रथम ऋषभदेव, 12वें वासुपूज्य एवं 22वें नेमिनाथ भगवान पद्मासन में मोक्ष गए। शेष 21 तीर्थंकर खड्गासन में मोक्ष गति को प्राप्त हुए।

जिन प्रतिमाएँ किन लक्षणों से युक्त हो?

जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा वीतराग स्वरूप से युक्त होने के कारण उसमें अनेकों शुभ लक्षण होते हैं। वह सौम्य, प्रफुल्लित, शान्त, वीतराग मुख मुद्रा वाली एवं श्रीवत्सयुक्त खड्गासन या पद्मासन में होनी चाहिए।

वह भार्या से रहित, आयुध आदि शस्त्रों से रहित, चित्तहर्षक, मूंछ-दाढ़ी के बाल से रहित तथा उसके नेत्र अर्ध उन्मीलित होने चाहिए।

तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ छत्र, चामर, भामंडल, अशोक वृक्ष, सिंहासन आदि अष्ट प्रातिहार्यों से युक्त होनी चाहिए। प्रतिमा के नीचे के भाग में नवग्रह हो। प्रतिमा के बायीं ओर यक्षिणी तथा दाहिनी ओर यक्ष होना चाहिए।

क्षेत्रपाल का स्थान पबासन के मध्य में हो। यक्ष – यक्षिणियों की प्रतिमा वाहन, आयुध, वस्त्र, अलंकार, श्रृंगार आदि से संयुक्त होनी चाहिए।

सिंहासन में भी दोनों ओर यक्ष-यक्षिणी, सिंहयुगल, गजयुगल, चंवरधारी देव, चक्रेश्वरी देवी अवश्य बनायें।

जिन प्रतिमाएँ किस वर्ण में निर्मित हो?

अरिहंत प्रभु की प्रतिमाएँ श्वेत अथवा श्याम वर्ण में बनायी जाती है। चौबीस तीर्थंकरों के अपने-अपने वर्ण में भी उनकी प्रतिमाएँ स्थापित की जा सकती है। विशेष रूप से चौबीस तीर्थंकरों के जिनालय में उनकी प्रतिमाएँ अपने वर्ण के अनुसार ही स्थापित करनी चाहिए।

श्वेताम्बर के शिल्प रत्नाकर[30] एवं दिगम्बर परम्परा के प्राचीन लघु चैत्यभक्ति[31] में चौबीस तीर्थंकरों के वर्ण निम्नानुसार बताये गये हैं–

आठवें चन्द्रप्रभु एवं नौवें पुष्पदन्त **श्वेतवर्णी,** सातवें सुपार्श्वनाथ एवं तेईसवें पार्श्वनाथ **नील वर्णी,** छठें पद्मप्रभु एवं बारहवें वासुपूज्य **रक्त वर्णी**, बीसवें मुनिसुव्रत स्वामी एवं बाईसवें नेमिनाथ **हरित वर्णी** तथा पहले आदिनाथ, दूसरे अजितनाथ, तीसरे संभवनाथ, चौथें अभिनंदन, पाँचवें सुमतिनाथ, दसवें शीतलनाथ ग्यारहवें श्रेंयासनाथ, तेरहवें विमलनाथ, चौदहवें अनंतनाथ, पन्द्रहवें धर्मनाथ सोलहवें शांतिनाथ, सत्तरहवें कुन्थुनाथ, अठारहवें अरनाथ, उन्नीसवें मल्लिनाथ, इक्कीसवें नमिनाथ और चौबीसवें महावीर स्वामी **कंचनवर्णी** होते हैं। ये वर्ण शरीर की अपेक्षा से कहे गए हैं आत्मा तो अवर्णी है।

गृह चैत्यालय और संघ चैत्यालय में प्रतिमा की ऊँचाई कितनी हो?

शिल्प ग्रन्थों के निर्देशानुसार गृह चैत्यालय में ग्यारह अंगुल तक ऊँची (9 इंच से कम) प्रतिमा ही विराजमान करनी चाहिए। इससे अधिक ऊँची प्रतिमा श्रावक को पीड़ाकारक होती है।

एक हाथ से छोटी वेदी में स्थिर प्रतिमा या मूलनायक की स्थापना नहीं करनी चाहिए। इसी तरह गृह मंदिर में भी अचल बिम्ब की प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए। गृह मन्दिर में पाषाण की प्रतिमा रखने का भी निषेध किया गया है वहाँ पंच धातु या स्वर्णादि रत्नों की प्रतिमा रखनी चाहिए।

श्रीसंघ के मन्दिर में ग्यारह अंगुल से नौ हाथ पर्यन्त (लगभग 13 फुट) ऊँची प्रतिमा पूजनीय है और इससे अधिक ऊँची अर्थात दस हाथ से अधिक ऊँचाई वाली प्रतिमा मन्दिर के बिना भी पूज्य है।[32]

प्राचीन प्रतिमा के सम्बन्ध में शुभाशुभ फल का विचार

उमास्वामी श्रावकाचार आदि प्रतिष्ठा कल्पों के अनुसार जो प्रतिमा एक सौ वर्ष पहले उत्तम पुरुषों द्वारा स्थापित की गई हो, ऐसी प्रतिमा विकलांग (बेडौल) हो अथवा खण्डित हो तो भी पूज्य होती है। उस प्रतिमा की पूजा का फल निष्फल नहीं होता है।

यदि मूलनायक रूप में स्थापित प्रतिमा का मुख, नाक, नेत्र, नाभि और कमर इन अंशों में से कोई अंग खण्डित हो जाये तो उसका त्याग कर देना चाहिए, किन्तु परिकर का चिह्न खण्डित हो तो पूजा कर सकते हैं उसमें दोष नहीं है।

धातु की या लेप्य से निर्मित प्रतिमा का अंग यदि खण्डित हो जाए, तो उस प्रतिमा का खण्डित अंग पुनः ठीक कर उसकी पूजा कर सकते हैं। किन्तु काष्ठ या पाषाण की प्रतिमा खण्डित हो जाये तो उस मूर्ति के खण्डित अंगों को पुनः सुधारा नहीं जा सकता। प्रतिष्ठित होने के पश्चात किसी भी मूर्ति का पुनरूद्धार नहीं किया जा सकता है।

कदाचित संस्कार निर्माण की आवश्यकता हो तो उस मूर्ति की पुनः पूर्ववत प्रतिष्ठा करनी चाहिए। कहा गया है कि

प्रतिष्ठिते पुनर्बिम्बे, संस्कारः स्यान्न कर्हिचित् ।
संस्कारे च कृते कार्या, प्रतिष्ठा तादृशी पुनः ।।

संस्कृते तुलते चैव, दुष्टस्पृष्टे परीक्षिते।
हृते बिम्बे च लिंगे च, प्रतिष्ठा पुनरेव हि।।

प्रतिष्ठित होने के बाद मूर्ति का संस्कार करना पड़े, तौलनी पड़े, परीक्षा करनी पड़े या चोर चोरी करके ले जाये या दुष्ट व्यक्ति से स्पर्शित हो जाए तो मूर्ति की पुन: प्रतिष्ठा करनी चाहिए।[33]

हीनांग प्रतिमा का फल

शिल्प ग्रन्थों के अनुसार प्रतिमा का कोई भी अंग न्यूनाधिक दोषों से युक्त हो तो उसके निम्न अशुभ फल प्राप्त होते हैं–

- प्रतिमा वक्र नासिका वाली हो तो अत्यन्त दु:खदायी होती है।
- प्रतिमा के अवयव छोटे हों तो क्षयकारक होती है।
- प्रतिमा के नेत्र विकृत हो तो नेत्र विनाशक होती है।
- प्रतिमा का मुख छोटा हो तो भोगों का नाश करती है।
- प्रतिमा की कमर हीन हो तो आचार्य का नाश करती है।
- प्रतिमा की जंघा हीन हो तो भाई, पुत्र एवं मित्र का विनाश करती है।
- प्रतिमा का आसन हीन हो तो ऋद्धि का नाश करती है।
- प्रतिमा हीन हाथ-पैर वाली हो तो धन का नाश करती है।
- प्रतिमा ऊर्ध्वमुख वाली हो तो धन का क्षय करती है।
- प्रतिमा अधोमुख वाली हो तो चिन्ता उत्पन्न करवाती है।
- प्रतिमा की दृष्टि टेढ़ी हो तो स्वदेश का नाश करती है।
- प्रतिमा की दृष्टि ऊँची-नीची हो तो वह विदेश गमन कराने वाली होती है।
- प्रतिमा का आसन विषम हो तो व्याधिकारक होती है।
- प्रतिमा अन्याय से प्राप्त धन से निर्मित हो तो दुष्काल उत्पन्न करती है।
- प्रतिमा न्यूनाधिक अंगवाली हो तो वह स्वपक्ष (प्रतिष्ठा करने वाले) एवं परपक्ष (पूजा करने वाले) उभय पक्षों को कष्ट देने वाली होती है।
- प्रतिमा रौद्र रूप वाली हो तो स्थापन कर्त्ता का नाश करती है।
- प्रतिमा अधिक अंग वाली हो तो शिल्पीकार का नाश होता है।
- प्रतिमा दुर्बल अंग वाली हो तो द्रव्य का नाश होता है।
- प्रतिमा कृश उदर वाली हो तो दुर्भिक्षकारक होती है।
- प्रतिमा तिरछी दृष्टि वाली हो तो अपूजनीय एवं विरोधकारक होती है।

- प्रतिमा गाढ़ दृष्टि वाली हो तो अशुभकारक होती है।
- प्रतिमा अधो दृष्टि वाली हो तो विघ्नकारक और पुत्र का नाश करती है।
- प्रतिमा ऊँची दृष्टि वाली हो तो भार्या का नाश होता है।
- प्रतिमा नेत्र रहित हो तो नेत्र का नाश करती है।
- प्रतिमा बड़े उदर वाली हो तो उदर रोग उत्पन्न करती है।
- प्रतिमा का हृदय कम या अधिक परिमाण वाला हो तो हृदय रोग पैदा करती है।
- प्रतिमा हीन स्कंध वाली हो तो पुत्रनाश कारक मानी गई है।[34]

आचार्य जयसेन के अनुसार जो प्रतिमा 1. रौद्र 2. कृशांग 3. संक्षिप्तांग 4. चिपटि नासिका 5. विरूपक नेत्र 6. हीनमुख 7. महोदर 8. महाहृदय 9. महाअंस 10. महाकटी 11. महपाद 12. हीन जंघा– इन बारह दोषों से रहित हो वह प्रतिमा पूजा करने योग्य होती है किन्तु न्यूनाधिक अंग वाली प्रतिमा की पूजा करने से धन आदि का नाश होता है।[35]

खण्डित प्रतिमा का फल

शिल्प शास्त्रियों के निर्देशानुसार जिनबिम्ब का कोई भी अंग खण्डित हो तो निम्न दुष्फल प्राप्त होते हैं–

1. प्रतिमा के नख खण्डित हो तो शत्रु भय कारक होती है।
2. प्रतिमा की अंगुली खण्डित हो तो देश विनाश कारक होती है।
3. प्रतिमा की भुजाएँ खण्डित हो तो बन्धन कारक होती है।
4. प्रतिमा की नासिका खण्डित हो तो कुल नाशक होती है।
5. प्रतिमा के चरण खण्डित हो तो धन का नाश करती है।
6. प्रतिमा का पाद पीठ खण्डित हो तो स्वजनों के नाश का कारण बनती है।
7. प्रतिमा का चिह्न खण्डित हो तो वाहन नाश कारक होती है।
8. प्रतिमा का परिकर खण्डित हो तो सेवक का नाश करती है।
9. प्रतिमा का छत्र खण्डित हो तो लक्ष्मी नाश में कारण बनती है।
10. प्रतिमा का श्रीवत्स खण्डित हो तो सुख का नाश होता है।
11. प्रतिमा के कर्ण युगल खण्डित हो तो बंधु का नाश होता है।[36]

विभिन्न द्रव्यों की प्रतिमा निर्माण का शुभाशुभ फल

वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता के अनुसार

- लकड़ी या मिट्टी की प्रतिमा- आयु, श्रीबल और विजय प्राप्ति की सूचक है।
- मणिरत्न की प्रतिमा सर्व जन के लिए हितकारी होती है।
- स्वर्ण की प्रतिमा पुष्टि लाभ देती है।
- रजत की प्रतिमा यश प्रदान करती है।
- तांबे की प्रतिमा सन्तान वृद्धि में निमित्त होती है।
- पाषाण की प्रतिमा बनवाने से अत्यधिक भूमि लाभ होता है।[37]

प्रतिमा निर्माण के लिए शुभाशुभ द्रव्य

आचार्य वर्धमानसूरि के निर्देशानुसार चन्द्रकांत और सूर्यकांत आदि सभी जाति के रत्नों की प्रतिमा सर्व गुण वाली समझनी चाहिए।

स्वर्ण, चाँदी और तांबा– इन धातुओं की प्रतिमा श्रेष्ठ होती है, किन्तु कांसा, सीसा एवं कलाई (रांगा) की प्रतिमा कभी भी नहीं बनवानी चाहिए। कुछ आचार्य धातुओं में पीतल की प्रतिमाएँ बनवाने के लिए कहते हैं, किन्तु मिश्र धातु (कांसा आदि) की प्रतिमा बनवाने का निषेध है अत: कितने ही आचार्य पीतल की प्रतिमा बनवाने का निषेध करते हैं।

यदि काष्ठ की प्रतिमा बनवानी हो तो श्रीपर्णी, चंदन, बिल्व, कदंब, लाल चंदन, पियाल, उदुम्बर और क्वचित् शीशम– इन वृक्षों की लकड़ी ली जा सकती है, शेष वृक्षों की वर्जित कही गई है। निर्दिष्ट वृक्षों की जिस शाखा से प्रतिमा बनवाना हो, वह निर्दोष एवं वृक्ष पवित्र भूमि में उगा हुआ होना चाहिए।

अपवित्र स्थान में उत्पन्न चीरा, मसा अथवा गाँठ आदि दोष वाले पत्थर का प्रतिमा हेतु उपयोग नहीं करें, परन्तु प्रतिमा के लिए दोष रहित, मजबूत, सफेद, पीला, लाल, कृष्ण और हरे वर्ण का पत्थर प्रयोग में लें।

पाषाण में संगमरमर अथवा ग्रेनाइट की प्रतिमा बनाना श्रेष्ठ है। निर्दोष दाग रहित श्वेत संगमरमर की प्रतिमा दर्शकों को निश्चय ही प्रफुल्लित करती है।[38]

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि धातु की प्रतिमाओं के लिए उपयोग की जाने वाली धातु नई हो। पुराने बर्तनों आदि को गलाकर उसकी प्रतिमा कदापि न बनवायें, क्योंकि वह महा अशुभ और अनिष्टकारी होती है।

पोली एवं कृत्रिम द्रव्यों की प्रतिमा का निषेध क्यों?

वर्तमान युग में अनेकों कृत्रिम द्रव्यों की प्रतिमाएँ बनने लगी हैं।

प्लास्टिक, एक्रिलिक, नायलोन आदि की प्रतिमा में नाइट लैम्प लगाकर उनका सजावट के रूप में उपयोग किया जा रहा है। प्लास्टर ऑफ पेरिस की भी मूर्तियाँ सामान्यत: देखने में आती हैं। टाइल्स में भी प्रतिमाएँ या भगवान के फोटो लगाये जा रहे हैं, किन्तु इस तरह की प्रतिमाएँ पूजा के लिए उपयुक्त नहीं है।

धातु की प्रतिमा ठोस होना आवश्यक है। उसमें किंचित भी पोलापन नहीं होना चाहिए, अन्यथा भीषण संकटों का सामना करना पड़ सकता है। पोली मूर्तियों की पूजा करना उचित नहीं है, जबकि एक्रिलिक, प्लास्टिक आदि की मूर्तियाँ सामान्यत: पोली ही बनती है। यदि सुवर्ण, चाँदी या पीतल की मूर्तियाँ भी पोली हो तो न उनकी पूजा करनी चाहिए और न ही प्राण प्रतिष्ठा करवानी चाहिए। प्लास्टिक अथवा कृत्रिम रसायनों से निर्मित ठोस प्रतिमा भी पूज्य नहीं है। केवल शुद्ध धातु, काष्ठ अथवा पाषाण की शास्त्रोक्त प्रतिमाएँ ही पूजा-प्रतिष्ठा के योग्य हैं।

जिन मंदिर की गिरती छाया का शुभाशुभ फल

वास्तुसार प्रकरण के अनुसार दिन के दूसरे और तीसरे प्रहर में मंदिर के शिखर एवं ध्वजा की छाया गृहस्थ के मकान पर पड़ती हो तो वह उसके लिए दुखकारक मानी गई है अत: गृहस्थ को मन्दिर के निकट घर बनवाते समय इस निर्देश का ध्यान रखना चाहिए।[39]

प्रस्तुत प्रकरण में यह भी कहा गया है कि गृहस्थ का घर मन्दिर के निकट हो तो दु:खकारक, चौराहे पर हो तो हानिकारक तथा धूर्त्त एवं मन्त्री गृह के समीप हो तो पुत्र और धन का विनाश होता है।[40]

शिल्प रत्नाकर में गृह वास्तु की अपेक्षा यह निर्देश भी दिया गया है कि गृह की पूर्व दिशा में बड़, दक्षिण दिशा में उम्बर, पश्चिम दिशा में पीपल और उत्तर दिशा में भी पीपल का वृक्ष होना अशुभ नहीं है।[41]

क्या करें यदि?

जिनालय जीर्ण अवस्था में हो जाये

जिन मन्दिर का शिखर, दीवार, छत एवं फर्श आदि क्षरण होने लगे, चूना या सीमेन्ट गिरकर गड्ढे हो जाये, जाले आदि लग गये हों, कूड़ा इकट्ठा होने

लगे, दीवारों में छिद्र हो जाये, दरार पड़ जाये, शिखर एवं छत पर काई या वनस्पति उगने लगे तो शीघ्र ही जीर्णोद्धार एवं सफेदी करवानी चाहिए, वरना समाज के लिए पीड़ाकारक होता है।[42]

मन्दिर में अशुद्धि हो जाये

यदि जिनमन्दिर में हड्डी-मांस-चर्बी आदि गिर जाये, सूअर आदि जानवर प्रवेश कर जाये, चाण्डाल आदि अस्पृश्य मनुष्य का प्रवेश हो जाये, बच्चे मल मूत्र आदि कर दें या महिलाएँ असमय में ही अन्तराय में हो जाये तो पूरा मन्दिर धुलवाकर सफेदी करवाना चाहिए। तत्पश्चात विधि पूर्वक अभिषेक, शान्तिधारा विधान, जप एवं हवन आदि अनुष्ठान पूर्वक शुद्धि करके ध्वजारोहण करवाना चाहिए।[43]

जिन प्रतिमा जमीन पर गिर जाये

अभिषेक, प्रक्षाल, पूजन आदि करते समय अथवा विमानोत्सव आदि में प्रतिमा ले जाते समय अथवा अन्य कारण से प्रतिमा नीचे गिर पड़े (खण्डित न हुई हो) तो उस प्रतिमा का 108 कलशों से अभिषेक, शान्तिधारा एवं णमोकार का 108 बार जप करके पुन: यथास्थान विराजमान करनी चाहिए और गुरु से प्रायश्चित्त लेना चाहिए।[44]

प्रतिमा खण्डित होने पर

अभिषेक, प्रक्षाल या पूजन करते समय प्रतिमाजी हाथ से गिर जाये या अन्य कारण से अंग, उपांग और प्रत्यंग खण्डित हो जाए तो उन्हीं भगवान की अन्य प्रतिमा का 1008 कलशों से अभिषेक, शान्तिधारा एवं शान्ति मंत्र का आराधन करना चाहिए तथा खण्डित प्रतिमा को विधिपूर्वक अगाध जल राशि में विसर्जित कर गुरु से प्रायश्चित्त लेना चाहिए।[45] मन्दिरजी में स्थापित प्रतिमा खण्डित हो जाए तो तत्काल जल में विसर्जित करके एकासना, उपवास एवं रसत्याग का प्रायश्चित्त करते हुए शुभ मुहूर्त्त में उन्हीं तीर्थंकर की नूतन प्रतिमा प्रतिष्ठित करना चाहिए, अन्य तीर्थंकर की नहीं।[46]

खण्डित प्रतिमा त्याज्य क्यों?

खण्डित, जली हुई, तड़की हुई तथा फटी हुई प्रतिमा पर मंत्रों का प्रभाव नहीं पड़ता वह अप्रतिष्ठित हो जाती है और उसमें देव शक्ति भी नहीं रहती।[47]

इस सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि जो प्रतिमा प्राचीन हो, अतिशय से सम्पन्न हो, उसकी अंगुली का अग्रभाग, कान या नाक का भाग खण्डित हो जाने पर भी पूज्य हैं किन्तु मस्तक आदि से खण्डित प्रतिमा सर्वथा अपूज्य है, उसे मन्दिर में नहीं रखकर अगाध जल राशि में विधि पूर्वक विसर्जित करना चाहिए।[48]

आलंबन का साधक के मनो-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव होता है। हमारे सामने जैसा आलंबन आदर्श रूप में होता है वैसा ही हमारा जीवन बनता है। इसी हेतु को ध्यान में रखकर जिन प्रतिमा का निर्माण करवाया जाता है। अरिहंत परमात्मा की प्रशांत वीतराग मुद्रा ही साधक के मन को स्थिर एवं उपशांत कर देती है। परंतु कई ऐसे पक्ष भी है जिनके कारण प्रतिमा का प्रभाव शुभ से अशुभ में परिवर्तित हो जाता है। हीनांग या खंडित प्रतिमा इसी का उदाहरण है। इन्हीं सब पक्षों के अध्ययन में यह अध्याय आधारभूत बनते हुए जिन प्रतिमा सम्बन्धी सूक्ष्म तथ्यों का ज्ञान करवाएं यही शुभाशंसा।

सन्दर्भ-सूची

1. *नैक हस्तादितोऽन्यूने, प्रासादे स्थिरता नयेत् ।*
   स्थिरं ना स्थापयेद् गेहे, गृहीणां दुख कृद्धियत् ॥
   शिल्प स्मृति, 6/130
2. *प्रासाद मंडन, 4/4*
3. *आचार दिनकर, पृ. 143*
4. *प्रासाद मंडन, 4/1*
5. *वही, 4/2*
6. *(क) वास्तुसार प्रकरण, 3/44*
   (ख) प्रासाद मंडन, 4/5
7. *वसुनन्दि प्रतिष्ठासार, उद्धृत- वास्तुसार, पृ. 124*
8. *वास्तुसार प्रकरण, 3/39*
9. *वास्तुसार प्रकरण, 3/45-46*
10. *वास्तुमंजरी, वास्तुराज, उद्धृत- देवशिल्प, पृ. 230*
11. *शिल्प रत्नाकर, 4/138-156*
12. *वही, 12/205*

13. वास्तुसार प्रकरण, 3/47
14. प्रासाद मण्डन, पृ. 74-75
15. वास्तुसार प्रकरण, पृ. 133, गा. 45
16. शिल्प रत्नाकर, 5/154
17. अष्टाध्यायी, 5/3/96
18. ऋग्वेद, 10/130/3
19. पतञ्जलि महाभाष्य, पृ. 45
20. श्रीमद्भागवत, 11/27/13
21. प्रतिमा विज्ञान, पृ. 69-70
22. एलीमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, गोपीनाथराव, भा. 1, भूमिका-पृ.18
23. वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड, 99/5/25
24. महाभारत स्त्री पर्व, 12/5/23
25. श्रीमद्भागवत, 10/48/31
26. वही, 11/27/12
27. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, 43/31
28. शुक्रनीति, 4/4/72
29. मध्यकाल में दक्षिण भारत में पद्मासन का एक भेद अर्ध पद्मासन में प्रतिमाएँ बनाई गई। ऐलोरा, पैठण, जिन्तूर एवं अन्य अनेकानेक स्थानों में अर्ध पद्मासन प्रतिमाएँ मिलती है। इस मुद्रा में बैठी हुई प्रतिमा का एक पाँव ऊपर और एक पाँव नीचे रखा जाता है।
30. रक्तौ च पद्म प्रभु वासुपूज्यौ, शुक्लौ च चंदप्रभु पुष्प नंदनौ।
कृष्णौ पुनः नेमि मुनिसुव्रतौ, नीलौ श्री मल्लिपार्श्वो कनकत्विसः षोडशः॥
शिल्प रत्नाकर, 12/5-6
31. द्वौ कुन्देन्दु तुषार हार धवलौ, द्वाविन्द्र नील प्रभौ।
द्वौ बन्धूक समप्रभौ जिनवृषौ, द्वौ च प्रियंगु प्रभौ॥
शेषाः षोडश जन्म मृत्यु रहिताः, सन्तप्त हेम प्रभा।
स्ते सज्ज्ञान दिवाकराः सुर नुताः, सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः॥
प्राचीन लघुचैत्य भक्ति, श्लो. 5
32. (क) वास्तुसार प्रकरण, पृ. 82
(ख) उमास्वामी श्रावकाचार, श्लो. 100
(ग) शिल्प रत्नाकर, 11/11

33. (क) उमास्वामी श्रावकाचार, 108-110
(ख) वास्तुसार प्रकरण, बिम्ब परीक्षा, पृ. 99
(ग) आचार दिनकर, पृ. 142
34. (क) वास्तुसार प्रकरण, गा. 44-51
(ख) आचारदिनकर, पृ. 142-143
35. आचार्य जयसेन प्रतिष्ठा पाठ, श्लो. 183
36. वास्तुसार प्रकरण, गा. 44-51
37. आयुः श्रीबल जयदा, दारूमयी मृण्मयी तथा प्रतिमा।
लोक हिताय मणिमयी, सौवर्णी पुष्टिदा भवती॥
रजतमयी कीर्तिकरी, प्रजाविवृद्धिं करोति ताम्र मयी।
भूलाभं तु महान्तं, शैली प्रतिमाथवा लिंगम्॥
बृहत्संहिता, 4/5, पृ. 400
38. आचार दिनकर, पृ. 143
39. पढ़मंत जाम वज्जिय, धयाईदुति पहर संभवाछाया।
दुहहेऊ णायव्वा, तओ पयत्तेण वज्जिज्जा॥
वास्तुसार प्रकरण, पृ. 76
40. दुःखं देवकुलासन्ने, गृहे हानिश्चतुष्पथे।
धूर्त्तमत्यगृहाभ्याशे, स्यातां सुतधनक्षयौ॥
(क) वास्तुसार प्रकरण, पृ. 80
(ख) कुन्दकुन्द श्रावकाचारसंग्रह,
श्लो. 102, पृ. 82
41. यामयोर्वेश्मनि छायां, वृक्षप्रासादजां त्यजेत्।
सौम्यादितः शुभाः, प्लक्षवटोदुम्बरपिप्पलाः॥
शिल्प रत्नाकर, 5/206
42. मण्डलं जालकश्चैव, कीलकं सुषिरं तथा।
छिद्रं संधिश्च काराश्च, महादोषा इति स्मृताः॥
शिल्प रत्नाकर, 5/132
43. दूषितेऽस्थ्यादिभिर्देव, धाम्न्यस्पृश्य-जनैरपि।
संशोध्य सकलंधाम, धुत्वा धुम्रध्वजांकुरैः।
सिक्त्वा च सुधया देवं, तैरेव स्नापयेद् घटैः॥
जिनसंहिता, 8/28

44. *पतिते जिनबिम्बेऽष्ट, शतेन स्नापयेद् घटैः।*
अष्टोत्तरशतं कुर्यान्, मूलमंत्रेण चाहुतीः॥
वही, 8/24

45. *स्नापयेदंगभंगेषु, सहस्रेण जिनेश्वरम्,*
होमं वा पातवत् कुर्याद्, भग्नं चांग सुसेवयेत्।
ततो जलाधिवासादि, प्रतिष्ठापन माचरेत्॥
वही, अ. 8

46. *स्थापिता चैव या मूर्ति, र्व्यंगिता चेद्विसर्जयेत्।*
तन्मूर्तिः प्रकर्तव्या, नान्यमूर्तितं प्रवेशयेत्॥
शिल्पस्मृति, 6/151

47. *या खण्डिताश्च दग्धाश्च, विशीर्णा स्फुटितास्तथा।*
न ता सामान्य-संस्कारो, गताश्च तत्र देवता॥
शिल्प स्मृति, 6/158

48. *जीर्णं चातिशयोपेतं, तद् व्यङ्गमापि पूजयेत्।*
शिरोहीनं न पूज्यं, स्यान् निक्षेप्यं तन्नदादिषु॥
उमास्वामि श्रावकाचार, 111

●

अध्याय-9

किसे-कौनसे तीर्थंकर की प्रतिमा भरवानी चाहिए?

जब किसी नगर में जिन मंदिर निर्माण का विचार किया जाता है तब यह भी सुनिश्चित कर लिया जाता है कि मंदिर के मूल नायक कौन से तीर्थंकर होंगे? मूलनायक के नाम से ही मंदिर का नाम प्रचलित होता है। प्रतिष्ठा कल्पों में इस विषयक स्पष्ट निर्देश उपलब्ध होते हैं। तदनुसार प्रतिमा स्थापन कर्त्ता की जन्म राशि एवं नक्षत्रादि से तीर्थंकर की नाम राशि का मिलान करना चाहिए। इसी के साथ नगर या शहर के नाम की राशि से भी तीर्थंकर प्रभु की राशि का मिलान करना चाहिए। यह राशि मिलान तीर्थंकर की नवांश राशि से भी किया जाना चाहिए। इस विषय में प्रतिष्ठाचार्य अथवा ज्योतिर्विद् मुनियों से विनय पूर्वक निवेदन करके समुचित मार्गदर्शन लेना चाहिए। उसके बाद ही मूलनायक तीर्थंकर का निर्णय करना चाहिए।

सामान्यतया निर्माण कर्त्ता की नाम राशि जिस तीर्थंकर के समान हो उसे उन्हीं तीर्थंकर की प्रतिमा बनवाना या पधराना चाहिए। श्री संघ का जिनालय सिर्फ उपासकों के लिए ही नहीं, सारे नगर के लिए पुण्य वर्धक होता है अतएव नगर एवं निर्माण कर्त्ता की राशि से तीर्थंकर की राशि का मिलान करना भी जरूरी होता है।

यदि प्रतिमा की स्थापना करने वाला गृहस्थ किसी विशिष्ट तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापित करना चाहता है और राशि मिलान नहीं हो रहा हो तो ऐसी स्थिति में उस तीर्थंकर की प्रतिमा को मूलनायक के रूप में न रखकर अन्य वेदी में स्थापित करनी चाहिए।

चौबीस तीर्थंकरों के जन्म नक्षत्रादि का कोष्ठक

क्र.	तीर्थंकर	नक्षत्र	राशि	योनि	गण	नाड़ी	अशुभ राशि	वर्ण	वर्ग	हंस
1.	ऋषभनाथ	उ.षा.	धनु	नकुल	मनुष्य	अंत्य	वृषभ, मकर	क्षत्रिय	गरूड़	अग्नि-पृथ्वी
2.	अजितनाथ	रोहिणी	वृषभ	सर्प	मनुष्य	अंत्य	मेष, धनु	वैश्य	गरूड़	भूमि
3.	संभवनाथ	मृगशिर	मिथुन	सर्प	देव	मध्य	कर्क, वृश्चिक, कुंभ	शूद्र	घेटा	वायु-पृथ्वी
4.	अभिनंदन स्वामी	पुनर्वसु	मिथुन	बिडाल	देव	आद्य	कर्क, वृश्चिक, कुंभ	शूद्र	गरूड़	वायु-जल
5.	सुमतिनाथ	मघा	सिंह	मूषक	राक्षस	अंत्य	मकर	क्षत्रिय	घेटा	अग्नि
6.	पद्मप्रभ	चित्रा	कन्या	व्याघ्र	राक्षस	मध्य	मेष, मकर	वैश्य	चूहा	भूमि-वायु
7.	सुपार्श्वनाथ	विशाखा	तुला	व्याघ्र	राक्षस	अंत्य	वृश्चिक, मीन	शूद्र	घेटा	वायु-जल
8.	चन्द्रप्रभ	अनुराधा	वृश्चिक	हरिण	देव	मध्य	मिथुन, कर्क, तुला	विप्र	सिंह	जल
9.	पुष्पदंत	मूल	धनु	श्वान	राक्षस	आद्य	वृष, मकर	क्षत्रिय	घेटी	अग्नि
10.	शीतलनाथ	पूर्वाषाढ़ा	धनु	वानर	मनुष्य	मध्य	वृष, मकर	क्षत्रिय	घेटा	अग्नि
11.	श्रेयांसनाथ	श्रवण	मकर	वानर	देव	अंत्य	सिंह, कन्या, धनु	वैश्य	घेटा	भूमि
12.	वासुपूज्य	शतभिषा	कुंभ	अश्व	राक्षस	आद्य	मिथुन, कर्क, मीन	शूद्र	मृग	वायु
13.	विमलनाथ	उ.भा.	मीन	गौ	मनुष्य	मध्य	कर्क, तुला, कुंभ	विप्र	मृग	जल

क्र.	तीर्थंकर	नक्षत्र	राशि	योनि	गण	नाड़ी	अशुभ राशि	वर्ण	वर्ग	हंस
14.	अनंतनाथ	रेवती	मीन	हस्ति	देव	अंत्य	कर्क, तुला, कुंभ	विप्र	गरुड़	जल
15.	धर्मनाथ	पुष्य	कर्क	अज	देव	मध्य	मिथुन,वृश्चिक, कुंभ, मीन	विप्र	सर्प	जल
16.	शांतिनाथ	अश्विनी	मेष	अश्व	देव	आद्य.	वृष, कन्या	क्षत्रिय	घेटा	अग्नि
17.	कुन्थुनाथ	कृतिका	वृषभ	अज	राक्षस	अंत्य	मेष, धनु	वैश्य	मार्जर	भूमि-अग्नि
18.	अरनाथ	रेवती	मीन	हस्ति	देव	अंत्य	कर्क, तुला, कुंभ	विप्र	गरुड़	जल
19.	मल्लिनाथ	अश्विनी	मेष	अश्व	देव	आद्य.	वृष, कन्या	क्षत्रिय	चूहा	अग्नि
20.	मुनिसुव्रत	श्रवण	मगर	वानर	देव	अंत्य	सिंह, कन्या, धनु	वैश्य	चूहा	भूमि
21.	नमिनाथ	अश्विनी	मेष	अश्व	देव	आद्य.	वृष, कन्या	क्षत्रिय	सर्प	अग्नि
22.	नेमिनाथ	चित्रा	कन्या	व्याघ्र	राक्षस	मध्य	मेष, मकर	वैश्य	सर्प	भूमि-वायु
23.	पार्श्वनाथ	विशाखा	तुला	व्याघ्र	राक्षस	अंत्य	वृश्चिक, मीन	शूद्र	चूहा	वायु-पृथ्वी
24.	वर्धमान	उ.फा.	कन्या	गौ	मनुष्य	आद्य.	मेष, मकर	वैश्य	चूहा	भूमि-वायु

तीर्थंकर राशि मेलापक चक्र

यह राशि मेलापक चक्र शासन प्रभाकर, आचार्य प्रवर श्री हंससागर सूरीश्वर जी महाराज साहब के शिष्यरत्न, पन्यास प्रवर नरेन्द्र सागरजी महाराज द्वारा संशोधित है। तदनुसार किसी संघ या गृहस्थ को अपनी जन्म राशि एवं नक्षत्र चरण के अनुसार कौनसे तीर्थंकर की प्रतिमा भरवानी चाहिए? उसकी स्पष्ट समझ निम्न प्रकार है–

मेष राशि– अश्विनी नक्षत्र (चू-चे-चो) 1-2-3 चरण में जन्म लेने वाले व्यक्ति के लिए 15-19-20-21-23वें तीर्थंकर भगवान श्रेष्ठ हैं तथा 8वें तीर्थंकर उसके लिए मध्यम है।

अश्विनी नक्षत्र (ला) चौथे चरण में जन्म लेने वाले व्यक्ति के लिए 3-5-7-9-10-11-16वें तीर्थंकर पधराना या भरवाना श्रेष्ठ है और 13वें तीर्थंकर मध्यम है।

भरणी नक्षत्र (ली-लू-ले-लो) 5-6-7-8 वें चरण में जन्म लेने वाले गृहस्थ के लिए 5-7-9-11-16वें तीर्थंकर की प्रतिमा भरवाना या प्रतिष्ठा करवाना श्रेष्ठ है और 12वें भगवान मध्यम है। इसी प्रकार अन्य नक्षत्र एवं चरणादि की समझ रखनी चाहिए।

अकारादि क्रम से राशि मिलापक सारणी

नाम का आद्याक्षर	नक्षत्र	चरण	राशि	शुभ तीर्थंकर	सम तीर्थंकर
अ-आ-अं	कृतिका	9	मेष	8,12,13,19	4
इ-उ-ए	कृतिका	1-2-3	वृषभ	6,8,12,13,17, 24	4
ओ-औ	रोहिणी	4	वृषभ	6,8,12,13,17, 19,20,23,24	2-4-14-18
का-की-क्ष	मृगशीर्ष	1-2	मिथुन	6,15,19,20 से 24	17
कु	आर्द्रा	3	मिथुन	6,15,19,20 से 24	17
के-को	पुनर्वसु	7-8	मिथुन	6,15,20,22,23	17
ख	श्रवण	4-5-6-7	मकर	6,15,19,20, 21,22,23,24	17

नाम का आद्याक्षर	नक्षत्र	चरण	राशि	शुभ तीर्थंकर	सम तीर्थंकर
ग-गी	धनिष्ठा	8-9	मकर	19 से 21,23,24	17
गू-गे	धनिष्ठा	1-2	कुंभ	19 से 21,23,24	17
गो	शतभिषा	3	कुंभ	6.15,20,22,23	17
घ-ङ	आर्द्रा	4.5	मिथुन	6,15,19 से 24	17
चा-ची	रेवती	8-9	मीन	6,15,17,19,20, 21,22,24	8
चू-चे-चो	अश्विनी	1-2-3	मेष	15,19,20,21,23	8
छ	आर्द्रा	1	मिथुन	6,15,17,19 से 24	8
ज	उत्तराषाढ़ा	2-3	मकर	6,15,19,21,22,24	8
झ	उत्तराभाद्रा	4	मीन	6,15,17,19, 21,22,24	8
टा-टी-टू	पूर्वाफाल्गुनी	6-7-8	सिंह	1,2,4,5,7,9	0
टे	उत्तराफाल्गुनी	9	सिंह	1,2,3,5,7,10,11, 14,15,16,18,22	0
टो	उत्तराफाल्गुनी	1	कन्या	1,2, 5,7,10,11,14 से 16,18,22	0
ठ	हस्त	7	कन्या	1,2,3,5,7,11,14 से 16,18,22	0
डा	पुष्य	5	कर्क	1,2,5,7,9,10,11, 14,15,16,18,21,22	0
डी-डू-डे-डो	आश्लेषा	6-7-8-9	कर्क	9,10,15,16,21,22	0
ढ	पूर्वाषाढ़ा	8	धनु	1,2,4,5,7,9 से 11,14,18,21	0

नाम का आद्याक्षर	नक्षत्र	चरण	राशि	शुभ तीर्थंकर	सम तीर्थंकर
ण	हस्त	1	कन्या	1,2,3,5,7,10,11, 14,15,16,18,22	0
ता	स्वाति	1	तुला	3,6,9,10,12, 13,16,19,24	15,21,22
ती-तू-ते	विशाखा	7-8-9	तुला	3,6,9,10,12,13, 16,19,23, 24	15,21,22
तो	विशाखा	1	वृश्चिक	3,6,7,9,10,12,13, 16,19,23, 24	15,21,22
थ	उत्तराभाद्र	5	मीन	3,5,6,9,10,11,13, 16,19,20,24	15,21,22
द	पूर्वाभाद्र	9	कुंभ	3,5,6,7,10,11 13,16,20,23	15-22
दी	पूर्वाभाद्र	1	मीन	3,5,6,10,1113 16,20	15-22
दू	उत्तराभाद्र	2	मीन	3,5,6,10,11,13, 16,19,20,24	15,21,22
दे-दो	रेवती	1-7	मीन	3,5,6,9,10,11,13, 16,19,20,24	15-21,22
ध	पूर्वाषाढ़ा	1	धनु	5,7,9 से 12,19, 20,23,24	21
ना-नी-नु-ने	अनुराधा	2-3-4-5	वृश्चिक	5,7,9,11,12,19, 20,23,24	21
नो	ज्येष्ठा	1	वृश्चिक	3,5,6,7,9 से 13, 16,19,20,23,24	15-21-22
पा-पी	उत्तराफाल्गुनी	2-3	कन्या	3,5,7,10,11 13,16	1,20 23,24

नाम का आद्याक्षर	नक्षत्र	चरण	राशि	शुभ तीर्थंकर	सम तीर्थंकर
पू	हस्त	4	कन्या	3,5,6,10,11,13,16	1,20 23,24
पे-पो	चित्रा	8-9	कन्या	5,7,9,11,12	6,19 20,23 24
फ	पूर्वाषाढ़ा	7	धनु	5,7,9,10,11,12	19,20 23,24
बा-बी-बू	रोहिणी	5-6-7	वृषभ	3,5,7,11,16,17	12,13
बे-बो	मृगशीर्ष	8-9	वृषभ	3,5,7,11,16,17	12,13
भा-भी	मूल	3-4	धनु	3,5,7,9 से 11, 13,16	6,20 23
भू	पूर्वाषाढ़ा	5	धनु	5,7,9 से 12	19,20 23,24
भे	उत्तराषाढ़ा	9	धनु	3,9,10,12, 13,16	6,19, 24
भो	उत्तराषाढ़ा	1	मकर	3,12,13,16	6,19, 24
मा,मी,मू,मे	मघा	1-2,3-4	सिंह	3,5,9,10,12,13,16	6,19, 24
मो	पूर्वाफाल्गुनी	5	सिंह	5,7,9,11,12	19,20, 23,24
या-यी-यू	ज्येष्ठा	7-8-9	वृश्चिक	3,5,7,9 से 11, 16,17	12-13
ये-यो	मूल	1-2	धनु	3,5,7,9 से 11, 16,17	13
र-रि-ऋ	चित्रा	1-2	तुला	5,7,9,11,17	12

नाम का आद्याक्षर	नक्षत्र	चरण	राशि	शुभ तीर्थंकर	सम तीर्थंकर
रु-रे रो	स्वाति	3-4-5	तुला	3,6,10,16	12-13
ला	अश्विनी	4	मेष	3,5,7,9,10,11,16	13
ली-लू-ले-लो	भरणी	5-6-7-8	मेष	5,7,9,11,16	12
वा-वी-वू	रोहिणी	5-6-7	वृषभ	3,5,7,11,16,17	12-13
वे-वो	मृगशीर्ष	8-9	वृषभ	3,5,7,11,16,17	12-13
श	उत्तराभाद्र	3	मीन	1,2,4,8,14,17,18	3,5,9 10,11, 16
प	हस्त	5	कन्या	1,2,8,14,17,18	3,5,7, 10,11 16
सा-सी-सू	शतभिषा	4-5-6	कुंभ	1,2,8,14,17,18	3,5,7, 10,11, 16
से-सो	पूर्वाभाद्र	7-8	कुंभ	1,2,8,14,17,18	3,5,7, 10,11 16
ह-हा	पुनर्वसु	9	मिथुन	1,2,4,8,14,17,18	3,5,7, 10,11, 16
हि-ही	पुनर्वसु	1	कर्क	1,2,8,14,17,18	5,7, 10,11, 16
हू-हे-हो	पुष्य	2-34	कर्क	1,2,8,14,17,18	5,7,9, 10,11, 16

दिगम्बर परम्परानुसार (देव शिल्प पृ. 374-385) चौबीस तीर्थंकर एवं प्रतिमा स्थापनकर्त्ता की नवांश राशि का मिलान चक्र

मेष

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
1.	चु	पुष्पदंत	सुमतिनाथ, शीतलनाथ	आदिनाथ, अजितनाथ, श्रेयांसनाथ, कुन्थुनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, वासुपूज्य
2.	चे	—	पद्मप्रभ, नेमिनाथ, महावीर, मुनिसुव्रत	विमलनाथ, वासुपूज्य
3.	चो	पार्श्वनाथ	धर्मनाथ, सुपार्श्वनाथ	मल्लिनाथ, नमिनाथ, शांतिनाथ, अरनाथ, अनंतनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ
4.	ला	शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ, सुमतिनाथ, विमलनाथ	चन्द्रप्रभु, अनंतनाथ, अरनाथ	अजितनाथ, कुन्थुनाथ
5.	ली	शांतिनाथ, शीतलनाथ	मल्लिनाथ, नमिनाथ, आदिनाथ, पुष्पदंत	पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन, अजितनाथ, कुन्थुनाथ
6.	लू	सुपार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ, संभवनाथ	पार्श्वनाथ, मुनिसुव्रत, अजितनाथ, कुन्थुनाथ, अभिनंदन	धर्मनाथ
7.	ले	वासुपूज्य, संभवनाथ	अभिनंदन	सुमतिनाथ, धर्मनाथ, चन्द्रप्रभ
8.	लो	शीतलनाथ, विमलनाथ, सुमतिनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत अनंतनाथ, अरनाथ धर्मनाथ	पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
9.	अ	शांतिनाथ, मल्लिनाथ	सुमतिनाथ, नेमिनाथ	श्रेयांसनाथ, नमिनाथ, मुनिसुव्रत, पद्मप्रभ, महावीर, सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ

वृषभ

1.	इ	वासुपूज्य, अजितनाथ, कुन्थुनाथ	महावीर, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ	चंद्रप्रभ, नेमिनाथ
2.	उ	अभिनंदन स्वामी, सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ	संभवनाथ, चंद्रप्रभ, अरनाथ, आदिनाथ, पुष्पदंत, शीतलनाथ	विमलनाथ, अनंतनाथ
3.	ए	पुष्पदंत, शीतलनाथ, शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	चन्द्रप्रभ, आदिनाथ	श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रत, धर्मनाथ
4.	ओ	कुन्थुनाथ	अजितनाथ, सुमतिनाथ, मुनिसुव्रत, आदिनाथ, पुष्पदंत, शीतलनाथ	वासुपूज्य, श्रेयांसनाथ
5.	वा	संभवनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य	अभिनंदन, पद्मप्रभु, नेमिनाथ, महावीर, मुनिसुव्रत	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ
6.	वी	सुपार्श्वनाथ, वासुपूज्य	पार्श्वनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	विमलनाथ, शांतिनाथ, धर्मनाथ, अनंतनाथ,
7.	वू	—	विमलनाथ, शांतिनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	सुमतिनाथ, चन्द्रप्रभ, अजितनाथ, कुन्थुनाथ
8.	वे	—	शांतिनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ, शीतलनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत, मल्लिनाथ, नमिनाथ, संभवनाथ, अजितनाथ, कुन्थुनाथ

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
9.	वो	सुपार्श्वनाथ, कुन्थुनाथ, श्रेयांसनाथ संभवनाथ, पार्श्वनाथ अजितनाथ	मुनिसुव्रत स्वामी अभिनंदन स्वामी	धर्मनाथ

मिथुन

1.	का	वासुपूज्य, संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी	सुमतिनाथ, चन्द्रप्रभ	धर्मनाथ
2.	की	—	महावीर	विमलनाथ, धर्मनाथ, शीतलनाथ, आदिनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, सुमतिनाथ, पुष्पदंत, पद्मप्रभ
3.	कु	—	मुनिसुव्रत, महावीर, नेमिनाथ, सुमतिनाथ, श्रेयांसनाथ	सुपार्श्वनाथ, शांतिनाथ नमिनाथ, मल्लिनाथ, पद्मप्रभ, पार्श्वनाथ, विमलनाथ
4.	घ	कुन्थुनाथ, महावीर, नेमिनाथ, अजितनाथ, सुपार्श्वनाथ, वासुपूज्य	पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ	चंद्रप्रभ
5.	ङ	—	संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी, सुपार्श्वनाथ	पार्श्वनाथ, विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, शीतलनाथ, आदिनाथ, पुष्पदंत, चंद्रप्रभ
6.	छ	—	मुनिसुव्रत स्वामी, श्रेयांसनाथ	मल्लिनाथ, नमिनाथ, धर्मनाथ, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत, शांतिनाथ, आदिनाथ, शीतलनाथ

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
7.	के	—	सुमतिनाथ, कुन्थुनाथ	अजितनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी वासुपूज्य, आदिनाथ, श्रेयांसनाथ, शीतलनाथ, पुष्पदंत
8.	को	नेमिनाथ, महावीर, मुनिसुव्रत स्वामी वासुपूज्य	संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी	श्रेयांसनाथ, पद्मप्रभ, विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ
9.	हा	सुपार्श्वनाथ	पार्श्वनाथ, वासुपूज्य	धर्मनाथ, शांतिनाथ, विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ

कर्क

1.	ही	सुमतिनाथ, चंद्रप्रभ, शांतिनाथ	विमलनाथ,अनंतनाथ, अरनाथ,मल्लिनाथ, नमिनाथ	कुन्थुनाथ, अजितनाथ
2.	हू	शीतलनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत	पद्मप्रभ, महावीर नेमिनाथ, कुन्थुनाथ संभवनाथ, अजितनाथ, अभिनंदन
3.	हे	सुपार्श्वनाथ	पार्श्वनाथ, धर्मनाथ	श्रेयांसनाथ, कुन्थुनाथ संभवनाथ, मुनिसुव्रत, अजितनाथ, अभिनंदन स्वामी
4.	हो	चंद्रप्रभ, धर्मनाथ		सुमतिनाथ, संभवनाथ, वासुपूज्य, अभिनंदन स्वामी
5.	डा	धर्मनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ,आदिनाथ, पुष्पदंत	विमलनाथ	सुमतिनाथ, शीतलनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
6.	डी	मल्लिनाथ, नमिनाथ	मुनिसुव्रत स्वामी	सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, श्रेयांसनाथ, शांतिनाथ, सुपार्श्वनाथ
7.	डू	—	अजितनाथ, कुन्थुनाथ, महावीर, पद्मप्रभ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ	वासुपूज्य, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ
8.	डे	—	अनंतनाथ, अरनाथ पुष्पदंत, आदिनाथ, पार्श्वनाथ, विमलनाथ अभिनंदन	शीतलनाथ, सुपार्श्वनाथ, संभवनाथ
9.	डो	धर्मनाथ, आदिनाथ, पुष्पदंत, मल्लिनाथ	नमिनाथ, चंद्रप्रभ	मुनिसुव्रत स्वामी, शांतिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ

सिंह

1.	मी	सुमतिनाथ, आदिनाथ, पुष्पदंत, शीतलनाथ	—	अजितनाथ, श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रत, वासुपूज्य, कुन्थुनाथ
2.	मा	संभवनाथ, महावीर, अभिनंदन स्वामी, पद्मप्रभ, नेमिनाथ	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ	श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी वासुपूज्य
3.	मू	—	धर्मनाथ	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ, सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, वासुपूज्य

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
4.	मे	सुमतिनाथ, विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	चन्द्रप्रभ	अजितनाथ, कुन्थुनाथ
5.	मो	आदिनाथ, पुष्पदंत, शीतलनाथ शांतिनाथ	पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ	संभवनाथ, अभिनंदन, अजितनाथ, कुन्थुनाथ
6.	टा	—	अभिनंदन, धर्मनाथ	पार्श्वनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, अजितनाथ, कुन्थुनाथ, संभवनाथ, सुपार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ
7.	टी	अभिनंदन	धर्मनाथ	चंद्रप्रभ, वासुपूज्य, सुमतिनाथ, संभवनाथ
8.	टू	आदिनाथ, पुष्पदंत, अनंतनाथ, अरनाथ, धर्मनाथ	विमलनाथ	शीतलनाथ, सुमतिनाथ, महावीर, नेमिनाथ
9.	टे	मल्लिनाथ, नमिनाथ	—	मुनिसुव्रत स्वामी, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, पार्श्वनाथ, सुमतिनाथ, श्रेयांसनाथ, सुपार्श्वनाथ

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम

कन्या

1.	टो	अजितनाथ,कुन्थुनाथ महावीर, पद्मप्रभ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ	वासुपूज्य	चन्द्रप्रभ, सुपार्श्वनाथ
2.	पा	संभवनाथ अभिनंदन स्वामी सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ	अनंतनाथ, अरनाथ, पुष्पदंत, शीतलनाथ, आदिनाथ	विमलनाथ, चन्द्रप्रभ
3.	पी	श्रेयांसनाथ मुनिसुव्रत स्वामी	आदिनाथ, पुष्पदंत, शीतलनाथ, शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	धर्मनाथ, चंद्रप्रभ
4.	पू	सुमतिनाथ	अजितनाथ, आदिनाथ, पुष्पदंत, शीतलनाथ	श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, वासुपूज्य, कुन्थुनाथ
5.	षा	संभवनाथ,अभिनंदन, पद्मप्रभ, नेमिनाथ, महावीर, श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, वासुपूज्य	—	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ
6.	ण	पार्श्वनाथ	वासुपूज्य	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ, शांतिनाथ
7.	ठ		चंद्रप्रभ, विमलनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, अनंतनाथ, नमिनाथ, अजितनाथ, कुन्थुनाथ	सुमतिनाथ, शांतिनाथ

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
8.	पे	पद्मप्रभ, महावीर, नमिनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत शांतिनाथ, मल्लिनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी	अजितनाथ, कुन्थुनाथ
9.	पो	सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ अभिनंद, श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी	—	कुन्थुनाथ, धर्मनाथ

तुला

1.	रा	वासुपूज्य, संभवनाथ	अभिनंदन स्वामी	सुमतिनाथ, धर्मनाथ, चन्द्रप्रभु
2.	री	—	शीतलनाथ, विमलनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत, अनंतनाथ, अरनाथ, धर्मनाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ
3.	रु	—	श्रेयांसनाथ, शांतिनाथ, सुमतिनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी	मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, सुपार्श्वनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ
4.	रे	वासुपूज्य, सुपार्श्वनाथ	अजितनाथ, कुन्थुनाथ, महावीर, पद्मप्रभ, पार्श्वनाथ, नमिनाथ	चन्द्रप्रभु
5.	रो	संभवनाथ, सुपार्श्वनाथ	अभिनंदन स्वामी, पार्श्वनाथ	विमलनाथ, शीतलनाथ अनंतनाथ, अरनाथ, पुष्पदंत, आदिनाथ, चन्द्रप्रभ

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
6.	ता	—	श्रेयांसनाथ, शांतिनाथ, नमिनाथ	मुनिसुव्रत स्वामी, मल्लिनाथ, धर्मनाथ, शीतलनाथ, चन्द्रप्रभु, पुष्पदंत, आदिनाथ
7.	ती	—	कुन्थुनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य	सुमतिनाथ, शीतलनाथ
8.	तू	नेमिनाथ, श्रेयांसनाथ	पद्मप्रभ, महावीर, मुनिसुव्रत स्वामी, संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ
9.	ते	सुपार्श्वनाथ, वासुपूज्य	पार्श्वनाथ, धर्मनाथ	शांतिनाथ, नमिनाथ, विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ

धनु

1.	ये	सुमतिनाथ, शीतलनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत	श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, मुनिसुव्रत, अजितनाथ, कुन्थुनाथ
2.	यो	—	श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य विमलनाथ	अनंतनाथ, अरनाथ मुनिसुव्रत, संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी, पद्मप्रभ, नेमिनाथ, महावीर
3.	भा	—	वासुपूज्य, धर्मनाथ, सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ
4.	भी	सुमतिनाथ, विमलनाथ अनंतनाथ, अरनाथ शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	चन्द्रप्रभ	अजितनाथ, कुन्थुनाथ

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
5.	भू	आदिनाथ, पुष्पदंत, शीतलनाथ, शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	—	पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन, अजितनाथ, कुन्थुनाथ
6.	धा	—	श्रेयांसनाथ, धर्मनाथ, सुपार्श्वनाथ, संभवनाथ	मुनिसुव्रतनाथ, पार्श्वनाथ अजितनाथ, कुन्थुनाथ, अभिनंदन स्वामी
7.	फा	—	वासुपूज्य, संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी	सुमतिनाथ, धर्मनाथ, चन्द्रप्रभ
8.	ढ़ा	आदिनाथ, पुष्पदंत, अनंतनाथ, अरनाथ	विमलनाथ, शीतलनाथ, सुमतिनाथ	पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ
9.	भे	शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, सुमतिनाथ	श्रेयांसनाथ, नेमिनाथ	पद्मप्रभ, महावीर, सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ

वृश्चिक

1.	तो	सुमतिनाथ, विमलनाथ, शांतिनाथ, नमिनाथ	चंद्रप्रभ, मल्लिनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ	कुन्थुनाथ, अजितनाथ
2.	ना	शीतलनाथ	पुष्पदंत, नेमिनाथ, आदिनाथ, शांतिनाथ, नमिनाथ	मल्लिनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, संभवनाथ, कुन्थुनाथ, अजितनाथ, अभिनंदन स्वामी
3.	नी	—	सुपार्श्वनाथ, धर्मनाथ, पार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ, कुन्थुनाथ, संभवनाथ	मुनिसुव्रत स्वामी अजितनाथ, अभिनंदन स्वामी
4.	नू	—	सुमतिनाथ, धर्मनाथ, वासुपूज्य, संभवनाथ	चन्द्रप्रभ, अभिनंदन स्वामी

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
5.	ने	शीतलनाथ, विमलनाथ, धर्मनाथ, सुमतिनाथ	पुष्पदंत, अनंतनाथ, आदिनाथ, अरनाथ	नेमिनाथ, पद्मप्रभ, महावीर
6.	नो	सुमतिनाथ	शांतिनाथ, नमिनाथ, श्रेयांसनाथ	मुनिसुव्रत, मल्लिनाथ, सुपार्श्वनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर
7.	या	—	सुपार्श्वनाथ, वासुपूज्य	अजितनाथ, कुन्थुनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, पद्मप्रभ, नेमिनाथ, चंद्रप्रभ
8.	यी	—	विमलनाथ, शीतलनाथ, सुपार्श्वनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, आदिनाथ, पुष्पदंत	पार्श्वनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन, चंद्रप्रभ
9.	यू	शीतलनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत, शांतिनाथ, धर्मनाथ, चन्द्रप्रभ	श्रेयांसनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ, मुनिसुव्रत

मकर

1.	भो	वासुपूज्य, अजितनाथ, सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ	महावीर, पद्मप्रभ, नेमिनाथ	कुन्थुनाथ, चन्द्रप्रभ
2.	जा	पार्श्वनाथ	सुपार्श्वनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी, पुष्पदंत	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, शीतलनाथ, आदिनाथ, चन्द्रप्रभ
3.	जी	—	मुनिसुव्रत स्वामी पुष्पदंत, मल्लिनाथ, नमिनाथ, धर्मनाथ, चंद्रप्रभ	शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, शांतिनाथ, आदिनाथ

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
4.	खी	—	आदिनाथ, शीतलनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, वासुपूज्य, कुन्थुनाथ	श्रेयांसनाथ, अजितनाथ, सुमतिनाथ, पुष्पदंत
5.	खू	मुनिसुव्रतनाथ वासुपूज्य, नेमिनाथ महावीर	श्रेयांसनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी पद्मप्रभ	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ
6.	खे	वासुपूज्य	सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, धर्मनाथ	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ
7.	खो	—	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ	चन्द्रप्रभ, मल्लिनाथ, नमिनाथ, सुमतिनाथ, शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अजितनाथ
8.	गा	—	महावीर, नमिनाथ, आदिनाथ, शीतलनाथ	शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ, पुष्पदंत, पद्मप्रभ, कुन्थुनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी
9.	गी	मुनिसुव्रत स्वामी सुपार्श्वनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी	श्रेयांसनाथ, अजितनाथ	धर्मनाथ, पार्श्वनाथ

कुंभ

1.	गू	वासुपूज्य	धर्मनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी	सुमतिनाथ, चंद्रप्रभ
2.	गे	—	विमलनाथ, धर्मनाथ	आदिनाथ, शीतलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, सुमतिनाथ, महावीर, नेमिनाथ, पुष्पदंत, पद्मप्रभ

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
3.	गो	—	मुनिसुव्रत स्वामी. मल्लिनाथ, नमिनाथ, श्रेयांसनाथ	शांतिनाथ, सुमतिनाथ, महावीर, नेमिनाथ, सुपार्श्वनाथ, पद्मप्रभ, पार्श्वनाथ
4.	सा	कुन्थुनाथ, सुपार्श्वनाथ	वासुपूज्य, महावीर, पद्मप्रभ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ	चन्द्रप्रभ
5.	सी	संभवनाथ, सुपार्श्वनाथ	अभिनंदन स्वामी, पार्श्वनाथ,	विमलनाथ,अनंतनाथ, अरनाथ,पुष्पदंत, आदिनाथ,चन्द्रप्रभ
6.	सू	श्रेयांसनाथ	आदिनाथ,पुष्पदंत, शीतलनाथ,मुनिसुव्रत	शांतिनाथ, चन्द्रप्रभ, मल्लिनाथ, नमिनाथ, धर्मनाथ
7.	से	—	शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, वासुपूज्य, कुन्थुनाथ	आदिनाथ,पुष्पदंत, सुमतिनाथ, अजितनाथ
8.	सो	श्रेयांसनाथ,संभवनाथ नेमिनाथ	अभिनंदन स्वामी पद्मप्रभ, महावीर, मुनिसुव्रत स्वामी, वासुपूज्य	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ
9.	क्ष	वासुपूज्य, सुपार्श्वनाथ	पार्श्वनाथ	धर्मनाथ, विमलनाथ, शांतिनाथ,नमिनाथ, मल्लिनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ

मीन

1.	दी	विमलनाथ, सुमतिनाथ,शांतिनाथ, कुन्थुनाथ,अजितनाथ	चन्द्रप्रभ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	अनंतनाथ, अरनाथ

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
2.	दू	शीतलनाथ शांतिनाथ, नमिनाथ	पुष्पदंत, मल्लिनाथ, आदिनाथ, अभिनंदन स्वामी	नेमिनाथ, संभवनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, कुन्थुनाथ, अजितनाथ
3.	थ	—	सुपार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ, धर्मनाथ	संभवनाथ, पार्श्वनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, कुन्थुनाथ, अजितनाथ, अभिनंदन स्वामी
4.	झ	—	चन्द्रप्रभ, धर्मनाथ	संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी, सुमतिनाथ, वासुपूज्य
5.	त्र	पुष्पदंत, धर्मनाथ	आदिनाथ, शीतलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ सुमतिनाथ	विमलनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ
6.	दे	शांतिनाथ, नमिनाथ, सुमतिनाथ	श्रेयांसनाथ, मल्लिनाथ	मुनिसुव्रत स्वामी, सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ पद्मप्रभ, महावीर
7.	दो	—	वासुपूज्य, सुपार्श्वनाथ, नेमिनाथ	कुन्थुनाथ, महावीर, पद्मप्रभ, पार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, अजितनाथ
8.	चा	पुष्पदंत	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, शीतलनाथ, आदिनाथ	पार्श्वनाथ, सुपार्श्वनाथ संभवनाथ, अभिनंदन स्वामी, चन्द्रप्रभ
9.	ची	पुष्पदंत, मल्लिनाथ, नमिनाथ, धर्मनाथ, चन्द्रप्रभ, आदिनाथ	शांतिनाथ मुनिसुव्रत स्वामी शीतलनाथ	श्रेयांसनाथ

आज के आधुनिक युग में मन्दिर निर्माण को अनावश्यक अथवा एक सामान्य कृत्य समझा जाता है। परंतु यदि इसमें निहित शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक तथ्यों का अध्ययन करें तो अनेक रहस्यात्मक तथ्य प्रकट होते हैं। मन्दिर में

विराजित मूलनायक प्रतिमा उस नगर के राजा के समान होती है तथा सम्पूर्ण नगर एवं नगरवासियों को प्रभावित करती है। जैनाचार्यों ने इसी बात को ध्यान में रखकर नगर एवं प्रतिष्ठा कर्ता आदि की राशि के अनुसार मूलनायक प्रतिमा स्थापित करने का निर्देश दिया है। ताकि वहाँ पर किसी भी प्रकार का अनिष्ट आदि उत्पन्न न हो तथा नगरस्थ आम जनता के मन में परमात्मा के प्रति अहोभाव का जागरण हो और सर्वत्र आनंद एवं मंगल की स्थापना हो।

●

अध्याय-10

पंच कल्याणकों का प्रासंगिक अन्वेषण

सभी धर्मों में आराध्य और आराधक के बीच एक विशेष सम्बन्ध की चर्चा की गई है। भक्त और भगवान के बीच रहा हुआ यही सेतु आत्मा को परमात्म अवस्था की प्राप्ति करवाता है। परन्तु यह एक अनुभूत तथ्य है कि मन में किसी के लिए पूज्य भाव तभी उत्पन्न हो सकता है जब उसके प्रति मन में श्रद्धा हो और श्रद्धा का जागरण तभी होता है जब उसके विषय में यथार्थ जानकारी हो।

तीर्थंकर परमात्मा का प्रत्येक जीव पर असीम उपकार है क्योंकि उन्होंने स्व अनुभूत एवं आचरित सत्य मार्ग का प्रवर्तन किया है, जिस पर चलकर यह जीव शुद्ध स्वरूप के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आजकल की आधुनिक जीवनशैली में प्रायः लोग धार्मिक या ऐतिहासिक जानकारी से अनभिज्ञ होते हैं। परमात्मा के विषय में सम्यक जानकारी न हो तो अंतकरण में श्रद्धा का पुट कैसे उभर सकता है? जो एक भक्त के मन में होना चाहिए। इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए दीर्घदर्शी आचार्यों ने प्रतिष्ठा आदि के समय पंचकल्याणक महोत्सव का विधान किया। जिससे नगरजनों के मन में परमात्मा के प्रति बहुमान भाव, अनुराग भाव उत्पन्न हो सके और वे आत्म कल्याण का मार्ग प्राप्त कर सकें।

तीर्थंकरः एक परिचय

जैन परम्परा के अनुसार जैन धर्म अनादि से है, जो समय-समय पर उत्पन्न होने वाले तीर्थङ्करों द्वारा प्रवर्तित होता रहा है। इस कालचक्र में जैन धर्म का प्रवर्तन प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव ने किया। तीर्थङ्कर ऋषभदेव का काल निर्णय वर्तमान समय गणना के अनुसार नहीं किया जा सकता। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में ऋषभदेव का सम्मान पूर्वक स्मरण किया गया है। भागवत 5-2-6 में भी जैन धर्म के संस्थापक ऋषभदेव का उल्लेख है, पुराण साहित्य में भी ऋषभदेव का उल्लेख है। प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में भी ऋषभदेव को जैन धर्म का प्रचारक कहा गया है। इसके अतिरिक्त हड़प्पा-मोहनजोदड़ों की खुदाई से

प्राप्त सीलों/मुहरों पर भी तीर्थङ्कर कायोत्सर्ग मुद्रा में उत्कीर्ण हैं, अतः इनकी प्राचीनता निर्विवाद है। ऋषभदेव के बाद क्रमशः तेईस तीर्थङ्कर और हुए जिनमें अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर थे। ऋषभदेव के अतिरिक्त जैन धर्म के 20 तीर्थङ्कर प्रागैतिहासिक काल में हुए। तीर्थङ्कर नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ऐतिहासिक पुरुष हैं।

देश काल की परिस्थितियाँ सदा एक-सी नहीं रहती। समय सदा ही परिवर्तनशील रहा है, उत्थान और पतन का क्रम भी निरन्तर रहा है। जगत की अन्याय प्रवृत्तियों के साथ धर्म भी इस क्रम से प्रभावित होता रहा है। कभी तो धर्म अपने पूर्ण प्रभाव और प्रबलता से युक्त रहता है, कभी ऐसा भी समय आता है जब धर्म का प्रभाव क्षीण होने लगता है, उसमें शिथिलता आ जाती है। यह सब देश काल की परिस्थितियों के अनुरूप होता रहता है। जब-जब धर्म का रूप धुंधलाता है, उसकी गति मंथर होती है, तब-तब कुछ ऐसे प्रखर-ऊर्जावान महापुरुष जन्म लेते हैं, जो धर्म परम्परा में आई मलिनता और विकृतियों का उन्मूलन कर धर्म के मूल स्वरूप को पुनः स्थापित करते हैं। ऐसे ही जगतोद्धारक, महान उन्नायक, महापुरुष तीर्थङ्कर कहलाते हैं। ये धर्म तीर्थ के प्रवर्तक होते हैं।

तीर्थङ्कर जैन धर्म का एक परिभाषिक शब्द है, जिसका भाव है- धर्म तीर्थ को चलाने वाला अथवा धर्म तीर्थ का प्रवर्तक। तीर्थ का अर्थ है आगम और उस पर आधारित चतुर्विध संघ। जो आगम और चतुर्विध संघ का निर्माण करते हैं वे तीर्थङ्कर कहलाते हैं। तीर्थङ्कर शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है- "तरन्ति संसारमहार्णवं येन तत् तीर्थम्" अर्थात जिसके द्वारा संसार सागर से पार होते हैं वह तीर्थ है। इसी तीर्थ के प्रवर्तक तीर्थङ्कर कहलाते हैं। तीर्थ शब्द का एक अर्थ घाट भी होता है। तीर्थङ्कर सभी जनों को संसार समुद्र से पार उतारने के लिये धर्म रूपी घाट का निर्माण करते हैं। तीर्थ का अर्थ पुल या सेतु भी होता है। कितनी ही बड़ी नदी क्यों न हो, सेतु द्वारा निर्बल से निर्बल व्यक्ति भी उसे सुगमता से पार कर सकता है। तीर्थङ्कर संसार रूपी सरिता को पार करने के लिए धर्म-शासन रूपी सेतु का निर्माण करते हैं। इस धर्म शासन के अनुष्ठान द्वारा आध्यात्मिक साधना कर जीवन को पवित्र और मुक्त बनाया जा सकता है। सारांश यह है कि तीर्थङ्करत्व के गौरव से वे महापुरुष मंडित होते हैं, जो समस्त विकारों पर विजय पाकर जिनत्व को उपलब्ध कर लेते हैं और कैवल्य प्राप्त कर

निर्वाण के अधिकारी बनते हैं। तीर्थङ्कर अपनी इसी सामर्थ्य के साथ जगत के अन्य प्राणियों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। मानव जाति को मोक्ष का मार्ग बताकर उस पर अग्रसर होने की प्रेरणा और शक्ति भी प्रदान करते हैं।

तीर्थङ्कर परम्परा

जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक कालचक्र में अवसर्पिणी के सुषमा-दु:षमा नामक तीसरे काल के अन्त में और उत्सर्पिणी के दु:षम-सुषमा नामक चौथे काल के प्रारंभ में जब यह सृष्टि भोग युग से कर्म युग में प्रविष्ट होती है, तब क्रमश: चौबीस तीर्थङ्कर उत्पन्न होते हैं। यह परम्परा अनादिकालीन है। जैन आगम के अनुसार अतीत काल में अनन्त तीर्थङ्कर हो चुके हैं, वर्तमान में ऋषभादि चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं और भविष्य में भी चौबीस तीर्थङ्कर होंगे। वर्तमान कालिक चौबीस तीर्थङ्करों के नाम इस प्रकार हैं-

1. ऋषभदेव 2. अजितनाथ 3. संभवनाथ 4. अभिनन्दन स्वामी 5. सुमतिनाथ 6. पद्मप्रभ 7. सुपार्श्वनाथ 8. चन्द्रप्रभ 9. पुष्पदन्त 10. शीतलनाथ, 11. श्रेयांसनाथ 12. वासुपूज्य 13. विमलनाथ 14. अनंतनाथ 15. धर्मनाथ 16. शांतिनाथ 17. कुन्थुनाथ 18. अरनाथ 19. मल्लिनाथ 20. मुनिसुव्रत स्वामी 21. नमिनाथ 22. नेमिनाथ 23. पार्श्वनाथ 24. महावीर।

भूत और भविष्य कालिक तीर्थङ्करों के नाम इस प्रकार हैं-

भूतकालिक तीर्थङ्कर- 1. केवल ज्ञानी 2. निर्वाणी 3. सागर 4. महायश 5. विमल 6. सर्वाभूति 7. श्रीधर 8. दत्त 9. दामोदर 10. सुतेज 11. स्वामी 12. मुनिसुव्रत 13. सुमति 14. शिवगति 15. अस्ताग 16. नमीश्वर 17. अनिल 18. यशोधर 19. कृतार्थ 20. जिनेश्वर 21. शुद्धमति 22. शिवंकर 23. स्यन्दन 24. सम्प्रति।

भविष्य कालिक तीर्थङ्कर- 1. पद्मनाम 2. शूरदेव 3. सुपार्श्व 4. स्वयंप्रभ 5. सर्वानुभूति 6. देवश्रुत 7. उदय 8. पेढाल 9. पोटिल 10. शतकीर्ति 11. सुव्रत 12. अमम 13. निष्कषाय 14. निष्पुलाक 15. निर्मम 16. चित्रगुप्त 17. समाधि 18. संवर 19. यशोधर 20. विजय 21. मल्लि 22. देव 23. अनन्तवीर्य 24. भद्रंकर।

भूत, वर्तमान और भविष्य कालिक सभी तीर्थङ्कर धर्म के मूल स्वरूप का समान रूप से प्ररुपण करते हैं, धर्म का मूलतत्त्व एक है। एक तीर्थङ्कर से दूसरे

तीर्थङ्कर की रोशनी में कोई अंतर नहीं रहता। सभी तीर्थङ्कर एक ही तत्त्व का उपदेश देते हैं।

देश काल के प्रभाव से जब तीर्थ में नाना प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है, अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ एवं मलिनता फैलने लगती है और तीर्थ विलुप्त, विश्रृंखलित एवं शिथिल होने लगता है, उस समय दूसरे तीर्थङ्कर का समुद्भव होता है। विशुद्ध रूपेण नवीन तीर्थ की स्थापना करते हैं अतः वे तीर्थङ्कर कहलाते हैं।

तीर्थङ्करत्व और अवतारवाद

अवतारवादी परम्परा के अनुसार जब-जब जगत में अनाचार की अति होती है, दुराचारी का आतंक बढ़ता है, धर्म और धर्माता पर संकट आता है, तब परमोच्च सत्ता का धारी ईश्वर किसी न किसी रूप में अवतरित होता है, तथा सज्जनता और सज्जनों की एवं धर्म और धर्मात्मा की रक्षा करता है। वह दुराचार और दुराचारियों का विनाश करता है। तीर्थङ्करों के साथ यह बात नहीं है। जैन धर्म के अनुसार तीर्थङ्कर किसी के अवतार नहीं होते। वस्तुतः न तो वे ईश्वरीय अंश है, न ही ईश्वर के प्रतिनिधि। यह तो मनुष्य ही है, जो स्वअर्जित पुरुषार्थ के बल पर वंदनीय स्थान प्राप्त करते हैं। जैन धर्म में ऐसे किसी ईश्वर की मान्यता ही नहीं है जो जगत कर्ता, जगत पालक और जगत संहार का कार्य करता हो अथवा दुर्जनों के लिये दण्ड और सज्जन भक्तों के पालन एवं संरक्षण की व्यवस्था करता हो। जैन धर्म ऐसी किसी भी बाह्य शक्ति को स्वीकार नहीं करता, जो हमें पुरस्कृत या दण्डित करता हो, जिसके सहारे हमारा संहार या संपोषण होता हो।

जैन धर्म में तो सर्वोपरि महत्व मनुष्य का ही है। वह अपनी साधना के शिखर पर पहुँच कर और अपने मन की पवित्रता का आश्रय पाकर स्वयं ही तीर्थङ्करत्व को प्राप्त हो जाता है। वस्तुतः मनुष्य अनन्त क्षमताओं का कोश है। उसमें ही ईश्वरत्व का वास है, किन्तु उस पर सांसारिक वासनाओं, मोह-माया और कर्मों का ऐसा सघन आवरण पड़ा है कि वह अपनी सशक्ता और महानता से परिचित ही नहीं हो पाता। जब मनुष्य अपनी आत्म शक्ति को पहिचान कर इन आवरणों को दूर कर लेता है तो मनुष्यत्व के चरम शिखर पर पहुँच जाता है। सर्वथा निर्दोष, निर्विकार और शुद्धता की स्थिति प्राप्त कर मनुष्य ही सर्वज्ञ, सर्वदर्शी , ईश्वर, परमात्मा, शुद्ध और बुद्ध बन जाता है।

उसका आत्मा रूपी सूर्य मेघाच्छादन से मुक्त होकर ज्ञानालोक का प्रसार करने योग्य हो जाता है। ऐसा महापुरुष ही केवली की स्थिति में अनन्त ज्ञान का स्वामी होकर जगत उद्धार करता है। असंख्य जनों का कल्याण करते हुए अन्ततः वह निर्वाण पद प्राप्त कर लेता है और अजर-अमर अविनाशी बन जाता है। यही उसकी सिद्धि या कृत-कृत्यता कहलाती है।

तीर्थङ्कर इस दृष्टि से भी अवतारों से भिन्न होते हैं तथा उनका सामर्थ्य स्वार्जित होता है, किसी पूर्व महापुरुष की प्रतिच्छाया अथवा प्रतिरूप वे नहीं होते। किसी राज परिवार में जन्म लेकर, वैभव-विलास में जीवन व्यतीत करते हुए एक दिन कोई अवतार हो जाये-ऐसा तो हो सकता है, हुआ भी है, किन्तु तीर्थङ्करत्व की प्राप्ति सुगम नहीं हुआ करती। इस हेतु समस्त सुख वैभवों का स्वेच्छा से त्याग करना पड़ता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की कठोर साधना करनी पड़ती है। वीतरागी साधु बनकर एकान्त निर्जनों में ध्यान-लीन रहकर अनेक कष्टों को समता, सहिष्णुता और धैर्य के साथ प्रतिक्रिया रहित होकर झेलना पड़ता है। जब कर्म बन्धनों से छुटकारा पाकर कोई साधक कैवल्य प्राप्त कर पाता है और इसी का आगामी चरण तीर्थङ्कर है। तीर्थङ्कर बनना किसी की उदारता अथवा कृपा से नहीं, अपितु आत्म-साधना से ही सम्भव है।

तीर्थङ्कर का पुनर्जन्म क्यों नहीं ?

वर्तमान कालचक्र में भगवान ऋषभदेव प्रथम और भगवान महावीर अन्तिम अर्थात चौबीसवें तीर्थङ्कर हुए हैं। जिस प्रकार प्रामाणिक ज्ञान के अभाव में यह एक भ्रान्त धारणा बनी है कि तीर्थङ्कर ईश्वरीय अवतार होते हैं उसी प्रकार यह भी एक भ्रान्ति है कि तीर्थङ्करों का पुनः पुनः आगमन होता है। यह सत्य है कि प्रत्येक कालचक्र में चौबीस ही तीर्थङ्कर होते हैं, किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि एक कालचक्र के ही तीर्थङ्कर आगामी कालचक्र में पुनः तीर्थङ्कर के रूप में जन्म लेते हैं। यह तो अवतारवाद का ही एक रूप हो जाएगा। अतः तीर्थङ्कर परम्परा के विषय में यह सत्य नहीं हैं। प्रत्येक कालचक्र में असाधारण कोटि के मनुष्य अपनी आत्मा का जागरण कर, उसे शुद्ध और निर्विकार बनाकर साधना द्वारा यह स्थान प्राप्त करते हैं। प्रत्येक बार अलग-अलग मनुष्यों को यह गौरव मिलता है।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि तीर्थङ्कर तो अन्त में निर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं। उन्हें चिरशान्ति और सुख की स्थिति उपलब्ध हो जाती है। वे अजर-अमर अविनाशी, शुद्ध-बुद्ध और सिद्ध हो जाते हैं। सिद्धत्व की स्थिति पूर्ण कृतकृत्यता की स्थिति है। इस स्थिति को प्राप्त करने के बाद आवागमन का चक्र समाप्त हो जाता है। सिद्ध अशरीरी होते हैं, उन्हें पुन: देह धारण नहीं करनी पड़ती। फिर भला एक तीर्थङ्कर का आगामी काल में तीर्थङ्कर के रूप में पुन: आगमन कैसे संभव है? फिर से तीर्थङ्कर बनने के लिये मनुष्य देह धारण करना अनिवार्य है। कालचक्र में तीर्थङ्कर मोक्ष प्राप्त कर पूर्वजन्म के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। मोक्ष अवस्था में समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है, जबकि कर्मों के कारण ही आत्मा को देह धारण करनी पड़ती है। कर्ममल उस बीज की भाँति है जो पुनर्जन्म के रूप में अंकुरित हुआ करता है। इस बीज रूप कर्म को ही जब कठोर तपस्या की अग्नि में भून दिया जाता है तो फिर उसकी अंकुरण शक्ति ही नष्ट हो जाती है। कर्म नष्ट हो जाते हैं, परिणामत: आत्मा का जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा हो जाता है। अत: तीर्थङ्कर के बारे में ऐसा मानना कि उनका पुन: आगमन होता है भ्रान्त ही नहीं, मिथ्या भी है।

मात्र तीर्थङ्कर ही निर्वाण के अधिकारी नहीं ?

इसी प्रकार यह भी एक भ्रान्ति प्रचलित है कि मात्र तीर्थङ्कर को ही मोक्ष की प्राप्ति होती है और इनके अतिरिक्त अन्य किसी को यह स्थिति नहीं मिल पाती। वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। जो तीर्थङ्कर हैं वे तो मोक्ष जाते ही हैं, पर जितने जीव मोक्ष जाते हैं सभी तीर्थङ्कर ही होते हों, ऐसी बात नहीं है। सोना अवश्य ही चमकीला होता है, पर हर चमकदार वस्तु सोना नहीं होती। यही अन्तर मुक्तजनों और तीर्थङ्कर में होता है। वैराग्य-साधना के बल पर कर्मों का क्षय कर अनेक पुरुष निर्वाण को प्राप्त करते हैं, किन्तु इनमें कुछ विशिष्ट पुरुष ही ऐसे होते हैं, जिन्हें तीर्थङ्कर पद की प्राप्ति हो पाती है। यद्यपि दोनों अपने आत्मिक क्षेत्र में समान होते हैं, किन्तु सामान्य मुक्तजन केवल आत्मकल्याण और आत्मसुख तक सीमित रह जाते हैं, जबकि तीर्थङ्कर अपने अनन्त ज्ञान का उपयोग प्राणीमात्र के उपकार के लिये करते हैं। वे धर्म तीर्थ की स्थापना करते हैं। शिथिल हो गयी धर्म प्रवृत्ति को सबल बनाते हैं। धर्म मार्ग में आ गये

पाखण्डों और आडम्बरों का उन्मूलन कर मार्ग प्रशस्त करते हैं। यह लोकोपकार तीर्थङ्कर से ही संभव है। अन्य मुक्त पुरुष तो आत्म आनन्द के असीम सागर में निमग्न रहते हैं। विकार ग्रस्त मानव समाज के जीर्णोद्धार का पुनीत और दुरुह कार्य तीर्थङ्कर द्वारा ही संपन्न होता है। तीर्थङ्कर और सामान्य मुक्तात्माओं में यह अन्तर केवल-ज्ञान प्राप्ति से निर्वाण प्राप्ति के मध्य की अवधि में ही दृष्टिगत होता है। निर्वाण के पश्चात तो तीर्थङ्कर की आत्मा भी अन्य मुक्तात्माओं की भाँति ही हो जाती है। दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

कैसे बनते हैं तीर्थङ्कर ?

तीर्थङ्करत्व की उपलब्धि सहज नहीं है। हर एक साधक आत्म साधना के द्वारा मोक्ष तो प्राप्त कर सकता है, पर तीर्थङ्कर नहीं बन सकता। तीर्थङ्करत्व की उपलब्धि विरले साधकों को ही होती है। इसके लिए अनेक जन्मों की साधना और कुछ विशिष्ट भावनाएँ अपेक्षित होती है। विश्व कल्याण की भावना से अनुप्राणित साधक जब किसी केवलज्ञानी अथवा श्रुतकेवली के चरणों में बैठकर लोक कल्याण की सुदृढ़ भावना भाता है तभी तीर्थङ्कर जैसी क्षमता को प्रदान करने में समर्थ "तीर्थङ्कर प्रकृति" नाम के महापुण्य कर्म का बन्ध करता है। यह तीर्थङ्कर नाम कर्म ही तीर्थङ्करत्व का बीज है। इसके लिए सोलह कारण भावनाएँ बतायी गयी हैं।

सोलह कारण भावना

1. दर्शन विशुद्धि– लोक कल्याण की भावना से अनुप्राणित होना दर्शन विशुद्धि है।

2. विनय संपन्नता– सम्यग्ज्ञान आदि मोक्षमार्ग और उसके साधन गुरु आदि के प्रति हार्दिक आदर भाव रखना विनय सम्पन्नता है।

3. शील व्रतानतिचार– अहिंसा, सत्य आदि व्रत हैं तथा इनके पालन में सहायक क्रोध आदि का त्याग शील कहलाता है। व्रत और शीलों का निर्दोष रीति से पालन करना शीलव्रतानतिचार है।

4. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग– निरन्तर ज्ञानाभ्यास में लगे रहना अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है।

5. अभीक्ष्ण संवेग– सांसारिक विषय-भोगों से डरते रहना अभीक्ष्ण संवेग है।

6. यथाशक्ति त्याग-- अपनी अल्पतम शक्ति को भी छिपाये बिना आहार, औषधि, अभय और उपकरण आदि का दान देना यथाशक्ति त्याग है।

7. यथाशक्ति तप-- अपनी शक्ति को छिपाये बिना मोक्षमार्ग में उपयोगी तप का अनुष्ठान करना यथाशक्ति तप है।

8. साधु समाधि-- तपोनिष्ठ साधुओं के ऊपर आगत आपत्तियों का निवारण करना तथा ऐसा प्रयत्न करना जिससे वे स्वस्थ रहें, यह साधु समाधि है।

9. वैयावृत्य करण-- गुणी पुरुषों की समाधि में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करना एवं उनकी सेवा-शुश्रूषा करना वैयावृत्य करण है।

13. अरिहन्त भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति-- अरिहन्त, आचार्य, बहुश्रुत और प्रवचन-- इन चारों में शुद्ध निष्ठा पूर्वक अनुराग रखना अरिहन्त भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति और प्रवचन भक्ति है।

14. आवश्यक अपरिहाणि-- छहों आवश्यक क्रियाओं को निश्चित समय पर करना आवश्यक अपरिहाणि है।

15. मार्ग प्रभावना-- अपने ज्ञान और आचरण से मोक्षमार्ग का प्रचार-प्रसार करना मार्ग प्रभावना है।

16. प्रवचन वत्सलत्व-- जैसे गाय बछड़े पर स्नेह रखती है, वैसे ही साधर्मीजनों से निश्छल-निष्काम स्नेह रखना प्रवचन वत्सलत्व है।

उक्त सोलह भावनाएँ तीर्थङ्कर पद प्राप्ति का कारण हैं। इन सोलह भावनाओं में सभी अथवा उनमें से कुछ के होने पर तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध होता है, किन्तु इनमें दर्शन विशुद्धि का होना अनिवार्य है।

तीर्थङ्कर प्रकृति के बन्ध का नियम

तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध चौथे गुणस्थान से लेकर प्रथमोपशम सम्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व अथवा क्षायिक सम्यक्त्व के साथ अपूर्वकरण गुणस्थान के छठवें भाग तक मनुष्य गति में होता है। तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध केवली भगवान के पादमूल में होता है। जिसके मनुष्य गति या तिर्यञ्च गति का पहले ही बन्ध हो चुका हो, उसको तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध नहीं होता है। (गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा 336) देव गति एवं नरक गति से आये जीव ही तीर्थङ्कर होते हैं। तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध होने पर फिर सम्यक्त्व का

अभाव नहीं होता है। हाँ, इतना अवश्य है कि यदि दूसरे या तीसरे नरक में जाना पड़ जाये तो क्षयोपशम सम्यक्त्व मरण समय के अन्तर्मुहूर्त को छोड़कर नरक में अपने आप उत्पन्न हो जाता है।

नियमत: तीर्थङ्कर प्रकृति उन्हीं को बँधती है, जो तीर्थङ्कर पद को नहीं चाहते हैं। तीर्थङ्कर पद चाहने वालों को तीर्थङ्कर बनने का सौभाग्य नहीं मिलता है; क्योंकि सम्यग्दृष्टि को ही तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध होता है किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव के नि:कांक्षित गुण प्रकट हो जाने से उपाधियों की प्राप्ति का अभाव होता है। तीर्थङ्कर प्रकृति भी आत्मा के लिए एक उपाधि है; क्योंकि सिद्ध अवस्था में इस प्रकृति का अभाव हो जाता है। जिस सम्यग्दृष्टि को अपाय विचय नामक धर्म ध्यान में विश्वकल्याण की उत्कृष्ट भावना होती है, उसे यह प्रकृति बँधती है।

तीर्थंकर के अतिशय

तीर्थंकर भगवान के चौंतीस अतिशय होते हैं। अतिशय शब्द के श्रेष्ठता, उत्तमता, महिमा, प्रभाव, अधिकता, चमत्कार आदि अनेक अर्थ हैं। जिन गुणों के द्वारा तीर्थंकर परमात्मा समस्त जगत की अपेक्षा अतिशयी– श्रेष्ठ प्रतिभासित होते हैं, उन गुणों को अतिशय कहा जाता है। जगत के किसी भी प्राणी में तीर्थंकरों से अधिक गुण, रूप या वैभव नहीं पाया जाता है। अत: अतिशय-अतिशय ही हैं, जो अन्यों की अपेक्षा तीर्थंकरों को विशेष घोषित करते हैं। अतिशय तीर्थंकरों की लोकोत्तरता के द्योतक हैं। अतिशय चौंतीस होते हैं।

इनमें श्वेताम्बर परम्परानुसार चार जन्म से, ग्यारह कर्मक्षय से और उन्नीस देवकृत होते हैं।

जन्म के चार अतिशय

1. शरीर अनन्त रूपवाला, सुगंधि युक्त, रोग रहित, पसीना और मल रहित होता है।
2. रुधिर और मांस गाय के दूध समान सफेद और दुर्गन्ध रहित होता है।
3. आहार और निहार चर्म चक्षु द्वारा दिखलाई नहीं पड़ता।
4. श्वासोच्छ्वास कमल जैसा सुगन्धित होता है।

कर्मक्षय से होने वाले ग्यारह अतिशय

5. योजन प्रमाण समवसरण की भूमि में करोड़ों देव, मनुष्य और तिर्यंच बाधा रहित समा जाते हैं।
6. चारों दिशाओं में पच्चीस-पच्चीस योजन तक समस्त प्राणियों के सभी प्रकार के रोग शांत हो जाते हैं और नये रोग उत्पन्न नहीं होते।
7. सभी प्राणियों का वैर-भाव नष्ट हो जाता है।
8. ईति अर्थात धान्यादि को नाश करने वाले जीवों की उत्पति नहीं होती।
9. मरकी-महामारी नहीं होती।
10. अतिवृष्टि नहीं होती।
11. अनावृष्टि नहीं होती।
12. दुष्काल-दुर्भिक्ष नहीं होता।
13. स्वचक्र तथा परचक्र का भय नहीं होता।
14. तीर्थंकर भगवान की योजनगामिनी वाणी देव, मनुष्य और तिर्यंच सब अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं।
15. सूर्य से बारह गुणा तेज वाला भामंडल होता है।

देवकृत उन्नीस अतिशय

16. आकाश में धर्मचक्र चलता है।
17. बारह जोड़ी अर्थात चौबीस चामर अपने आप वींझते हैं।
18. पादपीठ सहित स्फटिक रत्न का उज्ज्वल सिंहासन होता है।
19. प्रत्येक दिशा में एक के ऊपर ऐसे तीन-तीन छत्र होते हैं।
20. रत्नमय धर्मध्वजा होती है। यह इन्द्रध्वजा भी कहलाती है।
21. तीर्थंकर भगवान नौ स्वर्ण कमलों पर पाँव रखकर चलते हैं। इनमें दो के ऊपर पग रखते हैं तथा सात पीछे रहते हैं। वे दो-दो के अनुक्रम से आगे आते-जाते हैं।
22. समवसरण के मणि, स्वर्ण और चाँदी के तीन कोट होते हैं।
23. प्रभु स्वयं पूर्वाभिमुख विराजमान होकर देशना देते हैं। तीन दिशाओं में व्यंतर देव प्रभु के तीन प्रतिबिम्ब (मूर्तियाँ) बनाकर प्रत्येक दिशा में एक-एक विराजमान करते हैं।

24. भगवान के शरीर से बारह गुणा ऊँचा अशोक वृक्ष होता है जो छत्र, घंटा और पताकाओं से युक्त होता है।
25. मार्ग में चलते समय जंगल के काँटें अधोमुख हो जाते हैं।
26. विहार करते समय सब वृक्ष झुककर प्रणाम करते हैं।
27. विहार के समय आकाश में देव दुन्दुभि बजती हैं।
28. योजन तक वायु अनुकूल बहती हैं।
29. मोर आदि शुभ पक्षी प्रभु को प्रदक्षिणा देकर चलते हैं।
30. सुगन्धित जल की वृष्टि होती है।
31. पाँच वर्ण के पुष्पों की प्रभु के घुटनों तक वृष्टि होती है।
32. दीक्षा लेने के बाद केश, दाढ़ी, मूँछें बढ़ते नहीं हैं।
33. जघन्य से चारों जाति के करोड़ों देवता सेवा में ही रहते हैं।
34. छहों ऋतुएँ अनुकूल रहती हैं।

तीर्थंकर परमात्मा के गुण

तीर्थङ्कर भगवान के 34 अतिशयों में से बारह गुण विशिष्ट माने गये हैं। इनमें आठ गुण प्रातिहार्य और चार गुण मूल अतिशय कहलाते हैं। इस प्रकार अरिहन्त प्रभु बारह गुणों से युक्त होते हैं। यह विवरण संक्षेप में निम्नानुसार है-

आठ प्रातिहार्य

1. अशोकवृक्ष– जहाँ भगवान का समवसरण रचा जाता है, वहाँ उनकी देह से बारह गुणा बड़ा अशोक वृक्ष (आसोपालव के वृक्ष) की रचना देवता करते हैं। उसके नीचे भगवान बैठकर देशना देते हैं।

2. सुरपुष्पवृष्टि– एक योजन प्रमाण समवसरण की भूमि में देवों द्वारा पंच वर्ण वाले सचित्त पुष्पों की घुटने परिमाण वृष्टि करते हैं। किन्तु भगवान के अतिशय से उनके जीवों को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती।

3. दिव्य ध्वनि– भगवान की वाणी को देवता मालकोश राग, वीणा, बंसी आदि स्वर से पूरते हैं।

4. चामर– समवसरण में देवता रत्न जड़ित स्वर्ण की डंडी वाले चार श्वेत चामर से भगवान को बींझते हैं।

5. आसन– भगवान के बैठने के लिये देवता रत्नजड़ित सिंहासन की रचना करते हैं।

6. भामंडल– देवताओं द्वारा भगवान के मुख मंडल के पीछे शरद् ऋतु के सूर्य समान तेजस्वी भामंडल की रचना की जाती हैं। उस भामंडल में भगवान का तेज संक्रमित होता है। यदि भामंडल न हो तो भगवान का मुख कोई देख ही नहीं पाएगा क्योंकि इन चर्म चक्षुओं से परमात्मा के तेज को सहन करना असंभव है।

7. देव दुंदुभि– भगवान के समवसरण के समय देवता देव दुंदुभि बजाते हैं। वे ऐसा सूचन करते हैं कि हे भव्य प्राणियों! तुम मोक्ष नगर के सार्थवाह तुल्य इन भगवान की सेवा करो, इनकी शरण में जाओ।

8. छत्र– समवसरण में देवता भगवान के मस्तक के ऊपर शरद् चन्द्र के समान उज्ज्वल तथा मोतियों की मालाओं से सुशोभित ऊपरा-ऊपरी क्रमशः तीन-तीन छत्रों की रचना करते हैं। भगवान स्वयं समवसरण में पूर्व दिशा की तरफ मुख करके बैठते हैं और अन्य तीन (उत्तर, पश्चिम, दक्षिण) दिशाओं में देवतागण भगवान के प्रतिबिम्ब रचकर स्थापित करते हैं। इस प्रकार चारों तरफ प्रभु विराजमान हैं ऐसा दिखाई पड़ता है। चारों तरफ प्रभु के ऊपर तीन-तीन छत्रों की रचना होने से बारह छत्र होते हैं।

आठों प्रातिहार्य भगवान को केवलज्ञान होने के पश्चात शरीर छोड़ने से पहले तक सदा साथ रहते हैं।

चार मूल अतिशय

1. अपायापगमातिशय– अपाय अर्थात उपद्रवों का, अपगम अर्थात नाश। यह अतिशय स्वाश्रयी और पराश्रयी ऐसे दो प्रकार का होता है।

स्वाश्रयी अपाय अपगम अतिशय– स्वाश्रयी अतिशय भी दो प्रकार के होते हैं। द्रव्य से अरिहन्त भगवान के समस्त रोगों का क्षय हो जाता है अतः वे सदा स्वस्थ रहते हैं। भाव से अठारह प्रकार के आभ्यंतर दोषों का भी सर्वथा नाश हो जाता है। वे 18 दोष निम्न हैं-

1. दानान्तराय 2. लाभान्तराय 3. भोगांतराय 4. उपभोगांतराय 5. वीर्यान्तराय–अन्तराय कर्म के क्षय हो जाने से ये पाँचों नहीं रहते। 6. हास्य 7. रति 8. अरति 9. शोक 10. भय 11. जुगुप्सा-चारित्र मोहनीय की हास्यादि छह कर्म प्रकृतियों के क्षय हो जाने से ये छह दोष नहीं रहते। 12. काम-स्त्री वेद पुरुष वेद, नपुंसक वेद-चारित्र मोहनीय की इन तीन कर्म प्रकृतियों का क्षय हो

जाने से काम विकार का सर्वथा अभाव हो जाता है। 13. मिथ्यात्व-दर्शन मोहनीय कर्म की प्रकृति के क्षय हो जाने से मिथ्यात्व नहीं रहता। 14. अज्ञान-ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय हो जाने से अज्ञान का अभाव हो जाता है। 15. निद्रा-दर्शनावरणीय कर्म के क्षय होने से निद्रा दोष का अभाव हो जाता है। 16. अविरति-चारित्र मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाने से अविरति दोष का अभाव हो जाता है। 17-18. राग और द्वेष-चारित्र मोहनीय कर्म संबंधी कषाय के क्षय होने से ये दोनों दोष नहीं रहते।

पराश्रयी अपाय अपगम अतिशय– जहाँ भगवान विचरते हैं, वहाँ चारों दिशाओं में सवा सौ योजन तक प्राय: रोग, महामारी, वैर, अवृष्टि, अतिवृष्टि आदि नहीं होते।

10. ज्ञानातिशय– भगवान केवलज्ञान द्वारा लोकालोक का संपूर्ण स्वरूप जानते हैं।

11. पूजातिशय– तीर्थङ्कर भगवान सबके पूज्य हैं। इन्हें राजा, वासुदेव, बलदेव, चक्रवर्ती, देवता और इन्द्र सब पूजते हैं अथवा इनको पूजने की अभिलाषा करते हैं।

12. वचनातिशय– तीर्थङ्कर भगवान की वाणी का ऐसा अतिशय होता है कि उनके उपदेश को देव, मनुष्य और तिर्यंच सब अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते हैं।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के सारगर्भित प्रयोजन

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव जैन समाज का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नैमित्तिक महोत्सव है। इसका आयोजन एक विशाल मेले के रूप में होता है। इसमें देश के कोने-कोने से लाखों जैन भाई और बहिनें एकत्रित होते हैं। लगातार आठ या दस दिनों तक चलने वाले इस विशाल मेले की तैयारियाँ कुम्भ के मेले के समान महिनों पहले से चलती है।

यह महोत्सव अन्य लौकिक मेलों के समान आमोद-प्रमोद का मेला नहीं है। यह तो एक विशुद्ध आध्यात्मिक मेला है, जिसके साथ सम्पूर्ण जैन समाज की आस्थाएँ और धार्मिक भावनाएँ जुड़ी रहती हैं। इसमें खान-पान और खेलने-कूदने की प्रधानता नहीं रहती अपितु संयम और तप-त्याग की प्रधानता होती है, वातावरण एकदम आध्यात्मिक बन जाता है।

जिस प्रकार हम अपने पारिवारिक पूर्वजों की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए उनके चित्र अपने घरों में लगाते हैं अथवा अपने राष्ट्रीय नेताओं की स्मृति बनाये रखने के लिए उनके चित्र या स्टेच्यू समुचित राष्ट्रीय महत्त्व के स्थानों पर लगाते हैं और मुख्य अवसरों पर माल्यार्पण आदि के द्वारा उनका सम्मान करते हैं, उसी प्रकार अधिकांश धर्मों में अपने धर्म पूर्वजों, धार्मिक नेताओं, तीर्थङ्करों एवं भगवानों की तदाकार मूर्तियाँ मन्दिरों में प्रतिष्ठित की जाती हैं।

जैन धर्मावलम्बी भी तीर्थङ्करों की तदाकार मूर्तियाँ जिनमन्दिर में प्रतिष्ठित करते हैं। इस भारत वर्ष में हजारों जिनमन्दिर हैं और उनमें लाखों जिनबिम्ब (मूर्तियाँ) विराजमान हैं, जिनके दर्शन और पूजन प्रतिदिन लाखों जैन भाई-बहिन करते हैं। लाखों लोग तो ऐसे हैं, जो प्रभु के दर्शन बिना और पूजन बिना भोजन भी नहीं करते।

जिनमन्दिरों में विराजमान जिनबिम्बों का अपना एक महत्त्व है। ये जिनबिम्ब हमारी संस्कृति के प्रतीक ही नहीं, संरक्षक भी हैं। सम्पूर्ण देश में बिखरे हुए लाखों जिनबिम्ब हमारे समृद्ध अतीत के प्रमाण तो हैं ही। इसी के साथ 'यह भारत देश हमारी मूल भूमि है' इसके भी सशक्त प्रमाण हैं।

पाषाणों में उत्कीर्ण वीतरागी जिनबिम्ब (मूर्तियाँ) तब तक पूजने योग्य नहीं होते, जब तक कि इनकी विधि पूर्वक प्रतिष्ठा नहीं हो जाती। इसी प्रतिष्ठा विधि को सम्पन्न करने के लिए जो महोत्सव होता है, उसे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कहते हैं।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का अर्थ है– अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए पाँच सुअवसरों की प्राप्ति होना। पंचकल्याणक भरत-ऐरावत क्षेत्र के तीर्थङ्करों के ही होते हैं। विदेह क्षेत्र में पाँच, तीन और दो कल्याणक वाले तीर्थङ्कर भी होते हैं। महाविदेह क्षेत्र में कई जन गृहस्थ अवस्था में तीर्थङ्कर प्रकृति बाँधकर उसी भव में तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर लेते हैं। कोई पूर्व भव में तीर्थङ्कर प्रकृति बाँधकर पाँच कल्याणक से युक्त तीर्थङ्कर भी होते हैं।

देश या विदेश के जिनालयों में जितने भी प्रतिबिम्ब विराजमान हैं, वे सभी पंचकल्याणकों के महोत्सव में ही प्रतिष्ठित हुए हैं और भविष्य में भी जितने जिनबिम्ब विराजमान होंगे, वे सब भी विधिपूर्वक विराजमान होंगे। इस प्रकार यह एक अत्यन्त आवश्यक महोत्सव है।

मूलत: तो पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में कई प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की जाती हैं, किन्तु किसी एक तीर्थङ्कर को विधिनायक के रूप में स्वीकार किया जाता है और उनके जीवन के आधार पर पंचकल्याणक का कार्यक्रम सुनिश्चित होता है।

पंचकल्याणक ऐसी पाँच घटनाएँ हैं, जो भरत क्षेत्र के चौबीसों तीर्थङ्करों के जीवन में समान रूप से घटित होती हैं इसलिए किसी भी तीर्थङ्कर को विधिनायक बनाया जा सकता है, उनमें कुछ छोटी-मोटी बातों को छोड़कर कोई विशेष अन्तर नहीं आता। माता-पिता के नाम, जन्म स्थान, वैराग्य का निमित्त आदि बातों में ही भेद आता है, शेष तो सब समान ही हैं। जैसे कि सौधर्मादि इन्द्र, सुमेरु पर्वत, पाण्डुक शिला, अभिषेक आदि सब एक-सा ही होता है।

पाँच कल्याणकों का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

जो कल्याण करे, कल्याण में सहायक बनें, वह कल्याणक कहलाता है। तीर्थङ्कर परमात्मा के जीवन की पाँच मुख्य घटनाएँ कल्याणक कहलाती है और उन्हें ही पंचकल्याणक की संज्ञा से उपमित किया गया है। पूर्वाचार्यों के अनुसार च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण इन पाँच कल्याणकों की महिमा विशिष्ट कोटी की है। नारकी जीव जिन्हें निरंतर तीव्र दु:ख भोगने पड़ते हैं, कल्याणक के समय क्षणमात्र के लिए उन्हें भी अपूर्व सुख की अनुभूति होती हैं। कल्याणक का यह प्रसंग झुलसते हुए राही के लिए शीत हवा की लहर के समान है। उस समय तीनों ही लोक में अपूर्व आनंद एवं अपार हर्ष छा जाता है तथा सूर्य से भी प्रखर रोशनी सर्वत्र फैल जाती है। इसी का अनुकरण करते हुए प्रतिष्ठा अंजनशलाका महोत्सव में पंच कल्याणक महोत्सव का आयोजन किया जाता है।

पंच कल्याणक कल्याणकारी कैसे ?

कल्याणक की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है-

सयल जिणेसर पाय नमी, कल्याणक विधि तास।
वर्णवतां सुणतां थकां, संघनी पूरे आस।।

परमात्मा के कल्याणक की प्रत्यक्ष आराधना से ही नहीं, अपितु उनका वर्णन करने एवं सुनने से भी संघ की आशाएँ पूर्ण होती हैं। यह महोत्सव आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया या practical depresentation है। विश्व के

समस्त दर्शनों में एक मात्र जैन दर्शन ही ऐसा है, जो प्रत्येक आत्मा में सत्ताभूत परमात्म स्वरूप के प्रकटीकरण का मार्ग दर्शाता है। अब तक जितने भी अरिहंत, सिद्ध, केवली आदि हुए हैं वे स्वयं के पुरुषार्थ के आधार पर ही पूर्णानन्द स्वरूप को प्राप्त कर पाए हैं। परमात्मा के जीवन की प्रत्येक घटना अपने आप में अनेक रहस्यों को समाहित करती है।

प्रश्न हो सकता है कि जब परमात्मा का समस्त जीवन ही प्रेरणास्पद है तो फिर कल्याणक पाँच ही क्यों? यह यथार्थ है कि परमात्मा का सम्पूर्ण जीवन स्व-पर हित के लिए होता है। उसके बावजूद भी जन्मादि के प्रसंगों का अलौकिक प्रभाव पड़ता है। जैसे तीर्थङ्कर के गर्भ में आते ही माता-पिता की सुख-समृद्धि में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगती है। सम्पूर्ण राज्य में अपूर्व शान्ति की लहर आ जाती है और सभी की इच्छित भावनाएँ फलने लगती है।

तीर्थङ्कर का जन्म होने पर सकल सृष्टि मंगल गान प्रारंभ कर देती है, प्राणी मात्र के उपकारक प्रभु के अवतरित होने से जन-जीवन में तद्रूप विचारों का उदय होता है और तभी से सामान्य व्यक्ति का जीवन किस प्रकार का होना चाहिए, यह शिक्षा प्राप्त होती है।

तीर्थङ्करों की दीक्षा जन मानस में अध्यात्म ज्योति को प्रज्वलित कर सिद्ध-बुद्ध दशा को प्राप्त करने की प्रेरणा देती है और आत्मा के शुद्ध स्वरूप की अनुभूति का मार्ग प्रशस्त करती है।

केवलज्ञान कल्याणक के माध्यम से यथार्थ ज्ञान को जानने एवं देखने का लाइसेंस हासिल होता है तथा परमात्म तत्त्व की उपलब्धि होती है।

निर्वाण कल्याणक जहाँ तीर्थङ्कर परमात्मा को स्वयं शाश्वत सुख प्रदान करता है वहीं द्रव्य से किसी एक निगोद के जीव का उद्धार करने में परम निमित्त बनता है।

इस प्रकार तीर्थङ्कर पुरुषों के पाँचों कल्याणक आत्म कल्याण करने वाले कहलाते हैं। इन कल्याणकों के अवसर पर तीर्थङ्कर के जीव का कल्याण तो होता ही है, क्योंकि वे स्वयं कल्याण स्वरूप हैं। इसी के साथ दर्शकों का कल्याण भी होता है।

इन पाँच के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमुख घटना घटित नहीं होती जिससे अनायास ही 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' की उक्ति चरितार्थ हो सकें। इसलिए कल्याणक पाँच ही माने गये हैं।

पंच कल्याणक के आध्यात्मिक प्रयोजन

पंच कल्याणक उत्सव का मुख्य हार्द यह है कि साक्षात तीर्थङ्कर भगवान के अभाव में उनके द्वारा प्रदर्शित एवं निरुपित मुक्ति मार्ग को निरन्तर आलोकित रखा जाए। इस प्रयोजन से तदाकार जिन बिम्बों की स्थापना की जाती है। यह उत्सव जगज्जनों को अज्ञानी से आत्मज्ञानी, रागी से वीतरागी, अल्पज्ञ से सर्वज्ञ और भक्त से भगवान बनने की पारमार्थिक एवं व्यावहारिक विधि का निदर्शन करवाने के प्रयोजन से भी किया जाता है।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक प्राणी सम्यक पुरुषार्थ द्वारा परमात्म पद प्राप्त कर सकता है। इस सिद्धान्त को स्पष्ट करना भी इस पवित्र अनुष्ठान का उद्देश्य है। यह उत्सव जगज्जनों का शान्तिपथ प्रदर्शक भी है। इन सभी कारणों से इस महोत्सव को अति उल्लास पूर्वक मनाते हैं।

1. च्यवन कल्याणक

च्यवन कल्याणक का अर्थ

किसी भी तीर्थङ्कर पुरुष का माता के गर्भ में अवतरण होना च्यवन या गर्भ कल्याणक कहलाता है। च्यवन का सामान्य अर्थ है- एक स्थान से दूसरे स्थान में गति करना। तीर्थङ्कर का जीव देव या नरक गति का आयुष्य पूर्ण कर अन्तिम भव के रूप में माता की कुक्षि में अवतरित होता हैं उस प्रक्रिया को च्यवन कल्याणक कहा जाता है।

च्यवन कल्याणक क्यों मनाएं ?

जब भी तीर्थङ्करों के जीव का च्यवन होता है और वे माता के गर्भ में आते हैं तब सम्पूर्ण लोक में कुछ समय के लिए एक विशिष्ट प्रकाश आलोकित हो जाता है। जगत में धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले और समस्त जीव राशि के लिए समान रूप से "सवि जीव करुं शासन रसी" की भावना रखने वाले अरिहंत परमात्मा का साक्षात्कार अल्पकाल में होने वाला है। इस भावना से ओत-प्रोत होकर देवी-देवता उत्कृष्ट भावों से नंदीश्वर तीर्थ में जाकर अष्टान्हिका महोत्सव करते हैं। इस भक्ति उत्सव में अनंत कर्मों की निर्जरा और तीर्थङ्कर नाम कर्म का बंधन भी कई जीव कर लेते हैं। भगवान पार्श्वनाथ ने अपने पूर्व भव में 500 कल्याणकों का उत्सव मनाकर ऐसे प्रकृष्ट पुण्य का

उपार्जन कर लिया कि वे पुरुषादानी कहलाए और आज भी इस पृथ्वी पर अनेक जीवों के उद्धार में हेतुभूत बन रहे हैं। इन कल्याणकों को जब स्वयं तीर्थङ्करों की आत्मा भी अहोभाव पूर्वक मनाती हैं और देवी-देवता गण भी अपने भोग-विलासमय जीवन को त्यागकर उल्लास पूर्वक यह महोत्सव मनाते हैं तो सामान्य लोगों के द्वारा कर्म निर्जरा के इस अवसर को शक्ति अनुसार अवश्य मनाया जाना चाहिए।

यह च्यवन और गर्भ अवतरण उस आत्मा के लिए अंतिम क्रिया है और समस्त जीवों को आत्म सुख और अभूतपूर्व शांति का अनुभव करवाती है। इसी कारण इस कल्याणक महोत्सव की उपादेयता है।

च्यवन कल्याणक के द्वारा यह भी अवगत होता है कि भोग की चरमता देवलोक में है तो त्याग की चरम सीमा मानव जीवन में ही है।

च्यवन कल्याणक कौन मनाते हैं?

जब साक्षात तीर्थङ्करों का च्यवन होता है तब समस्त सम्यगदृष्टि देवी-देवता यह कल्याणक मनाते हैं। प्रतिष्ठादि के कार्यक्रमों में इसका अनुकरण करते हुए नाटक के रूप में कुछ गृहस्थ श्रावकों के द्वारा उस दृश्य को प्रत्यक्ष उपस्थित किया जाता है। विराजित गुरु भगवंत भी इस पर विशेष प्रकाश डालते हुए उपस्थित जन मेदिनी के साथ इसे मनाते हैं।

च्यवन कल्याणक की जानकारी कैसे होती है?

तीर्थङ्करों का च्यवन होने पर सर्वप्रथम माता के द्वारा परम कल्याणकारी, शुभ सूचक चौदह (दिगम्बर परम्परा के अनुसार सोलह) स्वप्न देखे जाते हैं। यह तीर्थङ्करों के आगमन की पूर्व सूचना होती है। प्रथम देवलोक के सौधर्म इन्द्र को अपने अवधिज्ञान के द्वारा इसकी पूर्व अनुभूति हो जाती है। इसी के साथ सौधमेन्द्र का आसन भी डोलायमान होता है। इन्द्र अवधिज्ञान का उपयोग कर तीर्थङ्कर की दिशा में सात-आठ पाँव आगे जाकर शक्रस्तव द्वारा उनका गुणगान करते हैं तथा 'परमात्मा का जन्म शीघ्र हो' ऐसी भावना भाते हैं। तत्पश्चात नंदीश्वर द्वीप में जाकर अष्टान्हिका महोत्सव मनाते हैं।

महारानी दृष्ट स्वप्नों को शुभ सूचक जानकर अपने प्राणनाथ को उन स्वप्नों से अवगत करवाने एवं उनका पुण्य फल ज्ञात करने हेतु शयन कक्ष में जाती है। राजा उस विषय में चिंतन कर सामान्य फल बताते हैं तथा स्वप्न

पाठकों के द्वारा विशेष फल सुनकर अत्यन्त हर्षित और आनन्दातिरेक से झूम उठते हैं। तीर्थङ्कर के च्यवन दिन से ही माता-पिता की सुख-समृद्धि, यश-कीर्ति आदि में निरन्तर वृद्धि होती है।

दिगम्बर मतानुसार तीर्थङ्कर के गर्भ में आने से छह माह पूर्व देवता गण नगर की सुंदर रचना कर देते है एवं नगर में पन्द्रह माह तक रत्नों की वर्षा होती है। नगरवासीजन धन-धान्य आदि से समृद्ध हो जाते हैं।

सर्वप्रथम माता को सोलह स्वप्न आते हैं जो तीर्थङ्कर के आगमन की पूर्व सूचना देते हैं। उनका गर्भ कल्याणक देव-इन्द्र इसलिए मनाते हैं कि उनमें गर्भ से ही आत्मज्ञान एवं विश्वकल्याण की भावना छिपी होती है। उनके गर्भ में आते ही माता-पिता की सुख-समृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती है। इधर स्वर्ग में विशिष्ट वाद्य ध्वनियाँ होने लगती हैं, जिससे सौधर्म इन्द्र को ज्ञात हो जाता है कि तीर्थङ्कर गर्भ में आ चुके हैं। तब इन्द्र करोड़ों देवी-देवताओं के साथ प्रभु की नगरी में पहुँचकर अपूर्व गर्भोत्सव मनाता है। नृत्य गान एवं वाद्य ध्वनि से आकाश गूँज उठता है। जनता अपूर्व आनन्द की अनुभूति करती है।

जब तीर्थङ्कर का जन्म होता है इन्द्र ऐरावत हाथी पर बैठकर असंख्य देव-देवियों के साथ नगर की तीन प्रदक्षिणा देते हैं। इन्द्राणी माता के निकट मायामयी बालक को सुलाकर बाल तीर्थङ्कर को लेकर इन्द्र को सौंपती है। इन्द्र हजार नेत्र बनाकर तीर्थङ्कर के दिव्य रूप को देखता है और इतना भाव विभोर हो जाता है कि सुमेरु पर्वत पर एक हजार आठ कलशों से जन्माभिषेक कर ताण्डव नृत्य करने लगता है। तबले पर एक थाप पड़ने के पश्चात दूसरी थाप पड़ती है, तब तक तो वह ढाई द्वीप का चक्कर लगाकर बिजली की तरह राजभवन में आकर नाचने लगता है। सभी देव-देवियाँ, इन्द्र-इन्द्राणियाँ सहज ही थिरक उठते हैं। इस स्थिति का सही अनुभव तो साक्षात दृष्टा ही कर सकते हैं, अदृष्टा तो मात्र कल्पना ही कर सकते हैं।

चौदह स्वप्नों की अलौकिकता एवं प्रतिकात्मकता

गर्भ अवतरण के दौरान तीर्थङ्कर की माता जिन चौदह स्वप्नों को देखती है वे परिवार, संघ और समूचे राष्ट्र की ऋद्धि, ऐश्वर्य एवं अभ्युदय के प्रतीक हैं। पर्युषण पर्व के दिनों में स्वप्नों की महिमा को विश्रुत एवं उनके साक्षात फल

की अनुभूति करने हेतु बोलियों का आयोजन किया जाता है। कई बार मानस पटल पर यह प्रश्न उभरते हैं कि स्वप्नों के चढ़ावे क्यों और किन भावों से उसकी बोली का लाभ प्राप्त करना चाहिए?

इसके निम्नोक्त कारण होने चाहिए–

1. **गज**- तीर्थङ्कर की माता पहला स्वप्न महाबलवान ऐरावत हाथी का देखती है जो सम्पूर्ण नगर के अभ्युदय एवं गर्भस्थ शिशु के तीर्थ स्थापक और मोहदल रूपी शत्रुओं के विनाश करने का सूचक है। इस स्वप्न की बोली लेने वाले श्रावक को उस समय जड़-चेतन का भेद कर सकूं ऐसा आत्मबल एवं धर्म वृद्धि में सहायक पुत्र आदि के प्राप्ति की भावना करनी चाहिए।

2. **वृषभ**-माता दूसरे स्वप्न के रूप में श्वेत कमल के पत्तों से भी अधिक कान्तिवान सुदृढ़ वृषभ को देखती है। यह वृषभ धर्म का प्रतीक है। जिस प्रकार वृषभ अधिक भार वहन कर सकता है वैसे ही तीर्थङ्कर चतुर्विध संघ के वाहक होते हैं और सत्य धर्म के संस्थापक होते हैं।

इस स्वप्न की बोली लेने वाले को जीवन में धर्म कर्त्तव्यों के पालन की शक्ति प्राप्त होती है तथा उसे संघ शासन की वृद्धि में सहायक बनने एवं सत्यान्वेषी बनने की भावना करनी चाहिए।

3. **सिंह**- कल्पसूत्र के अनुसार तीर्थङ्कर की माता तीसरे स्वप्न में सुवर्ण के समान देदीप्यमान सौम्य मुद्रा वाले सिंह को देखती है जो शुभ का सूचक माना गया हैं। सिंह पराक्रम, पुरुषार्थ, साहस आदि का प्रतीक है। जो गर्भस्थ बालक के पराक्रमी एवं आत्म शत्रुओं के विनाशक होने का संदेश देता है। इसी के साथ जिस प्रकार सिंह वनराज है वैसे ही ये त्रिलोक के स्वामी हैं।

यह चढ़ावा लेने वाले श्रावक को आत्म स्वरूप की प्राप्ति हेतु सिंह की भांति पराक्रमी होने की भावना करनी चाहिए।

4. **लक्ष्मी**- चौथे स्वप्न में तीर्थङ्कर की माता हिम पर्वत पर विराजित, सुन्दर रूपवती, कमलासना लक्ष्मी के दर्शन करती है। यह उनके कैवल्य लक्ष्मी एवं आत्म ऐश्वर्य से संपन्न होने की सूचक है इसी के साथ यह तीर्थंकर के राजा-महाराजा, इन्द्र- धरणेन्द्र आदि से पूजित होने के श्रेष्ठ भावों का सूचन करती है।

इस स्वप्न का बहुमान एवं चढ़ावे लेने वाले परिवार को भौतिक संपत्ति एवं संपदा के साथ आभ्यंतर ज्ञान लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

5. पुष्पमाला युगल- तीर्थङ्कर की माता पाँचवे स्वप्न में ऐसी पुष्पमाला देखती है जो प्रत्येक ऋतु के उत्तम पुष्पों से निर्मित होती है। यह आत्म विजय के साथ बालक के यशस्वी, कान्तिमान एवं सुरभित अंग युक्त होने की सूचक है। यह परमात्मा के गुणों की परिमल तीनों लोकों में प्रसरित होने एवं अन्य जीवों के प्रति पुष्प की भांति कोमल होने की भी सूचक है।

इस स्वप्न की बोली लेने वाले गृहस्थ परिवार को मुक्ति माला वरण करने की भावना करनी चाहिए। ऐसा परिवार सद्‌गुण रूपी पुष्पों से सदैव महकता रहता है और उससे निश्चित ही मोक्ष माला की प्राप्ति होती है।

6. पूर्ण चन्द्रमा– तीर्थंकर की माता छठें स्वप्न में अत्यन्त उज्जवल पूर्ण चन्द्र को देखती है जो शीतलता, ओजस्विता, उज्ज्वलता एवं पूर्णत्व का प्रतीक है। इससे परमात्मा के आभामंडल की दिव्यता एवं कीर्ति भी सूचित होती है। इस स्वप्न का आदर-बहुमान करने एवं चढ़ावा लेने से स्वभाव शांत और शीतल बनता है। इससे पारिवारिक एवं सामाजिक क्लेश भी नष्ट होते हैं।

7. सूर्य- तीर्थङ्कर की माता सातवें स्वप्न में तिमिर (अंधकार) विनाशक सूर्य का दर्शन करती हैं जो गर्भस्थ शिशु के द्वारा मिथ्यात्व रूपी गहन अंधकार को नष्ट करने का संकेत देता है। इसी के साथ विश्व को केवलज्ञान रूपी सूर्य से प्रकाशित करने की भी सूचना देता है।

इस स्वप्न का बहुमान करने एवं चढ़ावा लेने से जीवन में सद्ज्ञान और सद्धर्म रूपी रवि का उदय होता है। इससे समाज को सही दिशा की प्राप्ति होती है तथा उसका उत्तरोत्तर विकास होता है।

8. धर्म ध्वजा- ध्वजा विजय की प्रतीक है। स्वप्न में लहराती धर्म ध्वजा देखने से जन्म लेने वाला बालक धर्म की यश कीर्ति को सम्पूर्ण जगत में प्रसरित करने वाला और जिन धर्म को सर्वोत्तम रूप में स्थापित करने वाला होता है।

इस स्वप्न का चढ़ावा आदि लेने एवं अनुमोदना करने से धर्म उन्नयन के विशिष्ट भाव प्रकट होते हैं तथा समाज में भौतिकता, अहिंसा एवं श्रेष्ठ धर्म की स्थापना करके जिनशासन लह-लहाता है।

9. पूर्ण कलश- कलश मंगल एवं शुभ का द्योतक है तथा पूर्ण कलश अभ्युदय का सूचक माना जाता है। परमात्मा का जीवन आत्म रूपी कलश, ज्ञान रूपी जल, एवं समता रूपी सुधारस से परिपूर्ण होता है। जो उन्हें आत्म स्वरूप की प्राप्ति करवाता है।

इस स्वप्न का चढ़ावा लेने से अशुभ का निवारण एवं कल्याण रूपी आत्म धर्म की प्राप्ति होती है।

10. पद्म सरोवर– तीर्थङ्कर की माता के द्वारा दसवाँ स्वप्न कमल दल से युक्त स्वच्छ एवं निर्मल सरोवर देखा जाता है जो यह सूचित करता है कि तीर्थङ्कर की गर्भस्थ आत्मा भी प्राणी जगत की ज्ञान तृष्णा का हरण करने वाली है। जैसे पद्मसरोवर सुगंधित एवं चित्ताकर्षक होता है वैसे ही तीर्थङ्कर आत्मगुणों से सकल विश्व को स्वरूप की प्रतीति कराने वाले एवं उनके चैतन्य मन को सद्धर्म के प्रति मोहित करने वाले होते हैं।

इस स्वप्न का चढ़ावा लेते समय स्वाभाविक गुणों को अनावृत्त कर सकूं ऐसी भावना करनी चाहिए। इसके चढ़ावे से जीवन के बाह्य एवं आभ्यन्तर दोनों प्रकार के गुण विकसित होते हैं। इसी के साथ जिस प्रकार जलाशय संवेदनशील होता है वैसे ही करुणार्द्र दृष्टि अन्य जीवों के प्रति उत्पन्न होती है।

11. रत्नाकर– सागर गंभीरता का सूचक है और स्वयं में अनेक अमूल्य निधियों को समाहित करता है उसी प्रकार परमात्मा भी समुद्र की भाँति गुण रत्नों के भंडार, जितेन्द्रिय एवं आत्म निधियों से समन्वित हैं।

इस स्वप्न का चढ़ावा लेने पर गंभीरता आदि सद्गुणों की प्राप्ति होती है और यह स्वप्न समुद्र जनित गुणों का स्मरण करते हुए उन्हें प्राप्त करने के उद्देश्य से ही ग्रहण करना चाहिए।

12. देव विमान– देव विमान तीर्थङ्करों के देव गति से आने का, देवताओं के द्वारा उनकी सेवा में तत्पर रहने का और देव विमान से भी सुंदर समवसरण की रचना का प्रतीक है।

इस स्वप्न का चढ़ावा लेने पर अथवा इसके प्रति बहुमान रखने पर उत्तम मनुष्य भव की प्राप्ति होती है। इससे परमात्मा के साक्षात समवसरण के दर्शन का लाभ भी प्राप्त हो सकता है।

13. रत्न राशि– माता के द्वारा देखा जाता तेरहवाँ स्वप्न गर्भस्थ बालक के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यकचारित्र ऐसे रत्नत्रय से युक्त होने का और समस्त जीव राशि के प्रति मैत्री आदि भाव रखने का सूचक है।

इस स्वप्न की बोली लेने वाला परिवार अथाह सुख-समृद्धियों एवं अनन्त ज्ञानादि गुणों से युक्त होता है। इसका चढ़ावा लेते समय परिवार, समाज और देश के सभी अभीष्ट पूर्ण हो, ऐसी भावना करनी चाहिए।

14. निर्धूम अग्निशिखा- तीर्थङ्कर की माता अन्तिम स्वप्न में बिना धुएँ की अग्नि का दर्शन करती है जो गर्भस्थ जीव के लिए यह संकेत देती है कि वह समस्त कर्म रूपी कालिमा को नष्ट कर निर्वाण पद को प्राप्त करेगा। जैसे प्रकाश एवं उष्णता अग्नि का लक्षण है वैसे ही यह स्वप्न अखण्ड धर्म जागृति, अद्भुत ज्ञान प्रकाश एवं कार्य सिद्धि का प्रतीक है।

इस स्वप्न के प्रति बहुमान रखने से शुद्ध आत्म स्वरूप की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार उक्त चौदह स्वप्न दृष्ट जनों के लिए, स्मृत करने वालों के लिए एवं उसे भाव पूर्वक स्वीकार करने वालों के लिए अत्यन्त मंगलकारी एवं सुख-सौभाग्य के जनक हैं।

वर्तमान संदर्भों में च्यवन कल्याणक की मौलिकता

जब किसी भी तीर्थङ्कर का च्यवन होता है तब माता सर्वप्रथम चौदह शुभ स्वप्न देखती है और उसके तुरन्त बाद जागृत होकर दृष्ट स्वप्नों का स्वस्थता पूर्वक चिन्तन कर उन्हें आत्मस्थ करती है ताकि स्वप्न फल में हेर-फेर न हो। तदनन्तर गजगामिनी या हंसगामिनी गति से चलती हुई अन्य कक्ष में शयन कर रहे राजा के समीप जाती है। यह क्रिया उस युग के उत्तम संस्कारों एवं मर्यादित भावनाओं को दर्शाती है। फिर अत्यन्त आदर पूर्वक हाथ जोड़कर हे स्वामिनाथ! हे विश्व नरेश! आदि मधुर शब्दों से उन्हें जागृत करती हैं। राजा भी शिष्टाचार का पालन करते हुए सम्मान पूर्वक आसन पर बैठने के लिए कहते हैं। फिर क्रमशः वार्तालाप प्रारंभ होता है। राजा स्वानुभव के आधार पर स्वप्नों का संक्षिप्त फल कहते हैं फिर भी स्वप्न विज्ञों से पूर्ण फल सुनते हैं। उसके बाद रानी स्वयं के कक्ष में आ जाती है।

यदि उपर्युक्त आचार संहिता का गंभीरता से चिंतन किया जाए तो ज्ञात होता है कि पूर्व काल में मर्यादित और आदर युक्त व्यवहार से पारस्परिक सम्बन्धों में जो मिठास, अपनत्व आदि था वह लुप्त होता जा रहा है।

पति-पत्नी का अलग-अलग शयन खंड वर्तमान में आपसी मन-मुटाव का सूचक माना जाता हैं। पर बालकों में श्रेष्ठ संस्कारों के निर्माण, मर्यादित जीवन, ऊर्जा संचय आदि की दृष्टि से यह आवश्यक है। यदि पूर्वजों के द्वारा निभाए जाने वाले आचरण के बारे में विचार किया जाए तो मर्यादित जीवन से सम्बन्धों में स्थैर्य, माधुर्य आदि बढ़ाया जा सकता है।

इसी प्रकार इन्द्रों द्वारा निभाया जाने वाला व्यवहार, स्वप्न पाठकों की प्रतिभाओं का बहुमान आदि से समाज में एकता एवं समादर के भावों को स्थापित करता है।

च्यवन कल्याणक के समय क्या भावना करें?

च्यवन कल्याणक का उत्सव मनाते समय उपस्थित जन समुदाय को यह भावना करनी चाहिए कि जिस प्रकार तीर्थङ्कर के जीव ने माता के गर्भ में अवतार लिया है उसी तरह हमारे चैतन्य हृदय में भी शुद्ध स्वरूप का प्रकटीकरण हो। तीर्थङ्कर प्रभु के अवतरण के समय माता-पिता को जिस आनन्द की अनुभूति हुई उसे स्वानुभव के आधार पर महसूस करने का प्रयत्न करें।

जिस प्रकार देवी-देवता अपनी भोग-विलासमयी जिन्दगी का त्यागकर परमात्मा के कल्याणकों की आराधना भव्य उत्सव के साथ करते हैं वैसे ही हमें भी अपने सांसारिक कार्यों को छोड़कर अगाध श्रद्धा एवं भक्ति के साथ इसकी आराधना करनी चाहिए।

जैसे माता गर्भ में अवतरित बालक का पोषण पूर्ण सजगता एवं बड़ों की शिक्षाओं के अनुसार करती हैं तथा सदैव शुभ विचारों में मग्न रहती है वैस ही च्यवन कल्याणक के अवसर पर हृदयस्थ परमात्मा को स्थायी बनाए रखने हेतु असद्प्रवृत्तियों से बचकर रहना चाहिए।

जैसे तीर्थंकर के जीव का च्यवन कल्याणक अंतिम होता है वैसे ही जन्म-मरण की परम्परा को समाप्त करने की प्रार्थना का मनोभाव रखना चाहिए।

2. जन्म कल्याणक

जन्म कल्याणक का अर्थ

नौ मास आदि की गर्भावधि पूर्ण होने पर तीर्थङ्करों का माता की कुक्षी से उत्पन्न होना जन्म कल्याणक कहलाता है। उस समय प्रकृति में सभी ग्रहों की स्थिति उच्च एवं बलवान होती है अत: सर्वत्र सर्वाधिक आनन्द होता है। अनेक भव्यात्माओं के भव्यत्व की सफलता तीर्थङ्कर जैसे पुरुषों के जन्म में निहित होती है। अपार्थिव आत्म सत्ता के अपूर्व ज्ञाता तीर्थङ्कर प्रभु का पार्थिव रूप में यह अन्तिम जन्म असंख्य जीवों को जन्म-मरण के बंधन से मुक्त करने वाला होता है। तीर्थङ्कर प्रभु का इस भूमि पर अवतरित होना अनेक जीवों के लिए कल्याण करने वाला होता है इसलिए इसे जन्म कल्याणक कहा जाता है।

तीर्थंकरों के जन्म का ऐसा प्रभाव है कि उस समय सभी जीवों को क्षण भर के लिए मोक्ष सुख की अनुभूति होती है तथा सम्पूर्ण सृष्टि हर्ष एवं अपूर्व सुख से सराबोर हो जाती है।

प्रकृति पर प्रभाव– तीर्थङ्कर प्रभु के जन्म अवसर पर प्राकृतिक वातावरण अद्वीतिय एवं अनुपम होता है। सर्वत्र शीतल एवं सुगंधित वायु मंद रूप से प्रवाहित होने लगती है। पृथ्वी धन-धान्यादि से समृद्ध हो जाती है। आकाश में देव-दुन्दुभियों का मधुर निनाद प्रकृति को और भी सुरीला बना देता है। उस समय भूलोक की छवि स्वर्ग के नन्दन वन से भी सुन्दर प्रतीत होती है।

परमात्मा का शारीरिक सौन्दर्य– इस विश्व में तीर्थङ्कर सर्वोत्कृष्ट पुण्यशाली जीव होते हैं। उनके अतुल वैभव का साक्षात्कार तो तत्त्वज्ञानी पुरुषों को ही होता है परन्तु उनके दैहिक सौन्दर्य एवं शारीरिक बल का साक्षात्कार पुण्य प्रभाव से होता है। उनकी शारीरिक शक्ति भी इतनी बेजोड़ होती है कि छह खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती भी उनकी एक अँगुली को मोड़ नहीं सकते। उनके शरीर की रचना इतनी सौन्दर्यपूर्ण होती है कि इन्द्र भी उसे देखकर तृप्त नहीं हो पाता है, अत: हजार नेत्र बनाकर देखता है। तीर्थङ्कर का शरीर जन्मत: पसीने से रहित और सुगंध युक्त होता है। वाणी पैंतीस गुणों को दर्शाती है। सम्पूर्ण शरीर में लाल रक्त के स्थान पर श्वेत दूध प्रसरित होता है। जैसे बालक के प्रति वात्सल्य होने से माता के स्तनों से दूध झरता है वैसे ही सम्पूर्ण जीव राशि के प्रति मैत्री भाव होने से तीर्थङ्कर के शरीर में दूध का बहाव होता है। सभी तीर्थङ्करों का जन्म राजघराने में और क्षत्रिय आदि उच्च कुलों में होता है। उनके शरीर पर 1008 शुभ लक्षण होते हैं। तीर्थङ्कर राज्य भी करते हैं, किन्तु सम्यकज्ञान के बल से स्वयं को जल में कमल की तरह अलिप्त रखते हैं और जड़-वैभव को काकबीट की तरह आत्मा के लिए अप्रयोजनभूत मानते हैं। जैसे भरत ने राम का प्रतिनिधि बनकर राज्य किया था, वैसे ही सांसारिक दायित्वों का निर्वहन करते हैं। एक कवि ने कहा है-

सम्यग्दृष्टि जीव भी, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर से न्यारा रहे, ज्यों धाय खिलावे बाल।।

देवी-देवताओं द्वारा स्नात्र महोत्सव– तीर्थंकर पुरुषों का जन्म होने पर प्रथम देवलोक के इन्द्र सौधर्म का अचल सिंहासन कम्पयमान होता है। उस समय अवधिज्ञान के प्रयोग द्वारा यह जान लेते हैं कि अमुक नगरी में अमुक

तीर्थंकर ने जन्म लिया है। तब सिंहासन से त्वरति गति से उठकर एवं उस दिशा में सात-आठ कदम आगे बढ़कर नमुत्थुणंसूत्र से प्रभु की स्तुति करते हैं।

उसके पश्चात सुघोषा घंटा बजवाकर सभी देवलोकों में तीर्थंकर के जन्म की सूचना प्रसारित की जाती है।

सर्वप्रथम छप्पन दिक्कुमारियाँ आकर माता एवं परमात्मा का सूतिकर्म सम्पन्न करती हैं।

तदनन्तर सौधर्मेन्द्र अपनी समस्त ऋद्धि-सिद्धि एवं देव गणों के साथ परमात्मा के जन्म स्थल पर आकर तीन प्रदिक्षणा देते हैं। तदनन्तर माता को अवस्वापिनी निद्रा देकर पाँच रूपों में प्रभु को ग्रहण करते हैं और वहाँ परमात्मा का प्रतिबिम्ब स्थापित करते हैं। फिर अत्यन्त विनय एवं बहुमान व्यक्त करते हुए बाल प्रभु को मेरुशिखर पर लेकर जाते हैं। वहाँ समस्त देव-देवीगण भक्ति सभर भावों से परमात्मा का अभिषेक करते हैं। फिर देवदूष्य वस्त्र से प्रभु का अंगलूंछन कर उन्हें रत्न जड़ित बाजोट पर विराजमान करते हैं और उनकी आरती उतारते हैं।

अभिषेक की यह क्रिया इतनी मनमोहक होती है जिसका वर्णन करना शब्दातीत है। देवी-देवताओं द्वारा यह कार्य हर्षोल्लास पूर्वक सम्पन्न कर लिए जाने पर बाल प्रभु को पुन:माता के निकट ले आते हैं और उसके बाद नन्दीश्वर द्वीप में जाकर अष्टाह्निका महोत्सव मनाते हैं।

वर्तमान में जो स्नात्र पूजा की जाती है वह इसी स्नात्रोत्सव का अनुकरण है। साक्षात परमात्मा का कल्याणक मना सकें उतना हमारा पुण्य नहीं है, परन्तु द्रव्य क्रिया से उन्हीं उत्कृष्ट भावों का सर्जन कर अनन्त कर्मों की निर्जरा कर सकते हैं। स्नात्र पूजा में यदि वही स्नात्रोत्सव की भाव धारा बन जाए तो उत्कृष्ट पुण्य का बंध भी संभव है।

वर्तमान में प्रतिष्ठा आदि के दौरान जन्म कल्याणक के दिन भव्य स्नात्रोत्सव ही रखा जाता है। उस समय देवताओं के अनुरूप हमारे में भी श्रद्धा भक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। उनके भौतिक ऐश्वर्य के आगे हमारे जीवन की उपलब्धि तो तुच्छ है किन्तु जब वे भी उसे छोड़कर जन्मोत्सव में उपस्थित रहते हैं तो फिर हमारे द्वारा सांसारिक व्यस्तताओं के कारण प्रमादवश या जानबूझकर इन कार्यक्रमों की अवहेलना की जाए तो अंतराय कर्म का बंधन होता है। अत:

विवेक रखते हुए अपने आपको जिन धर्म के अनुष्ठानों से सतत जोड़े रखना चाहिए जिससे भावों की शुद्धता एवं निर्मलता बनी रहे।

माता पिता के द्वारा भव्य जन्मोत्सव– छप्पन दिक्कुमारियों के द्वारा सूति कर्म एवं देवी-देवताओं के द्वारा स्नात्रोत्सव मनाने के बाद तीर्थङ्कर प्रभु का जन्मोत्सव मध्यलोक में मनाया जाता है। सर्वप्रथम प्रियंवदा दासी द्वारा राजा को पुत्र जन्म की बधाई दी जाती है। राजा भी प्रमुदित मन से उसके सात पीढ़ियों का दारिद्रय दूर हो जाए उतना पारितोषिक देकर उसे संतुष्ट करते हैं। समस्त प्रजाजनों को ऋण से मुक्त कर इच्छित सामग्री प्रदान करते हैं, बंदीजनों को कारागृह से रिहा कर देते हैं। परमात्मा का यह जन्म महोत्सव सम्पूर्ण राज्य में बारह दिन तक आयोजित किया जाता है।

इसी प्रकार का माहौल प्रतिष्ठा-अंजनशलाका के समय जन्म कल्याणक के दिन उपस्थित किया जाता है।

नामकरण– परमात्मा के नामकरण का विशेष महत्त्व है क्योंकि यही नाम अनेक जीवों के लिए कल्याण का निमित्त बनता है। उत्थान की दृष्टि से परमात्मा के चारों निक्षेप समान रूप से कार्यकारी बनते हैं। भाव निक्षेप के रूप में तो परमात्मा अल्प समय के लिए कुछ जीवों को ही उपलब्ध हो पाते हैं। स्थापना निक्षेप के रूप में परमात्मा दीर्घ समय तक अनेक जीवों के लिए उपकारक होते हैं। नाम निक्षेप की दृष्टि से तीन चौबीसी तक प्रत्येक जीव के लिए कर्म निर्जरा का कारण बनते हैं।

परमात्मा के नामकरण के लिए सुंदर मंडप की रचना की जाती है और उसे उत्तम द्रव्यों से सजाया जाता है। उस समय उपस्थित होने वाले सभी स्वजन, बंधुजन आदि का यथोचित्त बहुमान आदि किया जाता है। ब्राह्मण-पुरोहित आदि मंगल वचनों का उच्चारण करते हैं। बुआ उनके लिए विविध वस्त्र, अलंकार, खिलौने आदि लेकर आती हैं। ज्योतिषी जन्म कुंडली के अनुसार आद्य अक्षर बताते हैं। तत्पश्चात माता के गर्भगत अनुभवों के आधार पर उनका नाम रखा जाता है। यही नाम समस्त जगत के लिए पूजनीय, आराध्य एवं कल्याणकारी बनता है।

वर्तमान में पंच कल्याणक महोत्सव के दरम्यान जन्म कल्याणक के अन्तर्गत यह विधि की जाती है। मामा, बुआ, बहन आदि पात्रों के द्वारा तीर्थङ्कर युग की प्रत्यक्ष अनुभूति करवाई जाती है। हम अपने सांसारिक पुत्र-पौत्र,

भाणजे-भतीजे आदि के नामकरण में प्राय: जाते हैं जो निश्चित रूप से कर्म बंधन का कारण है परन्तु तीर्थङ्कर परमात्मा के नामकरण के भागीदार बनकर कर्म बंधन एवं भव वर्धन को रोक सकते हैं अतएव ऐसे प्रसंगों में एकतान होकर जुड़ना चाहिए।

पाठशाला गमन– तीर्थङ्कर परमात्मा तो जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक होते हैं। तदुपरान्त माता-पिता अपने दायित्व का निर्वाह तथा सामान्य जन को शिक्षा का महत्व समझाने हेतु आठ वर्ष की आयु में अध्ययन हेतु पाठशाला ले जाते हैं।

जब इन्द्र को यह ज्ञात होता है कि परमात्मा को अध्ययन हेतु ले जाया जा रहा है तब वह परमात्मा की महिमा को सर्वत्र प्रसरित करने के लिए विद्यालय में ब्राह्मण का रूप धारण कर उपस्थित होते हैं। वहाँ परमात्मा के द्वारा किए गए प्रश्नों के आधार पर जैनेन्द्र व्याकरण की रचना होती है और परिवारजन परमात्मा को पुन: घर ले जाते हैं।

जन्म कल्याणक एवं दीक्षा कल्याणक की मध्यवर्ती घटनाओं को पंच कल्याणक महोत्सव के अन्तर्गत उस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, जिससे सामान्य जन को उनके जीवन से प्रतिबोध प्राप्त हो सके।

परमात्मा का लग्नोत्सव– अनंत उपकारी तीर्थङ्कर परमात्मा के जीवन की प्रत्येक घटना के मर्म को समझा जाए तो हर व्यक्ति अपने जीवन में अनेक आदर्श स्थापित कर सकता है। विवाह या शादी का नाम लेते ही हमारे समक्ष भोगमय जीवन का चित्र उभरने लगता है। जो परमात्मा योग में रमने वाले हैं वे भोगमय जीवन का स्वीकार क्यों करते हैं? उसे स्वीकार करते समय उनकी मन:स्थिति क्या होती है? किसी कवि ने अरिहंत प्रभु की उस मनोदशा को उजागर करते हुए कहा है-

मैथुन परिषह थी रहित जे, नंदता निजभावमां
ने भोगकर्म निवारवा विवाह कंकण धारतां।
ने ब्रह्मचर्य तणो जगाव्यो, नाद जेणे विश्वमां
ऐवा प्रभु अरिहंत ने, पंचांग भावे हुं नमुं।।

अरिहंत परमात्मा यदि विवाह करते भी हैं तो मात्र भोगावली कर्मों को क्षीण करने के लिए। अत: उनकी इस क्रिया में कर्म बंधन नहीं, कर्म क्षय ही होता है। परमात्मा कभी भी स्वेच्छा से लग्न बंधन में नहीं बंधते और न ही उनमें

विषय भोग की अभिलाषा होती है और इसीलिए सब कुछ करते हुए भी वे निर्लिप्त रहते हैं। उनके विवाह मंडप की रचना स्वयं इन्द्र करते हैं, क्योंकि यह उनकी आचार मर्यादा है। इन्द्र प्रत्येक कार्य के लिए सर्वप्रथम परमात्मा की आज्ञा ग्रहण करते हैं अथवा विनम्र भावों में उनसे निवेदन करते हैं।

जिस प्रकार समुद्र मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, पर्वत चलायमान नहीं होते वैसे ही उत्तम पुरुष कभी भी उचित मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते और इसीलिए तीर्थङ्कर भगवंत गृहस्थ अवस्था में माता-पिता की इच्छा एवं आज्ञा के अनुसार आचरण करते हुए विवाह करते हैं। जिस प्रकार दुर्बल व्यक्ति चलने के लिए वॉकर का प्रयोग करते हैं वैसे ही सम्यक्त्वी जीव के लिए विवाह अविरति के उदय में वॉकर के समान है जिससे वह शीघ्र मुक्त होना चाहते हैं। इस प्रकार परमात्मा के विवाह का प्रसंग भी कर्म बंधन का हेतु न होकर मुक्ति का पैगाम है।

पंच कल्याणक महोत्सव में परमात्मा का विवाह प्रसंग मनाते हुए उन्हीं के समान निर्लिप्त अवस्था के प्राप्ति की भावना करनी चाहिए। इस प्रसंग में मोह और भोग के बीच रहकर उस पर विजय प्राप्त करने वाले परमात्मा को आदर्श रूप मानना चाहिए।

इस जीव ने संसार में विवाह सम्बन्ध करते-करवाते और उनकी अनुमोदना करते हुए अनंत कर्मों का बंधन किया है, परन्तु परमात्मा के विवाहोत्सव को मनाते हुए उनके स्व-पर कल्याण की भावना को अपने भीतर में उतारकर मुक्ति रमणी को वरण करने के भाव संजोने चाहिए।

जन्म कल्याणक क्यों मनाना चाहिए?

सामान्यतया यह प्रश्न हो सकता है कि परमात्मा जो कि प्रत्येक जीव के प्रति करुणा एवं मैत्री के भाव रखते हैं। उनके जन्मोत्सव को मनाने हेतु इन्द्रों के द्वारा इतना भव्य उत्सव और इतनी अथाह जल राशि से उनका अभिषेक क्यों? जबकि परमात्मा तो निर्मल है, इन्द्रों के द्वारा यह सब करने से जीव हिंसा नहीं होती?

जन्म कल्याणक एवं अन्य कल्याणकों में देवों के द्वारा उजमणी करना एक शाश्वत आचार है। इतने भव्य रूप में किया जाने वाला आयोजन परमात्मा की भव्यता, उच्चता आदि का प्रतीक है। सामान्य जन को परमात्मा की पूज्यता

दर्शाने एवं उनके कर्त्तव्यों का अवबोध करवाने हेतु भी यह आवश्यक है। इससे परमात्मा की त्रिलोक पूज्यता भी दर्शित होती है।

जहाँ तक अथाह जल राशि के प्रयोग का प्रश्न है वहाँ सर्वप्रथम तो परमात्मा का यह अतिशय होता है कि उनके कारण किसी जीव को पीड़ा नहीं होती। फिर जो जीव परमात्मा के स्पर्श में आते हैं, वे स्वयं धन्य हो जाते हैं। दूसरा हेतु यह है कि परमात्म भक्ति में शक्ति के अनुसार द्रव्य का उपयोग करना चाहिए। देवों का सामर्थ्य यदि नंदन वन के पुष्प लाने एवं अनेक जल राशियों से जल लाने का है तो फिर वे भी अपनी शक्ति का उपयोग परमात्म भक्ति में क्यों न करें? इस क्रिया में भावों के उर्ध्वारोहण से जो कर्म निर्जरा होती है वह जल आदि द्रव्यों के उपयोग द्वारा होने वाले कर्म बंधन से बहुत गुणा अधिक है। भगवान पार्श्वनाथ के जीव ने 500 कल्याणकों की आराधना करते-करते इतने प्रबल पुण्य का अर्जन किया कि पुरुषादानी नाम से विख्यात हुए एवं आज भी उनके आराधक वर्ग की संख्या और उनकी नाम ख्याति बढ़ती जा रही है। वर्तमान में जन्म कल्याणक के अनुकरण रूप स्नात्र पूजा पढ़ायी जाती है।

कई लोग वर्तमान में हो रहे महोत्सवों को आडंबर मानते हैं तो कुछ लोग इसे हिंसा। पंच कल्याणक महोत्सव के दौरान इन उत्सवों को आडंबर मानने वाले घर में विवाह, जन्मदिन आदि कार्यक्रमों में जितना खर्चा करते हैं वह क्या है? वह तो एक मिथ्या निमित्त को लेकर किया जाने वाला मात्र कर्म बंधन है। जबकि इस आयोजन के माध्यम से अनेक जीव सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकते हैं तथा इसी के साथ अन्य धर्मी भी जैन धर्म के अनुयायी बनते हैं।

जब एक गृहस्थ अपने गृह कार्यों के लिए पूरा दिन हिंसा करता है तो उसे वह कार्य अनुचित नहीं लगता पर जैसे ही मंदिर के सम्बन्ध में बात आती है तो हिंसा दिखती है, यह मात्र कुतर्क वादिता है। इन कार्यों में भावों को प्रधानता देकर विचार करना चाहिए।

यहाँ यह प्रश्न भी हो सकता है कि गर्भ और जन्म तो सभी जीवों के होते है, फिर मात्र तीर्थङ्करों के ही ये दोनों उत्सव इन्द्रों द्वारा क्यों मनाये जाते हैं? अन्य संसारी जीवों के क्यों नहीं?

समाधान यह है कि यद्यपि गर्भ में आना और जन्म लेना कोई नई बात नहीं है बल्कि ये तो दु:खदायी ही होते हैं, किन्तु जिस गर्भ के बाद पुन: किसी

माँ के गर्भ में जाना न पड़े, जन्म के बाद किसी अन्य माता के उदर से पुनः जन्म लेना न पड़े वह गर्भ और जन्म कल्याण स्वरूप होने से कल्याणक के रूप में मनाये जाते हैं।

जन्म कल्याणक मनाते समय क्या भावना करें?

जन्म कल्याणक एक उत्तम प्रसंग है। इसकी शुभ भावनाओं से भावित होकर अनेकशः कर्मों की निर्जरा की जा सकती है। इस अवसर्पिणी काल खण्ड के पाँचवें आरे में भरत एवं ऐरवत क्षेत्र में रहने वाले मनुष्यों की यह सामर्थ्य तो नहीं कि वे साक्षात तीर्थंकरों के कल्याणकों की उजवणी कर सके, परन्तु स्थापना निक्षेप के माध्यम से भी यदि भावों की उच्चता आ जाए तो साक्षात उजवणी से भी अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। इस पंच कल्याणक के अनुसरण में परमात्मा की ऋद्धि-वैभव आदि का न तो यथार्थ चित्रण किया जा सकता है और न ही इन्द्रों के जैसी भक्ति का परन्तु ज्ञानियों के अनुसार इस पंच कल्याणक उत्सव का आयोजन करके देवताओं की बराबरी तो नहीं पर अनुसरण तो कर ही सकते हैं। जिस प्रकार बालक अपने खुले हाथों में समुद्र को समाहित करने की चेष्टा करता है उसी प्रकार हमें भी शक्ति के अनुसार इस कार्य को करना चाहिए, शक्ति को छिपाना नहीं चाहिए। जैन धर्म quantity को प्रमुखता नहीं देता, भावों को प्रधानता देता है। यदि भावना की उदारता एवं शक्ति का पूर्ण उपयोग किया जाए तो हमारे लिए यह प्रसंग निःसन्देह कल्याणकारी बनता है।

परमात्मा के जन्म से विवाह तक के प्रसंगों में हमें उनके समान निस्पृह एवं निरासक्त भाव लाने का प्रयत्न करना चाहिए। जन्मोत्सव के समय सभी देवों के मन में परमात्मा का अभिषेक करने हेतु उतावल होती है परन्तु एक-दूसरे को धक्का-मुक्की कर आगे बढ़ने की भावना नहीं रहती। हमें भी नित्य परमात्मा के अभिषेक में उदारता और विवेक का परिचय देना चाहिए।

जिस प्रकार देवी-देवता अपने सभी कार्यों को गौण कर परमात्मा के जन्मोत्सव को प्रमुखता देते हैं वैसे ही हमें अपने व्यापार, गृह कार्य, विवाह, पार्टी आदि को गौण कर परमात्मा के भक्ति प्रसंगो को जीवन में महत्व देना चाहिए।

3. दीक्षा कल्याणक

दीक्षा कल्याणक का अर्थ

तीर्थङ्कर पुरुषों के द्वारा सर्वविरति रूप चारित्र धर्म को अंगीकार करना दीक्षा कल्याणक कहलाता है। दीक्षा लेने के पश्चात ही तीर्थङ्कर नाम की पुण्य प्रकृति का उदय होता है और उस समय से ही परमात्मा स्वयं के शेष कर्म दलिकों को क्षय करने का पुरुषार्थ प्रकृष्ट रूप से प्रारंभ करते हैं। यद्यपि दीक्षा स्वीकार करने से पूर्व भी दान त्याग आदि की प्रेरणा देते हुए लोक कल्याण करते हैं।

दीक्षा को कल्याणक रूप में क्यों मनाएं?

तीर्थङ्कर परमात्मा जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक होते हैं इसलिए भावी हर घटना के विषय में जान लेते हैं। तदुपरान्त संयम अंगीकार करने में एक वर्ष शेष रहने पर शाश्वत कल्प के अनुसार लोकान्तिक देव परमात्मा के समक्ष यह प्रार्थना करते हैं कि "भयवं तित्थं पवत्तेहि"- हे भगवन्! धर्म तीर्थ का प्रवर्त्तन करिये। उस आचार मर्यादा को स्वीकार कर भगवान प्रतिदिन सूर्योदय से एक प्रहर तक 1 करोड़ 8 लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान देते हैं। इस प्रकार एक वर्ष में 388 करोड़ 80 लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान करते हैं। तीर्थङ्कर प्राणी मात्र के बाह्य दारिद्रय को दूरकर भाव दरिद्रता भी दूर करते हैं।

यद्यपि गृहस्थ अवस्था में तीर्थंकर पाणिग्रहण भी करते हैं, राज्य सिंहासन पर भी आरुढ़ होते हैं, राज्य के ऊपर आक्रमण होने पर उसका प्रतिकार भी करते हैं। यहाँ तक की पूर्व जन्मों के पुण्य बल से चकवर्ती भी बनते हैं किन्तु इन सभी का त्याग करके संयम को प्रमुखता देते हैं क्योंकि भोग से त्याग बलवान होता है और त्याग से मुक्ति होती है इसलिए दीक्षा को कल्याणक कहा गया है।

जन्म के बाद यदि परमात्मा के जीवन की कोई भी घटना अनुकरणीय एवं अनुमोदनीय बनती है तो वह है दीक्षा ग्रहण, अत: इसे कल्याणक मानना समुचित है। परमात्मा के इसी पथ का अनुसरण करते हुए लाखों-करोड़ों लोगों ने अपना कल्याण किया और करने वाले हैं। मोक्ष पथ की ओर अग्रसर करने वाला यह अवसर शुभकारी, मंगलकारी, जयकारी एवं आनंदकारी होने से निश्चित ही कल्याणक है।

तीर्थंकरों का दीक्षा कल्याणक स्थान

सभी तीर्थङ्करों का दीक्षा कल्याणक प्राय: उनकी जन्म नगरी के निकटवर्ती वन खण्ड में किसी वृक्ष के नीचे मनाया जाता है। दीक्षा कल्याणक सम्पन्न होते ही उन्हें चौथा मन:पर्यवज्ञान प्रकट हो जाता है। वे स्वयं बुद्ध होते हैं और केवलज्ञान प्राप्ति से पूर्व किसी को दीक्षित भी नहीं करते।

दीक्षा कल्याणक कौन-कौन मनाते हैं?

परमात्मा के दीक्षा कल्याणक उत्सव में करोड़ों देवी-देवता एवं हजारों ग्राम-नगरवासी उपस्थित होते हैं। परमात्मा दीक्षा लेने जाते हैं तब कई लोग उनके साथ भी दीक्षित होते हैं जैसे भगवान आदिनाथ, भगवान पार्श्वनाथ आदि के साथ अनेकों लोग दीक्षित हुए थे, वहीं महावीर स्वामी ने अकेले ही दीक्षा ग्रहण की। परमात्मा के दीक्षा प्रयाण के प्रसंग को उकेरते हुए किसी कवि ने कहा है–

नयणमाला सहस्सेहिं
वयणमाला सहस्सेहिं
अंगुलिमाला सहस्सेहिं

अत: परमात्मा की दीक्षा सामान्य रूप में नहीं हजारों लोगों के बीच भव्य उत्सव के रूप में होती है।

दीक्षा कल्याणक की भव्यता एवं महत्ता

तीर्थङ्कर परमात्मा जब दीक्षा ग्रहण करते हैं वह अवसर अत्यन्त मार्मिक होता है। उस दृश्य की कल्पना से ही मन का रोयां-रोयां कांप उठता है। जिनके चरणों में लक्ष्मी सदा आलोटने को इच्छुक रहती है ऐसे परमात्मा स्वजन, बंधुजन, वस्त्र, अलंकार, राज्य आदि सभी आकर्षक वस्तुओं का हँसते-हँसते त्याग कर देते हैं तथा भावों से राग-द्वेष आदि वैभाविक परिणतियों का त्याग करते हैं। जिन्होंने राजमहलों में रहते हुए ठंडी-गर्मी, धूप-बारिश किसी भी प्रतिकूल परिस्थितियों का अनुभव तक नहीं किया, किन्तु दीक्षा लेते ही उपसर्ग, परीषह एवं प्रतिकूल स्थितियों को स्वयं आमंत्रित करते हैं। भगवान आदिनाथ ने तेरह महीने निराहार बिताये तो प्रभु पार्श्वनाथ के ऊपर कमठ के जीव ने नाक तक पानी की बारिश की। भगवान महावीर के जीवन में तो संगम देव ने उपसर्गों की बरसात ही कर दी। इन सब स्थितियों में परमात्मा अडिग रहे। उनके मुख

पर आनंद की लहर और भीतर में सभी के लिए करुणा भाव नि:सृत होता रहा। इसी श्रेष्ठता के कारण जगत पूज्य पद को प्राप्त करते हैं।

जब तीर्थङ्कर परमात्मा दीक्षा के लिए राजभवन से प्रस्थान करते हैं। उस समय परिवार जनों एवं देवेन्द्रों के द्वारा एक भव्य पालकी का निर्माण करवाया जाता है। परमात्मा को उसी पालकी में बिठाकर पहले मनुष्य और फिर देवतागण दीक्षा स्थल तक लेकर जाते हैं। नगरजन उन्मेष दृष्टि से प्रभु को आभूषण आदि अमूल्य वस्तुओं का त्याग करते हुए देखते हैं। परमात्मा सघन केश राशि को मात्र पाँच मुष्टियों में ही उखाड़ डालते हैं। इसी के साथ हृदय से कषायों का लोच भी हो जाता है। एक राजकुमार के द्वारा समूचे संसार का परित्याग करते हुए देखकर लोगों के आँसू थमते ही नहीं है।

आज के भौतिक युग में हो रही दीक्षाएँ जिन धर्म की त्रैकालिक शाश्वतता को उजागर करती हैं। इस आधुनिकरण के चकाचौंध में अध्यात्म मार्ग की ओर कदम बढ़ाना सहज नहीं है। उसमें भी सुशिक्षित युवक-युवतियों एवं श्रेष्ठजनों को इस पथ पर बढ़ते देखकर लोगों का यह तर्क भी निरर्थक हो जाता है कि यह अज्ञानता या अभाव के कारण स्वीकृत पथ है। अनेक लोग इन अवसरों से धर्म मार्ग में जुड़ते हैं। जो लोग सर्वविरति धारण करने में असक्षम होते हैं वे देशविरत सम्यक्त्वी बनते हैं। परमात्मा की दीक्षा जहाँ समस्त जीव जगत के लिए कल्याणकारी बनती है वहीं परमात्म पथ का अनुसरण करने वालों की दीक्षा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में उपस्थित समुदाय के लिए श्रेष्ठ भावों के आरोहण एवं कर्म निर्जरण में हेतुभूत बनती हैं।

दीक्षा कल्याणक के समय क्या भावना करें

दीक्षा कल्याणक को मनाते हुए, उसमें पात्रों का किरदार अदा करते हुए या उसके साक्षी बनते हुए सर्वप्रथम तो यही कल्पना करनी चाहिए कि हम साक्षात परमात्मा के दीक्षा प्रसंग में ही उपस्थित हैं। इस कल्पना मात्र से अन्तर्मन में जो भावधारा उत्पन्न होगी वह हमारी आंतरिक कलुषिताओं एवं औपचारिक वृत्तियों को दूर करने में सहायक बनती है।

जब परमात्मा को हजारों मनुष्यों के साथ दीक्षित होते हुए देखते हैं उस समय भावना करें कि हे भगवन्! आपके तीर्थ में हम भी शीघ्र दीक्षित होकर जन्म-मरण की दुखमयी परम्परा का अन्त करें, क्योंकि सभी के लिए शाश्वत विश्राम स्थल मोक्ष ही है।

हे परमात्मन् ! जिस प्रकार आप परीषह आदि विषम घटनाओं को सहज-भाव से सहन करते हुए बाह्य और अंतरंग तपानुष्ठानों में अनुरक्त रहते हैं कभी भी अपनी विराट् शक्ति का उपयोग नहीं करते हैं उसी प्रकार हम भी स्वावलम्बी और आत्मोन्मुखी जीवन यापन करें।

4. केवलज्ञान कल्याणक

केवलज्ञान कल्याणक का अर्थ

चार घाती कर्मों का क्षय होने पर तीर्थंकरों को जब सम्पूर्ण लोकालोक का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है तब चार निकाय के देवों एवं मनुष्यों द्वारा भव्य महोत्सव मनाया जाता है। उस महोत्सव को शास्त्रीय भाषा में केवलज्ञान कल्याणक कहते हैं। परमात्मा दीक्षा ग्रहण करने के बाद ज्ञान चेतना में निमग्न रहते हैं तत्फलस्वरूप धीरे-धीरे वह परिणति ज्ञान स्वभाव में एकाकार हो जाती है

इससे आत्मा पूर्ण शुद्ध होकर सूर्य की तरह केवलज्ञान के रूप में प्रकाशित हो जाती है। अन्तर्मुखी वृत्ति के कारण नित नई अनुभूतियाँ प्रकट होती है। इसी क्रम में अपूर्व आत्मशुद्धि का अनुभव करते हुए वीतराग अवस्था प्रकट हो जाती है और यही घाति कर्मों से रहित आत्मा की पूर्णत: अनावृत्त अवस्था केवलज्ञान कल्याणक कहलाती हैं। अरिहंत बनने के पश्चात ही वे समस्त चराचर विश्व को दर्पण में परिलक्षित हो रहे प्रतिबिम्ब की भांति जानने लगते हैं।

केवलज्ञान कल्याणक का वैशिष्ट्य

ज्ञानावरणीय आदि चार घाति कर्मों का क्षय कर मुनि पद से अरिहंत पद पर आरोहण करना केवलज्ञान कल्याणक है। तीर्थङ्कर केवलज्ञान उत्पत्ति के बाद ही चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करते हैं, धर्म देशना के द्वारा हजारों को मोक्ष मार्ग पर आरूढ़ करते हैं। सामान्यतया तीर्थङ्कर की आत्मा अनादिकाल से ही पूज्य होती है परन्तु केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात परम पूज्य बन जाती है। केवलज्ञान की प्राप्ति होने के बाद ही तीर्थङ्करों का उपकारक भाव आरम्भ होता है तथा परमात्मा के 34 अतिशय एवं वाणी के 35 गुण प्रकट होते हैं। इन्द्रादि देवी-देवता समवसरण की भव्य रचना करते हैं उस समवसरण में साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका तथा देवी-देवताओं के बैठने के लिए बारह पर्षदाओं की व्यवस्था होती है। इस रचनाकृति में बैठकर नरक गति को छोड़कर शेष तीन

गति के जीव प्रभु की देशना सुन सकते हैं। इस प्रकार केवलज्ञानोत्पत्ति के पश्चात तीर्थङ्कर पद के अपूर्व अतिशय प्रकट होते है। जिन धर्म की स्थापना, सामाजिक विकृतियों का उन्मूलन, पापाचार का निरोध इत्यादि सुकृत कर्म केवल ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात ही होते हैं। इस प्रकार अरिहंत परमात्मा के पांचो कल्याणकों में विश्वोपकार की अपेक्षा से केवलज्ञान कल्याणक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इस कल्याणक की उजमणी से तद्रूप पद की प्राप्ति होती है।

केवलज्ञान कल्याणक कौन-कौन मनाते हैं?

तीर्थङ्कर परमात्मा को केवलज्ञान होते ही अनेक अपूर्व घटनाएँ घटित होने लगती हैं। संसार के समस्त शोक-संताप दूर हो जाते है तथा आनंद और प्रसन्नता की लहर छा जाती है। देवलोक में क्रमशः घण्टनाद, पुष्पवृष्टि, देव दुंदुभि और विविध शंख ध्वनियाँ होने लगती है। इन्द्र का आसन कंपायमान होता है और उसे केवलज्ञान होने की जानकारी प्राप्त हो जाती है। उस समय अनन्त ऋद्धिधारक इन्द्र सर्वप्रथम देवलोक से ही परमात्मा को वन्दन करते हैं। फिर सम्पूर्ण वैभव के साथ प्रभु की सेवा के लिए उपस्थित होते हैं और कुबेर को समवसरण की रचना करने का निवेदन करते हैं। उस अवसर पर करोड़ों देवी-देवता के साथ हजारों नर-नारी तथा पशु-पक्षी आदि भी हाजिर होते हैं। इस प्रकार ऊर्ध्व लोकवासी देव-देवी गण और मध्य लोकवासी मनुष्य एवं पशु-पक्षी आदि मिलकर तीर्थङ्कर पुरुषों का केवलज्ञान कल्याणक मनाते हैं।

केवलज्ञान कल्याणक की महिमा

अरिहंत परमात्मा के जितने भी अतिशय प्रकट होते हैं वे केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद होते हैं। करोड़ों देवी-देवता नित्य उनकी सेवा में रहते हैं। वे जहाँ भी देशना देते हैं वहाँ समवसरण की रचना स्वयमेव हो जाती है। उस समवसरण का निर्माण देवताओं के द्वारा किया जाता है, जो कि देव-विमानों से भी अत्यन्त श्रेष्ठ, रत्न, स्वर्ण एवं रजत से निर्मित्त होता है। नरक गति के सिवाय शेष तीन गति के जीव वहाँ साक्षात रूप में परमात्मा की वाणी का श्रवण अपनी-अपनी भाषा में करते हैं। जहाँ भी परमात्मा होते हैं वहाँ से सौ योजन तक दुर्भिक्ष नहीं होता, कोई भी जीव आपस में लड़ाई, मार-पीट नहीं करते, सभी जीवों में वैर-विरोध समाप्त हो जाता है।

तीर्थङ्कर भगवान के नख-केश नहीं बढ़ते, पलके नहीं झपकती और

उनकी छाया भी नहीं पड़ती हैं। केवलज्ञान के बाद उनके देवकृत चौदह अतिशय भी प्रकट हो जाते हैं। वे अर्द्धमागधी भाषा (जिसमें अठारह महाभाषाएँ एवं सात सौ लघुभाषाएँ होती है) में उपदेश देते हैं। सभी जीव मैत्री भाव से रहते हैं। अन्य अतिशयों में दिव्यध्वनि का बारह योजन तक सुनायी देना, दुन्दुभि का नाद होना, आकाश से पुष्प वर्षा होना, चौसठ चामरों का ढुलना, सब ऋतुओं के फल-फूल एक साथ प्रकट हो जाना, जमीन कंटक रहित दर्पण की तरह हो जाना, सुगन्धित जलवृष्टि होना, नदी-तालाब जल से परिपूर्ण हो जाना, आगे-आगे धर्मचक्र चलना आदि प्रकट होते हैं।

केवलज्ञान के प्रभाव से बारह अतिशय एवं अष्ट मंगल भी उत्पन्न हो जाते हैं। बारह अतिशयों में अष्ट प्रातिहार्य सदैव उनके साथ रहते हैं। अरिहंत अवस्था में चार घाती कर्मों का अभाव होने से आत्म स्वातन्त्र्य प्रकट हो जाता है। इन पाँच कल्याणकों के दृश्य देखकर संसारी जीव अभिभूत होता हुआ आत्म स्वतन्त्रता के प्राप्ति की भावना करता है।

तीर्थंकर प्रभु जब भी चलते हैं तो उनके चरण रखने के लिए स्वर्ण पुष्पों की रचना होती है, भूमि जीव-जन्तु से रहित हो जाती हैं। कट्टर प्रतिद्वेषी भी उन्हें देखते ही शान्त हो जाता है। उनकी देशना सुनकर अनेक जीव प्रतिबोध को प्राप्त होते हैं। जो प्रव्रज्या ग्रहण करने में सक्षम नहीं होते, वे देश विरति धारण करते हैं। इसी प्रकार अनेक तिर्यंच एवं देव-देवी गण भी परमात्मा से सद्बोध प्राप्त करते हैं।

वर्तमान में केवलज्ञान कल्याणक की आराधना के रूप में अंजनशलाका विधान संपन्न किया जाता है। जिस प्रकार केवलज्ञान के द्वारा परमात्मा के ज्ञान चक्षु प्रकट होते हैं, वैसे ही अंजनशलाका अनुष्ठान जिन प्रतिमा के ज्ञान नेत्रों के उद्घाटित होने की सूचक है। जिस प्रकार केवलज्ञान पंच कल्याणकों में महत्त्वपूर्ण है वैसे ही अंजनशलाका तीर्थङ्कर परमात्मा की प्राण प्रतिष्ठा का मुख्य प्रसंग है।

केवलज्ञान कल्याणक के समय क्या भावना करें?

पंचकल्याणक महोत्सव में केवलज्ञान कल्याणक की उजमणी करते हुए निम्न भावनाएँ करनी चाहिए।

हे परमात्मन्! जिस प्रकार आपने अपनी साधना के द्वारा अनंत ज्ञान गुण

आदि को प्रकट किया हैं वैसे ही हमारा अंतरज्ञान विकसित हो।

आपके शुभ परमाणुओं एवं आभामंडल के प्रभाव से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं और परस्पर वैर-विरोध के भाव भी समाप्त हो जाते हैं, वैसे ही मेरे मन में भी किसी के प्रति शत्रु भाव उत्पन्न न हों।

हे परमात्मन्! जिस प्रकार आपने समभावपूर्वक अनेक उपसर्गों एवं परीषहों को सहन कर आत्मस्वरूप को प्रकट किया है उसी तरह मैं भी प्रतिकूल परिस्थिति में समत्व गुण को विकसित कर पाऊं।

जिस प्रकार आपके हृदय में सभी जीवों के लिए करुणा मैत्री एवं वात्सल्य के भाव हैं, वैसे ही मेरे हृदय में समस्त जीव राशि के प्रति दया एवं करूणा के भाव बने रहें।

5. निर्वाण कल्याणक

अरिहंत परमात्मा के आयुष्य आदि चार अघाति कर्मों का नष्ट हो जाना निर्वाण कहलाता है। यह स्वयं परमात्मा एवं अन्य जीवों के लिए हितकारी होने से कल्याणक कहा जाता है।

निर्वाण कल्याणक रूप कैसे?

यह प्रश्न उत्पन्न होना सहज है कि अरिहंत परमात्मा के निर्वाण को कल्याणक या कल्याणकारी क्यों माना गया है? जिनके द्वारा हमें शाश्वत सत्य का बोध हो, ऐसे परमात्मा का वियोग हो जाना कल्याणकारी कैसे हो सकता है? इसका समाधान देते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि शाश्वत नियम के अनुसार जब एक आत्मा सिद्ध गति को प्राप्त करती है उस समय एक संसारी आत्मा अव्यवहार निगोद से निकलती है और उसका विकास क्रम प्रारम्भ हो जाता है। इसलिए परम पुरुषों का मोक्ष गमन भी कल्याणकारी है।

दूसरा हेतु यह है कि निर्वाण पद को प्राप्त करने वाली आत्मा अनादिकालीन जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाती है अत: उस जीव के लिए भी यह परम कल्याणकारी है। इन्हीं प्रयोजनों से निर्वाण को भी कल्याणक माना गया है।

निर्वाण कल्याणक कैसे मनाया जाता है?

जब तीर्थंकर परमात्मा का निर्वाण होता है उस समय समस्त देव अपने-अपने स्थान पर प्रकट होने वाले चिह्नों से भगवान की निर्वाणोपलब्धि को जान

लेते हैं। फिर सभी देव-देवता एवं इन्द्रादि अपने परिवार के साथ भगवान की निर्वाण-भूमि में आते हैं। वहाँ आकर मोक्ष के साक्षात साधन रूप भगवान के पवित्र शरीर को रत्नमयी पालकी पर विराजमान कर नमस्कार करते हैं। तदनन्तर अग्निकुमार जाति के देव अपने मुकुट से उत्पन्न अग्नि द्वारा भगवान के शरीर का अन्तिम संस्कार करते हैं। फिर परमात्मा के देह की भस्म को परमात्मा के समान मान कर उसे अपने-अपने मस्तक पर धारण करते हैं।

निर्वाण कल्याणक कौन-कौन मनाते हैं?

देवी-देवता, उपस्थित श्रद्धा संपन्न मुनि एवं श्रावक वर्ग मिलकर निर्वाण कल्याणक मनाते हैं।

वर्तमान में प्राय: अंजनशलाका एवं प्रतिष्ठा के पश्चात कल्याणकों की पूर्णाहुति समझ लेते हैं किन्तु इसी क्रम में परमात्मा का निर्वाण कल्याणक भी मनाया जाता है।

निर्वाण कल्याणक के समय क्या भावना करें?

निर्वाण कल्याणक महोत्सव के समय प्रत्येक प्रत्यक्षदर्शी को यह सोचना चाहिए कि हे त्रिलोक पूज्य! जिस प्रकार आपने अपनी आत्मा को कर्मों से मुक्त कर सिद्ध-बुद्ध अवस्था को प्राप्त कर लिया है वैसे ही मेरी आत्मा भी शीघ्र ही कर्म बंधन के पाश से मुक्त बने।

हे भगवन् ! जिस प्रकार आपका जन्म से लेकर मृत्यु तक का प्रत्येक क्षण कल्याणकारी है वैसे ही मेरा जीवन भी स्व और पर कल्याण में सदा उपयोगी बने।

विविध दृष्टियों से पंचकल्याणक महोत्सव की उपादेयता

पंचकल्याणक महोत्सव की उपयोगिता क्या है? इस विषय में मंथन किया जाए तो निम्न तथ्य प्रकट होते हैं-

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो इस महोत्सव को देखने पर महिलाओं पर विशेष प्रभाव पड़ता हैं। गर्भ अवस्था में माताओं को कैसे रहना, कैसा चिन्तन करना आदि अनेक शिक्षाएँ इसके द्वारा मिलती है। मानसिक स्वप्नों के शुभ-अशुभ प्रभाव आदि के विषय में ज्ञान होता है।

जन्म कल्याणक महोत्सव जीवन में आनंद एवं उमंग के भावों को प्रस्फुटित करता हैं तथा अन्तर्मन के आनंदित रहने से शरीर स्वस्थ एवं तंदुरुस्त

रहता है। परमात्मा के साक्षात जन्मोत्सव की कल्पना करने से जो भाव उत्पन्न होते हैं उससे अनंत गुणा दुष्कर्मों की निर्जरा और पुण्यानुबंधी पुण्य का सर्जन होता है। इससे भी मानसिक स्थिति सुदृढ़ बनती है। गृहस्थ अवस्था में परमात्मा की वैराग्यवासित स्थिति, माता-पिता के प्रति आज्ञा परायणता एवं सांसारिक कार्यों के प्रति अरुचि आदि दृश्य देखकर विरक्ति भाव परिपुष्ट बनते हैं।

दीक्षा कल्याणक का उत्सव करने से पर धन, परिग्रह एवं परिवार के प्रति जुड़ी हुई आसक्ति कम होती है। संसार की सही स्थिति का भान होता है और संसार सम्बन्धी विकल्प समाप्त होते हैं।

केवलज्ञान कल्याणक के माध्यम से आत्मा की सुप्त शक्तियों का आभास होता है तथा तीर्थङ्कर पद की गरिमा समझ आने से 'नमो अरिहंताणं' इस पद के प्रति पूर्ण समर्पण के भाव उत्पन्न होते है जिससे प्रगाढ़ दुष्कर्म भी शिथिल हो जाते हैं।

निर्वाण कल्याणक को मनाते हुए शाश्वत सुख को पाने की चाह जागृत हो जाती है।

सामाजिक दृष्टि से देखें तो पंचकल्याणकों का उत्सव सामाजिक एकता, सौहार्द एवं संगठन में सहायक बनता है। ऐसा भव्य सामूहिक अनुष्ठान सामाजिक मनमुटाव को समाप्त करता है। च्यवन कल्याणक की उजवणी से सकल संघ में परमात्मा के साक्षात ज़न्म लेने जैसा उत्साह पैदा होता है तथा चिर-प्रतिक्षित प्रतिष्ठा का कार्य प्रारंभ हो जाने से आनंद एवं उत्साह का माहौल बनता है।

जन्म कल्याणक की उजवणी सुसंस्कारी समाज के गठन में सहायक बनती है। जन्म से दीक्षा कल्याणक तक के सभी विधान समाज को सही दिशा देने का कार्य करते हैं, बच्चों को अध्ययन आदि के कर्त्तव्यों के प्रति जागरुक बनाते हैं तथा माता-पिता के प्रति बालक एवं युवा वर्ग के जो दायित्व हैं उनका अहसास दिलवाते हैं।

दीक्षा कल्याणक का प्रसंग समाज में संयम के महत्त्व को स्पष्ट करता है। यह सर्व विरति एवं देश विरति के भावों को पुष्ट कर समाज के आध्यात्मिक पक्ष को मजबूत करता है।

जन्म एवं मृत्यु के अटल नियम से कोई बच नहीं सकता, चाहे फिर वे

स्वयं परमात्मा ही क्यों न हो? इस प्रकार जन्म-मृत्यु से बचने के प्रयासों एवं अंधविश्वास आदि को समाप्त करने में निर्वाण कल्याणक सहयोगी बनता है।

आध्यात्मिक विकास में भी पंचकल्याणक महोत्सव की अहम् भूमिका है। सर्वप्रथम तो यह मन में सद्भाव एवं शुभ भावों को जागृत करता है। संसार के प्रति वैराग्य भावों को उत्पन्न करता है। परमात्मा के जीवन की एक-एक घटना जगत में रहते हुए भी उससे अलग रहने की कला का ज्ञान करवाती है तथा सिद्धत्व प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करती है।

जिस प्रकार अत्यन्त सुंदर महल का निर्माण करने पर भी जब तक उसकी वास्तु विधि नहीं होती वह रहने योग्य नहीं होता, राजतिलक के बिना राजकुमार राजा नहीं बनता, वैसे ही अंजनशलाका और प्रतिष्ठा के बिना प्रतिमा संपूज्य नहीं बनती। प्रतिमा साक्षात अरिहंत परमात्मा की प्रतिकृति होती है। उसमें वीतरागमयी मुद्रा, संपूर्ण ज्ञानमयी गुणवत्ता, परमानंदमयी स्वरूप, सर्व जीवों के प्रति कल्याणबुद्धि और सर्वपापहरण की मंगल भावना का अवतरण तथा सकल विश्व के लिए इन समस्त गुणों की प्रस्थापना प्रतिष्ठा विधि से होती है। परमात्मा के यही सब गुण जिनबिम्ब में प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

इस प्रकार परमात्मा की प्रतिमा भावों के प्रशस्तीकरण एवं शुद्धिकरण में निमित्त बनती है। व्यक्ति के अन्तर्मन से दुर्भावों का परिहार एवं सद्भावों का सर्जन करती है। यह सामूहिक अनुष्ठान होने से इसके द्वारा समुदाय में रहने की कला, आपसी सामंजस्य, समभाव आदि के भावों का पोषण होता है। इस तरह भाव प्रबंधन में यह अत्यन्त सहयोगी बनता हैं।

समाहारतः इन पंच कल्याणकों में तीर्थङ्कर के अन्तरंग जीवन को देखने-सुनने का अवसर प्राप्त होता है जिससे समारोह में जुड़े भव्य जीवों का निश्चित कल्याण होता है, इसीलिए वे कल्याणक (आत्मकल्याण करने वाले) कहलाते हैं। इन कल्याणकों में तीर्थङ्कर का कल्याण तो होता ही है क्योंकि वे स्वयं कल्याण स्वरूप हैं किन्तु इनसे दर्शकों का कल्याण भी हो जाता है। जो लोग इनमें व्यर्थ का अपव्यय आँकते हैं, वे इन कल्याणकों की आत्म साधना में कितनी उपयोगिता है, इस उद्देश्य को नहीं समझ पाते हैं।

ये पंच कल्याणक अनन्तसुखी बनने की विधि सिखाते हैं। इसीलिए इन पंच कल्याणकों की महिमा है। पंच कल्याणक के समय प्रभु के समान बनने के

भावों को प्रदर्शित करना ही महत्त्वपूर्ण है। मात्र नाटक प्रदर्शित कर देना लाभकारी नहीं होता है।

यदि प्रबंधन की अपेक्षा से चिंतन करें तो प्रतिष्ठा महोत्सव वैयक्तिक प्रबंधन, परिवार प्रबंधन, समाज प्रबंधन, धर्म प्रबंधन, भाव प्रबंधन आदि की दृष्टि से उपादेय है।

व्यक्तिगत जीवन में पंच कल्याणक महोत्सव विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है। इससे राग-द्वेष, कषाय परिग्रह आदि पर विजयश्री प्राप्त करने का मार्ग भी प्राप्त होता है।

पारिवारिक स्तर पर बालकों में सुसंस्कारों का रोपण किया जा सकता है। पति-पत्नी के बीच सम्बन्धों को अधिक मजबूत बना सकते हैं। इस उत्सव के द्वारा एक आदर्श दाम्पत्य जीवन की स्थापना हो सकती है।

इस प्रकार पंच कल्याणक महोत्सव कई दृष्टियों से मूल्यवान सिद्ध होता है।

पंच कल्याणक महोत्सव के दौरान विभिन्न पात्र एवं उनके भाव

पंच कल्याणक महोत्सव के अन्तर्गत कृत्रिम पात्रों के द्वारा तीर्थङ्कर परमात्मा के सम्पूर्ण जीवन वृत्त का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। उस अवसर का साक्षात्कार करने वाला चन्द मिनटों के लिए नि:संदेह तीर्थङ्करों के युग में पहुँच जाता है और उसे एकाग्रता की तरतमता के अनुसार उस तरह की अनुभूति भी होती है। वस्तुत: पंच कल्याणक का विधान तीर्थङ्कर की साक्षात उपस्थिति के मनोभावों को उत्पन्न करने का सामर्थ्य प्रदान करता है।

इस उत्सव-क्रिया में मुख्य रूप से माता-पिता इन्द्र-इन्द्राणी, मामा-मामी, दादी, भुआ, बहिन, प्रियंवदा दासी, राज ज्योतिष, हरिणगमेषी देव, धाय माता, राजसेवक, छप्पन दिक्कुमारियाँ आदि पात्र होते हैं। इन्हें अपना पात्र अदा करते हुए निम्न भाव रखने चाहिए-

माता द्वारा किए जाने वाले भाव– तीर्थङ्कर की माता का किरदार निभाने वाली महिला को इन दिनों में पूरे समय स्वयं को पुण्यशाली मानना चाहिए। इसी के साथ ही यह सोचती रहे कि भले ही परमात्मा की साक्षात माता बनने का सौभाग्य नहीं मिला, परन्तु भाव जगत की अपेक्षा मैं आज उसी सुख का अनुभव कर रही हूँ जैसा माता मरुदेवी, माता त्रिशला आदि ने किया होगा।

माता का दृश्य उपस्थित करते समय अध्यवसायों को इतना निर्मल कर लें कि सचमुच में किसी जन्म में तीर्थङ्कर की माता बनने का प्रत्यक्ष सुख मिल सके। कई बार कृत्रिम नाटक भी जीवन की हकीकत बन जाते हैं।

पिता द्वारा करने योग्य भाव– पिता का रोल अदा करते हुए यह चिन्तन करें कि मैं पिता अश्वसेन, सिद्धार्थ आदि के समान तो पुण्यशाली नहीं हूँ फिर भी नाम मात्र से जुड़ने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह भी मुझ जैसे पामर के लिए कम नहीं है। निःसन्देह आज मैं कृतपुण्य हूँ जो भगवान के पिता के नाम से पहचाना जा रहा हूँ।

भूत द्रव्य निक्षेप की अपेक्षा से यावत जीवन इस शुभ प्रसंग की स्मृति मुझे सुकृत के लिए बोध देती रहेगी। अहो! इससे अधिक धन्यतम अवसर कौन सा हो सकता है?

इन्द्र-इन्द्राणी द्वारा करने योग्य भाव– हे जग उद्धारक! देव भव की प्राप्ति पुण्य बल से अवश्य होती है किन्तु उसमें पाप बंध अधिक रहता है। आप जैसी दिव्य आत्माओं के जन्मादि के शुभतम एवं शुद्धतम प्रसंग का साक्षात्कार करने पर प्रकृष्ट पुण्य का उपार्जन होता है।

हे भगवन्! मुझमें इन्द्रादि देवताओं के समान भक्ति करने का सामर्थ्य तो नहीं है फिर भी उस तरह के भावों से यह भूमिका अदा कर रहा हूँ। कहा भी गया है 'भावना भव नाशिनी।'

हे परमेश्वर! भवान्तर में साक्षात इन्द्र-इन्द्राणी के रूप में आप सदृश तीर्थङ्करों का कल्याणक उत्सव सम्पन्न कर सकूँ, ऐसा आत्मबल प्रदान करियेगा, जिससे मेरा जन्म-जन्मान्तर सफल हो जाये।

दादी के द्वारा करने योग्य भाव– लोक व्यवहार में देखते हैं कि दादी के लिए पुत्र से भी अधिक पौत्र प्रिय होता है। इसी नियम के आधार पर दादी का दृश्य उपस्थित करने वाली महिला यह चिन्तन करें कि हे भगवन! आपकी दादी बनने का सौभाग्य प्राप्त होने के कारण मैं निश्चित रूप से हर्षित और आनंदित हूँ। परन्तु आपके दीक्षा प्रयाण की कल्पना से मुझ पर वज्रपात सा हो गया है, आँखों से बह रही अश्रुधारा को रोक पाना मुश्किल हो रहा है।

हे प्राणप्रिय परमात्मन्! मेरी अगाध प्रीति को समझते हुए मुझे भी अपने साथ ले चलो। यहाँ दादी का पौत्र के प्रति रहा हुआ प्रशस्त स्नेह कर्मक्षय में निमित्त बनता है।

भुआ द्वारा करने योग्य भाव– जिस भाई के घर बहन का मान-सम्मान होता है वहाँ भतीजा भुआ के लिए वरदान होता है। भाई के विषय में जो इच्छाएँ अधूरी रह गई हो, वह भतीजे के माध्यम से पूर्ण की जाती है। यह भतीजा कोई सामान्य नहीं है सम्पूर्ण जगत का कल्याण कारक है। भुआ को यह सोचना चाहिए कि अब तक संसार के कई भतीजों को खिलाया, उनके लिए खेल-खिलौने लाये, लाड़-कोड़ किये, परन्तु Return में कर्म बंध के अतिरिक्त कुछ भी हासिल नहीं हुआ। जबकि परमात्मा के साथ यह व्यवहार किया जाये तो निःसन्देह मुक्ति रूपी उपहार प्राप्त होगा। इस तरह के शुभ परिणामों से यह भुआ का पात्र अदा करना चाहिए।

मामा-मामी द्वारा करने योग्य भाव– भाई की उपस्थिति के बिना बहन का कोई भी कार्य पूर्ण नहीं होता। इसी लौकिक नियम का निर्वहन करते हुए जब तीर्थङ्कर परमात्मा का जन्म होता है तब मामा-मामी, भान्जे के लिए नये वस्त्र, गहने, खिलौने आदि लाते हैं। उस अवसर पर उन्हें यह सोचना चाहिए कि हमें भव-भवान्तर में आपके जन्मादि कल्याणक प्रसंगों को मनाने का सौभाग्य प्राप्त होता रहे तथा तीर्थंकर की माता के रूप में श्रेष्ठ बहन को पाने का गौरव करता हुआ मलीन वृत्तियों को निष्कासित कर सकूँ।

बहन द्वारा किये जाने योग्य भाव– पंच कल्याणक उत्सव में बहन की भूमिका निभाते हुए यह चिन्तन करना चाहिए कि हे जगदाधार! आपकी बहन बनने का यह अपूर्व अवसर निःसन्देह मेरे लिए अनुमोदनीय है। इस मुक्ति मार्ग पर एक सच्चे भ्राता के रूप में सदा मेरे सहायक बनना, मेरे सद्भावों के रक्षक बनना तथा राग-द्वेषादि कषायों से प्रतिपल रक्षा करते रहना। यही भाई- बहिन के यथार्थ सम्बन्धों की फलश्रुति है।

राज ज्योतिष द्वारा करने योग्य भाव– राज ज्योतिष का दृश्य दर्शाने वाला उन क्षणों में यह विचार करें कि आज मुझे तीन लोक के अधिपति, सर्वोत्कृष्ट पुण्य के धनी, अरिहंत परमात्मा की जन्म कुंडली बनाने या देखने का ही नहीं अपितु एक श्रेष्ठ आत्मा के गुणों एवं परमाणुओं को ग्रहण करने तथा गुणकीर्त्तन करने का अलौकिक अवसर प्राप्त हुआ है।

हे नाथ! यद्यपि मेरा सामर्थ्य नहीं कि मैं आपके भावी जीवन का फलादेश कर सकूं, पर लोक व्यवहार का निर्वहन करना भी आवश्यक है। वस्तुतः आप

त्रिकालज्ञ हो, इसलिए हम सभी का सही मार्गदर्शन आपके द्वारा ही किया जा सकता है।

प्रियंवदा दासी द्वारा करने योग्य भाव– इस जगत में परमात्मा के जन्म की प्रथम बधाई देने का पुण्य अत्यंत भाग्यशाली जीव को ही मिलता है। आज प्रियंवदा का किरदार निभाते हुए मुझे भी जगत वत्सल, तीन लोक के नाथ की जन्म बधाई देने का अवसर प्राप्त हो रहा है। महाराजा पुत्र जन्म की बधाई सुनकर मेरी सात पीढ़ियों का दारिद्रय तो दूर करेंगे ही परन्तु परमात्मा तो मेरे भव-भव के दारिद्रय को दूर करने वाले हैं। संसार में तो अनेक बार पुत्र जन्म की बधाई देकर परिवारजनों को प्रसन्न किया आज सम्पूर्ण लोक को आनंदित करने वाली सूचना देने से मैं स्वयं आनंदमय हो गई हूँ। इस प्रकार के भावों से उस पात्र के पुण्य का अनुबंध होता है। कारण कि एक श्रेष्ठ जीव के निमित्त उसकी इच्छाएँ पूर्ण होती है।

छप्पन दिक्कुमारियों द्वारा करने योग्य भाव– शाश्वत आचार के अनुसार दसों दिशाओं से 4-8-2 आदि के क्रम से कुल 56 कुमारिकाएँ तीर्थङ्कर की माता का सूची कर्म निष्पन्न करती हैं। उस समय उन्हें यह विचार करना चाहिए कि इस आत्मा ने अनादिकाल से अनेकों के सूती कर्म किए और करवाए, परन्तु आज की क्रिया से जीवन सफल हुआ है। द्रव्यत: भले ही हमने माता एवं पुत्र का शुद्धिकरण किया है किन्तु भावत: हमने स्वयं की ही शुद्धि की है।

परमात्मा के बाह्य– मल को दूर करते हुए हमारे आभ्यन्तर राग-द्वेषादि के विकार क्षीण हो रहे हैं। इस प्रकार तीर्थङ्कर परमात्मा के पवित्र देह और निर्मल भावनाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन करें।

धाय माता द्वारा करने योग्य भाव– कहते हैं कि धाय माता को बच्चों से आन्तरिक जुड़ाव नहीं होता, परन्तु जिसे परमात्मा की धाय माता बनने का अवसर प्राप्त हो जाये उसके भीतर किसी अन्य बालक के प्रति वात्सल्यादि की इच्छा शेष नहीं रहती। यह दृश्य दर्शाते समय धाय माता की तरह निर्लिप्त व निस्वार्थ जीवन जीने की प्रार्थना करनी चाहिए। परमात्मा का जीवन निस्पृहता आदि गुणों से युक्त होने के कारण कृत भावना सफल होती है।

हरिणगमेषी देव द्वारा करने योग्य भाव- हे भगवन्! आपके जन्म, दीक्षा एवं अन्य समस्त कल्याणकों में देवों ने सर्वाधिक सहभाग लेकर अपने देवत्व को सफल बनाया है। हरिणगमेषी देव तो अत्यधिक धन्य है जिसे

गर्भापहरण के समय सर्वप्रथम परमात्मा को हाथों में ग्रहण करने का मंगलमय अवसर प्राप्त हुआ। परमात्मा के जन्म आदि की सूचना देने का सुअवसर भी उसे प्राप्त होता है।

आज हरिणगमेषी देव की भूमिका अदा करते हुए मुझे लग रहा है कि मैंने साक्षात आपका स्पर्श कर लिया है। हे कृपानिधान मुझ सेवक को भी धन्य करो।

नगर में सोनिया गाँधी, सचिन तेन्दुलकर या प्रधानमंत्री आ रहे हो तो उनके लिए अनेक प्रकार की तैयारियाँ की जाती है। Z सुरक्षा का बंदोबस्त किया जाता है एवं नगर के प्रमुख लोगों को विशेष रूप से आमंत्रित भी किया जाता है, जिससे आने वाले व्यक्ति की प्रतिष्ठा अनुसार उसका सम्मान हो सकें। इसी प्रकार जब किसी नगर में परमात्मा का आगमन होता है, प्रतिष्ठा के द्वारा वहाँ उनका स्थायी वास होता है तो नगर जनों के द्वारा हर्ष अभिव्यक्ति हेतु अनेक प्रकार के कार्यक्रम किए जाते है। उन्हीं में से एक मुख्य आयोजन होता है, परमात्मा के पंच कल्याणकों का दिग्दर्शन। परमात्मा के जीवन चरित्र से आम जनता को वाकिफ करवाने एवं अपने जीवन को भी उनके समान बनाने हेतु संकल्पबद्ध होकर प्रभु मार्ग का अनुसरण करने की अनुपम शिक्षा इस अनुष्ठान के माध्यम से प्राप्त होती है।

इसी के साथ जो इन्द्र आदि के पात्र बनकर तीर्थंकरों के जीवन को जन मोदिनी के समक्ष प्रस्तुत कर रहे है, वे अपने जीवन को वैसा बनाने की Practical शिक्षा भी ग्रहण करते हैं।

यह नाटकीय प्रस्तुति कई बार Turning Point of Life बन जाती है। इन अनुष्ठानों से हुआ भावनात्मक जुड़ाव अनेक कर्मों की निर्जरा एवं दोषों के निराकरण में हेतुभूत बनता है। समाज को सदाचरण की एक नई दिशा प्राप्त होती है। नगराजन एवं अन्य धर्मानुयायी जैन धर्म एवं तीर्थंकरों की महिमा और प्रभुता से परिचित होते हैं। परमार्थत: ऐसे आयोजन ही आज की भौतिकतावादी मानसिकता को अध्यात्म की ओर Convert कर सकते हैं।

●

अध्याय-11

प्रतिष्ठा उपयोगी विधियों का प्रचलित स्वरूप

विधि की महत्ता को सर्वत्र एवं सर्वोपरि स्वीकारा गया है। विधि पूर्वक किया गया कार्य ही सदा सफलता के शिखर पर पहुँचाता है। संसार के सामान्य से सामान्य व्यवहार में भी विधि को अत्यावश्यक माना गया है। परंतु कई लोग जैन विधि-विधानों की गहराई, रहस्य, प्रयोजन आदि न समझने के कारण उन्हें आगे-पीछे या जैसे-जैसे करने की बात करते हैं। कई लोग कहते हैं "इससे काम चल जाएगा न"। पर यह बात मात्र धर्म के क्षेत्र में ही उठती है, संसार के क्षेत्र में एक छोटी सी चूक भी उन लोगों को मान्य नहीं है। सब्जी में थोड़ा सा नमक ज्यादा हो जाए तो खाना बिगड़ जाता है, खाने-पीने में छोटी सी गफलत से शरीर बिगड़ जाता है, Account करते हुए यदि एक Zero मात्र इधर-उधर हो जाए तो पूरा घर और ऑफिस ऊपर-नीचे कर देते हैं तो फिर धर्म क्षेत्र में अविधि की तरफदारी क्यों? अविधि के परिणाम सदैव निराशाजनक ही होते हैं वह फिर चाहे धर्म क्षेत्र हो या व्यवहार का क्षेत्र।

अरिहंत परमात्मा द्वारा प्रतिपादित विधि-विधान एवं धर्म क्रियाएँ भवोभव के Chronic महारोगों के क्षय की अक्सीर औषधि है। विधि एवं बहुमानपूर्वक जिन उपदिष्ट क्रियाएँ करने से कर्मों की निर्जरा होती है तथा धर्म क्रियाओं के प्रति आत्मरुचि बढ़ती है, चित्त प्रसन्न बनता है और आत्मा पावन बनती है। विधिपूर्वक क्रिया करने से प्रत्येक अनुष्ठान अमृत अनुष्ठान बन जाता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर प्रतिष्ठा सम्बन्धी विधियों का प्रचलित स्वरूप प्रस्तुत किया जाता रहा है। जिससे सामान्य जनता उन विधियों के विषय में जानकर उन्हें यथोचित रूप से सम्पन्न कर सकें।

खात (खनन) मुहूर्त्त विधि

जिनालय योग्य परीक्षित भूमि का स्वीकार भी विधि पूर्वक करना चाहिए, जिससे वहाँ निर्विघ्नत: जिन प्रासाद का निर्माण हो सके और वह शांतिदायक हो।

अध्याय-6 के अनुसार वर्ण, गन्ध, रस आदि के द्वारा भूमि की परीक्षा करने के पश्चात उसे विधि पूर्वक अपने अधिकार में लें।

प्रासाद भूमि को शुभ मुहूर्त्त और शुभ लग्न में अधिकृत करें और उसी मुहूर्त्त में उस भूमि का खात मुहूर्त्त करना चाहिए।

कल्याण कलिका के अनुसार खनन विधि इस प्रकार है–

• सर्वप्रथम मंदिर निर्माता अथवा सूत्रधार (शिल्पी) स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करें। फिर वासचूर्ण मिश्रित चावल, पुष्पादि पूजा सामग्री लेकर उस परीक्षित भूमि पर जायें।

• तदनन्तर वहाँ विधि पूर्वक स्नात्र पूजा करें, अष्ट प्रकारी पूजा करें तथा नवग्रह-दिक्पाल और अष्ट मंगल का आलेखन कर उनकी संक्षिप्त पूजा करें। फिर शांति की उद्घोषणा करें और आरती-मंगल दीपक करें।

• इस क्रिया के अन्तराल में शिल्पी, कारीगर आदि स्नान पूर्वक शुद्ध वस्त्र पहनकर तैयार हो जायें। श्रावक उनका तिलक करें। उसके पश्चात मजदूर वर्ग आदि फावड़ा, कोश (गेंती), तगारी, गज, बाल्टी आदि को शुद्ध करके उनका तिलक करते हुए सत्कार करें तथा कंकण डोरा बांधकर तैयार कर दें।

• चल बिम्ब की स्नात्र पूजा होने के पश्चात विधिकारक उस वास्तु भूमि के मध्य भाग में पंचरत्न आदि से युक्त कुंभ स्थापित करें। फिर क्रमशः पूर्वादि दिशाओं की तरफ मुख करके निम्न मंत्र बोलते हुए प्रत्येक लोकपाल को अर्घ दें।

1. ॐ इन्द्राय आगच्छ-2 अर्घं प्रतीच्छ-2 स्वाहा।
2. ॐ अग्नये आगच्छ-2 अर्घं प्रतीच्छ-2 स्वाहा।
3. ॐ यमाय आगच्छ-2 अर्घं प्रतीच्छ-2 स्वाहा।
4. ॐ निर्ऋतये आगच्छ-2 अर्घं प्रतीच्छ-2 स्वाहा।
5. ॐ वरुणाय आगच्छ-2 अर्घं प्रतीच्छ-2 स्वाहा।
6. ॐ वायवे आगच्छ-2 अर्घं प्रतीच्छ-2 स्वाहा।
7. ॐ कुबेराय आगच्छ-2 अर्घं प्रतीच्छ-2 स्वाहा।
8. ॐ ईशानाय आगच्छ-2 अर्घं प्रतीच्छ-2 स्वाहा।
9. ॐ नागाय आगच्छ-2 अर्घं प्रतीच्छ-2 स्वाहा।
10. ॐ ब्रह्मणे आगच्छ-2 अर्घं प्रतीच्छ-2 स्वाहा।

• उसके पश्चात निम्न श्लोक बोलते हुए पूर्वादि चारों दिशाओं में पीली सरसों को उछालकर भूत-प्रेत आदि की शक्ति को दूर करें।

अपक्रामन्तु भूतानि, देव दानव राक्षसाः।
वासान्तरं व्रजन्त्वस्मात्, कुर्यां भूमिपरिग्रहम्।।1।।
यदत्र संस्थितं भूतं, स्थानमाश्रित्य सर्वदा।
स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं, यत्रस्थं तत्र गच्छतु।।2।।
अपक्रामन्तु भूतानि, पिशाचाः सर्वतो दिशम्।
सर्वेषामविरोधेन, चैत्यकर्म समारभे।।3।।

• फिर वहाँ पंचगव्य और सुवर्ण जल के छींटे दें।

• तत्पश्चात मंदिर निर्माता या लाभार्थी परिवार का वरिष्ठ सदस्य कलश को कंधे पर लेकर गीत-वादिंत्र के नाद पूर्वक पहले पूर्व दिशा में उस भूमि की सीमा पर्यन्त जायें, वहाँ क्षण भर रूककर आग्नेय कोण में, वहाँ से दक्षिण सीमा में जाकर नैर्ऋत्य कोण में, वहाँ से पश्चिम सीमा में जाकर वायव्य कोण में और वहाँ से उत्तर सीमा में जाकर ईशान कोण पर्यन्त उस भूमि में घूमें– इस प्रकार उस भूमि की चतुर्दिग् सीमा निश्चित करें।

सूत्रधार पहले से ही चारों दिशाओं में कीलियाँ और डोरी लेकर उपस्थित रहे। वह प्रासाद वास्तु की भूमि निश्चित करने के लिए आग्नेय कोण से लेकर चारों कोणों में आठ कीलियाँ गाढ़े, दो-दो कीलियों के बीच में एक-एक डोरी खींचकर बांधे। इस प्रकार भूमि की सीमा निश्चित कर सुवर्ण, रजत, मोती, दही, अक्षत आदि मांगलिक पदार्थों के द्वारा मर्यादित भूमि की प्रदक्षिणा करवायें तथा जिस (कोण) में खात स्थान आता हो वहाँ लग्न समय के आने पर विधि पूर्वक खात मुहूर्त करें।[1]

वास्तु पुरुष पूजा– तदनन्तर वास्तु भूमि के मध्य भाग में पूर्व स्थापित कुंभ के आगे एक काष्ठ पट्ट रखकर उसके ऊपर वास्तु पुरुष का आह्वान करते हुए उसकी स्थापना करें। आह्वान एवं स्थापन मन्त्र ये हैं–

ॐ वास्तोष्पतये ब्रह्मणे नमः।
ॐ वास्तोष्पतये इहागच्छ-2 स्वाहा।
ॐ वास्तोष्पते इह तिष्ठ-2 स्वाहा।
ॐ वास्तोष्पते पूजां प्रतीच्छ-2 स्वाहा।
ॐ वास्तोष्पतये नमः।

निम्न मन्त्रोच्चारण पूर्वक धूप आदि द्रव्य चढ़ायें–

ॐ वास्तोष्पतये धूपं समर्पयामि स्वाहा

ॐ वास्तोष्पतये चन्दनादिकं समर्पयामि स्वाहा

ॐ वास्तोष्पतये पुष्पाणि समर्पयामि स्वाहा

ॐ वास्तोष्पतये वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा

ॐ वास्तोष्पतये फलं समर्पयामि स्वाहा

ॐ वास्तोष्पतये दीपं समर्पयामि स्वाहा

ॐ वास्तोष्पतये नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा

ॐ वास्तोष्पतये अक्षतादिकं समर्पयामि स्वाहा

फिर प्रार्थना पूर्वक हाथ जोड़कर निम्न श्लोक बोलें–

वास्तु पुरुष! नमस्तेऽस्तु, भूमिशय्यारत प्रभो।
मद्गृहं धन धान्यादि, समृद्धं कुरु सर्वदा।।4।।

• तत्पश्चात अंजलि में शुद्ध जल ग्रहण कर निम्न मंत्र कहते हुए वास्तु पुरुष का विसर्जन करें–

ॐ वास्तोष्पतये ब्रह्मणे विसर विसर पुनरागमनाय स्वाहा

• तत्पश्चात खात स्थान पर जायें। वहाँ निम्न मंत्र बोलकर गंध-पुष्प-फल-अक्षतादि अर्पित करते हुए भूमि को अर्घ्य दें–

आगच्छ सर्व कल्याणि! वसुधे! लोक धारिणि।
पृथिवि हेमगर्भाऽसि, काश्यपेनाऽभिवन्दिता।।5।।
चैत्यं तु कारयाम्यद्य, त्वदूद्भव शुभलक्षणम्।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं, प्रसन्ना शुभदा भव।।6।।

• फिर निम्न श्लोक बोलकर पृथ्वी से क्षमा की प्रार्थना करें।

क्षमे! क्षमस्व मर्त्याघं, मेदिनि! मनुजाम्बिके।
चैत्यकर्म समारंभे, करिष्ये तव छट्टनम्।।7।।

तदनन्तर कुदाली आदि खातोपकरण के ऊपर सुवर्ण जल छींटें। केसर-चंदन आदि सुगंधी पदार्थों के छींटे डालें। फिर लग्न समय आ जाने पर वादिंत्र नाद एवं जयघोष पूर्वक खात मुहूर्त्त करें।

खात के समय कम से कम एक हाथ गहरा एवं समचौरस खड्डा खोदना आवश्यक है।

कूर्म प्रतिष्ठा विधि

खनन विधि करने के पश्चात खड्डा खोदते हुए जल दिख जाए तब किए गए गहरे खड्डे में मंगल ग्रह का यंत्र एवं कूर्म शिला को स्थापित करें। उस कूर्म शिला की पीठ के ऊपर जिन चैत्य का निर्माण करवाना चाहिए। इस प्रकार विधिवत निर्माण करवाया गया जिन चैत्य चिरस्थायी होता है। ऐसा चिरंजीवी जिनालय श्रीसंघ एवं समस्त नगर आदि के लिए अभ्युदय सूचक माना जाता है।

विधिमार्गप्रपा एवं कल्याणकलिका के अनुसार कूर्म स्थापना विधि निम्नानुसार है–

• जिस स्थान पर कूर्म शिला की स्थापना करनी हो वहाँ शुभ मुहूर्त्त के दिन सबसे पहले पूर्व प्रतिष्ठित जिन प्रतिमा की स्नात्र पूजा करें, आरती उतारें, मंगलदीपक करें और उसके बाद चैत्यवन्दन करें।

यहाँ चैत्यवन्दन करते समय जिस तीर्थंकर के नाम से कूर्म प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त हो उन्हीं का चैत्यवंदन बोलें, अन्यथा पार्श्वनाथ प्रभु का चैत्यवंदन कहें। उसके बाद खड़े होकर तीन स्तुतियाँ कहने के पश्चात शान्तिनाथ की आराधना निमित्त अन्नत्थसूत्र कहकर एवं एक नमस्कार मन्त्र का कायोत्सर्ग करके निम्न स्तुति कहें–

श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्ति विधायिने।
त्रैलोक्यस्यामराधीश, मुकुटा भ्यर्चितांघ्रये ।।1।।

फिर श्रुतदेवता की आराधना हेतु एक नवकार मन्त्र का कायोत्सर्ग कर निम्न स्तुति बोलें–

यस्याः प्रसादमतुलं, संप्राप्य भवन्ति भव्यजननिवहाः ।
अनुयोगवेदिनस्तां, प्रयतः श्रुतदेवतां वन्दे ।।2।।

फिर शान्ति देवयाए करेमि काउस्सग्गं, अन्नत्थसूत्र, एक नवकार का कायोत्सर्ग, नमोऽर्हत्. स्तुति बोलें–

उन्मृष्टरिष्टदुष्ट-ग्रह गति, दुःस्वप्न दुर्निमित्तादि ।
संपादितहित सम्पन्नाम ग्रहणं जयति शान्तेः ।।3।।

फिर शासन देवयाए करेमि काउस्सग्गं, अन्नत्थसूत्र, एक नवकार का कायोत्सर्ग, नमोऽर्हत्. स्तुति बोलें–

या पाति शासनं जैनं, सद्यः प्रत्यूह नाशिनी ।
साभिप्रेत समृद्ध्यर्थं, भूयात् शासन देवता ।।4।।

फिर अम्बा देवियाए करेमि काउस्सग्गं, अन्नत्थसूत्र, एक नवकार का कायोत्सर्ग, नमोऽर्हत्. स्तुति बोलें–

अम्बा बालांकिताङ्कासौ, सौख्य ख्यातिं ददातु नः ।
माणिक्यरत्नालंकार, चित्र सिंहासनस्थिता ।।5।।

फिर खित्तदेवयाए करेमि काउस्सग्गं, अन्नत्थसूत्र, एक नवकार का कायोत्सर्ग, नमोऽर्हत्. स्तुति बोलें–

यस्याः क्षेत्रं समाश्रित्य, साधुभिः साध्यते क्रिया ।
सा क्षेत्रदेवता नित्यं, भूयान्नः सुखदायिनी ।।6।।

फिर अधिवासना देवीए करेमि काउस्सग्गं, अन्नत्थसूत्र, एक लोगस्स सूत्र का कायोत्सर्ग, नमोऽर्हत्. स्तुति बोलें–

पातालमन्तरिक्षं भवनं, वा या समाश्रिता नित्यम् ।
साऽत्रावतरतु जैने, कुर्मे ह्यधिवासना देवी ।।7।।

फिर समस्त वेयावच्चगराणं सम्मदिट्ठिसमाहिगराणं करेमि काउस्सग्गं, अन्नत्थसूत्र, एक नवकार का कायोत्सर्ग, नमोऽर्हत्. स्तुति बोलें–

सर्वे यक्षाम्बिकाद्या ये, वैयावृत्यकराः सुराः ।
क्षुद्रोपद्रवसंघातं, ते द्रुतं द्रावयन्तु नः ।।8।।

फिर एक नवकार मन्त्र गिनकर नीचे बैठें। फिर नमुत्थुणं., जावंति., लघुशान्तिस्तव. और जयवीयरायसूत्र बोलें।

• तत्पश्चात उस भूमि पर सभी जगह स्नात्र अभिषेक का जल छींटें, दश दिक्पालों का आह्वान कर बलि प्रदान करें और उसके बाद स्थापनीय शिला संपुट तैयार करें।

यदि पाषाण का प्रासाद बनवाना हो तो शिलाएँ पाषाण की करें और ईंटों का प्रासाद बनवाना हो तो शिलाएँ ईंटों की बनवाएँ।

• पहले से ही उस भूमि के चार कोणों में चार और एक मध्य में ऐसे पाँच गड्ढे शिलाओं की अपेक्षा कुछ मोटे खुदवाकर रखें। उन प्रत्येक गड्ढों के मध्य में एक-एक छोटा गड्ढा खुदवाये। उन छोटे गड्ढों में एक-एक मिट्टी का छोटा कलश (कुलडा), सात धान्य और पंच रत्न रखें। कलश के ऊपर मिट्टी का ढक्कन दें तथा उसके ऊपर लग्न समय उपस्थित होने पर शिला संपुट की स्थापना करें।

ऊपर-नीचे दो-दो शिलाएँ रखना शिला संपुट कहलाता है।

• लग्न समय में शिला संपुटों को स्नात्र जल से प्रक्षालित करें, फिर कलशों के शुद्ध जल से उनका अभिषेक करें, फिर केसर-चंदन से उनका विलेपन करें, फिर शिला संपुटों को खनन की जगह पर ले जायें। यदि संपुट अधिक भारी हों तथा मुहूर्त्त के समय व्यवस्थित स्थिर करते हुए लग्न काल बीत जाने का भय हो तो नीचे डाभ की 1-1 शली रखकर संपुटों को बराबर स्थिर कर दें और जब स्थापना का समय आ जाये तब डाभ की शलियाँ निकाल लें।

शिला संपुट पाँच होते हैं उनके नाम इस प्रकार हैं– 1. नन्दा 2. भद्रा 3. जया 4. विजया और 5. पूर्णा। इन शिलाओं की स्थापना अनुक्रम से– 1. आग्नेय 2. नैर्ऋत्यी 3. वायव्य 4. ईशान– इन चार कोणों में और मध्य में करनी चाहिए।

मध्य में प्रतिष्ठाप्य 'पूर्णा' शिला के ऊपर नीचे मुख वाला कूर्म (कच्छप) और तीन रेखा वाली श्रेष्ठ कोडी– इन दो वस्तुओं की स्थापना करें। शिल्पज्ञों के अनुसार कूर्म सुवर्ण का बनाना चाहिए, जिससे वास्तु भूमि में शल्य दोष हो तो समाप्त हो जाये।

• कूर्म की स्थापना करने से पहले पंचामृत से उसका अभिषेक करें। फिर लग्न का समय आने पर उपर्युक्त क्रमानुसार सभी शिलाओं पर वास चूर्ण डालते हुए उनकी प्रतिष्ठा करें, किन्तु मध्य शिला के ऊपर कूर्म स्थापित करते समय आचार्य कुंभक पूर्वक निम्न मंत्र को सात बार मन में स्मरण करके फिर उस पर वासचूर्ण डालें–

ॐ ह्रीं श्रीं कूर्म तिष्ठ तिष्ठ देवगृहं धारय धारय स्वाहा। अथवा **ॐ ह्रीं श्रीं कूर्म! अस्मिन् शिला सम्पुटे अवतर अवतर स्वाहा।। तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा।। निजपृष्ठे जिन प्रासादं धारय-धारय स्वाहा।।** थाली बजवाएँ

• देवगृह, प्रासाद, रथशाला, गृह आदि का निर्माण करते समय कूर्म स्थापना करनी चाहिए। जिस स्थान पर कूर्म प्रतिष्ठा करनी हो उस वास्तु का मन्त्रोच्चारण मध्य में करना चाहिए।

• तदनन्तर दृष्टि दोष का निवारण करने के लिए आचार्य भगवन्त निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए 1. सौभाग्य 2. सुरभि 3. प्रवचन 4. कृतांजलि और 5. गरूड़– इन पाँच मुद्राओं का शिला सम्पुटों को दर्शन करवाएँ।

ॐ नमोऽर्हत् परमेश्वराय, अष्ट प्रातिहार्य विभूषिताय, चतुर्मुखाय,परमेष्ठिने त्रैलोक्यगताय, अष्टदिक् कुमारी परिपूजिताय, देवेन्द्र महिताय, दिव्यशरीराय, त्रैलोक्यमहिताय, देवाधिदेवाय, श्री सीमन्धर स्वामी-प्रमुखाऽधिकृत-जिनेन्द्राय, अस्मिन् जंबूद्वीपे, भरतक्षेत्रे, दक्षिणार्ध भरते, मध्य खंडे, सार्धपञ्चविंशति-आर्यदेशमध्ये, श्री सुराष्ट्र देशे, श्री भारत वर्षे, श्री अमुक राज्ये, श्री अमुक प्रान्ते, श्री अमुक नगरे, श्री अमुक उपनगरे, श्री अमुक जिन प्रासादे, श्री अमुक जिन मण्डपे, श्री अमुक जिन सान्निध्ये, श्री संघ गृहे, श्री अमुक श्रेष्ठिवर्य परिवारेण आयोजिते, श्री शिला सम्पुट स्थापन विधि महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा। तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा। फिर थाली बजवाएँ।

• फिर पूर्ववत ग्यारह स्तुतियों पूर्वक देववन्दन (चैत्यवन्दन) करें। वहाँ प्रतिष्ठा देवता के निमित्त कायोत्सर्ग के पश्चात निम्न स्तुति बोलें–

यदधिष्ठिताः प्रतिष्ठाः सर्वाः, सर्वास्पदेषु नन्दन्ति।
जैनं कूर्मं सा विशतु, देवता सुप्रतिष्ठमिदम्।।

• तत्पश्चात अंजलि में अक्षत भरकर निम्न मंगल गाथाएँ बोलें–

उसके बाद अक्षतांजलि को उछालते हुए कूर्म को बधायें। स्नात्रकार अक्षतांजलि के उपरान्त पुष्पांजलि भी डालें। तदनन्तर कूर्म के ऊपर वस्त्र का आच्छादन कर एवं उसके चारों ओर ईंटे चुणकर ऊपर में पत्थर के पाटिया से ढक दें, ताकि कूर्म के ऊपर शिला संपुटों का दबाव न आयें।[2]

।। इति खनन-कूर्म प्रतिष्ठा विधि ।।

शिलान्यास विधि

प्रासाद निर्माण में खनन मुहूर्त के पश्चात शिलान्यास का उपक्रम किया जाता है। शिलाएँ मंदिर, गृह, मंडप आदि वास्तु के लिए पाया रूप गिनी जाती हैं इसलिए शिलाओं की विधि पूर्वक स्थापना करने से गृह एवं गृह स्वामी दीर्घायुषी होते हैं।

कल्याण कलिका के अनुसार शिलास्थापना निम्न प्रकार करें[3]–

वेदी निर्माण– सर्वप्रथम प्रासाद भूमि के ईशान अथवा नैर्ऋत्य कोण में वास्तुमान के अनुरूप शिलाएँ जितनी मोटी हो उसके अनुसार एक अभिषेक वेदी बनाएँ। फिर उसके ऊपर शिलाओं-उपशिलाओं एवं कलशों का अभिषेक करें।

यदि वेदी का निर्माण न करवा सकें तो लकड़ी का बड़ा पट्टा रखकर उसके ऊपर तांबा या पीतल की पट्टी रखें। फिर उस पर अभिषेक का कार्य करें।

अभिषेक क्रिया– अभिषेक के लिए सोना, चाँदी, तांबा अथवा मिट्टी के पाँच या एक कलश में गंगा आदि महानदियों एवं शुभ तीर्थों का जल डालें। उस जल में सर्वौषधि चूर्ण, स्वर्ण रज, सुगंधित द्रव्य और सुगंधी पुष्प मिश्रित कर दें। • यहाँ औषधि के चूर्णादि से मिश्रित पवित्र जल को पहले एक बड़े घड़े में रखें। फिर उसके मुख को वस्त्र से आच्छादित कर उसके ऊपर हाथ रखते हुए बृहद्शान्ति का पाठ बोलें। • तत्पश्चात उस जल से अभिषेक के कलश भरें। • शिलाओं-उपशिलाओं को पहले से ही वेदी के ऊपर यथास्थान रख दें।

• इस प्रकार शिलाओं के अभिषेक की पूर्ण तैयारी हो जाने पर मन्दिर निर्माता दोनों हाथों में जल कलश लेकर निम्न श्लोक बोलते हुए नन्दा शिला का अभिषेक करें–

ॐ हिरण्यगर्भाः पवित्रः शुचयो दुरितच्छिदः।
पुनन्तु शान्ताः श्रीमत्य, आपो युष्मान् मधुच्च्युतः।।

• इसी तरह प्रत्येक बार कलश भरें और ऊपर का मंत्र श्लोक बोलकर अनुक्रमशः भद्रा आदि सभी शिलाओं का अभिषेक करें। शिलाओं के साथ में उनकी उपशिला एवं निधि कलश का भी अभिषेक कर लें। • सर्व शिलाओं के अभिषेक हो जाने पर उन्हें शुद्ध जल से प्रक्षालित करें और अच्छे वस्त्र से पौंछें। • उसके पश्चात उन पर केसर-चंदन के छींटे डालें, धूप का उत्क्षेप करें, पुष्प चढ़ाएँ और दिक्पालों के वर्णानुसार वस्त्र ओढ़ाएँ। • उसके बाद प्रत्येक उपशिला, शिला युगलों एवं निधि कलशों को अपने-अपने स्थान पर पहुंचाएँ। इस तरह प्रतिष्ठा करने के लिए तैयारी रखें।

खड्डे में रखने योग्य सामग्री– शिलान्यास करने से पूर्व निम्न मंत्र श्लोक बोलकर क्रमशः नौ खड्डों में एक-एक पोटली रखें। प्रत्येक पोटली में पूर्वादि दिशाओं के अनुसार पृथक्-पृथक् रत्न, धातु, औषधि एवं धान्यादि रखें तथा मध्य खात में स्थापनीय पोटली के अन्तर्गत सभी प्रकार के रत्न बाँधें।

स्पष्टता के लिए पूर्वादि दिशाओं के सृष्टि क्रम से रत्नों में 1. हीरा 2. वैडूर्य 3. मोती 4. इन्द्रनील 5. महानील 6. पुखराज 7. गोमेद और 8. प्रवाल की स्थापना करें।

धातुओं में 1. सोना 2. चाँदी 3. ताँबा 4. कांसा 5. पीतल 6. सीसा 7. कथीर और 8. लोहा की स्थापना करें।

औषधियों में 1. वचा 2. चित्रक 3. सहदेवी 4. विष्णुक्रान्ता 5. वारुणी 6. संजीवनी 7. ज्योतिष्मती और 8. ईश्वरी का न्यास करें।

धान्यों में 1. जव 2. व्रीहि 3. कांग 4. जुवार 5. तल 6. शालि 7. मूंग और 8. गेहूँ का न्यास करें।

मध्य खड्डे की पोटली में उक्त सभी प्रकार के रत्नों, धातुओं, औषधियों एवं धान्यों को रखें। उसके पश्चात शिला स्थापना (प्रतिष्ठा) करें।

खड्डों में रत्नादि न्यास करने के मन्त्र निम्न हैं–

पूर्व दिशा के लिए–

1. **ॐ इन्द्रस्तु महतां दीप्तः, सर्वदेवाधिपो महान्।**
   वज्रहस्तो गजारूढ-स्तस्मै नित्यं नमो नमः ।।

आग्नेय कोण के लिए–

2. **ॐ अग्निस्तु महतां दीप्तः, सर्व तेजोधिपो महान्।**
   मेषारूढ़:शक्तिहस्त-स्तस्मै नित्यं नमो नमः ।।

दक्षिण दिशा के लिए–

3. **ॐ यमस्तु महतां दीप्तः, सर्वप्रेताधिपो महान्।**
   महिषस्थो दण्डहस्त - स्तस्मै नित्यं नमो नमः ।।

नैऋत्य कोण के लिए–

4. **ॐ निर्ऋतिस्तु महादीप्तः, सर्वक्षेत्राधिपो महान्।**
   खड्गहस्तः शिवारूढ - स्तस्मै नित्यं नमोः नमः ।।

पश्चिम दिशा के लिए–

5. **ॐ वरुणस्तु महादीप्तः, सर्ववार्यधिपो महान्।**
   नक्रारूढ़: पाशहस्त - स्तस्मै नित्यं नमो नमः ।।

वायव्य कोण के लिए–

6. **ॐ वायुस्तु महतां दीप्तः, सर्वमण्डलपो महान्।**
   ध्वजाहस्तो मृगारूढ़ - स्तस्मै नित्यं नमो नमः ।।

उत्तर दिशा के लिए–

7. **ॐ कुबेरस्तु महादीप्तः, सर्वयक्षाधिपो महान्।**
   निधिहस्तो गजारूढ़ - स्तस्मै नित्यं नमो नमः ।।

ईशान कोण के लिए–

8. **ॐ ईशानस्तु महादीप्तः, सर्वयोगाधिपो महान्।**
शूलहस्तो वृषारूढ़ - स्तस्मै नित्यं नमो नमः।।

अधोदिशा के लिए–

9. **ॐ धरणस्तु महादीप्तः, सर्वसर्पाधिपो महान्।**
पद्मारूढो नागहस्त-स्तस्मै नित्यं नमो नमः।।

शिलाओं की स्थापना विधि

चतुःशिला स्थापना

चार शिलाओं की स्थापना करनी हो तो उसकी विधि निम्न है–

1. **नन्दा शिला–** (1) '**ॐ आधार शिले! सुप्रतिष्ठिता भव**' यह मन्त्र बोलकर आग्नेय कोण के खड्डे में उपशिला की स्थापना करें। (2) '**ॐ पद्म! इहाऽऽगच्छ, इह तिष्ठ, ॐ पद्म निधये नमः**' यह मन्त्र पढ़कर उपशिला के ऊपर 'पद्म' नामक निधि कलश की स्थापना करें। उसके बाद (3) '**ॐ नन्दे! इहाऽऽगच्छ, इह तिष्ठ, ॐ नन्दायै नमः**' यह मन्त्र पढ़कर निधि कलश के ऊपर नन्दा शिला की स्थापना करें। फिर उसके ऊपर वासचूर्ण डालें, सुगंधित द्रव्यों का छिड़काव करें और निम्न श्लोक कहते हुए प्रार्थना करें–

वीर्येणादिवराहस्य, वेदार्थैस्त्वभिमंत्रिताम्।
वसिष्ठ नन्दिनीं नन्दां, प्राक् प्रतिष्ठापयाम्हम्।।

सुमुहूर्ते सुदिवसे, सा त्वंनन्दे! निवेशिता।
आयुः कारयितुर्दीर्घं, श्रियां चाप्रयामिहाऽऽनय।।

2. **भद्रा शिला–** इस शिला की स्थापना करते समय (1) '**ॐ आधार शिले! सुप्रतिष्ठिता भव**' (2) '**ॐ महापद्म! इहाऽऽगच्छ, इह तिष्ठ, ॐ महापद्म निधये नमः**' (3) '**ॐ भद्रे! इहागच्छ, इहतिष्ठ, ॐ भद्रायै नमः**' इन मन्त्रों को पढ़ते हुए नन्दा शिला की भाँति नैऋत्य कोण में उपशिला, 'महापद्म' नामक निधि कलश और भद्रा शिला को स्थापित करें। फिर पूर्ववत वासक्षेप आदि करके निम्न श्लोक से प्रार्थना करें–

भद्राऽसि सर्वतो भद्रा, भद्रे! भद्रं विधियताम्।
कश्यपस्य प्रिय सुते! श्रीरस्तु गृहमेधिनः।।

3. **जया शिला**— इस शिला की स्थापना करते समय (1) **'ॐ आधारशिले! सुप्रतिष्ठिता भव'** (2) **'ॐ शंख! इहागच्छ, इहतिष्ठ, ॐ शंख निधये नमः'** (3) **'ॐ जये! इहाऽऽगच्छ, इह तिष्ठ, ॐ जयायै नमः'** इन मन्त्रों को पढ़ते हुए पूर्ववत जया शिला को वायव्य कोण में सुप्रतिष्ठित कर निम्न प्रार्थना करें—

जये! विजयतां स्वामी, गृहस्थाऽस्य माहात्म्यतः।
आचन्द्रार्कं यशस्चास्य, भूम्यामिह विरोहतु।।

4. **पूर्णा शिला**— इस शिला की स्थापना करते समय (1) **'ॐ आधार शिले! सुप्रतिष्ठिता भव'** (2) **'ॐ सुभद्र! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ सुभद्रनिधये नमः'** (3) **'ॐ पूर्णे! इहाऽऽगच्छ, इह तिष्ठ, ॐ पूर्णायै नमः''**— इन मन्त्रों को पढ़ते हुए पूर्ववत पूर्णा शिला को ईशान कोण में सुप्रतिष्ठित कर निम्न प्रार्थना करें—

त्वयि संपूर्ण चन्द्राभे! न्यस्तायां वास्तुनस्तले।
भवत्वेष गृहस्वामी, पूर्णे! पूर्ण मनोरथः।।

पंच शिला स्थापना

पाँच शिलाओं की स्थापना करनी हो तो उसकी विधि निम्न प्रकार है—

1. **नन्दा शिला**— इस शिला की स्थापना में (1) **'ॐ आधार शिले! सुप्रतिष्ठिता भव'** (2) **'ॐ पद्म! इहागच्छ, इह तिष्ठ, पद्मनिधये नमः'** (3) **'ॐ नन्दे! इहाऽऽगच्छ, इह तिष्ठ, ॐ नन्दायै नमः'**—

इन मन्त्रों को पढ़ते हुए पूर्ववत नन्दा शिला को आग्नेय कोण में प्रतिष्ठित कर निम्न श्लोकों से प्रार्थना करें—

नन्दे! त्वं नन्दिनी पुसां, त्वामत्र स्थापयाम्यहम्।
वेश्मनि त्विह संतिष्ठ, यावच्चन्द्रार्कतारकाः।।

आयुः कामं श्रियं देहि, देववासिनी! नन्दिनी।
अस्मिन् रक्षा त्वया कार्या, सदा वेश्मनि यत्नतः।।

2. **भद्रा शिला**— इस शिला की स्थापना करते समय (1) **'ॐ आधार शिले! सुप्रतिष्ठिता भव'** (2) **'ॐ महापद्म! इहाऽऽगच्छ, इह तिष्ठ, ॐ महापद्म निधये नमः'** (3) **'ॐ भद्रे! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ भद्रायै नमः'**

इन मन्त्रों को पढ़ते हुए पूर्ववत भद्राशिला को नैर्ऋत्य कोण में स्थापित कर निम्न षट्पदी से प्रार्थना करें।

भद्रे! त्वं सर्वदा भद्रं, लोकानां कुरु काश्यपि।
आयुदा कामदा देवि! सुखदा च सदा भव।।
त्वामत्र स्थापयाम्यद्य, गृहेऽस्मिन् भद्रदायिनी।

3. **जया शिला**– इस शिला की स्थापना करते समय (1) **'ॐ आधारशिले! सुप्रतिष्ठिता भव'** (2) **'ॐ शंख! इहागच्छ, इहतिष्ठ, ॐ शंखनिधये नमः'** (3) **'ॐ जये! इहाऽऽगच्छ, इह तिष्ठ, ॐ जयायै नमः'** इन मन्त्रों को पढ़ते हुए पूर्ववत जया शिला को वायव्य कोण में स्थापित कर निम्न षट्पदी से प्रार्थना करे–

गर्गगोत्र समुद्गतां, त्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम्।
गृहेऽस्मिन् स्थापयाम्यद्य, जयां चारु विलोचनाम्।।
नित्यंजयाय भूत्यै च, स्वामिनो भव भार्गवि।

4. **रिक्ता शिला**– इस शिला की स्थापना करते समय (1) **'ॐ आधारशिले! सुप्रतिष्ठिता भव'** (2) **'ॐ मकर! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ मकर निधये नमः'** (3) **ॐ रिक्ते! इहागच्छ, इहतिष्ठ, ॐ रिक्तयै नमः'**– इन मन्त्रों को पढ़ते हुए पूर्ववत रिक्ता शिला को ईशान कोण में प्रतिष्ठित कर निम्न प्रार्थना करें–

रिक्ते! त्वं रिक्त दोषघ्ने! सिद्धिमुक्तिप्रदे! शुभे।
सर्वदा सर्वदोषघ्नि! तिष्ठऽस्मिन् तत्र नंदिनि।।

5. **पूर्णा शिला**– इस शिला की स्थापना करते समय (1) **'ॐ आधारशिला सुप्रतिष्ठिता भव'** (2) **'ॐ सुभद्र! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ सुभद्रनिधये नमः'** (3) **'ॐ पूर्णे! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ पूर्णायै नमः'**

इन मन्त्रों को पढ़ते हुए वास्तु के मध्य भाग में निधि कलश और पूर्ण शिला की स्थापना कर समीप में दीपक रखें। फिर निम्न श्लोकों से प्रार्थना करें–

पूर्णे! त्वं सर्वदा पूर्णान्, लोकान् संकुरु काश्यपि।
आयुर्दा कामदा देवि! धनदा सुतदा भव।।
गृहधारा वास्तुमयी, वास्तुदीपेन संयुता।
त्वामृते नास्ति जगता-माधारश्च जगत्प्रिये।।

नव शिला स्थापना

नव शिलाओं की प्रतिष्ठा इस प्रकार करें–

1. **नन्दा– (1) 'ॐ आधार शिले! सुप्रतिष्ठिता भव' (2) 'ॐ पद्म! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ पद्म निधये नमः' (3) 'ॐ अग्नये नमः, ॐ शक्तये नमः' (4) 'ॐ नन्दे! इहाऽऽगच्छ, इह तिष्ठ, ॐ नन्दायै नमः'**– इन मन्त्रों के द्वारा पूर्ववत नन्दा नाम की शिला को आग्नेय कोण में स्थापित कर निम्न प्रार्थना करें–

नन्दे! त्वं नन्दिनी पुंसां, त्वामत्र स्थापयाम्यहम्।
प्रासादे त्विह संतिष्ठ, यावच्चन्द्रार्क तारकाः।।

2. **भद्रा– (1) 'ॐ आधार शिले! सुप्रतिष्ठिता भव' (2) 'ॐ महापद्म! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ महापद्मनिधये नमः' (3) 'ॐ यमाय नमः, ॐ दण्डाय नमः' (4) 'ॐ भद्रे! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ भद्रायै नमः'**– इन मंत्रों के द्वारा पूर्ववत भद्रा शिला को दक्षिण दिशा में स्थापित कर निम्न प्रार्थना करें–

भद्रे! त्वं सर्वदा भद्रं, लोकानां कुरू काश्यपि।
त्वामंत्र स्थापयाम्यद्य, प्रासादे भद्रदायिनी।।

3. **जया– (1) 'ॐ आधारशिले! सुप्रतिष्ठिता भव' (2) 'ॐ शंखे! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ शंखनिधये नमः' (3) 'ॐ नैर्ऋतये नमः, ॐ खड्गाय नमः' (4) 'ॐ जये! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ जयायै नमः'**– इन मंत्रों के द्वारा पूर्ववत जया शिला को नैर्ऋत्य कोण में प्रतिष्ठित कर निम्न प्रार्थना करें–

गर्गगोत्रसमुद्भूतां, त्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम्।
प्रासादे स्थापयाम्यद्य, जयां चारू विलोचनाम्।।

4. **रिक्ता– (1) 'ॐ आधारशिले! सुप्रतिष्ठिता भव' (2) 'ॐ मकर! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ मकर निधये नमः' (3) 'ॐ वरूणाय नमः ॐ पाशाय नमः' (4) 'ॐ रिक्ते! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ रिक्तायै नमः'**– इन मन्त्रों को पढ़ते हुए रिक्ता शिला को पश्चिम दिशा में स्थापित कर निम्न प्रार्थना करें–

रिक्ते! त्वं रिक्त दोषघ्ने! ऋद्धिवृद्धिप्रदे! शुभे।
सर्वदा सर्व दोषघ्ने! तिष्ठाऽस्मिन् तत्र नंदिनी।।

5. अजिता– (1) 'ॐ आधारशिले! सुप्रतिष्ठिता भव' (2) 'ॐ कुन्द! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ कुन्दनिधये नमः' (3) 'ॐ वायवे नमः, ॐ अंकुशाय नमः' (4) 'ॐ अजिते! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ अजितायै नमः'– इन मन्त्रों के द्वारा अजिता शिला को वायव्य कोण में प्रतिष्ठित कर निम्न प्रार्थना करें–

अजिते! सर्वदा त्वं मां, कामानामजितं कुरू।
प्रासादे तिष्ठ संहृष्ठा, यावच्चन्द्रार्क तारकाः।।

6. अपराजिता– (1) 'ॐ आधार शिले! सुप्रतिष्ठिता भव' (2) ॐ नील! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ नील निधये नमः' (3) ॐ कुबेराय नमः, ॐ गदायै नमः' (4) 'ॐ अपराजिते। इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ अपराजितायै नमः'–

इन मन्त्रों को पढ़ते हुए अपराजिता शिला को उत्तर दिशा में स्थापित कर निम्न प्रार्थना करें–

स्थिराऽपराजिते भूत्वा, कुरू माम पराजितम्।
आयुर्दा धनदा पात्र, पुत्र पौत्रप्रदा भव।।

7. शुक्ला– (1) 'ॐ आधारशिले! सुप्रतिष्ठिता भव' (2) 'ॐ कच्छप! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ कच्छप निधये नमः' (3) 'ॐ ईशानाय नमः, ॐ त्रिशूलाय नमः' (4) 'ॐ शुक्ले! इहागच्छ, इहतिष्ठ, ॐ शुक्लायै नमः'–

इन मन्त्रों के द्वारा शुक्ला शिला को ईशान कोण में स्थापित कर निम्न प्रार्थना करें–

शुक्ले! त्वं देहि मे स्थैर्य, स्थिरा भूत्वाऽत्र सर्वदा।
आयुः कामं श्रियं चापि, प्रासादेऽत्र ममाऽनघे।।

8. सौभागिनी– (1) 'ॐ आधारशिले! सुप्रतिष्ठिता भव' (2) 'ॐ मुकुन्द! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ मुकुन्द निधये नमः' (3) 'ॐ इन्द्राय नमः, ॐ वज्राय नमः' (4) 'ॐ सौभागिनी! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ सौभागिन्यै नमः'–

इस मन्त्रों को पढ़ते हुए सौभागिनी नामक शिला को पूर्व दिशा में प्रतिष्ठित कर निम्न प्रार्थना करें–

प्रासादेऽत्रस्थिरा भूत्वा, सौभागिनी! शुभं कुरु।
धन धान्य समृद्धिं च, सर्वदा कुरु नन्दिनि।।

9. **धरणी**– (1) **'ॐ आधारशिले! सुप्रतिष्ठिता भव'** (2) **'ॐ खर्वा! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ खर्वनिधये नमः'** (3) **'ॐ नागाय नमः, ॐ उत्तराय नमः'** (4) **'ॐ धरणि! इहागच्छ, इह तिष्ठ, ॐ धरण्यै नमः'**

इन मन्त्रों के द्वारा धरणी शिला को वास्तु के मध्य भाग में स्थापित कर निम्न प्रार्थना करें–

धरणि! लोक धरणीं, त्वामत्र स्थापयाम्हम्।
निर्विघ्नं धारय त्वं मे, प्रासादं सर्वदा शुभे।।

तदनन्तर अभिषेक द्वारा पवित्र किए गए सोना, चाँदी या तांबा के कूर्म को हाथ में लेकर **'ॐ कूर्म! इहाऽऽगच्छ, इह तिष्ठ, ॐ कूर्माय नमः'**– इस मन्त्र पूर्वक उसे मध्यशिला के ऊपर प्रतिष्ठित करें। फिर उस पर वासचूर्ण डालें, केसर-चंदन से पूजा करें, धूप प्रगटाएँ और निम्न श्लोक से प्रार्थना कर पुष्पांजलि का प्रक्षेपण करें–

सर्व लक्षण संपन्न! कूर्म! भूधरणं क्षम।
चैत्य कर्त्तुं महीपृष्ठे, ममाज्ञां दातुमर्हसि।।

फिर वाजिंत्र बजवाएं, दिक्पालों को बलि प्रदान करें, गृह स्वामी यथाशक्ति याचकों को दान दें, साधर्मिक भक्ति एवं प्रभावना आदि करें, शिल्पकार का सत्कार करें।

शिलान्यास का शुभाशुभ फल

विधि पूर्वक शिलान्यास करने के पश्चात गड्ढों को सुगंधित जल से भरकर उसमें पुष्पों एवं अक्षतों को डालें। फिर आवर्त्त के द्वारा परीक्षा करें। यदि उन खड्डों के जल में दक्षिणावर्त्त उत्पन्न हो अर्थात पुष्प-अक्षत आदि सृष्टिक्रम से घूमते हुए देखे जाएं तो उत्तम फल, यदि सृष्टि क्रम से विपरीत (वामावर्त्त से) घूमते हुए देखे जाएं तो अशुभ फल तथा कुछ भी निमित्त नहीं देखे जाएं तो मध्यम फल समझना चाहिए। अशुभ निमित्त दृष्टिगोचर होने पर शुभ मुहूर्त्त में पुनः शिलान्यास करना चाहिए।

शिलाओं की स्थापना करने के बाद शिल्पकार मध्य शिला के चारों ओर की शिलाओं के ऊपर चार-चार थर आए उतनी ईंटों को मजबूती से चण लें अर्थात मध्य शिला के चारों ओर चोरस कुंडी का आकार करके ऊपर से दसवीं

शिला को ढक्कन रूप में रखें, जिससे कूर्म के ऊपर भार नहीं आए और वह मध्य के पोलापन भाग में रह सके।

शुभ मुहूर्त में शिलाओं की प्रतिष्ठा करने के पश्चात उन्हें हिलाए-डुलाए नहीं, क्योंकि चलित करने पर गृह स्वामी और शिल्पी दोनों के लिए अशुभ फलदायक होता है। इस सम्बन्ध में शास्त्र वचन है कि अग्निकोण में प्रतिष्ठित शिला को चलायमान करने पर गृह स्वामी को भय, नैर्ऋत्य कोण की शिला को चलित करने पर गृहस्वामी के स्त्री की मृत्यु, वायव्य कोण की शिला को चलित करने पर शून्यता एवं भय, ईशान दिशा और मध्य स्थित शिला को कंपित करने पर गुरु को भय उत्पन्न करता है। इसी प्रकार प्रथम विधि पूर्वक प्रतिष्ठित स्तम्भों को भी अपने स्थान से विचलित करने पर अशुभ फल होता है।

।। इति शिलास्थापना विधि ।।

कुंभस्थापना विधि

वर्तमान परम्परा में प्रचलित कुंभ स्थापना विधि इस प्रकार है–

• उत्सव के प्रथम दिन अथवा पाँच-सात दिन पहले कुंभ चक्र और चन्द्र बलवान हो ऐसा शुभ दिन देखकर कुंभ स्थापना करें।

• प्रतिष्ठा के समय कुंभ स्थापना दो जगहों पर की जाती है। पहली मुख्य जिनालय में बिम्ब के दायीं ओर तथा दूसरी जिस मंडप में अधिवासना, अंजनशलाका आदि अनुष्ठानों के लिए स्थापनीय बिंब विराजमान किये गये हों वहाँ बिम्ब के दाहिनी तरफ करते हैं।

• कुंभ मिट्टी का हो, काला दाग से रहित हो और सुन्दर आकार वाला होना चाहिए।

• कुंभ को धोकर उसके ऊपर बाहर में अष्ट मंगल आदि के मांगलिक चित्र बनवाएं। कंठ में ग्रीवा सूत्र (मौली) बाँधें।

• फिर जिस जगह पर कुंभ की स्थापना करनी हो वहाँ कुंवारी कन्या अथवा सधवा नारी के हाथ से कंकु का स्वस्तिक करवाकर उसके ऊपर सवा सेर जौ और जुवार का स्वस्तिक करवायें।

• तदनन्तर कुंभ के अन्दर केशर का स्वस्तिक करवायें।

• फिर कुंभ के बाह्य भाग में चारों तरफ केशर से अनार की लेखनी के द्वारा **'ॐ ह्रीं श्रीं सर्वोपद्रवान् नाशय-नाशय स्वाहा'**– यह मंत्र लिखवायें।

• तत्पश्चात कुंभ के आगे धूप रखें, उसे कुसुमांजलि से बधायें, कंकु के छीटें डालें। फिर कुंभ के भीतर चावल, सुपारी, रुपया और पंचरत्न की पोटली रखें।

• उसके पश्चात खड़े होकर नवकार मन्त्र अथवा बड़ी शान्ति का पाठ बोलते हुए जलयात्रा पूर्वक लाये गये शुद्ध जल से कुंभ भरें।

यहाँ सौभाग्यवती स्त्री के हाथ से कुंभ भरवायें अथवा सौभाग्यवती के हाथ में कुंभ देकर अखण्ड धार से उसे भरें।

• तदनन्तर कुंभ के मुख पर चारों दिशाओं में एक-एक नागरवेल (पान) के पत्ते रखें, उसके ऊपर श्रीफल रखें, उसे सवा गज हरा या लाल रेशमी वस्त्र से ढकें। फिर उसे मींढल, मरोडफली एवं कंकण युक्त ग्रीवा सूत्र से बांधें।

• उसके बाद कुंभ के कण्ठ में पुष्पमाला पहनायें, वस्त्र के ऊपर केसर या चंदन लगाकर सोना-चाँदी का बरख लगायें।

• उसके बाद सधवा स्त्री के मस्तक पर इंढाणी सहित उस कुंभ को रखें और उसके द्वारा भगवान की तीन प्रदक्षिणा दिलवायें।

• तदनन्तर पूर्व में जहाँ स्वस्तिक बनवाया गया था वहाँ **'ॐ ह्रीँ ठःठः स्वाहा'** इस मंत्र को सात बार कहकर श्वास रोकते हुए कुंभ की स्थापना करें।

• फिर गुरु महाराज का योग हो तो उनके हाथ से कुंभ के ऊपर वासचूर्ण डलवाएं। यदि गुरु न हों तो विधिकारक एवं श्रावक वासचूर्ण डालें।

• उसके बाद दोनों हाथों में कुसुमांजलि लेकर निम्न काव्य बोलें–

पूर्णं येन सुमेरू श्रृंगसदृशं, चैत्यं सुदेदीप्यते
यः कीर्तिं यजमानधर्मकथन, प्रस्फूर्जितां भाषते।
यः स्पर्धां कुरुते जगत्त्रयमहा, दीपेन दोषारिणा
सोऽयं मंगल रूप मुख्य गणनः, कुम्भश्चिरं नन्दतात्।।

यह काव्य बोलकर कुंभ को बधायें।

• फिर कुंभ के आगे पट्टा रखकर सधवा स्त्रियों के द्वारा अक्षत की गहुंली करवायें। उसके ऊपर फल एवं नैवेद्य रखवायें। जवारारोपण किया हुआ हो तो उसमें से चार सकोरे कुंभ के चारों ओर रखें। यदि जवारारोपण न हो तो सकोरे बाद में रखें।

• फिर कुंभ के आगे प्रतिदिन गहुंली करवायें, स्त्रियों के द्वारा मंगल गीत गवायें, कुंभ के समीप बिल्ली आदि को आने-जाने नहीं दे, वहाँ रजस्वला आदि स्त्रियों की दृष्टि भी पड़ने न दें।

कुंभ स्थापना की जगह प्रतिष्ठा न होने तक तीनों सन्ध्याओं में सप्त स्मरण का पाठ करें।

आचार्य जिनप्रभसूरि ने 'शान्तिपर्वविधि' में कुंभ स्थापना विधि लिखी है वह प्राचीन है। वही विधि किंचिद् अन्तर के साथ वर्तमान में प्रवर्तित है।

।। इति कुंभ स्थापना विधि ।।

दीपक स्थापना विधि

अर्वाचीन प्रतियों के अनुसार दीपक स्थापना की विधि निम्न प्रकार है–

• कुंभ स्थापना के तुरन्त पश्चात दीपक स्थापना की जाती है। सर्वप्रथम तांबे के दीपक को अच्छी तरह धोयें। फिर कंकु से पूजा करके उसे कुसुमांजलि और अक्षत से बधायें।

• फिर उस दीपक में सुपारी, चाँदी का सिक्का और पंचरत्न की पोटली रखें।

• फिर दीपक में मींढल एवं मरडासिंगी बांधकर 108 अथवा 27 तार की बत्ती रखें।

• तत्पश्चात निम्न मंत्र तीन बार कहते हुए सौभाग्यवती स्त्री के द्वारा दीपक में गाय का घी भरवायें।

ॐ घृतमायुर्वृद्धिकरं, भवति परं जैन दृष्टि संपर्कात् ।
तत्संयुतःप्रदीपः, पातु सदा भाव दुःखेभ्यः ।।

• तत्पश्चात निम्न मंत्र को तीन बार कहते हुए दीपक प्रज्वलित करवायें–

ॐ अर्हं पञ्चज्ञानमहाज्योति र्मयाय ध्वान्त घातिने ।
द्योतनाय प्रतिमाया, दीपो भूयात् सदाऽर्हते ।।

• उसके बाद सधवा स्त्री दीपक लेकर जिन प्रतिमा की तीन प्रदक्षिणा दें। फिर कुंभ की दाहिनी तरफ जहाँ दीपक की स्थापना करनी हो वहाँ कंकु का स्वस्तिक करें और उसके ऊपर गीली मिट्टी पथारकर दीपक की स्थापना करें।

• उसके पश्चात गुरु भगवन्त हो तो निम्न मंत्र तीन बार बोलते हुए उनसे वासचूर्ण डलवायें, अन्यथा विधिकारक या श्रावक वासचूर्ण डालें–

ॐ अग्नयोऽग्निकाया एकेन्द्रिया जीवा निरवद्या अर्हत्पूजायाम् निर्व्यथाः सन्तु, निष्पापाः सन्तु, सद्गतयः सन्तु न मे संघट्टनहिंसाऽर्हदर्चने ।

• फिर कुंभ और दीपक के आगे आरती एवं मंगल दीपक करें।

।। इति दीपक स्थापना विधि ।।

जवारारोपण विधि

वर्तमान परम्परा में प्रचलित जवारारोपण विधि इस प्रकार है–

• कुंभस्थापना के छह या आठ दिन पूर्व ही जवारों का रोपण कर देना चाहिए तथा जवारारोपण के मूल दिन उस विधि का दस्तूर मात्र करने के लिए कुंवारी कन्या के हाथ से पहले बोये हुए शरावों में थोड़े जवारे और डलवा देना चाहिए।

यदि कुंभ स्थापना के पहले जवारारोपण नहीं किया हो तो निम्न विधि से जवारा बोने चाहिए।

• एक-एक बांस में सात-सात छाबड़ियाँ गुंथी हुई हो, ऐसे चार बांस और सोलह मिट्टी के सकोरों को जल से शुद्ध करें। फिर चारों बांस पर अभिमन्त्रित एक-एक मींढ़ल बांधें।

• फिर जवारा बोने के लिए तालाब-सरोवर आदि जलाशय की अथवा जंगल की पाँच भगोने जितनी पीली मिट्टी में एक छोटे भगोने जितना गाय के कंडे का भुक्का मिश्रित करके उसमें थोड़ा-थोड़ा जल डालते हुए एकमेक कर दें।

• फिर वह भुक्का सुकुमारिकाओं के हाथ से डेढ़ अंगुल खाली रहे उस प्रकार सोलह सकोरों में तथा दो अंगुल खाली रहे उस प्रकार अट्ठाईस छाबड़ियों में भरवायें।

• फिर प्रत्येक सकोरों एवं छाबों में चारों तरफ एक-एक मुट्ठी डांगर और जौ वपन करवायें। पक्षीगण जवा आदि चुग न लें उस प्रकार से मिश्र चूर्ण को उन धान्यों पर डाल दें।

• तदनन्तर दिन में तीन-चार बार झारी अथवा कलश आदि से जवारों पर थोड़ा-थोड़ा जल छीटें।

यहाँ ध्यातव्य है कि सकोरों में अधिक पानी डालने से जवारा गल जाते हैं इसलिए मिट्टी के ऊपर पड़ा रहे इतना पानी सकोरों में न डालें। बांस की छाबों में तो अधिक जल छींटने पर भी जौ गलने का भय नहीं रहता है क्योंकि उसमें से पानी झर जाता है।

• ग्रीष्म काल में चौथे दिन, चातुर्मास में पाँचवें दिन और शीत काल में छठे दिन जवारा उग जाते हैं इसलिए यथाशक्य जौ आदि का वपन जल्दी करना

चाहिए। यदि बहुत जल्दी संभव न हो तो भी उत्सव के प्रथम दिन तो अवश्य बोने चाहिए। कुंभ स्थापना बाद में भी हो तो दोष नहीं है।

- जवारा वपन करते समय निम्न मांगलिक गीत गाने चाहिए–

गंगानी माटी ने जमुनाना पाणी
जवारा वावो तमे बाल कुमारी रे
जेम जेम जुवारा लहे रे जाय रे
तेम तेम गुरुजी ने हरख न माय रे।
क्या संघे वाव्या ने क्या श्रावके सिंच्या,
......संघे वाव्या ने....सिंच्या।

विशेष

1. यदि सिर्फ शांतिस्नात्र, कुंभ स्थापना आदि का प्रसंग हो तो चार सकोरों में जौ वपन करना चाहिए। यदि शांतिस्नात्र आदि के साथ ध्वजा दंड का पूजन हो तो आठ सकोरों में जौ वपन करना चाहिए तथा बिंब प्रवेश और चैत्य प्रतिष्ठा हो तो बारह सकोरों में जौ वपन करना चाहिए।
2. जौ उग आये उसके पश्चात कुंभ स्थापना के चारों ओर 4, वेदिका के ऊपर 4 तथा नई वेदी के स्थान पर 4 सकोरे कुमारिकाओं के हाथ से रखवाने चाहिए।
3. अर्वाचीन विधियों में ब्रह्मचारी अथवा ब्राह्मण के हाथ से जवारा बोने का उल्लेख है परन्तु प्राचीन कल्पों में ऐसा नियम नहीं है इसलिए निर्दोष एवं शुद्ध वस्त्रधारी कोई भी व्यक्ति जवारा वपन कर सकता है। परंतु यह विधि भावी फल के सूचन हेतु की जाती है इसलिए बाल कन्याओं से जौ वपन करवाना अधिक लाभकारी है।
4. आधुनिक विधियों में सात धान्य बोने का उल्लेख है परन्तु यह शास्त्रीय नहीं है। प्राचीन कल्पों में 'यव वारका व्रीहियवांकुरमया:' ऐसा वचन होने से जव और व्रीहि का वपन करना ही योग्य है।
5. जौ वपन महोत्सव के पहले कर दिया हो और उत्सव के प्रारम्भ में उग आये तो जल यात्रा में चार कलश के ऊपर 4 सकोरे रखने चाहिए, किन्तु आधुनिक विधिकारक प्राय: देरी से जवारारोपण करते हैं इसलिए जलयात्रा में कलशों के ऊपर नारियल और स्थापित कुंभ के चारों ओर 4 जवारा पात्र रखने की प्रवृत्ति शुरू हुई है।

6. आधुनिक विधिकारक नई वेदियों के ऊपर जवारा पात्र नहीं रखते हैं परन्तु मौलिक विधान के अनुसार चार वेदियों के ऊपर चार जवारा पात्र अवश्य रखने चाहिए।
7. प्रतिष्ठा की मूल विधि के अनुसार भी नंद्यावर्त्त के चार कोणों में 4 जवारा पात्र रखने चाहिए, परन्तु आजकल ऐसा नहीं होता है।

।। इति जवारोपण विधि ।।

पाटला पूजन विधि

प्रतिष्ठा, शान्तिस्नात्र आदि महापूजन तथा विशिष्ट जाप साधना आदि के अवसर पर शुभ दिन में, नवग्रह-दश दिक्पाल एवं अष्ट मंगल- इन तीनों के चित्रपट्ट की पूजा करना चाहिए। इससे बृहद् अनुष्ठान निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं।

नवग्रह पूजन विधि

• मांगलिक अनुष्ठान के प्रथम दिन अथवा दूसरे दिन में पूजा कर्त्ता नवग्रह चित्रित श्रीपर्णी के पट्ट को धोयें, फिर वासचूर्ण और पुष्प से पट्ट को अधिवासित करें एवं अगर धूप से संस्कारित करें।

• उसके बाद अनार की लेखनी से केशर-कस्तूरी-कपूर और हींगलोक चूर्ण के रस द्वारा ग्रहों का आलेखन करें।

• फिर जिनबिम्ब के दाहिनी तरफ उस पट्ट को स्थापित करें। उसके बाद पूजा योग्य सर्व सामग्री एक स्थान पर संग्रहित कर दें।

• तदनन्तर पूजा में भाग लेने वाले सभी आराधकों का तिलक करें और उनके हाथ में मींढ़लसूत्र बाँधें।

• उसके बाद गुरु भगवन्त, विधिकारक और उपस्थित सर्वजन इरियावही पूर्वक वज्रपंजर स्तोत्र से आत्मरक्षा करें।

1. सूर्य पूजन

सर्वप्रथम निम्न मन्त्र बोलकर चावल एवं पुष्प से सूर्य ग्रह को बधायें।

'ॐ ह्रीं रत्नांकसूर्याय सहस्रकिरणाय नमो नमः स्वाहा'

इसके बाद रक्त चंदन से सूर्य का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से सूर्य का आह्वान करें।

'ॐनमः आदित्याय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय अमुकग्रहे (अस्मिन् जम्बूद्वीपे दक्षिणार्ध भरते मध्यखण्डे अमुक नगरे अमुक प्रासादे)

वृद्धस्नात्रमहोत्सवे आगच्छ आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से सूर्य की स्थापना करें।

'अत्र तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा'

फिर निम्न मंत्रों से सूर्य ग्रह की अष्ट प्रकारी पूजा करें।

1. **ॐ नमः आदित्याय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय चन्दनगन्धादिकं समर्पयामि स्वाहा** –केसर पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –लाल कनेर के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –लाल रेशमी वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –द्राक्ष चढ़ायें।
5. **धूप माघ्रापयामि** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –चूरमा अथवा गेहूँ के लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं तांबूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –पान, लाल अक्षत, लाल सुपारी, पैसा, लोंग, इलायची आदि चढ़ायें।

फिर लाल माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ सूर्याय नमः

फिर निम्न मंत्र को तीन बार कहते हुए तीन बार सूर्य ग्रह को अर्घ्य दें–

ॐ ह्रीं रत्नाङ्कसूर्याय सहस्रकिरणाय नमः स्वाहा

फिर अन्त में दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य, नामोच्चारेण भास्कर !
शान्तिं तुष्टिं च पुष्टिं च, रक्षां कुरु जयश्रियम् ।।

2. चन्द्र पूजन

सर्वप्रथम निम्न मन्त्र बोलकर अक्षत एवं पुष्प से चन्द्र ग्रह को बधायें।

ॐ रोहिणी पतये चन्द्राय ॐ ह्रीं ह्रौं द्रीं चन्द्राय नमः स्वाहा।

उसके बाद चंदन से चन्द्र का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से चन्द्र का आह्वान करें।

ॐ नमश्चन्द्राय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय अमुक गृहे वृद्धस्नात्र महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से चन्द्र की स्थापना करें।

'अत्र तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा'

फिर निम्न मंत्रों से चन्द्र ग्रह की अष्ट प्रकारी पूजा करें।

1. **ॐ नमः चन्द्राय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –बरास युक्त चन्दन से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –श्वेत पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –श्वेत वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –गन्ना चढ़ायें।
5. **धूपं माघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –मुरमुरे का लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं तांबूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –पान, अखण्ड चावल, सुपारी, पैसे आदि चढ़ायें।

फिर श्वेत माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ चन्द्राय नमः

फिर निम्न मंत्र को तीन बार कहते हुए तीन बार चन्द्र ग्रह को अर्घ्य दें–

ॐ रोहिणीपरतये चन्द्राय ॐ ह्रीँ ह्रौँ द्रीं चन्द्राय नमः स्वाहा।

फिर अन्त में दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

चन्द्रप्रभजिनेन्द्रस्य, नाम्ना तारागणाधिप ।
प्रसन्नोभव शान्तिं च, रक्षां कुरू जयश्रियम् ।।

3. मंगल पूजन

सर्वप्रथम निम्न मन्त्र बोलकर अक्षत एवं सुगन्धित पुष्प से मंगल ग्रह को बधायें।

ॐ नमो भूमिपुत्राय भूभृकुटिलनेत्राय वक्रवदनाय द्रः सः मंगलाय स्वाहा।

उसके बाद रतांजलि अथवा केसर से मंगल ग्रह का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से मंगल का आह्वान करें–

ॐ नमो भौमाय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय अमुक गृहे वृद्धस्नात्रमहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से मंगल की स्थापना करें।

'अत्र तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा'

फिर निम्न मंत्रों से मंगल ग्रह की अष्टप्रकारी पूजा करें-

1. **ॐ नमः भौमाय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** – केसर से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** – जासुद का पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** – लाल वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** – लाल सुपारी चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** – धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** – दीप दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –गेहूँ का लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा।** – पान, लाल अक्षत, लाल सुपारी, पैसे आदि चढ़ायें।

फिर लाल माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ मंगलाय नमः

फिर निम्न मंत्र को तीन बार मंगल ग्रह को अर्घ्य दें।

ॐ नमो भूमिपुत्राय भूभृकुटिलनेत्राय वक्रवदनाय द्रः सः मंगलाय स्वाहा।

फिर अन्त में दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें-

सर्वदा वासुपूज्यस्य, नाम्ना शान्ति जयश्रियम्।
रक्षां कुरु धरासूनो, अशुभोऽपि शुभो भव।।

4. बुध पूजन

सर्वप्रथम निम्न मंत्र बोलकर अक्षत एवं सुगन्धित पुष्प से बुध ग्रह को बधायें।

ॐ नमो बुधाय श्राँ श्रीँ श्रः द्रः स्वाहा

उसके बाद चंदन, केसर, कस्तुरी से बुध का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से बुध का आह्वान करें।

ॐ नमो बुधाय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय अमुक गृहे वृद्धस्नात्र महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से बुध की स्थापना करें।

'अत्र तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा'

फिर निम्न मंत्र से बुध ग्रह की अष्ट प्रकारी पूजा करें।

1. **ॐ नमः बुधाय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –वासचूर्ण से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –चंपक वृक्ष के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –नीला वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –नारंगी और सीताफल चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीप दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –मूँग की दाल का लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा**– पान, अक्षत, सुपारी, पैसा आदि चढ़ायें।

फिर केरबे की नीली माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ बुधाय नमः

फिर निम्न मंत्र को तीन बार कहते हुए तीन बार बुध ग्रह को अर्घ्य दें-

ॐ नमो बुधाय श्राँ श्रीँ श्रः द्रः स्वाहा।

फिर अन्त में दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें।

विमलानन्तधर्मारा:, शान्तिः कुन्थुर्नमिस्तथा ।
महावीरश्च तन्नाम्ना, शुभो भव सदा बुध ।।

5. गुरु पूजन

सर्वप्रथम निम्न मन्त्र बोलकर अक्षत एवं सुगन्धित पुष्प से गुरु ग्रह को बधायें।

ॐ ग्रौं ग्रीं ग्रूँ बृहस्पतये सुरपूज्याय नमः स्वाहा।

उसके बाद श्वेत चंदन से गुरु का आलेखन करें

फिर निम्न मंत्र से गुरू का आह्वान करें।

ॐ नमो बृहस्पतये सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय अमुकगृहे वृद्धस्नात्र महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से गुरु की स्थापना करें।

'अत्र तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा'

फिर निम्न मंत्र से गुरु ग्रह की अष्ट प्रकारी पूजा करें।

1. **ॐ नमः बृहस्पतये सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –वासचूर्ण से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –चंपा के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –पीला वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –पीली मौसंबी चढ़ायें।
5. **धूपं समर्पयामि स्वाह** –धूप दिखायें।
6. **दीपं समर्पयामि स्वाह** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –चने की दाल का लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –पान, अक्षत, सुपारी, पैसे आदि चढ़ायें।

फिर स्वर्ण अथवा केरबे की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ बृहस्पतयाय नमः

फिर निम्न मंत्र को तीन बार कहते हुए तीन बार गुरु ग्रह को अर्घ्य दें–

ॐ ग्रौं ग्रीं ग्रूं बृहस्पतये सुरपूज्याय नमः स्वाहा।

फिर अन्त में दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

ऋषभाजितसुपार्श्वा-श्चाभिनन्दनशीतलौ ।
सुमतिः संभवः स्वामी, श्रेयांसश्च जिनोत्तमा ।।
एतत्तीर्थकृतां नाम्ना, पूजया च शुभो भव ।
शान्तिं तुष्टिं च पुष्टिं च, कुरू देवगणार्चित ।।

6. शुक्र पूजन

सर्वप्रथम निम्न मंत्र बोलकर अक्षत एवं सुगन्धित पुष्प से शुक्र ग्रह को बधायें।

ॐ यः अमृताय अमृत वर्षणाय दैत्य गुरवे नमः स्वाहा

उसके बाद चंदन से शुक्र का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से शुक्र का आह्वान करें।

ॐ नमः शुक्राय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय अमुकग्रहे वृद्धस्नात्रमहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा

फिर निम्न मंत्र से शुक्र की स्थापना करें।

'अत्र तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा'

फिर निम्न मंत्र से शुक्र ग्रह की अष्टप्रकारी पूजा करें।

1. **ॐ नमः शुक्राय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –चन्दन से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –मोगरा के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि** –श्वेत वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –बीजोरा का फल चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्य समर्पयामि स्वाहा** –मुरमुरे का लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –पान, अक्षत, सुपारी, पैसे आदि चढ़ायें।

फिर स्फटिक अथवा चाँदी की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ शुक्राय नमः

फिर निम्न मंत्र को तीन बार कहते हुए तीन बार शुक्र ग्रह को अर्घ्य दें।

ॐ यः अमृताय अमृतवर्षणाय दैत्यगुरवे नमः स्वाहा।

फिर अन्त में दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

ॐ पुष्पदन्तजिनेन्द्रस्य, नाम्ना दैत्यगणार्चित ।
प्रसन्नो भव शान्तिं च, रक्षां कुरू जयश्रियम् ।।

7. शनि पूजन

सर्वप्रथम निम्न मंत्र बोलकर अक्षत एवं सुगन्धित पुष्प से शनि ग्रह को बधायें।

ॐ शनैश्चराय आँ कौं ह्रीं क्रौंडाय नमः स्वाहा।

उसके बाद अगर चुवो एवं कस्तूरी से शनि का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से शनि का आह्वान करें।

ॐ नमः शनैश्चराय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय अमुकगृहे वृद्धस्नात्रमहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से शनि की स्थापना करें।

'अत्र तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा'

फिर निम्न मंत्र से शनि ग्रह की अष्ट प्रकारी पूजा करें।

1. **ॐ नमः शनैश्चराय सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –कंकु से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –मचकुंद के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –नीला रेशमी वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –खारक चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –उड़द की दाल के लड्डू अथवा तिल के लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा।** –पान, अक्षत, सुपारी, पैसे आदि चढ़ायें।

फिर अकलबेर की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ शनैश्चराय नमः

फिर निम्न मंत्र को तीन बार कहते हुए तीन बार शनि ग्रह को अर्घ्य दें।

ॐ शनैचराय ऑं क्रौं क्रोंडाय नमः स्वाहा

फिर अन्त में दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

श्री सुव्रतजिनेन्द्रस्य, नाम्ना सूर्यांगसंभव ।
प्रसन्नो भव शान्ति च, रक्षां कुरु जयश्रियम् ।।

8. राहु पूजन

सर्वप्रथम निम्न मंत्र बोलकर अक्षत एवं सुगन्धित पुष्प से राहु ग्रह को बधायें।

ॐ ह्रीं ठॉं श्रीँ व्रः व्रः व्रःपिंगलनेत्राय कृष्णरूपाय राहवे नमः स्वाहा।

उसके बाद कस्तूरी से राहु का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से राहु का आह्वान करें।

ॐ नमो राहवे सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय अमुक गृहे वृद्धस्नात्र महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से राहु की स्थापना करें।

'अत्र तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा'

फिर निम्न मंत्र से ग्रह की अष्टप्रकारी पूजा करें।

1. **ॐ नमः राहवे सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –कंकुसे पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –मचकुंद के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –काला वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –श्रीफल चढ़ायें।
5. **धूप माघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –उड़द की दाल के लड्डू अथवा तिल के लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा।** –पान, अक्षत, सुपारी, पैसे आदि चढ़ायें।

फिर अकलबेर की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ राहवे नमः

फिर निम्न मंत्र को तीन बार कहते हुए तीन बार राहु ग्रह को अर्घ्य दें।

ॐ ह्रीँ ठाँ श्रीँ व्रः व्रः व्रः पिंगलनेत्राय कृष्णरूपाय
राहवे नमः स्वाहा।

फिर अन्त में दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

श्री नेमिनाथतीर्थेश, नाम्ना त्वं सिंहिकासुत।
प्रसन्नो भव शान्तिं च, रक्षां कुरु जय श्रियम्।।

9. केतु पूजन

सर्वप्रथम निम्न मंत्र बोलकर अक्षत एवं सुगन्धित पुष्प से केतु ग्रह को बधायें।

ॐ कौं कीँ कैं टःटःटः छत्र रूपाय राहुतनवे केतवे नमः स्वाहा।

उसके बाद यक्ष कर्दम से केतु का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से केतु का आह्वान करें।

ॐ नमः केतवे सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय अमुकगृहे वृद्ध स्नात्र महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से केतु ग्रह की स्थापना करें।

'अत्र तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा'

फिर निम्न मंत्र से केतु ग्रह की अष्ट प्रकारी पूजा करें–

1. **ॐ नमः केतवे सवाहनाय सपरिकराय सायुधाय चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –कंकु से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –पंचवर्णी पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –काला वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –अनार चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –उड़द की दाल के लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा।** पान, अक्षत, सुपारी, पैसे आदि चढ़ायें।

फिर गोमेद की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ केतवे नमः

फिर तीन बार निम्न मंत्र कहते हुए केतु ग्रह को तीन बार अर्घ्य दें–

ॐ कौं कीँ कैं टःटःटः छत्र रूपाय राहुतनवे केतवे नमः स्वाहा

फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें।

राहोः सप्तमराशिस्थः, कारणे दृश्यतेऽम्बरे।
श्री मल्लिपार्श्वनाम्ना, केतो शान्ति श्रियंकुरु।।

दश दिक्पाल पूजन विधि

शुभ अनुष्ठानों में सहायक होने से दश दिक्पाल की पूजा भी उनके वर्ण के अनुसार करनी चाहिए। इसकी पूजन विधि एवं आवश्यक निर्देश इस प्रकार हैं–

1. दिक्पाल पट्ट को जिन प्रतिमा के बायीं तरफ रखें।
2. पूजन शुरू करने से पूर्व एक थाली के अन्दर गेहूँ, जौ, जुवार, चवला, चना, मूंग और उड़द– इन सात धान्यों को मिलाकर उन पर घी से सने हुए हाथों का स्पर्श करें। फिर थाली के मध्य में सुपारी, खारक, नारियल के टुकड़े, नागरवेल के पत्ते और पुष्प डालें। फिर उस थाली को गुरु

महाराज के सामने रखें। गुरु निम्न मंत्र को 21 बार बोलते हुए वासचूर्ण के द्वारा बाकुला को अभिमंत्रित करें।

बाकुलाभिमंत्रण मंत्र

ॐ ह्रीं क्ष्वीं सर्वोपद्रवान् बलिं रक्ष-रक्ष स्वाहा।

3. तदनन्तर विधिकारक जल का कलश, केसर, पुष्प, कुसुमांजलि, सुपारी, धूप, दीप, थाली-बेलण आदि सामग्री को लेकर जिनालय के सन्मुख अथवा दाहिनी तरफ जायें। वहाँ निम्न मन्त्र बोलते हुए दसों दिशाओं में बाकुला प्रदान करें-

पूर्व दिशा में **ॐ नमो इन्द्राय स्वाहा,** आग्नेय कोण में **ॐ नमोऽग्नये स्वाहा,** दक्षिण दिशा में **ॐ नमो यमाय स्वाहा** नैर्ऋत्य कोण में **ॐ नमो नैऋत्य स्वाहा,** पश्चिम दिशा में **ॐ नमो वरूणाय स्वाहा,** वायव्य कोण में **ॐ नमो वायवे स्वाहा,** उत्तर दिशा में **ॐ नमो कुबेराय स्वाहा,** ईशान कोण में **ॐ नमो ईशानाय स्वाहा,** ऊर्ध्व दिशा में **ॐ नमो ब्रह्मणे स्वाहा,** अधो कोण में **ॐ नमो नागाय स्वाहा।**

तदनन्तर निम्न क्रम से दिक्पाल देवों की पूजा करें-

1. इन्द्र पूजा

एक निपुण श्रावक सर्व सामग्री एकत्रित कर दिक्पाल पट्ट के समीप पवित्र चौकी पर बैठ जायें। फिर पूजा प्रारंभ करें।

सर्वप्रथम नवग्रह की भाँति निम्न मंत्र बोलकर पूर्व दिशा के अधिपति इन्द्र को अक्षत एवं पुष्प चढ़ाते हुए बधायें-

ॐ ह्रीँ औं हौं हूँ हौं श्रूँ हूँ क्षः वज्राधिपतये इन्द्र संवौषट् (स्वाहा)।

तत्पश्चात श्वेत चंदन से इन्द्र का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से इन्द्र का आह्वान करें-

ॐ नमो इन्द्राय पूर्व दिगधिष्ठायकाय ऐरावणवाहनाय वज्रायुधाय सपरिजनाय अस्मिन् जम्बूद्वीपे दक्षिणार्ध भरते मध्यखण्डे अमुक देशे अमुक नगरे जिनबिम्ब प्रतिष्ठामहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से इन्द्र देव की स्थापना करें।

'अत्र तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा'

फिर निम्न मंत्रों से इन्द्र देव की अष्ट प्रकारी पूजा करें।

1. **चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –केसर अथवा वासचूर्ण से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –चंपा के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –पीला वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –पीली मौसंबी चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –मोतीचूर का लड्डू चढ़ायें।

फिर केरबा अथवा पीले सूत की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ ह्रीं इन्द्राय नमः

फिर तीन बार निम्न मंत्र कहते हुए इन्द्र देव को तीन बार अर्घ्य दें।

ॐ ह्रीँ आँ हाँ हूँ ह्रौं श्रूँ ह्रूँ क्षः वज्राधिपतये इन्द्र संवौषट् (स्वाहा)।

फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें।

ऐरावतसमारूढः, शक्रः पूर्व दिशि स्थितः।
संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु।।

2. अग्नि पूजा

सर्वप्रथम आग्नेय कोण के अधिपति अग्नि को अक्षत एवं सुगन्धित पुष्प चढ़ाते हुए बधायें–

ॐ ह्रीँ रें रों रूँ रैं रौं रः अग्नि संवौषट् (स्वाहा)

तत्पश्चात लाल चंदन से अग्नि देव का आलेखन करें–

फिर निम्न मंत्र से अग्नि देव का आह्वान करें–

ॐ नमोऽग्निमूर्त्तये शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय सपरिजनाय जिनबिम्ब प्रतिष्ठामहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से अग्नि देव की स्थापना करें–

अत्र तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा

फिर निम्न मंत्रों से अग्नि देव की अष्ट प्रकारी पूजा करें–

1. **चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –केसर से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –जासुद का पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –लाल कपड़ा चढ़ायें।

4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –लाल सुपारी चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –चुरमे का लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –पान, अक्षत, सुपारी और पैसा आदि चढ़ायें।

फिर लाल रंग की सूत की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें–

ॐ अग्नये नमः

फिर निम्न मंत्र को तीन बार कहते हुए अग्नि देव को तीन बार अर्घ्य दें–

ॐ ह्रीँ रें रों रूँ रैं रौं रः अग्नि संवौषट् (स्वाहा)।

फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

सदा वह्निदिशो नेता, पावको मेषवाहनः।
संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलि पूजां प्रतीच्छतु।।

3. यम पूजा

सर्वप्रथम दक्षिण दिशा के अधिपति यम को अक्षत और सुगन्धित पुष्प चढ़ाते हुए बधायें–

ॐ क्षूँ हूँ ह्रौं क्षः यम संवौषट् (स्वाहा)।

तत्पश्चात कस्तूरी से यम देव का आलेखन करें–

फिर निम्न मंत्र से यम देव का आह्वान करें–

ॐ नमो यमाय दक्षिणदिगधिष्ठायकाय महिषवाहनाय दंडायुधाय कृष्णमूर्त्तये सपरिजनाय जिनबिम्बप्रतिष्ठामहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से यम देव की स्थापना करें–

अत्र तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा

फिर निम्न मंत्रों से यम देव की अष्ट प्रकारी पूजा करें–

1. **चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –कुंकुम से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –दमणो (डमरा) के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –लाल वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –काली सुपारी चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।

7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –उड़द के लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –पान, अक्षत, सुपारी और पैसा आदि चढ़ायें।

फिर अकलबेर अथवा काले वर्ण की माला से 108 बार निम्न जाप करें।

ॐ यमायै नमः

फिर तीन बार निम्न मंत्र कहते हुए यम देव को तीन बार अर्घ्य दें।

ॐ क्षूँ हूँ ह्रौं क्षः यम संवौषट् स्वाहा।

फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें।

दक्षिणस्यां दिशि स्वामी, यमो महिषवाहनः ।
संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलि पूजां प्रतीच्छतु ।।

4. नैर्ऋत पूजा

सर्वप्रथम नैर्ऋत दिशा के अधिपति नैर्ऋत देव को अक्षत एवं सुगन्धित पुष्प चढ़ाते हुए बधायें।

ॐ ग्लौं ह्रौं नैर्ऋत संवौषट् (स्वाहा)

तत्पश्चात कस्तुरी से नैर्ऋत देव का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से नैर्ऋत देव का आह्वान करें–

ॐ नमो नैर्ऋताय खड्गहस्ताय शिववाहनाय सपरिजनाय जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से नैर्ऋत देव की स्थापना करें–

अत्र तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा

फिर निम्न मंत्रों से नैर्ऋत देव की अष्ट प्रकारी पूजा करें–

1. **चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –चंदन से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –मालती एवं बोलसरी के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –अनार, सीताफल चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –काले तिल का लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –पान, अक्षत, सुपारी और पैसा आदि चढ़ायें।

फिर अकलबेर की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ नमो नैर्ऋताय स्वाहा

फिर तीन बार निम्न मंत्र कहते हुए नैर्ऋत देव को तीन बार अर्घ्य दें–

ॐ ग्लौँ ह्रौँ नैर्ऋत संवौषट् (स्वाहा)

फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

यमापरान्तरालोऽसौ, नैर्ऋतः शिववाहनः ।
संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलि पूजां प्रतीच्छतु ।।

5. वरूण पूजा

सर्वप्रथम पश्चिम दिशा के अधिपति वरूण को पुष्प एवं सुगन्धित अक्षत चढ़ाते हुए बधायें–

ॐ श्रीँ ह्रोँ वरूण संवौषट् (स्वाहा)।

तत्पश्चात कस्तूरी के वरूण देव का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से वरूण का आह्वान करें–

ॐ नमो वरूणाय पश्चिमदिगधिष्ठायकाय मकरवाहनाय पाशहस्ताय सपरिजनाय जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से वरूण देव की स्थापना करें–

अत्र तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा

फिर निम्न मंत्रों से वरूण देव की अष्ट प्रकारी पूजा करें–

1. **चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –चंदन से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –दमणो बोलसिरि के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –नीला रेशमी वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –अनार चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –काले तिल के लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –पान, अक्षत, सुपारी और पैसा आदि चढ़ायें।

फिर केरबा की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें–

ॐ वरूणाय नमः

फिर तीन बार निम्न मंत्र कहते हुए वरूण देव को तीन बार अर्घ्य दें-

ॐ श्रीँ हौँ वरूण संवौषट् (स्वाहा)

फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें-

यः प्रतीचीदिशो नाथो, वरूणो मकरस्थितः ।
संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ।।

6. वायु पूजा

सर्वप्रथम वायव्य दिशा के अधिपति वायु को पुष्प और सुगन्धित अक्षत चढ़ाते हुए बधायें-

ॐ क्लीँ हौं वायु संवोषट् (स्वाहा)।

तत्पश्चात चन्दन, केसर एवं कस्तूरी से वायु देव का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से वायु का आह्वान करें-

ॐ नमो वायवे वायवीपतये ध्वजहस्ताय हरिणवाहनाय सपरिजनाय जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से वायु देव की स्थापना करें-

अत्र तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा

फिर निम्न मंत्रों से वायु देव की अष्ट प्रकारी पूजा करें-

1. **चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** -कस्तुरी से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** -चंपक के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** -नीला वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** -नारंगी एवं केला चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** -धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** -दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** -मूँग की दाल का लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** -पान, अक्षत, सुपारी और पैसा आदि चढ़ायें।

फिर केरबा की माला से 108 बार मंत्र का जाप करें।

ॐ वायवे नमः

फिर निम्न मंत्र कहते हुए तीन बार वायु देव को अर्घ्य दें-

ॐ क्लीँ हौँ वायु संवोषट् (स्वाहा)।

फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें।

हरिणो वाहनं यस्य, वायव्यधिपतिर्मरूत् ।
संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलि पूजां प्रतीच्छतु ।।

7. कुबेर पूजा

सर्वप्रथम उत्तर दिशा के अधिपति कुबेर को पुष्प एवं सुगन्धित अक्षत चढ़ाते हुए बधायें–

ॐ ब्लौं ह्रौं कुबेर संवौषट् (स्वाहा)

तत्पश्चात चंदन एवं बरास से कुबेर देव का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से कुबेर देव का आह्वान करें–

ॐ नमो धनदाय उत्तरदिगधिष्ठायकाय गदाहस्ताय नरवाहनाय सपरिजनाय जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से कुबेर देव की स्थापना करें–

अत्र तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा

फिर निम्न मंत्रों से कुबेर की अष्ट प्रकारी पूजा करें–

1. **चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –चंदन एवं बरास से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –जाई एवं सेवत्रा के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –श्वेत वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –बीजोरे का फल चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –चावल के आटे के लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –पान, अक्षत, सुपारी और पैसा आदि चढ़ायें।

फिर स्फटिक की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें

ॐ धनदाय नमः

फिर तीन बार निम्न मंत्र कहते हुए कुबेर देव को तीन बार अर्घ्य दें–

ॐ ब्लौँ ह्रौँ कुबेर संवौषट् (स्वाहा)

फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

निधान नवकारूढ, उत्तरस्यां दिशि प्रभुः ।
संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलि पूजां प्रतीच्छतु ।।

8. ईशान पूजा

सर्वप्रथम ईशान दिशा के अधिपति ईशान को पुष्प एवं सुगन्धित अक्षत चढ़ाते हुए बधायें-

ॐ हाँ हूँ हौं हः ईशान संवौषट् (स्वाहा)

तत्पश्चात चंदन से ईशान देव का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से ईशान का आह्वान करें-

ॐ नमः ईशानाय ऐशानी पतये त्रिशूलहस्ताय वृषभवाहनाय सपरिजनाय जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से ईशान देव की स्थापना करें-

अत्र तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा

फिर निम्न मंत्रों से ईशान देव की अष्ट प्रकारी पूजा करें-

1. **चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** -चंदन से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** -कुमुद के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** -श्वेत रेशमी वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** -गन्ने चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** -धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** -दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** -चावल के आटे का लड्डू चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा।** -पान, अक्षत, सुपारी और पैसा आदि चढ़ायें।

फिर स्फटिक की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें।

ॐ ईशानाय नमः

फिर तीन बार निम्न मंत्र कहते हुए ईशान देव को तीन बार अर्घ्य दें-

ॐ हाँ हूँ हौं हः ईशान संवौषट् (स्वाहा)

फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें-

सिते वृषेधिरूढश्च, ऐशान्याश्च दिशो विभुः ।
संघस्य शान्तयेसोऽस्तु बलि पूजां प्रतीच्छतु ।।

9. ब्रह्म पूजा

सर्वप्रथम ऊर्ध्व दिशा के स्वामी ब्रह्म को पुष्प एवं सुगन्धित अक्षत चढ़ाते हुए बधायें-

ॐ ह्रीँ क्ष्रुँ ब्लूँ चँ द्रः ब्रह्मन् संवौषट् (स्वाहा)

तत्पश्चात चन्दन एवं कपूर से ब्रह्म देव का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से ब्रह्म का आह्वान करें–

ॐ नमो ब्रह्मणे ऊर्ध्वलोकधिष्ठायकाय राजहंसवाहनाय सायुधाय सपरिजनाय जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से ब्रह्म देव की स्थापना करें–

अत्र तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा

फिर निम्न मंत्र से ब्रह्म देव की अष्ट प्रकारी पूजा करें–

1. **चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –चंदन से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –मोगरा के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –सफेद रेशमी वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –बीजोरे का फल चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –घेवर चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –पान, अक्षत, सुपारी और पैसा आदि चढ़ायें।

फिर स्फटिक की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें–

ॐ ब्रह्मणे नमः

फिर तीन बार निम्न मंत्र कहते हुए ब्रह्म देव को तीन बार अर्घ्य दें।

ॐ ह्रीँ क्ष्रुँ ब्लूँ चँ द्रः ब्रह्मन् संवौषट् (स्वाहा)

फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

ब्रह्मलोकविभुर्यस्तु, राजहंससमाश्रितः ।
संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलि पूजां प्रतीच्छतु ।।

10. पाताल पूजा

सर्वप्रथम अधो दिशा के स्वामी नाग को पुष्प एवं सुगन्धित अक्षत चढ़ाते हुए बधायें–

ॐ आँ ह्रीँ क्रौँ ऐं ह्रौँ पद्मावती सहिताय धरणेन्द्र संवौषट् (स्वाहा)

तत्पश्चात चन्दन एवं दूध से नाग देव का आलेखन करें।

फिर निम्न मंत्र से नाग देव का आह्वान करें।

ॐ नमो नागाय पाताल निवासाय पद्मवाहनाय सायुधाय सपरिजनाय जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर निम्न मंत्र से नाग देव की स्थापना करें–

अत्र तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा

फिर निम्न मंत्रों से नाग देव की अष्ट प्रकारी पूजा करें–

1. **चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –चंदन पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –मोगरा का पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –श्वेत रेशमी वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –श्वेत बादाम चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक दिखायें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –दूध के पेड़े चढ़ायें।
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –पान, अक्षत, सुपारी और पैसा आदि चढ़ायें।

फिर स्फटिक की माला से 108 बार निम्न मंत्र का जाप करें–

ॐ नागाय नमः

फिर निम्न मंत्र को तीन बार कहते हुए नाग देव को तीन बार अर्घ्य दें–

ॐ आँ ह्रीँ क्रौँ ऐं ह्रौँ पद्मावती सहिताय धरणेन्द्र संवौषट् (स्वाहा)

फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

पातालाधिपतिर्यस्तु, सर्वदा पद्मवाहनः ।
संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलि पूजां प्रतीच्छतु ।।

अष्ट मंगल पूजन विधि

सर्वप्रथम पूजन करने वालों का प्रारम्भ में तिलक करें। फिर हाथ में मींढल बांधें। फिर गुरु महाराज एवं उपस्थित सभी जन इरियावही और आत्मरक्षा कवच करें।

तत्पश्चात अनुष्ठान कर्त्ता चित्रित अष्ट मंगल पट्ट को धोकर उस पर मौली बांधें।

उसके बाद अनार की लेखनी से कस्तुरी, अम्बर, श्वेत चंदन, हींगलोक,

अगर, केसर, बरास, चंदन और कपूर मिश्रित चूर्ण द्वारा अष्टमंगल का आलेखन करें।

फिर निम्न श्लोक बोलते हुए अष्ट मंगल के पट्ट को कुसुमांजली से बधायें–

आदर्शोदितकेवलर्द्धिरसमै, श्वर्यं च भद्रासनाद्
ब्रह्माण्डस्थ शरावसम्पुटतनो-र्यः कामकुम्भः पुरः ।।
श्री वत्साङ्गमिव स्फुटश्च तनुते, नित्योत्सवः स्वस्तिका-
न्नन्द्यावर्त वहद्भुताकृतिकृता-नन्दः स वोऽव्याज्जिनः ।।
मङ्गल श्रीमदर्हन्तो, मंगलं जिन शासनम् ।
मंगलं सकलः संघो, मंगलं पूजका अमी ।।

निम्न श्लोक पढ़ते हुए स्वस्तिक आदि आठ मंगलों को कुसुमांजलि चढ़ाएँ–

1. स्वस्तिक

स्वस्ति भूगगननागविष्टपे-षूदितं जिनवरोदयेक्षणात् ।
स्वस्तिकं तदनुमानतो जिन-स्थाग्रतो बुधजनैर्विलिख्यते ।।1।।

2. श्रीवत्स

अन्तः परम ज्ञानं, यद् भाति जिनाधिनाथ हृदयस्य ।
तच्छ्रीवत्सव्याजात्, प्रकटी भूतं बहिर्वन्दे ।।2।।

3. पूर्णकलश

विश्वत्रये च स्वकुले जिनेशो,
व्याख्यायते श्री कलशायमानः ।
अतोऽत्र पूर्ण कलशं लिखित्वा,
जिनार्चनाकर्म कृतार्थ यामः ।।३।।

4. भद्रासन

जिनेन्द्र पादैः परिपूज्य पुष्टै-रतिप्रभावैरतिसन्निकृष्टम् ।
भद्रासनं भद्रकरं जिनेन्द्र, पुरो लिखेन्मङ्गल सत्प्रयोगम् ।।4।।

5. नन्द्यावर्त्त

त्वत्सेवकानां जिननाथ! दिक्षु, सर्वासु सर्वे निधयः स्फुरन्ति ।
अतश्चतुर्धा नवकोणनन्द्या-वर्त्तः सतां वर्तयतां सुखानि ।।5।।

6. **वर्धमान संपुट**

पुण्यं यशः समुदयः प्रभुता महत्त्वं
सौभाग्य धी विनय शर्म मनोरथाश्च ।
वर्धन्त एव जिननायक! ते प्रसादात्
तद्वर्धमान युग संपुटमादधामः ।।6।।

7. **मत्स्य युग्म**

त्वद्वध्य पञ्चशरकेतन भावक्लृप्तं,
कर्तुं मुधा भुवननाथ! निजापराधम् ।
सेवां तनोति पुरस्तस्तव मीन युग्मं,
श्राद्धैःपुरो विलिखितं निरूजाङ्ग युक्तया ।।7।।

8. **दर्पण**

आत्मालोक विधौ जिनोऽपि सकल-स्तीव्रं तपो दुश्चरं,
दानं ब्रह्म परोपकार करणं, कुर्वन् परिस्फुर्जति ।
सोऽयं यत्र सुखेन राजति स वै, तीर्थाधिपस्याग्रतो,
निर्मेयः परमार्थवृत्तिविदुरैः, संज्ञानिभिर्दर्पणः ।।8।।

अष्ट मंगल का पूजन

फिर निम्न मंत्रों से अष्ट मंगल की सर्वोपचारी पूजा करें।

1. **चन्दनं समर्पयामि स्वाहा** –चंदन से पूजा करें।
2. **पुष्पं समर्पयामि स्वाहा** –गुलाब के पुष्प चढ़ायें।
3. **वस्त्रं समर्पयामि स्वाहा** –श्वेत रेशमी वस्त्र चढ़ायें।
4. **फलं समर्पयामि स्वाहा** –बादाम चढ़ायें।
5. **धूपमाघ्रापयामि स्वाहा** –धूप दिखायें।
6. **दीपं दर्शयामि स्वाहा** –दीपक रखें।
7. **नैवेद्यं समर्पयामि स्वाहा** –पतासा चढ़ायें
8. **अक्षतं ताम्बूलं द्रव्यं फलं सर्वोपचारान् समर्पयामि स्वाहा** –नागवेल का पान, सुपारी, लोंग, इलायची आदि चढ़ायें।

तत्पश्चात निम्न श्लोक बोलते हुए विविध सामग्री चढ़ायें–

नामजिणा जिणनामा, ठवणजिणा पुण जिणिंद पडिमाओ ।
दव्वजिणा जिणजीवा, भावजिणा, समवसरणत्था ।।1।।

दर्पणभद्रासनवर्धमान, घटमत्स्ययुग्मैश्च ।
नन्द्यावर्तश्रीवत्स, विस्फुट स्वस्तिकैर्जिनार्चास्तु ।।2।।

एक श्रीफल, पाँच फल, पाँच नैवेद्य, एक घेवर, नागरवेल के पत्ते के ऊपर सुपारी, अक्षत, पतासा,लोंग, इलायची, बादाम, मिश्री का टुकड़ा, खारेक, पंच रत्न की पोटली, सवा रूपया, श्वेत रेशमी वस्त्र, मदनफल युक्त मौली, चाँदी-सोने का बरक, पानी का कलश, केसर की कटोरी, पुष्पमाला आदि।

• अष्टमंगल पट्ट की स्थापना निम्न विधि से करें–

सर्वप्रथम पट्ट के चारों कोनों में थोड़ा जल डालें। फिर अष्टमंगल पट्ट पर पूर्व में चढ़ाए गए फल, नैवेद्य आदि उठा लें। फिर उस पट्ट पर श्रीफल, घेवर एवं नागरवेल का पान आदि चढ़ायें। तत्पश्चात रेशमी वस्त्र से आच्छादित कर मदनफल युक्त मौली से पट्ट को बांधें। शुद्ध जल से छींटे दें। उसके ऊपर चांदी-सोने का बरख चढ़ायें। तत्पश्चात केसर के छींटें डालें तथा पुष्पमाला एवं पुष्प चढ़ायें। फिर परमात्मा के सम्मुख अथवा दश दिकपाल एवं नवग्रह पट्ट के मध्य में अष्टमंगल पट्ट को रखें।

तदनन्तर गुरु भगवन्त के द्वारा अष्टमंगल पट्ट पर निम्न मंत्र बोलते हुए वासचूर्ण डलवाएँ–

ॐ अर्हं स्वस्तिक-श्रीवत्स-कुम्भ-भद्रासन-नन्द्यावर्त्त-वर्धमान-मत्स्य युग्म-दर्पणान्यत्र जिन बिम्बाञ्जनशलाकाप्रतिष्ठा महोत्सवे... शान्ति स्नात्र बृहत्स्नात्र महोत्सवे सुस्थापितानि, सुप्रतिष्ठानि, अधिवासितानि लं लं लं ह्रीं नमः स्वाहा।

• भगवान की अष्ट प्रकारी पूजा करके आरती एवं मंगल दीपक करें।

• फिर निम्न श्लोक पढ़ते-सुनते हुए अविधि-आशातना के लिए मिथ्या दुष्कृत दें।

ॐ आज्ञाहीनं क्रियाहीनं, मन्त्रहीनं च यत् कृतम् ।
तत् सर्वं कृपया देवी, क्षमस्व परमेश्वर!
ॐ आह्वानं नैव जानामि, न जानामि विसर्जनम् ।
पूजाविधिं न जानामि, प्रसीद परमेश्वर!

फिर अन्त में अक्षत से बधाएँ।

।। इति पाटला पूजन विधि ।।

श्री नवग्रह पूजन उपकरण-यंत्र

ग्रहों के नाम	1 रवि	2 चन्द्र	3 मंगल	4 बुध	5 गुरु	6 शुक्र	7 शनि	8 राहु	9 केतु
आलेखन	रक्त चन्दन	चन्दन	रक्त चंदन	चन्दन केसर कस्तूरी	श्वेत चन्दन	चन्दन	कस्तूरी	कस्तूरी	यक्ष कर्दम
पूजन	केसर	चन्दन युक्त बरास	केसर	वासचूर्ण	वासचूर्ण	चन्दन	कुंकुम	कुंकुम	कुंकुम
पुष्प	कनेर	जुई अथवा मोगरा	जासुद	चंपा	चंपा	मोगरा	बोरसली अथवा दमणे	मचकुंद	पंचवर्णी
वस्त्र	लाल रेशमी वस्त्र	सफेद रेशमी वस्त्र	लाल रेशमी वस्त्र	नीला रेशमी वस्त्र	पीला रेशमी वस्त्र	श्वेत रेशमी वस्त्र	आसमानी वस्त्र	काला वस्त्र	काला रेशमी वस्त्र
फल	दाख	गन्ना	लाल सुपारी	नारंगी अथवा सीताफल	मौसंबी	बीजोरा	खारक	श्रीफल	अनार
नैवेद्य	चुरमे का लड्डू अथवा गेहूँ का लड्डू	मुरमुरे का लड्डू	गेहूँ का लड्डू अथवा कंसार	मूंग की दाल का लड्डू अथवा मोतीचूर का लड्डू	चणे की दाल का लड्डू अथवा मोतीचूर का लड्डू	मुरमुरे का लड्डू	उड़द की दाल का लड्डू अथवा काले तिल का लड्डू	उड़द की दाल का लड्डू अथवा काले तिल का लड्डू	उड़द की दाल का लड्डू
द्रव्यादि	अक्षत, पान, सुपारी, ताँबे का पैसा आदि सभी में एक समान रखें।								

दश दिक्पाल पूजनोपकरण-यंत्र

दिक्पालों के नाम 1	आलेख 2	पूजन 3	फूल 4	फल 5	वस्त्र 6	नैवेद्य 7	द्रव्यादि 8	माला 9	दिशा 10
माला	परवाला	स्फटिक	परवाला	केरबा अथवा नीलमणि	सुवर्ण अथवा केरबा	स्फटिक अथवा चाँदी	अकलबेर	अकलबेर	अकलबेर अथवा गोमेदक
दिशामुख	पूर्व सन्मुख	पश्चिम	पूर्व	उत्तर	उत्तर	दक्षिण	पश्चिम	दक्षिण	दक्षिण
मंडलाकृति	वृत्ताकार	चतुरस्राकार	त्रिकोण	बाण सदृश	पाटिकाकार	पंचकोणाकार	चतुराकार	शूर्पाकार (सूपड़ी)	ध्वजाकार
मंडल की दिशा	पट मध्य	आग्नेय कोण	दक्षिण	ईशान कोण	उत्तर	पूर्व	पश्चिम	नैर्ऋत्य कोण	वायव्य कोण
इन्द्र	श्वेत चंदन	केसर	चंपा	जबीर मौसंबी	पीला वस्त्र	मोतीचुर का लड्डू	अक्षत, पान सुपारी, तांबे का पैसा	केरबा	पूर्व दिशा
अग्नि	रक्त चंदन	केसर	जासुद	लाल सुपारी	लाल वस्त्र	चुरमे का लड्डू	अक्षत, पान सुपारी, तांबे का पैसा	रक्तवणी सूत माला	अग्नि कोण

दिक्पाल के नाम 1	आलेख 2	पूजन 3	पुष्प 4	फल 5	वस्त्र 6	नैवेद्य 7	द्रव्यादि 8	माला 9	दिशा 10
यम	कस्तुरी चुओ	कंकु	दमणो मरूओ	काली सुपारी	लाल वस्त्र	उड़द का लड्डू	अक्षत, पान सुपारी, तांबे का पैसा	अकलबेर	दक्षिण दिशा
नैऋत	कस्तुरी	चन्दन	मालती बोलसरी	अनार	नीला रेशमी वस्त्र	काले तिल का लड्डू	अक्षत, पान सुपारी, तांबे का पैसा	अकलबेर	नैऋत कोण
वरूण	कस्तुरी	चंदन	दमणो बोलसिरि	अनार	नीला रेशमी वस्त्र	काले तिल का लड्डू	अक्षत, पान सुपारी, तांबे का पैसा	केरबा	पश्चिम दिशा
वायु	चंदन केसर कस्तुरी	वास जुओ, कस्तुरी	चंपक, दमणो	नारंगी, केला	नीला	चावल आटे का लड्डू	अक्षत, पान सुपारी, तांबे का पैसा	केरबा	वायव्य कोण
कुबेर	चंदन बरास मिश्र	चंदन बरास	जाई अथवा मोगरा	बीजोरा	श्वेत	चावल आटे का लड्डू	अक्षत, पान सुपारी, ताँबे का पैसा	स्फटिक	उत्तर दिशा

दिक्पाल के नाम 1	आलेख 2	पूजन 3	पुष्प 4	फल 5	वस्त्र 6	नैवेद्य 7	द्रव्यादि 8	माला 9	दिशा 10
ईशान	चंदन	चंदन	कुमुद	गन्ना	श्वेत वस्त्र	चावल आटे का लड्डू	अक्षत, पान सुपारी, तांबे का पैसा	स्फटिक	ईशान कोण
ब्रह्म	कपूर युक्त चंदन	चंदन	मोगरा	बीजोरा	श्वेत वस्त्र	घेबर	अक्षत, पान सुपारी, ताँबे का पैसा	स्फटिक	ऊर्ध्व लोक
नाग	मिश्रित दूध चंदन	चंदन	उज्ज्वल मोगरा	उज्ज्वल बादाम	श्वेत वस्त्र	पेड़ा	अक्षत, पान सुपारी, तांबे का पैसा	स्फटिक	अधो लोक

नवग्रह पट्ट

4 ॐ नमो बुधाय	6 ॐ नमः शुक्राय	2 ॐ नमः सोमाय
5 ॐ नमो गुरवे	1 ॐ नमः सूर्याय	3 ॐ नमो भौमाय
9 ॐ नमः केतवे	7 ॐ नमः शनैश्चराय	8 ॐ नमो राहवे

दश दिक्पाल पट्ट

8 ॐ नमः ईशानाय	1 ॐ नमः इन्द्राय	2 ॐ नमो अग्नये
7 ॐ नमः कुबेराय 7	9 ॐ नमो ब्रह्मणे 10 ॐ नमो नागाय	3 ॐ नमो यमाय
6 ॐ नमो वायवे	5 ॐ नमो वरुणाय	4 ॐ नमो नैऋताय

अष्ट मंगल पट्ट

1. स्वस्तिक	2. श्रीवत्स	3. कुम्भ	4. भद्रासन
5. नंद्यावर्त्त	6. वर्धमान	7. दर्पण	8. मत्स्य युगम

क्षेत्रपाल स्थापना विधि

प्रतिष्ठा, महापूजन आदि शुभ अवसरों पर क्षेत्रपाल स्थापना इस प्रकार करें–

• पूजा में भाग लेने वाले प्रत्येक का तिलक करके पुरुष के दाहिने एवं महिला के बाएं हाथ में मींढ़ल बाँधें।

• फिर लकड़ी के चोरस बाजोठ के ऊपर लाल वस्त्र बाँधकर उसके ऊपर घृत युक्त अक्षत का स्वस्तिक करें। फिर उसके ऊपर चाँदी का बरख लगायें। बाजोठ के आगे के भाग में मींढल आ सके उस रीति से ग्रीवा सूत्र बाँधें।

• तत्पश्चात बाजोठ या सामान्य पट्ट पर सुपारी, पंचरत्न की पोटली और सवा रूपया रखें।

• फिर कुंभ के समीप में भूमि पर कुंकुम का साथिया और उसके ऊपर अक्षत का साथिया करके सुपारी रखें। फिर उसके ऊपर पंचरत्न सहित बाजोठ रखें, जिससे अखंड दीपक की ज्योत क्षेत्रपाल के दाहिनी तरफ रहें।

• तदनन्तर एक गीले श्रीफल के ऊपर घी लगाकर चाँदी का बरख लगायें। उसके ऊपर केसर से स्वस्तिक करें। फिर उसके ऊपर स्वर्ण बादला डालें।

• फिर उस श्रीफल को हाथ में लें और निम्न मंत्र बोलकर पुनः पट्टे के ऊपर स्थापित करें।

मंत्र– **ॐ क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपालाय नमः स्वाहा**

• उसके पश्चात गुरु भगवन्त उक्त मंत्र बोलकर वासचूर्ण डालें।

• तत्पश्चात निम्न मंत्र बोलते हुए श्रावक के द्वारा केसर, सिन्दूर, चमेली का तेल, लाल जासुद का पुष्प, अक्षत, धूप, दीप से क्षेत्रपाल का पूजन करवायें–

ॐ ह्रीँ क्षां क्षेत्रपालं गन्धाक्षतजलपुष्पतैल सिन्दुरैः दीपधूपोघैः पूजयामीति स्वाहा।

।। इति क्षेत्रपाल स्थापना विधि ।।

मंडप निर्माण विधि

निर्वाणकलिका के अनुसार मण्डप निर्माण की विधि इस प्रकार है–

जिस दिन प्रतिष्ठा कर्त्ता श्री संघ अथवा वैयक्तिक गृहस्थ के नाम से चन्द्रबल आता हो उस दिन शुभ मुहूर्त्त और शुभ लग्न में प्रतिष्ठा मण्डप

बनवाने का कार्य प्रारम्भ करें।

• सर्वप्रथम मंडप योग्य भूमि पर पत्थर, कंकर, कचरा आदि हो तो उसे दूर करें। उसके बाद मण्डप निर्माण का कार्य शुरू करवायें।

• मंडप के अन्तर्गत जहाँ वेदिका बनवानी हो वहाँ एक हाथ गड्ढा खोदकर उस धूल को बाहर डलवायें और उस जगह जंगल की शुद्ध पीली मिट्टी अथवा नदी की रेती भरें, फिर वेदिका बनवायें।

• जघन्यत: प्रतिष्ठा मण्डप के मध्य भाग से चारों ओर 100 हाथ पर्यन्त क्षेत्र शुद्धि करें, वहाँ सुगन्धित जल का छिड़काव करें, पुष्प बिखेरें और धूप प्रगटाएँ। इस प्रकार मण्डप भूमि का सत्कार करें।

• प्रतिष्ठा मंडप की रचना समचौरस और चतुर्मुख (चार द्वारों से युक्त) हो।

• मंडप की लम्बाई और चौड़ाई प्रतिष्ठाप्य प्रतिमा के माप के आधार पर निश्चित करें। मण्डप की ऊँचाई भी प्रतिष्ठाप्य प्रतिमा की ऊँचाई के अनुसार ही निर्धारित करें।

• प्रतिष्ठा योग्य नवीन बिम्बों की ऊँचाई यदि 1-2 या 3 हाथ हो तो उसके लिए प्रतिष्ठा मंडप अनुक्रम से 8-9-10 हाथ लंबा-चौड़ा होना चाहिए। यदि नूतन प्रतिमाएँ 4-5-6-7-8 अथवा 9 हाथ ऊँची हो तो उनके लिए प्रतिष्ठा मंडप अनुक्रम से 12-14-16-18-20-22 हाथ लम्बा-चौड़ा होना चाहिए।

द्वितीय मत के अनुसार नूतन प्रतिमाएँ 1-2-3-4-5-6-7-8-9 हाथ की हो तो प्रतिष्ठा मंडप क्रमश: 12-14-16-18-20-22-24-26-28 हाथ के अनुरूप होना चाहिए। प्रतिष्ठाप्य प्रतिमा 9 हाथ से ऊँची नहीं होती है इसलिए प्रतिष्ठा मंडप 28 हाथ से अधिक लम्बा-चौड़ा नहीं होना चाहिए।

मण्डप का उक्त परिमाण एक प्रतिमा की अपेक्षा कहा गया है। यदि प्रतिमाएँ अधिक संख्या में हों तो उसके लिए प्रतिष्ठाचार्य अथवा विधिकारक के मार्गदर्शन के अनुसार प्रतिष्ठा मंडप बनवायें।

• स्नान मंडप की लम्बाई-चौड़ाई प्रतिष्ठा मंडप से आधी होनी चाहिए।

मंडप के तोरण (प्रवेश द्वार) की ऊँचाई का परिमाण

• मण्डप में स्थापित होने वाली प्रतिमा 1-2 या 3 हाथ की हो और मण्डप उसके अनुरूप निर्मित हो तो उसके तोरण अनुक्रम से 5-6 या 7 हाथ ऊँचे होने चाहिए, यदि प्रतिमा 4-5-6 में से किसी भी माप की हो तो तोरण 7

हाथ 8 अंगुल ऊँचा होना चाहिए और यदि प्रतिमा 7-8-9 हाथ ऊँची हो तो तोरण 7 हाथ 12 अंगुल ऊँचा होना चाहिए।

तोरणद्वार की ऊँचाई को ही मंडप की ऊँचाई समझनी चाहिए।

• पूर्वादि दिशाओं के तोरण अनुक्रम से बड़, उम्बर, पारस पीपल और पीपल के होने चाहिए। शास्त्रों में इन तोरणों के नाम क्रमशः 1. शान्ति 2. भूति 3. बल और 4. आरोग्य है।

• तोरणों के ऊपर श्वेत अथवा विविध रंग की ध्वजाएँ लगवायें और ध्वजा के समीप गुलाबी, श्वेत, लाल, नीली, पीली आदि अनेक रंग की पताकाएँ (छोटी ध्वजाएँ) लगायें।

• पूर्वादि द्वारों के तोरणों पर संलग्न ध्वजाएँ अनुक्रम से 1. धर्म ध्वज 2. मान ध्वज 3. गज ध्वज और 4. सिंह ध्वज के नाम से प्रसिद्ध है।[5]

तुलना– जिनालय में स्थापित की जाने वाली प्रतिमाओं के लिए प्रतिष्ठा से पूर्व कुछ विशिष्ट विधियाँ सम्पन्न की जाती है उसे पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कहते हैं। इन कृत्यों को सम्पादित करने हेतु प्रतिष्ठा मंडप और सभा मंडप की रचना करते हैं। यह मंडप कहाँ, कैसा और किस परिमाण में होना चाहिए? इसकी विधि सर्वप्रथम निर्वाण कलिका में प्राप्त होती है।[6] उसके पश्चात इसी ग्रन्थ का अनुसरण करते हुए कल्याण कलिका में मंडप रचना की स्पष्ट विधि प्राप्त होती है।[7]

दिगम्बर परम्परा में मंडप के अन्तर्गत यज्ञ क्रिया भी होती है। तदनुसार मण्डप की आकृति वर्गाकार तथा यज्ञ के लिए आहुतियों की संख्या के अनुरूप कुण्डों का निर्माण किया जाता है। यदि विशाल कुण्ड बनाये जाते हैं तो मण्डप का परिमाण भी तद्रूप बड़ा होता है। तदनुसार मण्डप के तोरण द्वार होते हैं और मण्डप के मध्य में वेदिका बनाते हैं।[8] प्रतिष्ठासारोद्धार में यह विधि विस्तार से कही गई है।[9]

आचार्य देवनन्दि के अनुसार पंच कल्याणक प्रतिष्ठा मण्डप का आकार 150 हाथ लम्बा और 100 हाथ चौड़ा होना चाहिए।[10]

।। इति मंडप निर्माण विधि ।।

वेदिका निर्माण एवं पूजन विधि

कल्याणकलिका में वर्णित वेदिका निर्माण और पूजन विधि निम्न प्रकार है–

• प्रतिष्ठा मंडप तैयार होने के पश्चात महोत्सव के अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के लिए उसके मध्य भाग में पूर्व निर्धारित स्थान पर एक वेदिका की रचना करवायें।

यह वेदिका प्रसंग के अनुरूप ऊँची बनवायें, किन्तु 35 इंच से छोटी नहीं होनी चाहिए।

• कच्ची ईंटों से वेदिका तैयार हो जाने के बाद उस पर अष्ट मंगल आदि के शुभ चित्रों का आलेखन करवायें।

• तदनन्तर वेदिका के मध्य भाग में नौ अंगुल लम्बा, चौड़ा और गहरा खड्डा बनवायें। फिर चूना या खड़ी से वेदिका को पुतवायें।

• उसके पश्चात सौभाग्यवती नारियाँ अथवा कुमारिकाओं के द्वारा खड्डे में केसर से स्वस्तिक बनवायें। फिर मिट्टी के सकोरे में पंचरत्न, सुवर्ण या चाँदी की मुद्रा, सुपारी, मूंग-उड़द-चवला-चना-जौ-चावल और सरसव– ऐसे सात धान्य आदि वस्तुएँ डलवाकर उसे दूसरे सकोरे से ढंक दें।

• उसके बाद गुरु भगवन्त से वासचूर्ण डलवाएं। फिर उस सम्पुट के ऊपर रक्त वर्णीय शुद्ध रेशमी वस्त्र लपेटकर उसे अभिमन्त्रित ग्रीवा सूत्र से बांधें।

• फिर सौभाग्यवती नारियाँ अथवा कन्याओं के द्वारा तीन बार नवकार मन्त्र का स्मरण करवाकर उनके हाथ से सम्पुट को खड्डे में स्थापित करवायें।

• उसके पश्चात प्रतिष्ठाचार्य अभिमन्त्रित वासचूर्ण का प्रक्षेपण करें। फिर सम्पुट के ऊपर श्रीफल रखें।

• यदि वेदिका समचतुरस्र हो तो उसके चारों कोनों में बाँस की अथवा अन्य शुभ वृक्ष की लकड़ियाँ लगवाकर वेदी के ऊपर बाँस का मण्डप बनवायें। उसके बाद वेदी के चारों दिशाओं में एक-एक अथवा तीन-तीन द्वार बनवायें। यदि बांस का मण्डप चार द्वार का हो तो चारों दिशाओं में एक-एक और मध्य में एक–ऐसे कुल पाँच अथवा एक बड़ी घुमटी बनवायें। यदि तीन-तीन द्वार का मंडप हो तो मध्य द्वारों के भाग में 4, चार कोनों के भाग में 4 और मध्यभाग में 1 ऐसे नौ घुमटियाँ बनवायें।

• इस प्रकार मण्डप और वेदिका तैयार हो जाये, उसके अनन्तर मण्डप भूमि को छाणा और खड़ी (सफेद) मिट्टी के गार से लिपवायें तथा लेंपन करवाने से पूर्व उस गार को सुगंधित बनाने हेतु उसमें गुलाबजल और यक्षकर्दम का मिश्रण करें।

• तत्पश्चात खड़ी मिट्टी अथवा चूने के घोल में यक्षकर्दम, पंचरत्न का चूर्ण और सुवर्ण रज मिश्रित कर वेदिका पुतवायें। फिर वेदिका के चारों तरफ की भींत के ऊपर कुशल चित्रकारों द्वारा मांगलिक चित्रों का आलेखन करवायें।[11]

।। इति वेदिका निर्माण-पूजन विधि ।।

अठारह अभिषेक विधि

(अठारह अभिषेक की यह विधि प्रतिष्ठा कल्पों में सर्वप्रथम सुबोधा सामाचारी एवं विधिमार्गप्रपा में उल्लिखित है।) तदनन्तर यह विधि आचार दिनकर, कल्याण कलिका, सकलचन्द्र प्रतिष्ठा पद्धति आदि ग्रन्थों में प्राप्त होती है। सुबोधा सामाचारी एवं विधिमार्गप्रपा में इस विधि का स्वरूप प्राय: समान है तथा अन्य प्रतिष्ठा कल्पों की अपेक्षा उक्त दोनों ग्रन्थ प्राचीन भी है। वर्तमान में यह विधि इन्हीं ग्रन्थों के अनुसार प्रचलित भी है इसलिए अठारह अभिषेक की विधि तदनुसार कही जा रही है–

स्नात्रकारों की उपस्थिति एवं औषधि चूर्ण का पिष्टन– सर्वप्रथम पूर्व में बताये गये गुणों से युक्त चार पुरुषों को स्नात्रकार के रूप में उपस्थित करें। यदि नवीन बिम्बों का अभिषेक करना हो तो स्नात्रकार प्रतिष्ठा मंडप में, अन्यथा जिनालय के रंग मंडप में उपस्थित होवें।

तत्पश्चात पूर्व गुणों से युक्त चार अथवा आठ सुहागिन नारियों के द्वारा शुद्ध विधि से पंचरत्न, कषाय मृत्तिका, मांगल्य मूलिका, अष्टक वर्ग आदि सर्व औषधियों को अनुक्रम से पिसवायें।

फिर इन औषधि चूर्णों को पृथक्-पृथक् सकोरों में डालकर उनके ऊपर दूसरे सकोरे रखें। उसके बाद उन्हें मौली से लपेट कर एवं उन पर नाम लिखकर रख दें।

भूतबलि अभिमन्त्रण एवं प्रक्षेपण– तदनन्तर भूतबलि (बाकुले एवं पूए आदि सामग्री) को निम्न मंत्र से अभिमन्त्रित करें। फिर चतुर्विध संघ की उपस्थिति में उसे दसों दिशाओं में उछालें–

मन्त्र– **ॐ सर्वेपि सर्वपूजा व्यतिरिक्ता भूतप्रेतपिशाचगणगंधर्वयक्ष-राक्षसकिन्नरवेतालाः स्वस्थानस्था अमुं बलिं गृह्णन्तु, सावधानाः सुप्रसन्नाः विघ्न हरन्तु मंगलं कुर्वन्तु।**

द्रव्य पूजा एवं भाव पूजा– तत्पश्चात स्नात्र करने वाले पूर्व प्रतिष्ठित प्रतिमा की पूजा करें तथा लघु स्नात्र विधि से स्नात्र पूजा एवं आरती करें। उसके बाद प्रतिष्ठाचार्य चतुर्विध संघ के साथ चार स्तुतियों पूर्वक देववन्दन करें। फिर इसी क्रम में शान्तिनाथ, श्रुतदेवी, भवन देवता, क्षेत्र देवता, शान्ति देवता, शासन देवता, अम्बिका देवी, अच्छुप्ता देवी एवं समस्त वैयावृत्यकर देवताओं की आराधना हेतु प्रत्येक के लिए अन्नत्थसूत्र बोलकर एक नमस्कार मंत्र का कायोत्सर्ग करें और स्तुति बोलें। शान्तिनाथ के कायोत्सर्ग में एक लोगस्स सूत्र का चिंतन करें।

श्रुत देवता आदि के कायोत्सर्ग के पश्चात क्रमशः निम्न स्तुतियाँ बोलनी चाहिए।

शान्तिनाथ स्तुति

रोग शोकादिभिर्दोषै, रजिताय जितारये।
नमः श्री शान्तये तस्मै, विहितानत शान्तये।।

श्रुत देवी स्तुति

सुवर्ण शालिनी देयाद्, द्वादशांगी जिनोद्भवाः।
श्रुतदेवी सदा मह्य, मशेष श्रुत संपदम्।।

भवन देवता स्तुति

चतुर्वर्णाय संघाय, देवी भवन वासिनी।
निहत्य दुरितान्येषा, करोतु सुखमक्षतम्।।

क्षेत्र देवता स्तुति

यासां क्षेत्रगताः सन्ति, साधवः श्रावकादयः।
जिनाज्ञां साधयन्तस्ता, रक्षन्तु क्षेत्रदेवताः।।

शान्ति देवता स्तुति

श्री शान्ति जिन भक्ताय, भव्याय सुख संपदम्।
श्री शान्तिदेवता देयाद्, शान्तिमपनीय मे।।

शासन देवता स्तुति

या पाति शासनं जैनं, सद्यः प्रत्यूहनाशिनी।
साऽभिप्रेत समृद्ध्यर्थं, भूयाच्छासन देवता।।

अम्बिका देवी स्तुति

अंबा निहतडिंबा मे, सिद्ध-बुद्ध सुताश्रिता।
सिते सिंहे स्थिता गौरी, वितनोतु समीहितम्।।

अच्छुप्ता देवी स्तुति

खड्गखेटक कोदंड, बाणपाणिस्तडिद्द्युतिः।
तरंग गमनाऽच्युप्ता, कल्याणानि करोतु मे।।

शक्रादि वैयावृत्यकर देवता स्तुति

श्री शक्र प्रमुखा यक्षा, जिन शासनसंश्रिताः।
देवा देव्यस्तदन्येऽपि, संघं रक्षं त्वपायतः।।

तत्पश्चात सम्पूर्ण नवकार मंत्र बोलकर क्रमशः शक्रस्तव, अर्हणादिस्तोत्र एवं जयवीयराय सूत्र बोलें। फिर गुरु भगवन्त स्वयं के सम्पूर्ण देह की रक्षा (सकलीकरण) करें। उसके पश्चात स्नात्रकारों को अभिमन्त्रित करें।

सकलीकरण एवं शुचिविद्या आरोपण– कलीकरण करते समय मन्त्र संकेत के अनुसार अपने हाथों से उस-उस अंग का स्पर्श अवश्य करें।

आचार्य का सकलीकरण मन्त्र

ॐ नमो अरिहंताणं हृदयि, ॐ नमो सिद्धाणं शिरसि, ॐ नमो आयरियाणं शिखायाम्, ॐ नमो उवज्झायाणं कवचम्, ॐ नमो सव्वसाहूणं अस्त्रम्।

उसके बाद प्रतिष्ठाचार्य शुचि विद्या का आरोपण करें। उसका मन्त्र यह है–

ओं नमो अरिहंताणं, ओं नमो सिद्धाणं, ओं नमो आयरियाणं, ओं नमो उवज्झायाणं, ओं नमो सव्वसाहूणं, ओं नमो आगासगामीणं ओं हः क्षः नमः।

इस मन्त्र का तीन, पाँच या सात बार जाप करें।

स्नात्रकारों का सकलीकरण मन्त्र

फिर निम्न मंत्र से स्नात्रकारों का सकलीकरण करें।

ॐ नमो अरिहंताणं शिरसि ॐ नमो सिद्धाणं मुखे ॐ नमो आयरियाणं सर्वांगे ॐ नमो उवज्झायाणं आयुधम् ॐ नमो सव्वसाहूणं वज्रमयं पंजरम् ।

बलि मन्त्रण एवं निक्षेपण– तदनन्तर गुरु निम्न मंत्र से बलि को इक्कीस बार अभिमन्त्रित करें। तत्पश्चात स्नात्र पूजा करने वाले श्रावक अभिमन्त्रित बलि को जलदान एवं धूपदान पूर्वक चारों दिशाओं में प्रक्षेपित करें।

बलि मन्त्र– ॐ ह्रीँ क्ष्वीं सर्वोपद्रवं बिम्बस्य रक्ष-रक्ष स्वाहा।

प्रतिमा पर पुष्पांजलि, जलोच्छाटन, अक्षत अर्पण, बिम्ब रक्षा एवं सप्त धान्य वृष्टि

फिर स्नात्रकार 'नमोऽर्हत्.' मन्त्र एवं निम्न श्लोक पढ़ते हुए जिन बिम्बों पर पुष्पांजलि चढ़ायें।

कुसुमांजलि अर्पण छन्द

अभिनवसुगन्धि विकसितपुष्पौघ भृता सुधूपगन्धाढ्या ।
बिम्बोपरि निपतन्ती सुखानि पुष्पाञ्जलिः कुरुताम् ।।

उसके पश्चात गुरु नवीन बिम्बों के आगे दाहिने हाथ की मध्य दो अंगुलियों को खड़ी करके रौद्र दृष्टि से तर्जनी मुद्रा दिखायें।

तदनन्तर बाएँ हाथ में जल लेकर रौद्र दृष्टि से बिम्बों के ऊपर छींटें।

फिर प्रतिष्ठाकारक गुरु स्नात्रकारों से बिम्बों का तिलक एवं पुष्पों से पूजा करवायें। फिर जिनबिम्ब को मुद्गर मुद्रा दिखायें।

उसके बाद बिम्बों के समक्ष अखंड चावलों से भरा हुआ थाल रखें तथा वज्र मुद्रा और गरुड़ मुद्रा से बिम्ब के नेत्रों की रक्षा करें।

फिर गुरु भगवन्त निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए स्वयं के हाथों के स्पर्श से बिम्ब के सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करें।

बलि मंत्र– ॐ ह्रीँ क्ष्वीं सर्वोपद्रवं बिम्बस्य रक्ष-रक्ष स्वाहा।

फिर दसों दिशाओं में भी तीन-तीन बार यह मन्त्र पढ़कर एवं पुष्प-अक्षत उछालकर दिग्बन्धन करें।

तदनन्तर श्रावकवर्ग या स्नात्र करने वाले पुरुष जिन प्रतिमा के ऊपर 1. सण 2. लाज 3. कुलथी 4. यव 5. कंगु 6. माष (उड़द) और 7. सरसों– ऐसे सात धान्यों का प्रक्षेपण करें।

अभिषेक में उपयोगी कलश, जल, गन्ध, पुष्प, धूपादि को अभिमन्त्रित करने की विधि

तत्पश्चात प्रतिष्ठाचार्य अभिषेक में उपयोगी कलश आदि सामग्री को अभिमन्त्रित करें।

कलश अभिमन्त्रण– सर्वप्रथम जिन मुद्रा दिखाकर कलशों को मन्त्रित करें।

जल अभिमन्त्रण मन्त्र– फिर निम्न मन्त्र से जल को अधिवासित करें।

''ॐ नमो यः सर्वशरीरावस्थिते महाभूते आगच्छ-आगच्छ जलं गृहाणं-गृहाणं स्वाहा।''

गन्ध अभिमन्त्रण मन्त्र– उसके बाद सर्व औषधियाँ एवं चंदन आदि को निम्न मन्त्र से अभिमंत्रित करें–

''ॐ नमो यः सर्वशरीरावस्थिते महाभूते आगच्छ-आगच्छ सर्वोषधि चंदन समालंभनं गृहाण-गृहाण स्वाहा।''

पुष्प अभिमन्त्रण मन्त्र– तत्पश्चात पुष्प को निम्न मंत्र से अभिमन्त्रित करें–

''ॐ नमो यः सर्वशरीरावस्थिते महाभूते आगच्छ-आगच्छ सर्वतो मेदिनी पुष्पं गृहण-गृहण स्वाहा।''

धूप अभिमन्त्रण मन्त्र– फिर निम्न मंत्र से धूप को अधिवासित करें–

''ॐ नमो यः बलिं दह-दह महाभूते तेजोधिपते धुधु धूपं गृहण-गृहण स्वाहा।''

तत्पश्चात इन्हीं मन्त्रों के द्वारा जिन बिम्बों की क्रमशः जल पूजा, सर्व औषधि पूजा, चंदन पूजा, पुष्प पूजा एवं धूप से पूजा करें।

पंचरत्न रक्षा पोटली बंधन– फिर निम्न छंद बोलकर जिन बिम्ब के दाहिने हाथ की अंगुली में पंचरत्न की पोटली बांधें।

अठारह अभिषेक की मूल विधि

पूर्व वर्णित औषधि चूर्ण पिसवाना, भूतबलि का प्रक्षेपण करना, जिन बिम्बों की पूजा करना, आचार्य एवं स्नात्रकारों की देह रक्षा करना, सप्त धान्य की वृष्टि करना, अभिषेक में उपयोगी पुष्पादि को अधिवासित करना, बिम्ब के हाथ में पंचरत्न बांधना आदि कृत्य सम्पन्न करने के पश्चात अठारह अभिषेक की क्रिया प्रारम्भ करनी चाहिए।

अठारह अभिषेक की सम्पूर्ण विधि में निम्न बिन्दुओं पर अवश्य ध्यान दें–

1. स्नात्र करने वाले चार अथवा अधिक पुरुष प्रत्येक अभिषेक में तत्सम्बन्धी औषधि चूर्ण से मिश्रित जल को कलशों में भरकर उन्हें हाथ में लेकर खड़े रहें।
2. प्रत्येक अभिषेक के अन्त में वाद्य यन्त्रों की मधुर ध्वनियाँ, गीतनाद एवं नृत्य आदि होते रहें।
3. प्रत्येक स्नात्र में श्लोक बोलने के पश्चात अभिषेक करें। उसके बाद क्रमशः जिनबिम्बों को चंदन का तिलक लगायें, फिर पुष्प चढ़ायें और फिर धूप का उत्क्षेपण करें।
4. प्रत्येक स्नात्र में जिनबिम्बों का अभिषेक करते समय नमस्कार मन्त्र का स्मरण करें।
5. वर्तमान परम्परा के अनुसार श्लोक कहने के पश्चात मंत्र बोलें तथा उसके पश्चात 27 डंकों युक्त थाली बजायें।
6. प्रत्येक श्लोक से पूर्व 'नमोऽर्हत् सूत्र' बोलें।
7. प्रत्येक स्नात्र के लिए एक प्रमाणोपेत बाल्टी आदि में अभिमन्त्रित जल भर लिया जाए। फिर जिस औषधि चूर्ण का अभिषेक करना हो उसे पानी में सम्मिश्रित कर कलशों में भरें।
8. प्राचीन प्रतिष्ठाकल्पों में अभिषेक हेतु चार स्नात्रकार एवं चार कलशों का उल्लेख है। स्नात्रकार एवं कलश की संख्या एक जिनबिम्ब की अपेक्षा कही गई मालूम होती है अतः जितनी संख्या में प्रतिमाएँ हों तदनुसार स्नात्रकारों और कलशों की संख्या माननी चाहिए।
9. अठारह अभिषेक प्रारम्भ करने के ठीक पूर्व एक नवकार मन्त्र का स्मरण करते हुए उपस्थित संघ के साथ 'आत्मरक्षा स्तोत्र' का पाठ करें।

1. प्रथम हिरण्योदक स्नात्र– पहला अभिषेक करने हेतु स्वर्ण के बरख से मिश्रित जल को चार कलशों में भरें। फिर 'नमोऽर्हत.' पूर्वक निम्न श्लोक बोलें–

सुपवित्र तीर्थ नीरेण, संयुतं गन्धपुष्प संमिश्रम्।
पततु जलं बिम्बोपरि, सहिरण्यं मंत्र परिपूतम्।।

फिर निम्न मंत्र कहें–

ॐ ह्रां ह्रीं परम-अर्हते गंध-पुष्पाक्षत-धूप संपूर्णैः सुवर्णेन स्नापयामीति स्वाहा।

फिर 27 डंका बजाकर बिम्ब का अभिषेक करें। उसके बाद पूर्व कथित विधि-नियम के अनुसार जिन बिम्बों पर चंदन का तिलक लगायें, पुष्प चढ़ायें एवं धूप प्रज्वलित करें।

2. द्वितीय-पंचरत्न जल स्नात्र– दूसरा अभिषेक करने के लिए मोती, सोना, चाँदी, प्रवाल और तांबा– इन पंच रत्नों के चूर्ण से मिश्रित जल को चार कलशों में भरकर, प्रतिमा के समीप खड़े रहें। फिर 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक बोलें–

नानारत्नौघ युतं, सुगंधि पुष्पाधिवासितं नीरम्।
पतताद् विचित्र वर्णं, मंत्राढ्यं स्थापना बिम्बे।।

फिर निम्न मंत्र कहें–

ॐ ह्रां ह्रीं परम-अर्हते मुक्ता-सुवर्ण-रौप्य-प्रवाल-त्र्यम्बकादि पंचरत्नैः स्नापयामीति स्वाहा।

फिर 27 डंका बजाकर बिम्ब का अभिषेक करें। उसके पश्चात पूर्ववत तिलक, पुष्प और धूप पूजा करें।

3. तृतीय-कषायजल स्नात्र– तीसरा अभिषेक करने हेतु पीपल, वटवृक्ष, सिरस, गुलर, चंपक, अशोक, आम्र, उदुम्बर जाति के वृक्षों की छाल आदि कषाय चूर्ण को जल में मिश्रित कर चार कलश भरें। फिर स्नात्रकार जिन प्रतिमा के निकट खड़े हो जायें और विधिकारक निम्न श्लोक एवं मंत्र पढ़कर 27 डंका बजायें।

प्लक्षाश्वत्थोदुम्बर शिरीषवल्कादिकल्क संसृष्टम्।
बिम्बे कषाय नीरं, पततादधिवासितं जैने।।

मंत्र– ॐ ह्रां ह्रीं परम-अर्हते पिप्पल्यादि-महाछल्लैः स्नापयामीति स्वाहा।

फिर स्नात्रकार बिम्ब का अभिषेक करें तथा पूर्ववत तिलक आदि से पूजा करें।

4. चतुर्थ-मंगलमृत्तिका स्नात्र– चौथा अभिषेक करने के लिए हाथी के दाँत से उद्धृत की गई मिट्टी, वृषभ के सींग से खोदी गई मिट्टी, पर्वत की मिट्टी, दीमक, पद्मसरोवर, नदियों के संगम स्थल, तीर्थ स्थल एवं नदी के दोनों

तटों की मिट्टी– इन आठ प्रकार की मिट्टियों को जल में सम्मिश्रित कर उसके चार कलश भरें।

फिर स्नात्रकार हाथों में कलश लेकर बिम्ब के निकट खड़े रहें और विधिकारक निम्न श्लोक एवं मन्त्र बोलकर 27 डंका बजायें–

पर्वतसरोनदी संगमादि, मृद्भिश्च मन्त्रपूताभिः ।
उद्वर्त्य जैन बिम्बं, स्नपयाम्यधिवासना समये ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीं परम-अर्हते नदी-नग तीर्थादि-मृच्चूर्णैः स्नापयामीति स्वाहा।

फिर स्नात्रकार बिम्बों का अभिषेक करें तथा पूर्ववत पुष्पादि अर्पण करें।

5 पंचम-पंचामृत स्नात्र– पांचवाँ अभिषेक करने हेतु दूध, दही, घृत, गोमूत्र और गोबर तथा एक प्रकार का पवित्र घास (दर्भ)– इन छह वस्तुओं को जल में संयुक्त कर उनसे चार कलश भरें।

फिर स्नात्रकार उन कलशों को हाथ में लेकर प्रतिमा के समीप खड़े रहें तथा गुरु महाराज अथवा विधिकारक निम्न श्लोक और मंत्र पढ़कर 27 डंका बजवायें।

दधिदुग्धघृतछगणप्रस्त्रवणैः, पंचभिर्गवांग भवैः ।
दर्भोदिक संमिश्रैः, स्नपयामि जिनेश्वर प्रतिमाम् ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीं परम अर्हते पंचामृतेन स्नापयामीति स्वाहा

तदनन्तर पंचामृत पूरित कलशों से जिन बिम्ब का अभिषेक करें। फिर पूर्ववत तिलक आदि से पूजा करें।

6. षष्ठम-सदौषधि स्नात्र– छठवाँ स्नात्र करने हेतु सहदेवी, बला, शतमूली, शतावरी, कुमारी, गुहा, सिंही और व्याघ्री– इन अष्टविध सदौषधियों के चूर्ण से मिश्रित जल को चार कलशों में भरें।

फिर स्नात्रकार कलशों को लेकर प्रतिमा के निकट उपस्थित रहें तथा गुरु महाराज या विधिकारक निम्न श्लोक एवं मंत्र पढ़कर 27 डंका बजवायें।

सहदेव्यादिसदौषधि, वर्गेणोद्वर्तितस्य बिम्बस्य ।
संमिश्रं बिम्बोपरि, पतज्जलं हरतु दुरितानि ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीं परम-अर्हते सहदेव्यादि-सदोषधिभिः स्नापयामीति स्वाहा।

तदनन्तर सदौषधि चूर्ण मिश्रित जल से प्रभु का अभिषेक करें। फिर पूर्ववत

जिनबिम्बों की तिलक आदि से पूजा करें।

7. सप्तम-मूलिकावर्ग स्नात्र– सातवाँ स्नात्र करने हेतु मयूरशिखा विरहक, अंकोल, लक्ष्मणा, शंखपुष्पी, शरपुंखा, विष्णुक्रान्ता, चक्रांका, सर्प्पाक्षी, महानीली आदि मूलिका नाम की औषधियों के चूर्ण को पानी में मिलाकर उन्हें चार कलशों में भरें।

फिर स्नात्रकार कलश लेकर प्रतिमा के निकट खड़े रहें तथा गुरु भगवन्त या विधिकारक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें और 27 डंका बजवायें।

सुपवित्रमूलिकावर्ग्ग, मर्दिते तदुदकस्य शुभधारा।
बिम्बेऽधिवास समये, यच्छतु सौख्यानि निपतन्ती।।

मन्त्र– ॐ ह्रॉं ह्रीं परम-अर्हते मयूरशिखादि मूलिकावर्गोषधिभिः स्नापयामीति स्वाहा।

फिर स्नात्रकार जिन बिम्बों का अभिषेक करें तथा पूर्ववत तिलक, पुष्प एवं धूप पूजा करें।

8. अष्टम-प्रथम अष्टकवर्ग स्नात्र– आठवाँ स्नात्र करते समय कुष्ट, प्रियंगु, वचा, रोध्र, उशीर, देवदारू, दूर्वा, मधुयष्टिका और ऋद्धि-वृद्धि– इन आठ औषधियों के चूर्ण को पानी में संयुक्त कर उन्हें कलशों में भरें।

फिर स्नात्रकार कलशों को लेकर जिनबिम्ब के निकट खड़े रहें तथा गुरु भगवन्त या विधिकारक निम्न श्लोक एवं मन्त्र का उच्चारण करें, फिर 27 डंका बजवायें।

नानाकुष्टाद्यौषधि संमिश्रे, तद्युतं पतन्नीरम्।
बिम्बे कृतसन्मन्त्रं, कर्मोघं हन्तु भव्यानाम्।।

मन्त्र– ॐ ह्रॉं ह्रीं परम-अर्हते कुष्टापष्टकवर्गेण स्नापयामीति स्वाहा

तदनन्तर स्नात्रकार सर्व बिम्बों का अभिषेक करें। फिर पूर्ववत तिलक, पुष्प एवं धूप पूजा करें।

9. नवम–द्वितीय अष्टकवर्ग स्नात्र– नौवाँ अभिषेक करते समय मेद, महामेद, कंकोल, क्षीर कंकोल, जीवक, ऋषभक, नखी, महानखी– इन अष्टविध औषधियों के चूर्ण को पानी में मिलाकर उन्हें चार कलशों में भरें।

उसके पश्चात स्नात्र करने वाले पुरुष हाथों में कलश लेकर जिनबिम्ब के समीप खड़े रहें तथा गुरु भगवन्त या विधिकारक 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र का उच्चारण कर 27 डंका बजवायें।

मेदाद्यौषधि भेदोऽपरोऽष्टवर्ग्गः सुमन्त्र परिपूतः ।
निपतन् बिम्बस्योपरि, सिद्धिं विदधातु भव्यजने ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीँ परम-अर्हते मेदाद्यौषधि अष्टक वर्गेण स्नापयामीति स्वाहा।

तत्पश्चात स्नात्रकार सभी बिम्बों का अभिषेक करें तथा पूर्ववत तिलक, पुष्प एवं धूप पूजा करें।

जिन आह्वान आदि की अवान्तर विधि

जिन आह्वान एवं मुद्रा दर्शन– उक्त नौ अभिषेक होने के पश्चात प्रतिष्ठाचार्य खड़े होकर बिम्ब के सामने गरुड़, मुक्ताशुक्ति और परमेष्ठी– इन तीन मुद्राओं में से कोई एक मुद्रा दिखाकर प्रतिष्ठाप्य तीर्थंकर परमात्मा का आह्वान करें। जिन आह्वान मन्त्र यह है–

ओं नमोऽर्हत्परमेश्वराय चतुर्मुख परमेष्ठिने त्रैलोक्यगताय अष्टदिक्विभागकुमारी परिपूजिताय देवाधिदेवाय दिव्यशरीराय, त्रैलोक्यमहिताय आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

दशदिक्पाल आह्वान– जिन आह्वान करने के पश्चात प्रतिष्ठाचार्य अथवा उपस्थित गुरु भगवन्त प्रत्येक दिक्पाल का आह्वान उस-उस दिशा की ओर मुख करके निम्न मंत्रों से करें।

प्रत्येक मंत्र के अन्त में 'स्वाहा' शब्द कहने के पश्चात गुरु वासचूर्ण डालें और श्रावक पुष्पांजलि अर्पित करें।

यदि अंजनशलाका विधि हो तो 'प्रतिष्ठाविधौ', बिम्ब स्थापना का प्रसंग हो तो 'इह जिनेन्द्रस्थापने' तथा जिन प्रतिमाओं की शुद्धि का अवसर हो तो 'जिनबिंबगृहे' वाक्य पद का उच्चारण करें। दिक्पालों के आह्वान मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं–

पूर्व दिशा– **ॐ इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय इह जिनेन्द्रस्थापने आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।**

आग्नेय कोण– **ॐ अग्नये सायुधाय सवाहनाय सवाहनाय सपरिजनाय इह जिनेन्द्रस्थापने आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।**

दक्षिण दिशा– **ॐ यमाय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय इह जिनेन्द्रस्थापने आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।**

नैऋत्य कोण– **ॐ नैऋतये सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय इह जिनेन्द्रस्थापने आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।**

पश्चिम दिशा– **ॐ वरुणाय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय इह जिनेन्द्रस्थापने आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।**

वायव्य कोण– **ॐ वायवे सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय इह जिनेन्द्रस्थापने आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।**

उत्तर दिशा– **ॐ कुबेराय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय इह जिनेन्द्रस्थापने आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।**

ईशान कोण– **ॐ ईशानाय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय इह जिनेन्द्रस्थापने आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।**

अधो दिशा– **ॐ नागाय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय इह जिनेन्द्रस्थापने आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।**

उर्ध्व दिशा– **ॐ ब्रह्मणे सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय इह जिनेन्द्रस्थापने आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।**

10. दशम-सर्वौषधि स्नात्र– दसवाँ अभिषेक करने हेतु हरिद्रा, वचा, सौंफ, वालक, मोथ,ग्रन्थिपर्णक, प्रियंगु, मोरमांसी, कर्चूरक, कुष्ट, इलायची, तज, तमालपत्र, नागकेसर, लवंग, कंकोल, जातीफल, जातिपत्रिका, नख, चन्दन, सिल्हक आदि– इन सर्वोषधि चूर्ण से मिश्रित जल को कलशों में भरें।

तत्पश्चात स्नात्रकार इन कलशों को हाथों में लेकर प्रतिमा के निकट खड़े रहें तथा गुरु भगवन्त या विधिकारक 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर 27 डंका बजवायें।

सकलौषधिसंयुक्त्या, सुगन्धया घर्षितं सुगतिहेतोः ।
स्नपयामि जैन बिम्बं, मंत्रिततन्नीर निवहेन ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रौं परम-अर्हते प्रियंग्वादि-सर्वौषधिभिः स्नापयामीति स्वाहा।

तदनन्तर सर्वौषधि चूर्ण के मिश्रित जल से जिन बिम्बों का अभिषेक करें। फिर तिलक, पुष्प एवं धूप पूजा करें।

मंत्रन्यास आदि अवान्तर विधि

दसवाँ अभिषेक होने के पश्चात प्रतिष्ठाचार्य दृष्टि दोष के निवारणार्थ प्रतिष्ठाप्य जिनबिम्ब के ऊपर स्वयं का दाहिना हाथ रखकर 'सिद्धा जिनादि'

मन्त्र का न्यास करें।

न्यास मन्त्र– ॐ इहागच्छन्तु जिनाः सिद्धा भगवन्तः स्वसमयेनेहानुग्रहाय भव्यानां भः स्वाहा अथवा हुँ क्षां ह्रीँ क्ष्वीं ओँ भः स्वाहा।

तदनन्तर स्नात्रकार श्रावक दृष्टि दोष के निवारणार्थ लोह से अस्पृष्ट सफेद सरसों की पोटली को निम्न मंत्र से 7 बार अभिमन्त्रित कर जिनबिम्बों के दाएँ हाथ में बाँधें।

रक्षापोटली मन्त्र– ॐ झ्रौं क्ष्रीं झ्वीं स्वाहा।

सभी बिम्बों के हाथ में पोटली बाँधकर उनके मस्तक पर चंदन का तिलक करें।

तत्पश्चात प्रतिष्ठाचार्य अथवा उपस्थित गुरु भगवन्त परमात्मा के सम्मुख हाथ जोड़कर इस प्रकार विज्ञप्ति करें–

स्वागता जिनाः सिद्धाः प्रसाददाः सन्तु, प्रसाद धियां ।
कुर्वन्तु, अनुग्रहपरा भवन्तु, भव्यानां स्वागतमनुस्वागतम् ।।

तत्पश्चात स्नात्रकार श्रावक सरसों, दहि, घृत, अक्षत, डाभ– इन पाँच द्रव्यात्मक अर्घ को स्वर्ण पात्र में रखकर एवं उसे हाथ में लेकर खड़े रहें। उस समय विधिकारक निम्न मंत्र कहकर अर्घ पात्र को जिन बिम्बों के आगे रखवायें।

अर्घ निवेदन मन्त्र– ॐ भः अर्घं प्रतीच्छन्तु पूजां गृहणन्तु जिनेन्द्राः स्वाहा।

उसके बाद पुनः श्रावक सरसव आदि पाँच द्रव्यों के अर्घ का दूसरा पात्र हाथ में लें और प्रतिष्ठाचार्य वासचूर्ण ग्रहण करें। फिर निम्न मन्त्रों के द्वारा दिक्पालों का आह्वान कर उन्हें अर्घ प्रदान करें–

दिक्पाल आह्वान और अर्घनिवेदन मन्त्र– पूर्व दिशा– **ॐ इन्द्राय आगच्छ-आगच्छ, अर्घं प्रतीच्छ-प्रतीच्छ, पूजां गृहाण-गृहाण स्वाहा।**

इसी तरह शेष नौ दिशा-विदिशाओं के स्वामी अग्नि, यम, नैऋत्य, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, नाग और ब्रह्मा– इन देवों का नाम उच्चरित करते हुए पूर्व मन्त्रवत सभी को क्रम से आमन्त्रित करें और उस-उस दिशा की ओर अभिमुख होकर अर्घ प्रदान करें।

11. एकादश-कुसुम स्नात्र– ग्यारहवाँ अभिषेक करने हेतु सेवंती, चमेली, मालती, मोगरा, गुलाब आदि सुगन्धित पुष्पों से युक्त जल को कलशों में भरें।

तदनन्तर स्नात्रकार जिनबिम्ब के निकट खड़े रहें और गुरु भगवन्त या विधिकारक 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर 27 डंका बजवायें।

अधिवासितं सुमंत्रैः, सुमनः किंजल्कराजितं तोयम् ।
तीर्थजलादि सुपृक्तं, कलशोन्मुक्तं पततु बिम्बे ।।

मन्त्र– ॐ ह्राँ ह्रीँ परम-अर्हते सुगंध-पुष्पोघैः स्नापयामीति स्वाहा।

फिर स्नात्रकार पुष्प युक्त जल से जिनबिम्बों का अभिषेक करें तथा पूर्ववत तिलक, पुष्प एवं धूप से पूजा करें।

12. द्वादश-गन्ध स्नात्र– बारहवाँ स्नात्र करते समय केसर, कपूर, कस्तूरी, अगर, चंदन, सिंहलक, कुष्ट, सुरमांसि आदि सुगन्धित वस्तुओं के चूर्ण को पानी में मिलाकर उन्हें पृथक्-पृथक् कलशों में भरें।

तदनन्तर स्नात्रकार उन कलशों को लेकर प्रतिमा के निकट खड़े रहें तथा गुरु भगवन्त या विधिकारक 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर 27 डंका बजवायें।

गन्धांग् स्नानिकया, सन्मृष्टं तदुदकस्य धाराभिः ।
स्नपयामि जैन बिम्बं, कर्मौघोच्छित्तये शिवदम् ।।

मन्त्र– ॐ ह्राँ ह्रीँ परम-अर्हते गन्धेन स्नापयामीति स्वाहा।

फिर सुगन्धित जल से जिन बिम्बों का अभिषेक करें तथा पूर्ववत तिलक, पुष्प एवं धूप पूजा करें।

13. त्रयोदश-वास स्नात्र– तेरहवाँ स्नात्र करते समय चंदन, केसर और कपूर के घोल को जल में मिश्रित कर उसे कलशों में भरें।

फिर स्नात्र करने वाले उन कलशों को लेकर बिम्ब के समीप खड़े रहें तथा गुरु भगवन्त या विधिकारक 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर 27 डंका बजवायें।

हृद्यैराह्लादकरैः स्पृहणीयै, मंत्र संस्कृतै जैनम् ।
स्नपयामि सुगतिहेतो, बिम्बं अधिवासितं वासैः ।।

मन्त्र– ॐ ह्राँ ह्रीँ परम- अर्हते सुगन्ध वास चूर्णैः स्नापयामीति स्वाहा।

फिर वास जल से प्रतिमाओं का अभिषेक करें। पुनः पूर्ववत तिलक, पुष्प एवं धूप से पूजा करें।

14. चतुर्दश– चन्दनरस स्नात्र– चौदहवें अभिषेक में चंदन रस और दूध को संयुक्त कर कलशों में भरें।

फिर गुरु भगवन्त या विधिकारक निम्न मंत्र बोलकर वासचूर्ण डालें–

ॐ रोहिणीपतये चन्द्राय ॐ ह्रीँ द्राँ द्रीँ चन्द्राय नमः स्वाहा।

तत्पश्चात निम्न मंत्र कहकर चन्द्र के दर्शन करवाएँ–

ॐ अर्हं चन्द्रोऽसि, निशाकरोऽसि, नक्षत्रपतिरसि, सुधाकरोऽसि, चन्द्रमा असि, ग्रहपतिरसि, नक्षत्रपतिरसि कौमुदीपतिरसि, निशापतिरसि, मदनमित्रमसि, जगज्जीवनमसि, जैवातृकोऽसि, क्षीरसागरोद्भवोऽसि, श्वेतवाहनोऽसि, राजासि राजराजोऽसि, औषधीगर्भोऽसि, वन्द्योऽसि, पूज्योऽसि, नमस्ते भगवन्! प्रसीद अस्य कुलस्य ऋद्धिं कुरु कुरु, वृद्धिं कुरु कुरु, तुष्टिं कुरु कुरु, जयं कुरु कुरु, विजयंकुरु कुरु, भद्रं कुरु कुरु, सन्निहितो भव भव श्रीशशाङ्काय नमः।

फिर 27 डंका बजवाएं और मंगल गीत गाएं।

तत्पश्चात स्नात्रकार जिनबिम्बों के निकट खड़े रहें तथा गुरु भगवन्त या विधिकारक 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र का उच्चारण कर 27 डंका बजवायें।

शीतल सरस सुगंधी, मनोमतश्चन्दनद्रुम समुत्थः ।
चंदन कल्कःसजलो, मन्त्रयुतः पततु जिन बिम्बे ।।

मन्त्र– ॐ ह्रॉं ह्रीँ परम-अर्हते क्षीर-चंदनाभ्यां स्नापयामीति स्वाहा

फिर चन्दन-दुग्ध से प्रभु का अभिषेक करें तथा पूर्ववत तिलक, पुष्प एवं धूप से जिनबिम्बों का पूजन करें।

15. पंचदश–केसर जल स्नात्र– पन्द्रहवाँ अभिषेक करने हेतु केसर एवं शक्कर को जल में मिश्रित कर उसे आवश्यकतानुसार पृथक्-पृथक् कलशों में भरें।

फिर स्नात्रकार कलश लेकर प्रतिमा के निकट खड़े रहें तथा गुरु भगवन्त या विधिकारक 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर 27 डंका बजवायें।

काश्मीरज सुविलिप्तं, बिम्बं तन्नीर धारयाऽभिनवम् ।
सन्मन्त्रयुक्तया शुचि, जैनं स्नपयामि सिद्ध्यर्थम् ।।

मन्त्र– ॐ ह्राँ ह्रीँ परम-अर्हते काश्मीरज-शर्कराभ्यां स्नापयामीति स्वाहा।

तदनन्तर केसर-शक्कर युक्त जल से जिन बिम्बों का अभिषेक करें। फिर पूर्ववत तिलक, पुष्प एवं धूप से पूजा करें।

दर्पण आदि दर्शन की अवान्तर विधि

पन्द्रह अभिषेक होने के पश्चात जिन बिम्बों को दर्पण एवं शंख के दर्शन करवायें।

वर्तमान परम्परा में दर्पण के स्थान पर सूर्य और चन्द्र के दर्शन करवाते हैं। उसकी विधि निम्न हैं–

चन्द्र दर्शन– चन्द्रमा की मूर्ति बनवाकर प्रतिमा के सामने रखें। यदि वैसा न हो तो चौदह स्वप्नों में से चन्द्र का स्वप्न प्रभु के आगे रखें। यदि वह भी उपलब्ध न हो तो विकल्पतः दर्पण रखें। फिर निम्न मंत्र बोलें–

ॐ ह्रीँ रत्नाङ्कसूर्याय सहस्रकिरणाय नमो नमः स्वाहा।

तदनन्तर निम्न मंत्र कहकर सूर्य के दर्शन करवाएं–

ॐ अर्हं सूर्योऽसि, दिनकरोऽसि, सहस्रकिरणोऽसि, विभावसुरसि, तमोऽपहोऽसि प्रियङ्करोऽसि, शिवङ्करोऽसि, जगच्चक्षुरसि, सुरवेष्टितोऽसि, मुनिवेष्टितोऽसि, विततविमानोऽसि, तेजोमयोऽसि, अरुणसारथिरसि, मार्तण्डोऽसि, द्वादशात्मासि, चक्रबान्धवोऽसि, नमस्ते भगवन्! प्रसीद अस्य कुलस्य ऋद्धिं कुरु कुरु, वृद्धिं कुरु कुरु, पुष्टिं कुरु कुरु, जयं कुरु कुरु, विजतयं कुरु कुरु, भद्रं कुरु कुरु, प्रमोदं कुरु कुरु, सन्निहितो भव भव श्रीसूर्याय नमः।

सूर्य दर्शन– जिनबिम्ब के सम्मुख पूर्ववत मूर्ति, स्वप्न अथवा दर्पण रखें। फिर गुरु भगवन्त निम्न मंत्र बोलकर वासचूर्ण डालें–

फिर 27 डंका बजवायें और मंगल गीत गायें।

16. षोड़श-तीर्थोदक स्नात्र– सोलहवाँ स्नात्र करने हेतु एक सौ आठ तीर्थों के जल को सम्मिश्रित कर उन्हें पृथक्-पृथक् कलशों में भरें।

फिर स्नात्रकार जिनबिम्ब के निकट खड़े रहें तथा गुरु भगवन्त या विधिकारक 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर 27 डंका बजवायें।

जलधिनदीहृदकुण्डेषु, यानि तीर्थोदकानि शुद्धानि।
तैर्मन्त्रसंस्कृतैरिह, बिम्बं स्नपयामि सिद्ध्यर्थम्॥

मन्त्र– ॐ ह्राँ ह्रीँ परम-अर्हते तीर्थोदकेन स्नापयामीति स्वाहा

तदनन्तर तीर्थों के जल से जिन बिम्बों का अभिषेक करें तथा पूर्ववत तिलक, पुष्प एवं धूप पूजा करें।

17. सप्तदश–कर्पूर स्नात्र– सत्रहवें अभिषेक में कपूर मिश्रित जल को कलशों में भरकर जिनबिम्ब के निकट खड़े हो जायें। उस समय गुरु भगवन्त या विधिकारक 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर 27 डंका बजवायें।

शशिकर तुषारधवला, उज्ज्वल गंधा सुतीर्थजल मिश्रा।
कर्पूरोदकधारा, सुमंत्रपूता पततु बिम्बे।।

मंत्र– ॐ ह्रौं ह्रीँ परम-अर्हते कर्पूरेण स्नापयामीति स्वाहा।

तदनन्तर कर्पूर मिश्रित जल से जिनबिम्बों का अभिषेक करें। फिर पूर्ववत तिलक, पुष्प एवं धूप पूजा करें।

18. पुष्पांजलि लेप स्नात्र– अठारहवें अभिषेक में 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र बोलकर 27 डंका बजवायें। फिर जिन बिम्बों पर दोनों हाथों से पुष्प चढ़ायें तथा पुनः पूर्ववत तिलक आदि से पूजा करें।

नाना सुगन्धि पुष्पौघ, रञ्जिता चंचरीक कृत नादा।
धूपामोदविमिश्रा, पततात्पुष्पांजलिर्बिम्बे।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीँ ह्रूँ कुसुमांजलिभिरर्चयामीति स्वाहा

19. एक सौ आठ शुद्ध जलों का स्नात्र– इससे पूर्व अठारह अभिषेकों में प्रयुक्त की गई औषधियों के स्पर्श से जिन बिम्बों पर किसी तरह की चीकाश (स्निग्धता) रह गई हो तो उसे दूर करने के लिए 108 शुद्ध जल के कलशों से अभिषेक किया जाता है। इस अभिषेक के समय भी स्नात्रकार जल से भरे कलशों को लेकर प्रतिमाओं के निकट खड़े रहें तथा निम्न श्लोक सुनते हुए 108 कलशों से स्नात्र करें।

चक्रे देवेन्द्रराजैः सुरगिरि शिखरे योऽभिषेकः पयोभि-
र्नृत्यन्तीभिः सुरीभिर्ललित पदगमं, तूर्यनादैः सुदीप्तैः
कर्तुं तस्यानुकारं शिवसुखजनकं, मन्त्रपूतैः सुकुम्भैर्बिम्बं
जैनं प्रतिष्ठा विधि वचन परः, स्नापयाम्यत्र काले।।

तदनन्तर जिन बिम्बों पर अंगलूंछन करके चन्दन आदि का विलेपन करें। फिर प्रतिमाओं के सम्मुख पान, सुपारी, फल आदि चढ़ायें। उसके बाद

स्नात्रकार आरती-मंगल दीपक करें और प्रतिष्ठाचार्य संघ के साथ देववन्दन करें।

।। इति जिनबिम्ब अठारह अभिषेक विधि ।।

ध्वजदंड एवं कलश अभिषेक विधि

सामान्यतया जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा के प्रसंग पर ध्वजदंड एवं कलश की प्रतिष्ठा होने से नूतन बिम्बों के साथ ध्वजदंड आदि के अभिषेक भी हो जाते हैं।

जिनबिम्ब के 18, ध्वजदंड के 15/13 एवं कलश के 9 अभिषेक होते हैं। इन तीनों की अभिषेक विधि एक समान है अतः श्लोक और मंत्र भी समान ही बोले जाते हैं केवल 'बिम्ब' के स्थान पर दण्ड अथवा कलश शब्द का प्रयोग होता है।

प्रतिष्ठा के अवसर पर इन सभी के अभिषेक एक साथ सम्पन्न किये जाते हैं। उस समय तत्सम्बन्धी श्लोकों में शब्दों का परिवर्तन कर उन्हें दो-तीन बार बोल देते हैं जिससे ध्वजदंड और कलश की पृथक्-पृथक् विधि नहीं करनी पड़ती है इसलिए यहाँ स्वतन्त्र विधि देने की आवश्यकता भी नहीं है।

कदाचित ध्वजदंड या कलश जीर्ण या भग्न हो जाये तो किसी भी शुभ दिन में नवीन दंड स्थापित करना पड़ सकता है। उस स्थिति को ध्यान में रखते हुए ध्वजदंड अभिषेक की विधि कही जा रही है।

विधिमार्गप्रपा के अनुसार ध्वजदंड के 15 अभिषेक होते हैं[12] तथा आचार दिनकर एवं कल्याणकलिका आदि के मतानुसार 13 अभिषेक होते हैं।[13] वर्तमान में 13 अभिषेक प्रचलित हैं। उनका नाम क्रम इस प्रकार है-

1. सुवर्ण जल स्नान 2. रत्न जल स्नान 3. कषाय जल स्नान 4. मृत्तिका जल स्नान 5. मूलिका स्नान 6. अष्टवर्ग स्नान 7. सर्वौषधि स्नान 8. गन्ध स्नान 9. वास स्नान 10. चन्दन स्नान 11. कुंकुम (केसर) स्नान 12. तीर्थजल स्नान 13. कर्पूर जल स्नान 14. इक्षुरस स्नान 15. घृत-दुग्ध-दधि स्नान।

विधिमार्गप्रपा[14] आचारदिनकर[15] एवं कल्याणकलिका[16] आदि प्रतिष्ठाकल्पों के अनुसार कलश के नौ अभिषेक होते हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं- 1. सुवर्ण जल स्नात्र 2. सर्वौषधि स्नात्र 3. मूलिका स्नात्र 4. गंध स्नात्र 5. वास स्नात्र 6. चन्दन स्नात्र 7. केसर स्नात्र 8. कर्पूर स्नात्र 9. कुसुम स्नात्र।

विधिमार्गप्रपा में अन्तिम के दो नाम अधिक हैं। कल्याण कलिका में जिनबिम्ब के 18 अभिषेक होने के पश्चात इक्षुरस आदि चारों के अभिषेक का

भी उल्लेख है।[17] अत: विधिमार्गप्रपाकार का मत अधिक उचित प्रतीत होता है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि ध्वजदंड अथवा कलश का अभिषेक प्रारम्भ करने से पूर्व जिनबिम्ब अभिषेक विधि के समान स्नात्रकारों की उपस्थिति, औषधि चूर्ण का घटन, भूतबलि प्रक्षेपण, आचार्य एवं स्नात्रकारों का सकलीकरण, शुचिविद्या आरोपण, आचार्य या गुरु के द्वारा श्री संघ के साथ देववन्दन एवं शान्तिनाथ, श्रुत देवता, क्षेत्र देवता, शासन देवता, समस्त वैयावृत्यकर देवता के कायोत्सर्ग और स्तुति दान, पुष्पांजलि क्षेपण, तर्जनी मुद्रा दर्शन, जलाच्छोटन, मुद्गर मुद्रा दर्शन, सप्त धान्य प्रक्षेपण तथा कलशादि का अभिमन्त्रण इत्यादि विधान अवश्य करने चाहिए। उसके बाद मूल विधि शुरू करें।

1. **सुवर्ण स्नात्र–** सुवर्ण चूर्ण को जल में डालकर उसके चार कलश भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र कहकर 27 डंका पूर्वक दण्ड या कलश का अभिषेक करें। फिर तिलक पूजा, पुष्प पूजा और धूप पूजा करें।

सुपवित्र तीर्थनीरेण, संयुतं गंध पुष्प संमिश्रम् ।
पततु जलं दण्डोपरि, सहिरण्यं मंत्रपरिपूतम् ।।

मंत्र– ॐ ह्राँ ह्रीँ परमार्हते स्वर्ण संयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

• ध्वजदंड अथवा कलश के प्रत्येक अभिषेक में तत्सम्बन्धी औषधियों से कलश भरना, नमोऽर्हत् बोलना, 27 डंका बजवाना, स्नात्र करना एवं तिलक आदि से पूजन करना इतनी विधि समान है।

पुनरावृत्ति से बचने हेतु इन क्रियाओं का बार-बार सूचन नहीं भी किया जा सकता है।

2. **पंचरत्न स्नात्र–** पंचरत्न के चूर्ण को जल में डालकर चार कलश भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर अभिषेक करें–

नानारत्नौघ युतं, सुगंधि पुष्पाधिवासितं नीरम् ।
पततादि्वचित्रवर्णं, मन्त्राढ्यं स्थापनादण्डे ।।

मन्त्र– ॐ ह्रॉं ह्रीँ परमार्हते पंचरत्नचूर्णसंयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

3. **कषाय स्नात्र–** कषाय छाल के चूर्ण को जल में मिश्रित कर उसके चार कलश भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर अभिषेक करें।

प्लक्षाऽश्वत्थोदुम्बर-शिरीष, छल्ल्यादि कल्क संमिश्रम् ।
दंडे कषाय नीरं, पततादधिवासितं जैने ।।

मन्त्र– ॐ ह्राँ ह्रीँ परम-अर्हते पिपल्यादिमहाछल्ली कषायचूर्ण संयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

4. मंगल मृत्तिका स्नात्र– मंगल मिट्टियों के चूर्ण को जल में संयुक्त कर उसके चार कलश भरें। उसके बाद 'नमोऽर्हत्.' कह निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें। फिर ध्वजदंड का अभिषेक एवं तिलक आदि से उसकी पूजा करें।

पर्वतसरोनदी संगमादिमृदभिश्च मंत्र पूताभिः ।
उद्वर्त्य ध्वजदण्डं, स्नपयाम्यधिवासना समये ।।

मन्त्र–ॐ ह्रौं ह्रीँ परम-अर्हते नद्यादिमृच्चूर्ण संयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

5. मूलिका स्नात्र– मूलिका चूर्ण को जल में डालकर उसके चार कलश भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर ध्वजदंड अथवा कलश का अभिषेक करें।

सुपवित्रमूलिकावर्ग, मर्दिते तदुदकस्य शुभ धारा ।
दण्डेऽधिवासना समये, यच्छतु सौख्यानि निपतन्ती ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीँ परम-अर्हते मूलिकाचूर्ण संयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

6. अष्टवर्ग स्नात्र– प्रथम अष्टक वर्ग की औषधि चूर्ण को जल में मिश्रित कर उसके चार कलश भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें।

नाना कुष्टाद्यौषधि सन्मृष्टे, तद्युतं पतन्नीरम् ।
दण्डे कृतसन्मंत्रं, कर्मौघं हन्तु भव्यानाम् ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीँ परम-अर्हते कुष्टाद्यष्टकवर्गचूर्ण संयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा ।

उक्त काव्य बोलकर 27 डंका बजवायें, अभिषेक करें, तिलक करें, पुष्प चढ़ायें और धूप प्रगटायें।

7. सर्वौषधि स्नात्र– सर्वौषधि चूर्ण को जल में मिश्रित कर उन्हें चार कलशों में भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर 27 डंका बजवायें–

सकलौषधिसंयुतया, सुगन्धया घर्षितं सुगति हेतोः ।
स्नपयामि ध्वजदण्डं, मन्त्रित तन्नीर निवहेन ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीँ परम-अर्हते प्रियङ्ग्वादि सर्वौषधि चूर्ण संयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा

तदनन्तर अभिषेक करें, तिलक करें, पुष्प चढ़ायें और धूप प्रगटायें।

8. गन्ध स्नात्र– गन्ध चूर्ण को जल में डालकर उसे चार कलशों में भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें।

गन्धाङ्ग स्नानिकया, सन्मृष्टं तदुदकस्य धाराभिः ।
स्नपयामि ध्वज दण्डं, कर्मौघोच्छित्तये शिवदम् ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीँ परम-अर्हते यक्षकर्दमादिगन्धचूर्ण संयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

यह मन्त्र बोलने के बाद 27 डंका बजवायें। फिर अभिषेक करें, तिलक करें, पुष्प चढ़ायें और धूप प्रगटायें।

9. वास स्नात्र– वासचूर्ण को जल में डालकर उसे चार कलशों में भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' कह निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें।

हृद्यैराह्लादकरैः स्पृहणीयै र्मन्त्रसंस्कृतैर्दण्डम् (कुम्भम्)
स्नपयामि सुगतिहेतो-र्दण्डम धिवासितं वासैः (चारू)

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीं परम-अर्हते सुगन्धवासचूर्ण संयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा

यह मन्त्र पढ़कर 27 डंका बजवायें। फिर अभिषेक करें, तिलक लगायें, पुष्प चढ़ायें और धूप प्रगटायें।

10. चन्दन स्नात्र– घिसे हुए चन्दन के घोल को जल में मिश्रित कर उसके चार कलश भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' कह निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें।

शीतल सरस सुगन्धि-र्मनोमतश्चंदनद्रुम समुत्थः ।
चन्दनकल्कः सजलो, मंत्रयुतः पततु वरदण्डे (वर कुम्भे) ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीँ परम-अर्हते क्षीर चंदन संयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

यह मन्त्र कहकर 27 डंका बजवायें। तत्पश्चात अभिषेक करें, तिलक लगायें, पुष्प चढ़ायें और धूप प्रगटायें।

11. केसर स्नात्र– घिसी हुई केसर का घोल जल में डालकर और उसे चार कलशों में भरकर 'नमोऽर्हत्' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें।

काश्मीरज सुविलिप्तं, दण्डं तन्नीर धारयाऽभिनवम् ।
सन्मंत्र युक्तया शुचिं, जैनं स्नपयामि सिद्ध्यर्थम् ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीं परम-अर्हते (दण्डं) काश्मीरजशर्करासंयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़कर 27 डंका बजवायें। फिर अभिषेक करें, तिलक करें, पुष्प चढ़ायें और धूप पूजा करें।

12. तीर्थजल स्नात्र– एक सौ आठ तीर्थों के जल को कलशों में भरकर और 'नमोऽर्हत्.' कहकर निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें।

जलधि-नदी-ह्रद-कुण्डेषु, यानि तीर्थोदकानि शुद्धानि ।
तैर्मन्त्रसंस्कृतैरिह, दण्डं स्नपयामि शुद्ध्यर्थम् ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीं परम-अर्हते विविध तीर्थोदकेन स्नापयामीति स्वाहा।

मन्त्र कहने के बाद 27 डंका बजवायें। उसके बाद अभिषेक करें, तिलक लगायें, पुष्प चढ़ायें और धूप प्रगटायें।

13. कर्पूर स्नात्र– कपूर चूर्ण को अभिषेक जल में डालकर उसे चार कलशों में भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें।

शशिकर तुषार धवला, उज्ज्वल गंधा सुतीर्थ जल मिश्रा
कर्पूरोदक धारा, सुमन्त्रपूता पततु दण्डे ।।

मन्त्र–ॐ ह्रौं ह्रीं परम-अर्हते कर्पूर संयुत जलेन (कुम्भे) स्नापयामीति स्वाहा।

यह मंत्र कहकर 27 डंका बजवायें। तदनन्तर अभिषेक करें, तिलक लगायें, पुष्प चढ़ायें और धूप प्रगटायें।

14. इक्षुरस स्नात्र– शुद्ध जल में इक्षुरस को मिश्रित कर उसे चार कलशों में भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' कह निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें।

इक्षुरसोदादुपह्रत इक्षुरसः सुरवरैस्त्वदभिषेके ।
भवदवसदवथु भविनां, जनयतु नित्यं सदानन्दम् ।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीं परम-अर्हते इक्षुरससंयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

फिर 27 डंका बजवायें। फिर ध्वजदंड का अभिषेक करें, तिलक लगायें, पुष्प चढ़ायें और धूप प्रगटायें।

15. घृत-दुग्ध-दधि स्नात्र– शुद्ध जल में दूध-दही-घी मिलाकर उसे

चार कलशों में भरें। फिर 'नमोऽर्हत्.' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें।

घृतमायुर्वृद्धिकरं भवति, परं जैन गात्र संपर्कात्।
तद्भगवतोऽभिषेके, पातु घृतं घृत समुद्रस्य।।
दुग्धं दुग्धांभोधे-रूपाहृतं यत्पुरा सुरवरेन्द्रैः
तद् बल पुष्टि निमित्तं, भवतु सतां ध्वजदंड अभिषेकात्।।
दधि मंगलाय सततं, दंडाभिषेकोपयोगतो ऽप्यधिकम्
भवतु भविनां शिवा-ध्वनि, दधिजलधेराहृतं त्रिदशैः।।
ॐ ह्रौं ह्रीँ परम अर्हते दुग्धादियुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

तदनन्तर 27 डंका बजवायें, ध्वजदंड का अभिषेक करें, तिलक लगायें, पुष्प चढ़ायें और धूप प्रगटायें।

तत्पश्चात ध्वजदंड और कलश का शुद्ध जल से प्रक्षाल कर एवं अंगलूंछणा से पोंछकर उस पर बरास का विलेपन करें तथा चाँदी का बरख लगायें। फिर केशर से तिलक करें, केसर के छींटने डालें, पुष्प की माला पहनायें तथा मींढल और मरड़ासिंगी बांधें।

उसके पश्चात दंड अथवा कलश को उसी दिन या किसी अन्य शुभ दिन में प्रतिष्ठित करना हो तो यह विधि ध्वजदंड प्रतिष्ठा एवं कलश प्रतिष्ठा विधि के अन्तर्गत कही गई है। उसमें वर्णित 18 अभिषेक के बाद की सम्पूर्ण विधि करनी चाहिए। यहाँ पुनरावृत्ति नहीं कर रहे हैं।

अठारह अभिषेक के दिन उक्त विधि सम्पन्न होने के पश्चात आरती और मंगल दीपक करें तथा गुरु भगवन्त सकल संघ के साथ मध्यम देववन्दन एवं शान्तिनाथ आदि की आराधनार्थ कायोत्सर्ग और स्तुति बोलें।

।। इति ध्वजदंड-कलश अभिषेक विधि ।।

गुरु मूर्ति अभिषेक विधि

दादा गुरुदेव अथवा गुरु भगवन्त के स्तूप, प्रतिमा या पादुका की प्रतिष्ठा करनी हो तो उसके शुद्धिकरण के लिए पाँच अभिषेक करना चाहिए। उसकी अभिषेक विधि निम्न प्रकार है–[18]

जिस दिन गुरु मूर्ति आदि का अभिषेक करना हो उस दिन चार श्रावक देह शुद्धि पूर्वक पूजा के वस्त्र पहनें। फिर सधवा नारियाँ उनके हाथों में कंकण (मींढल-मरडाशिंग) बाँधें और ललाट पर तिलक करें।

उसके पश्चात चारों स्नात्रकार एक सौ आठ तीर्थों के जल एवं औषधि मिश्रित जल से भरे हुए कलश लेकर खड़े रहें। यदि 108 कुओं का जल संभव न हो तो 21 तीर्थों का जल ग्रहण करें।

तदनन्तर विधिकारक दश दिक्पाल की स्थापना करें।

सर्व प्रथम **ॐ ह्रीँ इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय इह आगच्छ-आगच्छ, बलिं गृहाण-गृहाण, उदयमभ्युदयं च कुरु-कुरु स्वाहा–** यह मन्त्र बोलकर पूर्व दिशा में इन्द्र की स्थापना करें। फिर पूर्व दिशा के अधिपति देव को बलि बाकुला और लापसी चढ़ाएँ तथा वासक्षेप करें।

इसी प्रकार अग्निकोण, दक्षिण दिशा, नैऋत्य कोण, पश्चिम दिशा, वायव्य कोण, उत्तर दिशा, ईशान कोण, ऊर्ध्व दिशा और अधो दिशा में क्रमशः 'अग्नये' 'यमाय' 'नैऋताय' 'वरूणाय' 'वायवे' 'कुबेराय' 'ईशानाय' 'ब्रह्मणे' 'नागाय'– इन दिक्पालों का नामोच्चारण करते हुए पूर्ववत उनकी स्थापना करें। फिर पूर्ववत बलि बाकला और लापसी चढ़ाएँ तथा वासक्षेप करें।

तत्पश्चात विधिकारक या स्नात्रकार सूर्याय, चन्द्राय, भौमाय, बुधाय, गुरवे, शुक्राय, शनैश्चराय, राहवे, केतवे– इन नामों का क्रमशः उच्चारण करते हुए पूर्व मन्त्रवत नवग्रहों की स्थापना करें।

फिर स्नात्रकार गुरु मूर्ति या गुरु चरणों के ऊपर निम्न विधि से पाँच अभिषेक करें–

कुसुमांजलि– निम्न श्लोक कहकर कुसुमाञ्जलि करें।

नाना सुगन्धि पुष्पौघ-रञ्जिता-चञ्चरीक कृत नादा।
धूपा मोद विमिश्रा, पतताद् पुष्पाञ्जलिर्बिम्बे।।

1. प्रथम सुवर्ण चूर्ण स्नात्र– फिर 'नमोऽर्हत्' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मंत्र बोलें–

सुपवित्र तीर्थनीरेण, संयुतंगन्धपुष्प संमिश्रम्।
पततु जलं बिम्बोपरि, सहिरण्यं मंत्र परिपूतम्।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीँ परम गुरुभ्यः पूज्य पादेभ्यो गन्ध पुष्पादि-संमिश्रस्वर्णचूर्णसंयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

फिर 27 डंका बजाकर गुरु मूर्ति का अभिषेक करें। उसके बाद 18 अभिषेक विधि में निर्दिष्ट मन्त्रों से अभिमन्त्रित चंदन से तिलक लगाएं, पुष्प चढ़ाएं एवं धूप प्रज्वलित करें।

2. द्वितीय पंचरत्न चूर्ण स्नात्र– दूसरा अभिषेक करते समय सर्वप्रथम पूर्वोक्त **'नाना सुगन्धि.'** श्लोक बोलकर कुसुमांजलि चढ़ाएं। फिर 'नमोऽर्हत्' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मंत्र पढ़ें–

नानारत्नौघ युतं, सुगन्ध पुष्पाधिवासितं नीरम्।
पतताद्विचित्रचूर्णं, मन्त्राढ्यं स्थापना बिम्बे।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीं परम गुरुभ्यः पूज्य पादेभ्यो गन्धपुष्पादिसम्मिश्र पंचरत्नचूर्ण संयुत जलेन स्नापयामीति स्वाहा।

तदनन्तर 27 बार थाली बजाकर मूर्ति का अभिषेक करें। फिर अभिमन्त्रित चन्दन से तिलक लगाएं, पुष्प चढ़ाएं एवं धूप प्रज्वलित करें।

3. तृतीय पंचगव्य-पंचामृत स्नात्र– तीसरा अभिषेक करते समय पूर्ववत **'नानासुगन्धि.'** श्लोक बोलकर कुसुमांजलि चढ़ाएं। फिर 'नमोऽर्हत्' पूर्वक निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़ें–

दधि दुग्धघृतछगण प्रस्रवणैः पंचभिर्गवांग भवैः।
दर्भोदक संमिश्रैः स्नपयामि गुरुवर प्रतिमाम्।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीं परम गुरुभ्यः पूज्यपादेभ्यो गन्धपुष्पादि सम्मिश्रस्नापयामीति स्वाहा।

फिर 27 बार थाली बजवाकर मूर्ति का अभिषेक करें। उसके बाद पूर्ववत चन्दन का तिलक लगाएं, पुष्प चढ़ाएं एवं धूप प्रज्वलित करें।

4. चतुर्थ सदौषधि स्नात्र– चौथा अभिषेक करते समय पूर्ववत **'नानासुगन्धि.'** श्लोक बोलकर कुसुमांजलि चढ़ाएं। फिर निम्न श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर 27 बार थाली बजाकर मूर्ति का अभिषेक करें–

सह देव्यादि सदौषधि, वर्गेणोद्वर्तितस्य बिम्बस्य।
संमिश्रं बिम्बोपरि, पतज्जलं हरतु दुरितानि।।

मन्त्र– ॐ ह्रौं ह्रीं परमगुरुभ्यः पूज्य पादेभ्यो सहदेव्यादि-सदौषधिभिः स्नापयामीति स्वाहा।

इसके पश्चात चन्दन का तिलक लगाएं, पुष्प चढ़ाएं एवं धूप प्रज्वलित करें।

5. पंचम तीर्थोदक स्नात्र– पांचवाँ अभिषेक करते समय **'नाना सुगन्धि.'** श्लोक कहकर कुसुमांजलि चढ़ाएं। उसके बाद निम्न श्लोक एवं मंत्र पढ़कर 27 डंका सहित मूर्ति का अभिषेक करें–

जलधि नदीहृदकुण्डेषु, यानि तीर्थोदकानि शुद्धानि ।
तैर्मन्त्रसंस्कृतैरिह, बिम्बं स्नपयामि सिद्धयर्थम् ।।

ॐ ह्रीं ह्रीं परम गुरुभ्यः पूज्यपादेभ्यो गन्ध पुष्पादि सम्मिश्र तीर्थोदकेन स्नापयामीति स्वाहा।

तदनन्तर मूर्ति आदि पर चन्दन का तिलक लगाएं, पुष्प चढ़ाएं एवं धूप प्रज्वलित करें।

।। इति गुरुमूर्ति अभिषेक विधि ।।

स्थापनाचार्य आदि की अभिषेक विधि

स्थापनाचार्य, यन्त्र पट्ट, मंगल मूर्ति आदि के अभिषेक के सम्बन्ध में किसी भी ग्रन्थकार ने स्पष्ट उल्लेख किया हो ऐसा ज्ञात नहीं है। वर्तमान परम्परा में जिन बिम्बों के अभिषेक के समय यन्त्र आदि को एक थाली में रखकर 18 अभिषेक के औषधि जलों से उनकी भी शुद्धि कर ली जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य विधि-क्रिया लगभग नहीं होती है।

।। इति स्थापनाचार्यादि अभिषेक विधि ।।

जलयात्रा विधि

प्रतिष्ठा एवं अठारह अभिषेक आदि के अवसर पर शुद्ध जल लाने हेतु निम्न विधि करनी चाहिए।

• सर्वप्रथम श्री शान्तिनाथ भगवान अथवा पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा को नवग्रह युक्त परिकर वाली पालखी में विराजमान करें। फिर अखण्ड शरीर वाले श्रेष्ठ स्नात्रकारों के द्वारा वह पालखी उठवायें। फिर महोत्सव पूर्वक छत्र, चामर, ध्वजा, हाथी, घोड़ा, विविध प्रकार के वाद्य बजाते हुए वरघोड़ा निकालें। पालखी के पीछे सधवा स्त्रियाँ मांगलिक गीत गाती हुई चलें। सौभाग्यवती नारी के हाथ में दीपक रहें।

• मार्ग में चलते हुए जितने देव स्थान आये वहाँ (गाँव की परम्परा हो तो) एक-एक श्रीफल चढ़ायें।

• रास्ते में चलते हुए कोरा बलि बाकुला, फूल, मेवा आदि उछालते हुए निम्न गाथा बोलते रहें–

ॐ भवणवइ वाणमंतर, जोइसवासी विमाणवासी य ।
जे केई दुट्ठदेवा, ते सव्वे उवसमंतु मम स्वाहा ।।

• इस तरह चलते हुए गाँव के बाहर उद्यान आदि पवित्र स्थान पर आयें। वहाँ सविधि स्नात्र पूजा करें।

भूमि पूजन आदि के मंत्र

सर्वप्रथम निम्न मंत्र सात बार कहकर भूमि शुद्ध करें-

ॐ ह्री क्ष्मौं सर्वोपद्रवाद् रक्ष रक्ष स्वाहा।

निम्न मंत्र को सात बार कहकर वास एवं पुष्प से भूमि पूजा करें-

ॐ भूतश्री र्भूतधात्रि विश्वाधारे नमः।

फिर निम्न मंत्र सात बार कहकर पीठिका स्थापन हेतु भूमि शुद्धि करें-

ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हत् पीठाय नमः।

फिर निम्न मंत्र तीन बार बोलकर बाजोठ (चौकी) की स्थापना करें-

ॐ स्थिराय शाश्वताय निश्चलाय पीठाय नमः।

फिर निम्न मंत्र से जल शुद्धि करें-

ॐ आपोऽप्काया एकेन्द्रिया जीवा निरवद्यार्हत्पूजायां निर्व्यथाः सन्तु, निष्पापाः सन्तु सद्गतयः सन्तु, न मेऽस्तु संघट्टनहिंसापापमर्हदर्चने स्वाहा।

नवग्रह पूजा— तदनन्तर अंजलि के मध्य में वासचूर्ण ग्रहण कर निम्न मंत्र कहते हुए नवग्रह पट्ट का पूजन करें। यदि पट्ट न हो तो जिनबिम्ब को जिस पट्ट पर आसीन किया है उसकी पूजा करें–

ॐ सूर्यसोमाङ्गारकबुधगुरुशुक्रशनेश्चरराहु केतु प्रमुखाग्रहा इह जिनपादाग्रे समायान्तु, पूजां प्रतीछन्तु।

• फिर निम्न मंत्र कहते हुए नवग्रह पट्ट की अष्ट द्रव्य से पूजा करें– 1. आचमनमस्तु 2. गन्धोऽस्तु 3. पुष्पमस्तु 4. अक्षतोऽस्तु 5. फलमस्तु 6. नैवेद्यमस्तु 7. धूपोऽस्तु 8. दीपोऽस्तु।

• फिर हाथ में पुष्प लेकर निम्न मंत्र कहते हुए ग्रहों के ऊपर चढ़ायें-

ॐ सूर्य सोमाङ्गारक बुध गुरु शुक्र शनैश्चर राहु केतु प्रमुखा ग्रहाः सुपूजिताः सन्तु, सुग्रहाः सन्तु, पुष्टिदाः सन्तु, तुष्टिदाः सन्तु, मङ्गलदाः सन्तु, महोत्सवदाः सन्तु।

दिक्पाल पूजा— तत्पश्चात नवग्रह की भाँति दश दिक्पाल पट्ट की पूजा करें।

• सर्वप्रथम निम्न मंत्र कहते हुए वासचूर्ण चढ़ायें–

ॐ इन्द्राग्नियमनैर्ऋतवरुणवायुकुबेरेशाननागब्रह्म लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपाला इह जिनपादाग्रे समायान्तु, पूजां प्रतीच्छन्तु।

• फिर निम्न मंत्र बोलते हुए दिक्पाल पट्ट की अष्ट द्रव्य से पूजा करें- 1. आचमनमस्तु 2. गन्धोऽस्तु 3. पुष्पमस्तु 4. अक्षतोऽस्तु 5. फलमस्तु 6. नैवेद्यमस्तु 7. धूपोऽस्तु 8. दीपोऽस्तु।

• फिर निम्न मंत्र कहते हुए पूर्ववत दिक्पालों पर पुष्प चढ़ायें-

ॐ सूर्यसोमाङ्गारकबुधगुरुशुक्रशनैश्चरराहुकेतुप्रमुखा ग्रहाः सुपूजिताः सन्तु, सुग्रहाः सन्तु, पुष्टिदाः सन्तु, तुष्टिदाः सन्तु, मंगलदाः सन्तु, महोत्सवदा सन्तु।

• तदनन्तर मध्यम देववन्दन करें। इसी क्रम में शान्तिनाथ, श्रुत देवता, शान्ति देवता, समस्त वैयावृत्यकर देवता की आराधना निमित्त कायोत्सर्ग करते हुए उनकी स्तुतियाँ बोलें। फिर जल देवता के निमित्त एक नवकार मन्त्र का कायोत्सर्ग कर निम्न स्तुति कहें-

मकरासनमासीनः, शिवाशयेभ्यो ददाति पाशशयः ।
आशामाशापालः किरतु, च दुरितानि वरुणो नः ।।

फिर नमुत्थुणं यावत जयवीयराय सूत्र कहें।

• फिर सभी कलशों के कण्ठ में ग्रीवा सूत्र बांधें। फिर अभिमन्त्रित वासचूर्ण एवं केशर के छींटे डालें।

स्नात्रकार न्यास– तत्पश्चात जल के समीप कुंभ स्थापित कर स्नात्रकार श्रावकों का इस प्रकार न्यास करें-

• निम्न मंत्र तीन बार कहकर आचमन करें–

ॐ गुरुतत्त्वाय नमः, ह्रीँ आत्म तत्त्वाय स्वाहा, ह्रीँ विघातत्त्वाय स्वाहा, ह्रीँ पार्श्वतत्त्वाय स्वाहा, ॐ मुक्तितत्त्वाय स्वाहा।

• फिर निम्न मंत्र बोलते समय स्नात्रकार सर्वांग का स्पर्श करें–

ॐ ह्रीँ नमो अरिहंताणं, ह्राँ शीर्षं रक्ष स्वाहा। ॐ ह्रीँ नमो सिद्धाणं, ह्रीँ वदनं रक्ष रक्ष स्वाहा। ॐ ह्रीँ नमो आयरियाणं, हुँ हृदयं रक्ष रक्ष स्वाहा। ॐ ह्रीँ नमो उवज्झायाणं, ह्रैँ नाभि रक्ष रक्ष स्वाहा। ॐ ह्रीँ नमो लोए सव्वसाहूणं, ह्रौँ पादौ रक्ष रक्ष स्वाहा। ॐ ह्रीँ नमो ज्ञान दर्शन चारित्रेभ्यः, (त्रान्) हः सर्वाङ्ग रक्ष रक्ष स्वाहा।

• फिर निम्न मंत्र बोलते हुए स्नात्रकारों का करन्यास करें–

ॐ ह्रीँ अर्हम् अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीँ सिद्धास्तर्जनीभ्यां नमः। ॐ ह्रीँ आचार्या मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ह्रीँ उपाध्याया अनामिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रीँ सर्वसाधवः कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रीँ हुँ हूँ ह्रेँ ह्रैँ ह्रोँ ह्रः असिआउसा सम्यग्दर्शनचारित्राणि धर्मः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

जल पूजा- फिर विधिकारक अंकुश मुद्रा दिखाते हुए जल ग्रहण करने का उपक्रम करें।

• फिर निम्न मंत्र कहते हुए कूर्म मुद्रा अथवा मत्स्य मुद्रा दिखाकर जल को बाहर निकालकर रखें-

ॐ ह्रीँ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणी स्रावय-स्रावय अमृतं सें सें क्लीँ क्लीँ ब्लूँ ब्लूँ ह्राँ ह्राँ ह्रीँ ह्रीँ द्रावय-द्रावय ह्राँ जलदेवी देवा अत्र।

• उसके बाद निम्न मंत्र कहते हुए जल देवता की अष्ट प्रकारी पूजा करें-

ॐ ह्रीँ क्लीं ब्लूँ जल देवताभ्यो नमः, जलं समर्पयामि।

• फिर निम्न मंत्र कहते हुए पुष्प, नारियल एवं फल आदि जल पात्र में डालें।

ॐ आँ ह्रीँ क्रोँ जलदेवि पूजावलिं गृहाण-गृहाण स्वाहा।

• उसके पश्चात चार या आठ कलशों को जल से भरकर उसके समीप मोदक, पूरी आदि नैवेद्य रखते हुए बोलें-

ॐ ह्रीँ ऋषभाजितसंभवाभिनन्दनसुमतिपद्मप्रभ सुपार्श्व चन्द्रप्रभसुविधि शीतलश्रेयांसवासुपूज्य विमलानन्तधर्म- शान्तिकुंथ्वर-मल्लिमुनिसुव्रत नमिनेमि पार्श्ववर्धमानास्तीर्थंकर परम देवास्तदधिष्ठायका देवाः शान्तिं तुष्टिं ऋद्धिं वृद्धिं ज मङ्गलं कुरु-कुरु पां-पां वां-वां नमः स्वाहा।

• तत्पश्चात मंगल गीत गाते हुए गाजे-बाजे के साथ पवित्र वस्त्रधारी नारियों के मस्तक पर उन कलशों को रखें। फिर महोत्सव पूर्वक जिनालय में पहुंचकर तीन प्रदक्षिणा दें। जल भरे कलशों को पवित्र स्थान पर रखें। प्रतिमा की पौंखण क्रिया करने के पश्चात उन्हें मूलगृह में पधरावें। फिर संघ प्रभावना आदि करें।

।। इति जलयात्रा विधि ।।

जलानयन विधि

108 अथवा 27 कुओं का जल लाने की विधि इस प्रकार है-

• नदी, सरोवर या कूप आदि जलाशय के समीप स्नान करें, शुद्ध वस्त्र पहनें वासचूर्ण, अक्षत, बलि बाकुला आदि को अभिमंत्रित करें।

• फिर अष्ट प्रकारी पूजा की सामग्री लेकर एवं कूप आदि के निकट पहुँचकर निम्न मंत्र बोलें–

ॐ वं वं वं नमो वरुणाय पाशहस्ताय सकलयादोऽधीशाय सकल जलपक्षाय सकलनिलयाय सकल समुद्र नदी सरोवर पल्लव-निर्झरकूपवापीस्वामिने ऽमृतकाय देवाय, अमृतं देहि देहि, अमृतं स्रावय स्रावय, नमोऽस्तु ते स्वाहा।

• उसके बाद अंकुश मुद्रा दिखाकर निम्न मंत्र कहते हुए सरोवर आदि की अष्ट प्रकारी पूजा करें-

ॐ जलं गृहाण-गृहाण। चंदन गृहाण-गृहाण। पुष्प गृहाण-गृहाण। दीपं गृहाण-गृहाण। धूपं गृहाण-गृहाण। अक्षतं तांबूलं नैवेद्यं फलं द्रव्यं समर्पयामि स्वाहा। बलिं गृहाण-गृहाण स्वाहा।

• फिर निम्न मंत्र कहकर जल ग्रहण करें-

ॐ आपोऽप्कायाः एकेन्द्रिया जीवा निरवद्यार्हत् पूजायां निर्व्यथाः सन्तु, सद्गतयः सन्तु, न मेऽस्तु संघट्टनहिंसा पापमर्हदर्चने स्वाहा।

• इसी प्रकार सर्व कुओं-नदियों की पूजा करते हुए जल ग्रहण करें।

• तदनन्तर जलाशय के समीप एक गड्ढा करके उसमें दीप-नैवेद्य रखें तथा नवकार मन्त्र का स्मरण करते हुए नारियल अर्पित करें।

।। इति जलानयन विधि ।।

जिनबिम्ब प्रवेश विधि

नूतन गृह मंदिर, श्रीसंघ मंदिर अथवा जिर्णोद्धारित मंदिर में जिनबिम्ब का प्रवेश करवाना हो तो उसकी यह विधि है-

मुहूर्त ग्रहण–पूर्व में बताए गए निश्चित दिन में शुभ ग्रह-नक्षत्र आदि से बलवान स्थिर लग्न को बधाएं। फिर लग्नदायक ज्योतिषि का अक्षत, श्रीफल, वस्त्र, द्रव्यादि के द्वारा यथाशक्ति सत्कार करें।

प्रारम्भ विधि- लग्न दिन से 10,7,5 या 3 दिन पहले गृह चैत्य अथवा जिन चैत्य के चारों ओर 100 हाथ जितनी भूमि शुद्ध करवाएं। जहाँ स्थापनीय बिम्ब रखने हों उस मंडप भूमि की शुद्धि भी इसी तरह करें। इन दोनों जगहों पर चन्द्रवा- पूठिया आदि बांधकर मण्डप की रचना करवाएं तथा दोनों जगह प्रातः- सन्ध्या सांझी और प्रभातिया गवाएँ।

• गृह प्रमुख या संघ प्रमुख एक व्यक्ति 10 दिन तक एकाशना तप करें, ब्रह्मचर्य का पालन करें, सचित्त का त्याग करें, भूमि पर संथारा करें और हिंसक प्रवृत्ति के त्याग पूर्वक प्रसन्न चित्त रहें।

• जिस देवालय में प्रभु की स्थापना करनी हो वहाँ क्रियाकारक सर्वथा शुद्ध वस्त्र पहनकर परम्परानुसार सप्तस्मरण या नवस्मरण का पाठ करें।

कुंभ स्थापनादि– बिम्ब प्रवेश के दिन अथवा मुहूर्त्त दिवस के 7 या 5 दिन पूर्व कुंभ चक्र देखकर नूतन जिनमंदिर में धातु की पंच तीर्थी (धातु की प्रतिमा) विराजमान करें। फिर जहाँ बिम्ब की स्थापना की जाएगी वहाँ बिम्ब के दाहिनी ओर जवारारोपण और कुंभ स्थापना करें तथा बायीं ओर दीपक स्थापना करें। सुहागिन श्राविका से गहुंली करवाएं। कुंभ के समीप उस दिन से प्रतिष्ठा दिन तक तीनों समय सप्तस्मरण का पाठ करें।

• बिम्ब प्रवेश के तीन दिन शेष रहे तब विशेष रुप से धूप प्रगटाएं। रात्रि जागरण करें। रात्रि का एक प्रहर बीतने के पश्चात जिनालय के रंगमंडप में नैवेद्य चढ़ाएँ, प्रभु की स्थापना होने के पश्चात भी तीन दिन तक इसी तरह नैवेद्य (मिष्ठान्न) चढ़ाएं। नैवेद्य अर्पण की विधि इस प्रकार है- प्रथम चार माता-पिता वाली नारी शुद्ध वस्त्र पहनकर स्वच्छ किए गए धान्य को रांधें, फिर उन्हें कोरे सकोरें में भरकर चढ़ाएं, प्रतिदिन नये सकोरें लें।

• बिम्ब प्रवेश के पहले 1. लापसी 2. पुडला 3. भात 4. करंबो 5. दहि 6. खीर 7. शक्कर 8. बड़ा 9. कंकु 10. हलदर 11. पान का बीड़ा 12. सुपारी 13. चवला के बाकले 14.मूंग के बाकले 15.चना के बाकले-ऐसे पन्द्रह खाद्य पदार्थों को तैयार करवाकर प्रत्येक को एक-एक मिट्टी के पात्र (सकोरा) में रखें। एक कोरे पात्र में शुद्ध जल भरें। फिर आटे के दीपक बनाकर प्रत्येक मिट्टी पात्र में एक-एक रखें। फिर प्रत्येक दीपक में चार-चार बत्तियाँ रखकर घी पूरते हुए उन्हें प्रज्वलित करें। फिर एक-एक पात्र को हाथ में लेकर-

ॐ ग्रहाश्चन्द्र सूर्यांगारक बुध बृहस्पति शुक्र शनैश्चर राहु केतु सहिताः सलोकपालाः सोम यम वरुण कुबेर वासवादित्य स्कन्दविनायकोपेताः ये चान्येऽपि ग्राम नगर क्षेत्र देवता दयस्ते सर्वे प्रीयंतां स्वाहा।

यह मन्त्र बोलकर उन्हें यथास्थान रख दें। जल पात्र को भूमि पर जल के छींटे डालकर रखें और धूप प्रगटाएं।

• नूतन चैत्यगृह के अन्दर और बाहर सुहागिन स्त्री के द्वारा कंकु एवं हल्दी पानी के छींटें डलवाएं तथा चारों तरफ पुष्प विकीर्ण करवाएं। इसी क्रम में प्रवेश द्वार की जगह अथवा जिनालय के मध्य खंभे पर पंचवर्णी मौली के 21 तार बंधवाएं तथा उनके ऊपर सफेद मौली का तार बंधवाएं।

• यदि बिम्ब प्रवेश के तीन दिन पहले पूर्ववत नैवेद्य अर्पण न कर सकें तो आगे-पीछे एक-एक दिन अवश्य चढ़ाना चाहिए। मुहूर्त के पहले दिन 1. लापसी 2. बाकला 3. करंबो 4. पानी – इन चार वस्तुओं को पवित्र करके उन्हें नये चार सकोरों में भर दें।

• फिर उन पर वासचूर्ण डालकर एवं धूप से संस्कारित करके संध्या के समय जिनचैत्य के पंडाल में रख दें। फिर क्रियाकारक प्रत्येक पात्र को हाथ में लेकर

'ॐ भवणवइ वाणमंतर-जोइसवासी विमाणवासी य।
जे केवि दुट्ठ देवा, ते सव्वे उवसमंतु मम स्वाहा।।

यह गाथा तीन बार बोलें। फिर पात्रों को ऊपर बरामदा में रखें और धूप दिखाकर नीचे उतरे।

• जहाँ स्थापनीय बिम्ब हो वहाँ रात्रि जागरण करें। उसी रात्रि में एक प्रहर बीतने के बाद क्रियाकारक देवगृह के मध्य में खड़े होकर धूप प्रज्वलित करें और उवसग्गहरं स्तोत्र की एक माला गिनें। मध्यरात्रि के समय एक पात्र में निर्धूम अंगारे भरकर ऊपर बरामदा में रखें। वहाँ एक घड़ी पर्यन्त दशांग धूप करके **'सर्व क्षेत्र देवता मुजने सानुकूल होजो'** यह कहकर नीचे उतरे।

सामैया- बिम्ब प्रवेश के दिन प्रभात में मूलनायक भगवान के दाहिनी तरफ नवग्रह एवं दश दिक्पाल की विधिपूर्वक स्थापना करें। तत्पश्चात चतुर्विध संघ के साथ स्थापनीय जिन बिम्ब को सामैया पूर्वक लेने जाएं।।

• जहाँ प्रभुजी विराजमान है वहाँ स्नात्र पूजा एवं अष्ट प्रकारी पूजा करें। प्रभु को लाने हेतु जाते समय **थाली नं.1** में केसर-चन्दन का साथिया करके

अक्षत का साथिया करें और उसके ऊपर सात सुपारी रखें। उसके ऊपर चांदी का सवा पैसा एवं पंच तीर्थी धातु की प्रतिमा रखें। **थाली नं.2** में सवा किलो चावल एवं सात सुपारी रखें।

थाली नं.3 में गेहूँ के आटे के चार कोने वाले दीपक बनवाकर उसमें घी पूरते हुए प्रज्वलित करें। फिर उसे जाली वाले ढक्कन से ढक दें। इस थाल को पंच धातु प्रतिमा के दाहिनी तरफ लेकर चलें। **थाली नं.4** में अक्षत, सवा रुपया एवं अष्ट मंगल का पट्ट रखें।

थाली नं. 5 में केसर से नन्द्यावर्त्त किए गए दो अंगलूंछणा रखें। एक व्यक्ति यह थाल लेकर जिनबिम्ब के आगे खड़ा रहे।

थाली नं.6 में दो मिट्टी के घड़े रखकर उनमें सवा सेर चावल, सवा रुपया एवं सात सुपारी डालकर ऊपर में श्रीफल रखें। फिर मुख भाग को हरे या पीले वस्त्र से ढ़ककर कण्ठ भाग को मौली से बांधें। फिर फूलमाला पहनाएं। इन घड़ों को पुत्रवती सौभाग्यवती नारियाँ मस्तक के ऊपर रखकर जिनबिम्ब के दायीं-बायीं तरफ खड़ी रहें।

थाली नं.7 में दूध एवं पानी के कलश, केशर, पुष्प, फल, नैवेद्य, अक्षत आदि रखें।

- उसके पश्चात चतुर्विध संघ सहित गाजते-बाजते, अनेक हाथी-घोड़ों के साथ, याचक विरुदावली बोलते हुए, सुहागिन स्त्रियाँ मंगल गीत गाते हुए, निर्धनों को दान देते हुए इस प्रकार जिनशासन की प्रभावना करते हुए स्थापनीय बिम्बों को मंडप द्वार पर लाएं।
- वहाँ सौभाग्यवती नारियों के द्वारा अक्षत एवं श्रीफल चढ़वाएं, सोना-चाँदी-पुष्प-मोती और अक्षत से बधवाएं, जिनबिम्ब को नमस्कार करें। फिर सकल संघ मंडप के अन्दर आएं। फिर स्थापनीय बिम्ब के मुख्य द्वार पर कुंकुम के हाथ लगाएं। फिर स्थापनीय बिम्ब के आगे पाँच सेर अक्षतों का स्वस्तिक बनाकर उसके ऊपर सुपारी और रुपया रखें।
- तदनन्तर सकल संघ तीन खमासमण देकर प्रभु को वन्दन करें और स्नात्र पूजा पढ़ाएं। अन्य मत में स्नात्र पूजा की जगह आठ स्तुतियों से देववन्दन करते हैं।
- उसके बाद बिम्ब लेने हेतु आए हुए गृहस्थ स्थापनीय बिम्ब के परिवार का सत्कार-बहुमान करें। फिर बिम्ब का मालिक भी बिम्ब के लिए आए हुए संघ की शक्ति के अनुसार भक्ति करें।

उसके पश्चात पूर्व स्थापित कुंभ को रेशमी वस्त्र से ढ़ककर उसके ऊपर स्वर्ण पत्तों से जड़ित श्रीफल रखें। फिर उसे सुहागिन नारियाँ मस्तक पर रखकर आगे चलें। गृह मालिक श्वास रोकते हुए स्थाप्यमान प्रतिमा को अर्पित करें और 'मनोरथ पूर्ण हो' ऐसा आशीष दें।

विनंति- तदनन्तर मुख्य श्रावक जिनबिम्ब के समीप जाकर 'स्वामी पधारिए, स्वामी पधारिए, हम शक्ति अनुसार भक्ति करेंगे, श्री संघ के ऊपर कृपा करिए' इस भाव से प्रभु को हाथ जोड़कर विनंति करें।

नूतन मंदिर तरफ प्रयाण- फिर जिस प्रतिमा को लेकर आए थे उसे स्थाप्यमान प्रतिमा के निकट रखते हुए तथा गाजते-बाजते एवं बलि बाकुला उछालते हुए नूतन प्रासाद के समीप आएं।

• बलि बाकुला उछालते समय दश दिक्पालों को इस रीति से बुलाएं-

ॐ इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिकाय श्रीजिन-बिंब प्रवेश महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।' इसी तरह ॐ अग्नेय, ॐ यमाय, ॐ निऋतये, ॐ वरुणाय, ॐ वायवे, ॐ कुबेराय, ॐ ईशानाय, ॐ नागाय, ॐ ब्रह्मणे आगच्छ-आगच्छ स्वाहा। इस तरह सभी को बुलाएं और बाकुला प्रदान करें। अन्त में **'ॐ समस्तक्षेत्र देवी देवेभ्यः सायुधेभ्यः सवाहनेभ्यः सपरिकरेभ्यः श्री जिनबिम्ब प्रवेश महोत्सव विधौ आगच्छन्तु-2 स्वाहा'** ऐसा बोलकर कोरी बलि उछालें।

• जिनालय नजदीक आने पर सधवा स्त्रियाँ पूर्ण कलश भरकर सामने आएं, कोई प्रधान पुरुष कुंकुम के छींटें डालें और द्वार पर तोरण बांधे। यदि मुहूर्त्त आने में समय हो तो जिन मन्दिर के द्वार के समीप लकड़ी के बाजोट एवं उस पर लाल वस्त्र बिछाकर प्रभु को विराजमान करें। फिर सौभाग्यवती नारियाँ पौंखणा करें।

उचित व्यवहार– श्रीसंघ के अग्रगण्य श्रावक प्रतिमा स्थापना का लाभ लेने वाले भाग्यशाली से विनंति करें–

'नूतन जिनमंदिर में प्रभु को मंगल मुहूर्त्त में प्रवेश करवाओ' ऐसा कह तिलक द्वारा उसका बहुमान करें। प्रवेश करवाने वाला भाग्यशाली श्रीसंघ के ट्रस्टिओं से कहें- 'आप सकल संघ ने जिन बिम्ब के प्रवेश महोत्सव का लाभ प्रदान किया उसके लिए बहुत-बहुत आभारी हूँ' फिर संघ प्रमुख व्यक्तियों का तिलक से बहुमान करें।

दिग्बंधन– तदनन्तर गुरु भगवन्त दसों दिशाओं में वासचूर्ण डालते हुए उनका दिग्बंध करें।

संपुट विधि– फिर सुहागिन नारियाँ मंदिर की देहलीज के ऊपर कुंकुम का साथिया करें। उसके ऊपर अक्षत का साथिया करें। फिर उसके ऊपर संपुट रखें। उस संपुटमय मिट्टी के सकोरे में अक्षत, कुंकुम, सुपारी, पंचरत्न की पोटली, चांदी पैसा, तांबा पैसा डालकर उसके ऊपर ढक्कन रुप में दूसरा सकोरा रखकर उन्हें मौली से अच्छी तरह बाँध दें।

बिम्ब प्रवेश के समय मुख्य लाभार्थी स्वयं के दाहिने पैर की एड़ी से संपुट को खण्डित कर प्रभु का प्रवेश करवाएं।

शकुन- प्रवेश के समय एक सौभाग्यवती नारी लाल, पीली या केसरिया साड़ी पहनकर अष्ट मंगल के घड़े में सवा रुपया, सुपारी, अक्षत, पुष्प डालें तथा छाने हुए पानी से उसे भरें। फिर उसके ऊपर नारियल रखें। प्रवेश के वक्त उस घड़े को स्वयं के मस्तक पर मोती की इंडाणी के ऊपर रखकर जिनबिम्ब को शकुन प्रदान करें। प्रवेश करवाने वाला भाग्यशाली उस बहन को बधाएं तथा चांदी का आभूषण देकर उसका बहुमान करें।

मंत्र का आलेख- क्रियाकारक जिनबिम्ब के पृष्ठ भाग पर **'ॐ श्रीं जीरावल्ली पार्श्वनाथ रक्षां कुरु कुरु स्वाहा'** यह मन्त्र लिखें। गुरुमूर्ति एवं देव-देवी के पीछे **'ॐ ह्रीँ श्रीं नमः'** यह मन्त्र लिखें।

गुरु भगवन्त पबासन के ऊपर **'ॐ ह्रीँ अर्हत्पीठाय नमः'** कहकर वासचूर्ण डालें।

क्रियाकारक जिस चैत्य में प्रभु का प्रवेश हो वहाँ प्रत्येक जगह स्वर्ण जल के छींटें डालें तथा जहाँ-जहाँ जिनबिम्बों की स्थापना करनी हो वहाँ सभी जगह सौभाग्यवती नारी के द्वारा कुंकुम के स्वस्तिक करवाएं।

प्रभु प्रवेश- उसके पश्चात **'ॐ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयन्तां'** इस मंगल पाठ का उद्घोष करते हुए मुहूर्त्त काल में श्वास को रोककर जिनबिम्ब का प्रवेश करवाएं। उस समय गुरु भगवन्त वासचूर्ण डालें। फिर सकल संघ के साथ चैत्यवन्दन करें। भीतों पर कुंकुम के थापे दिरावें। क्रियाकारक स्नात्र पूजा पढ़ावें, प्रभु की अष्टप्रकारी पूजा करें, आरती, मंगल दीपक एवं शांति कलश करके क्षमायाचना करें।[19]

।। इति जिनबिम्ब प्रवेश विधि ।।

जिनबिम्ब प्रतिष्ठा विधि

श्वेताम्बर परम्परा के प्रतिष्ठा कल्पों में जिनबिम्ब प्रतिष्ठा की विधि सर्वप्रथम पंचाशक प्रकरण में प्राप्त होती है, किन्तु यह अति संक्षेप में है। उसके पश्चात यह विधि निर्वाणकलिका में देखी जाती है जो संक्षिप्त होने के साथ इस परम्परा से प्रभावित है। तदनन्तर सुबोधासामाचारी, विधिमार्गप्रपा एवं आचार दिनकर आदि में उपलब्ध होती है। इनमें श्रीचन्द्राचार्य का अनुकरण करते हुए विधिमार्गप्रपा के रचयिता जिनप्रभसूरि ने यह विधि सम्यक् रुप से प्रतिपादित की है जो वर्तमान सामाचारी में भी प्रवर्तित है। आचारदिनकर गत प्रतिष्ठा-विधि में दिगम्बर भट्टारकों का अधिक प्रभाव है अतएव काल क्रम की प्राचीनता एवं शुद्ध आचार बद्धता को ध्यान में रखते हुए विधिमार्गप्रपा के अनुसार जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा विधि कही जाएगी।

प्रतिष्ठा के प्रारम्भिक चरण

• प्रतिष्ठा की मूल विधि प्रारम्भ करने से पूर्व सर्वप्रथम नूतन जिनालय के चारों ओर उत्कृष्ट रुप से सौ धनुष परिमाण क्षेत्र की शुद्धि करें, मध्यम रुप से पचास धनुष एवं जघन्यत: पच्चीस धनुष अथवा सौ हाथ प्रमाण क्षेत्र की शुद्धि करें। क्षेत्र शुद्धि की विधि इस प्रकार है–

शुद्ध मिट्टी निकलने तक भूमि खोदें। तत्पश्चात उसमें निकले हुए काष्ठ, अस्थि, चर्म, केश, नख, दन्त, तृण आदि जलाकर उसकी राख हटा दें और उस जगह श्वेत सुगन्धित मिट्टी डालें। फिर उसके ऊपर गौमूत्र डालते हुए गोबर से लीपकर शुद्ध करें।

• फिर प्रमाणोपेत प्रतिष्ठा आदि मंडप बनवायें। उस मण्डप में नवीन बिम्बों को पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख स्थापित करें। उसके बाद चन्दन रस से नूतन बिम्बों के ललाट पर **'ॐ ह्रीं'** तथा हृदय पर **'ॐ ह्रीं'** इन मन्त्र बीजों का न्यास करें। फिर सुगन्धित जल एवं पुष्पादि अर्पण करते हुए उस भूमि की पूजा एवं सत्कार करें।

• फिर उस देश, नगर या शहर में सात या दस दिन तक अमारि प्रवर्त्तन अर्थात किसी प्राणी की कोई हिंसा न करें- ऐसी घोषणा करवाएं। राजा अथवा नगर के अधिपति को बहुत भेंट देकर प्रतिष्ठा कार्य की अनुज्ञा प्राप्त करें। शिल्पिकारों का स्वर्णाभूषण एवं वस्त्र आदि द्वारा सम्मान करें।

• अपने स्थान से पचास योजन की परिधि में रहे हुए आचार्य, उपाध्याय, साधु, साध्वी, श्रावक एवं श्राविका ऐसे चतुर्विध संघ को आमन्त्रित करें।

• सूती डोरा एवं सूती वस्त्रों का संग्रह करें तथा कुंवारी कन्याओं द्वारा काते गए सूत को बटकर डोरा बनाएं।

• प्रतिष्ठा विधानों को अच्छी तरह से सम्पन्न करने के लिए पवित्र स्थानों जैसे– कुएँ, बावड़ी, तालाब, झरनों, नदियों, छोटी-छोटी नहरों एवं गंगा आदि का जल लाएं। उन जलों से वेदिका की रचना करें। दिक्पालों की स्थापना करें।

• पूर्व में बताए गए गुणों से युक्त स्नात्र करने वाले चार पुरुषों को आमन्त्रित करें।

• पूर्व निर्दिष्ट गुणों एवं कंकण आदि से युक्त चार नारियों के द्वारा मंगल गान पूर्वक पंचरत्न, कषाय मृत्तिका, मांगल्य मूलिका, अष्टक वर्ग आदि औषधियों को अनुक्रम से पिसवाएं।

• उसके पश्चात स्नात्रकार चारों दिशाओं में अर्पण के रुप में बाकुले एवं पूए आदि प्रदान करें। फिर प्रतिष्ठित जिनबिम्ब का अभिषेक करें।

प्रतिष्ठा के आवश्यक चरण

चैत्यवन्दन– जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा निर्विघ्न हो एतदर्थ आचार्य चतुर्विध संघ के साथ चार स्तुतियों द्वारा चैत्यवन्दन करें। इसी के साथ ही शान्तिनाथ, श्रुतदेवी, अम्बिका देवी, अच्छुप्ता देवी एवं समस्त वैयावृत्यकर देवों की आराधना के लिए एक-एक नमस्कार मन्त्र का कायोत्सर्ग करें और स्तुति बोलें।

सकलीकरण- उसके पश्चात आचार्य भगवन्त स्वयं के सम्पूर्ण देह की रक्षा करते हैं उसकी विधि यह है–

ॐ नमो अरिहंताणं हृदयं रक्ष रक्ष, ॐ नमो सिद्धाणं ललाटं रक्ष रक्ष, ॐ नमो आयरियाणं शिखां रक्ष रक्ष, ॐ नमो उवज्झायाणं कवचं सर्व शरीरं रक्ष रक्ष, ॐ नमो सव्व साहूणं अस्त्रम्। इस प्रकार सभी जगह तीन-तीन बार इस मन्त्र का न्यास करें।

शुचिविद्या आरोपण- तत्पश्चात आचार्य तीन, पाँच या सात बार निम्न मंत्र का मनस् जाप करें-

ॐ नमो अरिहंताणं, ॐ नमो सिद्धाणं, ॐ नमो आयरियाणं ॐ नमो उवज्झायाणं, ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं, ॐ नमो आगासगामीणं, ॐ हः क्षः नमः।

फिर इसी मन्त्र से स्नात्रकारों को अभिमन्त्रित करें।

बलिनिक्षेप- फिर आचार्य निम्न मंत्र से बलि (गेहूँ आदि धान्य) को अभिमन्त्रित करें।

ओं ह्रीं क्ष्वीं सर्वोपद्रवं बिम्बस्य रक्ष-रक्ष स्वाहा।

स्नात्रकार अभिमन्त्रित बलि को जलदान एवं धूपदान पूर्वक चारों दिशाओं में निक्षिप्त करें।

फिर 'नमोऽर्हत्' पूर्वक निम्न श्लोक पढ़ते हुए नवीन बिम्बों पर पुष्पों का क्षेपण करें-

अभिनव सुगंधिवासित पुष्पौघभृता सुधूप गंधाढ्या ।
बिम्बोपरि निपतन्ती मुखानि पुष्पांजलिः कुरुताम् ।।

विघ्नोत्त्रासन एवं जलोच्छाटन- तदनन्तर आचार्य नवीन बिम्बों को रौद्र दृष्टि से तर्जनी मुद्रा दिखायें। फिर बाएँ हाथ में जल लेकर बिम्बों के ऊपर छीटें। फिर स्नात्रकार जिन बिम्बों के चन्दन का तिलक लगायें और पुष्पों के द्वारा पूजन करें। इसी क्रम में आचार्य जिनबिम्ब को मुद्‌गर मुद्रा का दर्शन करवायें, बिम्ब के समक्ष अखंड चावलों से भरा हुआ थाल रखें, वज्र मुद्रा एवं गरुड़ मुद्रा के द्वारा बिम्ब के नेत्रों की रक्षा करें।

फिर प्रतिष्ठाचार्य **'ॐ ह्रीं क्ष्वीं सर्वोपद्रवं बिम्बस्य रक्ष-रक्ष स्वाहा'** इस मन्त्र के द्वारा जिनबिम्बों का कवच बनाएं और दिग्बंधन करें।

सप्त धान्य वृष्टि- तत्पश्चात स्नात्रकार जिनबिम्बों के ऊपर सात प्रकार के धान्यों 1. सण 2. लाज 3. कुलथी 4. यव 5. कंगु 6. उड़द और 7. सर्षप– इनकी वृष्टि करें।

प्रतिष्ठा के मूल चरण

अठारह अभिषेक- उक्त विधियों के अनन्तर नूतन बिम्बों के अशुद्ध तत्त्वों का निराकरण एवं शुद्ध तत्त्वों का आरोपण करने हेतु विभिन्न प्रकार की औषधियों के द्वारा निर्धारित श्लोकों का उच्चारण करते हुए १८ बार अभिषेक करते हैं। इस क्रिया के सम्पादनार्थ कलश, जल, गन्ध, पुष्प, धूप आदि को मन्त्रित भी करते हैं। यह सम्पूर्ण विधि अठारह अभिषेक विधि के अन्तर्गत कही जा चुकी है इसलिए यहाँ नहीं कहेंगे।

अधिवासना– 18 अभिषेक हो जाने के पश्चात गुरु बाएँ हाथ में

अभिमन्त्रित चंदन लेकर दाएँ हाथ से प्रतिमा के सर्व अंगों पर आलेपन करें। चंदन को सूरिमंत्र या अधिवासना मंत्र से अभिमंत्रित करें।

अधिवासना मंत्र-**ॐ नमः शान्तये हूँ क्षूँ हूँ सः।**

सूरिमन्त्र– **ॐ नमो पयाणुसारीणं, ॐ नमो कुट्ठबुद्धीणं, जमियं विज्जं पउंजामि सा मे विज्जा पसिज्जउ, ॐ अवतर-अवतर, सोमे-सोमे, कुरु-कुरु, ॐ वग्गु-वग्गु निवग्गु सुमणे सोमणसे महुमहुरे कविल ॐ कक्षः कक्षः स्वाहा।**

• तत्पश्चात जिनबिम्बों पर पुष्प चढ़ाएँ, धूप का उत्क्षेप करें, वासचूर्ण डालें और सुरभि मुद्रा दिखायें।

• फिर आचार्य खड़े होकर पद्म मुद्रा और अंजलि मुद्रा का दर्शन करवायें।

• फिर गुरु भगवन्त जिनबिम्ब के हाथों में प्रियंगु, कर्पूर एवं गोरोचन का लेप करें।

• फिर जिनबिम्ब के हाथों में कंकण डोरा बांधें।

कंकण अभिमन्त्रित करने का मन्त्र यह है-

ॐ नमो खीरासवलद्धीणं, ॐ नमो महुयासवलद्धीणं, ॐ नमोसंभिन्नसोईणं, ॐ नमो पयाणुसारीणं, ॐ नमो कुट्ठबुद्धीणं, जमियं विज्जं पउंजामि सा मे विज्जा पसिज्जउ, ॐ अवतर- अवतर, सोमे-सोमे, कुरु-कुरु, ॐ वग्गु-वग्गु निवग्गु सुमणे सोमणसे महुमहुरे कविल ॐ कक्षः कक्षः स्वाहा। अथवा **ॐ नमः शान्तये हूं क्षूं हूं सः।**

कौसुम्भसूत्र, मदनफल एवं अरिष्ट से निर्मित्त कंकण का बन्धन बिम्ब के कण्ठ, बाहु, भुजा एवं चरणों में करें।

• फिर आचार्य **'ॐ स्थावरे तिष्ठ – तिष्ठ स्वाहा'** इस स्थिरीकरण मंत्र से, मुक्ताशुक्ति मुद्रा से अथवा चक मुद्रा से जिनबिम्ब के मस्तक, दोनों स्कन्ध एवं दोनो घुटने– इन पांच अंगों को सात-सात बार स्पर्श करें।

इन सभी कृत्यों को करते हुए जिनबिम्ब के सम्मुख निरन्तर धूप देते रहें।

नद्यावर्त्त आलेखन एवं पूजन- परमेष्ठी मुद्रा से परमात्मा का आह्वान करें। आह्वान मंत्र निम्न है-

ॐ नमोर्हत्परमेश्वराय चतुर्मुखपरमेष्ठीने त्रैलोक्यताय अष्टदिग्विभागकुमारी परिपूजिताय देवाधिदेवाय दिव्यशरीराय त्रैलोक्यमहिताय आगच्छ-आगच्छ स्वाहा।

फिर आचार्य भगवन्त आसन पर बैठकर नन्द्यावर्त्त के बाह्य सभी वलयों की कच्चे कर्पूर से पूजा करें। फिर उसके मध्य में चल बिम्ब की स्थापना करते हुए संकल्प पूर्वक प्रतिष्ठाप्य अचल बिम्ब की स्थापना करें।

मूल विधि के अनुसार यहाँ नन्द्यावर्त्त का आलेखन और उसकी पूजा भी करते हैं। यह विधि विस्तृत होने से इसकी स्वतन्त्र चर्चा करेंगे।

जवारारोपण, कलश एवं दीपक स्थापना– नन्द्यावर्त्त पूजन के पश्चात बाहर की तरफ वेदिका के चारों कोनों में कुँवारी कन्या द्वारा काते गये सूत को चौगुना करके बांधें। फिर चारों दिशाओं में श्वेत स्थान के ऊपर जवारारोपण के सकोरों को स्थापित करें। चारों दिशाओं में एक के ऊपर एक इस प्रकार चार-चार ऐसे कुल सोलह घड़े रखें। वेदी के चारों कोनों में 1.बाट (लापसी) 2.खीर 3.करम्ब 4. कसार 5.कूर 6. चूरमापिंड और 7. पूए– इन सात वस्तुओं से भरे हुए सकोरे रखें।

• तत्पश्चात चन्दन से अधिवासित कंकण, स्वर्ण मुद्रा, जल एवं वस्त्र से युक्त सोने या मिट्टी के चार कलश नन्द्यावर्त्त के चारों कोनों में स्थापित करें।

• फिर घी, गुड़ युक्त प्रज्वलित चार मंगल दीपक नंद्यावर्त्त पट्ट की चारों दिशाओं में रखें।

• फिर चारों दिशाओं में चाँदी, कौडी, रक्षापोटली, जल एवं धान्य सहित चार कलश स्थापित करें। उनकी पूजा और कंकण बांधने की क्रिया सुकुमारिकाएँ करती हैं।

• फिर उनके ऊपर बोए हुए जवारों के चार सकोरे स्थापित करें और प्रत्येक को चौगूणे कौसुम्भसूत्र से वेष्टित करें।

प्राण प्रतिष्ठा– फिर शक्रस्तव से चैत्यवंदन करें। तत्पश्चात अधिवासना (प्राण प्रतिष्ठा) का समय निकट आ जाने पर जिनबिम्ब के हाथ पर ऋद्धि वृद्धि, मदनफल एवं अरिष्ट से निर्मित्त कंकण बांधें।

• फिर चन्दन से अधिवासित एवं पुष्पों से युक्त चौबीस हाथ परिमाण अखण्ड एवं नये श्वेत वस्त्र से बिम्ब को आच्छादित करें और एक मातृशाटिका से पार्श्वभाग को वेष्टित करें। फिर उन पर चंदन के छींटें डालें एवं पुष्पों से पूजन करें।

• तत्पश्चात गुरु निम्न मंत्र से बिम्ब के सभी अंगों पर हाथ रखकर उसकी प्राण प्रतिष्ठा करें-

ॐ नमो खीरासवलब्धीणं, ॐ नमो महुआसवलब्धीणं ॐ नमो संभिन्नसोईणं ॐ नमो पयाणुसारीणं ॐ नमो कुट्ठबुद्धीणं जमियं विज्ज पउंजामि सा में विज्जा पसिज्जउ, ॐ अवतर-अवतर सोमे-सोमे, ॐ वग्गु-वग्गु ॐ निवग्गु-निवग्गु सुमणसे- सोमणसे महुमहुरे कविल ॐ कक्षः स्वाहा। अथवा **ॐ नमः शान्तये हूं क्षुं हूं सः।**

• फिर 1.शालि (चावल) 2.यव (जौ) 3. गोधूम 4. मुद्ग (मूंग) 5. वल्ल (वाल) 6. चणक (चना) और 7. चवलक (चवला)- इन सात धान्यों में पुष्पों का मिश्रण कर एवं उससे अंजलि भरकर बिम्ब को स्नान करवाएं।

सप्तधान्य से स्नान कराने का छंद निम्न हैं-

सर्वप्राणसमं सर्व धारणं सर्वजीवनम्।
अजीव जीव दानाय, भवत्वन्नं महार्चने।।

• फिर सभी जगह पुष्प चढ़ाएं एवं धूप उत्क्षेपण करें। धूपोत्क्षेपण का छंद यह है–

ऊर्ध्वगतिदर्शनालोक, दर्शितानन्तरोर्ध्व गति दानः।
धूपो वनस्पतिरसः, प्रीणयतु समस्त सुरवृन्दम्।।

• तदनन्तर पुत्रवान चार अथवा चार से अधिक सधवा स्त्रियाँ निरुंछन-विधि करें अर्थात प्राण प्रतिष्ठित जिनबिम्ब को बधाएं। यथाशक्ति स्वर्ण का दान करें। फिर बिम्ब के आगे प्रचुर मात्रा में मोदक एवं पकवान चढ़ाएं।

• तत्पश्चात श्रावकजन आरती उतारें और मंगल दीपक करें। फिर आचार्य चैत्यवंदन करें। इसी क्रम में अधिवासना देवी की आराधना निमित्त एक लोगस्ससूत्र का चिन्तन कर निम्न स्तुति कहें–

विश्वाशेषेशुवस्तुषु, मन्त्रैर्याजस्त्रमधि वसति वसतौ।
सेमामवतरतु श्री, जिनतनुमधिवासना देवी।।

अथवा

पातालमन्तरिक्षं भवनं, वा या समाश्रिता नित्यम्।
सात्रावतरतु जैनीं, प्रतिमामधिवासना देवी।।

उसके बाद श्रुतदेवी, शान्ति देवता, अम्बिका देवी, क्षेत्र देवता, शासन देवी और सर्व वैयावृत्यकर देवों की आराधना के लिए पूर्ववत कायोत्सर्ग कर स्तुतियाँ बोलें।

• पुन: शक्रस्तव बोलें। उसके बाद गुरु भगवन्त बिम्ब के आगे बैठकर यह विज्ञप्ति करें-

स्वागता जिनाः सिद्धाः प्रसाददाः सन्तु प्रसादं धिया कुर्वन्तु अनुग्रहपरा भवन्तु भव्यानां स्वागतमनुस्वागतम्।

अनुग्रह करने वाले सिद्ध परमात्मा का स्वागत है, ये सिद्ध भगवान ज्ञान के भण्डार हैं, आनन्द को देने वाले हैं एवं दूसरों पर अनुग्रह करने वाले हैं।

जिनबिम्ब स्थापना (प्रतिष्ठा) की मूल विधि

सामान्यत: बिम्ब की प्राण प्रतिष्ठा रात्रि में और स्थापना दिन में की जाती है। इसके विपरित प्राण प्रतिष्ठा और स्थापना- दोनों का लग्न समय नजदीक हो तो प्राण प्रतिष्ठा के कुछ समय बाद अन्य शुभ लग्न में प्रतिमा की प्रतिष्ठा करें। उसकी विधि यह है-

• सर्वप्रथम शांति देवता मन्त्र से अभिमन्त्रित बलि को शांति हेतु चारों दिशाओं में प्रदान करें।

• फिर चैत्यवंदन करें तथा प्रतिष्ठा देवता के आराधनार्थ एक चतुर्विंशतिस्तव का चिन्तन करें और निम्न स्तुति बोलें-

यदधिष्ठिताः प्रतिष्ठाः, सर्वाः सर्वास्पदेषु नंदन्ति ।
श्री जिन बिम्बं प्रविशतु, सदेवता सुप्रतिष्ठ मिदम् ।।

तत्पश्चात शासन देवता, क्षेत्र देवता एवं समस्त वैयावृत्यकर देवों के आराधनार्थ पूर्ववत कायोत्सर्ग एवं स्तुति करें। फिर धूप उत्क्षेप करें।

• फिर प्रतिष्ठा लग्न के निकट आने पर सभी लोगों को दूर करके परदा बंधवाएं और बिम्ब के मुख पर से आच्छादित वस्त्र (मातृशाटिका) हटायें।

• उसके बाद जिनबिम्ब के सामने घी से भरा हुआ पात्र रखें।

• तत्पश्चात चाँदी की कटोरी में एकत्रित सुरमा, घी, मधु, शक्कर, गजमद, कर्पूर, कस्तुरी युक्त पिष्टी से स्वर्णशलाका के द्वारा वर्ण न्यास करते हुए प्रतिमा के नेत्रों को उद्घाटित करें। वर्ण न्यास मंत्र यह है–

''ह्रां ललाटे, श्रीं नयनयोः, ह्रीं हृदये, रैं सर्वसंधिषु, लौ प्राकारः''– यह क्रिया कुम्भक पूर्वक (श्वास रोकते हुए) करें।

• उसके पश्चात बिम्ब के मस्तक पर अभिमंत्रित वासचूर्ण डालें।

• फिर आचार्य भगवन्त चन्दन एवं अक्षतों से पूजित जिनबिम्ब के दाएँ

कान में सात बार सूरिमंत्र का न्यास करें।

• फिर प्रतिष्ठा मंत्र के द्वारा चक्र मुद्रा से प्रतिमा के सभी अंगों का तीन, पाँच या सात बार स्पर्श करें। प्रतिष्ठा मंत्र निम्न है-

ॐ वीरे-वीरे जयवीरे सेणवीरे महावीरे जये विजये जयन्ते अपराजिए ॐ ह्री स्वाहा।

• फिर दही का पात्र चढ़ाएं, दर्पण दिखाएं, शंख का दर्शन करवाएं। फिर दृष्टि की रक्षा एवं सौभाग्य के स्थिरीकरण के लिए निम्न पाँच मुद्राओं का दर्शन करवाते हुए निम्न मंत्र का सर्वांगों पर न्यास करें-

मुद्राएँ- 1. सौभाग्य मुद्रा 2. परमेष्ठी मुद्रा 3. सुरभि मुद्रा 4. प्रवचन मुद्रा 5. गरुड़ मुद्रा।

न्यास मन्त्र- **ॐ अवतर-अवतर सोमे-सोमे कुरु-कुरु ॐ वग्गु-वग्गु निवग्गु सुमणसे सोमणसे महुमहुरे ॐ कविल कक्षः स्वाहा।**

• तत्पश्चात चार सौभाग्यवती स्त्रियाँ जिनबिम्ब को धान्य से बधाएँ। यथाशक्ति सुवर्ण दान दें।

• तदनन्तर कुम्भकार के द्वारा प्रतिमा के नीचे पहले से ही चाक की मिट्टी युक्त घी से लिपटी हुई बत्ती, पंचरत्न और चन्दन मिश्रित चावल रख दिए जाएं। वहाँ स्थिरीकरण मंत्र से प्रतिमा को स्थिर करें।

स्थिरीकरण मंत्र- **ॐ स्थावरे तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।**

• चल प्रतिष्ठा में इस प्रकार की विधि नहीं होती है। उस समय कुम्भकार चल प्रतिमा के नीचे बायीं तरफ चाक की मिट्टी एवं जिसका ऊपरी भाग कटा हुआ न हो ऐसी दूब रखते हैं। फिर प्रतिष्ठा के समय चल प्रतिमा पर निम्न मंत्र का न्यास करते हैं-

'ॐ जये श्रीं ह्रीँ सुभद्रे नमः।'

• तत्पश्चात पद्ममुद्रा एवं निम्न मंत्र पूर्वक रत्नासन की स्थापना करें-

इदं रत्नमयमासनमलं, कुर्वन्तु इहोपविष्टा।
भव्यानवलोकयन्तु, हृष्टदृष्टयादि जिनाः स्वाहा।।

• फिर निम्न मंत्रपूर्वक गन्ध, पुष्प एवं धूप का दान करें-

ॐ ह्रये गन्धान्यः प्रतीच्छन्तु स्वाहा।

ॐ ह्रये पुष्पाणि गृह्णन्तु स्वाहा।

ॐ ह्रये धूपं भजंतु स्वाहा।

इसके बाद निम्न मंत्रपूर्वक तीन बार पुष्पांजलि क्षेपण करें–

ॐ ह्रये सकलसत्वालोककर अवलोकय भगवन अवलोकय स्वाहा।

• उसके बाद परदे को हटाकर सर्व संघ एकत्रित होवें तथा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र एवं अलंकार द्वारा समस्त प्रकार की महापूजा करें।

तत्पश्चात मातृशाटिका और कंकण का आरोहण करें। इसी क्रम में मोरण्डा , सुकुमारिका आदि नैवेद्य चढ़ाएं। लूण–राई एवं आरती उतारें।

• फिर निम्न मंत्र पूर्वक बिम्ब के आगे भूतबलि दें-

ॐ ह्रये भूतबलिं जुषन्तु स्वाहा।

भूतबलि अभिमन्त्रण मन्त्र यह है-

• तत्पश्चात गुरु भगवन्त संघ के साथ चैत्यवंदन करें। फिर श्रुत देवी, शान्ति देवता, क्षेत्र देवता, अम्बिका देवी, समस्त वैयावृत्यकर देवों की आराधनार्थ कायोत्सर्ग एवं स्तुति दान पूर्ववत करें। फिर प्रतिष्ठा देवता के आराधनार्थ कायोत्सर्ग करके निम्न स्तुति बोलें-

यदधिष्ठिताः प्रतिष्ठाः सर्वा, सर्वास्पदेषु नन्दन्ति।
श्री जिन बिम्बं सा विशतु, देवता सुप्रतिष्ठमिदम् ।।

तत्पश्चात नमस्कारमन्त्र पूर्वक शक्रस्तव बोलकर शान्तिस्तव बोलें।

• उसके बाद अखण्ड अक्षतों से अंजलि भरकर उपस्थित सकल संघ आचार्य भगवन्त के साथ 'नमोऽर्हत्' पूर्वक मंगल गाथाओं का पाठ करें और अन्त में बधाएं।

मंगल गाथाएँ

जह सिद्धाण पइट्ठा, तिलोयचूडामणिम्मि सिद्धिपए।
आचंदसूरियं तह, होउ इमा सुप्पइट्ठ त्ति ।।1।।
जह सग्गस्स पइट्ठा, समत्थलोयस्स मज्झियारम्मि।आचंद.।।2।।
जह मेरुस्स पइट्ठा, दीवसमुद्दाण मज्झियारम्मि।आचंद.।।3।।
जह जम्बुस्स पइट्ठा, जंबुद्दीवस्स मज्झियारम्मि।आचंद.।।4।।
जह लवणस्स पइट्ठा, समत्थउदहीण मज्झियारम्मि।आचंद.।।5।।

• तत्पश्चात आचार्य अष्टाह्निका महोत्सव की महिमा बताएं। प्रतिष्ठा के लाभार्थी अथवा सकल श्रीसंघ गुरु को वस्त्र, पात्र, पुस्तक, वसति आदि प्रदान करें। सभी साधुओं को वस्त्र एवं अन्न का दान दें, संघ की पूजा करें, स्नात्र

करवाने वालों को स्वर्ण की मेखला या कड़ा प्रदान करें। औषधियों का पिष्ट पेषण करने वाली स्त्रियों एवं अंजन पीसने वाली कन्याओं को वस्त्राभूषण एवं मातृशाटिका प्रदान करें। तदनन्तर देश, काल आदि की अपेक्षा से तीन, पाँच, सात नौ दिन तक प्रतिष्ठा देवता की स्थापना एवं नंद्यावर्त्त पट्ट की रक्षा करें।

दूसरे दिन नूतन जिनालय का द्वारोद्घाटन करें।[20]

प्रतिष्ठा के परवर्ती चरण

प्रतिष्ठा सम्पन्न होने के बाद भी कुछ अनुष्ठान शेष रह जाते हैं वे निम्नोक्त हैं–

कंकण मोचन– उत्कृष्ट से कंकण मोचन एक वर्ष के पश्चात, मध्यम से छह माह के पश्चात तथा जघन्य से एक मास, एक पक्ष, दस दिन, सात दिन या तीन दिन में किया जाता है।

प्रतिष्ठा उत्सव पूर्ण होने पर तीसरा, पांचवाँ या सातवाँ जो भी श्रेष्ठ दिन हो उस दिन नूतन बिम्ब की शान्ति स्नात्र पूजा करें, प्रचुर मात्रा में नैवेद्यादि चढ़ायें, फिर चारों दिशाओं में भूतबलि का क्षेपण करें।

उसके पश्चात चार स्तुतियों से चैत्यवंदन करें। फिर प्रतिमा के हाथों में बांधे गए मंगल सूत्र को खोलने के लिए अन्नत्थसूत्र कहकर एक नवकार मन्त्र अथवा एक लोगस्स का कायोत्सर्ग करें। फिर प्रकट में पुनः नवकार मन्त्र अथवा लोगस्ससूत्र बोलें।

प्रतिष्ठा देवता विसर्जन- प्रतिष्ठा देवता का विसर्जन करने के लिए अन्नत्थसूत्र कहकर एक लोगस्ससूत्र का चिंतन करें। फिर पूर्णकर प्रकट में पुनः लोगस्ससूत्र पढ़ें।

प्रतिष्ठा देवता विसर्जन– प्रतिष्ठा देवता का विसर्जन करने के लिए अन्नत्थसूत्र कहकर एक लोगस्स सूत्र का चिंतन करें। फिर पूर्णकर प्रकट में पुनः लोगस्ससूत्र पढ़ें। तत्पश्चात श्रुत देवता, शांति देवता, क्षेत्रदेवता, भुवन देवता, शासन देवता एवं समस्त वैयावृत्यकर देवों की आराधनार्थ पूर्व की भाँति कायोत्सर्ग करें और उनकी स्तुति बोलें। विशेष यह है कि शान्ति देवता के कायोत्सर्ग के अनन्तर निम्न स्तुति कहें–

उन्मृष्टरिष्टदुष्ट ग्रहगति, दुःस्वप्न दुर्निमित्तादि।
संपादितहितसम्पन्नाम, ग्रहणं जयति शान्तेः।।

तत्पश्चात सौभाग्य मुद्रा से जिनबिम्ब पर निम्न मंत्र का न्यास करें–

ॐ अवतर अवतर सोमे-सोमे कुरु-कुरु वग्गु-वग्गु निवग्गु-निवग्गु सोमे सोमणसे महुमहुरे कविल ॐ कः क्षः स्वाहा।

फिर परमेष्ठी मंत्र बोलकर मंगल गीत, नृत्य एवं वाद्य-ध्वनियों के बीच मदनफल-अरिष्ट आदि से युक्त कंकण को बिम्ब से उतारकर सधवा स्त्रियों के हाथ में दें।

फिर जिनबिम्ब पर वासचूर्ण डालकर अंजलि मुद्रा बनायें और निम्न मंत्र बोलकर प्रतिष्ठा देवता का विसर्जन करें–

'ॐ विसर विसर प्रतिष्ठा देवते स्वाहा।'

आचार्य वर्धमानसूरि के अनुसार जब तक कंकण-मोचन नहीं होता है तब तक प्रतिदिन बृहत्स्नात्रविधि से स्नात्र करें। कंकण मोचन हो जाने पर नित्य लघुस्नात्रविधि से स्नात्र करें। एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर बृहत्स्नात्रविधि से स्नात्र करें तथा उसके बाद नित्य पूजा करें।

कुछ प्रतिष्ठाकारों के मतानुसार नूतन जिनबिम्बों का एक वर्ष तक निरन्तर स्नात्र करें। फिर वर्षगांठ के अवसर पर अष्टाह्निका महोत्सव अथवा विशेष पूजा करके आयुर्ग्रन्थि (कंकण डोरा) खोलें तथा प्रत्येक वर्षगांठ पर यथाशक्ति उत्तरोत्तर पूजा करें।

नंद्यावर्त्त विसर्जन– पूर्व क्रमानुसार सभी वलय के देवताओं की पूजा करें। फिर बाहर के वलय में स्थित देवताओं के प्रति

यान्तु देवगणाः सर्वे, पूजामादाय मामकीम्।
सिद्धिं दत्त्वा च महतीं, पुनरागमनाय च।।

यह कहकर निम्न मंत्र पूर्वक नवग्रह एवं क्षेत्रपाल का विसर्जन करें–

ॐ ग्रहाः सक्षेत्रपालाः पुनरागमनाय स्वाहा।

तत्पश्चात उसके मध्य वलय में स्थित देवताओं की पूजा करें। फिर बाहर के वलय में स्थित देवताओं के प्रति 'यान्तु देवगणाः सर्वे' श्लोक कहकर एवं निम्न मंत्र पूर्वक क्रमशः दिक्पाल, इन्द्राणी – इन्द्र, लोकान्तिक देव, विद्यादेवी, जिनमाता, पंच परमेष्ठी एवं रत्नत्रय, वाग्देवता, ईशानेन्द्र और सौधर्मेन्द्र का विसर्जन करें–

ॐ दिक्पालाः पुनरागमनाय स्वाहा।
ॐ सर्वेन्द्र देव्यः सर्वेन्द्रा देव्याः पुनरागमनाय स्वाहा।
ॐ सर्वलोकान्तिका पुनरागमनाय स्वाहा।
ॐ विद्यादेव्याः पुनरागमनाय स्वाहा।
ॐजिनमातारः पुनरागमनाय स्वाहा।
ॐ पंचपरमेष्ठीसरत्नत्रयाः पुनरागमनाय स्वाहा।
ॐ वाग्देवते पुनरागमनाय स्वाहा।
ॐ ईशानेन्द्र पुनरागमनाय स्वाहा।
ॐ सौधर्मेन्द्र पुनरागमनाय स्वाहा।

तदनन्तर हाथ जोड़कर **''ॐ ह्रीं श्रीं परम देवतासन परमेष्ठियधिष्ठान श्री नंद्यावर्त्त पुनरागमनाय स्वाहा''** इस मन्त्र के साथ निम्न श्लोक बोलते हुए नंद्यावर्त्त का विसर्जन करें–

आज्ञाहीनं क्रियाहीनं, मन्त्रहीनं च यत्कृतम्।
तत्सर्वं कृपया देव, क्षमस्व परमेश्वर।।

जिनबिम्ब पर मन्त्रन्यास विधि

जिनबिम्बों को अतिशय प्रभावी बनाने के लिए कुंकुम, चन्दन एवं कर्पूर आदि के चूर्ण रस से प्रतिमा के निम्न अंगोंपांगों पर मन्त्र न्यास करें–

ललाट पर '**ॐ ह्रां**', बाएं कान पर '**ॐ ह्रीं**' दाएं कान पर '**ॐ हुं**' मस्तक के पीठ भाग पर '**ॐ हुं**', मस्तक पर '**ॐ हुं**', नेत्र युगलों पर '**ॐ क्ष्मीं**' मुख पर '**ॐ क्ष्मीं**', कण्ठ पर '**ॐ क्ष्मीं**', हृदय पर '**ॐ क्ष्मीं**', दोनों भुजाओं पर '**ॐ क्ष्मः**' उदर पर '**ॐ क्लों**', कमर पर '**ॐ ह्रीं**', दोनों जंघाओं पर '**ॐ हूं**', दोनों पैरों पर '**ॐ क्ष्मूं**', दोनों हाथों पर '**ॐ क्षः**' लिखे।[21]

वर्तमान प्रचलित जिनबिम्ब प्रतिष्ठा विधि

अर्वाचीन प्रतियों में उपलब्ध जिनबिम्ब प्रतिष्ठा विधि का स्वरूप इस प्रकार है–

प्रतिष्ठा के पूर्व की विधि– प्रतिष्ठा मुहूर्त्त के पहले दिन सन्ध्या को जिनमंदिर शुद्ध जल से धुलवाएं। **अंगारे पात्र–** फिर चार व्यक्तियों को चार अंगार पात्र (धूप पात्र) दें। वे उन पात्रों को प्रभु के सामने दिखाकर जिनालय के

चारों ओर 100-100 कदम दूर जाकर रख आएं।

संध्या पात्र— फिर विधिकारक सन्ध्या के समय जिनमन्दिर की छत पर चार पात्र रखें। उनमें एक मिट्टी के पात्र में लापसी, दूसरे में उबाले हुए चने, तीसरे में वघार दिए गए चावल और चौथे में पानी रखते हैं। ये चारों पात्र निम्न गाथा बोलकर एवं थाली बजाकर पट्टे पर रखें। वहाँ धूप-दीप भी रखें।

ॐ भवणवइवाणमंतर, जोइसवासी विमाणवासी य।
जे के वि दुट्ठ देवा, ते सव्वे उवसमंतु मम स्वाहा।।

सोलह पात्र—रात्रि का एक प्रहर बीतने के पश्चात जिन मंदिर में सोलह पात्र निम्न विधि से रखें—

उस दिन चार माता-पिता वाली स्त्री के द्वारा निम्नानुसार भोजन तैयार करवाएँ 1. एक कटोरी कंसार 2. दही 3. एक कटोरी चावल 4. एक कटोरी वघारे गये चावल 5. मालपूआ 3 नग 6. चवले आटे के मसाले वाले पुडले-3 नग 7. एक कटोरी खीर 8. उड़द के बड़े-4 नग 9. रोटी-3 नग 10 एक कटोरी उबाले हुए चने 11. एक कटोरी उबाले हुए मूंग 12. कुंकुम 13. हल्दी 14. सुपारी के टुकड़े 15. पान के पत्ते-4 नग और 16. पानी— इन पदार्थों को धोये हुए मिट्टी के सकोरों में भरें। फिर उन प्रत्येक के ऊपर गेहूँ आटे के चार कोनों वाले दीपक रखें। फिर जिनमंदिर के मध्य भाग में एक बाजोठ के ऊपर चार-चार के क्रम से सोलह सकोरों को भलीभाँति रखें। फिर एक थाली में कुंकुम और हल्दी का पानी तैयार करें। एक थाली में अलग-अलग पुष्प तैयार रखें। इस समय दशांग धूप एवं दीपक प्रज्वलित रखें।

समंत पात्र— तदनन्तर क्रियाकारक देह शुद्धि पूर्वक पूजा के वस्त्र पहनकर जिनमंदिर का मुख्य द्वार बंद करें। उस द्वार के ऊपर एक सकोरे में दीपक प्रगटाएं। सोलह दीपक प्रज्वलित हो जाने के बाद क्रियाकारक वज्रपंजर स्तोत्र से आत्मरक्षा करें।

फिर एक-एक पात्र को हाथ में लेकर निम्न मंत्र बोलते जाएं और पुनः बाजोठ पर रखते जाएं।

मंत्र— **ॐ ग्रहाश्चन्द्रसूर्याङ्गारक बुध बृहस्पति शुक्रशनैश्चरराहुकेतु सहिताः, सलोकपालाः, सोमयमवरूण कुबेरवासवादित्यस्कन्द विनायकोपेता ये चान्येऽपि ग्रामनगरक्षेत्रदेवतादयस्ते सर्वे प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।**
पात्र विधि चलती रहे तब तक थाली-बेलन और घंटनाद चालू रखें।

कुंकुम एवं हल्दी पानी का छिटकाव– सोलह पात्र की विधि पूर्ण होने के पश्चात एक सौभाग्यवती नारी जो 16 श्रृंगारों से सजी हुई एवं केश राशि खुली रखी गई हो उसे जिनमंदिर में बुलाएं। उसके दोनों हाथों से बाजोठ के चारों ओर कुंकुम-हल्दी के पानी का छिटकाव करवाएं। तीन बार फूल बिखराएं। फिर वह जिनमंदिर से बाहर आ जाएं।

पात्र विसर्जन– प्रत्येक दीपक बुझ जाये तब सोलह पात्र एवं छत पर रखे गये चार संध्या पात्र, ऐसे कुल 20 पात्रों को एक पेटी में बंद करें तथा कुंकुम-हल्दी का पानी एवं विकीर्ण पुष्पों को भी एकत्रित करके पेटी में डाल दें। उस पेटी को दो व्यक्ति नगर के बाहर निर्जन स्थान पर रख आये। लौटते समय पीछे मुड़कर नहीं देखें, मौन पूर्वक कार्य करें और साथ में एक हथियार रखें।

चार वेदिका– जिन मंदिर की चारों दिशाओं में मिट्टी की चार वेदिका स्थापित करें। वेदिका को मींढल युक्त मौली से बांधें। उसके ऊपर कुंकुम का साथिया, उसके ऊपर अक्षत का साथिया, उसके ऊपर सुपारी, सप्त धान्य के बाकुले एवं जवारा का एक सकोरा **'ॐ ह्रीँ क्ष्वीं सर्वोपद्रवान् बिम्बस्य रक्ष रक्ष स्वाहा'–** यह मन्त्र बोलकर रखें।

फिर 21 तार वाले सूत के धागे को गुरु महाराज के द्वारा नवकार, उवसग्गहरं एवं लोगस्ससूत्र से सात बार अभिमन्त्रित करवाएं तथा **'ॐ ह्रीँ क्ष्वीं सर्वोपद्रवान् बिम्बस्य रक्ष-रक्ष स्वाहा'–** इस मन्त्र से 21 बार वासचूर्ण डलवाएं। तदनन्तर इस धागे को जिनमन्दिर के दाहिने खंभे पर प्रदक्षिणा क्रम से बंधवायें।

गादी पूजन– जिस गादी पर जिनबिम्ब को प्रतिष्ठित करना हो उस गादी के नीचे अक्षत, जौ, सरसों, पंचरत्न की पोटली, डाभ, आठ जाति की मिट्टी, चाँदी का रूपया और चांदी का कच्छप रखें।

क्रियाकारक चांदी के प्रत्येक कच्छप (कूर्म) को प्रक्षालित कर उन पर यक्ष कर्दम के द्वारा अनामिका अंगुली से निम्न मंत्र लिखें– **'ॐ कूर्म निज पृष्ठे जिनबिम्बं धारय-धारय स्वाहा।'**

इसी मन्त्र का स्मरण करते हुए गुरु भगवन्त प्रत्येक कूर्म पर वासचूर्ण डालें। कच्छप का मुख द्वार की तरफ रखें।

दृष्टि मेल– प्रभु दृष्टि का मिलान रात्रि में ही कर दें। तदनुसार भगवान विराजमान करने की जगह को पहले से ही टांकणी द्वारा निश्चित कर लें।

जिन मन्दिर के गर्भगृह के चारों कोनों में मिट्टी के चार घड़े रखें। वहाँ चारों जगह 'तिजयपहुत्त स्तोत्र' का पाठ करें। फिर पूर्वाभिमुख और उत्तराभिमुख चैत्यवंदन करें।

मध्य रात्रि जाप– मध्य रात्रि में शिखर के ऊपर दो व्यक्ति धूप-दीप पूर्वक 48 मिनट तक 'सभी क्षेत्रदेवता मुझे अनुकूल हो' यह जाप करें। उस समय जिनमंदिर के रंगमंडप में दशांगधूप पूर्वक उवसग्गहरं स्तोत्र का 108 बार जाप करें। प्रतिष्ठा के दो दिन पहले से ही 12 दिनों तक गाँव के प्रत्येक घर में से कोई भी एक व्यक्ति निम्न मंत्र का 108 बार जाप करें।

ॐ नमोऽर्हत्परमेश्वराय चतुर्मुखाय परमेष्ठिने दिक्कुमारी परिपूजिताय देवाधिदेवाय त्रैलोक्य महिताय श्री...... नमः।

शिखर की विधि– मूलनायक भगवान के ध्वजदंड का अभिषेक आदि होने के पश्चात गाजते-बाजते जिनमंदिर अथवा सिंहासन की तीन प्रदक्षिणा करें। उसके बाद ध्वजदंड और कलश को शिखर पर चढ़ायें।

क्रियाकारक रजतमय वास्तु पुरुष का प्रक्षाल कर केसर-बरास आदि से उसका विलेपन करें, यक्षकर्दम से कपाल पर तिलक करें, पुष्प चढ़ायें, गुरु भगवन्त से वासचूर्ण डलवाएं। फिर वास्तु मूर्ति को ऊपर ले जायें।

शिखर पर कलश के नीचे तांबे का लोटा, उसमें घी, मिश्री एवं पंचरत्न की पोटली रखें। उसके ढक्कन को सील बंध करें। फिर शिखर पर स्वर्ण जल एवं केसर के छांटने करने के बाद उस लोटे को स्थापित करें।

उस लोटे के ऊपर चाँदी का पलंग रखें। उस पर रेशमी गद्दी-तकिया बिछाएँ। उस गद्दी पर वास्तु मूर्ति को सन्मुख पैर रहे और पीछे मस्तक रहे इस विधि से स्थापित करें। उस वास्तु पुरुष की मूर्ति को सात धान्यों से बधाएं। ध्वजदंड के नीचे पंचरत्न की पोटली रखें। आमलसार पर पंचरंगी सूत के धागे में मींढल-मरडाशिंग बाँधकर तीन आंटे लगाएं।

शिखर पर निम्न श्लोक पढ़कर पुष्पांजलि करें।

कुलधर्मजातिलक्ष्मी, जिनगुरु भक्तिपरोन्नति देवी।
प्रासादे पुष्पाञ्जलिं, रचयास्मत्कररत्नो भूयात्।।

ध्वजदंड एवं कलश प्रतिष्ठा– जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा के समय कलश के निकट के **खामणामां** और ध्वजदंड पर सीमेन्ट लगाएँ। दंड के ऊपर ध्वजा बांधी हो तो उसे खोलकर ध्वजा फहराएं।

प्रतिष्ठा के दिन सुबह एक थाली बाकुला उबलवाएं। उसमें लापसी, वघारे गये चावल, खीर, सादा चावल, सेव की बरेज, मालपूआ, चने के मसाले वाले मालपूए, उड़द के बड़े आदि एवं सुपारी, खारक, नारियल के टुकड़े, पीसी हुई शक्कर, घी आदि डालने चाहिए। उसके ऊपर नागरवेल के पत्ते और फूल रखने चाहिए। उस बाकुला को भूतबलि मंत्र से तीन बार अभिमंत्रित करें।

भूतबलि मन्त्र—

ॐ नमो अरिहंताणं, ॐ नमो सिद्धाणं, ॐ नमो आयरियाणं, ॐ नमो उवज्झायाणं, ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं, ॐ नमो आगासगामीणं, ॐ नमो चारणाइलद्धीणं। जे इमे किन्नर-किंपुरिस-महोरग-गरुल-सिद्ध-गंधव्व-जक्ख-रक्खस-पिसाय-भूय-पेय-साइणि-डाइणिप्पभिइओ जिणघरनिवासिणो नियनियनिलयठिया पवियारिणो सन्निहिया असन्निहिया य ते सव्वे इमं विलेवण-धूव-पूप्फ-फल-पईव-सणाहं बलिं पडिच्छंता, तुट्ठिकरा भवन्तु, सिवंकरा भवन्तु, संतिकरा भवन्तु, सुत्थं जणं कुव्वंतु, सव्वन्निणाणं सन्निहाणपभावओ पसन्नभावत्तणेण सव्वत्थ रक्खं कुणंतु, सव्वत्थ दुरियाणि नासंतु, सव्वासिवमुवसमंतु, संति-तुट्ठि-पुट्ठि-सिव-सुत्थयणकारिणो भवन्तु स्वाहा।

बाकुला प्रदान— बाकुला अभिमंत्रित करने के पश्चात जिनमंदिर के बाहर दाहिनी तरफ अथवा छत के ऊपर जाकर दसों दिशाओं के दिक्पालों को अनुक्रमशः अर्पित करें। एक व्यक्ति बाकुला दें, एक पानी का कलश, एक धूप-दीप और एक व्यक्ति केसर-पुष्प-सुपारी चढ़ाएं। एक घंटा बजाएं, एक दर्पण धारण करें और एक चामर ढुलाएं।

पूर्व दिशा में— **ॐ नमः इन्द्राय पूर्वदिगधिष्ठायकाय ऐरावणवाहनाय सहस्रनेत्राय वज्रायुधाय सपरिजनाय अस्मिन् जम्बूद्वीपे...श्रीसङ्घकारिते / व्यक्ति...... कारिते जिनबिम्बप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे, ध्वजदण्डकल-शप्रतिष्ठा, देव-देवी प्रतिष्ठा, गुरु मूर्ति प्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ पूजां बलिं गृहाण-गृहाण शान्तिकरा भवन्तु, तुष्टिकरा भवन्तु, पुष्टिकरा भवन्तु, शिवङ्करा भवन्तु स्वाहा।**

अग्नि कोण में— **ॐ नम अग्नये शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय सपरिजनाय अस्मिन् जम्बूद्वीपे...... श्री सङ्घकारिते / व्यक्ति...... कारिते**

जिनबिम्बप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे, ध्वजदण्डकलशप्रतिष्ठा, देव-देवी प्रतिष्ठा, गुरुमूर्तिप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ पूजां बलिं गृहाण-गृहाण शान्तिकरा भवन्तु, तुष्टिकरा भवन्तु, पुष्टिकरा भवन्तु, शिवङ्करा भवन्तु स्वाहा।

दक्षिण दिशा में- ॐ नमो यमाय दक्षिणदिगधिष्ठायकाय महिष-वाहनाय दण्डायुधाय कृष्णमूर्तये सपरिजनाय अस्मिन् जम्बूद्वीपे...... श्रीसंघकारिते / व्यक्ति...... कारिते जिनबिम्बप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे, ध्वजदण्डकलशप्रतिष्ठा, देव-देवी प्रतिष्ठा, गुरुमूर्तिप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ पूजां बलिं गृहाण-गृहाण शान्तिकरा भवन्तु, तुष्टिकरा भवन्तु, पुष्टिकरा भवन्तु, शिवंकरा भवन्तु स्वाहा।

नैर्ऋत्य कोण में- ॐ नमो नैर्ऋताय खड्गहस्ताय शववाहनाय सपरि-जनाय अस्मिन् जम्बूद्वीपे...... श्रीसङ्घकारिते / व्यक्ति...... कारिते जिनबिम्बप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे, ध्वजदण्डकलशप्रतिष्ठा, देव-देवी प्रतिष्ठा, गुरुमूर्तिप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ पूजां बलिं गृहाण-गृहाण शान्तिकरा भवन्तु, तुष्टिकरा भवन्तु, पुष्टिकरा भवन्तु, शिवङ्करा भवन्तु स्वाहा।

पश्चिम दिशा में- ॐ नमो वरुणाय पश्चिमदिगधिष्ठायकाय मकर-वाहनाय पाशहस्ताय सपरिजनाय अस्मिन् जम्बूद्वीपे...... श्रीसंघकारिते / व्यक्ति...... कारिते जिनबिम्बप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे, ध्वजदण्डकलशप्रतिष्ठा, देव-देवी प्रतिष्ठा, गुरुमूर्तिप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ पूजां बलिं गृहाण-गृहाण शान्तिकरा भवन्तु, तुष्टिकरा भवन्तु, पुष्टिकरा भवन्तु, शिवङ्करा भवन्तु स्वाहा।

वायव्य कोण में- ॐ नमो वायवे वायवीपतये ध्वजहस्ताय सपरिजनाय अस्मिन् जम्बूद्वीपे...... श्रीसङ्घकारिते / व्यक्ति...... कारिते जिनबिम्बप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे, ध्वजदण्डकलशप्रतिष्ठा, देव-देवी प्रतिष्ठा, गुरुमूर्तिप्रतिष्ठाविधिमहोत्सव आगच्छ आगच्छ पूजां बलिं गृहाण गृहाण शान्तिकरा भवन्तु, तुष्टिकरा भवन्तु, पुष्टिकरा भवन्तु, शिवङ्करा भवन्तु स्वाहा।

उत्तर दिशा में- ॐ नमः कुबेराय उत्तरदिगधिष्ठायकाय गदाहस्ताय नरवाहनाय सपरिजनाय अस्मिन् जम्बूद्वीपे...... श्री संघकारिते /

व्यक्ति...... कारिते जिनबिम्बप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे, ध्वजदण्डकलश-प्रतिष्ठा, देव-देवी प्रतिष्ठा, गुरुमूर्तिप्रतिष्ठा-विधिमहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ पूजां बलिं गृहाण-गृहाण शान्तिकरा भवन्तु, तुष्टिकरा भवन्तु, पुष्टिकरा भवन्तु, शिवङ्करा भवन्तु स्वाहा।

ईशान कोण में– **ॐ नम ईशानाय ऐशानीपतये त्रिशूलहस्ताय वृषभ-वाहनाय सपरिजनाय अस्मिन् जम्बूद्वीपे...... श्रीसंघकारिते / व्यक्ति ...... कारिते जिनबिम्बप्रतिष्ठाविधि-महोत्सवे, ध्वजदण्डकलशप्रतिष्ठा, देव-देवी प्रतिष्ठा, गुरुमूर्तिप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे आगच्छ-आगच्छ पूजां बलिं गृहाण-गृहाण शान्तिकरा भवन्तु, तुष्टिकरा भवन्तु, पुष्टिकरा भवन्तु, शिवङ्करा भवन्तु स्वाहा।**

ऊपर में– **ॐ नमो ब्रह्मणे ऊर्ध्वलोकाधिष्ठायकाय राजहंसवाहनाय सपरिजनाय अस्मिन् जम्बूद्वीपे...... श्रीसंघकारिते / व्यक्ति...... कारिते जिनबिम्बप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे, ध्वजदण्डकलशप्रतिष्ठा, देव-देवी प्रतिष्ठा, गुरुमूर्तिप्रतिष्ठाविधि-महोत्सवे आगच्छ-आगच्छ पूजां बलिं गृहाण-गृहाण शान्तिकरा भवन्तु, तुष्टिकरा भवन्तु, पुष्टिकरा भवन्तु, शिवङ्करा भवन्तु स्वाहा।**

नीचे में– **ॐ नमो नागेभ्यः पातालाधिष्ठायकेभ्यः पद्मवाहनेभ्यः सपरिजनेभ्यः अस्मिन् जम्बूद्वीपे...... श्रीसंघकारिते / व्यक्ति...... कारिते जिनबिम्बप्रतिष्ठा-विधिमहोत्सवे, ध्वजदण्डकलशप्रतिष्ठा, देव-देवी प्रतिष्ठा, गुरुमूर्तिप्रतिष्ठाविधिमहोत्सवे आगच्छत-आगच्छत, पूजां बलिं गृहणीत-गृहणीत शान्तिकरा भवन्तु, तुष्टिकरा भवन्तु, पुष्टिकरा भवन्तु, शिवङ्करा भवन्तु स्वाहा।**

ॐ आदित्य-सोम-मङ्गल-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनैश्चर-राहु-केतु-सहिताः खेटा जिनपतिपुरतोऽवतिष्ठत स्वाहा। अस्मिन् जम्बूद्वीपे...... श्रीसंघकारिते / व्यक्ति ...... कारिते जिनबिम्बप्रतिष्ठा-विधिमहोत्सवे, ध्वजदण्डकलशप्रतिष्ठा, देव-देवी प्रतिष्ठा, गुरुमूर्तिप्रतिष्ठा-विधिमहोत्सवे आगच्छत-आगच्छत, पूजांबलिं गृहणीत-गृहणीत शान्तिकरा भवन्तु, तुष्टिकरा भवन्तु, पुष्टिकरा भवन्तु, शिवङ्करा भवन्तु स्वाहा।

प्रभु प्रतिष्ठा– प्रतिष्ठा के दिन जिनमंदिर में सुबह स्नात्र पूजा करवाएं। प्रतिष्ठा लग्न के निकट आने पर गुरु भगवन्त के द्वारा कुंभस्थापना आदि के

ऊपर वासचूर्ण डलवाएं। क्रियाकारक केसर-पुष्पादि से पूजा करें। गुरु महाराज दसों दिशाओं का दिग्बंधन करें। उसके पश्चात उपस्थित संघ से निम्न मंत्र को सात बार बुलवाएं–

'ॐ ह्रीँ श्रीं जीराउली पार्श्वनाथ! रक्षां कुरु-कुरु स्वाहा।'

फिर निम्न मंत्र को सात बार बुलवाएं– **'ॐ कूर्म! निजपृष्ठे जिनबिम्ब धारय-धारय स्वाहा।'**

फिर गुरु भगवन्त **'ॐ स्थावरे तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा'**– इस मंत्र को सात बार बोलकर लग्न समय में श्वास रोकते हुए थाली बजवाएं तथा मंगल वाजिंत्र एवं शहनाईयों के स्वर के साथ जिनबिम्ब, ध्वजदंड, कलश, परिकर, देव देवी, मंगलमूर्ति, गूरु मूर्ति, गुरु पादुका आदि पर वासचूर्ण डालते हुए प्रतिष्ठा करें।

यदि गुरु मूर्ति, गणधर मूर्ति एवं गुरु पादुका की प्रतिष्ठा साथ में हो तो मन्दिर के चारों दिशाओं में चार गृहस्थों के द्वारा एक-एक श्रीफल बधराएं। गुरु मूर्ति के सन्मुख अक्षत की तीन ढ़गली करके उन पर सुपारी रखें।

माणक दीपक– मूलनायक भगवान के दाहिनी तरफ एक गोखले में 24 प्रहर के लिए अखंड दीपक प्रगटाएं। सकोरे के अंदर पहले से ही केसर का साथिया करके चावल, सुपारी, पंचरत्न की पोटली, सूत की बत्ती रखकर घी भर दें। निम्न श्लोक पढ़कर मंगल दीवा से उस दीपक को प्रज्वलित करें–

ॐ अर्हं पञ्चज्ञान महाज्योति-र्मयाय ध्वान्तघातिने ।
द्योतनाय प्रतिमायाः, दीपो भूयात् सदार्हते स्वाहा ।।

अष्ट प्रकारी पूजा– फिर मूलनायक भगवान आदि की अष्ट प्रकारी पूजा करें। भगवान के सन्मुख एक चौकी पर अखंड एक लाख अक्षतों का साथिया बनाएं। उसके ऊपर 24 नैवेद्य, 108 सुपारी, मेवा का थाल, 24 फल, 9 श्रीफल आदि रखें।

कांसा की थाली में चाँदी का पैसा एवं गरम घी डालकर उसमें मूलनायक भगवान का मुख दिखाएं।

प्रतिष्ठा के बाद की विधि– फिर दो थालियों में कुंकुम भिगोकर तैयार रखें। उन्हें गुरु भगवन्त के द्वारा निम्न मंत्र से अभिमंत्रित करवाएं–

'ॐ बिम्बस्थापकाय गृहाधिपतये सौख्यं कुरु-कुरु स्वाहा।'

फिर सजोड़े जिनमंदिर और गर्भगृह में कुंकुम के छापे दिलवाएं। सौभाग्यवती नारियाँ प्रभुजी का पौंखणा करें। फिर आरती-मंगल दीपक करें।

फिर गुरु महाराज संघ के साथ चार स्तुतियों से देववन्दन करें। इसी क्रम में क्षेत्र देवता, भुवन देवता एवं क्षुद्रोपद्रव देवताओं के कायोत्सर्ग करके उनकी स्तुतियाँ बोलें।

तदनन्तर आचार्य बिम्ब स्थापना की महिमा का उपदेश दें। उस दिन प्रभावना करें। गुरु को अन्न-वस्त्रादि बहराएं। साधर्मिक वात्सल्य करें। संघ पर केशर के छांटने करें। विजयमुहूर्त्त में अष्टोत्तरी या स्नात्रपूजा करावें। रात्रि में पूर्व दिन की तरह सोलह पात्र की विधि करवाएं। उसके बाद प्रभुजी के सन्मुख एक पट्टे के ऊपर एक जवार की थाली, उसके ऊपर सवा किलो बूंदी का लड्डू और उसके ऊपर अणविंध्या एक मोती रखें।

नवीन बिम्ब को देवगृह में स्थापित करने की विधि

जिस दिन नूतन बिम्ब की अंजनशलाका (प्राण प्रतिष्ठा) हुई हो उसी दिन प्रतिमा को चैत्यगृह में प्रतिष्ठित करना हो तो कल्याणकलिका के अनुसार यह विधि है–

जिस वेदी पर प्रतिमा स्थापित करना हो वहाँ पहले कुंभकार के चाक की मिट्टी और डाभ स्थापित करें। उसके ऊपर चंदन का स्वस्तिक करें। फिर उसके ऊपर तीन प्रकार के आसन यंत्रों में से कोई एक यंत्र मूलनायक विराजमान करने की जगह पर स्थापित करें अथवा लिखें। उसके बाद सभी दिशाओं में बलि बाकुला का प्रक्षेपण करें।

तत्पश्चात मुहूर्त्त का समय निकट आने पर **''ॐ कूर्म निजपृष्ठे जिन बिम्बं धारय-धारय स्वाहा''** इस मंत्र को सात बार कहकर भगवान का आसन अभिमंत्रित करें। फिर शुभ मुहूर्त्त की वेला में नूतन बिम्ब को आसन पर स्थापित कर **'ॐ स्थावरे तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा'** इस मन्त्र का प्रतिमा के ऊपर सात बार न्यास करें तथा प्रतिमा के ऊपर वासचूर्ण डालें।

गृहस्थ स्नात्रकार चन्दन से पूजा करें, धूप प्रगटाएं, सुगंधित पदार्थ चढ़ाएं और मंगल दीपक करें।

वर्तमान में प्रतिमा स्थापन की शुभ घड़ियों में 'ॐ पुण्याहं-पुण्याहं' 'प्रीयन्तां-प्रीयन्तां' ऐसे मंगलकारी शब्दों का उद्घोष भी करते हैं जिससे समूचा वातावरण प्रभु भक्तिमय बन जाता है।[22]

।। इति जिनबिम्ब प्रतिष्ठा विधि ।।

नन्द्यावर्त्त आलेखन एवं पूजन विधि

नन्द्यावर्त्त का पारिभाषिक अर्थ है नवकोणात्मक स्वस्तिक की रचना। नंदी + आवर्त्त इन दो शब्दों के योग से नंद्यावर्त्त की रचना हुई है। नन्दी शब्द मंगल, समृद्धि, सम्पूर्णता, अखण्डता आदि का वाचक है। नन्दी का मुख्य अर्थ ज्ञान है। ज्ञानों में सर्वश्रेष्ठ केवलज्ञान की प्राप्ति हेतु नंद्यावर्त्त पूजन करते हैं।

यहाँ उल्लेखनीय है कि केवलज्ञान की प्राप्ति होने के बाद ही समवसरण की रचना होती है अतः समवशरण में ज्ञान की प्रधानता है। इसीलिए समवसरण के प्रतीक रूप में त्रिगड़ा रचना को नन्दी रचना कहते हैं। दीक्षा, व्रत, उपधान आदि प्रसंगों पर समवसरण रूप नाण मांडी जाती है। नाण शब्द ज्ञान का ही अपभ्रंश रूप है। समवसरण में चार निकाय देवों के जघन्यतः करोड़ों देवता उपस्थित रहते हैं। उन देवों की भी वर्गानुक्रम से पर्षदा होती है। नन्द्यावर्त्त पट्ट के आवर्त्तों में इनका भी अंकन किया जाता है। इस प्रकार तीर्थंकर परमात्मा के ज्ञानातिशय के साथ सम्बन्ध रखने वाला यह पूजन अंजनशलाका-प्रतिष्ठा के प्रसंग पर जरूर करना-करवाना चाहिए। सुविहित आचार्यों ने भी इसका आलेखन किया है।

नन्द्यावर्त्त पूजन करने का दूसरा हेतु यह है कि नव का अंक अक्षत अंक माना जाता है इसलिए अक्षय पद की प्राप्ति हेतु नवकोणात्मक नन्द्यावर्त्त पूजन अवश्य करना चाहिए।

ध्यातव्य है कि नन्द्यावर्त्त पूजन करने से पूर्व एक काष्ठ पट्ट पर नन्द्यावर्त्त की रचना कर कुछ आवर्त्तों में उल्लिखित विधि के अनुसार देवी-देवता, विद्या देवियाँ, तीर्थंकर माता, दिक्पाल इन्द्र आदि के नाम लिखे जाते हैं उसके पश्चात उन्हीं नामों का उच्चारण करते हुए पुष्प आदि से प्रत्येक का पूजन करते हैं।

यहाँ प्रश्न होता है कि नन्द्यावर्त्त पट्ट में कितने वलय (आवर्त्त) होने चाहिए? यदि प्राचीन-अर्वाचीन प्रतिष्ठा कल्पों को देखा जाए तो उनमें संख्या भेद नजर आता है। निर्वाणकलिका, श्रीचन्द्रकृत प्रतिष्ठाकल्प एवं विधिमार्गप्रपा में छह, आचार दिनकर में दस और सकलचन्द्रकृत प्रतिष्ठाकल्प में आठ वलय का उल्लेख है। वलयों में लिखे जाने वाले नामों के क्रम में भी अन्तर है। वर्तमान में आठ अथवा दस वलय के अनुसार यह पूजन करते हैं। कल्याण

कलिका में प्राचीन एवं नव्य दोनों प्रतिष्ठा पद्धतियों के आधार पर नन्द्यावर्त्त पूजन विधि कही गई है।

यहाँ प्राचीनता के मूल्य को अक्षुण्ण रखते हुए छह वलयों से युक्त नन्द्यावर्त्त विधि कही जा रही है। नन्द्यावर्त्त के प्रथम वलय में अर्हदादि 8 और इन्द्रादि 4, दूसरे में 24 जिनमाता, तीसरे वलय में 24 लोकान्तिक देव, चौथे वलय में 16 विद्या देवियाँ, पाँचवें वलय में इन्द्रादि 8, छठे वलय में दिशापाल 10 ऐसे कुल 94 पदों का पूजन एवं आलेखन किया जाता है।

नन्द्यावर्त्त आलेखन की विधि

विधिमार्गप्रपा के अनुसार नन्द्यावर्त्त रचना विधि इस प्रकार है-

कुछ निर्देश– 1. यह आलेखन पूजनकर्ता अथवा विधिकारक भद्रासन ऊपर बैठकर करें।

2. सर्वप्रथम लगभग एक गज सम चौरस बने हुए श्रीपर्णी के पट्ट पर कर्पूर मिश्रित चन्दन रस से सात लेप करें। फिर कर्पूर, कस्तूरी, गोरोचन, कुंकुम और केशर मिश्रित रस से अनार की कलम के द्वारा प्रदक्षिणा के क्रम पूर्वक नव कोण युक्त नन्द्यावर्त्त का आलेखन करें।

3. तत्पश्चात नन्द्यावर्त्त रचना के मध्य भाग में चल बिम्ब की स्थापना करें।

4. उसके बाद जिनबिम्ब के दाहिनी ओर सौधर्मेन्द्र, बायीं ओर ईशानेन्द्र और नीचे की तरफ श्रुतदेवी की स्थापना करें।

5. तदनन्तर नन्द्यावर्त्त की परिधि को वलय से वेष्ठित कर अनुक्रम से बाहर के भाग की तरफ छह वलय करें।

प्रथम वलय– परिधि से बाहर प्रथम वलय में आठ गृह (खण्ड) की रचना कर उनमें पंच परमेष्ठी एवं रत्नत्रय इन आठ के नाम लिखें– 1. ॐ नमोऽर्हद्भ्यः स्वाहा 2. ॐ नमः सिद्धेभ्यः स्वाहा 3. ॐ नमः आचार्येभ्यः स्वाहा 4. ॐ नमः उपाध्यायेभ्यः स्वाहा 5. ॐ नमः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा 6. ॐ नमो ज्ञानाय स्वाहा 7. ॐ नमो दर्शनाय स्वाहा 8. ॐ नमः चारित्राय स्वाहा।

उसके बाद नन्द्यावर्त्त के पूर्वादि चारों दिशाओं में दिशाधिपति सोम, यम, वरुण, कुबेर का नामोल्लेख तथा चारों दिशाधिपतियों के धनु, दण्ड, पाश, गदा– इन चिह्नों का अंकन करें।

द्वितीय वलय— तत्पश्चात एक वलयाकार परिधि बनायें। उसके बाहर आग्नेय आदि चारों कोणों में छह-छह गृह की रचना करें। फिर प्रत्येक गृह में क्रमशः चौबीस तीर्थंकरों की माताओं के नाम लिखें— 1. ॐ नमो मरुदेव्यै स्वाहा 2. ॐ नमो विजयायै स्वाहा 3. ॐ नमः सेनायै स्वाहा 4. ॐ नमः सिद्धार्थायै स्वाहा 5. ॐ नमो मंगलायै स्वाहा 6. ॐ नमः सुसीमायै स्वाहा 7. ॐ नमः पृथ्व्यै स्वाहा 8. ॐ नमो लक्ष्मणायै स्वाहा 9. ॐ नमो रामायै स्वाहा 10. ॐ नमो नन्दायै स्वाहा 11. ॐ नमो विष्णवे स्वाहा 12. ॐ नमो जयायै स्वाहा 13. ॐ नमः श्यामायै स्वाहा 14. ॐ नमः सुयशसे स्वाहा 15. ॐ नमः सुव्रतायै स्वाहा 16. ॐ नमोऽचिरायै स्वाहा 17.ॐ नमः श्रियै स्वाहा 18. ॐ नमो देव्यै स्वाहा 19. ॐ नमः प्रभावत्यै स्वाहा 20. ॐ नमः पद्मावत्यै स्वाहा 21. ॐ नमो वप्रायै स्वाहा 22. ॐ नमः शिवायै स्वाहा 23. ॐ नमो वामायै स्वाहा 24. ॐ नमः त्रिशलायै स्वाहा।

तृतीय वलय— तत्पश्चात पुनः एक मण्डलाकार परिधि बनायें। उसके बाहर पूर्वादि दिशाओं के बीच में चार-चार ऐसे सोलह गृह की रचना करें और उनमें क्रमशः सोलह विद्या देवियों के नाम लिखें— 1. ॐ नमो रोहिण्यै स्वाहा 2. ॐ नमः प्रज्ञप्त्यै स्वाहा 3. ॐ नमो वज्रशृंखलायै स्वाहा 4. ॐ नमो वज्रांकुश्यै स्वाहा 5. ॐ नमोऽप्रतिचक्रायै स्वाहा 6. ॐ नमः पुरुषदत्तायै स्वाहा 7. ॐ नमः काल्यै स्वाहा 8. ॐ नमो महाकाल्यै स्वाहा 9. ॐ नमो गोर्‍यै स्वाहा 10. ॐ नमो गन्धार्यै स्वाहा 11. ॐ नमो महाज्वालायै स्वाहा 12. ॐ नमो मानव्यै स्वाहा 13. ॐ नमोऽछुप्तायै स्वाहा 14. ॐ नमो वैरोट्यायै स्वाहा 15. ॐ नमो मानस्यै स्वाहा 16. ॐ नमो महामानस्यै स्वाहा।

चतुर्थ वलय— उसके बाद पुनः बाहर की तरफ एक परिधि बनाकर पूर्वादि चारों दिशाओं के मध्य में छह-छह कुल चौबीस गृह की रचना करें और उनमें चौबीस भवनवासी लोकान्तिक देवों के नाम लिखें— 1. ॐ नमः सारस्वतेभ्यः स्वाहा 2. ॐ नमः आदित्येभ्यः स्वाहा 3. ॐ नमः वह्निभ्यः स्वाहा 4. ॐ नमः वरुणेभ्यः स्वाहा 5. ॐ नमः गर्दतोयेभ्यः स्वाहा 6. ॐ नमस्तुषितेभ्यः स्वाहा 7. ॐ नमोऽव्याबाधितेभ्यः स्वाहा 8. ॐ नमोरिष्टेभ्यः स्वाहा 9. ॐ नमोग्न्यायेभ्यः स्वाहा 10. ॐ नमः सूर्यायेभ्यः स्वाहा 11. ॐ नमश्चन्द्रायेभ्यः

स्वाहा 12. ॐ नमः सत्यायेभ्यः स्वाहा 13. ॐ नमः श्रेयस्करेभ्यः स्वाहा 14. ॐ नमः क्षेमंकरेभ्यः स्वाहा 15. ॐ नमः वृषभेभ्यः स्वाहा 16. ॐ नमः कामचारेभ्यः स्वाहा 17. ॐ नमः निर्वाणेभ्यः स्वाहा 18. ॐ नमः दिशान्तरक्षितेभ्यः स्वाहा 19. ॐ नमः आत्मरक्षितेभ्यः स्वाहा 20. ॐ नमः सर्वरक्षितेभ्यः स्वाहा 21. ॐ नमः मारुतेभ्यः स्वाहा 22. ॐ नमः वसुभ्यः स्वाहा 23. ॐ नमोऽश्वेभ्यः स्वाहा 24. ॐ नमः विश्वेभ्यः स्वाहा।

पंचम वलय– पुनः एक मण्डलाकार परिधि बनायें। उसके बाहर पूर्वादि दिशाओं के मध्य में दो-दो कुल आठ गृह की रचना कर आठ इन्द्र-इन्द्राणियों के नाम लिखें– 1. ॐ सौधर्मादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा 2. तद्देवीभ्यः स्वाहा 3. ॐ चमरादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा 4. तद्देवीभ्यः स्वाहा 5.ॐ चन्द्रादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा 6. तद्देवीभ्यः स्वाहा 7. ॐ किन्नरादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा 8. तद्देवीभ्यः स्वाहा।

षष्ठम वलय– पुनः एक मण्डलाकार परिधि बनायें। उसके बाहर पूर्वादि चारों दिशाओं के मध्य में दो-दो तथा ऊपर एवं नीचे में एक-एक कुल दस गृह की रचनाकर उनमें क्रम से दस दिक्पालों के नाम लिखें– 1. ॐ नमः इन्द्राय स्वाहा 2. ॐ नमः अग्नये स्वाहा 3. ॐ नमः यमाय स्वाहा 4. ॐ नमः नैर्ऋतये स्वाहा 5. ॐ नमः वरुणाय स्वाहा 6. ॐ नमः वायवे स्वाहा 7. ॐ नमः कुबेराय स्वाहा 8. ॐ नमः ईशानाय स्वाहा 9. नीचे के भाग में ॐ नमः नागेभ्यः स्वाहा 10. ऊपर के भाग में ॐ नमः ब्रह्मणे स्वाहा।

वर्तमान प्रतियों के अनुसार छह वलय के पश्चात मण्डलाकार तीन प्रकार के तीन वलय बनायें। इसके चारों दिशाओं में द्वार बनाकर उसके ऊपर तोरण और ध्वजा का आलेखन करें। फिर प्रथम प्राकार के पूर्वादि द्वारों के भीतर दोनों तरफ 1. वैमानिक 2. व्यन्तर 3. ज्योतिष और 4. वैमानिक देव और देवियाँ– इन दो-दो युगलों का अनुक्रम से पीत, श्वेत, रक्त और कृष्ण वर्ण में आलेखन करें। द्वार के मध्य में यष्टिधारी तुंबरू का आलेखन करें। दूसरे प्राकार में पूर्वादि द्वारपालों के रूप में 1. जया 2. विजया 3. अजिता और 4. अपराजिता तथा तीसरे प्राकार में पूर्वादि द्वारपालों के रूप में चार तुंबरू का आलेखन करें।

यहाँ दूसरे प्राकार में तिर्यञ्च जीव और तीसरे प्राकार में यान-वाहन का आलेखन भी करें।

प्रतिष्ठा दिन से पूर्व ही नन्द्यावर्त्त पट्ट के ऊपर वर्णित नामों का आलेखन कर उसे श्रेष्ठ वस्त्र से आच्छादित करें। फिर एकान्त स्थान में रख दें।

तदनन्तर जिनबिम्ब की अधिवासना हो जाने के पश्चात अथवा पहले कपूर, श्रेष्ठ चन्दन का चूर्ण एवं श्वेत पुष्पों के द्वारा तथा मन्त्रों के नामोच्चारण पूर्वक नन्द्यावर्त्त पट्ट के प्रत्येक वलय गृहों की क्रमशः पूजा करनी चाहिए।

इस पूजा विधि में आचार्य मन्त्रोच्चार करते हुए वास चूर्ण डालते हैं तथा लाभार्थी परिवार के स्नात्रकार मन्त्रों का श्रवण करते हुए यथाक्रम से पुष्पादि अर्पण करें।

नन्द्यावर्त्तपट्ट पूजन की विधि

विधिमार्गप्रपा के मतानुसार नन्द्यावर्त्त पूजन विधि इस प्रकार है-

प्रथम वलय-- प्रथम वलय में निम्न मन्त्रों का उच्चारण करते हुए प्रत्येक गृह में उल्लिखित नामों पर आचार्य वासचूर्ण तथा स्नात्रकार पुष्प-कपूर अर्पित करें।

मन्त्र-- ॐ नमोऽर्हद्भ्यः स्वाहा, ॐ नमः सिद्धेभ्यः स्वाहा, ॐ नमः आचार्येभ्यः स्वाहा, ॐ नमः उपाध्यायेभ्यः, ॐ नमः सर्वसाधुभ्यःस्वाहा, ॐ नमो ज्ञानाय स्वाहा, ॐ नमो दर्शनाय स्वाहा, ॐ नमश्चारित्राय स्वाहा।

द्वितीय वलय-- द्वितीय वलय में निम्न मन्त्रों का उच्चारण करते हुए प्रत्येक गृह में उल्लिखित नामों पर वासचूर्ण तथा स्नात्रकार पुष्प-कपूर अर्पित करें।

मन्त्र-- 1. ॐ मरुदेव्यै स्वाहा 2. ॐ विजया देव्यै स्वाहा 3. ॐ सेनादेव्यै स्वाहा 4. ॐ सिद्धार्थ देव्यै स्वाहा 5. ॐ मंगलादेव्यै स्वाहा 6. ॐ सुसीमा देव्यै स्वाहा 7. ॐ पृथ्वी देव्यै स्वाहा 8. ॐ लक्ष्मणा देव्यै स्वाहा 9. ॐ रामा देव्यै स्वाहा 10. ॐ नन्दा देव्यै स्वाहा 11. ॐ विष्णु देव्यै स्वाहा 12. ॐ जया देव्यै स्वाहा 13. ॐ श्यामा देव्यै स्वाहा 14. ॐ सुयशा देव्यै स्वाहा 15. ॐ सुव्रता देव्यै स्वाहा 16. ॐ अचिरा देव्यै स्वाहा 17. ॐ श्री देव्यै स्वाहा 18. ॐ देवी देव्यै स्वाहा 19. ॐ पद्मावती देव्यै स्वाहा 20. ॐ पद्मा देव्यै स्वाहा 21. ॐ वप्रा देव्यै स्वाहा 22. ॐ शिवा देव्यै स्वाहा 23. ॐ वामादेव्यै स्वाहा 24. ॐ त्रिशला देव्यै स्वाहा।

तृतीय वलय– तृतीय वलय में निम्न मन्त्रों का उच्चारण करते हुए प्रत्येक गृह में उल्लिखित नामों पर वासचूर्ण तथा स्नात्रकार पुष्प-कपूर अर्पित करें।

मन्त्र– 1. ॐ रोहिणी देव्यै स्वाहा 2. ॐ प्रज्ञप्ति देव्यै स्वाहा 3. ॐ वज्रशृंखला देव्यै स्वाहा 4. ॐ वज्रांकुशी देव्यै स्वाहा 5. ॐ अप्रतिचक्रा देव्यै स्वाहा 6. ॐ पुरुषदत्ता देव्यै स्वाहा 7. ॐ काली देव्यै स्वाहा 8. ॐ महाकाली देव्यै स्वाहा 9. ॐ गौरी देव्यै स्वाहा 10. ॐ गांधारी देव्यै स्वाहा 11. ॐ महाज्वाला देव्यै स्वाहा 12. ॐ मानवी देव्यै स्वाहा 13. ॐ वैरोटया देव्यै स्वाहा 14. ॐ अच्छुप्ता देव्यै स्वाहा 15. ॐ मानसी देव्यै स्वाहा 16. ॐ महामानसी देव्यै स्वाहा।

चतुर्थ वलय– चतुर्थ वलय में निम्न मन्त्रों का उच्चारण करते हुए प्रत्येक खण्ड में उल्लिखित नामों पर वासचूर्ण तथा स्नात्रकार पुष्प-कर्पूर अर्पित करें।

मन्त्र– 1. ॐसारस्वतेभ्यः स्वाहा 2. ॐ आदित्येभ्यःस्वाहा 3. ॐ वह्निभ्यः स्वाहा, 4. ॐ वरुणेभ्यः स्वाहा 5. ॐ गर्दतोयेभ्यः स्वाहा 6. ॐ तुषितेभ्यः स्वाहा 7. ॐ अव्याबाधेभ्यः स्वाहा 8. ॐ अरिष्टेभ्यः स्वाहा 9. ॐ अग्न्याभेभ्यः स्वाहा 10 ॐ सूर्याभेभ्यः स्वाहा 11. ॐ चन्द्राभेभ्यः स्वाहा 12. ॐ सत्याभेभ्यः स्वाहा 13. ॐ श्रेयस्करेभ्यः स्वाहा 14. ॐ क्षेमंकरेभ्यः स्वाहा 15. ॐ वृषभेभ्यः स्वाहा 16. ॐ कामचारेभ्यः स्वाहा 17. ॐ निर्माणेभ्यः स्वाहा 18. ॐ दिशान्तरक्षितेभ्यः स्वाहा 19. ॐ आत्मरक्षितेभ्यः स्वाहा 20 ॐ ॐ सर्व्वरक्षितेभ्यः स्वाहा 21. ॐ मरुद्भ्यः स्वाहा 22. ॐ वसुभ्यः स्वाहा 23. ॐ अश्वेभ्यः स्वाहा 24. ॐ विश्वेभ्यः स्वाहा।

पंचम वलय– पंचम वलय में निम्न मन्त्रों का उच्चारण करते हुए प्रत्येक गृह में उल्लिखित नामों पर वासचूर्ण तथा स्नात्रकार पुष्प-कपूर अर्पित करें।

मंत्र– 1. ॐसौधर्मादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा 2. तद्देवीभ्यः स्वाहा 3. ॐ चमरादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा 4. तद्देवीयः स्वाहा 5. चन्द्रादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा 6. तद्देवीभ्यः स्वाहा 7. ॐ किन्नरादीन्द्रादिभ्यः स्वाहा 8. तद्देवीभ्यः स्वाहा।

षष्ठम वलय– षष्ठम वलय में निम्न मन्त्रों का उच्चारण करते हुए प्रत्येक खण्ड में उल्लिखित नामों पर वासचूर्ण तथा स्नात्रकार पुष्प-कपूर अर्पित करें।

मन्त्र–1. ॐ इन्द्राय स्वाहा 2. ॐ अग्नये स्वाहा 3. ॐ यमाय स्वाहा

4. ॐ नैऋत्ये स्वाहा 5. ॐ वरूणाय स्वाहा 6. ॐ वायवे स्वाहा 7. ॐ कुबेराय स्वाहा 8. ॐ ईशानाय स्वाहा।

तुलना– श्वेताम्बर मान्य निर्वाणकलिका, श्रीचन्द्रकल्प, विधिमार्गप्रपा, आचारदिनकर आदि प्रतिष्ठाकल्पों में नन्द्यावर्त्त आलेखन एवं पूजन विधि का स्पष्ट उल्लेख है, किन्तु वलय संख्या एवं मन्त्र नाम को लेकर क्वचित अन्तर देखा जाता है। निर्वाणकलिका में केवल नन्द्यावर्त्त पूजन के मन्त्र ही कहे गये हैं इसकी विधि का उल्लेख नहीं है।[23]

श्री चन्द्रसूरि के प्रतिष्ठाकल्प में आलेखन एवं पूजन की विधि संक्षेप में दी गई है।[24] विधिमार्गप्रपा में पूर्व कल्पों का अनुसरण करते हुए नन्द्यावर्त्त लेखन और पूजा की समुचित विधि बताई गई है। आचार दिनकर में यह विधि अत्यन्त विस्तार के साथ दी गई है। सकलचन्द्र प्रतिष्ठाकल्प में आचारदिनकर का अनुकरण करते हुए यह चर्चा संक्षेप में की गई है।

वलय की अपेक्षा प्रारम्भ के तीन ग्रन्थों में छह, आचार दिनकर में दस तथा सकलचन्द्र प्रतिष्ठाकल्प में आठ वलय का निर्देश है और तदनुसार ही पूजन विधि कही गई है। वलय संख्या में भेद होने से मन्त्र नामों एवं उनके क्रम में भी अन्तर है।

यह भेद वस्तुत: आचार्यों की अपनी परम्परा के कारण है इसलिए किसी भी प्रकार का नन्द्यावर्त्त आलेखन एवं पूजन करने में दोष नहीं है।

वलय संख्या की भिन्नता के आधार पर उसके मूल उद्देश्य में कोई परिवर्तन नहीं आता, क्योंकि कालक्रम में विधियों का बाह्य स्वरूप बदलता रहता है। यद्यपि प्राचीन विधि का सर्वाधिक महत्त्व होता है।

।। इति नन्द्यावर्त्त आलेखन-पूजन विधि ।।

यन्त्र निर्माण, स्थापना एवं पूजन विधि

भारतीय संस्कृति में यंत्र-मंत्र का सदा काल से प्राधान्य रहा है। बीजाक्षरों का नियमित स्मरण या जप मंत्र कहलाता है तथा बीजाक्षरों का एक निश्चित रीति से आलेखन करना यंत्र कहा जाता है। मंत्रों की अपेक्षा यंत्र अधिक प्रभावी होता है। मंत्र बीजों को सिद्ध करके यंत्रों का निर्माण किया जाता है। जैन धर्म में भी यंत्र का बड़ा महत्त्व है। प्रतिष्ठा के दिन गर्भगृह में जिन प्रतिमा की वेदिका के नीचे यंत्र रखा जाता है।

आलेखन विधि– किसी भी यन्त्र का निर्माण निर्जन स्थान में शुद्ध भूमि पर करना चाहिए। वहाँ पीठ (वेदी) की स्थापना करके उसके ऊपर लाल वस्त्र बिछाना चाहिए। पीठ के नीचे एक कुंकुम का और दूसरा अक्षत का स्वस्तिक करना चाहिए। स्वस्तिक के आगे नारियल और सुपारी रखकर उन पर चाँदी का सिक्का रखें।

तदनन्तर यंत्र स्थित देव-देवी की स्थापना करें। फिर शुभ मुहूर्त्त में मन को एकाग्र चित्त करते हुए, धूप और दीपक के प्रज्वलन पूर्वक चन्द्र स्वर चल रहा हो उस समय यन्त्र लेखन प्रारम्भ करें।

यन्त्र का निर्माण सुवर्ण, चाँदी, तांबा, भोजपत्र अथवा वस्त्र पर करें।[25]

विधिमार्गप्रपा के अनुसार मूलनायक प्रतिमा के नीचे जिस धातु का यंत्र रखना हो उसे चौकोर एवं चिकना बनायें। फिर दूध और जल से उसका स्नान करें। फिर सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित चन्दन का उस पर लेप करें। उसके पश्चात श्रेष्ठ पुष्प, अक्षत, नैवेद्य, धूप, दीपक आदि अर्पित करते हुए यंत्र की पूजा करें। उसके बाद यन्त्र के सम्मुख एक सौ आठ बार जाप करें।

तत्पश्चात यन्त्र के मध्य में पद्माकार पीठ पर मातृका वर्ण ''ॐ अर्हम् अ आ इ ई से लेकर श ष स ह यावत् तथा ॐ ह्रीँ श्रीं क्रों स्वाहा'' लिखें।

उसके बाद यन्त्र के ऊपर कपूर, कुंकुम, गन्ध, पारा और पंचरत्न का निक्षेपण करें।

फिर किन्हीं आम्नाय के अनुसार पृथ्वी तत्त्व का ध्यान करें।

पूजन विधि– उसके बाद यन्त्र के सामने उपवास पूर्वक 'ॐ ह्रीँ आँ श्री पार्श्वनाथाय स्वाहा' इस मन्त्र का जाप करते हुए दस हजार जाति के पुष्प चढ़ायें।

स्थापना विधि– तत्पश्चात इस यन्त्र को ताम्र पात्र में उत्कीर्ण कर देवगृह में मूलनायक प्रतिमा के अधोभाग में स्थापित करें।

यह यन्त्र मूलनायक प्रतिमा की समग्र रूप से रक्षा, शान्ति और पुष्टि करता है।

जिस मूलनायक भगवान के नीचे यह यंत्र रखते हैं उस तीर्थंकर का नाम यन्त्र के मध्य में लिखा जाता है तथा उस तीर्थंकर के यक्ष-यक्षिणी का नाम भी

लिखना चाहिए।[26] किंचित अन्तर के साथ दिगम्बर परम्परा में भी पबासन के नीचे मातृका यंत्र रखे जाते हैं। वे निम्न हैं–[27]

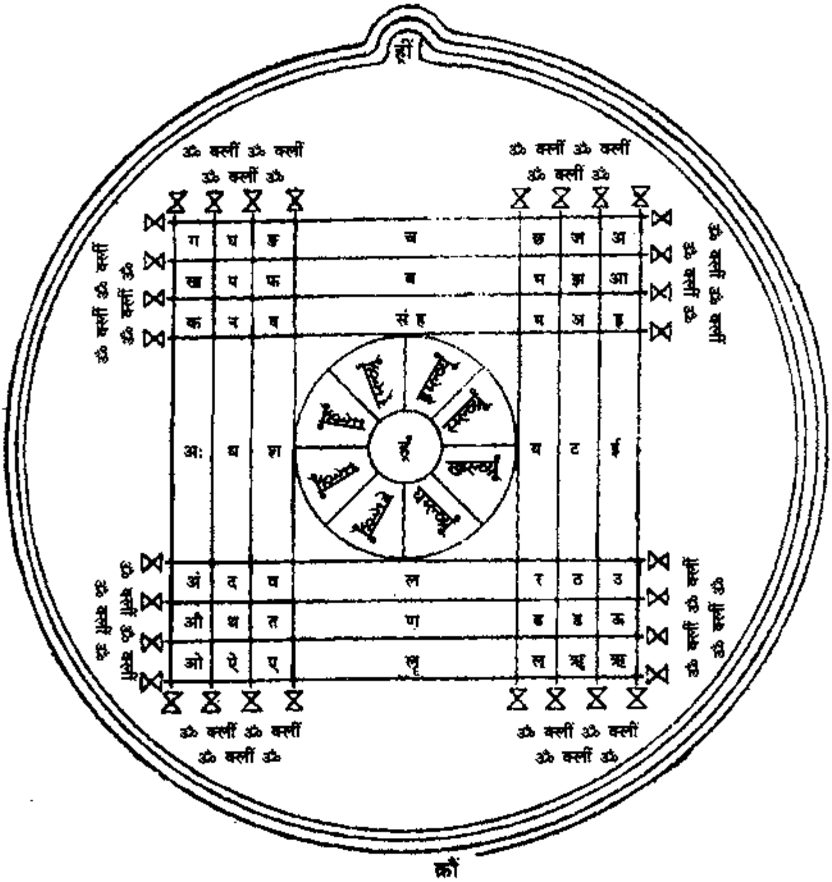

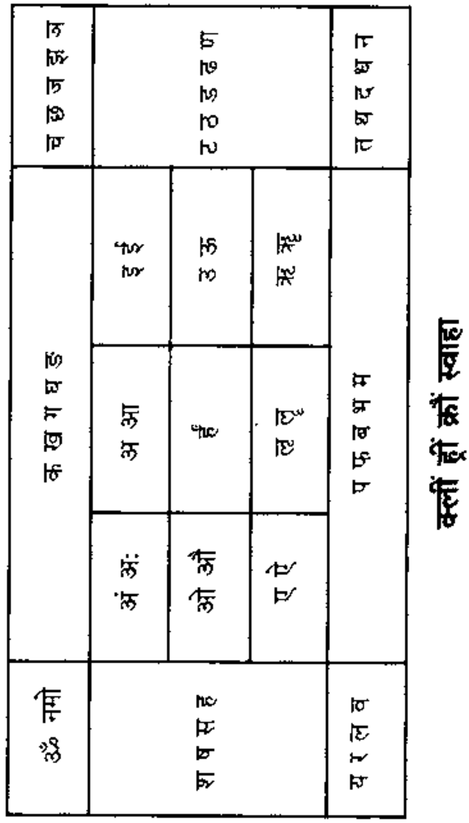

कल्याणकलिका में तीन आसन यंत्रों का उल्लेख है। उसमें कहा गया है कि विधिमार्गप्रपा की हस्त प्रति में दो यन्त्र दिये गये हैं। उनमें पहला यंत्र पं. आशाधर के प्रतिष्ठासारोद्धार में कथित विधि के अनुसार बनाया गया है और दूसरा यन्त्र स्वतन्त्र है। कल्याणकलिका में इन दोनों की निर्माण विधि एवं यंत्र चित्र दिये गये हैं दूसरा यंत्र निर्दिष्ट विधि से भिन्न मालूम होता है।[28]

आजकल 'कूर्म यंत्र' के नाम से प्रसिद्ध तीसरा आसन यंत्र ही रखा जाता है।

लगभग तीन इंच समचोरस तांबा का पत्र बनवाकर उसके ऊपर कूर्म का आकार उत्कीर्ण करवाते हैं। फिर उसके ऊपर सुगन्धी द्रव्यों से स्वस्तिक का आलेखन कर उसकी चार पंखुड़ियों के नीचे 'ॐ कूर्म निज पृष्ठे जिनबिम्बं धारय-धारय स्वाहा' यह मन्त्र लिखते हैं। फिर पद्मासन की जगह के खड्डे में

पंचरत्न आदि मांगलिक पदार्थों का निक्षेपण कर उसके ऊपर कूर्म का मुख द्वार की तरफ रहें, इस प्रकार यंत्र की स्थापना करते हैं। पश्चात शुभ समय में उसके ऊपर मूलनायक तीर्थंकर भगवान प्रतिमा को स्थापित करते हैं।[29]

तीसरा आसन यंत्र निम्न है-

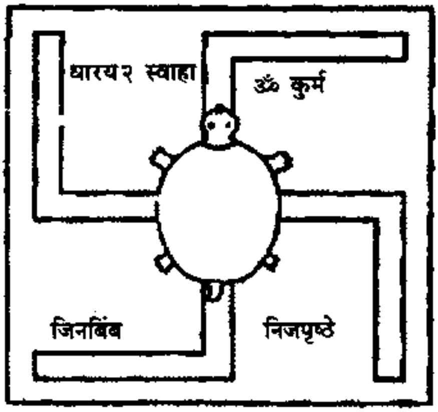

जानकारी हेतु पहला और दूसरा यंत्र भी दर्शाया जा रहा है-

आसन यंत्र-1

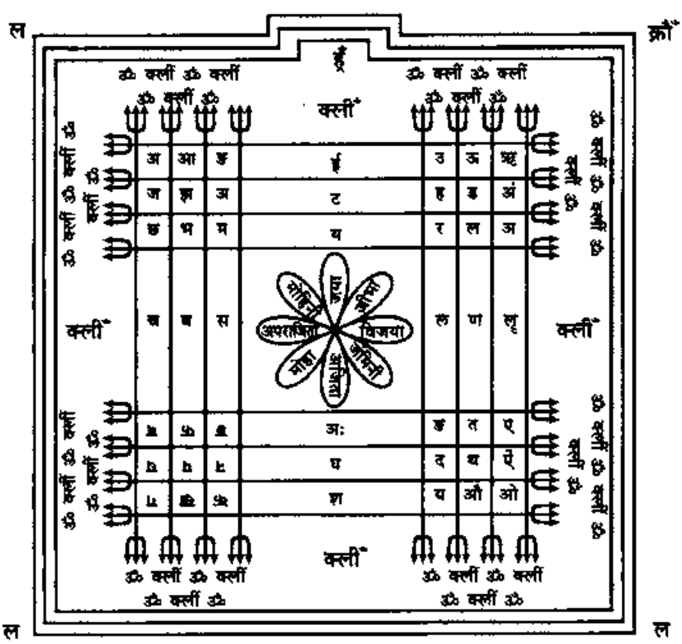

आसन यंत्र-2

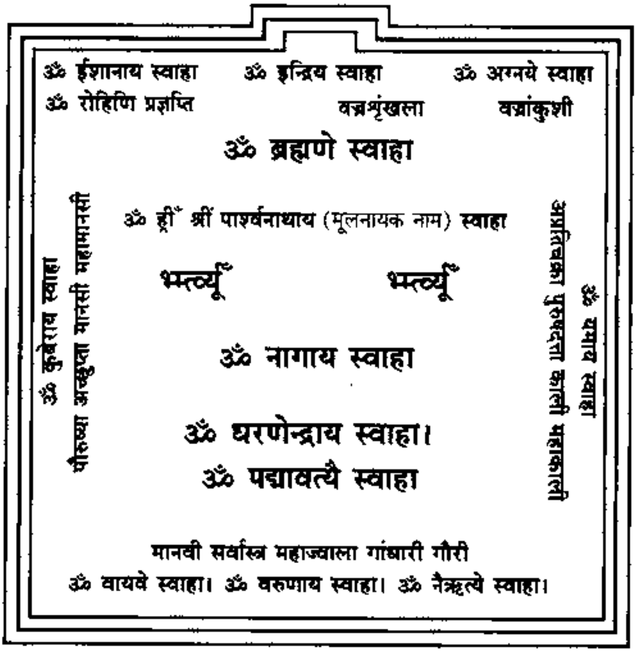

।। इति यन्त्र निर्माण-पूजन विधि ।।

कलशारोहण प्रतिष्ठा विधि

विधिमार्गप्रपा के अनुसार कलश प्रतिष्ठा की विधि निम्नानुसार है–

• जिस दिन शिखर पर कलश की स्थापना की जाती है उस दिन सर्वप्रथम शिखर के आस-पास वाली भूमि शुद्ध करें, गन्धोदक से उस स्थान को स्वच्छ करें, पुष्पादि से उसका सत्कार करें।

• तत्पश्चात जिस शिखर पर कलश स्थापित करना हो उस जगह कुम्भकार के चाक की मिट्टी सहित पंचरत्न (सुवर्ण-रजत-मोती-प्रवाल-लोह) रखें। फिर उसके ऊपर कलश स्थापित करें।

• तदनन्तर पूर्व की भाँति सर्व जलाशयों एवं पवित्र स्थानों से जल लाएं, उसके बाद प्रतिष्ठित बिम्ब की स्नात्र पूजा करें, फिर पूर्ववत षष्ठ वलयाकार नंद्यावर्त्त की स्थापना एवं पूजा करें।

• फिर निम्न मंत्र का उच्चारण करते हुए सभी दिशाओं में दिक्पालों को शान्ति बलि दें। पूर्व दिशाभिमुख होकर कहें–

ॐ इन्द्राय नमः ॐ इन्द्र इह कलश प्रतिष्ठायां इमं बलिं गृहाण-गृहाण स्थापक-स्थापक कर्तृणां संघस्य जनपदस्य शान्तिं तुष्टिं-पुष्टिं कुरू-कुरू स्वाहा।

इसी प्रकार 'ॐ आग्नेय नमः ॐ अग्नये... स्वाहा' ऐसे सभी दिक्पालों के क्रमशः नाम लेते हुए एवं उस-उस दिशा की तरफ मुख करते हुए बलि दें। बलि को तैयार करते समय पहले चुल्लु भर जल डालें, फिर सुगन्धित द्रव्य छींटें, पुष्प डालें और सात प्रकार के पकाए गए धान्य डालें।

• तत्पश्चात जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा के समान चार सौभाग्यवती नारियों द्वारा मूलिका वर्ग, सर्वौषधि आदि औषधियों को तैयार करवाएं। फिर पूर्ववत स्नात्रकारों को आमंत्रित कर उनका सकलीकरण और शुचिविद्या आरोपण की क्रिया करें।

• उसके बाद जिनबिम्ब के समक्ष चार स्तुतियों द्वारा चैत्यवन्दन करें। इसी क्रम में पूर्ववत शान्ति देवता, श्रुत देवता, शासन देवता, क्षेत्र देवता एवं समस्त वैयावृत्यकर देवों की आराधना के लिए एक-एक नमस्कार मन्त्र का कायोत्सर्ग कर उनकी स्तुतियाँ बोलें।

• फिर निम्न श्लोक कहकर कलश पर पुष्पाञ्जलि अर्पित करें–

पूर्णं येन सुमेरूश्रृंगसदृशं, चैत्यं सुदेदीप्यते
यः कीर्ति यजमान धर्मकथन, प्रस्फूर्जितां भाषते।
यः स्पर्धां कुरुते जगत् त्रय मही, दीपेन दोषारिणा
सोऽयं मंगल रूप मुख्य गणनः, कुम्भश्चिरं नन्दतु।।

• तत्पश्चात आचार्य मध्य की दोनों अंगुलियों को सीधा करके रौद्र दृष्टि पूर्वक तर्जनी मुद्रा दिखायें। फिर बाएँ हाथ में जल लेकर कलश पर छींटें। फिर कलश पर चन्दन का तिलक करके पुष्पादि से उसकी पूजा करें। फिर आचार्य मुद्‌गर मुद्रा का दर्शन कराएं।

• उसके बाद निम्न मंत्र के द्वारा कलश के ऊपर हाथ से स्पर्श करके बुरी दृष्टियों से उसकी रक्षा करें तथा श्रावकों के द्वारा कलश के ऊपर सात धान्य का प्रक्षेपण करवाएँ।

ॐ ह्रीं क्षां सर्वोपद्रवं रक्ष-रक्ष स्वाहा।

• **अभिषेक–** तदनन्तर पूर्वोल्लिखित 18 अभिषेक की भाँति गीतनाद और वाद्य पूर्वक स्नात्रकारों के द्वारा कलश के नौ अभिषेक करवाएँ।

1. सर्वप्रथम चार कलशों से सुवर्ण स्नान 2. दूसरा सर्वौषधि स्नान 3. तीसरा मूलिका स्नान 4. चौथा गन्धोदक स्नान 5. पांचवाँ वासचूर्ण स्नान 6. छठा चन्दनोदक स्नान 7. सातवाँ कुंकुमोदक स्नान 8. आठवाँ कर्पूरोदक स्नान और 9. नौवाँ कुसुमोदक स्नान– इस क्रम से प्रतिष्ठाप्य कलश के नौ अभिषेक करें।

• उसके बाद कलश के कंठ पर पंचरत्न एवं श्वेत सरसों की रक्षा पोटली बांधें।

• तत्पश्चात **'ॐ अर्हत् परमेश्वराय इहागच्छतु-इहागच्छतु'** मंत्र पूर्वक बाएँ हाथ में कलश लेकर दाएँ हाथ द्वारा उस पर चंदन का लेप करें। फिर पुष्प सहित मदनफल और ऋद्धि-वृद्धि युक्त कंकण का बंधन करें।

• उसके पश्चात कलश के पाँच अंगों का स्पर्श करें, कलश पर धूप उत्क्षेपण करें, स्त्रियाँ प्रौंखणक क्रिया द्वारा उसे बधाएँ। फिर आचार्य स्थापनीय कलश को निम्न पाँच मुद्रा के दर्शन करवाएँ– 1. सुरभि मुद्रा 2. परमेष्ठी मुद्रा 3. गरुड़ मुद्रा 4. अंजलि मुद्रा और 5. गणधर मुद्रा।

फिर तीन बार सूरिमन्त्र द्वारा उसकी अधिवासना (स्थापना) करें। फिर **'ॐ स्थावरे तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा'** इस मन्त्र से कलश को वस्त्र द्वारा आच्छादित करें। फिर पूर्ववत जम्बीर आदि फल, सप्त धान्य, पुष्प आदि प्रचुर मात्रा में चढ़ायें।

• तदनन्तर निम्न श्लोक कहते हुए कलश की आरती उतारें–

दुष्टसुरासुररचितं, नरैः कृतं दृष्टिदोषजं विघ्नम्।
तद्गच्छत्वतिदूरंभविक, कृतारात्रिक विधानैः।।

फिर चैत्यवन्दन करें। फिर अधिवासना (प्रतिष्ठा) देवी की आराधना के लिए एक लोगस्ससूत्र का कायोत्सर्ग करें और पूर्णकर निम्न स्तुति कहें–

पातालमन्तरिक्षं भुवनं, वा या समाश्रिता नित्यम्।
साऽत्रावतरतु जैने, कलशे अधिवासना देवी।।

इसी क्रम में शान्ति देवता, अंबिका देवी एवं समस्त वैयावृत्यकर देवों के आराधनार्थ एक-एक नमस्कार मन्त्र का कायोत्सर्ग एवं उनकी स्तुति कहें।

• फिर सभी दिशाओं में शान्ति बलि प्रदान करें। फिर शक्रस्तव द्वारा चैत्यवन्दन कर बृहद् शान्तिस्तव बोलें। फिर प्रतिष्ठा देवता की आराधना हेतु एक लोगस्ससूत्र का कायोत्सर्ग कर निम्न स्तुति पाठ बोलें–

यदधिष्ठिताः प्रतिष्ठाः, सर्वा सर्वास्पदेषु नन्दन्ति।
श्री जिनबिम्बं प्रविशतु, सदेवता सुप्रतिष्ठमिदम्।।

• उसके बाद उपस्थित श्रीसंघ अंजलि में अक्षत धारण किये हुए आचार्य के साथ 'नमोऽर्हत्' पूर्वक मंगल गाथाओं का पाठ करें–

जह सिद्धाण पइट्ठा, तिलोय चूडामणिम्मि सिद्धिपए।
आचंदसूरियं तहा, होउ इमा सुप्पइट्ठत्ति।।
जह सग्गस्स पइट्ठा, समत्थलोयस्स मज्झियारम्मि।
आचंद सूरियं तहा, होउ इमा सुप्पइट्ठत्ति।।
जह मेरूस्स पइट्ठा, दीव समुद्दाण मज्झियारम्मि।
आचंद सूरियं तहा, होउ इमा सुप्पइट्ठत्ति।।
जह जम्बुस्स पइट्ठा, जंबूदीवस्स मज्झियारम्मि।
आचंद सूरियं तहा, होउ इमा सुप्पइट्ठत्ति।।
जह लवणस्स पइट्ठा, समत्थउदहीण मज्झियारम्मि।
आचंद सूरियं तहा, होउ इमा सुप्पइट्ठत्ति।।

• फिर हस्तगृहीत अक्षतों से कलश को बधायें। उसके बाद पुष्पांजलि का क्षेपण करें। आचार्य धर्मदेशना दें। फिर प्रासाद या मण्डप के ऊपर कलशारोपण करें। लाभार्थी परिवार को वस्त्र, कंकण आदि का दान दें, संघ की पूजा करें, साधुओं को आहार आदि दें, याचकों को संतुष्ट करें तथा अष्टान्हिका महोत्सव करें। यदि कलश पाषाण निर्मित हो तो चैत्य प्रतिष्ठा पूर्ण होने पर उसे भी तुरन्त स्थापित कर दें। इस प्रकार चैत्य प्रतिष्ठा के साथ उसकी प्रतिष्ठा भी पूर्ण हो जाती है। यह तो चैत्य प्रतिष्ठा से भिन्न समय में कलशारोपण करने की विधि है।[30]

।। इति कलशारोहण प्रतिष्ठा विधि ।।

ध्वजारोहण प्रतिष्ठा विधि

विधिमार्गप्रपा के उल्लेखानुसार ध्वज प्रतिष्ठा की विधि निम्न है–

• सर्वप्रथम ध्वजादंड रखने योग्य भूमि की शुद्धि करें। फिर गन्धोदक एवं पुष्पादि द्वारा उस भूमि का सत्कार करें। सम्पूर्ण शहर में अमारि घोषणा करवाएँ। चैत्य प्रतिष्ठा की भाँति सकल संघ को आमन्त्रित करें, नूतन दण्ड एवं ध्वजा को रखने हेतु वेदिका बनवाएं, दिक्पालों की स्थापना करें, छहवलय युक्त नंद्यावर्त्त का आलेखन करें। तत्पश्चात अखण्ड वस्त्र को धारण किए हुए आचार्य पूर्ववत सकलीकरण और शुचिविद्या का आरोपण करें, पूर्वनिर्दिष्ट गुणों

से युक्त स्नात्रकारों को आमंत्रित करें।

स्नात्रकारों के द्वारा सर्व दिशाओं में धूप दान एवं जलाच्छोटन पूर्वक बलि प्रक्षेपण करवाएं। बलि को निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित करें– **'ॐ ह्रीँ क्ष्वीं सर्वोपद्रवं रक्ष-रक्ष स्वाहा।'**

- फिर निम्न मन्त्रों से दिक्पालों को आमन्त्रित करें–

पूर्व दिशा में : **ॐ इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय ध्वजारोपणे आगच्छ-2 स्वाहा।**

आग्नेय दिशा में : **ओं अग्नये सायुधाय सवाहनाय ध्वजारोपणे आगच्छ-2 स्वाहा।**

दक्षिण दिशा में : **ॐ यमाय सायुधाय सवाहनाय ध्वजारोपणे आगच्छ-2 स्वाहा।**

नैऋत्य दिशा में : **ॐ नैऋतये सायुधाय सवाहनाय ध्वजारोपणे आगच्छ-2 स्वाहा।**

पश्चिम दिशा में : **ॐ वरूणाय सायुधाय सवाहनाय ध्वजारोपणे आगच्छ-2 स्वाहा।**

वायव्य दिशा में : **ॐ वायवे सायुधाय सवाहनाय ध्वजारोपणे आगच्छ-2 स्वाहा।**

उत्तर दिशा में : **ॐ कुबेराय सायुधाय सवाहनाय ध्वजारोपणे आगच्छ-2 स्वाहा।**

ईशान दिशा में : **ॐ ईशानाय सायुधाय सवाहनाय ध्वजारोपणे आगच्छ-2 स्वाहा।**

अधो दिशा में : **ॐ नागाय सायुधाय सवाहनाय ध्वजारोपणे आगच्छ-2 स्वाहा।**

ऊर्ध्व दिशा में : **ॐ ब्रह्मणे सायुधाय सवाहनाय ध्वजारोपणे आगच्छ-2 स्वाहा।**

तत्पश्चात प्रतिष्ठा की निर्विघ्नता हेतु दसो दिशाओं में बलि दें। मुख्य बिम्ब की स्नात्र पूजा करें। फिर गुरु भगवन्त चतुर्विध संघ के साथ चार स्तुतियों से चैत्यवन्दन करें। इसी क्रम में शान्तिदेवता, श्रुतदेवता, क्षेत्रदेवता, भुवनदेवता, शासनदेवता एवं समस्त वैयावृत्यकर देवों की आराधना के लिए एक-एक नमस्कारमन्त्र का कायोत्सर्ग करें और स्तुति बोलें।

• तदनन्तर निम्न श्लोक कहकर ध्वज दण्ड पर कुसुमांजलि चढ़ावें–

रत्नोत्पत्तिर्बहुसरलता, सर्व पर्व प्रयोगः
सृष्टोच्चत्वं गुणसमुदयो, मध्य गम्भीरता च।
यस्मिन् सर्वा स्थितिरतितरां, देवभक्त प्रकारा
तस्मिन् वंशे कुसुमवितति, र्भव्य हस्तोद्गतास्तु।।

फिर कलश की प्रतिष्ठा के समान ध्वजदण्ड पर चन्दन से लेप करें और फल-पुष्पादि से उसकी पूजा करें।

• उसके बाद चाँदी निर्मित चार-चार कलशों से ध्वजदंड के पन्द्रह अभिषेक करें। उसमें क्रमशः 1. पहला स्वर्णोदक स्नान 2. दूसरा पंचरत्न स्नान 3. तीसरा कषायोदक स्नान 4. चौथा मृत्तिका जल स्नान 5. पांचवाँ मूलिका जल स्नान 6. छठा अष्टवर्गौषधि स्नान 7. सातवाँ सर्वौषधि जल स्नान 8. आठवाँ गन्धोदक स्नान 9. नौवाँ वास स्नान 10. दसवाँ चन्दनोदक स्नान 11. ग्यारहवाँ कुंकुमोदक स्नान 12. बारहवाँ तीर्थोदक स्नान 13. तेरहवाँ कर्पूरोदक स्नान 14. चौदहवाँ इक्षुरस स्नान 15. पन्द्रहवाँ घृत-दूध-दही स्नान– इस प्रकार पन्द्रह अभिषेक करें।

इन अभिषेकों में पूर्ववत वाद्य नाद, गीत, छन्द, नमस्कार मन्त्र आदि का पूर्ण ध्यान रखें।

• उसके पश्चात ध्वजदण्ड पर चन्दन का लेप करें, उस पर पुष्प चढ़ाएं। फिर प्रतिष्ठा की लग्न वेला आने पर ध्वजदण्ड को अखण्ड वस्त्र से आच्छादित करें। उसके बाद आचार्य पूर्ववत सुरभि आदि पाँच मुद्राओं के दर्शन करवाएं। चार नारियाँ ध्वजदण्ड को प्रौंखण क्रिया द्वारा बधायें।

तदनन्तर उस पर वासचूर्ण का निक्षेप करते हुए एवं धूप देते हुए उसे अधिवासित करें।

• तदनन्तर ध्वजदण्ड को **'ॐ श्रीं कण्ठः'** इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करें। फिर जवारारोपण, अनेक जातियों के फल, बलि, नैवेद्य आदि चढ़ाएँ। कलश आरती के छंद से ध्वज की आरती उतारें, किन्तु कलश के स्थान पर ध्वज का नाम लें।

• फिर चार स्तुतियों से चैत्यवन्दन करें। शान्तिनाथ की आराधना के लिए एक लोगस्ससूत्र का कायोत्सर्ग कर निम्न स्तुति कहें–

श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्ति विधायिने।
त्रैलोक्यस्यामराधीश, मुकुटाभ्यर्चितांघ्रये।।

तत्पश्चात श्रुतदेवी, शान्तिदेवता, शासनदेवता अंबिकादेवी, क्षेत्रदेवता, अधिवासना देवी, समस्त वैयावृत्यकर देवों की आराधना हेतु पूर्ववत एक-एक नमस्कार मन्त्र का कायोत्सर्ग करें और स्तुति बोलें। किन्तु अधिवासना देवी के कायोत्सर्ग में एक लोगस्ससूत्र का चिन्तन कर निम्न स्तुति बोलें–

पातालमन्तरिक्षं भुवनं, वा या समाश्रिता नित्यम्।
साऽत्रावतरतु जैने, ध्वजदण्डे अधिवासना देवी।।

फिर चैत्यवन्दन मुद्रा में शक्रस्तव एवं बृहद् शान्तिस्तव बोलें।

• उसके बाद सात प्रकार के धान्य एवं विभिन्न प्रकार के फलों का अर्पण के रूप में दान करें। फिर ध्वज दण्ड को वासक्षेप, पुष्प एवं धूप से वासित करें। ध्वजदण्ड के ऊपर से वस्त्र को उतारें। फिर ध्वजदण्ड पर ध्वजपट्ट को आरोपित करें। उसके पश्चात जिनालय के चारों ओर ध्वजा की तीन प्रदक्षिणा लगवायें। फिर प्रासाद के शिखर पर निम्न श्लोक पूर्वक पुष्पांजलि अर्पण करें–

कुलधर्मजाति लक्ष्मीजिनगुरु, भक्ति प्रमोदितोन्नमिदे।
प्रासादे पुष्पांजलिरय, मस्मत्कर कृतो भूयात्।।

• फिर निम्न छंद बोलते हुए शिखर के कलश को स्नान कराएँ।

चैत्याग्रतां प्रपन्नस्य, कलशस्य विशेषतः।
ध्वजारोप विधौ स्नानं, भूयाद् भक्तजनैः कृतम्।।

• फिर ध्वज के गृह में अर्थात पीठ में पंचरत्न रखें। उसके बाद सर्व ग्रहों की दृष्टि शुभ हो तथा लग्न भी शुभ हो उस समय ध्वजा स्थापना करें। फिर आचार्य **'ॐ श्रीं ठः'** इस मन्त्र से ध्वजा पर वासचूर्ण डालें।

इस प्रकार ध्वज प्रतिष्ठा की मूलविधि पूर्ण होने पर विभिन्न प्रकार के फल, सात प्रकार के धान्य, बलि, मोदक आदि वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में चढ़ाएं। प्रतिमा के दाएं हाथ की तरफ महाध्वज को ऋजुगति से बांधें। आचार्य प्रवचन मुद्रा में धर्मदेशना दें। अष्टाह्निका महोत्सव के दौरान तीसरे-पाँचवें या सातवें ऐसे विषम दिन में परमात्मा की स्नात्र पूजा करके भूतबलि प्रदान करें। फिर चार स्तुतियों से चैत्यवन्दन करें। इसी के साथ पूर्ववत शान्तिनाथ, शान्तिदेवता, श्रुतदेवता, क्षेत्रदेवता, भुवन देवता, शासन देवता एवं समस्त वैयावृत्यकर देवताओं के

आराधनार्थ कायोत्सर्ग एवं स्तुति करें। फिर जिनबिम्ब के दाहिने हाथ से महाध्वज को उतार दें।

इसी क्रम में पूर्ववत नन्द्यावर्त्त मण्डल आदि का विसर्जन करें, साधुओं को आहार आदि का दान दें और याचकों को संतुष्ट करें।

महाध्वज– बिम्ब के परिकर में जो शिखर होता है वहाँ से लेकर बाह्य भाग में जो ध्वजदण्ड स्थापित करते हैं वहाँ तक लम्बा ध्वजदण्डाश्लेषी महाध्वज होता है। इस महाध्वज को परमात्मा के बिम्ब के सम्मुख ले जाएं। वहाँ कुंकुम रस से ध्वजा पर माया बीज लिखें और उस पर कुंकुम के छीटें दें। ध्वज के किनारे पर पंचरत्न बांधें, आचार्य उसके ऊपर वासचूर्ण डालें। फिर महाध्वज को आरोपित करें।[31]

।। इति ध्वजारोहण प्रतिष्ठा विधि ।।

चैत्य प्रतिष्ठा विधि

यहाँ चैत्य का अर्थ 'जिनप्रासाद' है। यदि चैत्य विधि पूर्वक प्रतिष्ठित हो तो ही प्रतिमा स्थापना योग्य होती है इसलिए चैत्य प्रतिष्ठा आवश्यक है। जिस प्रकार नाटक देखने का आनन्द थियेटर में आता है वैसे ही जिनप्रतिमा प्रतिष्ठित चैत्य में अधिक प्रभावी होती है।

इस प्रतिष्ठा में महाचैत्य, देवकुलिका, मण्डप, मण्डपिका, काष्ठ आदि की प्रतिष्ठा का अन्तर्भाव हो जाता है। आचार दिनकर एवं कल्याण कलिका के अनुसार चैत्य प्रतिष्ठा की विधि निम्न है–

• चैत्य प्रतिष्ठा बिम्ब प्रतिष्ठा के लग्न में करें अथवा बिम्ब प्रतिष्ठा के बाद तुरन्त अथवा थोड़े दिन, मास या वर्ष के पश्चात भी कर सकते हैं, किन्तु श्रेष्ठ लग्न में करें। इस प्रसंग पर संघ आमंत्रण, वेदी रचना, नंद्यावर्त्त पूजन आदि यथाशक्ति करें।

आजकल प्रायः बिम्ब प्रतिष्ठा के साथ चैत्य प्रतिष्ठा कर लेते हैं। इससे वेदी रचना, नंद्यावर्त्त पूजन आदि कई कार्य ध्वज प्रतिष्ठा के निमित्त स्वयमेव हो जाते हैं अतएव आधुनिक युग में चैत्य प्रतिष्ठा के लिए यह विधि करें–

• चैत्य की चारों दिशाओं में वेदिका बनाएं। फिर चैत्य के अन्दर की तरफ एवं बाहर की तरफ चौबीस तन्तु सूत्रों को लपेटकर शान्ति मंत्र के द्वारा उसकी रक्षा करें।

• फिर निम्न काव्य बोलते हुए हस्त गृहीत पुष्पांजलि को चैत्य के ऊपर डालें–

अभिनव सुगंधि विकसित, पुष्पौघभृता सुगंध धूपाढ्या ।
चैत्योपरि निपतन्ती, सुखानि पुष्पांजलिः कुरुताम् ।।

• फिर प्रतिष्ठाचार्य मध्य की दोनों अंगुलियों को ऊँची कर रौद्र दृष्टि से तर्जनी मुद्रा दिखाएं। श्रावक बाएं हाथ में जल लेकर चैत्य पर आच्छोटन करें। इसी क्रम में चैत्य का तिलक करें, पुष्प चढ़ाएँ और धूप उत्क्षेपण करें।

• उसके बाद प्रतिष्ठा आचार्य चैत्य को मुद्गर मुद्रा दिखाएं। फिर निम्न मंत्र का न्यास करते हुए चैत्य की रक्षा करें।

ॐ ह्रीँ क्ष्वीं सर्वोपद्रवं रक्ष-रक्ष स्वाहा।

• तदनन्तर स्नात्रकार अथवा श्रावकवर्ग सात प्रकार के धान्य को उछालते हुए चैत्य का अभिषेक करें। फिर स्नात्र जल से चैत्य का अभिषेक करें। उसके बाद शुद्ध जल से चैत्य को शिखर के अग्रभाग तक प्रक्षालित कर उसे पौंछें। फिर चंदन का तिलक करें।

उसी समय चैत्य के मुख्य भाग पर पंचरत्न की पोटली और मदनफल युक्त कंकण सूत्र बांधें। फिर बिम्ब प्रतिष्ठा के समान चैत्य के ऊपर वस्त्र ढक दें। फिर उसके ऊपर सुगंधित केसर-चन्दन आदि के छींटे डालें तथा फल एवं पुष्प चढ़ाएं।

• उसके पश्चात प्रतिष्ठा की लग्न वेला आने पर निम्न मंत्र को सात बार कहकर चैत्य के मस्तक पर वासचूर्ण डालें–

ॐ वीरे-वीरे जयवीरे सेणवीरे महावीरे जये विजये
जयन्ते अपराजिते ॐ ह्रीँ स्वाहा।

• तदनन्तर वास्तु देवता का निम्न मंत्र पढ़कर चैत्य की देहली, तोरण (द्वार श्रिया) एवं शिखर पर सात-सात बार वासचूर्ण डालें।

ॐ ह्रीँ श्रीं क्षां क्षीं क्षूं ह्रां ह्रीं भगवति वास्तुदेवते ल ल ल ल ल क्षिक्षिक्षिक्षिक्षि इह चैत्ये अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।

• फिर वेदी के निकट नैवेद्य एवं अंकुरित जवारों के सकोरे आदि पूर्ववत रखें। फिर बिम्ब की स्नात्रपूजा करें। इसके अतिरिक्त वस्त्र उतारना, प्रतिष्ठा देवता का विसर्जन करना, नंद्यावर्त्त विसर्जन करना, कंकण मोचन करना आदि क्रियाएँ बिम्ब प्रतिष्ठा की भाँति ही करें।

• यदि चैत्य प्रतिष्ठा का स्वतन्त्र प्रसंग हो तो कुंभस्थापना, नंद्यावर्त्त पूजन, वेदी रचना आदि पृथक् रूप से करने चाहिए, अन्यथा बिम्ब प्रतिष्ठा के निमित्त की जाने वाली उक्त क्रियाओं को चैत्य प्रतिष्ठा के लिए भी स्वीकार कर सकते हैं।

मण्डप प्रतिष्ठा– आचार दिनकर के अनुसार अधिवासना मंडप, रंग मंडप, चौकी मंडप आदि की प्रतिष्ठा चैत्य प्रतिष्ठा के समान करते हैं, किन्तु वहाँ परमात्मा की स्नात्र पूजा एक बार ही की जाती है।

देवकुलिका प्रतिष्ठा– देवकुलिका की प्रतिष्ठा के समय वेदी बनाकर उसके आगे बलि की विधि करें। बृहत् नंद्यावर्त्त पूजन के स्थान पर लघु नंद्यावर्त्त (पाँच वलय युक्त नंद्यावर्त्त) पूजा करें। अन्य भी क्रियाएँ चैत्य प्रतिष्ठा के समान करें।

मण्डपिका प्रतिष्ठा– मण्डपिका की प्रतिष्ठा देवकुलिका प्रतिष्ठा के समान ही करें।

कोष्ठिका प्रतिष्ठा– कोष्ठिका आदि की प्रतिष्ठा में तन्तु सूत्रों के द्वारा रक्षा करें, दिक्पाल एवं नवग्रहों की पूजा करें तथा पूर्व कथित वास्तु देवता के मन्त्र का स्मरण कर वासचूर्ण डालें।[32]

।। इति चैत्य प्रतिष्ठा विधि ।।

जिनबिम्ब परिकर प्रतिष्ठा विधि

अरिहंत परमात्मा की प्रतिमा को तद्रूप जानने हेतु परिकर अत्यावश्यक है। अरिहंत चैत्य एवं सिद्ध चैत्य का भेद ध्वजा के माध्यम से होने में मूल हेतु यही है। अप्रतिष्ठित प्रतिमा की भाँति परिकर आदि में आसुरी शक्तियों का वास हो सकता है अत: बिम्ब के परिकर की भी प्रतिष्ठा होनी चाहिए।

आचार दिनकर में प्रतिपादित बिम्ब परिकर प्रतिष्ठा की विधि इस प्रकार है–

• यदि परिकर जिनबिम्ब के साथ हो, तो जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा के समय वासक्षेप डालने मात्र से परिकर की प्रतिष्ठा पूर्ण हो जाती है, किन्तु परिकर जिनबिम्ब से अलग हो तो उसकी अलग से प्रतिष्ठा होती है। परिकर का आकार निम्न प्रकार का होता है– बिम्ब के नीचे हाथी, सिंह एवं कमल के चिन्हों से युक्त सिंहासन होता है। दूसरे मत के अनुसार सिंहासन के मध्य भाग में दो मृगों के तोरणाकार के नीचे धर्मचक्र होता है और उसके दोनों तरफ के भागों में

नवग्रहों की मूर्तियाँ होती है।

• आचार्य वर्धमानसूरि के मतानुसार सिंहासन के पार्श्व में दो चामरधारी होते हैं। उसके बाहर अंजलिबद्ध दो पुरुष खड़े हुए होते हैं। मस्तक के ऊपर क्रमशः एक के ऊपर एक तीन छत्र होते हैं। उसके पार्श्व में सूंड के अग्रभाग में स्वर्ण-कलशों को धारण किए हुए- ऐसे दो श्वेत हाथी होते हैं तथा हाथी के उपर झर्झर वाद्य बजाने वाले दो पुरुष होते हैं। उसके ऊपर दो मालाकार होते हैं। शिखर पर दो शंख बजाने वाले होते हैं और उसके ऊपर कलश होता है।

इस प्रकार से निर्मित परिकर की प्रतिष्ठा हेतु बिम्ब प्रतिष्ठा के योग्य मुहूर्त्त निकलवाएं। फिर शुभ दिन में भूमि शुद्धि, अमारि घोषणा एवं संघ आमन्त्रण पूर्वक परमात्मा की स्नात्रपूजा करें।

• परिकर की प्रतिष्ठा लगभग कलश प्रतिष्ठा के समान होती है इसलिए जिनबिम्ब के स्नात्रजल से परिकर का अभिषेक करें। तदनन्तर कलश की भाँति परिकर की सुगंधी पदार्थों से पूजा करें। सात प्रकार के धान्य चढ़ाते हुए बधाएँ, आचार्य दाएं दो हाथ की मध्य अंगुलियों को ऊँचा कर तर्जनी मुद्रा दिखाते हुए तथा क्रूर दृष्टि से बाएं हाथ में चुल्लु भर जल लेकर परिकर के ऊपर आच्छोटन करें। फिर अक्षत से भरा हुआ पात्र चढ़ाएँ।

• तत्पश्चात निम्न मंत्र को तीन बार पढ़कर गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य से परिकर की पूजा करें तथा अखण्ड वस्त्र से उसे ढ़क दें–

ॐ ह्रीँ श्रीँ जयन्तु जिनोपासकाः सकला भवन्तु स्वाहा।

• उसके पश्चात जिस तीर्थंकर का परिकर हो उनका चार स्तुतियों से चैत्यवन्दन करें। तीसरी स्तुति कहने के बाद शान्ति देवता, श्रुत देवता, क्षेत्र देवता, भुवन देवता, शासन देवता, वैयावृत्यकर देवता एवं प्रतिष्ठा देवता के आराधनार्थ कायोत्सर्ग एवं स्तुतियाँ पूर्व की भाँति करें।

• फिर लग्न वेला के आने पर परिकर के आगे परदा बाँधकर सब लोगों को दूर करें। उसके बाद शुभ लग्न में निम्न मंत्र बोलकर परिकर के मुख्य अंगों पर तीन-तीन बार सूरिमंत्र से अभिमंत्रित वासचूर्ण डालें। जैसे– निम्न मंत्र से धर्मचक्र पर वासक्षेप डालें–

ॐ ह्रीँ श्रीँ अप्रतिचक्रे धर्मचक्राय नमः।

निम्न मंत्र कहकर सर्व ग्रहों पर वासचूर्ण डालें-

ॐ घृणि चन्द्रां ऐं क्षौं ठः ठः क्षौं क्षीँ सर्व ग्रहेभ्यो नमः।

निम्न मंत्र कहकर सिंहासन पर वासचूर्ण डालें-

ॐ ह्रीँ श्रीँ आधारशक्तिकमलासनाय नमः।

निम्न मंत्र से अंजलिबद्ध दोनों पुरुषों पर वासचूर्ण डालें-

ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हद् भक्तेभ्यो नमः।

निम्न मन्त्र पढ़कर दोनों चामर धारियों पर वासचूर्ण डालें-

ॐ ह्रीँ चं चामरकरेभ्यो नमः।

निम्न मंत्र बोलकर दोनों हाथियों पर वासचूर्ण डालें-

ॐ ह्रीँ विमलवाहनाय नमः।

निम्न मंत्र कहकर दोनों मालाधारकों पर वासचूर्ण डालें-

ॐ ह्रीँ पुष्पकरेभ्यो नमः।

निम्न मंत्र पूर्वक शंखधरों पर वासचूर्ण डालें-

ॐ श्रीँ शंखधराय नमः।

निम्न मंत्र कहकर पूर्ण कलश पर वासचूर्ण डालें-

ॐ पूर्ण कलशाय नमः।

इस प्रकार परिकर के प्रत्येक चिह्नों पर तीन-तीन बार वासचूर्ण डालें।

• तत्पश्चात प्रतिष्ठित परिकर के आगे अनेक प्रकार के फल एवं नैवेद्य चढ़ाएँ।

• उसके बाद शुभ समय में परिकर को यथास्थान जोड़कर उस दिन अथवा तीसरे, पाँचवें या सातवें दिन में पंचामृत के द्वारा स्नात्र पूजा कर चैत्यवंदन करें।

• तदनन्तर प्रतिष्ठा देवता के विसर्जनार्थ एक लोगस्ससूत्र का चिन्तन करें तथा पूर्णकर प्रकट में लोगस्ससूत्र कहें। फिर सौभाग्य मंत्र से न्यास कर पूर्ववत कंकण मोचन एवं नन्द्यावर्त्त विसर्जन आदि करें।

इस अवसर पर यथाशक्ति अष्टाह्निका महोत्सव करें, संघ पूजा करें एवं याचकों को दान दें।

जलपट्ट (फलक) प्रतिष्ठा- इस प्रतिष्ठा में जलपट्ट के ऊपर पूर्ववत बृहत् नंद्यावर्त्त की स्थापना करें। जलपट्ट को क्षीर-स्नान कराएँ। स्थापना की

जगह पर पंचरत्न रखें तथा वस्त्र मंत्र से वासचूर्ण डालें। फिर नन्द्यावर्त्त मण्डल का विसर्जन करें। यह जलपट्ट की प्रतिष्ठा विधि है।

तोरण प्रतिष्ठा– तोरण प्रतिष्ठा करते समय सर्वप्रथम जिनबिम्ब की स्नात्र पूजा करें। फिर निम्न मुकुट मंत्र का स्मरण कर द्वादश मुद्रा से अभिमंत्रित वासचूर्ण को तोरण पर डालें–

ॐ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ......... हकार पर्यन्तं नमो जिनाय सुरपतिमुकुटकोटिसंघट्टितपदाय इति तोरणे समालोकय-समालोकय स्वाहा।

यह तोरण प्रतिष्ठा की विधि है।[33]

चैत्यद्वार प्रतिष्ठा विधि

चैत्य के द्वार का आरोपण विधि पूर्वक करना चाहिए, क्योंकि द्वार चैत्य का मुख है। शुभ द्वार वाला चैत्य शुभ फलदायक होता है। कल्याण कलिका के अनुसार चैत्यद्वार की प्रतिष्ठा विधि निम्नानुसार है–

• जिनालय में दरवाजा लगाने से पहले उसका अभिषेक करें। फिर अधिवासना पूर्वक उसके अंगों में देवताओं का न्यास करें। इसे द्वार प्रतिष्ठा कहते हैं।

• सर्वप्रथम चैत्य द्वार की प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त निश्चित करें। प्रतिष्ठोपयोगी औषधियाँ आदि सामग्री पहले से ही तैयार कर रखें। मुहूर्त्त के दिन सबसे पहले मंत्रोच्चार पूर्वक प्रासाद के द्वारपालों की सुगन्धित द्रव्य से पूजा करें। प्रासाद के प्रत्येक दिशा के द्वारपाल भिन्न-भिन्न होते हैं इसलिए जिस दिशा का प्रासाद हो उस दिशा के द्वारपाल की पूजा करें।

• पूर्वादि दिशामुख जैन प्रासादों के द्वारपाल के नाम अनुक्रमशः ये हैं– 1. इन्द्र 2. इन्द्रजय 1. माहेन्द्र 2. विजय 1. धरणेन्द्र 2. पद्म 1. सुनाभ 2. सुरदुंदुभि। इस तरह प्रत्येक दिशा के दो-दो द्वारपाल होते हैं अतः चैत्य का मुख जिस दिशा की ओर हो उस दिशामुख द्वार के द्वारपाल युगल की नाम मंत्र पूर्वक वासक्षेप पूजा करें। उसकी विधि इस प्रकार है–

1. पूर्वमुख द्वारे– **ॐ इन्द्राय नमः ॐ इन्द्रजयाय नमः**
2. दक्षिणमुख द्वारे– **ॐ माहेन्द्राय नमः ॐ विजयाय नमः**
3. पश्चिममुख द्वारे– **ॐ धरणेन्द्राय नमः ॐ पद्माय नमः**
4. उत्तरमुख द्वारे– **ॐ सुनाभाय नमः ॐ सुरदुन्दुभय नमः**

उक्त पूजन में प्रथम नाम का मन्त्रोच्चार करते समय स्वयं के दाहिनी तरफ

की बारसाख के स्थान पर तथा द्वितीय नाम का मन्त्रोच्चार करते समय स्वयं के बायें तरफ की बारसाख के स्थान पर वासचूर्ण डालकर द्वारपालों का पूजन करें।

• तत्पश्चात द्वार के अंगों– दो शाखा, डंबर एवं उत्तरंग को द्वार के निकट यथास्थान रखकर 1. सप्त धान्य 2. पंचरत्न 3. मंगल मिट्टी 4. कषाय छाल 5. मूलिका चूर्ण 6. अष्टवर्ग 7. पंचगव्य 8. सुवर्णरज और 9. तीर्थ जल– इन नौ द्रव्यों के जल से उनका अभिषेक करें। फिर द्वार के अंगों का शुद्ध जल से अभिषेक कर और उन्हें पौंछकर रक्त वस्त्रों से ढँक दें।

• अभिषेक के अनन्तर द्वारांगों को प्रतिष्ठा मंडप में लाएं। यदि प्रतिष्ठा मंडप न हो तो दरवाजे के बाह्य भाग में चन्द्रवा बांधकर उसके नीचे द्वारांगों की अधिवासना विधि करें। उस समय निम्न विद्या को तीन बार कहकर द्वारांगों पर वासचूर्ण डालें–

ॐ नमो खीरासवलद्धीणं ॐ नमो महुआसवलद्धीणं ॐ नमो संभिन्नसोइणं ॐ नमो पयाणुसारीणं ॐ नमो कुट्ठबुद्धीणं जमियं विज्जं पउंजामि सा मे विज्जा पसिज्जउ ॐ कः क्षः स्वाहा।

फिर द्वारांगों पर चन्दन आदि सुगंधी द्रव्यों के छींटें डालें तथा पुष्प एवं अक्षत चढ़ाएँ।

• उसके पश्चात निम्न विधि से उंबर के नीचे वास्तु पूजन करें–

उंबर के मध्य भाग में छोटा खड्डा करके उसमें पंचरत्न का न्यास करें। ऊपर में '**ॐ**' लिखकर एवं '**ॐ वास्तु पुरुषाय नमः**' इस मन्त्र का स्मरण कर वास-अक्षत डालते हुए वास्तु पुरुष का पूजन करें और चंदन के छींटे डालें।

• तदनन्तर शुभ लग्न के आने पर प्रतिष्ठाचार्य सूरिमन्त्र से अथवा प्रतिष्ठा मंत्र से द्वार की प्रतिष्ठा करें। उसमें प्रथम उंबर फिर दाहिनी तरफ की शाखा, फिर बायीं तरफ की शाखा और उत्तरंग– इस क्रम से द्वारांगों को खड़ा करें। इसी क्रम में विष्णुक्रान्ता, ऋद्धि-वृद्धि, कुष्ठ, तिल, लक्ष्मणा, गोरोचन, सहदेवी और दूर्वा– इन सर्व औषधियों की बंधी हुई पोटली उत्तरंग पर बाँधें।

• उसके बाद द्वारांगों के ऊपर निम्न छह देवताओं का न्यास करें–

उत्तरंग के ऊपर–**ॐ यक्षेशाय नमः**। उम्बर के ऊपर–**ॐ श्रियै नमः**। स्वयं के दाहिनी तरफ की शाखा के ऊपर– **ॐ कालाय नमः ॐ गंगायै नमः**। स्वयं के बायीं तरफ की शाखा के ऊपर– **ॐ महाकालाय नमः ॐ यमुनाये नमः**।

उक्त न्यास विधि में देवताओं के नाम का मंत्रोच्चार करते हुए द्वार के चिह्नत अंगों पर तीन बार वासचूर्ण डालकर देवताओं की स्थापना करें। फिर संनिरोध करें तथा दुर्वा, वासचूर्ण एवं अक्षत से उनका पूजन करें।

• तदनन्तर शान्तिमंत्र से बलि को अभिमन्त्रित करें। फिर दिक्पालों के नामों का उच्चारण करते हुए पूर्वादि दिशाओं में बलि प्रदान करें तथा श्री संघ की भक्ति करें।[34]

।। इति चैत्य द्वार प्रतिष्ठा विधि ।।

गृह चैत्य निर्माण विधि

गृहस्थ श्रावक पूजा-अर्चना के लिए अपने निवास स्थान पर भी गृह मन्दिर बनायें, ऐसा शास्त्र वचन है। इसका मुख्य कारण यह है कि समुदायगत मन्दिर में जाना संभव न हो तो भी त्रिकाल दर्शन एवं पूजा करने का नियम पल सकता है। दूसरे, शारीरिक अस्वस्थता, समयाभाव आदि परिस्थितियों में भी जिनदर्शन किया जा सकता है। वर्तमान में जनसंख्या विस्तार के कारण बस्तियाँ फैलती जा रही है ऐसी स्थिति में सब जगह संघीय मन्दिर संभव नहीं है अत: गृह चैत्य कई हेतुओं से उपयुक्त है।

आधुनिक युग में बढ़ती हुई व्यापारिक व्यस्तता के दौर में भी घर में मन्दिर हो तो काम पर निकलने के पूर्व पूजा-भक्ति की जा सकती है। जैनाचार्यों ने गृह चैत्यालय का स्पष्ट निर्देश दिया है।

गृह चैत्य निर्माण की प्रक्रिया

वास्तुसार प्रकरण के अनुसार घर देरासर काष्ठ का एवं पुष्पक विमान के समान वर्गाकार आकृति वाला बनायें। इसमें पीठ, उपपीठ तथा उस पर वर्गाकार तल बनायें। मन्दिर के चारों कोनों में चार स्तम्भ लगायें। चारों दिशाओं में तोरण युक्त चार द्वार और चार छज्जा बनायें। ऊपर में कनेर के पुष्प की भाँति पाँच शिखर (चार कोनों में चार और एक मध्य में गुमटी) बनायें। अन्य मतानुसार एक या तीन द्वार वाला और एक गुमटी वाला मन्दिर भी बना सकते हैं।[35]

छज्जा, स्तंभ एवं तोरण युक्त गृहचैत्य के ऊपर मंडप के शिखर जैसा शिखर बनायें, परन्तु कनेर फूल की कली के आकार वाला शिखर न बनायें।[36]

गृह चैत्य की गुमटी के ऊपर कभी भी ध्वजादण्ड नहीं रखें, परन्तु आमलसार कलश लगा सकते हैं।[37]

यहाँ दीवार से स्पर्श करके मूर्ति स्थापित न करें उसे सर्वथा अशुभ माना गया है।[38] गर्भगृह से छज्जे की चौड़ाई सवा गुनी करें अथवा एक तिहाई या आधा भाग भी बढ़ा सकते हैं। कोना, प्रतिरथ, भद्र आदि अंगवाला और तिलक-तवंग आदि भूषण वाला शिखरबद्ध काष्ठ मन्दिर घर देरासर में न रखें किन्तु तीर्थयात्रा संघ में रखने पर कोई दोष नहीं है। यात्रा से लौटने के पश्चात उसे गृह मन्दिर में न रखकर रथशाला या जिनमंदिर में रखें।[39]

गृहबिम्ब का परिमाण एवं उसके शुभाशुभ लक्षण

जन समुदाय की अपेक्षा गृह मन्दिर प्राय: आकार में छोटा होता है तो यह शंका होना स्वाभाविक है कि गृह चैत्य में स्थाप्य प्रतिमा का परिमाण क्या हो?

पूर्वाचार्यों ने इस सम्बन्ध में विस्तृत निरूपण किया है। आचार्य उमास्वाति, आचार्य वर्धमानसूरि आदि गृह बिम्ब की चर्चा करते हुए कहते हैं कि

- बृहद् चैत्य में विषम अंगुल या हस्त परिमाण वाले बिम्ब को ही स्थापित करना चाहिए, सम अंगुल परिमाण वाले बिम्ब को स्थापित न करें।[40]
- बृहद् चैत्य में बारह अंगुल से कम परिमाण वाले बिम्ब को भी स्थापित नहीं करना चाहिए किन्तु गृह चैत्य में इस नियम के विरुद्ध ग्यारह अंगुल से अधिक परिमाण वाले बिम्ब की स्थापना नहीं करना चाहिए।
- गृह चैत्य में लोह, अश्म, काष्ठ, मिट्टी, हाथी दाँत एवं गोबर से निर्मित प्रतिमा की भी पूजा नहीं करनी चाहिए।
- पूर्वाचार्यों के मतानुसार गृह चैत्य में खण्डित अंग वाली प्रतिमा, वक्र प्रतिमा तथा मल्लिनाथ, नेमिनाथ एवं महावीर स्वामी की प्रतिमा वैराग्य प्रधान होने के कारण न पूजें।[41] परिमाण से अधिक या कम परिमाप वाली तथा विषम अंग वाली प्रतिमा परिवार के लिए अप्रतिष्ठित, दुष्ट और अशुभ होती है।
- शिल्प रत्नाकर आदि के अनुसार ग्यारह अंगुल तक की प्रतिमा में भी एक अंगुल की प्रतिमा श्रेष्ठ होती है। दो अंगुल की प्रतिमा धन का नाश करती है। तीन अंगुल वाली प्रतिमा सिद्धि देने वाली होती है। पाँच अंगुल वाली प्रतिमा वृद्धिकारक होती है। छह अंगुल वाली प्रतिमा उद्वेग कारक होती है। सात अंगुल वाली प्रतिमा पशु धन की वृद्धिकारक होती है। आठ अंगुल वाली प्रतिमा हानिकारक होती है। नौ अंगुल वाली प्रतिमा पुत्र की वृद्धि करने वाली होती है। दस अंगुल वाली प्रतिमा धन का नाश करती है और ग्यारह अंगुल वाली प्रतिमा

सर्व कामनाओं की पूर्ति करने वाली होती है। इस तरह बताए गए परिमाणानुसार गृह चैत्य में विषम अंगुल का बिम्ब ही स्थापित करें। इससे अधिक परिमाण वाले बिम्ब को घर देरासर प्रतिष्ठित न करें।[42]

दिशा-विदिशाओं में गृह चैत्य बनाने का शुभाशुभ फल

वास्तुशास्त्र के अनुसार गृह चैत्य के लिए पूर्वादि कुछ दिशाएँ शुभ मानी गई है और शेष अशुभ। उसकी सारणी निम्नोक्त है–

दिशा	फल
पूर्व	ऐश्वर्य, लाभ, यश-प्रतिष्ठा की प्राप्ति
आग्नेय	अशुभ एवं आराधना की निष्फलता
दक्षिण	अशुभ एवं शत्रु वृद्धि
नैऋत्य	भूत-पिशाच की बाधाएँ
पश्चिम	अशुभ एवं धन हानि
वायव्य	अशुभ एवं रोगोत्पत्ति
उत्तर	शुभ, धन लाभ एवं ऐश्वर्य प्राप्ति
ईशान	सुख-शांति एवं सर्व कार्य सिद्धि

गृहचैत्य एवं प्रतिमा स्थापना के कुछ निर्देश

1. गृह मन्दिर में जिस तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापित करनी हो उनकी एवं गृह स्वामी की गुण राशि का मिलान करने के पश्चात मूर्ति रखें। अर्थात जिस तीर्थंकर की राशि, गृह मालिक की राशि के अनुकूल हो उसे ही रखें।
2. गृह मन्दिर में पाषाण, लेप, हाथी दाँत और काष्ठ की प्रतिमा कदापि नहीं रखें, केवल धातु या रत्न की प्रतिमा शुभ मानी गई है।
3. गृह मन्दिर में पद्मासनस्थ प्रतिमा ही स्थापित करें।
4. बिना परिकर वाली प्रतिमा नहीं रखें।
5. गृह चैत्य का निर्माण इस तरह करवायें कि प्रतिमा की पीठ मुख्य वास्तु या घर की तरफ न आये। अन्यथा गृह स्वामी को सर्व प्रकार से हानि की संभावना रहती है।
6. किसी भी देव स्थान के ऊपर वजन न रखें।
7. चैत्यालय सीढ़ी के नीचे न बनायें।

8. पुरानी उपयोग की हुई लकड़ी का गृहचैत्य न बनायें, नये काष्ठ से ही निर्मित करें।
9. सैप्टिक टैंक के ऊपर गृह चैत्य न बनायें।
10. शौचालय, कचरा घर, जूते-चप्पल आदि के निकट भी गृह चैत्य न बनायें।

।। इति गृह चैत्य निर्माण विधि ।।

जीर्णोद्धार विधि

प्राकृतिक जगत का अटल नियम है कि एक निश्चित अवधि के पश्चात पौद्गलिक वस्तुओं में परिवर्तन होता है। शरीर, मकान, दुकान, कपड़ा, भोजन, आभूषण आदि में सहज बदलाव आता है। यद्यपि इनमें मकान या मन्दिर एक ऐसी वस्तु है जिसका पुनर्निर्माण किया जा सकता है। इसी तरह पर्याप्त काल के उपरान्त प्रतिमाएँ भी जर्जरित/क्षीण होने लगती है। अंगोपांग घिसने से बिम्ब का स्वरूप बदल जाता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर दो विकल्प खड़े होते हैं– 1. नवीन मन्दिर का निर्माण और 2. प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार।

वास्तुशास्त्र के आधार पर नूतन मन्दिर से भी जीर्णोद्धार का अधिक महत्त्व है। ऐसा करने से प्राचीन वास्तु के साथ पुरातत्त्व स्थापत्य की सुरक्षा हो जाती है तथा जीर्ण वास्तु का समयोचित उद्धार करवा देने पर उसकी आयु में वृद्धि होती है।

जीर्णोद्धार के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश

1. जीर्णोद्धार करवाते समय यह ध्यान देना आवश्यक है कि मन्दिर वास्तु यदि अल्प द्रव्य से निर्मित हो तो उससे अधिक द्रव्य की वास्तु का निर्माण करें। जैसे कि पूर्व की वास्तु मिट्टी की हो तो काष्ठ की बनाएँ, यदि काष्ठ की हो तो पाषाण की बनाएँ, यदि पाषाण की हो तो धातु की बनाएँ और धातु की हो तो रत्न की बनाएँ। इस निर्देश का मूल हार्द यह है कि श्रेष्ठतर द्रव्य का उपयोग किया जाये।[43]
2. शिल्प रत्नाकर के अनुसार मंदिर निर्माण अथवा जीर्णोद्धार के लिए किसी अन्य वास्तु का गिरा हुआ ईंट, चूना, गारा, पाषाण, काष्ठ आदि का प्रयोग नहीं करें। आचार्यों के मत से ऐसा करने पर देवालय सूने पड़े रहते हैं और उनमें पूजा नहीं होती।[44]

3. जीर्णोद्धार करवाते समय यह ध्यान रखना भी जरूरी है कि जीर्णोद्धार योग्य वास्तु जिस आकार अथवा परिमाण की हो नवीन वास्तु उसी आकार एवं मान की रखें। यदि पूर्व वास्तु को परिमाण से कम किया जाये तो हानि होती है और मान से अधिक करने पर स्वजन हानि की सम्भावना रहती है अतएव माप का परिवर्तन नहीं करें।[45]
4. जीर्णोद्धार का कार्य प्रभु के समक्ष निश्चित अवधि का संकल्प लेकर करें।
5. जीर्णोद्धार के लिए वेदी से प्रतिमाओं के उठाने का कार्य शुभ लग्न एवं शुभ मुहूर्त्त में विधिवत करें। ऐसा करने से कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होता है। यदि प्रतिमा की उत्थापन विधि अनुचित तरीके से की जाये तो भीषण संकटों का सामना करना पड़ सकता है। यह कार्य बिना विधि के मात्र भावावेश में कदापि न करें।
6. मिट्टी का देवालय यदि आकार रहित होकर गिर गया हो तो उसे गिराकर नया बनायें। पाषाण का देवालय तीन हाथ जितना ऊँचा और काष्ठ का देवालय डेढ़ हाथ जितना ऊँचा रह गया हो तो उसे जीर्ण होने की स्थिति में गिराकर नया करवायें, किन्तु उपरोक्त परिमाण से अधिक ऊँचा हो तो ऐसे मन्दिर को नहीं गिरायें।[46]

अनावश्यक जीर्णोद्धार के दुष्फल

जीर्णोद्धार का निर्णय करने से पूर्व निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना अनिवार्य है–

शिल्परत्नाकर के उल्लेखानुसार 1. यदि देवालय को अच्छी स्थिति में रहने के बाद भी उसे जीर्णोद्धार अथवा नवीनीकरण के नाम पर गिराया अथवा विस्थापित किया जाये तो उसके दुष्परिणाम हासिल हो सकते हैं। इससे देवालय विस्थापन करने वाला और विस्थापन करवाने वाला दोनों ही चिरकाल दु:ख भोगते हैं।[47]

2. निष्प्रयोजन स्थापित देवालय का कदापि विस्थापन न करें। क्योंकि अचल प्रतिमा को चलित करने पर राष्ट्र में विभ्रम या विप्लव होने की संभावना बनती है तथा अल्पकाल में ही देश का विच्छेद हो जाता है। साथ ही प्रतिमा उत्थापनकर्त्ता का कुल नष्ट होता है, स्त्री एवं पुत्र मृत्यु पाते हैं और ऐसा पूजक भी छह माह में काल ग्रसित हो जाता है।[48]

प्रतिमा उत्थापन एवं संकल्प विधि

जब यह निर्णय कर लिया जाये कि अमुक देवालय का जीर्णोद्धार अत्यावश्यक है तो सर्वप्रथम सुविज्ञ आचार्य एवं शिल्प शास्त्रज्ञ से परामर्श कर एक योजना बनायें। तदनन्तर शुभ मुहूर्त्त का निर्णय करें। तत्पश्चात एक वर्गाकार ठोस चबूतरा (वेदी) बनवायें। फिर वहाँ चंदोवा, छत्र आदि लगवायें, उस स्थान की शुद्धि करवायें, शान्ति मन्त्र का ग्यारह हजार जाप दें। उसके बाद मन्दिर में पूजा विधि करें। तदुपरान्त जीर्णोद्धार कार्य का उत्तरदायित्व स्वीकार करने वाले गृहस्थों को तीर्थंकर परमात्मा की वेदी के समक्ष श्रीफल अर्पित कर, यह संकल्प करवायें-

हम देवाधिदेव श्री.......................... (मूलनायक) सहित समस्त जिनेन्द्र देवों को यहाँ से उत्थपि कर नये स्थान.......................... में (जहाँ भगवान को स्थानांतरित करना है) स्थापित करना चाहते हैं। सदैव की भाँति हम वहाँ भी भक्ति पूर्वक देवाधिदेव प्रभु का पूजन-अभिषेक नियमित रूप से करते रहेंगे। जीर्णोद्धार कार्य समाप्त हो जाने पर सभी प्रतिमाओं को विधिपूर्वक मूल स्थान में स्थानांतरित कर देवेंगे। जीर्णोद्धार कार्य को .... समय मर्यादा में पूरा करने का संकल्प लेते हैं, इस अवधि में .... रस त्याग, एकाशन आदि संयम का पालन करेंगे।

यहाँ स्थित जिनशासन प्रभावक देवी-देवताओं से भी प्रार्थना करते हैं कि वे हमें इस धर्म कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान करें तथा यह कार्य निर्विघ्न और समय सीमा में पूरा हो सके इस हेतु समुचित सहकार एवं मार्गदर्शन देवें।

जिनेन्द्र प्रभु के समक्ष श्रीफल अर्पण कर संकल्प करें। शासन देवों, वास्तु देवों तथा दिक्पाल देवों के समक्ष भी आदर पूर्वक यथायोग्य वन्दना एवं श्रीफल अर्पण कर याचना करें कि यदि कोई जाने-अनजाने में भूल हो जाये तो उसे आप अनुग्रह पूर्वक क्षमा करें तथा समुचित संकेतों से हमें मार्गदर्शन दें।

तदनन्तर मंगल ध्वनि के साथ प्रतिमाओं को नई वेदी पर स्थापित करें। प्रतिमाओं के स्थानान्तरण का यह कार्य पूर्ण सावधानी से करें। इसमें जरा भी प्रमाद या जल्दीबाजी न करें।[49]

जीर्णवास्तु पाडन विधि

प्रतिमा का उत्थापन करने के पश्चात जीर्ण-शीर्ण मलवे को गिराने का कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। उसके लिए स्वर्ण अथवा रजत का हाथी या बैल बनवायें। फिर शुभ मुहूर्त्त में उसके दाँत अथवा सींग से जीर्ण वस्तु गिराना शुरू करें। उसके बाद श्रेष्ठ शिल्पी सम्पूर्ण वास्तु को गिरा दें।[50]

उल्लेखनीय है कि जीर्ण वास्तु गिराने का कार्य ईशान दिशा से प्रारम्भ करना चाहिए। फिर ईशान से वायव्य एवं आग्नेय की ओर यह कार्य करते हुए नैऋत्य दिशा का भाग सबसे अंत में गिराना चाहिए। गिराये हुए मलबे को उत्तर, ईशान तथा पूर्व दिशा में एकत्रित नहीं करें। इस मलबे को दक्षिण, नैऋत्य अथवा पश्चिम में रखें।

जीर्णोद्धार प्रारम्भ विधि

पहले की जीर्ण वास्तु को पूर्ण रूप से गिरा देने के पश्चात पुनर्निर्माण का कार्य शुभ नक्षत्र आदि, श्रेष्ठ चन्द्र और तारा बल संयुक्त मुहूर्त्त में तथा अमृतसिद्धि योग में आरम्भ करना चाहिए।[51]

जीर्णोद्धार का फल

जिनमन्दिर का निर्माण कार्य उत्कृष्ट पुण्य सर्जन का हेतु है। यद्यपि पूर्वाचार्यों एवं शिल्पकारों ने नव निर्माण की अपेक्षा प्राचीन जीर्ण मन्दिर का उद्धार करने पर विशेष बल दिया है।

शत्रुंजय रास में जीर्णोद्धार का पुण्य फल बताते हुए कहा गया है-

शत्रुंजय ऊपर देहरो, नवो निपावे कोय।
जीर्णोद्धार करावतां, आठ गुणो फल होय।।

प्रासाद मंडनकार ने भी यही कहा है कि नया मंदिर बनाने के स्थान पर प्राचीन जीर्ण-शीर्ण देवालय का जीर्णोद्धार किया जाये तो आठ गुना अधिक पुण्य का अर्जन होता है। तदनुसार देव स्थान के अतिरिक्त कूप, बावड़ी, तालाब और भवन का जीर्णोद्धार करने से भी आठ गुणा पुण्य प्राप्त होता है।[52]

।। इति जीर्णोद्धार विधि ।।

वज्रलेप विधि

वज्र अर्थात कठोर, प्रगाढ़, तीक्ष्ण, लेप अर्थात लिंपन करना। किसी सुदृढ़ वस्तु का लेप करना वज्रलेप कहलाता है। प्राचीन युग में मंदिर, मकान आदि को मजबूत करने के लिए भींत आदि के ऊपर लेप किया जाता था, इसे ही वज्रलेप कहा गया है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में देवालयों एवं प्रतिमाओं को जर्जरित होने से बचाना आवश्यक है। यदि प्रतिमा खंडित हो जाए अथवा उसके अंग-उपांग घिस जाये तो उसकी पूज्यता समाप्त हो जाती है ऐसी स्थिति में प्रतिमा की अखण्डता को बनाये रखने के उद्देश्य से वज्रलेप किया जाता है। वज्रलेप करने से त्रुटित एवं जर्जरित स्थान ठीक हो जाते हैं।

वर्तमान में अधिकांशत: प्रतिमाओं का लेप ही देखा जाता है। यह वज्रलेप सिर्फ अखण्डित प्रतिमा पर ही चढ़ायें, खण्डित प्रतिमा पूजा योग्य न होने से संस्कार योग्य नहीं होती है।

वज्रलेप निर्माण की विधि

शिल्प ग्रन्थों में वज्रपेल तैयार करने की दो विधियाँ प्राप्त होती है। प्रथम विधि के अनुसार कच्चा तेंदुफल, कच्चा कैंथ फल, सेमल के फूल, शाल वृक्ष के बीज, धामन वृक्ष की छाल और घोड़ावच– इन औषधियों को एक समान परिमाण में एकत्रित करें। फिर उन्हें 1024 तोला पानी में डालकर उकालें। जब पानी का आठवां हिस्सा शेष रह जाये तब उसे नीचे उतारकर उसमें श्री वसक वृक्ष का गोंद, हीराबोल, गुगल, भिलवा, देवदार, कुंदरू, राल, अलसी और बिल्व– इन औषधियों का चूर्ण बराबर मात्रा में डालें। उसके बाद खूब हिलाने पर वज्रलेप तैयार होता है।[53]

दूसरी विधि के अनुसार लाख, देवदारू का गुन्द, गुगल, हलदर, बिल्व, नागबला, नीम, टिम्बरू का फल, मींढल, जेठीमध, मजीठ, राल, हीराबोल और आवलां– इन औषधियों को एक समान परिमाण में संग्रहित कर 1024 तोला पानी में उकालें। जब पानी का आठवाँ हिस्सा बच जाये तब नीचे उतारने पर वज्रलेप तैयार हो जाता है।[54]

वज्रलेप करने की विधि

वज्रलेप तैयार हो जाने पर प्रतिमा आदि के जीर्ण स्थानों पर गरम-गरम ही लगायें। गरम लेप ही असर कारक होता है।[55]

वज्रलेप करने से प्रतिमा अथवा देवालय आदि की स्थिति काफी अधिक यहाँ तक कि करोड़ों वर्ष भी बढ़ जाती है। इसलिए वज्रलेप की उपयोगिता सुसिद्ध है।[56]

।। इति वज्रलेप विधि ।।

प्रतिमा विसर्जन विधि

पादलिप्ताचार्यकृत निर्वाणकलिका के अनुसार खण्डित, जीर्णशीर्ण, प्रमाणहीन, प्रमाणाधिक, टेढ़ी, विकृत आकार वाली, रौद्र स्वरूपी, पिशाच आदि से अधिष्ठित जिनबिम्ब को विसर्जित करने की विधि निम्नानुसार है–

सकलीकरण एवं दिक्पालों को बलि अर्पण– प्रतिमा विसर्जन के दिन प्रतिष्ठाचार्य प्रात:काल में अपनी आवश्यक क्रिया पूर्ण करके सकलीकरण करें। फिर खण्डित बिम्ब को स्थान्तरित करने की विधि सम्पन्न करने वाले आचार्य या गीतार्थ मुनि शान्ति निमित्त बलि अर्पण करते हुए दिक्पालों का इस प्रकार आह्वान करें– ॐ इन्द्राय प्रतिगृह्ण स्वाहा, ॐ अग्नये प्रतिगृह्ण स्वाहा, ॐ यमाय प्रतिगृह्ण स्वाहा, ॐ नैर्ऋतये प्रतिगृह्ण स्वाहा, ॐ वरुणाय प्रतिगृह्ण स्वाहा, ॐ वायवे प्रतिगृह्ण स्वाहा, ॐ कुबेराय प्रतिगृह्ण स्वाहा, ॐ ईशानाय प्रतिगृह्ण स्वाहा ॐ ब्रह्मणे प्रतिगृह्ण स्वाहा, ॐ नागाय प्रतिगृह्ण स्वाहा।

यहाँ उक्त प्रकार से मन्त्रोच्चार करते हुए उस-उस दिशा में अनुक्रम से बलि (गेहूँ, चना आदि धान्य) क्षेपण करें।

क्षेत्रपाल एवं प्रेत आदि बलि अर्पण– तदनन्तर वायव्य कोण में 'ॐ क्षाँ क्षेत्रपालाय स्वाहा' यह कहकर क्षेत्रपाल को बलि दें। फिर 'ॐ सर्वभूतेभ्यो वषट् स्वाहा' यह मन्त्र बोलकर भूत आदि को संतर्पण करें। फिर चैत्यवन्दन करें।

शस्त्र युक्त दिक्पाल पूजा– उसके पश्चात पूर्व निर्धारित क्षेत्र में आकर ॐकार से आसन को पूजित करें। फिर उसके ऊपर बैठकर भूतशुद्धि एवं सकलीकरण करें। फिर अर्घपात्र की द्रव्य शुद्धि करके उस पर आचमन आदि करें। उसके बाद नित्य विधि पूर्वक अरिहन्त प्रभु की पूजा करें। फिर निम्न मन्त्रोच्चार करते हुए दस दिक्पालों की पूजा करें–

पूर्व दिशा में– **ॐ इन्द्राय स्वाहा ॐ वज्राय स्वाहा।**

आग्नेय दिशा में– **ॐ अग्नये स्वाहा ॐ शक्तये स्वाहा।**

दक्षिण दिशा में– **ॐ यमाय स्वाहा ॐ दण्डाय स्वाहा।**

नैर्ऋत दिशा में– **ॐ निऋतये स्वाहा ॐ खड्गाय स्वाहा।**

पश्चिम दिशा में– **ॐ वरुणाय स्वाहा ॐ पाशाय स्वाहा।**

वायव्य दिशा में– **ॐ वायवे स्वाहा ॐ ध्वजाय स्वाहा।**

उत्तर दिशा में– **ॐ कुबेराय स्वाहा ॐ गदायै स्वाहा।**

ईशान दिशा में– **ॐ ईशानाय स्वाहा ॐ शूलाय स्वाहा।**

ऊर्ध्व दिशा में– **ॐ ब्रह्मणे स्वाहा ॐ पद्माय स्वाहा।**

अधो दिशा में– **ॐ नागाय स्वाहा ॐ उत्तराय स्वाहा।**

दिक्पालों को सावधान– दिक्पालों की पूजा करने के पश्चात उन्हें स्वयं के कर्त्तव्य के विषय में निम्न मन्त्र पद बोलते हुए सावधान करें–

1. **भो भो शक्र! त्वया स्वस्यां दिशि विघ्न प्रशान्तये।
सावधानेन शान्ति कर्मान्तं, यावद् भगवदाज्ञया स्थातव्यम्।।**
2. **भो भो अग्ने! त्वया स्वस्यां दिशि विघ्न प्रशान्तये।
सावधानेन शान्ति कर्मान्तं, यावद् भगवदाज्ञया स्थातव्यम्।।**
3. **भो भो यम! त्वया स्वस्यां दिशि विघ्न प्रशान्तये।
सावधानेन शान्ति कर्मान्तं, यावद् भगवदाज्ञया स्थातव्यम्।।**
4. **भो भो निऋते! त्वया स्वस्यां दिशि विघ्न प्रशान्तये।
सावधानेन शान्ति कर्मान्तं,त यावद् भगवदाज्ञया स्थातव्यम्।।**
5. **भो भो वरूण! त्वया स्वस्यां दिशि विघ्न प्रशान्तये।
सावधानेन शान्ति कर्मान्तं, यावद् भगवदाज्ञया स्थातव्यम्।।**
6. **भो भो वायो! त्वया स्वस्यां दिशि विघ्न प्रशान्तये।
सावधानेन शान्ति कर्मान्तं, यावद् भगवदाज्ञया स्थातव्यम्।।**
7. **भो भो कुबेर! त्वया स्वस्यां दिशि विघ्न प्रशान्तये।
सावधानेन शान्ति कर्मान्तं, यावद् भगवदाज्ञया स्थातव्यम्।।**
8. **भो भो ईशान! त्वया स्वस्यां दिशि विघ्न प्रशान्तये।
सावधानेन शान्ति कर्मान्तं, यावद् भगवदाज्ञया स्थातव्यम्।।**
9. **भो भो ब्रह्मन्! त्वया स्वस्यां दिशि विघ्न प्रशान्तये।
सावधानेन शान्ति कर्मान्तं, यावद् भगवदाज्ञया स्थातव्यम्।।**
10. **भो भो नाग! त्वया स्वस्यां दिशि विघ्न प्रशान्तये।
सावधानेन शान्ति कर्मान्तं, यावद् भगवदाज्ञया स्थातव्यम्।।**

खण्डित प्रतिमा की पूजा एवं विसर्जन आज्ञा– दिक्पालों को प्रभु की आज्ञा सुनाकर, आचार्य पुन: अस्त्र मंत्र और मुद्रा से शरीर का रक्षा कवच बनायें। फिर उस निर्धारित भू-भाग (मंडप) में सभी जगह अर्घ जल का क्षेपण करते हुए विघ्न निवारण करें।

तदनन्तर खण्डित प्रतिमा की विपरीत क्रम से पूजा करें। फिर विसर्जन करने के लिए उस देव को अर्घ देकर प्रार्थना पूर्वक आज्ञा प्राप्त करें–

भगवन्! बिंबमिदमशेषदोषावहमस्य चोद्धारे सति शान्तिः स्यादिति भगवतोक्तमतोऽस्य समुद्धाराय समुद्यतं मामा तिष्ठ एवं कुरु।

इस प्रकार विज्ञप्ति पूर्वक अनुमति प्राप्त कर श्रेष्ठ जाति के एक कलश में पवित्र जल भरें। फिर चन्दन, पुष्प एवं अक्षत से उस कलश की पूजा करें, फिर उसे नवकार मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करें और मुद्रा दिखायें। उसके पश्चात पूजित कलश से खंडित प्रतिमाओं का अभिषेक करें।

तत्पश्चात खंडित बिम्ब को स्थानान्तरित करने के लिए मूल मन्त्र का एक हजार (10 माला) जाप करें और 108 सुवर्ण पुष्पों से उस बिम्ब की पूजा करें।

प्रतिमा उत्थापन एवं विसर्जन– उसके बाद खण्डित प्रतिमा के समीप उपस्थित होकर उसके शरीर में रहे हुए सत्त्व को निम्न श्लोक द्वारा सुनायें–

प्रतिमारूपमास्थाय, येनादौ समधिष्ठिता ।
स शीघ्रं प्रतिमां त्यक्त्वा, यातु स्थानं समीहितम् ।।

फिर **'ॐ विसर विसर स्वस्थानं गच्छ-गच्छ'**।

यह मंत्र बोलकर अर्घ प्रदान करते हुए उस देव तत्त्व का विसर्जन करें। उसके पश्चात सुवर्ण के ओजार को अभिमंत्रित कर उससे भग्न प्रतिमा को उत्थापित करें। फिर पाश युक्त सुवर्ण की डोरी से बांधकर हाथी आदि की सवारी में पधरावें। उसके बाद सकल संघ के साथ **'शान्ति र्भवतु'** इस प्रकार बोलते हुए गाँव के बाहर आयें। यदि पाषाण की प्रतिमा हो तो अगाध जल में विसर्जित करें। यदि मिट्टी की या रत्नमयी हो और अग्नि आदि में जलाने से तेजहीन एवं स्थान च्युत हो गई हो तो उसे भी गहरे समुद्र में विसर्जित करें।

सुवर्ण आदि धातु की प्रतिमा खण्डित हो जाये तो उसकी त्रुटि को सुधारकर पुन: स्थापित कर सकते हैं।

इसी विधि से दोष युक्त ध्वजा, प्रासाद, चूलक आदि का भी विसर्जन करना चाहिए।[57]

।। इति प्रतिमा विसर्जन विधि ।।

स्थापनाचार्य प्रतिष्ठा विधि

विधिमार्गप्रपा के उल्लेखानुसार स्थापनाचार्य की प्रतिष्ठा निम्न विधि से करें–

• स्थापनाचार्य कोड़ी (शंखा कृति), स्फटिकमणि अथवा चन्दन के होते हैं। उन पर चक्षु युगल, कर्ण युगल, हस्त युगल, पाद युगल की कल्पना करते हुए सकलीकरण एवं शुचिविद्या का आरोपण करें।

• तत्पश्चात गरुड़ आदि मुद्राएँ दिखाते हुए सर्व प्रकार के उपद्रवों को दूर करें।

• उसके बाद गोशीर्ष चन्दन से स्थापनाचार्य का लेप करें। फिर उस पर पंच परमेष्ठी अथवा पंचाचार के प्रतीक रूप में चन्दन रस से पाँच तिलक करें।

• तदनन्तर गणधर मन्त्र अथवा वर्धमान विद्या का स्मरण करते हुए उस पर सात बार वासचूर्ण डालें। इतनी विधि से स्थापनाचार्य की प्रतिष्ठा हो जाती है।[58]

।। इति स्थापनाचार्य प्रतिष्ठा विधि ।।

सिद्धमूर्ति प्रतिष्ठा विधि

प्रत्येक संसारी जीव आठ कर्मों से आबद्ध है। इन सर्व कर्मों से मुक्त होने वाली आत्मा सिद्ध कहलाती है। जिन शासन में पन्द्रह प्रकार के सिद्ध माने गये हैं। जो आत्मा जिस लिंग या वेश से सिद्ध हुई उस वेश के अनुरूप मूर्ति का निर्माण करना सिद्ध मूर्ति कहलाती है। सभी प्रकार के सिद्ध मूर्तियों की प्रतिष्ठा विधि समान है। आचार दिनकर में सिद्ध मूर्ति प्रतिष्ठा की निम्न विधि बतायी गयी है–

सर्वप्रथम प्रतिष्ठा करवाने वाला गृहस्थ अपने घर पर शान्तिक एवं पौष्टिक कर्म करें। फिर बृहत्स्नात्र विधि से प्रतिष्ठित बिम्ब की स्नात्र पूजा करें। उसके बाद निम्न मूल मंत्र का स्मरण करते हुए सिद्ध मूर्ति का पंचामृत स्नात्र करें। फिर पुन: मूल मंत्र का उच्चारण कर सर्वांगों पर तीन-तीन बार वासचूर्ण डालें।

मूल मन्त्र यह है– **ॐ अं आं ह्रीं नमो सिद्धाणं बुद्धाणं सर्व सिद्धाणं श्री आदिनाथाय नमः।**

जो आत्माएँ जिस लिंग में सिद्ध हुई उस लिंग वाले सिद्ध मूर्तियों की प्रतिष्ठा में तद्योग्य वस्तुओं, पात्रों एवं भोजन आदि का दान करें।

यहाँ ध्यातव्य है कि यदि सिद्ध मूर्ति की प्रतिष्ठा गृहस्थ द्वारा की जाए तो उक्त विधि करें और यदि साधु द्वारा की जाती है तो मूल मंत्र के उच्चारण पूर्वक वासचूर्ण डालने मात्र से सिद्ध मूर्ति की प्रतिष्ठा हो जाती है, अन्य विधि करने की जरूरत नहीं रहती।[59]

।। इति सिद्धमूर्ति प्रतिष्ठा विधि ।।

सरस्वती आदि प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा विधि

सरस्वती, पद्मावती, चक्रेश्वरी आदि जो भी सम्यक्त्वी देवियाँ श्रद्धा के रूप में विस्थापित की जाती है उनकी सर्वप्रथम अधिवासना करनी चाहिए।

अधिवासना मंत्र यह है– **ॐ क्ष्रूँ नमः।**

उसके बाद मूर्ति की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

प्रतिष्ठा मंत्र यह है– **ॐ ह्रौं हूँ ह्रीँ नमः।**

तत्पश्चात मूर्ति पर सौभाग्य मंत्र से 7 बार न्यास करना चाहिए।

सौभाग्य मंत्र यह है– **ॐ जये श्रीँ हूँ सुभद्रे इं स्वाहा।**

प्रतिष्ठा के विशेष मंत्र निम्नानुसार है–

1. **ॐ इं ह्रीँ श्री ह्रौं इं सरस्वति! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा**
2. **ॐ ह्रीं मणिभद्रयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा**
3. **ॐ ह्रीं वं ब्रह्मशान्ते! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा**
4. **ॐ ह्रीं अं अम्बिके! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा**

।। इति सरस्वत्यादि प्रतिष्ठा विधि ।।

मंत्रपट्ट प्रतिष्ठा विधि

मंत्र पट्ट सोना, चाँदी, तांबा, स्फटिक, काष्ठ, वस्त्र आदि अनेक प्रकार के होते हैं। आचार दिनकर में मंत्र पट्ट को संस्कारित करने की विधि निम्न रूप से दर्शायी गई है।

• सर्वप्रथम जिनस्नात्र मिश्रित पंचामृत से मंत्र पट्ट का प्रक्षाल करें। फिर गन्धोदक एवं शुद्ध जल से मंत्र पट्ट का स्नान करें।

• उसके पश्चात यक्षकर्दम से उसका लेप करें। फिर मंत्रपट्ट पर जो मंत्र लिखे हुए हैं उन्हीं मन्त्रों को सात बार बोलते हुए (पच्चीस वस्तुओं से निर्मित) वासचूर्ण डालकर प्रतिष्ठा करें। यदि पट्ट में किसी देव की मूर्ति खुदी हुई हो अथवा चित्रित हो तो पूर्वोक्त प्रकार से ही प्रथम अभिषेक करें। फिर **'ॐ ह्रीँ अमुक देवाय नमः'– 'ॐ ह्रीँ अमुक देव्यै नमः'** इस प्रकार जिस देव या देवी की मूर्ति हो उस नाम के मंत्रोच्चार पूर्वक वासचूर्ण डालते हुए उसकी प्रतिष्ठा करें।

• यदि पट्ट वस्त्रमय हो अर्थात वस्त्र के ऊपर यंत्र, मंत्र अथवा मूर्ति आलेखित हो तो उसे दर्पण में प्रतिबिम्बित करके उस दर्पण बिम्ब का पूर्वोक्त रीति से स्नात्र करें, क्योंकि स्नात्र विधि के बिना प्रतिष्ठा अपूर्ण मानी जाती है। तदनन्तर पट्टोत्कीर्ण मंत्र के स्मरण पूर्वक वासचूर्ण डालते हुए उसकी प्रतिष्ठा करें।

• इसी तरह मखमल आदि के ऊपर जरी आदि से भरी हुई मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी उपरोक्त विधि से ही करें।

सिद्धाचल, अष्टापद, सम्मेतशिखर आदि तीर्थों के पट्ट, सूरिमंत्र पट्ट, वर्धमान विद्या पट्ट आदि को उक्त विधि से ही प्रतिष्ठित किया जाता है।[60]

।। इति मंत्रपट्ट प्रतिष्ठा विधि ।।

साधुमूर्ति-स्तूप प्रतिष्ठा विधि

आचार्य, उपाध्याय या साधु की मूर्ति चैत्य में अथवा उपाश्रय में स्थापित करनी हो अथवा उनके चरण पादुका स्तूप की प्रतिष्ठा करवाना हो तो उसकी विधि निम्न प्रकार है–

• सर्वप्रथम मूर्ति और चरण पादुका का पंचामृत से प्रक्षाल करें। फिर उन्हें शुद्ध जल से धोकर पौंछें और फिर धूप प्रगटन करें।

• उसके पश्चात शुभ लग्न के आने पर आचार्य की मूर्ति या स्तूप की प्रतिष्ठा निम्न मंत्र को तीन बार बोलते हुए वासक्षेप पूर्वक करें।

ॐ नमो आयरियाणं भगवंताणं पाणीणं पंचविहायार सुट्ठिआणं इह आयरिया भगवंतो अवयरंतु साहुसाहुणी सावयसावियकयं पूअं पडिच्छन्तु सव्व सिद्धिं दिसन्तु स्वाहा।

• शुभ लग्न में उपाध्याय मूर्ति या स्तूप की प्रतिष्ठा निम्न मंत्र को तीन

बार बोलते हुए वासक्षेप पूर्वक करें-

ॐ नमो उवज्झायाणं भगवंताणं बारसंगपढग-पाढगाणं सुअहराणं सज्झायज्झाणसत्ताणं इह उवज्झाया भगवंतो अवयरंतु साहुसाहुणी सावयसावियाकयं पूअं पडिच्छन्तु सव्व सिद्धिं दिसन्तु स्वाहा।

• शुभ वेला में साधु मूर्ति या स्तूप की प्रतिष्ठा निम्न मंत्र को तीन बार कहते हुए वासक्षेप पूर्वक करें-

ॐ नमो सव्व साहूणं भगवंताणं पंचमहव्वयधराणं पंच समियाणं तिगुत्ताणं तव-नियम-नाण-दंसण जुत्ताणं मुक्खसाहगाणं इह साहुणो भगवंतो अवयरंतु साहुसाहुणी सावयसावियाकयं पूअं पडिच्छन्तु सव्वसिद्धिं दिसन्तु स्वाहा।[61]

।। इति साधु मूर्ति प्रतिष्ठा विधि ।।

पितृ मूर्ति प्रतिष्ठा विधि

गृहस्थों के पूर्वजों की पाषाणमयी मूर्त्तियाँ अधिकांश प्रासाद में स्थापित की जाती है तथा गृह में पूजा के लिए स्थापित की जाने वाली गृहस्थों की पितृ मूर्ति धातु की या पट्ट पर आलेखित होती है। गले में पहनने योग्य पुष्प आदि के रूप में नामांकित पितृ मूर्तियाँ भी होती है। इन सभी पितृ मूर्तियों की प्रतिष्ठा विधि एक समान है।

पितृमूर्ति की प्रतिष्ठा के लिए सर्वप्रथम पूर्व प्रतिष्ठित जिनबिम्ब की बृहत्स्नात्र विधि करें। फिर उस स्नात्र जल से मिश्रित पंचामृत द्वारा तीनों प्रकार की पितृ मूर्तियों को स्नान कराएँ। फिर शुद्ध जल से प्रक्षालित कर उसे पौंछें।

तत्पश्चात शुभ लग्न में पितृ मूर्ति की प्रतिष्ठा निम्न मंत्र से तीन बार वासक्षेप पूर्वक करें-

ॐ नमो भगवओ अरहओ जिणस्स महाबलस्स महाणुभावस्स सिवगइगयस्स सिद्धस्स बुद्धस्स अक्खलिअप भावस्स तद्भक्तोऽमुकवर्णः, अमुक जातीयः, अमुक गोत्रः, अमुक पौत्रः, अमुक पुत्रः, अमुक जनकः इह मूर्तौ अवतरतु-अवतरतु संनिहितः तिष्ठतु-तिष्ठतु निज कुल्यानां पुत्र भातृव्यपौत्रादीनां जिन भक्ति पूर्वकं दत्तमाहारं वस्त्रं पुण्यकर्म प्रतीच्छतु शान्तिं तुष्टिं पुष्टिं ऋद्धिं वृद्धिं समीहितं करोतु स्वाहा।

उस दिन कौटुम्बिक जन यथाशक्ति साधर्मिक वात्सल्य करें और संघ पूजा करें।[62]

।। इति पितृमूर्ति प्रतिष्ठा विधि ।।

चतुर्निकाय देव मूर्ति प्रतिष्ठा विधि

देव चार प्रकार के होते हैं– 1. भवनपति 2. व्यन्तर 3. ज्योतिष और 4. वैमानिक। इनमें 10 प्रकार के भवनपति देव, 20 भवनपति देवों के इन्द्र, 16 प्रकार के व्यन्तर देव, 32 प्रकार के व्यन्तर देवों के इन्द्र, 12 देवलोक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर विमानवासी देव और 12 कल्पोपपन्न देवों के दस इन्द्र– इन सभी देवों की प्रतिमाएँ उनके वर्ण के अनुसार काष्ठमयी, धातुमयी और रत्न घड़ित होनी चाहिए।

आचार दिनकर के अनुसार देव मूर्तियों की प्रतिष्ठा विधि निम्न प्रकार है–

• सर्वप्रथम चैत्य में या गृह में बृहत्स्नात्र विधि द्वारा अरिहन्त परमात्मा की स्नात्र पूजा करें। तत्पश्चात मिश्रित पंचामृत द्वारा देवों की प्रतिमाओं को स्नान कराएं, फिर शुद्ध जल से प्रक्षालित करें।

• उसके पश्चात यक्षकर्दम का लेप करें, धूप उत्क्षेपण करें तथा पुष्प आदि से पूजा करें।

• तदनन्तर पच्चीस प्रकार के द्रव्यों से निर्मित वासचूर्ण को निम्न प्रतिष्ठा मंत्र का उच्चारण करते हुए तीन बार डालें। इससे देव मूर्तियों की प्रतिष्ठा हो जाती है।

प्रतिष्ठा मंत्र यह है– **ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीं क्लूं कुरु-कुरु, तुरु-तुरु, कुलु-कुलु, चुरू-चुरू, चुलु-चुलु, चिरि-चिरि, चिलि-चिलि, किरि-किरि, किलि-किलि, हर-हर, सर-सर, हूं सर्व देवेभ्यो नमः अमुक निकाय मध्यगत, अमुक जातीय, अमुक पद, अमुक व्यापार, अमुक देव इह मूर्ति स्थापनायां, अवतर-अवतर, तिष्ठ-तिष्ठ, चिर पूजकदत्तां पूजां गृहाण-गृहाण स्वाहा।**

स्पष्टीकरण– 1. मंत्र में 'निकाय' के स्थान पर प्रतिष्ठाप्य देव भुवनपति, व्यंतर या वैमानिक आदि जिस निकाय के हो उसका नाम बोलें।

2. 'जाति' के स्थान पर भवनपतियों में असुर कुमारादि, व्यन्तरों में भूतपिशाचादि, वैमानिकों में सौधर्म इन्द्रादि शब्द बोलें।

3. 'पद' के स्थान पर इन्द्र, सामानिक, पारिषद्य, त्रायस्त्रिंश, अंगरक्षक, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोगिक, किल्बिषिक, लौकान्तिक, तिर्यक् जृम्भक आदि शब्द बोलें।

4. 'व्यापार' के स्थान पर उनके गुणों का कीर्त्तन करें अथवा उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों का उल्लेख करें।

5. 'देव' के स्थान पर प्रतिष्ठाप्य देव का नाम बोलें।

इसी तरह चारों निकायों के देवियों की भी प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

यहाँ विशेष उल्लेखनीय यह है कि गणिपिटक, शासन यक्ष, शासन यक्षिणी, ब्रह्मशान्ति यक्ष आदि की प्रतिष्ठा विधि का समावेश व्यंतर देवों में हो जाता है।

कन्दर्प आदि की प्रतिष्ठा विधि का समावेश वैमानिक देवों में, लोकपालों की प्रतिष्ठा विधि का समावेश भवनपति देवों में, दिक्पालों की प्रतिष्ठा विधि का अन्तर्भाव व्यंतर देवों में तथा ज्योतिष देवों की प्रतिष्ठा विधि का समावेश ग्रहों की प्रतिष्ठा में हो जाता है।[63]

।। इति चतुर्निकाय देवमूर्ति प्रतिष्ठा विधि ।।

ग्रहों की प्रतिष्ठा विधि

सभी मनुष्यों का जीवन सुख-दुःख का समन्वित रूप है। पुण्य के उदय से सुख एवं पाप कर्म के उदय से दुःख की प्राप्ति होती है। ज्योतिष शास्त्र में नवग्रहों के उदय अस्त के रूप में इसे प्रदर्शित किया जाता है। जब मनुष्य विपरीत ग्रहों के उदय के कारण दुखी होता है तो उसके निवारण के लिए भगवान की शरण में आता है। जैनाचार्यों ने नवग्रहों के उपद्रवों का शमन करने के लिए पृथक्-पृथक् तीर्थंकरों के नाम स्मरण (जाप) एवं पूजा का उपदेश दिया है। तीर्थंकर पुरुषों की भक्ति से पुण्य कर्मों का बंधन होता है और उस पुण्य प्रभाव से प्रतिकूल समय शीघ्र व्यतीत हो जाता है।

नवग्रह की आराधना के लिए तत्सम्बन्धी तीर्थंकरों के चैत्य बनाये जाते हैं। यह जिनालय ग्रहों की अपेक्षा पृथक्-पृथक् भी बना सकते हैं और प्रत्येक ग्रह के तीर्थंकरों की एक साथ भी स्थापना की जा सकती है।

आचार्य भद्रबाहु के अनुसार सूर्यादि कोई भी ग्रह अशुभ हो तो उसके उपशमनार्थ अमुक-अमुक तीर्थंकर की पूजोपासना करनी चाहिए। वह सारणी निम्नानुसार है–

ग्रह नाम	उपास्य तीर्थंकर नाम
सूर्य	पद्मप्रभ
चन्द्र	चन्द्रप्रभ
मंगल	वासुपूज्य
बुध	विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, नमिनाथ, महावीर
गुरु	ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ
शुक्र	सुविधिनाथ
शनि	मुनिसुव्रत
राहु	नेमिनाथ
केतु	मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ

आचार्य वर्धमानसूरि ने सूर्यादि नवग्रह की मूर्तियों को स्थापित करने का उल्लेख किया है चूँकि नवग्रह की शान्ति उन ग्रहों के जाप स्मरण से भी होती है। आचार दिनकर के निर्देशानुसार नवग्रह मूर्ति स्थापना की विधि निम्न प्रकार है–

सर्वप्रथम संघ जिनालय में या गृह देरासर में बृहत्स्नात्र विधि द्वारा जिन बिम्ब को स्नान कराएं। तत्पश्चात एक, दो, तीन, चार, पाँच या जितनी मूर्तियों की आवश्यकता हो उतनी मूर्तियाँ अथवा नवग्रह अंकित पट्टा जिन प्रतिमा के आगे स्थापित करें। फिर स्नात्र जल से मिश्रित पंचामृत द्वारा उसे प्रक्षालित करें। फिर शुद्ध जल से प्रक्षालित कर उसे पौंछें।

- उसके बाद प्रत्येक ग्रह के मंत्र को तीन-तीन बार बोलकर तत्सम्बन्धी मूर्तियाँ अथवा पट्ट पर तीन बार (पच्चीस वस्तुओं से निर्मित) वासचूर्ण डालें, इससे ग्रहमूर्ति या ग्रहपट्ट की स्थापना (प्रतिष्ठा) हो जाती है।

नवग्रह स्थापना के मंत्र अधोलिखित हैं–

सूर्य मंत्र– ॐ ह्रीं श्रीं घृणि-घृणि नमः सूर्याय भुवनप्रदीपाय जगच्चक्षुषे जगत्साक्षिणे भगवन् श्री सूर्य इह मूर्तौ स्थापनायां अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ प्रत्यहं पूजकदत्तां पूजां गृहाण-गृहाण स्वाहा।

चन्द्र मंत्र– ॐ चं चं चुरू-चुरू नमः चन्द्राय औषधीशाय सुधाकराय जगज्जीवनाय सर्वजीवितविश्वंभराय भगवन् श्री चन्द्र इह मूर्तौ..... शेष पूर्ववत्।

मंगल (भौम) मंत्र– ॐ ह्रीं श्रीं नमो मंगलाय भूमिपुत्राय वक्राय लोहितवर्णाय भगवन् मंगल इह मूर्तौ.... शेष पूर्ववत्।

बुध मंत्र– ॐ क्रौं प्रौं नमः श्री सौम्याय सोमपुत्राय प्रहर्षुलाय हरितवर्णाय भगवन् बुध इह मूर्तौ...शेष पूर्ववत्।

गुरू मंत्र– ॐ जीवजीव नमः श्री गुरवे सुरेन्द्रमंत्रिणे सोमाकराय सर्ववस्तुदाय सर्व शिवंकराय भगवन् श्री बृहस्पते इह मूर्तौ.... शेष पूर्ववत्।

शुक्र मंत्र– ॐ श्रीं श्रीं नमः श्री शुक्राय काव्याय दैत्यगुरुवे संजीवनीविद्यागर्भाय भगवन् श्री शुक्र इह मूर्तौ... शेष पूर्ववत्।

शनि मंत्र– ॐ शं शं नमः शनैश्चराय पंगवे महाग्रहाय श्यामवर्णाय नील वासाय भगवन् श्री शनैश्चर इह मूर्तौ.... शेष पूर्ववत्।

राहु मंत्र– ॐ रं रं नमः श्री राहवे सिंहिकापुत्राय अतुलबलपराक्रमाय कृष्णवर्णाय भगवन् श्री राहो इह मूर्तौ... शेष पूर्ववत्।

केतु मंत्र– ॐ धूं धूं नमः श्री केतवे शिखाधराय उत्पातदाय राहु प्रतिच्छन्दाय भगवन् श्री केतो इह मूर्तौ....... शेष पूर्ववत्।[64]

।। इति नवग्रह प्रतिष्ठा विधि ।।

क्षेत्रपाल प्रतिष्ठा विधि

जिनमंदिर की क्षेत्र सीमा को संरक्षित करने के उद्देश्य से क्षेत्रपाल की स्थापना करते हैं। जिनालयों में भोमियाजी, भैरूंजी, घंटाकर्ण महावीर, मणिभद्र आदि क्षेत्रपालों की मूर्तियाँ तद्स्थानीय क्षेत्र की सुरक्षा हेतु प्रतिष्ठित की जाती हैं। आचार दिनकर में क्षेत्रपाल आदि की प्रतिष्ठा विधि इस प्रकार कही गई है–

• सर्वप्रथम प्रतिष्ठा कराने वाला गृहस्थ गृहशान्ति हेतु शान्तिक एवं पौष्टिक कर्म करें। फिर बृहत्स्नात्र विधि से अरिहन्त परमात्मा की स्नात्र पूजा करें।

• फिर क्षेत्रपाल आदि की मूर्तियों को परमात्मा के चरणों में आगे स्थापित करें।

जिनालय एवं घर देरासर की अपेक्षा क्षेत्रपाल की मूर्तियाँ दो प्रकार की होती हैं– 1. काया रूप एवं 2. लिंग रूप, किन्तु इन दोनों की प्रतिष्ठा विधि समान है।

• फिर वेदी मण्डल की स्थापना करके पूर्ववत पूजा करें। तत्पश्चात पंचामृत द्वारा निम्न मंत्र बोलते हुए क्षेत्रपालमूर्ति का स्नान कराएँ-

ॐ क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपालाय नमः।

• तदनन्तर पूर्वोक्त मंत्र का स्मरण करते हुए विधिकारक एवं गुरु तीन बार वासचूर्ण डालकर उसे प्रतिष्ठित करें। तिल के चूर्ण से होम करें। तदनन्तर करम्ब, यूष (शोरबा), कंसार, बकुल (बाफला), लपन (लापसी) एवं श्रीखण्ड आदि नैवेद्य चढ़ाएँ। कुंकुम, तेल, सिन्दूर एवं लाल पुष्प द्वारा मूर्ति की पूजा करें।

विशेष यह है कि क्षेत्रपाल, बटुकनाथ, कपिलनाथ, हनुमान, नरसिंहादि, वीरपुर पूजित नाग आदि एवं देश पूजित गोगा आदि- इन सबकी प्रतिष्ठा विधि एक जैसी ही है, किन्तु गृह क्षेत्रपाल, कपिल, गौर, कृष्ण आदि की प्रतिष्ठा घर में, बटुकनाथ की प्रासाद में, हनुमान की श्मशान में, नृसिंहादि की पुरपरिसर में, पुरपूजित नागादि एवं देश पूजित गोगा आदि की उन-उन के स्थानों पर होती है। इन सबकी प्रतिष्ठा विधि एवं मूल मंत्रों की जानकारी अपने-अपने आम्नाय को मानने वाले लोगों से प्राप्त करें। प्रतिष्ठा मूल मंत्र के द्वारा ही होती है।[65]

।। इति क्षेत्रपाल प्रतिष्ठा विधि ।।

यक्ष-यक्षिणी प्रतिष्ठा विधि

कल्याण कलिका के अनुसार क्षेत्रपाल आदि एवं चौबीस यक्ष-यक्षिणी की प्रतिष्ठा विधि इस प्रकार है-

अंबिका- क्षेत्रपाल आदि समस्त प्रकार के देवी-देवताओं की अधिवासना निम्न मंत्र को 3-5 या 7 बार बोलकर करें-

ॐ क्ष्ूँ नमः।

सर्व प्रकार के देवों को प्रतिष्ठित करने के लिए निम्न मंत्र को तीन बार कहकर क्रमशः वासचूर्ण डालें-

ॐ क्षीँ क्ष्ूँ नमो वीराय स्वाहा।

सभी प्रकार की देवियों को प्रतिष्ठित करने के लिए निम्न मंत्र को तीन बार कहकर क्रमशः उन पर वासचूर्ण डालें-

ॐ ह्रीँ क्ष्मीं स्वाहा।

यक्ष-यक्षणियों की यह प्रतिष्ठा विधि सामान्य रूप से कही गई है। प्रत्येक

यक्ष-यक्षिणी की विशेष प्रतिष्ठा निम्न क्रम से करें–[66]

1. ॐ ह्रीं गोमुखयक्षः अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं चक्रेश्वरी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
2. ॐ ह्रीं महायक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं अजिते! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
3. ॐ ह्रीं त्रिमुखयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं दुरितारि देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
4. ॐ ह्रीं ईश्वरयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं काली देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
5. ॐ ह्रीं तुम्बरूयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं महाकालीदेवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
6. ॐ ह्रीं कुसुमयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं अच्युते देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
7. ॐ ह्रीं मातङ्गयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं शान्ता देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
8. ॐ ह्रीं विजययक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं ज्वाला देवि! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
9. ॐ ह्रीं अजितयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं सुतारे देवि! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
10. ॐ ह्रीं ब्रह्मयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं अशोका देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
11. ॐ ह्रीं मनुजेश्वरयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्री वत्सा देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
12. ॐ ह्रीं कुमारयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं प्रचण्डा देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
13. ॐ ह्रीं षण्मुखयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं विजया देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
14. ॐ ह्रीं पातालयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ ह्रीं अंकुशा देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।

15. ॐ झ्रीँ किन्नरयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ झ्रीँ कंदर्पा देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
16. ॐ झ्रीँ गरुडयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ झ्रीँ निर्वाणी देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
17. ॐ झ्रीँ गन्धर्वयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ झ्रीँ अच्युता देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
18. ॐ झ्रीँ यक्षेन्द्र! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ झ्रीँ धारिणी देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
19. ॐ झ्रीँ कुबेरयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ झ्रीँ वैरोट्या देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
20. ॐ झ्रीँ वरुणयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ झ्रीँ वरदत्ता देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
21. ॐ झ्रीँ भृकुटियक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ झ्रीँ गन्धारी देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
22. ॐ झ्रीँ गोमेधयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ झ्रीँ अम्बादेवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
23. ॐ झ्रीँ पार्श्वयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ झ्रीँ पद्मावती देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।
24. ॐ झ्रीँ मातंगयक्ष! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।
ॐ झ्रीँ सिद्धायिका देवी! अवतर-अवतर तिष्ठ-तिष्ठ स्वाहा।।

।। इति यक्ष-यक्षिणी प्रतिष्ठा विधि ।।

गणपति प्रतिष्ठा विधि

जैन धर्म में सामान्यतया गणेश की पूजा-उपासना को मिथ्यात्व एवं श्रावक के लिए अतिचार (दोष) कहा गया है यद्यपि जिनालय स्थित गणपति की मूर्ति पूजनीय मानी गई है। यह गणपति दो भुजा,चार भुजा, छः भुजा, नौ भुजा, अठारह भुजा एवं एक सौ आठ भुजा रूप अनेक प्रकार के होते हैं। इन सभी की प्रतिष्ठा विधि एक समान ही है।

गणपति कल्प के अनुसार गणेश की मूर्ति सोना, चाँदी, तांबा, जस्ता, काँच, स्फटिक, प्रवाल, पद्मराग, चन्दन, सफेद आँकड़ा आदि अनेक प्रकार की

वस्तुओं से निर्मित की जाती है क्योंकि वह विविध फल देने वाली तथा आनंद, सुख एवं संतुष्टि देने वाली होती है। उनका रहस्यमय प्रभाव गुरुगम्य है। आचारदिनकर में वर्णित गणपति की प्रतिष्ठा विधि निम्न प्रकार है–

सर्वप्रथम शुभ दिन में जिनबिम्ब की स्नात्र पूजा करें। फिर गणपति आदि की मूर्ति परमात्म बिम्ब के आगे स्थापित करें। तत्पश्चात निम्न मंत्र का स्मरण करते हुए स्वर्णमाक्षिका (एक प्रकार का खनिज पदार्थ) से गणमूर्ति को स्नान कराएँ।

'ॐ गां गीं गूं गौं गः गणपतये नमः।'

तदनन्तर मूल मंत्र पूर्वक तीन बार गणपति के सर्वांग पर सिन्दूर लगाएँ। फिर एक सौ आठ लड्डू चढ़ाएँ। फिर अन्त में करबद्ध अंजलि से निम्न स्तुति बोलें–

जय-जय लम्बोदर परशु, वरदयुक्तापसव्यहस्त युग।
सव्यकर मोदका भय, धरयावकवर्ण पीतलसिक।।
मूषक वाहन पीवर जंघा, भुजबस्तिलम्बिगुरु जठरे।
वारणमुखैकरद वरद, सौम्य जयदेव गणनाथ।।
सर्वाराधन समये, कार्यारम्भेषु मंगला चारे।
मुख्ये लभ्ये लाभे, देवैरपि पूज्यसे देव।।

माणुधण आदि कुल देवों की प्रतिष्ठा भी इसी प्रकार शान्ति मंत्र से करें।[67]

।। इति गणपति प्रतिष्ठा विधि ।।

जलाशय प्रतिष्ठा विधि

तालाब, सरोवर, कूप, टांका आदि अनेक प्रकार के जलाशय होते हैं। किसी भी प्रकार के जलाशय की प्रतिष्ठा जलाशय कर्त्ता के चन्द्रबल एवं शुभ दिन में करनी चाहिए। जलाशय की प्रतिष्ठा पूर्वाषाढ़ा, शतभिषा, रोहिणी एवं धनिष्ठा नक्षत्रों में न करें। प्रतिमा पूजन आदि के लिए शुद्ध जल की नित्य आवश्यकता होती है। गृह कार्यों एवं खान-पान में भी शुद्ध जल का प्रयोग किया जाये तो कई दृष्टियों से लाभदायी है।

जलाशय की प्रतिष्ठा जल देवता को प्रसन्न रखने एवं उनकी अनुमति प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती है। यह अध्यात्म जगत का नियम है कि मिट्टी का एक कण भी उस क्षेत्र के देवता की आज्ञा बिना ग्रहण नहीं करना चाहिए,

क्योंकि इससे चोरी का दोष लगता है। यदि भूमि या जल आदि का अधिपति देव मिथ्यात्वी हो तो उससे बिना पूछे उसकी अधिकृत वस्तु लेने पर वह किसी प्रकार का विघ्न या संकट उपस्थित कर सकता है इसलिए वापी आदि जलाशय की प्रतिष्ठा अनिवार्य है।

आचार दिनकर के अनुसार जलाशय प्रतिष्ठा की विधि इस प्रकार है–

• प्रतिष्ठा के दिन जलाशय करवाने वाला स्वयं के घर में शान्तिक एवं पौष्टिक कर्म करें। फिर सर्व उपकरण लेकर जलाशय पर जाएं। वहाँ जलाशय के चारों ओर चौबीस तन्तुओं से गर्भित सूत्र को बांधकर उसकी रक्षा करें।

• तत्पश्चात जिनबिम्ब को स्थापित करके बृहत्स्नात्र विधि से स्नात्र पूजा करें। उसके बाद जलाशय में पंचगव्य एवं जिन स्नात्र का जल डालें।

• फिर जलाशय के अग्रभाग में लघु नंद्यावर्त्त की स्थापना करें, किन्तु नन्द्यावर्त्त मंडल के मध्य भाग में वरुण की स्थापना करें और उन सभी की पूजा पूर्ववत करें। वरुण देवता की विशेष रूप से तीन बार पूजा करें।

• तदनन्तर त्रिकोण अग्निकुंड में घी, मधु, खीर एवं नाना प्रकार के सूखे फलों द्वारा तथा नंद्यावर्त्त-मंडल में स्थापित देवताओं के नाम स्मरण पूर्वक प्रणाम करते हुए प्रत्येक देवता सम्बन्धी मंत्र के अन्त में 'स्वाहा' बोलकर आहुति दें। फिर शेष आहुति एवं जल को जलाशय में डाल दें।

• उसके पश्चात प्रतिष्ठाचार्य पंचामृत के कलशों को हाथ में लेकर उस जलाशय के मध्य में धारा डालते हुए निम्न मंत्र सात बार बोलें–

ॐ वं वं वं वं वं वलिप् वलिप् नमो वरुणाय समुद्रनिलयाय मत्स्यवाहनाय नीलाम्बराय अत्र जले जलाशये वा अवतर-अवतर सर्व दोषान् हर-हर स्थिरी भव-स्थिरी भव ॐ अमृतनाथाय नमः।

• फिर इसी मंत्र का स्मरण कर जलाशय में पंच रत्नों का निक्षेप करें और वासचूर्ण डालें।

• उसके बाद जलाशय के देहली, स्तम्भ, भित्ति, द्वार, छत एवं आंगन की प्रतिष्ठा गृह प्रतिष्ठा में कहे गये मंत्रों पूर्वक करें।

• प्रतिष्ठा करने से पूर्व जलाशय के समीप में प्रतिष्ठा सूचक यूप स्तम्भ को **'ॐ स्थिरायै नमः'** इस मंत्र से स्थापित करें।

इस प्रकार कुंआ, तालाब, नहर, झरणा, नदी, विवरिका आदि कोई भी जलाशय की प्रतिष्ठा उक्त विधि से ही करें।[68]

।। इति जलाशय प्रतिष्ठा विधि ।।

लवणोत्तारण, जल प्रक्षेपण एवं आरात्रिक विधि

प्रतिष्ठा, वर्षगांठ, छःरी संघ यात्रा, स्नात्र पूजा, शाश्वत अट्ठाई, दीपावली आदि विशिष्ट अवसरों पर मूलनायक भगवान का लवणोत्तारण अवश्य करना चाहिए। उसकी विधि निम्न है–

सर्वप्रथम अरिहन्त परमात्मा के सम्मुख आरती और मंगल दीपक प्रगटाएँ। उनके समीप एक अग्नि पात्र रखें, जिसमें नमक और जल डाला जाता है। लवण के छोटे टुकड़ें, पुष्प और जल युक्त कलश भी तैयार रखें। आरती और मंगल दीपक उतारने से पहले जिनप्रतिमा की पुष्प-चन्दनादि से पूजा करें।

पुष्प वृष्टि– निम्न गाथा बोलकर मूलनायक भगवान के आगे पुष्प थाली को तीन बार सृष्टि क्रम (दाहिनी ओर) से घुमाकर उन पर पुष्पों की वृष्टि करें।

उवणेउ मंगलं वो, जिणाण मुहलालिजाल संवलिआ ।
तित्थ पवत्तण समए, तिअसमुक्का कुसुमवुट्ठी ।।1।।

लवणोत्तारण एवं जल धारा दान

तदनन्तर एक थाली में नमक के टुकड़े रखकर

उयह! पडिभग्गपसरं, पयाहिणं मुणिवइं करेऊणं ।
पडइ सलोणत्तण, लज्जिअं व लोणं हुअवहंमि ।।2।।

यह गाथा बोलते हुए जिन प्रतिमाओं के ऊपर प्रदक्षिणावर्त्त से लवण को तीन बार घुमाकर अग्नि पात्र में डाल दें। फिर प्रदक्षिणावर्त्त से भरे हुए कलश के द्वारा तीन बार जल की धारा देकर अग्नि पात्र में जल का छींटा डालें।

आरती– तत्पश्चात पूर्व प्रज्वलित आरती को थाली में रखकर एवं उसे हाथ में लेकर निम्न गाथा बोलते हुए प्रदक्षिणावर्त्त से तीन बार आरती उतारें–

मरगयमणिघडिय विसाल, थालमाणिक्क मंडिअ पईवं ।
ण्हवणयर करूक्खित्तं, भमउ जिणारत्तिअं तुम्ह ।।3।।

यदि प्रतिष्ठा का प्रसंग हो तो इसी समय शिखर के ऊपर कलश और ध्वजादण्ड चढ़ाएँ। जिनबिम्ब की स्थापना करने के पश्चात चैत्यवंदन करें,

स्तवन के स्थान पर अजितशांतिस्तव बोलें, सभी दिशाओं में बलि प्रक्षेप करें, मूलनायक भगवान की उत्तम फल आदि से विशेष पूजा करें। प्रतिमा की प्रतिष्ठा हो जाने के बाद वहाँ सप्त स्मरण या नव स्मरण का पाठ करें।

फिर सकल संघ को तंबोल-प्रभावना-पहेरामणी आदि देकर जिनबिम्ब के आगे से परदा दूर करके मुखोद्घाटन करें। उसके बाद उपस्थित संघ भी प्रतिमा के आगे उत्तम फल आदि अर्पित कर नमस्कार करें।

जैनाचार्यों के मतानुसार प्रतिष्ठा के अनन्तर 10 दिन तक विशेष पूजाएँ (दशान्हिका महोत्सव) करना चाहिए, प्रत्येक महीने की प्रतिष्ठा तिथि के दिन स्नात्र पूजा करनी चाहिए तथा प्रथम वर्षगाँठ के प्रसंग पर अट्ठाई उत्सव करना चाहिए।

मंगल दीपक– आरती उतारने के पश्चात एक थाली में मंगल दीपक लेकर निम्न गाथाएँ बोलते हुए उसे प्रदक्षिणावर्त्त से तीन बार घुमाएँ–

कोसंबिसंठियस्स व, पयाहिणं कुणइ मउलिअ पयावो।
जिण! सोमदंसणे दिण-यरू, व्व तुह मंगल पईवो ।।4।।
भामिज्जंतो सुरसुंदरीहिं, तुह नाह मंगलपईवो।
कणयायलस्स नज्जइ, भाणुव्व पयाहिणं दिन्तो ।।5।।

मंगल दीपक उतारकर उसे वैसे ही रख दें, बुझाए नहीं। किन्तु आरती को बुझाने में कोई दोष नहीं है।

आरती एवं मंगल दीपक घी-गुड़-कपूर से करने पर विशेष फलदायक होते हैं तथा समस्त धर्म परम्पराओं में आरती-लवणोत्तारण आदि सृष्टि क्रम (दक्षिणावर्त्त भ्रमण) से ही उतारे जाते हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि विशिष्ट प्रसंगों पर पूर्वोक्त लवणोत्तारण आदि की क्रियाएँ अनुक्रमश: एक साथ करनी चाहिए।

।। इति लवणोत्तारण-आरात्रिक विधि ।।

विसर्जन विधि

प्रतिष्ठा, महापूजन, जाप अनुष्ठान, ध्वजारोहण आदि के मंगल अवसरों पर कुंभ स्थापना, दीपक स्थापना, नवग्रह स्थापना आदि क्रियाएँ की जाती है और उनमें देवी-देवताओं का निवास होने के कारण अनुष्ठान पूर्ण होने पर आदर पूर्वक विसर्जन (पुन: अपने आवास की ओर जाने का निवेदन) भी करते हैं। प्राचीन-अर्वाचीन प्रतिष्ठा कल्पों के अनुसार विसर्जन-विधि इस प्रकार है–

सर्वप्रथम पाँच शेर जवार की धाणी तैयार करें। फिर सवा शेर का माणेक लड्डु तैयार करें, उसमें चाँदी का पैसा और बिना बिंधा हुआ मोती डालें। फिर उस लड्डु को धाणी के ऊपर रखें। उसके बाद लड्डु के समीप पताशा, धूप एवं कुसुमांजलि रखकर विसर्जन विधि प्रारम्भ करें।

1. कुंभ विसर्जन– कुंभ के निकट जाकर **'ॐ विसर-विसर स्वस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा'** ऐसा बोलें।
2. अखंड दीप विसर्जन– अखंड दीपक के समीप जाकर **' ॐ विसर विसर स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा'** ऐसा बोलें।
3. नंद्यावर्त्त विसर्जन– नंद्यावर्त्त पट्ट के समीप जाकर **'ॐ विसर-विसर स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा'** ऐसा कहें।
4. नवग्रह विसर्जन– नवग्रह पट्ट के निकट खड़े होकर निम्न मंत्र पढ़ें–
    1. **ॐ नमो आदित्याय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण गृहाण स्वस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा।**
    2. **ॐ नमो नमश्चन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण गृहाण स्वस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा।**
    3. **ॐ नमो भौमाय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण गृहाण स्वस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा।**
    4. **ॐ नमो बुधाय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण गृहाण स्वस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा।**
    5. **ॐ नमो बृहस्पतये सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण गृहाण स्वस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा।**
    6. **ॐ नमो शुक्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण गृहाण स्वस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा।**
    7. **ॐ नमो शनैश्चराय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण गृहाण स्वस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा।**
    8. **ॐ नमो राहवे सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण गृहाण स्वस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा।**
    9. **ॐ नमो केतवे सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण गृहाण स्वस्थानं गच्छ गच्छ स्वाहा।**

5. दश दिक्पाल विसर्जन– दिक्पाल पट्ट के निकट खड़े होकर निम्न मंत्र पढ़ें–
   1. **ॐ नमो इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण-गृहाण स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा।**
   2. **ॐ नमोऽग्नये सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण-गृहाण स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा।**
   3. **ॐ नमो यमाय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण-गृहाण स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा।**
   4. **ॐ नमो नैर्ऋताय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण-गृहाण स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा।**
   5. **ॐ नमो वरुणाय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण-गृहाण स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा।**
   6. **ॐ नमो वायवे सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण-गृहाण स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा।**
   7. **ॐ नमो धनदाय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण-गृहाण स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा।**
   8. **ॐ नमो ईशानाय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण-गृहाण स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा।**
   9. **ॐ नमो ब्रह्मणे सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण-गृहाण स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा।**
   10. **ॐ नमो नागाय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय पूजां बलिं गृहाण-गृहाण स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा।**
6. अष्ट मंगल विसर्जन– अष्ट मंगल पट्ट के समीप जाकर **'ॐ विसर-विसर स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा'** ऐसा बोलें।
7. घंटाकर्ण विसर्जन–घंटाकर्ण पट्ट के निकट जाकर **'ॐ विसर-विसर स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा'** यह मंत्र पढ़ें।
8. वेदिका विसर्जन–वेदिका के ऊपर पताशा, कुसुमांजलि और पुष्प चढ़ाएँ। फिर **'ॐ विसर-विसर स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा'** यह मन्त्र पढ़कर वेदिका के ऊपर वासचूर्ण डालें। फिर मौली खोल दें और लकड़ी के टुकड़े से वेदिका को थोड़ी खंडित करें।

9. **माणक स्तम्भ विसर्जन–** माणक स्तम्भ के ऊपर पताशा, कुसुमांजलि और पुष्प चढ़ाएँ। फिर **'ॐ विसर-विसर स्वस्थानं गच्छ-गच्छ स्वाहा'**– यह मन्त्र पढ़कर स्तम्भ पर वासचूर्ण डालें। फिर माणक स्तम्भ की मौली खोल दें तथा उसे कुछ हिलाएँ।

अन्य कुछ भी विसर्जन योग्य हों तो उन्हें विसर्जित करने के पश्चात विसर्जन मुद्रा में हाथ जोड़कर निम्न श्लोक पढ़ते हुए क्षमापना एवं सम्यक्त्वी देवों से अनुग्रह की प्रार्थना करें–

जिनेन्द्रभक्त्या जिनभक्तिभाजां, येषां च पूजाबलिपुष्पधूपान्।
ग्रहा गता ये प्रतिकूलतां च, ते सानुकूला वरदा भवन्तु।।1।।

देवदेवार्चनाथाय(नार्थं तु), पुराऽऽहूता हि ये सुराः।
ते विधायार्हतां पूजां, यान्तु सर्वे यथागतम्।।2।।

या पाति शासनं जैनं, सद्यः प्रत्यूहनाशिनी।
सा ह्यभिप्रेतसिद्ध्यर्थं, भूयाच्छासनदेवता।।3।।

कीर्तिश्रियो राज्यपदं सुरत्वं, न प्रार्थये किंचन देव यत्त्वाम्।
मत्प्रार्थनीयं भगवन् प्रदेयं, स्वदास्यते मानप सर्वदाऽपि।।4।।

भूमौ स्खलितपादानां, भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जिनापराधानां, त्वमेव शरणं मम।।5।।

आह्वानं नैव जानामि, न जानामि विसर्जनम्।
पूजार्चां नैव जानामि, त्वं गतिः परमेश्वरि।।6।।

आज्ञाहीनं क्रियाहीनं, मंत्रहीनं च यत् कृतम्।
तत्सर्वं क्षमतां देवी, प्रसीद परमेश्वरि।।7।।

सर्वमंगलमांगल्यं, सर्वकल्याणकारणम्।
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैन जयति शासनम्।।8।।[69]

।। इति विसर्जन विधि ।।

जलादि अभिमन्त्रण विधि

अठारह अभिषेक, महापूजन, कुंभस्थापना, स्नात्र पूजा आदि अनुष्ठानों में अभिमंत्रित जल का उपयोग करना चाहिए तथा अनुष्ठान कर्त्ता स्नात्रकार को भी मुख आदि की शुद्धि मंत्र से करनी चाहिए। उन मंत्रों की सूची इस प्रकार है–

स्नान जल अभिमंत्रण मंत्र– निम्न सभी मंत्रों को सात-सात बार बोलें–

ॐ ह्रीँ अमृते अमृतोद्भवे अमृत वर्षिणि अमृतं स्रावय-स्रावय स्वाहा।

दाँत अभिमन्त्रण मंत्र– **ॐ ह्रीँ यक्षसेनाधिपतये नमः।**

मुख प्रक्षालन मन्त्र– **ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ कामदेवाधिपते ममऽभीप्सितं पूरय पूरय स्वाहा।**

स्नान मन्त्र– **ॐ ह्रीँ अमले विमले विमलोद्भवे सर्वतीर्थजलोपमे पां पां वां वां अशुचिः शुचिर्भवामि स्वाहा।**

वस्त्र अभिमंत्रण मन्त्र– **ॐ ह्रीँ आँ क्रौँ अर्हते नमः।**

तिलक मन्त्र– **ॐ आँ ह्रीँ क्लौँ अर्हते नमः।**

रक्षासूत्र अभिमंत्रण मन्त्र– **ॐ ह्रीँ अवतर-अवतर सोमे-सोमे कुरु-कुरु वग्गु वग्गु निवग्गु निवग्गु सुमणे सोमणसे महुमहुरे ॐ कविल ॐ कः क्षः स्वाहा।**

भूमिशोधन मन्त्र– **ॐ ह्रीँ अर्हं भूर्भुवः स्वाधाय स्वाहा।**

स्थापनीय जलाभिमंत्रण मन्त्र–

क्षीरोदधे स्वयम्भूश्च, परः पद्म महाहृदः।
शीते शीतोदके! कुण्ड! जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु।।
गंगे च यमुने चैव, गोदावरी सरस्वती।
कावेरि नर्मदे सिन्धो, जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु।।

ॐ ह्रीँ अमते अमृतोद्भवे अमृत वर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा।

अष्ट प्रकारी पूजा सामग्री चढ़ाने का मन्त्र– प्रत्येक द्रव्य निम्न मंत्र बोलकर चढ़ाएँ–

ॐ ह्रीँ श्रीं परम परमात्मने अनन्ताऽनन्तज्ञान शक्तये जन्मजरा मृत्युनिवारणाय श्रीमती जिनेन्द्राय जलं यजामहे स्वाहा।

घंटा के ऊपर आलेखन योग्य मन्त्र एवं यन्त्र

जिन मंदिर में घंटा लगाने से पूर्व उस पर मन्त्र और यन्त्र निम्न क्रम से उत्कीर्ण करवाएँ–

ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं चतुर्विंशति जिनेन्द्रेभ्यो नमः

8	1	6
3	5	7
4	9	2

16	15	9	3	22
8	2	21	20	14
25	19	13	7	1
12	6	5	24	18
4	23	17	11	10

5	16	3	10
4	9	6	15
14	7	12	1
11	2	13	18

ॐ ह्रीँ श्रीँ षोडश-विद्यादेव्यो! मम रक्षां कुरु कुरु मम तुष्टिं पुष्टिं धृतिं मतिं कीर्ति कान्तिं बुद्धिं लक्ष्मीं मेघां विद्यां ऋद्धिं वृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।

प्रतिवर्ष ध्वजा चढ़ाने की विधि

प्रतिवर्ष प्रतिष्ठा दिन से एक दिन पहले नूतन ध्वजा पर केशर के रस से निम्नलिखित ध्वजा मन्त्र लिखें–

ॐ ह्रीँ श्रीँ म्ल्व्र्यूँ क्ष्मल्व्र्यूँ हम्ल्व्र्यूँ क्लीं क्लीं क्लीँ आँ क्रौँ अर्हत् शिखर ध्वजदण्डवासीनां देवदेवीनां संघस्य च शान्ति तुष्टिं पुष्टिं ऋद्धिं वृद्धिं कल्याणं कुरु कुरु स्वाहा।

वर्षगाँठ के दिन शुभ मुहूर्त्त में ध्वजा के ऊपर दाहिनी तरफ चोत्रीस का यंत्र लिखें।

5	16	3	10
4	9	6	15
14	7	12	1
11	2	13	8

• प्रतिष्ठा के दिन शुभ मुहूर्त्त से आधा या एक घंटा पहले सोना या चाँदी की थाली में ध्वजा रखें। फिर लाभार्थी परिवार गुरु भगवन्त एवं स्वजन वर्ग के

साथ थाली बजाते हुए जिनालय अथवा जिन प्रतिमा की तीन प्रदक्षिणा दें।

• फिर जिनेश्वर परमात्मा के समक्ष ध्वजा का थाल लेकर खड़े रहें। उस समय उपस्थित साधु-साध्वीजी भगवन्त ध्वजा पर अभिमन्त्रित वासचूर्ण डालें।

• उसके पश्चात 'नमोऽर्हत्' कहकर खरतर परम्परानुसार रचित सत्रह भेदी पूजा की नौंवी ध्वज पूजा पढ़ाएँ तथा तपागच्छ मतानुसार श्री वीरविजयजी महाराजकृत बारहव्रत की पूजा में बारहवीं **पौषधव्रत** की ध्वज पूजा पढ़ें। वर्तमान में ये पूजाएँ पूरी भी पढ़ाई जाती है।

• तदनन्तर धूप-दीप प्रगटाकर जल का अभिषेक करें। • फिर केसर से पूजा करके पुष्प चढ़ाएँ। • उसके पश्चात 'ॐ पुण्याहं पुण्याहं' 'ॐ प्रीयन्तां प्रीयन्तां' इन मंगल वाक्यों की बार-बार उच्च स्वर से घोषणा करें। सकल संघ भी स्वर मिलाते हुए घोषणा करें।

उस दरम्यान पुरानी ध्वजा उतारकर ध्वजा चढ़ाने वाला गृहपति तीन बार नमस्कार महामन्त्र का स्मरण कर पाटली के सलिए में ध्वजा बाँधकर उसे फहराएँ। उसी समय अभिमन्त्रित कोरा बलिबाकुला और कुसुमांजलि चढ़ाते हुए ध्वजा को बधाएँ। दसों दिशाओं में भी बलि बाकुला का प्रक्षेपण करें।

• तत्पश्चात आचार्य / साधु या साध्वीजी महाराज मंगलाचरण पूर्वक बड़ी शांति का पाठ सुनाएँ।

• फिर सकल संघ को गुड़-धाना वितरित करें। फिर एक खमासमण देकर अविधि आशातना मिच्छामि दुक्कडं कहें।

।। इति ध्वजा चढ़ाने की विधि ।।

श्री शान्ति कलश विधि

• श्री जिनेश्वर परमात्मा के अभिषेक का स्नात्र जल सोना या चाँदी की मोटी कुंडी में वस्त्र से छानें। फिर सोना या चाँदी की दूसरी बड़ी कुंडी में केसर से स्वस्तिक बनाकर कुण्डी के तलिए पर '**ॐ ह्रीँ नमः**' यह मंत्र लिखें।

• फिर बाजोठ पर अखंड समचोरस शुद्ध रेशमी वस्त्र बिछाएँ। उसके ऊपर केसर का स्वस्तिक रचकर एवं तीन बार नमस्कार महामंत्र का स्मरण कर मंत्र लिखित कुंडी स्थापित करें।

• फिर उस कुंडी में चतुष्कोण सोना या चाँदी की एक मुद्रा, एक सुपारी और सुगन्धित पुष्प डालें। कुंडी के मध्य भाग में और बाहर लटकती रहे इस

रीति से एक सुगन्धी पुष्पमाला का आरोपण करें।

• उसके बाद स्नात्र जल को कलशों में भरकर कुंडी के मध्य भाग में जल धारा गिरे उस प्रकार कलश से जलधारा प्रारम्भ करें।

• जल धारा प्रारम्भ करते समय 'नमोऽर्हत्' कहकर आचार्य भगवन्त नवकार महामन्त्र और बृहत् शान्तिस्तव बोलें। बड़ी शान्ति पूर्ण होने के पश्चात पुनः एक नमस्कार मन्त्र गिनें तब तक स्नात्र जल की कुंडी में पड़ती अखंड धारा चालू रहे।

• तदनन्तर अष्ट मंगल रचित कलश के उदर भाग पर **'ॐ ह्रीँ श्रीँ सर्वोपद्रवान् नाशय-नाशय स्वाहा'** यह मन्त्र लिखें।

• फिर कलश के कंठ भाग पर अभिमन्त्रित मींढल बांधें। कलश के अन्दर चतुष्कोण वाली सोना-चाँदी की मुद्रा और सुगंधी पुष्प डालें। फिर कुण्डी में से शान्ति कलश के जल को कुंभ में डालते हुए उसे छलाछल भर दें।

• यदि जवारा उगे हुए हो तो उस सकोरे की मिट्टी को तीन बार नवकार मन्त्र के स्मरण पूर्वक कुंभ के मुख ऊपर स्थापित करें। यदि जवारा उगे हुए न हो तो जल पूरित कुंभ के कण्ठ तक डंडी रह सकें उस प्रकार नागरवेल के चार पत्ते चारों तरफ एक-एक करके रखें। उसके बीच में श्रीफल की स्थापना करें।

उसके ऊपर हरा रेशमी वस्त्र ढककर उसे अभिमन्त्रित मौली से अच्छी तरह बांधें। उसके ऊपर केसर-चंदन के रस का लेप करके बरक लगाएँ। फिर उसके ऊपर केसर के छांटने करें। सुगंधी पुष्प की माला कुंभ-श्रीफल पर रह सके उस रीति से पहनाएं।

• तत्पश्चात कुंवारी कन्या अथवा सौभाग्यवती नारी के मस्तक पर रत्नजड़ित सुवर्ण की इंडोनी रखकर तीन बार नवकार मन्त्र का स्मरण करते हुए इंडोनी के ऊपर कुंभ रखें। फिर थाली और वाजिंत्र बजाते हुए तथा मंगल गीत गाते हुए जिनेश्वर परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा दिलवाएँ।

• उसके बाद मूलनायक भगवान के दाहिनी तरफ तीन बार नवकार महामन्त्र का स्मरण कर श्री शान्ति कलश की स्थापना करें। फिर आचार्य भगवन्त श्वॉस रोकर **'ॐ ह्रीँ श्रीँ ठः ठः ठः स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए कलश के ऊपर वासचूर्ण डालें तथा श्रीसंघ कुसुमांजलि से बधाएँ। फिर देववन्दन और क्षमायाचना करें।

।। इति शान्ति कलश विधि ।।

प्रतिष्ठोपयोगी अभ्यसनीय मन्त्राः

1. सकलीकरण मन्त्र– ॐ नमो अरिहंताणं हृदयं रक्ष रक्ष। ॐ नमो सिद्धाणं ललाटं रक्ष रक्ष। ॐ नमो आयरियाणं शिखा रक्ष रक्ष। ॐ नमो उवज्झायाणं कवचम्। ॐ नमो लोए सव्व साहूणं अस्त्रम् (7 वारान्)

2. शुचिविद्या– ॐ नमो अरिहंताणं। ॐ नमो सिद्धाणं। ॐ नमो आयरिआणं। ॐ नमो उवज्झायाणं। ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं। ॐ नमो आगासगामीणं। ॐ नमो चारणलद्धीणं। ॐ ह: क्ष: नम:। अशुचिः शुचिर्भवामि स्वाहा। (5-7 वारान्)

पादलिप्तीया शुचिविद्या–ॐ नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरिआणं नमो उवज्झायाणं नमो लोए सव्वसाहूणं ॐ नमो सव्वोसहिपत्ताणं ॐ नमो विज्झाहराणं ॐ नमो आगासगामीणं ॐ कं क्षं नम: अशुचि: शुचिर्भवामि स्वाहा। (सुरभिमुद्रया 5-7 वारान् न्यसेत्)

3. बलि मंत्र– ॐ ह्रीं क्ष्वीँ सर्वोपद्रवं बिम्बस्य रक्ष रक्ष स्वाहा। (7 वारान् बलिमंत्रणं कवचो दिग्बन्धश्च)

पादलिप्तीय बलिमन्त्र– ॐ नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरिआणं नमो आगासगामिणं नमोचारणाइलद्धीणं जे इमे किंनर-किंपुरिस-महोरग-गरुल-सिद्धगंधव्व-जक्ख-रक्ख-स-भूयपिसाय-डाइ-विपभिई जिणघरणिवासिणो नियनिय निलयठिया पवियारिणो संनिहिया य असंनिहिया य ते सव्वे विलेवण-पुप्फ-धूव-पईवसणाहं बलिं पडिच्छन्तु तुट्ठिकरा भवन्तु सिवंकरा भवन्तु संतिकरा भवन्तु सत्थयणं कुणंतु सव्वजिणाणं संनिहाणभावओ पसन्नभावेण सवत्थ रक्खं कुणंतु सव्वदुरियाणि नासेंतु सव्वासिवं उवसमेंतु संति-पुट्ठि-तुट्ठि-सिवसत्थयण-कारिणो भवंतु स्वाहा।

पादलिप्तीयदिग्बन्धमंत्र– ॐ हूँ क्षूँ फुट् किरिटि किरिटि घातय घातय परविघ्नानास्फोट्याऽऽस्फोटय सहस्रखण्डान् कुरु कुरु परमुद्रां छिन्द-छिन्न परमन्त्रान् भिन्द-भिन्द क्ष: फट् स्वाहा। (अनेन श्वेतसर्षपानभिमन्त्र्य दिग्बन्धाय पूर्वादिदिक्षु क्षेप्या:)

4. जलादि अभिमन्त्रण मंत्र– 1. ॐ नमो य: सर्वशरीरावस्थिते महाभूते आगच्छ 2 जलं गृहण 2 स्वाहा, **जलकलशाभिमंत्रणम्**।। 2. ॐ नमो य: सर्वशरीरावस्थिते पृथु 2 विपृथु 2 गन्धान् गुहण 2 स्वाहा, **गन्धाधिवासनम्**।।

3. ॐ नमो यः सर्वतो मे मेदिनी पुष्पवती पुष्पं गृह्ण 2 स्वाहा, **पुष्पाभिमन्त्रणं**।। 4. ॐ नमो यः सर्वतो बलिं दह 2 महाभूते तेजोधिपते धू धू धूपं गृह्ण 2 स्वाहा, **धूपाभिमंत्रणं**।

पादलिप्तीयजलादिमंत्रो– ॐ नमो यः सर्वशरीरावस्थिते महाभूते आपो जलं गृह्ण 2 स्वाहा, **प्रथमस्नानषट्कमंत्रः**।। ॐ नमो यः सर्वशरीरावस्थिते पृथु विपृथु पृथु-विपृथु-गन्धं गृह्ण 2 स्वाहा, **अष्टवर्गादि स्नान समूह मंत्रः**।। ॐ नमो यः सर्वशरीरावस्थिते मेदिनी पुरु पुरु पुष्पवति पुष्पं गृह्ण 2 स्वाहा- **सर्वस्नान पुष्प मंत्रः**।। ॐ नमो यः सर्वशरीरावस्थिते दह दह महाभूते तेजोधिपते धू धू धूपं गृह्ण 2 स्वाहा, **समस्त स्नान धूप मंत्रः**।।

5. जिनाह्वान मंत्र– ॐ नमोऽर्हते परमेश्वराय चतुर्मुखपरमेष्ठिने त्रैलोक्यनताय अष्टदिक्कुमारीपरिपूजिताय देवाधिदेवाय दिव्यशरीराय त्रैलोक्यमहिताय आगच्छ आगच्छ स्वाहा।

6. जिनविज्ञप्ति मंत्र– ॐ इह आगच्छन्तु जिनाः सिद्धा भगवन्तः स्वसमयेनेहानुग्रहाय भव्यानां भः स्वाहा। ॐ क्षाँ क्ष्वीं ह्रीं क्षीँ भः स्वाहा (इत्ययं वा)।

7. जिनस्वागत मंत्र– स्वागता जिनाः सिद्धाः प्रसाददाः सन्तु प्रसादं धिया कुर्वन्तु अनुग्रहपरा भवन्तु भव्यानां स्वागतमनुस्वागतम्।

8. अर्घनिवेदन मंत्र– ॐ भः अर्घं प्रतीच्छन्तु पूजां गृह्णन्तु गृह्णन्तु जिनेन्द्राः स्वाहा।

9 शुद्धजलस्नात्र काव्य– चक्रे देवेन्द्रराजैः सुरगिरिशिखरे योऽभिषेकः पयोभि-र्नृत्यन्तीभिः सुरीभिर्ललितपदगमं तूर्यनादैः सुदीप्तैः। कर्तुं तस्यानुकारं शिवसुखजनकं मन्त्रपूतैः सुकुम्भै-बिंबं जैनं प्रतिष्ठाविधिवचनपरः स्नापयाम्यत्र काले।।1।।

10. अधिवासनामंत्रद्वय– ॐ नमो खीरासवलद्धीणं ॐ नमो महुआसवलद्धीणं ॐ नमो संभिन्नसोयाणं ॐ नमो पयाणुसारीणं ॐ नमो कुट्ठबुद्धीणं जमिअं विज्जं पउंजामि विज्जा पसिज्झउ, ॐ अवतर 2 सोमे 2 कुरु 2 वग्गु 2 निवग्गु 2 सुमिणे सोमणसे महुमहुरे ॐ कविल ॐ कः क्षः स्वाहा (अथवा) ॐ नमः शान्तये हूँ क्षूँ हूँ सः।

पादलिप्तीये अधिवासना विद्या– ॐ नमो भगवओ उसभसामिस्स पढमतित्थयरस्स सिज्झउ मे भगवई महाविज्जा जेण सव्वेण इंदेण

सव्वदेवसमुदयेण मेरुम्मि सव्वोसहीहिं सव्वे जिणा अभिसित्ता तेण सव्वेण अहिवासयामि सुव्वयं दढव्वयं सिद्धं बुद्धं सम्मद्‌दंसणमणुपत्ते हिरि हिरि सिरि सिरि मिरि मिरि गुरु गुरु अमले अमले विमले विमले सुविमले सुविमले मोक्खमग्गमणुपत्ते स्वाहा (अथवा) ॐ नमो खीरासवलद्धीणं ॐ नमो महुआसवलद्धीणं ॐ नमो संभिन्न सोईणं ॐ नमो पयाणुसारीणं ॐ नमो कुट्ठबुद्धीणं जमियं विज्जं पउंजामि सा मे विज्जा पसिज्झउ ॐ कं क्षः स्वाहा।

11. **जिने सहजगुणस्थापन मंत्र**— ॐ नमो विश्वरूपाय अर्हते केवलज्ञानदर्शनधराय स हूं सः ह्रौं हजगुणान् जिनेशे स्थापयामि स्वाहा।

12. **प्रतिष्ठा मंत्र**— ॐ वीरे वीरे जयवीरे सेणवीरे महावीरे जये विजये जयन्ते अपराजिए ॐ ह्रीं स्वाहा।

13. **घातिकर्मक्षयोत्पन्नगुणस्थापन मंत्रः**— ॐ नमो भगवते अर्हते घातिक्षयकारिणे घातिक्षयोत्पन्नगुणान् जिने स्थापयामि स्वाहा।

14. **पादलिप्तीयप्रतिष्ठा मंत्रः**— ॐ नमो अरिहंताणं ॐ नमो सिद्धाणं ॐ नमो उवज्झायाणं ॐ नमो लोएसव्वसाहूणं ॐ नमो ओहिजिणाणं ॐ नमो परमोहिजिणाणं ॐ नमो सव्वोहिजिणाणं ॐ नमो अणंतोहिजिणाणं ॐ नमो केवलिजिणाणं ॐ नमो भवत्थकेवलिजिणाणं ॐ नमो भगवओ अरहओ महई महावीरवद्धमाणसामिस्स सिज्झउ मे भगवई महई महाविज्जा वीरे 2 महावीरे जयवीरे सेणवीरे वद्धमाण वीरे जये विजये जयंते अपराजिए अणिहए मा चल 2 वृद्धिदे 2 हूँ 2 ह्रौं 2 सः ओहिणी मोहिणी स्वाहा।

15. **सौभाग्य मंत्र**— ॐ अवतर अवतर सोमे 2 कुरु 2 निवग्गु 2 सुमिणे सोमणसे महुमहुरे ॐ कविल ॐ कः क्षः स्वाहा। पादलिप्तीयसौभाग्यमंत्रः- ॐ नमो वग्गु 2 निवग्गु 2 सुमिणे सोमणसे महुमहुरे जयंते अपराजिए स्वाहा।

16. **जिनमूर्त्तिप्रतिबोध मंत्रः**— ॐ ह्रीं अर्हन्मूर्तये नमः (प्रवचनमुद्रा पूर्वक प्रतिबोधः)।।

17. **अचलमूर्त्तिस्थिरीकरण मंत्रः**— ॐ स्थावरे तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा।

18. **सिंहासन स्थापना मंत्रः**— इदं रत्नमयमासनमलंकुर्वन्तु इहोपविष्टा भव्यानवलोकयन्तु हृष्टदृष्ट्या जिनाः स्वाहा।

19. **चलप्रतिमायां न्यसनीय मंत्रः**— ॐ जये श्रीं ह्रीं सुभद्रे नमः।

20. **सुरकृतातिशय स्थापन मंत्र**— ॐ नमो भगवते अर्हते सुरकृतातिशयान् जिनस्य शरीरे स्थापयामि स्वाहा।

21. जिने प्रातिहार्यस्थापन मंत्रः– ॐ नमो भगवते अर्हते असिआउसा जिनस्य प्रातिहार्याष्टकं स्थापयामि स्वाहा।

ॐ यक्षेश्वराय स्वाहा। ॐ ह्रीँ हूँ ह्रौँ शासनदेव्यै स्वाहा। ॐ धर्मचक्राय स्वाहा। ॐ मृगद्वन्दाय स्वाहा। ॐ रत्नध्वजाय स्वाहा। ॐ नमो भगवते अर्हते जिने प्राकारादित्रयं स्थापयामि स्वाहा।

22. प्रतिष्ठादेवताविसर्जन मंत्रः– ॐ विसर विसर प्रतिष्ठादेवते स्वाहा।

23. नन्द्यावर्तविसर्जन मंत्रः– ॐ विसर विसर स्वस्थानं गच्छ गच्छ नन्द्यावर्त! पुनरागमनाय स्वाहा (मंत्रभणनपूर्वक) वासक्षेपेण विसर्जनम्।)

24. सामान्यदेवविसर्जन मंत्र–

यान्तु देवगणाः सर्वे, पूजामादाय मामकीम्।
सिद्धिं दत्त्वा च महतीं, पुनरागमनाय च।।

विधि-विधानों की गरिमा को अखंडित बनाए रखने हेतु तथा पूर्वाचार्यों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग की अक्षुण्णता हेतु सम्यक रूप से विधि-विधानों का पालन नितांत आवश्यक है। परन्तु सामान्य वर्ग प्रायः इन सबसे अपरिचित है। इसी के साथ वर्तमान में विधिकारकों की मत वैभिन्यता एवं धीरे-धीरे इनमें हो रहे परिवर्तनों के कारण श्रावक वर्ग दिग्भ्रमित हो रहा है। परन्तु आराधक वर्ग को मूल मार्ग एवं विधि का ज्ञान होना भी जरूरी है, ताकि वे अपने लिए सही मार्ग का चुनाव कर सकें। विधि-विधानों में देश- काल के अनुसार भी कुछ फेर-बदल हुए हैं। इन सभी का उल्लेख इस अध्याय में करते हुए प्रतिष्ठा विधियों का शास्त्रीय स्वरूप बताया है जिससे परम्परा की जानकारी हो और उन क्रियाओं के प्रति हम जागरूक बन सके। इसी भावना के साथ इस अध्याय का समापन भी किया है।

सन्दर्भ-सूची

1. *कल्याण कलिका, भा. 2, पृ. 1-3*
2. *(क) विधिमार्गप्रपा, पृ. 109-110*
   (ख) कल्याण कलिका, पृ. 5-8
3. *कल्याण कलिका, पृ. 9-15*
4. *वही, पृ. 14-15*
5. *(क) निर्वाण कलिका, पृ. 23-24*
   (ख) कल्याण कलिका, भा. 2, पृ. 20

6. *निर्वाण कलिका, पृ. 23-24*
7. *कल्याण कलिका, पृ. 20*
8. *देवशिल्प, पृ. 338*
9. *प्रतिष्ठा सारोद्धार, 1/143-149*
10. *देव शिल्प, पृ. 340*
11. *कल्याण कलिका, भा. 2 पृ. 48, प्रस्तावना, पृ. 37*
12. *विधिमार्गप्रपा, पृ. 108*
13. *(क) आचार दिनकर, पृ. 204*
    (ख) कल्याण कलिका, भा. 1, पृ. 249
14. *विधिमार्गप्रपा-सानुवाद, पृ. 320*
15. *आचार दिनकर, पृ. 203*
16. *कल्याण कलिका, भा. 2, पृ. 145*
17. *वही, पृ. 104*
18. *प्रतिष्ठा विधि, पृ. 291-297*
19. *कल्याण कलिका, भा. 2, पृ. 158-168*
20. *विधिमार्गप्रपा-सानुवाद, पृ. 288-3-06*
21. *वही, पृ. 306-309*
22. *कल्याण कलिका, पृ. भा. 2, पृ. 132*
23. *निर्वाण कलिका, पृ. 36-42*
24. *प्रतिष्ठा कल्प, पृ. 44-46*
25. *घंटाकर्ण कल्प, पृ. 7*
26. *विधिमार्गप्रपा-सानुवाद, पृ. 128-129*
27. *देव शिल्प, पृ. 274*
28. *कल्याण कलिका, भा. 2, पृ. 172-174*
29. *वही, पृ. 175*
30. *विधिमार्गप्रपा-सानुवाद, पृ. 319-321*
31. *वही, पृ. 322-324*
32. *(क) आचार दिनकर, पृ. 201-202*
    (ख) कल्याण कलिका, पृ. 142-143

33. आचार दिनकर, पृ. 205-206
34. कल्याण कलिका, पृ. 16-17
35. वास्तुसार प्रकरण, 3/63-64
36. वही, 3/67
37. गिह देवालय सिहरे, धयदंडं नो करिज्जइ कयावि।
आमलसारं कलसं, कीरइ इअ भणिय सत्थेहिं॥

(क) वास्तुसार प्रकरण, 3/68

(ख) रत्नाकर, 12/208

38. भित्ति संलग्न बिम्बश्च, पुरुषः सर्वथाऽशुभः।
चित्रमयाश्च नागाद्या, भित्तौ चैव शुभावहाः॥

शिल्प रत्नाकर, 12/204

39. कर्ण प्रतिरथ भद्रोरूश्रृंगतिलकान्वितः।
काष्ठ प्रासादः शिखरी, प्रोक्तो तीर्थ शुभावहः॥

वही, 12/209

40. (क) उमास्वामी श्रावकाचार, 101-104
(ख) आचार दिनकर, पृ. 142
41. नेमिश्च मल्लिनाथश्च, वीरो वैराग्य कारकः।
त्रयो वै मंदिरे स्थाप्याः, शुभदा न गृहे मताः॥

(क) शिल्प रत्नाकर, 12/105

(ख) आचार दिनकर, पृ. 142

(ग) प्रतिष्ठाकल्प, उपाध्याय सकलचन्द्र

42. एकांगुला भवेत् श्रेष्ठा, द्वयंगुला धननाशिका।
त्रयंगुला वृद्धिदा ज्ञेया, वर्जयेत् चतुरंगुलाम्॥
पंचांगुला भवेद् वृद्धि रुद्धेगं च षडंगुला।
सप्तांगुला नवा वृद्धि र्हीना चाष्टांगुला सदा॥
नवांगुला सुतं दद्याद्, द्रव्य हानिर्दशांगुला।
एकादशांगुलं बिम्बं, सद्यः कामार्थ सिद्धिदम्॥

शिल्प रत्नाकर, 12/149-151

43. वास्तु द्रव्याधिकं कुर्यान, मृत्काष्ठे शैलजं हि वा।
शैलजे धातुजं वापि, धातुजे रत्नजं तथा॥

(क) प्रासादमंडन, 8/8

(ख) शिल्प रत्नाकर, 5/108

44. अन्यवास्तुच्यूतं द्रव्य, मन्य वास्तुनि योजयेत्।
प्रासादे न भवेत् पूजा, गृहे तु न वसेद् गृही॥

प्रासादमंडन, 8/4

45. तद्रूपं तत्प्रमाणं स्यात्, पूर्व सूत्रं न चालयेत्।
हीने तु जायते हानि-रधिके स्वजनक्षयः॥

(क) प्रासादमंडन, 8/7

(ख) शिल्परत्नाकर, 5/106

46. अव्यक्तं मृण्मयं, चाल्यं त्रिहस्तान्तं तु शैलजम्।
दारूजं पुरुषार्धं च, अत ऊर्ध्वं न चालयेत्॥

(क) प्रासादमंडन, 8/11

(ख) शिल्परत्नाकर, 5/114

47. शिल्परत्नाकर, 5/113

48. वही, 5/120,122

49. वही, 5/116

50. स्वर्णजं रौप्यजं वापि, कुर्यान्नागमथो वृषम्।
तस्य श्रृंगेण दन्तेन, पतितं पातयेत् सुधीः॥

(क) प्रासाद मंडन, 8/15

(ख) शिल्परत्नाकर, 5/118

51. वही, 5/115

52. वापीकूपतडागानि, प्रासाद भवनानि च।
जीर्णान्युद्धरते यस्तु, पुण्यमष्ट गुणं लभेत्॥

प्रासादमंडन, 8/6

53. आमं तिन्दुकमामं, कपित्थकं पुष्पमपि च शाल्मल्याः।
बीजानि शल्लकीनां, धन्वनवल्को वचा चेति॥
एतैः सलिल द्रोणः, क्वाथयितव्योऽष्ट भाग शेषश्च।
अवतार्योऽस्य च कल्को, द्रव्यै रेतैः समनुयोज्यः॥

श्रीवासकरस गुग्गुलु, भल्लातक कुन्दुरुकसर्जरसैः ।
अतसी बिल्वैश्च युतः, कल्कोऽयं वज्रलेपाख्यः ॥

(क) शिल्परत्नाकर, 12/210-212
(ख) वास्तुसार प्रकरण, पृ. 145

54. *लाक्षा कुन्दुरू गुग्गुलु-गृहधूमकपित्थबिल्वमध्यानि ।*
नागनिम्बतिन्दुकमदनफल मधुक मंजिष्ठाः ॥
सर्जरसामलकानि चेति कल्कः कृतो द्वितीयोऽयम् ।
वज्राख्यः प्रथमगुणैरयमपि तेष्वेव कार्येषु ॥

(क) बृहत्संहिता, 5-6, पृ. 387
(ख) वास्तुसार प्रकरण, पृ. 146

55. *प्रासाद हर्म्य वलभी, लिङ्ग प्रतिमासु कुड्यकुपेषु ।*
सन्तप्तो दातव्यो, वर्ष सहस्रायुत स्थली ॥

शिल्प रत्नाकर, 12/213

56. *वही, 12/213*
57. *(क) निर्वाण कलिका, पृ. 64-66*
(ख) कल्याण कलिका, खं. 2, पृ. 230-231
58. *विधिमार्गप्रपा-सानुवाद, पृ. 338*
59. *आचार दिनकर, पृ. 211*
60. *वही, पृ. 212*
61. *आचार दिनकर, पृ. 213*
62. *वही, पृ. 212*
63. *वही, पृ. 214-215*
64. *वही, पृ. 213*
65. *वही, पृ. 210*
66. *कल्याण कलिका, भा. 2., पृ. 131*
67. *आचार दिनकर, पृ. 210-211*
68. *वही, पृ. 215-216*
69. *कल्याण कलिका, भा. 2, पृ. 159-162*

●

अध्याय–12

अठारह अभिषेकों का आधुनिक एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन

अभिषेक एक आध्यात्मिक अनुष्ठान है। तीर्थंकर परमात्मा के जन्म, दीक्षा और निर्वाण के समय देवी-देवता गण सुगन्धित जलों से परमात्मा का साक्षात अभिषेक करते हैं। इसी के अनुकरण रूप जिनबिम्बों का प्रक्षाल एवं स्नात्र किया जाता है। अभिषेक की क्रिया बाह्य रूप से तो प्रतिमा को प्रक्षालित करती है किन्तु अंतरंग में अभिषेक कर्त्ता के मलिन भाव ही प्रक्षालित होते हैं।

अभिषेक शब्द 'अभि' उपसर्ग, 'सिंच्' धातु एवं 'घञ्' प्रत्यय से निष्पन्न है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'अभि: मुख्यरूपेण सिंचयति इति अभिषेक:' यह व्युत्पत्ति सिद्ध होती है।

यहाँ अभि उपसर्ग ऊपर के अर्थ में है। तदनुसार प्रतिमा के ऊपर या प्रतिमा को जल से सिंचित करना अभिषेक कहलाता है।

संस्कृत कोश में राज्याभिषेक, प्रतिष्ठा आदि में प्रयुक्त होने वाला पवित्र जल, आचमन, धर्म स्नान आदि के लिए भी अभिषेक शब्द का प्रयोग किया गया है। यहाँ अभिषेक का अभिप्राय जिन प्रतिमा आदि को प्रासुक जल से स्नात्र करवाना है। अठारह अभिषेकों का तात्पर्य भिन्न-भिन्न औषधियों के द्वारा नूतन या प्राचीन जिनबिंबों का अठारह बार प्रक्षालन करना है।

अठारह अभिषेक की आवश्यकता क्यों?

जैन मन्दिरों में जिनबिम्बों का प्रक्षालन जन्माभिषेक के अनुकरणार्थ किया जाता है। तीर्थंकर परमात्मा के जन्म कल्याणक के समय इन्द्र महाराजा एवं अनगिनत देवी-देवतागण मिलकर प्रभु को मेरुपर्वत पर लेकर जाते हैं। वहाँ विविध तीर्थों आदि के जल से 1008 कलशों से अभिषेक करते हैं। इसी के साथ लोक व्यवहार के पालन हेतु जन्म अशुचि का निवारण भी किया जाता है।

यहाँ प्रश्न होता है कि तीर्थंकर परमात्मा का शरीर जन्मतः निर्मल, सुगन्धित एवं अशुचि रहित होता है फिर उनका अभिषेक क्यों? और उसी का प्रतिरूप होने से जिन प्रतिमा का भी अभिषेक क्यों? यह सत्य है कि परमात्मा का देह समस्त प्रकार की मलिनताओं से रहित होता है इस कारण जन्म अशुचि के निवारणार्थ प्रभु का अभिषेक करना घटित नहीं होता। परन्तु जैन धर्म में व्यवहार और निश्चय उभय पक्षों की प्रधानता है।

इसी सिद्धान्त के अनुसार तीर्थंकर परमात्मा जैसे उत्तम जीवों का अशुचि निवारण किया जाता है। जन्म कल्याणक मनाते समय इन्द्रादि देवगण बाह्य रूप से भगवान की देह शुद्धि एवं भावों से स्वयं के कर्ममल दूर करते हैं। इस भक्ति के फलस्वरूप उपस्थित देवी-देवता अनन्त पुण्योपार्जन भी करते हैं। गृहस्थ श्रावक को अभिषेक क्रिया करते समय 'तीर्थंकर परमात्मा का जन्म कल्याणक मना रहा हूँ' ऐसा भाव रखना चाहिए। गृहस्थजन देवी-देवताओं के समान 108 नदियों के जल आदि लाने में समर्थ न होने से 18 प्रकार की औषधियों एवं कुछ तीर्थ जलों आदि के द्वारा अभिषेक करते हैं।

- अठारह अभिषेक का दूसरा हेतु यह कहा जा सकता है कि जिनबिम्ब औदारिक पुद्गल रूप होने से गृहस्थ के अनुपयोग अथवा मलीन परिणामों के कारण यदि उनमें किसी भी प्रकार की अशुद्धि का संचय हो गया हो तो उसे प्रभावी औषधियों के द्वारा दूर किया जाता है।
- अठारह अभिषेक में प्रयुक्त औषधियों के प्रभाव से पत्थर में कोई आंतरिक दोष हो तो वह भी प्रकट हो जाता है। इससे पर्यावरण शुद्ध एवं सुगंधित भी होता है। वर्तमान में जिनालय, जिनबिम्ब एवं वातावरण शुद्धि की अपेक्षा से यह विधान किया जाता है।
- औषधि सम्मिश्रित जलाभिषेक से अभिषेक कर्ता के शारीरिक मलों एवं विकृतियों की शुद्धि भी होती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में शरीर और आत्मा दोनों की शुद्धि महत्त्वपूर्ण है।
- यह क्रिया प्रभु सामीप्य की अनुभूति करने एवं आत्म दोषों से मुक्त होने के लिए भी की जाती है।
- इस क्रिया से प्रतिमा की कान्ति बढ़ती है। यह अनुष्ठान अभिषेककर्ता के जीवन की सुकुमारता और कान्ति में भी वृद्धि करता है।

यहाँ शंका हो सकती है कि तीर्थंकर प्रतिमा के अभिषेक में सचित्त जल आदि का प्रयोग होने से वह सावद्यकारी है, अत: यह क्रिया सर्वथा उपयुक्त नहीं है और इसकी सार्थकता भी क्या है?

यह सत्य है कि जिनाभिषेक में सचित्त सामग्री प्रयुक्त होने के कारण वह एक सावद्य प्रक्रिया है जबकि जैन धर्म तो अहिंसा का प्रतिपादन करता है अत: यह सब क्रियाएँ परमात्मा के निमित्त नहीं होनी चाहिए।

तदुपरान्त यदि इसके द्रव्य पक्ष को गौण कर भावात्मक पक्ष की ओर दृष्टिपात किया जाए तो इसमें द्रव्य रूप से जितने दोषों की संभावनाएँ बनती हैं। उससे कई गुणा अधिक परिणामों की शुद्धि से कर्म निर्जरा भी होती है। दूसरे पहलू से विचार किया जाए तो गृहस्थ के घर, व्यापार एवं परिवार से सम्बन्धित समस्त क्रियाएँ सावद्य एवं बंधनकारी हैं उसकी तुलना में अभिषेक क्रिया सावद्य होने के उपरान्त भी आत्मशुद्धि कारक है। तीसरे, इस निमित्त से स्नात्रकर्ता के द्रव्य का सदुपयोग होता है, सांसारिक झंझटों एवं वैभाविक परिणतियों से भी उतने समय के लिए निवृत्त हो जाता है तथा शुभ अध्यवसाय और हर्षोल्लास के कारण पुण्य कर्मों का बंध करता है। जैसे दाना चुगते हुए पक्षियों को शिकारी के पाश जाल से बचाने हेतु उड़ाया जाये तो वह क्रिया बाह्यत: अनुचित प्रतीत होती है किन्तु आशय शुद्धि के कारण बंधन कारक नहीं है, वैसे ही परमात्मा का अभिषेक सावद्य होने पर भी विशिष्ट निर्जरा का हेतु है अत: सर्वथा करने योग्य है।

• अठारह अभिषेक का तीसरा हेतु यह कहा जाता है कि जिनालय में किसी भी प्रकार की छोटी-बड़ी आशातना हुई हो, जाने-अनजाने किसी दोष का सेवन कर लिया गया हो अथवा शरीर का मैल आदि निकालने के कारण वह स्थान अपवित्र हो गया हो तो अभिषेक में प्रयुक्त औषधियों के प्रभाव से समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं तथा संभावित उपद्रव भी दूर हो जाते हैं।

• प्राकृतिक दृष्टि से प्रभु अभिषेक में मुख्यत: वनस्पतिजन्य पदार्थों का समावेश होता है जो स्वाभाविक रूप से पर्यावरण को प्रभावित एवं विकारों को दूर करती हैं। इसमें दूध, दही, घी आदि का भी प्रयोग किया जाता है जिन्हें भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से पवित्र माना गया है। इस प्रकार देवस्थान विकार मुक्त बनता है।

• अभिषेक एक शाश्वत परम्परा है। बारह देवलोकों के सौधर्म आदि इन्द्र प्रत्येक कालचक्र में होने वाले तीर्थंकरों का जन्म कल्याणक मनाने हेतु नन्दीश्वर द्वीप जाकर अट्ठाई महोत्सव, शाश्वत चैत्यों का अभिषेक आदि करते हैं तब सामान्य मनुष्य को तो परमात्मा भक्ति करनी ही चाहिए।

• अठारह अभिषेक का मुख्य हेतु यह भी ज्ञात होता है कि इससे विधेयात्मक ऊर्जा एवं शुद्ध परमाणुओं की प्राप्ति होती है, अध्यवसायों की निर्मलता बढ़ती है तथा जीवन सार्थक होता है।

अठारह अभिषेक कब किए जाएं?

अठारह अभिषेक का यह विधान नव निर्मित जिनालय की प्रतिष्ठा के अवसर पर अथवा जिनबिंब संबंधी हुई आशातनाओं को दूर करने के प्रसंग पर किया जाता है। वर्तमान में बढ़ रही शारीरिक आदि आशातनाओं का निवारण करने के लिए अधिकतम स्थानों पर वर्ष में प्राय: एक बार अठारह अभिषेक किया जाने लगा है।

यह एक शुद्धिकरण की प्रक्रिया है। वर्तमान में मुख्यत: ध्वजदंड, कलश, जिनबिम्ब, देवी-देवताओं की प्रतिमा, गुरु मूर्ति, सिद्धाचल आदि के पट्ट, स्थापनाचार्यजी, मंगल मूर्ति, गृह मन्दिर में दर्शनीय प्रतिमा आदि का अभिषेक किया जाता है।

अठारह अभिषेक का अधिकारी कौन?

यह क्रिया गुरु भगवन्त हो तो उनकी निश्रा में एवं विधिकारक के निर्देशन में श्रावक-श्राविकाओं के द्वारा मिलकर सम्पन्न की जाती है। औषधि आदि घोटने का कार्य सुहागन महिलाओं के द्वारा करवाया जाता है।

अभिषेक कर्ता क्या भावना करें?

• अभिषेक करते हुए स्नात्रकार को द्रव्य से जिन प्रतिमा की शुद्धि एवं भावों से निज आत्मशुद्धि की भावना करनी चाहिए।

इस अन्तर्भावना से निवेदन करे कि हे परमात्मन्! आपका ज्ञान रूपी जल जो समत्त्व रस से भरपूर है उससे मेरा अन्तर घट भी समता रस से पूरित हो।

• हे भगवन्! मेरे द्वारा किसी भी प्रकार की आशातना हुई हो तो इस जलाभिषेक के द्वारा उन दोषों को दूर करता हूँ।

• इन प्रयुक्त औषधियों एवं तीर्थजलों के प्रभाव से मेरे आभ्यन्तर एवं शारीरिक समस्त प्रकार के विकार दूर हो रहे हैं और मैं उत्तरोत्तर आत्म दिशाभिमुख हो रहा हूँ ऐसा संकल्प करें।

• हे करुणावत्सल! आपके इस अभिषेक के माध्यम से अनेक जीवों ने अनन्त पुण्य का उपार्जन किया है तथा कईयों ने शिवसुख को प्राप्त किया है। मेरे जीवन में भी इस तरह का अवसर उपस्थित हो जिसके माध्यम से आपके समान परमात्मस्वरूप को प्राप्त कर सकूँ।

अठारह अभिषेक के विषय में जन मान्यताएँ

समस्त परम्पराओं में अभिषेक के जल को पूजनीय, कष्ट निवारक एवं कान्तिवर्धक माना गया है। आचार्य अभयदेवसूरि आदि के कुष्टरोग निवारण की घटना इसी विषय में प्रसिद्ध है। आज भी शांति स्नात्र आदि का जल एवं कई तीर्थों के प्रक्षाल जल को प्रभावी मानकर घरों में रखा जाता है तथा आपत्ति के समय उसका प्रयोग करते हैं।

अभिषेक के प्रकार

जिनबिंब के ऊपर प्रासुक जल की धारा छोड़ते हुए उसे अभिसिंचित करना अभिषेक कहलाता है। पूर्वाचार्यों ने तीर्थंकरों के लिए चार प्रकार के अभिषेक का वर्णन किया है-

1. **जन्माभिषेक–** तीर्थंकर के जन्म के समय में सौधर्म इन्द्रादि द्वारा मेरू पर्वत पर 1008 कलशों से अभिषेक किया जाता है वह जन्माभिषेक है।

2. **राज्याभिषेक–** तीर्थंकर प्रभु कुमारावस्था में राज्यसिंहासन का कार्यभार संभालते हैं उस समय राज्यतिलक के पूर्व अभिषेक किया जाता है वह राज्याभिषेक है।

3. **दीक्षाभिषेक–** तीर्थंकर प्रभु दीक्षा धारण करते हैं उसके पूर्व इन्द्रादि देवगण एवं कुटुम्बीगण के द्वारा उनका अभिषेक (स्नान) किया जाता है वह दीक्षाभिषेक है।

4. **जिनाभिषेक–** प्रतिष्ठा के पश्चात अथवा प्रतिष्ठा से पूर्व अठारह अभिषेक के दौरान भक्तजनों के द्वारा प्रतिदिन जिनबिंब का अभिषेक किया जाता है वह जिनाभिषेक है।

जैनाचार्यों ने चौथे अभिषेक को ही प्रतिमाभिषेक कहा है और यही अभिषेक कर्म निर्जरा एवं उत्कृष्ट पुण्य बंध का हेतु माना गया है।

प्रतिमा अभिषेक की परम्परा कब से?

त्रिलोकसार एवं जंबूदीव संगहो के अनुसार तीर्थंकरों के पंच कल्याणक और अकृत्रिम जिनालय अनादिनिधन हैं। भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक इन चारों जाति के करोड़ों देवी-देवता अष्टाह्निका पर्व में नन्दीश्वर द्वीप जाकर चारों दिशाओं में स्थित शाश्वत चैत्यालयों में क्रमशः दो-दो प्रहर पूर्वक अहोरात्र प्रतिमाओं का अभिषेक और पूजन करते हैं। इस प्रकार अभिषेक की परम्परा शाश्वत है।[1]

अभिषेक के मूल्य को सिद्ध करने वाला दूसरा तथ्य यह है कि आज भी इन्द्रादि देवी-देवताओं को महाविदेह क्षेत्र में विचरण कर रहे बीस तीर्थंकरों के कल्याणक एवं साक्षात दर्शन-पूजन का सौभाग्य प्राप्त होने पर भी अकृत्रिम चैत्यालयों के बिंबों का भक्तिपूर्वक अभिषेक करने जाते हैं और स्वयं को धन्य मानते हैं।[2] इससे सिद्ध होता है कि अभिषेक गृहस्थ का दैनिक आचार है और यह उत्कृष्ट पुण्योपार्जन का प्रबल साधन है।

यह भी समाधान दिया जाता है कि प्रतिमा की स्वच्छता के लिए अभिषेक करते हैं। यदि यह कारण प्रमुख होता तो नंदीश्वर द्वीप एवं ऊर्ध्व-अधो लोक के शाश्वत जिनालयों में जहाँ कण मात्र भी धूल नहीं है फिर भी देवतागण अभिषेक क्यों करते हैं?

दिगम्बर आचार्यों ने स्पष्टतः लिखा है कि देवी-देवता जन्म लेते ही धर्म की प्रशंसा करते हुए सर्वप्रथम सरोवर में स्नान करके एवं अलंकारों से सुसज्जित होकर जिनेश्वर देव का अभिषेक एवं पूजन करते हैं।[3]

स्पष्ट है कि अभिषेक का मुख्य हेतु अनादिनिधनता है।

अभिषेक क्रिया सावद्यकारी किन्तु निर्जरा प्रधान कैसे?

यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि प्रासुक जल का उपयोग करने से भी अप्कायिक जीव हिंसा होती है तब प्रतिमा का अभिषेक करने पर जीव हिंसा और आरम्भ जन्य दोष कैसे नहीं लगता है?

समाधान यह है कि इस क्रियानुष्ठान के निमित्त से भावों की विशुद्धि एवं प्रभु भक्ति से अनंत गुणा पुण्यास्रव, संवर और कर्मों की निर्जरा होती है जिससे आरंभ दोष अत्यधिक न्यून हो जाता है।

आचार्य समन्तभद्र आदि कहते हैं कि अभिषेक और पूजा में इतना अल्प पाप होता है कि अर्जित पुण्यराशि के सामने यह पाप दोष जनक नहीं है। जो गृहस्थ अभिषेक एवं अष्ट द्रव्य से पूजन करने का निषेध अथवा विरोध करते हैं वह घोर पापकर्म का बन्ध करके दुर्लभ मनुष्य पर्याय को व्यर्थ कर रहे हैं।[4]

'अभिषेक सावद्य जन्य होने पर भी पापसर्जक नहीं है' इस सम्बन्ध में दूसरी युक्ति यह दी जा सकती है कि गृहस्थ का जीवन आर्त्त-रौद्र ध्यान प्रधान एवं विषय-वासना से युक्त है। वह प्रायः पापाचरण में मग्न रहता है इसलिए सामायिक आदि के आलम्बन बिना गृहस्थ के परिणाम स्थिर नहीं रह सकते, अतएव प्रभु भक्ति आदि विविध प्रकार के आलम्बन लेता है जिससे कुछ अवधि के लिए पापक्रियाओं से मुक्त रह सकें।

यदि आत्म धर्म के लिए किये गये कार्यों में हिंसा मानेंगे तो यह युक्तिपूर्ण नहीं होगा। यह मत जैन सिद्धान्त के भी विरुद्ध है क्योंकि

1. क्षायिक सम्यग्दृष्टि सौधर्म इन्द्र अथाह जलराशि से जन्माभिषेक करता है।[5] समवसरण में देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं।
2. तीर्थों एवं तीर्थंकर परमात्मा के दर्शन-वन्दन करने के लिए राजा, श्रीमन्त, सेठ साहूकार आदि अपार सैन्यदल एवं प्रजाजन सहित आते हैं।
3. साधु-साध्वियों की दीक्षा, चातुर्मास प्रवेश, पदारोहण उत्सव आदि अवसरों पर साधर्मी वात्सल्य का आयोजन होता है।

उक्त कार्यों में अत्यधिक हिंसा होने से महापाप होना चाहिए, परन्तु जैन दर्शन के अनुसार यह कार्य पुण्योपार्जन के लिए किये जाते हैं, हिंसा की भावना से नहीं। अतः पाप की अल्पता एवं पुण्य की अधिकता के कारण उपर्युक्त कार्य दोष पूर्ण नहीं है। पूर्वाचार्यों के अनुसार गृहस्थ मात्र संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है शेष का नहीं।

अभिषेक जल वंदनीय क्यों?

प्रायः देखा जाता है कि मन्दिर दर्शन के लिए आने वाले लोग दर्शन-पूजा करने के पश्चात न्हवण-जल को हाथ से संस्पर्शित कर उसे मस्तक पर लगाते हैं ऐसा क्यों?

इसका जवाब यह है कि प्रतिष्ठा के दौरान प्रसंग पर दीक्षा कल्याणक एवं केवलज्ञान कल्याणक के समय प्रतिमा के ऊपर बीजाक्षरों का आरोपण एवं मंत्र

न्यास विधि की जाती है। फिर उस प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा और सूरिमन्त्र के संस्कार द्वारा उसे पूज्य बनाया जाता है।

अभिषेक के माध्यम से जो जल प्रतिमा पर गिरता है उसमें बीजाक्षर मंत्रों एवं अभिषेक के समय उच्चारित मंत्रों की शक्ति का प्रभाव आ जाता है जिससे वह वन्दनीय एवं प्रभावशाली हो जाता है। उस वायुमण्डल में व्याप्त शुद्ध परमाणुओं एवं शुभ भावों की पौद्गलिक शक्ति भी उसमें सन्निहित हो जाती है जो दर्शक के लौकिक और लोकोत्तर दोनों जीवन के लिए परम कल्याणकारी है।

वैज्ञानिक दृष्टि से भी सिद्ध हो चुका है कि मंत्रों के उच्चारण से निःसृत ध्वनि तरंगों की शक्ति से जल की गुणवत्ता बढ़ जाती है और उसमें विशेष ऊर्जा उत्पन्न होती है जिसका अद्भुत प्रभाव होता है।

प्रक्षाल लगाने से पूर्व स्वच्छ जल से हाथ धोयें। फिर श्रद्धापूर्वक उसे मस्तक पर धारण करके पुनः हाथ धोने चाहिए। अशुद्ध रुमाल आदि से प्रक्षाल के हाथ नहीं पोंछने चाहिए।

कुछ लोग शारीरिक स्वस्थता हेतु गंधोदक को नाभि के आस-पास भी लगाते हैं तो कुछ जन नये मकान, आफिस, दुकान आदि की दीवारों पर भी इसका छिड़काव करते हैं। आन्तरिक श्रद्धा के आधार पर उन्हें अपने भावानुरूप लाभ भी प्राप्त होता है।

अभिषेक क्रिया के लाभ

तीर्थंकर परमात्मा के प्रतिबिम्ब का स्पर्श करने मात्र से सर्व अभीष्ट पूर्ण हो जाते हैं। पुरन्दर आचार्यों ने प्रभु स्तुति करते हुए कहा भी है–

दर्शनात् दुरितध्वंसी, वन्दनात् वांछित प्रदः।
पूजनात् पूरकः श्रीणां, जिन साक्षात् कल्पद्रुमः।।

जिनेश्वर प्रभु साक्षात कल्पवृक्ष के समान हैं।

अभिषेक करते हुए परमात्मा के आभ्यन्तर व्यक्तित्व से हमारे अध्यवसाय इतने विशुद्ध हो जाते हैं कि अशुभ कर्मों के निर्जरण के साथ-साथ अनन्त कर्मों का क्षय भी क्षणांश में हो जाता है। यही क्षण भक्त के जीवन को सार्थकता प्रदान कर उसके उत्तम भविष्य का निर्माण करते हैं।

आचार्य रविषेण इसकी श्रेष्ठता दर्शाते हुए कहते हैं कि

अभिषेक जिनेन्द्राणां, विधाय क्षीरधारया।
विमाने क्षीर धवले, जायते परमद्युतिः।।

जो मनुष्य जिनेश्वर प्रभु का अभिषेक क्षीरसागर के जल से करते हैं वे दुग्ध धवल की भाँति स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं।[6]

आचार्य सकलकीर्ति अभिषेक का महत्त्व समझाते हुए लिखते हैं कि

जिनांग स्वच्छ नीरेण, क्षालयन्ति स्वभावतः ।
ये ऽति पापमलं तेषां, क्षयं गच्छति धर्मतः ।।

जो मनुष्य शुभ भाव से स्वच्छ जल द्वारा जिनबिंब का अंग प्रक्षालन करते हैं वे धर्म प्रभाव से समस्त पापों को नष्ट करते हैं।[7]

मुनिपुंगव अभ्रदेव इस क्रिया को मोक्ष प्राप्ति का पारम्परिक कारण मानते हुए व्रतोद्योतन श्रावकाचार में लिखते हैं कि

स्नपनं यो जिनेन्द्रस्य, कुरुते भाव पूर्वकं ।
स प्राप्नोति परं सौख्यं, सिद्धिनारी निकेतनम् ।।

जो भावपूर्वक जिनेश्वर देव का अभिषेक करते हैं वे सिद्धिनारी (मोक्ष) के परम सुख को प्राप्त करते हैं।[8]

आचार्य समन्तभद्र के उल्लेखानुसार जैसे अंगहीन सम्यग्दर्शन संसार की संतति को नहीं मिटाता, अक्षरहीन मंत्र विष की वेदना दूर नहीं करता वैसे ही अंगहीन पूजा भी पूर्ण फल प्रदान नहीं करती है।[9] इसलिए पूजाराधना के सभी अंगों जैसे- अभिषेक, आह्वान, स्थापना आदि को उल्लासपूर्वक सम्पन्न करना चाहिए।

अठारह अभिषेक की उपादेयता पर यदि विविध परिप्रेक्ष्यों में चिंतन किया जाए तो वैयक्तिक स्तर पर यह भावशुद्धि में सर्वाधिक सहायक बनता है। इनमें प्रयुक्त विविध औषधियों के प्रभाव विभिन्न लाभ भी पहुँचाते हैं जैसे ग्रहपीड़ा, भूतपीड़ा आदि हो तो दूर होती है। शांत वातावरण एवं शुद्ध परमाणुओं के कारण मानसिक शांति तथा आनंद की संप्राप्ति होती है।

सामाजिक स्तर पर विचार करें तो जिनालय सामूहिक आराधना का स्थल है। अनेक लोगों के आवागमन से वहाँ विविध प्रकार के द्रव्य एवं भाव परमाणुओं का संचय होता है जिससे वातावरण में मलीनता आ सकती है। इसी के साथ वर्तमान में बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण आदि के कारण भी मन्दिर का स्थान अपवित्र हो सकता है, जिसके दुष्प्रभाव से दर्शनार्थियों के अन्तर्मन में प्रसन्नता और समाधि के भाव उत्पन्न नहीं होते। किन्तु 18 अभिषेकों के द्वारा वातावरण के दुष्प्रभावों

को समाप्त किया जाता है। इससे पारस्परिक स्नेह में अभिवृद्धि एवं सामाजिक संबंधों में दृढ़ता भी आती है।

यदि आध्यात्मिक दृष्टि से अनुशीलन किया जाए तो इस धर्म क्रिया द्वारा आन्तरिक निर्मलता बढ़ती है, जो कर्मक्षय एवं आत्मशुद्धि में परम सहायक है। इस आराधना के माध्यम से सकल संघ आध्यात्मिक ऊँचाइयों को प्राप्त करता है।

आधुनिक युग की समस्याओं के सन्दर्भ में सोचें तो इस अभिषेक के द्वारा कई समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। सर्वप्रथम वातावरण में विद्यमान दोष दूर होते हैं जिससे पर्यावरण प्रदूषण एवं उनसे होने वाले रोगों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। इसके द्वारा आयुर्वेद सम्बन्धी विविध औषधियों का ज्ञान होने से वे कई दृष्टियों से लाभकारी बन सकती हैं।

इससे समाज में एकता एवं समन्वय की स्थापना होती है जिससे सामाजिक मतभेद एवं मनभेद समाप्त होते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से भी जिनाभिषेक का प्रभाव सुसिद्ध हो चुका है। जब धातु की प्रतिमा पर प्रासुक जल की धारा प्रवाहित करते हैं तो धातु के सम्पर्क से जल का आयनीकरण होता है जिसके फलस्वरूप निकलने वाले ऋण आयनों को शरीर ग्रहण करता है जो शरीर में स्थित हीमोग्लोबिन में वृद्धि करते हैं।

ऊर्जा विज्ञान भी यह सिद्ध कर चुका है कि जिस भावना से प्रेरित होकर हम कार्य करते हैं, वहाँ का वायुमण्डल भी हमारी आभामण्डल के द्वारा निकलने वाली किरणों से वैसा ही हो जाता है। वहाँ उपस्थित अन्य लोगों पर भी उसका वैसा ही प्रभाव पड़ता है। शुभ भावों के द्वारा हमारा आभामण्डल विधेयात्मक (पोजिटिव) बनता है, जिससे कार्य सिद्धि शीघ्र होती है एवं अन्यों से भी अपना कार्य करवा सकते हैं।

अठारह अभिषेकों में प्रयुक्त औषधियों का महत्त्व एवं रहस्य

जैन परम्परा से सम्बन्धित प्रत्येक विधि-विधान स्वयं में अनेक रहस्यों एवं विशिष्टताओं से युक्त है। अठारह अभिषेकों में प्रयुक्त औषधियाँ जिन बिंब, जिनालय और स्नात्रकर्ता पर अद्भुत प्रभाव डालती हैं।

पहला अभिषेक

प्रथम हिरण्योदक स्नात्र में स्वर्ण चूर्ण से मिश्रित जल का प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार स्वर्ण का प्रयोग पवित्र, नेत्र हितकारी,

बल, आयु एवं कान्तिवर्धक तथा स्मरणशक्तिवर्धक है। यह तेजस्वी एवं सौम्य होने के साथ-साथ रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करता है और विष विकार को दूर करता है।

यह प्राकृतिक गुणों के अनुसार मूर्ति पर भी प्रभाव डालता है। इससे प्रतिमा की तेजस्विता में वृद्धि होती है तथा मुख मुद्रा अधिक सौम्य एवं प्रभावी बनती है। यह नेत्रों की आकर्षण शक्ति बढ़ाती है जिससे दर्शनार्थियों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। भावात्मक रूप से यह कषाय प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करता है। विषनाशक होने से यदि इस मंगल विधान के अन्तर्गत किसी विषैले प्राणी का उपद्रव हो जाए तो तत्काल प्रयोग कर किसी भी अशुभ से बचा जा सकता है।

दूसरा अभिषेक

द्वितीय अभिषेक में प्रवाल (मूंगा), मोती, स्वर्ण, रजत और तांबा इन पंचरत्नों का प्रयोग किया जाता है। इनमें निम्न गुण हैं-

प्रवाल– आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार मूंगा सर्व दोषनाशक, कान्तिजनक, पुष्टिकारक एवं वीर्यवर्धक है। यह ऊपरी बाधाओं, जहर आदि से रक्षा करता है। इससे प्रतिमा के पत्थर में किसी प्रकार का दोष हो तो प्रकट हो जाता है तथा उसके तेज में वृद्धि होती है। इसके द्वारा मंगल कार्यों में उल्लास एवं अप्रमत्त दशा बढ़ती है तथा किसी प्रकार के ऊपरी उपद्रव से विघ्न उपस्थित नहीं होता।

मोती– मोती आठ प्रकार के होते हैं और नवरत्नों में से एक रत्न है। यह स्वभावत: मधुर, शीतल, दृष्टिरोग विनाशक, आयु, वीर्य एवं कान्तिवर्धक तथा विषनाशक गुणवाला है। मोती के कुछ प्रकार दरिद्र हरण में भी कार्यकारी हैं।

इस रत्न का स्पर्श होने से प्रतिमा शीतलता प्रदायक, चित्ताकर्षक एवं उग्रता विनाशक अतिशयों से युक्त बनती है। इससे वातावरण शांत, मधुर एवं मनोरम भी बनता है।

रजत– रजत एक सुप्रसिद्ध धातु है। पूर्वकाल से ही इसका प्रयोग जेवर और औषधि के रूप में होता है। चाँदी गुणों से स्निग्ध, शीतल, वात-पित्त नाशक और वन्ध्यत्व विनाशक है। इस धातु के प्रयोग से पत्थर में किसी प्रकार की रुक्षता हो तो नष्ट करता है तथा यह अभिषेककर्ता के क्रोध को शान्त कर स्मरण शक्ति को बढ़ाता है।

ताम्र— ताम्र या ताँबा का बर्तनों के रूप में सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। यह एक पवित्र धातु है। आयुर्वेद शास्त्रों के मतानुसार यह धातु मधुर, कफ-पित्त नाशक, शीतल, कृमि एवं शूल को नष्ट करने वाला है। यह हैजे के प्रभाव को नष्ट करता है। इससे निर्मित यन्त्र प्रभावशाली होते हैं।

इसके संयोग से प्रतिमा शीतल गुण वाली बनती है और प्रतिमा के भीतर विद्यमान दोष प्रकट हो जाते हैं। जिस प्रकार तांबे के यन्त्र आदि को पूजनीय स्थान में रखने मात्र से उनका प्रभाव दृष्टिगत होता है वैसे ही इस चूर्ण जल का स्नात्रकार पर भी विशेष प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार पंचरत्न मिश्रित चूर्ण जल के द्वारा अभिषेक करने से जिन प्रतिमा के प्रभाव में वृद्धि होती है तथा स्नात्रकार आदि के कई रोगों का उपशमन होता है।

तीसरा अभिषेक

तृतीय स्नात्राभिषेक में प्लक्ष, अश्वत्थ, उदुम्बर, शिरीष, वल्कल (वट) इन पांचों के मिश्रित चूर्ण को जल में मिलाकर उपयोग किया जाता है।

प्लक्ष (पिपली)— यह पीपल की जाति का एक बड़ा वृक्ष है। इसकी छाल उदरशूल नाशक एवं अग्निवर्धक है।

अश्वत्थ (पीपल)— अश्वत्थ को सामान्य भाषा में पीपल के नाम से जाना जाता है। हिन्दू धर्मशास्त्र में यह एक पूज्य वृक्ष माना गया है। यह प्राण वायु को शुद्ध करता है तथा मधुर, शीतल, कान्तिवर्धक, हृदय हितकारी और विषनाशक है। इसकी छाल रक्त संग्राहक, पौष्टिक एवं शारीरिक रोग विनाशक है।

इससे प्रतिमा का कान्तिवर्धन होता है। इन वृक्षों की छाल का प्रभाव अभिषेककर्ता श्रावक के शरीर एवं मन पर भी पड़ता है जैसे खुजली आदि समाप्त हो जाती है और वातावरण पवित्र बनता है।

उदुम्बर (गूलर)— यह औषधि शीतल, अस्थि सन्धान कारक, वर्ण विनाशक, तेजवर्धक और रत्न शोधक है। इस वृक्ष का प्रत्येक भाग उपयोगी है।

इससे प्रतिमा का तेज बढ़ता है तथा आन्तरिक दोषों का शोधन होता है।

शिरीष — आयुर्वेद शास्त्रियों के अनुसार यह वृक्ष शीतल एवं कड़वा होता है। इस वृक्ष के चूर्ण का प्रयोग विष, रुधिर एवं चर्मविकारों में लाभदायी है। यह

नेत्र रोग एवं सभी प्रकार के विष को दूर करने में विशेष सहायक है। इसके संयोग से जिनबिंब पर किसी भी प्रकार का दाग आदि हो तो मिट जाता है।

वल्कल (बड़)– इस वृक्ष के गुणों की चर्चा करते हुए वनस्पति शास्त्रियों ने कहा है कि इसका प्रत्येक भाग उपयोगी है। यह शूल विनाशक, कान्तिवर्धक एवं शारीरिक विकारों का नाश करनेवाला है। इससे पत्थर के भीतर के विकार दूर होते हैं तथा प्रतिमा के तेज में वृद्धि होती है।

इस भाँति उपर्युक्त उदुम्बर आदि वृक्षों की छाल मुख्यतः कड़वी और दोष विनाशक गुणवाली है इसलिए इन औषधियों के चूर्ण को कषाय चूर्ण कहा जाता है। इन औषधियों के प्रभाव से अभिषेककर्ता एवं दर्शकों के कषाय रंजित भाव विनष्ट हो जाते हैं।

चौथा अभिषेक

चौथे अभिषेक में आठ प्रकार की मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। मिट्टी पृथ्वी का प्रधान तत्त्व है। प्राकृतिक दृष्टि से इसमें अनेक गुण होते हैं तथा विविध प्रकार की मिट्टियाँ विभिन्न विशेषताओं से परिपूर्ण हैं।

1. हाथी के सूंड द्वारा निकाली गई मिट्टी अधिक गहराई वाली होने से दूषित वातावरण एवं बाह्य कल्मषों को दूर करती है। यह पवित्र होने से शीघ्र प्रभावी तथा बाह्य विकारों को समाप्त करती है।

2. वृषभ के सींगों द्वारा खोदकर निकाली मिट्टी भी पूर्वगुणों से युक्त होती है। वृषभ एक स्थान को बार-बार खोदता है इससे ऊपरी दूषित मिट्टी दूर हो जाती है। वृषभ वीर्य, पराक्रम एवं पुरुषार्थ का सूचक है, अतः अभिषेक कर्ता के मन को सम्यक पुरुषार्थ की प्रेरणा देता है।

3. पर्वत स्थानों की मिट्टी स्वयं में कई गुणों से युक्त है। यह अपेक्षाकृत शुद्ध और कान्तिवर्धक मानी गई है। इसमें क्षार की मात्रा कम होती है।

4. तीर्थस्थलों की मिट्टी पवित्र परमाणुओं से ओत-प्रोत एवं महाप्रभावी होती है। इस मिट्टी के प्रयोग से तीर्थ अधिष्ठायक देवी-देवता की अनुकंपा भी प्राप्त होती है।

5. दो नदियों के संगम स्थल की मिट्टी मिश्रित जल के संयोग से जिन प्रतिमाएँ अनेक विशेषताओं से युक्त होती है। दूसरे, संगम स्थानों को आदरणीय माना गया है।

6. नदी के दोनों तटों की मिट्टी चिकनी होने से शीतलता प्रदायक एवं विकार शोषक होती है। इसी तरह के गुण तालाब की मिट्टी में भी पाए जाते हैं।

इसके सिवाय मिट्टी की सुगंध आदि से वातावरण शुद्धि एवं दर्शनार्थियों के भीतर शुभ भावों की उत्पत्ति होती है।

पांचवाँ अभिषेक

जिनबिंब आदि का पांचवाँ अभिषेक पंचगव्य या पंचामृत के द्वारा किया जाता है। भारत में पंचगव्य (दूध, दही, घी, गौमूत्र एवं गोबर) को पवित्र एवं उत्तम माना गया है। लोकव्यवहार में इसे अशुद्धिहारक, पवित्रता संचारक एवं मलशोधक कहा गया है। पंचगव्य में निम्न गुण भी पाये जाते हैं–

1. **दूध–** दूध एक सुप्रसिद्ध पौष्टिक खाद्य पदार्थ है। यह मधुर स्निग्ध, पुष्टिकारक, कान्तिवर्धक, वीर्यजनक, शीतल, वात-पित्त नाशक, बुद्धिवर्धक, त्रिदोषनाशक, आयुवर्धक एवं उत्तम सुपथ्य गुणों से युक्त है। इसके संस्पर्श से जिन प्रतिमा आदि का तेज बढ़ता है तथा पत्थर की स्निग्धता बनी रहती है।

2. **दही–** आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार दही बलकारक, रुचिवर्धक, पवित्र, शीतल एवं अधिक गुणकारी है। इसके द्वारा मूर्ति की शीतलता एवं पवित्रता में वृद्धि होती है।

3. **घी–** गाय का घी बुद्धि, कान्ति और स्मरण शक्ति को बढ़ाता है। यह वीर्यवर्धक, मेधाजनक, वात-कफनाशक, श्रमनिवारक, अग्निदीपक, अमृततुल्य एवं आयुवर्धक होता है। इसके स्पर्शन से प्रतिमा की चमक एवं कान्ति बढ़ती है।

4. **गोमूत्र–** व्यवहार जगत में गोमूत्र को पवित्र, शुद्धिकारक, रोग विनाशक एवं कान्तिवर्धक माना गया है। इसमें विद्यमान विविध धातुओं से शारीरिक शक्तियों में वृद्धि होती है। इस तत्त्व में विद्यमान ताम्र, लौह, कैलशियम, फास्फोरस, अम्ल, लवण आदि के कारण यह अनेक रोगों में लाभदायी है। इसका प्रयोग नेत्र ज्योति को बढ़ाता है और अनेक रोगों का उपशमन करता है।

5. **गोबर–** यहाँ गोबर शब्द से तात्पर्य छाणे की राख से है। यह तत्त्व टी.वी., कैन्सर आदि कई घातक रोगों को शान्त करने में सक्षम है। पूर्व काल में घरों के आंगन को गोबर से लिपा जाता था, जो अपनी प्रकृति के अनुसार सर्दी में गरम और गरमी में ठण्डे रहते थे। यह एक उत्तम खाद रूप भी माना

जाता है। गाय के छाणे की राख, कोयले आदि राख की अपेक्षा अधिक हल्की एवं शुद्धिकारक होती है। इसका प्रयोग जिन बिंब को सभी दोषों से मुक्त करता है।

6. **दर्भ (कुश)—** हिन्दू धर्मशास्त्र में कुश या डाभ को एक पवित्र वस्तु के रूप में मान्यता दी गई है। मांगलिक कार्यों में इसका उपयोग रक्षा हेतु किया जाता है।

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार यह तत्त्व स्निग्ध, रजोदोषनाशक, मधुर, शीतल, रक्तविकार शोधक और लाभदायक है।

इस प्रकार पंचगव्य सम्बन्धी पदार्थों के संयुक्त जल का अभिषेक करने पर जिनबिम्बों का शुद्धिकरण एवं सर्व दोषों का निर्गमन होता है।

छठा अभिषेक

छठा अभिषेक सदौषधि स्नात्र कहलाता है। इसमें सहदेवी, बला, शतमूली, शतावरी, कुमारी, गुहा, सिंही, व्याघ्री इन आठ प्रकार की सदौषधियों से स्नात्र किया जाता है।

1. **सहदेवी—** यह औषध मीठा, शीतल, पौष्टिक, अग्निवर्धक, ज्वरकृमि एवं विषनाशक तथा नेत्र रोग में लाभदायक है।

2. **शतमूली (शतावरी)—** आयुर्वेद शास्त्र में शतावरी को शीतल, मधुर, बुद्धिवर्धक, पौष्टिक, स्निग्ध, नेत्र हितकारी, वात-पित्त-कफ नाशक, रक्तशोधक एवं अवस्था स्थापक माना गया है। इससे प्रतिमा की स्निग्धता और नेत्रों के आकर्षण में वृद्धि होती है।

3. **कुमारी (ग्वारपाठा, घीकुँवार)—** कुमारी को ग्वारपाठा (एलोवेरा) के नाम से जाना जाता है। यह स्वभावतः कड़वी, शीतल, पुष्टिकर, स्निग्ध, रक्त शोधक, नेत्र हितकर एवं विषनाशक है। इसके संयोग से प्रतिमा का स्पर्श अधिक मुलायम होता है और चमक बढ़ती है।

4. **व्याघ्री (ऐरंड)—** लोकव्यवहार में इस औषधि को एरंड कहते हैं। यह प्रकृति के अनुसार मधुर, विष दर्द नाशक, जलोदर-ज्वर-कुष्ठ आदि रोगों में लाभदायी है। इसका प्रयोग हृदय शूल, उदर शूल, एपेंडिसाइटिस आदि स्थितियों में विशेष प्रभावी होता है। इसके स्पर्शन से जिनबिंब के प्रभाव में अपेक्षाधिक वृद्धि होती है और पाषाण के विकार दूर होते हैं।

इसी तरह बला, गुहा, सिंही आदि औषधियाँ भी पूर्वोक्त गुणों से युक्त हैं। इन औषधियों के सम्मिश्रित जल द्वारा अभिषेक करने पर प्रतिमाओं की चमक एवं नेत्रों के तेज में वृद्धि होती है।

सातवाँ अभिषेक

सातवाँ स्नात्र मूलिकावर्ग की औषधियों के द्वारा किया जाता है। मूलिकावर्ग में मयूरशिखा, विरहक, अंकोल, लक्ष्मणा, शंखपुष्पी, शरपुंखा, विष्णुक्रान्ता, चक्रांका, सर्प्पाक्षी और महानीली आदि औषधियों का समावेश होता है।

1. **मयूरशिखा (मोरशिखा, मोरपंखी)**– लोकव्यवहार में मयूरशिखा को ग्रहपीड़ा निवारक एवं वशीकरण आदि में उपयोगी मानते हैं। आयुर्वेद के अनुसार यह शीतल, हल्का, पित्त-कफ-अतिसार में लाभदायक तथा त्वचारोग, ज्वर, मधुमेह आदि में फायदा करता है। इससे प्रतिमा में अशुभ शक्तियों आदि का वास नहीं होता। यह प्रतिमा की शीतलता में वृद्धि करते हुए भक्तजनों को मानसिक प्रसन्नता देता है एवं उनके ग्रह-उपद्रव आदि को भी शांत करता है।

2. **अंकोल**– निघण्टु रत्नाकर के अनुसार यह औषध कड़वा, हल्का, चिकना, गरम और कसैला होता है। यह कांतिजनक, विषनाशक, पिशाच आदि ऊपरी प्रभाव एवं ग्रह पीड़ा नाशक भी है। इसका उपयोग नजर आदि उतारने में भी किया जा सकता है। इससे जिनबिंब के तेज एवं कांति में वृद्धि होती है तथा बाह्य उपद्रव नहीं होते। यह दर्शनार्थियों की पीड़ा आदि का नाश कर शान्ति प्रदान करता है।

3. **लक्ष्मणा**– लक्ष्मणा को पुत्रदा के नाम से जाना जाता है। यह मधुर, शीतल, त्रिदोषनाशक, वन्ध्यत्व निवारक, विष एवं बाधा हारक है। इससे प्रतिमा के अतिशयों में वृद्धि होती है।

4. **शंखपुष्पी (शंखावली)**– यह औषधि शीतल, बुद्धि, कान्ति, आयु, बल एवं स्मरणशक्ति को बढ़ाने वाली, अवस्था स्थापक, मंगलकारक तथा विष-कोढ़-कृमि का नाश करने वाली मानी गई है। इससे प्रतिमा का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता है।

5. **शरपुंखा (सरपंखा)**– आयुर्वेद शास्त्रज्ञों के मत से शरपुंखा कड़वी, गरम, कसैली और हल्की होती है। यह रक्तविकार, हृदयरोग, ज्वर, कफ, कुष्ट

एवं विष का नाश करने में समर्थ है। इसके माध्यम से जिनबिम्ब के ऊपर वातावरण जनित दुष्प्रभाव समाप्त हो जाता है।

6. **विष्णुक्रांता (अपराजिता)–** अपराजिता नाम की यह वनस्पति शीतल, कड़वी, बुद्धिदायक, नेत्र हितकारी, विषनाशक और मस्तकशूल में लाभदायी है। इससे भूत-प्रेत की बाधा आदि का भी नाश होता है।

7 **चक्रांका (नागरमोथा)–** नागरमोथा के नाम से प्रसिद्ध यह औषधि प्राकृतिक गुणों से शीतल, कड़वी, कफ-पित्त नाशक, कांतिवर्धक एवं श्रम निवारक है। यह वायु विकार (गैस), मृगी, बिच्छू का जहर, अरुचि, बवासिर आदि में भी लाभकारी है। इससे प्रतिमा की कांति बढ़ती है जिसके प्रभाव से दर्शनार्थियों की थकान दूर होती है।

8. **सर्प्याक्षी (सरहटी)**– वनौषधि चंद्रोदय के अनुसार यह गरम, कड़वी, कृमिनाशक और चूहे, बिच्छू एवं सर्प विष में लाभकारी है। इससे मंगलकार्यों में विघ्न आने से रक्षा होती है।

9. **महानील–** यह औषधि अनेक गुणों से युक्त है।

इस प्रकार उक्त सभी औषधियाँ मुख्य रूप से विषहरण करने वाली, ऊपरी बाधाओं को नष्ट करने वाली तथा प्राकृतिक विकारों को दूर करने वाली मानी गई हैं। इससे महोत्सव के दौरान अनेक प्रकार के अमंगल से भी रक्षा होती है।

आठवाँ अभिषेक

यह स्नात्र प्रथम अष्टकवर्ग की औषधियों से किया जाता है। इसमें कुष्ट, प्रियंगु, वचा, रोध्र, उशीर, देवदारु, दुर्वा, मधुयष्टिका, ऋद्धि एवं वृद्धि औषधियों का समावेश होता है। इनमें निम्नोक्त गुण पाए जाते हैं।

1. **कुष्ट–** कुष्ट एक उच्च रासायनिक औषधि है। यह कड़वी, तीक्ष्ण सुगंध से युक्त, रक्तविकार शोधक, वात-कफ नाशक है। इससे सिरदर्द, लकवा, खाँसी, चक्षुरोग एवं विष निवारण किया जा सकता है। यह वातावरण को मनोरम बनाती है।

2. **प्रियंगु–** प्रियंगु सौंदर्यवर्धक औषधि है। यह कड़वी, शीतल ज्वरनाशक, चर्मरोग एवं कुष्ट आदि में लाभदायी है। इससे प्रतिमा के सौंदर्य आदि में वृद्धि होती है।

3. **वचा**— यह कण्ठ हितकारी, स्मरण शक्ति वर्धक, भूत-उन्माद आदि की नाशक तथा अनेक गुणों से युक्त है। इससे प्रतिमा पर बाह्य शक्तियों का प्रभाव नहीं होता।

4. **उशीर**— यह शीतल, श्रमनिवारक एवं सुगंधित औषधि है। इसके प्रयोग से वातावरण शांत एवं शीतल बनता है।

5. **देवदार**— आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार यह वनस्पति हिचकी, खुजली, चर्म रोग आदि में लाभदायी है। इस औषधि के स्पर्श से पाषाणजन्य विकार दूर होते हैं, प्रतिमा के तेज में अभिवृद्धि होती है तथा भूत-प्रेत आदि के संकट टलते हैं।

6. **दूर्वा (दूब)**— दूर्वा एक मशहूर घास है जो भारत में सर्वत्र पाई जाती है। यह शीतल, तृप्तिदायक, श्रम एवं कफ नाशक तथा ग्रहपीड़ा, भूतबाधा, रक्तप्रदर आदि के निवारण में उपयोगी है। इससे वातावरण में शीतलता एवं प्रसन्नता का संचार होता है।

7. **मधुयष्टिका (मुलेठी)**— यह वनस्पति मधुर, पौष्टिक, शीतल, नेत्र हितकारी, वर्ण को सुंदर करने वाली और स्वर को निर्मल करने वाली मानी गई है। इससे प्रतिमा में निखार आता है।

8. **ऋद्धि**— यह पुष्टिकारक, निर्मल एवं शीतल गुणकारी है। इसकी सुगंध से जिनालय का वातावरण पवित्र बनता है।

इस प्रकार उक्त आठ औषधियों के विकीर्ण परमाणुओं से दर्शकों के मन में शान्ति एवं समाधि का अनुभव होता है।

नौवाँ अभिषेक— यह अभिषेक द्वितीय अष्टक वर्ग की औषधियों से किया जाता है। इस औषधि वर्ग में मेद, महामेद, कंकोल, क्षीर-कंकोल, जीवक, ऋषभक, नखी, महानखी नाम की औषधियों का प्रयोग करते हैं।

1. **मेद**— यह मधुर, शीतल, स्वादिष्ट, वीर्य एवं धातुवर्धक है तथा वात-पित्त, रक्त आदि के विकारों का शमन करती है।

2. **महामेद**— यह अष्ट वर्ग की एक सुप्रसिद्ध वनस्पति है। राजनिघंटु के मतानुसार यह शीतल, मधुर, वीर्यवर्धक तथा रक्त-पित्त, ज्वर आदि का नाश करने वाली मानी गई है।

3. **कंकोल**— इस औषधि का प्रयोग अवस्थास्थापक, बलकारक एवं

जीवनप्रद माना जाता है। इस औषधि की महक से दूषित वातावरण पवित्र बनता है।

4. **जीवक**— यह औषधि बलकारक और दाहज्वरनाशक है।

5. **ऋषभक**— इस औषधि को बलदायक, पुष्टिकारक, मधुर एवं शीतल माना गया है।

6. **नखी एवं महानखी**— दोनों औषधियाँ भूत विद्रावक, सुगंधदायक और बुद्धि की अभिवर्धक कही गई हैं।

7. **ऋद्धि**— यह मधुर, मेधाजनक, शीतल और प्राणदायक है।

इस प्रकार द्वितीय अष्टक वर्ग की औषधियों के प्रयोग से जिनालय का संपूर्ण वातावरण सुगंधित, शीतल एवं रोगमुक्त बनता है। इससे व्यन्तरादि उपद्रवों का भी निराकरण हो जाता है।

दसवाँ अभिषेक

यह अभिषेक सर्वौषधि वर्ग से किया जाता है। इस सर्वौषधि में हरिद्रा, वचा, सौंफ, वालक, मोथ, ग्रन्थिपर्णक, प्रियंगु, मुखवास, कर्चूरक, कुष्ट, इलायची, तज, तमालपत्र, नागकेसर, लवंग, कंकोल, जातिफल, जातिपत्रिका, नख, चन्दन, सिल्हक आदि चूर्णों का मिश्रण करते हैं।

1. **हरिद्रा (हल्दी)**— आयुर्वेदिक शास्त्र के अनुसार हल्दी चरपरी, कड़वी एवं सौन्दर्यवर्धक है। इससे प्रतिमा के तेज में निखार आता है।

2. **मोथ (मोथा)**— यह वनस्पति शीतल, कड़वी, पाचक, कृमिनाशक तथा तृषा, ज्वर आदि के निवारण में लाभदायक है। इस औषधि चूर्ण की सुगंध से वातावरण में अहिंसादि भावों का प्रसरण होता है।

3. **ग्रन्थिपर्णक**— यह औषधि कड़वी, बलदायक, कामोत्तेजक, हड्डी जोड़ने में लाभकारी और कांतिजनक है। इसके संयोग से प्रतिमा में अपूर्व कांति का वर्धन होता है।

4. **कर्चुरक (कचूर)**— आयुर्वेद के अनुसार यह औषध कड़वा, सुगंधित और खांसी, श्वास, वायु, क्षय रोग आदि को दूर करने वाला माना गया है।

5. **इलायची**— यह शीतल, तीक्ष्ण, कड़वी, सुगंधित और आफरा दूर करने में समर्थ है। इससे वातावरण सुगंधित बनता है।

6. **तमालपत्र (तेजपा)**— इस औषधि के प्रयोग द्वारा किसी भी प्रकार के अमांगलिक कार्य से बचा जा सकता है।

7. नागकेसर (नागचम्पा)– इस औषधि के प्रयोग से जिनालय के आस-पास का वातावरण निर्मल होता है।

8. लवंग (लौंग)– भाव प्रकाश के अनुसार लौंग कड़वी, नेत्रों के लिए हितकारी, शीतल, रुचिकारक, तृषा एवं शूल आदि को दूर करने वाली वनस्पति है। इससे प्रतिमा की शीतलता एवं तेज आदि में वृद्धि होती है।

9. जातिफल (जायफल)– जायफल कड़वा, तीक्ष्ण, गरम, हल्का तथा दुर्गंध, खांसी, वमन आदि को दूर करने में समर्थ है। इससे वातावरण की अशुद्धता का हरण होता है।

10. जातिपत्रिका (जायपत्ती)– इस औषध के प्रयोग से भी प्रतिमा के तेज एवं कांति में वृद्धि होती है।

11. चन्दन– चंदन विश्वभर में अपनी सुगंध एवं श्रेष्ठता के लिए प्रसिद्ध है। यह मधुर, शीतल, मेधावर्धक, रक्तशोधक, हृदय हितकर, पीड़ानाशक तथा रक्त विकार, त्वचा विकार एवं मानसिक दुर्बलता को हरण करने में सक्षम है। इससे प्रतिमा का कान्तिवर्धन होता है और वातावरण सुरम्य बनता है।

12. सिल्हक (शिलारस)– सिल्हक नाम की औषध कान्तिवर्धक, स्वादिष्ट, वीर्यवर्धक और सुगंधित होता है। इससे भूतबाधा, ज्वर, खुजली आदि के उपद्रवों का शमन किया जा सकता है।

ग्यारहवाँ अभिषेक

ग्यारहवाँ अभिषेक कुसुम स्नात्र कहलाता है। इस अभिषेक में पुष्प मिश्रित जल का प्रयोग करते हैं। पुष्प स्वभाव से ही कोमल, सुगंधित, आनंद प्रदायक, भावों को निर्मल करनेवाला एवं भावोल्लास को बढ़ाने वाला होता है। इससे प्रतिमा का आकर्षण गुण बढ़ता है तथा दर्शनार्थी को आन्तरिक आनंद एवं संतोष की प्राप्ति होती है।

बारहवाँ अभिषेक

इस अभिषेक को गन्ध स्नात्र कहते हैं। यह अभिषेक सिल्हक, कुष्ट, सुरमांसि, चंदन, अगुरु, कर्पूर आदि गन्धवर्ग की औषधियों के चूर्ण से किया जाता है। इनमें से कुछ औषधियों की चर्चा पूर्व में कर चुके हैं। शेष औषधियों के गुण इस प्रकार हैं–

1. **अगुरु (अगर)**– आयुर्वेद के मतानुसार यह औषध शीत प्रशामक,

कांतिवर्धक, उज्ज्वलता कारक, मंगल एवं सुगंधदायक है। इससे वातावरण शांत एवं मनमोहक बनता है।

2. **कर्पूर (कपूर)**– कपूर एक मंगलकारी, दुर्गंधनाशक, नेत्र हितकारी, मधुर और हल्की वनस्पति है। इससे वातावरण विकार रहित होता है।

तेरहवाँ अभिषेक

तेरहवाँ अभिषेक वास स्नात्र का किया जाता है। वास एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य है। यह मुख्यतया दुर्गंध का निवारण कर मस्तक, नेत्र, स्वरभंग आदि से सम्बन्धित रोगों का शमन करता है। इससे भी प्रतिमा के तेज में निखार आता है।

चौदहवाँ अभिषेक

चौदहवाँ अभिषेक चन्दन स्नात्र कहलाता है। इसमें चन्दन मिश्रित जल का प्रयोग करते हैं। इसके प्रयोग से प्रतिमा की कलुषिता एवं दुर्गंधमय वातावरण दूर होता है।

पन्द्रहवाँ अभिषेक

पन्द्रहवाँ अभिषेक कुंकुम स्नात्र कहलाता है। कुंकुम (रोली) सुगंध देता है, विकारों का नाश करता है और वर्ण को उज्ज्वल करता है।

सोलहवाँ अभिषेक

सोलहवाँ अभिषेक तीर्थोदक नाम से जाना जाता है। इसमें विविध तीर्थों के जल द्वारा अभिषेक करते हैं। तीर्थ जलों को पवित्र, शुद्ध एवं कल्याणकारी माना गया है। विविध तीर्थों के जल का उपयोग करने से जिनालय में एक पवित्र ऊर्जा का निर्माण होता है।

सतरहवाँ अभिषेक

सतरहवाँ अभिषेक कर्पूर स्नात्र कहलाता है। इस अभिषेक जल में चन्द्र और बर्फ के समान सफेद एवं उत्तम गंधवाले कपूर को पवित्र तीर्थ जलों में मिश्रित किया जाता है इसके द्वारा जिन प्रतिमा की सुगंध एवं शीतलता में वृद्धि होती है।

अठारहवाँ अभिषेक

यह अभिषेक 108 शुद्ध जलों के द्वारा किया जाता है। इस अभिषेक का

मुख्य कारण यह है कि तीर्थंकरों के जन्म के पश्चात इन्द्रादि देव-देवीगण प्रभु का 1008 कलश से अभिषेक करते हैं। उसी के अनुकरणार्थ अंतिम अभिषेक 108 कलश द्वारा किया जाता है। इस अभिषेक का दूसरा प्रयोजन यह है कि इससे पूर्व अभिषेक में प्रयुक्त की गई औषधियों का अंश मात्र भी जिनबिंब पर रह जाए तो प्रतिमा के खण्डित आदि होने की संभावना बन सकती है, क्योंकि कई औषधियाँ क्षार गुण वाली भी होती हैं, जिसका प्रयोग कुछ समय के लिए ही लाभकारी है।

यहाँ ध्यातव्य है कि 18 अभिषेक निर्दिष्ट क्रम के अनुसार ही करने चाहिए, क्योंकि प्रत्येक औषधि वर्ग के अपने विशिष्ट लक्षण हैं। पूर्वाचार्यों ने यह क्रम अनेक दृष्टियों को केन्द्र में रखकर निश्चित किया है, अत: अठारह अभिषेक की क्रम विधि भी महत्वपूर्ण है।

तुलना– अठारह अभिषेक नवीन बिम्बों के शुद्धिकरण एवं आत्मविशोधन के उद्देश्य से किया जाने वाला अद्वितीय अनुष्ठान है।

यदि इस विधि के ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पक्ष का अध्ययन किया जाए तो कई नवीन तथ्य प्रकट होते हैं।

यदि श्वेताम्बर परम्परा के प्रतिष्ठा कल्पों अथवा आगम ग्रन्थों का अवलोकन किया जाए तो आगम साहित्य में लगभग इस विषयक कोई चर्चा नहीं है। प्रतिष्ठा कल्पों के सम्बन्ध में कहा जाए तो सर्वप्रथम निर्वाणकलिका (पृ.31-32) में अभिषेक की सामग्री मात्र का उल्लेख मिलता है। तदनन्तर अभिषेक की एक सुव्यवस्थित विधि श्रीचन्द्रसूरि की प्रतिष्ठा पद्धति एवं उसके पश्चात विधिमार्गप्रपा में प्राप्त होती है। उसके बाद आचार दिनकर, गुणरत्नसूरि प्रतिष्ठाकल्प, सकलचन्द्र प्रतिष्ठाकल्प इत्यादि में देखी जाती है।

इस वर्णन से सिद्ध होता है कि 18 अभिषेकों की क्रमबद्ध विधि 13 वीं शती के लगभग अस्तित्व में आई होगी। इससे पूर्व यह अनुष्ठान सामान्य रूप से अथवा भिन्न तरीकों से करवाया जाता होगा, ऐसा अनुमान होता है।

यदि इस विषय में तत्सम्बन्धी ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो उनमें नाम, क्रम, संख्या आदि को लेकर किंचित भिन्नताएँ देखी जाती हैं जिसका मुख्य कारण परम्पराओं की भिन्न-भिन्न मान्यताएँ कहा जा सकता है।

नाम एवं क्रम की दृष्टि से– सुबोधासामाचारी[10] एवं विधिमार्गप्रपा[11] में 18 अभिषेकों के नाम एवं क्रम इस प्रकार हैं–

1. हिरण्य स्नात्र 2. पंचरत्न 3. कषाय 4. मंगल मृत्तिका 5. पंचगव्य 6. सदौषधि 7. मूलिका वर्ग 8. प्रथम अष्टक वर्ग 9. द्वितीय अष्टक वर्ग 10. सर्वौषधि 11. कुसुम 12. गन्ध 13. वास 14. चन्दन 15. कुंकुम 16. तीर्थोदक 17. कर्पूर 18. पुष्पांजलि क्षेपण।

• आचार दिनकर[12] में 21 अभिषेकों का वर्णन प्राप्त होता है। उनके नाम एवं क्रम निम्न प्रकार से हैं–

1. हिरण्योदक स्नात्र 2. पंचरत्न 3. कषाय 4. मंगलमृत्तिका 5. पंचगव्य 6. सदौषधि 7. मूलिका वर्ग 8. प्रथम अष्टक वर्ग 9. द्वितीय अष्टक वर्ग 10. सर्वौषधि 11. सदौषधि 12. मूलिका वर्ग 13. सदौषधि 14. कुसुम 15. गन्ध 16. वास 17. चंदन 18. कुंकुम 19. तीर्थोदक 20. कर्पूर 21. एक सौ आठ मिट्टी के कलशों के जल द्वारा।

• गणि सकलचन्द्रकृत प्रतिष्ठा कल्प[13] में 18 अभिषेकों के नाम-क्रम निम्न हैं–

1. हिरण्योदक 2. पंचरत्न 3. कषाय 4. मंगलमृत्तिका 5. सदौषधि 6. प्रथम अष्टक वर्ग 7. द्वितीय अष्टक वर्ग 8. सर्वौषधि 9. पंचगण्य 10. सुगंधौषधि 11. पुष्प 12. गन्ध 13. वास 14. चन्दन 15. कुंकुम 16. तीर्थोदक 17. कर्पूर 18. केशर-चन्दन-पुष्प एवं कुसुमाञ्जलि।

• परवर्ती कल्याण कलिका में एवं जिनबिंब प्रवेश प्रतिष्ठा विधि समुच्चय आदि संकलित कृतियों में 18 अभिषेकों की विधि श्रीचन्द्रसूरि एवं जिनप्रभसूरि की प्रतिष्ठा पद्धति के अनुसार कही गई है। वर्तमान परम्परा की संकलित प्रतियों में यह विधि गणि सकलचन्द्र के मतानुसार दी गई है। आजकल के विधिकारक प्रायः गणि सकलचन्द्र की प्रतिष्ठा पद्धति के आधार पर यह अनुष्ठान सम्पन्न करते हैं।

परमार्थतः यह अभिषेक विधि सुबोधासामाचारी के अनुसार करवायी जानी चाहिए।

कलश संख्या की दृष्टि से– सुबोधासामाचारी, आचारदिनकर, विधिमार्गप्रपा आदि पूर्ववर्ती प्रतिष्ठा कल्पों में स्नात्रकार एवं कलशों की एक

निश्चित संख्या कही गई है। इनमें स्नात्रकार और कलश दोनों के लिए चार-चार की संख्या का निर्देश दिया गया है, जो संभवत: एक जिनबिंब की अपेक्षा से है, क्योंकि एक प्रतिमा के सुव्यवस्थित अभिषेक हेतु चार स्नात्रकारों एवं चार कलश परिमाण जल का होना आवश्यक प्रतीत होता है। किन्तु वर्तमान संकलित प्रतियों में इस सम्बन्धी संख्या का कोई निर्धारण नहीं है। आजकल प्राय: जितनी मूर्तियाँ होती हैं उतने अथवा उससे दुगुनी संख्या में स्नात्रकार होते हैं।

पंचगव्य औषधि की दृष्टि से— सभी प्रतिष्ठा कल्पकारों ने गौमूत्र, गोबर, दूध, दही और घृत-इन पाँच द्रव्यों को पंचगव्य के रूप में स्वीकार किया है जबकि गणि सकलचन्द्र ने दूध, दही, मक्खन, घृत और छाछ- इन पाँच के समूह को पंचगव्य कहा है जो यथार्थ नहीं है क्योंकि इस पंचगव्य में मक्खन और घी तथा दही और छाछ भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं, अपितु एक ही पदार्थ की अवस्था के दो भिन्न नाम हैं।

वर्तमान में दूध, दही, घृत, शक्कर और पानी- इन पाँच को पंचामृत के रूप में मानते हैं।

श्लोक संख्या की दृष्टि से— श्री चन्द्रसूरि, जिनप्रभसूरि, वर्धमानसूरि आदि ने प्रत्येक अभिषेक हेतु एक श्लोक का उल्लेख किया है और उनमें प्राय: साम्य है, जबकि परवर्ती सकलचन्द्र गणि आदि के प्रतिष्ठाकल्पों में प्रत्येक अभिषेक के लिए प्राय: दो श्लोक बोलने का निर्देश है। उनमें एक श्लोक पूर्ववर्ती प्रतिष्ठा कल्पों से सम्बन्धित है तथा दूसरा भिन्न है। वर्तमान की संकलित कृतियों में दो श्लोक वाली प्रतियाँ अधिक हैं और आजकल लगभग इसी विधि को अपनाया जा रहा है।

ध्यातव्य है कि श्लोक संख्या में वृद्धि होने से कुछ औषधियों के अतिरिक्त नाम भी प्राप्त होते हैं।

चन्द्र-सूर्यदर्शन की दृष्टि से— पूर्ववर्ती प्रतिष्ठाकल्पों के अनुसार 15 अभिषेक होने के पश्चात जिन बिम्बों को दर्पण दिखाना चाहिए, किन्तु वर्तमान परम्परा में सूर्य के दर्शन करवाए जाते हैं ऐसा क्यों?

इसका मुख्य कारण यह है कि जब तीर्थंकर पुरुषों का जन्म होता है तब कुल परम्परा के अनुसार उन्हें तीसरे दिन चन्द्र-सूर्य का दर्शन करवाते हैं। कल्पसूत्र आदि आगमों में इस विषयक पाठ भी प्राप्त होता है जैसे "तइये दिवसे

चंदसूर दंसणयं करिंति''। इस आगमिक परम्परा का निर्वहन पंचकल्याणक महोत्सव के अन्तर्गत सम्पन्न करते हुए उस समय 18 अभिषेक एवं चन्द्र-सूर्य दर्शन की विधियाँ भी की जाती हैं तथा इसी आचार के अनुकरणार्थ परवर्ती आचार्यों ने चंद्र-सूर्य दर्शन की परम्परा को अभिषेक के साथ जोड़ दिया है। अत: जन्म कल्याणक महोत्सव के समय यह विधि उचित मालूम होती है। प्रतिष्ठा के अतिरिक्त काल में 18 अभिषेक किया जाए तो सूर्य-चन्द्र के दर्शन करवाना अनिवार्य नहीं है किन्तु मूल विधि का अनुकरण करते हुए दर्पण अवश्य दिखाना चाहिए।

108 अभिषेक का दृष्टि से– अधिकांश प्रतिष्ठाकल्पों के अनुसार 18 अभिषेक के अन्त में 108 शुद्ध जल के कलशों से भी अभिषेक करना चाहिए। किन्तु सकलचन्द्र गणि के प्रतिष्ठाकल्प में 108 अभिषेक का उल्लेख नहीं है इसीलिए वर्तमान संकलित कृतियों में भी इसका सूचन नहीं किया गया है, क्योंकि आजकल प्रतिष्ठा संबंधी विधि-विधान प्राय: सकलचन्द्रगणि कृत प्रतिष्ठा कल्प के आधार पर करवाये जाते हैं।

इसी तरह आह्वान आदि विधियों में भी किंचित भेद हैं।

वर्तमान की जनता प्राय: अठारह अभिषेक के नाम से परिचित है। इसका मुख्य कारण है आज-कल बढ़ते पूजा-अनुष्ठान एवं इसी के साथ बढ़ता अठारह अभिषेक का महत्त्व। वर्तमान में बढ़ रहा वातावरण प्रदूषण, मन्दिरों में बढ़ती आशातनाएँ एवं आधुनिक साधनों का प्रयोग तथा पूजा सामग्री की गुणवत्ता (Quality) में आती गिरावट एवं कृत्रिमता ने मन्दिरों के वातावरण और प्रतिमा के प्रभाव दोनों को दूषित कर दिया है। अत: मन्दिरों के शुद्धिकरण एवं प्रभाव वर्धन हेतु अठारह अभिषेक की क्रिया प्राय: प्रतिवर्ष करवाई जाती है। यदि वर्तमान प्रचलित अठारह अभिषेक के स्वरूप के विषय में चिन्तन किया जाए तो यह कह सकते हैं कि क्रिया तो होती है पर क्रिया करते हुए जो भाव होने चाहिए, परमात्मा के महोत्सव मनाने की जो खुमारी होनी चाहिए वह लुप्त सी हो रही है। इसी कारण विधि सम्पन्न करने के बाद भी यथोचित प्रभाव देखा नहीं जाता। इन्हीं सब पक्षों को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में अठारह अभिषेक सम्बन्धी समग्र पहलूओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। ताकि श्रावकजन इनका अभिप्रायार्थ, वैशिष्ट्य एवं रहस्य समझ सकें एवं अपने आप को उसी प्रकार के भावों से भावित कर सकें। इसी के साथ वे अठारह अभिषेक

से जुड़े अनेक अन्य तथ्यों, उसके मूल स्वरूप आदि को भी समझ पाएं एवं अपना आत्म-कल्याण साध सकें ऐसी ही अंतरभावना है।

सन्दर्भ-सूची

1. *(क) त्रिलोकसार, आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, गा. 973-977*
   (ख) जम्बूदीव संगहो, 5/113
2. *दश भक्त्यादि संग्रह, नंदीश्वर भक्ति, श्लो. 15-16*
3. *(क) वसुनन्दी श्रावकाचार, श्लो. ५०२*
   (ख) त्रिलोकसार, 552
4. *(क) आचार्य समन्तभद्र, वासुपूज्य स्तवन, 58*
   (ख) आचार्य देवसेन, सावयधम्मदोहा, 207
5. *इन्द्र 1008 कलशों से अभिषेक करता है जिसका प्रत्येक कलश 8 मील के मुँह वाला, 32 मील चौड़ा और 64 मील गहरा होता है।*
6. *पद्मपुराण, 32/166*
7. *प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, 20/196*
8. *(क) व्रतोद्योतन श्रावकाचार, 198*
   (ख) उपासकाध्ययन, 10/13
9. *रत्नकरण्डक श्रावकाचार, 1/21*
10. *सुबोधा सामाचारी, पृ. 40-42*
11. *विधिमार्गप्रपा, पृ. 291-298*
12. *आचारदिनकर, पृ. 151-154*
13. *प्रतिष्ठाकल्प, पृ. 94-108*

●

अध्याय-13

प्रतिष्ठा सम्बन्धी मुख्य विधियों का बहुपक्षीय अध्ययन

प्रतिष्ठा एक बृहद् अनुष्ठान है। इसके अन्तर्गत अनेकशः छोटे-छोटे विधानों का समावेश हो जाता है। उन सभी क्रिया विधानों को जब सम्यक समझ, शास्त्रोक्ति विधि एवं भावपूर्वक सम्पन्न किया जाता है तब ही एक सफल प्रतिष्ठा अनुष्ठान सम्पन्न होता है। इन आंशिक विधानों के अन्तर्भूत घटकों का प्रकृति पर अद्भुत असर देखा जाता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में प्रतिष्ठा सम्बन्धी कई विधियों के भिन्न-भिन्न पक्षों को उजागर किया जा रहा है जिससे जिज्ञासु आराधक वर्ग प्रतिष्ठा जैसे महत्त्वपूर्ण विधानों की महत्ता को समझकर उन्हें त्रियोग की शुद्धिपूर्वक सम्पन्न कर सकें।

कुछ मुख्य विधानों का स्वरूप इस प्रकार है–

अधिवासना विधि का मार्मिक स्वरूप

प्रतिष्ठा से सम्बन्धित कृत्यों में एक अधिवासना विधि होती है। अधिवासना का शाब्दिक अर्थ है– सुगंध से वासित करना, संस्कारित करना। यहाँ अधिवासना से अभिप्राय चंदन, केसर, पुष्प आदि द्रव्यों को मंत्रों से अभिमंत्रित करना है। इसी तरह जिनबिम्ब आदि को तद्योग्य मंत्रों से अभिमंत्रित करना अधिवासना कहलाता है तथा अभिमंत्रित वस्तु अधिवासित कही जाती है। जिन प्रतिमा में वीतरागता आदि गुणों का संचार करने के लिए अधिवासना विधि करते हैं। इसे प्रतिष्ठा का पूर्व चरण भी कह सकते हैं।

अधिवासना होने के पश्चात ही प्रतिमा को निश्चित स्थान पर प्रतिष्ठित किया जाता है। इस क्रिया के द्वारा प्रतिष्ठाचार्य के साधना बल का बिम्ब में संक्रमण होता है जिससे प्रतिमा चमत्कारी बनती है।

अधिवासना कब और कहाँ की जाए?– अधिवासना विधान प्रतिष्ठा के शुभ दिन अथवा प्रतिष्ठा की पूर्व रात्रि में किया जाता है। यह उत्तम अनुष्ठान शान्त एवं विशुद्ध वातावरण में करने से अधिक लाभदायी होता है।

यह अधिवासना विधि प्रतिष्ठा मंडप या रंग मंडप में जिनप्रतिमा पर की जाती है तथा इसे प्रतिष्ठाचार्य, व्रतधारी श्रावक, स्नात्रकार, विधिकारक एवं सुहागिन स्त्रियाँ मिलकर करते हैं।

अधिवासना में प्रयुक्त मुद्राएँ– इस क्रिया में अधिवासना मंत्र या सौभाग्य मंत्र बोलते हुए विलेपन पूजा करते हैं। फिर वास निक्षेप आदि करने के पश्चात कपाट मुद्रा और जिनमुद्रा के द्वारा शक्ति जागृत की जाती है। उसके बाद सूरिमंत्र अथवा वर्धमान विद्या से उनका न्यास किया जाता है। इसी क्रम में सौभाग्य मुद्रा का प्रयोग पृथ्वी आदि तत्त्वों के न्यास के लिए किया जाता है।

नूतन जिनबिम्बों के हाथ में मींढ़ल, मेनफल (कंकण डोरा) का बंधन क्यों?– अधिवासना करते समय प्रतिष्ठाचार्य नूतन बिम्बों के दाहिने हाथ में कंकण डोरा एवं जवमाला बाँधते हैं। यह मुख्यतया लोक व्यवहार में प्रयुक्त मांगलिक प्रक्रियाओं का अनुकरण लगता है। इस विधि का प्रवेश परिस्थिति सापेक्ष अन्य नेकाचारों के साथ हुआ प्रतीत होता है। विवाह आदि प्रसंगों में वर-वधू के हाथ में भी कंकण डोरा बांधते हैं जो उन्हें बुरी नजर से बचाता है। शारीरिक या सर्प आदि का उपद्रव हो जाये तो हाथ में बंधी औषधियाँ विष नाशक होने से उनका तत्काल प्रयोग कर स्वस्थता प्रदान की जा सकती है। यह वर-वधु के पारस्परिक बंधन का भी सूचक है।

जिस प्रकार विवाहादि के प्रसंग पर वर-वधु की रक्षा के लिए कई यत्न किए जाते हैं वैसे ही प्रतिष्ठा के अवसर पर नूतन प्रतिमाओं के संरक्षणार्थ कंकण डोरा आदि विधियाँ सम्पन्न करते हैं। कंकण डोरे के द्वारा जिनबिम्बों को आसुरी शक्तियों एवं बुरी ताकतों से बचाया जाता है। यह क्रिया केवलज्ञान कल्याणक अनुष्ठान के समय की जाती है जो अरिहंत परमात्मा का मुक्ति रमणी से जुड़ने का सूचक है। यह डोरा भूत-ग्रह आदि की पीड़ा से भी रक्षा करता है।

यह कंकण डोरा प्रतिष्ठा की निर्विघ्न पूर्णाहुति एवं मूर्तियों में संचारित शक्ति के स्थिरीकरणार्थ भी बांधा जाता है।

जिनबिम्ब के समीप किन-किनकी स्थापना की जाए?– अधिवासना के पश्चात् जिनबिम्ब के चारों तरफ चार श्वेत कलशों की स्थापना करनी चाहिए। इन कलशों को जल से आपूरित कर उसमें, अक्षत, सुवर्ण, चाँदी और पंचरत्न आदि डाले जाते हैं। फिर कलश के ऊपर चंदन का विलेपन करके कंठ में पुष्पमाला पहनाकर उन्हें चौगुने कच्चे धागे से बांधना चाहिए।

तदनन्तर नवीन बिम्बों के समक्ष घी, गुड़, गन्ना सहित आटे के बनाए हुए चार दीपक स्थापित किए जाने चाहिए तथा उनके निकट सात सकोरों में मिष्ठान आदि रखे जाने चाहिए।

अधिवासना के समय क्या भावना करें– अधिवासना सम्बन्धी क्रिया करते हुए आचार्य अपनी शुभ शक्तियों को जिनबिम्ब में संचारित करते हैं। आचार्य जिन भावों से अधिवासना करते हैं दर्शनार्थियों के अन्तर्मन में वैसे ही विचार उत्पन्न होते हैं, इसलिए उस समय प्रतिष्ठाचार्य को उत्कृष्ट शुभधारा में रहना चाहिए।

इस विधान से जुड़े सभी लोगों को मंगल, कल्याण एवं श्रेयस की भावना करनी चाहिए।

मींढल आदि बांधते समय अशुभ शक्तियों का प्रभाव निस्तेज हो रहा है एवं शुभ परमाणुओं का जिनबिम्ब आदि में संचरण हो रहा है ऐसे भाव करने चाहिए।

अधिवासना सम्बन्धी लोक धारणाएँ– कई लोग मानते हैं कि अधिवासना के समय प्रतिमा में परमात्मा के शुद्ध अध्यवसायों अथवा प्राणों की स्थापना की जाती है, परन्तु यहाँ पर प्रतिष्ठाचार्य की साधना शक्ति का आरोपण किया जाता है।

जिनबिम्बों के हाथ में बांधा गया कंकण डोरा रक्षा सूत्र की भाँति कार्य करता है ऐसी धारणा है।

परमात्मा के समक्ष उत्तम द्रव्यों का अर्पण करने से एवं दीपक आदि प्रज्ज्वलित करने से जिनबिम्ब का प्रभाव बढ़ता है ऐसा मानते हैं। जबकि पुष्पादि अर्पण एवं दीपक प्रज्वलन आदि द्रव्य पूजा का एक प्रकार है। जिन प्रतिमा का अलौकिक तेज तो दर्शनार्थियों के निर्मल विचार एवं जिनालय के पवित्र वातावरण आदि से बढ़ता है।

जवारारोपण विधि का प्राकृतिक स्वरूप

मिट्टी के सकोरों में जौ आदि सप्त धान्यों का वपन करना जवारारोपण कहलाता है। प्रतिष्ठा प्रसंग की शुभता-अशुभता एवं जघन्योत्कृष्टता का संकेत पाने हेतु यह विधि की जाती है। इसी के साथ जिस तरह वपन किया गया बीज क्रमशः बढ़ता है वैसे ही यह प्रतिष्ठा श्रीसंघ के लिए उत्तरोत्तर कल्याणकारी बने, इस उद्देश्य से भी जवारारोपण किया जाता है। जवादि धान्यों का रोपण चार गति का क्षय करने के लिए चार कोनों में तथा सात भय को दूर करने के लिए सात-सात ऐसे कुल 28 सकोरों में किया जाता है।

जवारारोपण के माध्यम से जिनालय के बाह्याभ्यन्तर विकास का संकेत प्राप्त होता है। जौ आदि धान्य प्रतिष्ठा के दिन तक जितनी मात्रा में बढ़ते हैं प्रतिष्ठा उतनी ही अधिक सफल मानी जाती है। इस प्रकार यह विधान प्रतिष्ठा की सफलता का द्योतक है।

जवारारोपण किस दिन और कहाँ करना चाहिए?

जवारारोपण एक मंगल अनुष्ठान होने से प्रतिष्ठा-पूजा आदि मंगल कार्यों में प्रायः प्रथम दिन किया जाता है।

कुम्भस्थापना, दीपकस्थापना और जवारारोपण ये तीनों विधान लग्नादि की शुद्धि देखकर एक ही दिन किये जाते हैं। वर्तमान में उक्त तीनों विधियाँ महोत्सव के प्रारम्भ में सम्पन्न की जाती हैं।

जवारारोपण जिनालय के सभा मण्डप में वेदिका के चारों ओर अथवा वेदिका के सम्मुख करते हैं। यदि पूजा आदि के लिए पृथक से मंडप की व्यवस्था हो तो वहाँ भी निर्मित वेदी के चारों ओर अथवा उसके सम्मुख जवारारोपण किया जाता है।

जवारारोपण किसके द्वारा किया जाना चाहिए?– इस विधि में कुँवारी कन्याओं के द्वारा गेहूँ, चना, जौ, जवार, मूंग, उड़द और शालि (छिलका युक्त चावल) इन सप्त धान्यों को मिट्टी, छणकचूर्ण एवं जल में मिश्रित करवाकर मिट्टी के सकोरों में डलवाया जाता है।

तत्पश्चात प्रचलित परम्परा के अनुसार प्रत्येक सकोरों के ऊपर कुंकुम, सुपारी एवं पैसा चढ़ाते हैं। फिर मन्त्रोच्चारण पूर्वक कुंकुम का छिड़काव करते हुए उनका रोपण करते हैं।

जवारारोपण की मूल्यवत्ता– जौ आदि का वपन करते समय जैसे बीज क्रमश: विकास पाता है वैसे ही जन जीवन में निरन्तर सुसंस्कारों का सिंचन होता रहे ऐसी मनोभावना करनी चाहिए।

जवारारोपण के सन्दर्भ में आम मान्यता यह है कि जौ आदि धान्य जितने परिमाण में बढ़ते हैं उतनी ही सुखशांति और समृद्धि का विकास सम्पूर्ण नगर में होता है।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह प्रश्न हो सकता है कि प्रचलित परम्परानुसार तो सप्तधान्य का रोपण करते हैं फिर जौ के नाम की प्रधानता क्यों और अधिक मात्रा में इस धान्य का ही वपन क्यों? इसका कारण यह है कि प्राकृतिक गुण के अनुसार जौ जितनी शीघ्रता से उगता, बढ़ता और विकसित होता है उतनी तीव्रता से अन्य धान्य नहीं। फिर मंगल अनुष्ठान नियत समय के लिए होते हैं अत: उनके सफलता की परख के लिए जवारों की वृद्धि को आधार माना गया है और इसीलिए जौ धान्य को प्रमुखता दी गई है।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि शीतकाल में जौ आदि का वपन उत्सव प्रारम्भ होने से पूर्व ही कर दें तो अधिक अच्छा है, क्योंकि उस समय फसल देरी से होती है अत: उचित समय वपन किया जाए तो उसका परिणाम देखा जा सकता है।

यहाँ यह ध्यान रखना भी जरूरी है कि जिस कार्य के निमित्त से जवारारोपण किया जा रहा है उस प्रतिष्ठादि के लग्न से पहले का दूसरा, छठा अथवा नौवाँ लग्न नहीं होना चाहिए। क्योंकि इन लग्न दिनों में शुभ कार्य के उद्देश्य से जौ वपन, मंडप और वेदी आदि के प्रारम्भ करने का निषेध किया गया है।

कलशारोहण विधि का पारमार्थिक स्वरूप

कलश जिनचैत्य का शीर्षस्थ सर्वश्रेष्ठ प्रधान अंग है। कलशारोहण का सामान्य अर्थ है जिनालय के शिखर पर कलश की स्थापना करना या चढ़ाना। इस शब्द में कलश + आरोहण ऐसे दो पदों का संयोग है। आरोहण का अर्थ होता है ऊपर चढ़ना, चढ़ाना या आरोपित करना। अत: कलशारोहण या कलशारोपण से यहाँ तात्पर्य मंगल सूचक कलश को मंदिर के शिखर पर चढ़ाना या आरोपित करना है। इसीलिए इसे कलशारोपण भी कहते हैं। लोक

व्यवहार में इसे 'इंडा' भी कहा जाता है।

कलशारोहण की आवश्यकता क्यों?– प्रश्न हो सकता है कि मंदिर के शिखर पर कलश का आरोपण क्यों किया जाता है?

सर्वप्रथम कलश को मंगल का प्रतीक माना गया है। इसका समावेश अष्टमंगल, चौदह स्वप्न आदि में तो होता ही है। साथ ही इसे श्रेष्ठता, पूर्णता, अखण्डता एवं शुभता का सूचक भी माना जाता है। सामान्यतया किसी भी कार्य की पूर्णाहुति पर जैसे कि कई आचार्यों द्वारा रचित पूजाओं एवं चौबीसियों आदि की पूर्णता के रूप में कलश की रचना देखी जाती है अथवा विवाह, तीर्थयात्रा, किसी भी मंगल कार्य का प्रारम्भ या समापन इसके द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार कलशारोहण के माध्यम से यह सूचित किया जाता है कि अब जिनमंदिर सम्बन्धी मुख्य कार्य सम्पन्न हो चुका है और सम्पूर्ण जगत के लिए मंगलकारी ऐसे जिनालय की विधि पूर्वक प्रतिष्ठा या स्थापना हो चुकी है। कलश का मध्य भाग सुप्त व्यक्तित्व को विराटता में परिवर्तित करने का संदेश देता है तथा उसकी मुखाकृति नारियल की भाँति जड़-चेतन का भेद दर्शाते हुए मोक्ष फल प्राप्ति की प्रेरणा देती है।

जिनालय के शिखर पर कलश देखकर दूर से ही जिनमंदिर होने की जानकारी प्राप्त हो जाती है। आज के आबादी युक्त क्षेत्रों में तो इससे मंदिर ढूंढ़ने में विशेष सहायता होती है।

इसे देखकर व्यक्ति के मन में यदि परमात्म दर्शन के भाव जग जाए तो अनंत कर्मों की निर्जरा हो सकती है। इसके माध्यम से शारीरिक अस्वस्थता या अन्य कारणों से दर्शन करने में असक्षम व्यक्ति अपने स्थान से भी परमात्म दर्शन के भाव कर सकता है। जिससे मानसिक आनंद की अनुभूति होती है और तनाव आदि दूर होते हैं।

कलश सुंदरता का प्रतीक भी माना जाता है। जिस प्रकार राजा की शोभा उसके मुकुट से होती है वैसे ही मंदिर की शोभा कलश से होती है।

कलश कैसा हो?– कल्याणकलिका में कलश निर्माण सामग्री की चर्चा करते हुए कहा गया है कि जिससे जिनालय का निर्माण किया जाए उसी द्रव्य से कलश का भी निर्माण करना चाहिए। जैसे मंदिर पाषाण का हो तो कलश भी पाषाण का, काष्ठ का हो तो काष्ठ का धातु का हो तो धातु का। इस प्रकार जिस द्रव्य या धातु विशेष से जिन मंदिर का निर्माण हुआ हो कलश भी उसी द्रव्य

का स्थापित करना चाहिए। अथवा सभी प्रकार के जिनालयों में स्वर्ण कलश आरोपित करना शुभ माना गया है। सुवर्ण कलश को श्रेष्ठ एवं इच्छित फलदायक भी कहा गया है।[1]

कलशारोहण कब किया जाए?– प्राचीन परम्परा के अनुसार कलश की प्रतिष्ठा जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा मुहूर्त में सम्पन्न की जानी चाहिए। कभी-कभी आवश्यकतानुसार मन्दिर की वर्षगाँठ के दिन भी कलशारोहण कर लेते हैं। वर्तमान में दोनों परम्पराएँ प्रचलित हैं।

कल्याण कलिका के अनुसार यदि कलश प्रतिष्ठा बिम्ब प्रतिष्ठा के साथ हो तो अंजन विधान के समय ही कलश की अधिवासना कर देनी चाहिए। फिर प्रतिष्ठा के शुभ लग्न में अथवा अन्य शुभ लग्न में भी कलश स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार कलश की अंजन विधि होने के पश्चात उसकी स्थापना कभी भी कर सकते हैं।

कलशारोहण कहाँ-कहाँ किए जांए?– मुख्य कलश मन्दिर के शिखर पर चढ़ाया जाता है। परन्तु जहाँ मन्दिर में सभा मंडप के ऊपर गुम्बज आदि बनाये जाते हैं या अन्य छोटी-छोटी देहरियाँ निर्मित की जाती हैं। इसी के साथ बड़े-बड़े मंदिरों में शृंगार चौकी आदि पर भी कलश चढ़ाए जाते हैं। मूल गंभारे के शिखर पर चढ़ने वाला कलश मुख्य माना जाता है। वहाँ कलश अन्यत्र भी चढ़ाए जाते हैं।

कलशारोहण कौन करें ?– प्राचीन एवं वर्तमान परम्परा के अनुसार चढ़ावा लेने वाला गुण सम्पन्न परिवार, अनुभवी शिल्पकार (कारीगर) आचार्य अथवा योग्य विधिकारक मिलकर कलशारोहण करते हैं तथा अन्य समस्त श्रावकगण आनंदित होकर अपार हर्ष के साथ उसके साक्षी बनते हैं।

कलशारोहण करते समय क्या भावना करें?– कलशारोहण पूर्णता का सूचक होने से इस विधि को अत्यन्त उल्लास, उमंग एवं हर्ष के साथ सम्पन्न करना चाहिए। उस समय समस्त श्रीसंघ एवं नगरजनों के उत्कर्ष की भावना करते हुए सभी के मंगल की कामना करनी चाहिए। जिस प्रकार कलशारोहण करके जिनालय सम्बन्धी कार्यों को पूर्णता प्रदान की गई, उसी तरह यह क्रिया अनादि की भव भ्रमणा को समाप्त करते हुए हमें आत्मस्वरूप की पूर्णता प्रदान करें, ऐसी शुभ प्रार्थनाएँ करनी चाहिए।

कलशारोहण में प्रयुक्त मुद्राएँ– प्रतिष्ठित करने से पूर्व कलश को आचार्य द्वारा मुद्‌गर मुद्रा एवं स्नात्रकारों द्वारा चक्र मुद्रा दिखायी जाती है। मुद्‌गर मुद्रा शक्ति का प्रतीक है। मंगल कार्यों में प्रायः विघ्न उपस्थित होने की संभावना बनी रहती है इसलिए बुरी नजर आदि से बचाने के लिए मुद्‌गर मुद्रा दिखाते हैं। चक्र मुद्रा के द्वारा कलश के आस-पास रक्षा कवच करते हैं जिससे बुरी शक्तियों से उसका संरक्षण हो सके।

कलशारोहण के सम्बन्ध में जन धारणाएँ– लोक व्यवहार में कलशारोहण सामाजिक श्रेष्ठता एवं उच्चता का प्रतीक माना जाता है। जो परिवार कलश या ईंडा चढ़ाता है उसे समाज के श्रेष्ठ परिवारों में गिना जाता है। इसी के साथ कलश चढ़ाने वाले को किसी अपेक्षा से सम्पूर्ण मंदिर निर्माण का भी लाभ मिल जाता है। सामान्यतया कलश को मंगल का द्योतक माना गया है। अतः इसे देखकर स्वतः शुभ भाव उत्पन्न होते हैं जो कार्य सिद्धि में सहायक बनते हैं। प्रभातकाल में कलश का दर्शन पूरे दिन को अच्छा बना देता है।

कलशारोहण की उपादेयता विविध दृष्टियों से– कलशारोहण की उपादेयता पर यदि विभिन्न पहलुओं से चिंतन करें तो इसके अनेक सुप्रभाव देखे जा सकते हैं।

वैयक्तिक दृष्टि से कलश की स्थापना करने पर जीवन में शुभ भावों का ऊर्ध्वारोहण होता है, लोक में प्रसिद्धि बढ़ती है और राशि का सद्व्यय करने से पुण्य की वृद्धि होती है।

सामाजिक दृष्टि से सम्पूर्ण संघ को एकत्रित करने का एवं आपसी मतभेद को मिटाने का यह अनुपम प्रयास है। इससे संघ पर आए हुए विघ्नों का नाश होता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गुम्बज अर्ध कलशाकार या कलश के ऊपरी भाग के समान होता है। यह हमारी भावनाओं को ब्रह्माण्ड में प्रसरित करता है तथा ब्रह्माण्ड में फैली हुई शुभ शक्तियों को संग्रहित कर गुम्बज के नीचे बैठे साधकों में उनका संचरण करता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से कलशारोहण आन्तरिक परिणामों को निर्मल बनाता है और वैचारिक प्रदूषणों को दूर करता है।

ध्वजारोहण विधि का प्रतीकात्मक स्वरूप

सामान्य रूप से ध्वज का आरोहण करना ध्वजारोहण कहलाता है। इसमें 'ध्वज' और 'आरोहण' इन दो शब्दों का योग है। ध्वज का अर्थ झण्डा, पताका आदि किया गया है। यह वस्त्र से निर्मित एक टुकड़ा होता है जिसे डंडे में लगाया जाता है। ध्वजा मन्दिर के अस्तित्व एवं उसके प्रसिद्धि की द्योतक है। इसे मन्दिर के शिखर पर चढ़ाना या उसकी स्थापना करना ध्वज प्रतिष्ठा कहलाता है। जिस दंड पर ध्वजा चढ़ाई जाती है उसे ध्वजदंड कहते हैं। ध्वजदंड जिसके आधार पर रहता है उसे ध्वजाधार कहते हैं।

ध्वजारोहण की आवश्यकता क्यों?– ध्वजा प्रसन्नता एवं मंगल की वाचक है। इसका समावेश अष्ट मांगलिक चिह्नों, चौदह स्वप्नों आदि में होता है। सामुद्रिक शास्त्र, लक्षणशास्त्र एवं स्वप्न शास्त्र में ध्वज को श्रेष्ठता का सूचक माना गया है। इसी तरह सभी संस्कृतियों में ध्वजा को श्रेष्ठता, विजय एवं अस्तित्व का द्योतक स्वीकारा गया है।

जैसे तिरंगा झंडा भारत या भारतीयता की पहचान है वैसे ही मंन्दिर पर लहराती ध्वजा देवालय की सूचक है। जैन धर्म के अनुसार ध्वजा जिनेश्वर परमात्मा के अतिशयों एवं कीर्ति की प्रसारक होने से इसे शिखर पर आरोपित करते हैं।

ध्वजा मन्दिर की शोभा होती है। इसे शिखर पर आरोपित करने से यह देखने वाले को बार-बार परमात्मा के गुणों का स्मरण करवाती है। प्रभु स्मरण से अनंत कर्मों की निर्जरा, नए पुण्य का बंध और शुभ भावों का जागरण होता है। ध्वजा के रंगों को देखकर पंच परमेष्ठी के गुणों का स्मरण हो आता है, जिससे हमारे आत्म गुण प्रकट होते हैं।

कलश और ध्वजा के बिना जिन मंदिर को अधूरा माना गया है। जैसा कि प्रासाद मंडन[2], वास्तुसार प्रकरण[3] एवं शिल्प रत्नाकर[4] में कहा गया है–

निश्चिन्हं शिखरं दृष्ट्वा, ध्वजाहीनं सुरालयं ।
असुरावासमिच्छन्ति, ध्वजहीनं न कारयेत् ।।

कलशहीन एवं ध्वजरहित देवालय असुरवासी हो जाते हैं। ध्वजारोहण परमात्मा के प्रति अहोभाव प्रकट करने का अनुपम माध्यम है। यह सदैव

गौरवपूर्ण इतिहास का सम्मान बनाये रखने के लिए महापुरुषों के बलिदान एवं शासन कार्यों का स्मरण करवाती है और तद्योग्य बनने हेतु प्रेरित करती है।

ध्वजदंड और ध्वजा कैसी हो?— प्रतिष्ठा कल्पों में ध्वज दंड कैसा हो, ध्वजा किस माप की हो, ध्वजा का निर्माण कैसे किया जाए आदि के बारे में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। कल्याणकलिका के अनुसार दण्ड भीतर से पोला या खाली और सड़ा हुआ नहीं होना चाहिए। वह मजबूत, सीधा, निर्दोष, विषम पर्वों वाला, समगांठ वाला, बांस या काष्ठ का होना चाहिए।[5] प्रासाद मण्डन में इसी स्वरूप का समर्थन करते हुए कहा गया है कि ध्वजदंड सुन्दर, गोलाकार, पीतवर्णी, गाँठ रहित और ग्रन्थियों की सम संख्या वाला होना चाहिए।[6]

वर्तमान में प्रचलित ध्वजदंड का भीतरी भाग प्रायः लकड़ी का होता है और उसके ऊपर में पीतल या ताँबा आवेष्टित किया जाता है अथवा मात्र पीतल या तांबे का ध्वजदंड भी बनाते हैं।

प्रश्न होता है कि ध्वजा रेशमी वस्त्र की होनी चाहिए या सूती? कल्याणकलिका में इस सन्दर्भ का निरूपण करते हुए लिखा है कि

शिखाः पंच प्रकर्त्तव्या, ध्वजाग्रे तद्विचक्षणैः ।
दिव्य वस्त्र मय्यश्चैव, किंकिणी घुंघरान्विता ।।

ध्वजा के अग्रभाग में तीन अथवा पाँच शिखाएँ बनाकर उसे सुशोभित करना चाहिए तथा ध्वजा उत्तम रेशमी वस्त्र की एवं चारों ओर से घुंघरू आदि द्वारा अलंकृत होनी चाहिए। वर्तमान में इसी तरह की ध्वजा प्रचलित है। परम्परागत रूप से अरिहंत एवं सिद्ध परमात्मा के वर्ण के अनुसार ध्वजा श्वेत और लाल रेशमी वस्त्र से बनी हुई होती है। वर्तमान में कहीं-कहीं पर ध्वजा के आकार के बराबर तांबा या चांदी का पत्ता काटकर उसे ध्वजा के स्थान पर लगाने की प्रथा भी देखी जाती है। परन्तु उससे ध्वजा लहरा नहीं सकती है इसलिए वस्त्र की ध्वजा ही उत्तम मानी गई है। ध्वजा के ऊपर अष्टमंगल के चिह्न, प्रतिष्ठा मंत्र, लोक की आकृति आदि का आलेखन किया जाता है जिससे सकल संघ में मंगल भावों की स्थापना होती है। ध्वजा नगर की संस्कृति का परिचय देती है और मानव मात्र को सुसंस्कारों की ओर प्रेरित करती है। इस पर लटकी मालाएँ, घंटी आदि सद्गुणों को अपनाने का संदेश देती हैं।[7]

रेशमी वस्त्र की ध्वजा सुखदायक, लक्ष्मीप्रदायक एवं यशकीर्ति वर्धक मानी गई है। साथ ही राजा, प्रजा, बाल, वृद्ध, पशु आदि सभी के लिए समृद्धिकारक होती है।

ध्वजा दण्ड की पाटली या मर्कटी जिसमें ध्वजा लटकाई जाती है उसके स्वरूप का वर्णन करते हुए प्रासाद मण्डन[8] और कल्याण कलिका[9] में कहा गया है कि ध्वज दण्ड की पाटली या मर्कटी अर्धचन्द्राकार बनानी चाहिए। वह दंड की लम्बाई के छटवें भाग जितनी लम्बी, लम्बाई से आधी चौड़ाई वाली तथा चौड़ाई से तीसरे भाग जितनी मोटाई वाली होनी चाहिए। पाटली का अर्ध चन्द्राकार वाला मुख्य भाग प्रासाद के मुख की दिशा में होना चाहिए और उसके पिछले भाग में ध्वजा लगानी चाहिए। पाटली के कोनों में घंटियाँ तथा ऊपर कलश लगाना चाहिए। वर्तमान में भी ऐसी पाटली ध्वज दंड पर बनाई जाती है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि पूर्व परम्परा की अपेक्षा आज की ध्वजदंड निर्माण की प्रक्रिया में परिवर्तन आया है, क्योंकि अब पीतल या तांबे के ध्वजदंड बनाए जाते हैं।

ध्वजारोहण किस दिशा में करें?– शिखर के ऊपरी भाग में ध्वजदंड का आरोपण कर उसमें ध्वजा लगानी चाहिए।

शिल्परत्नाकर के अनुसार ईशान दिशा में ध्वजदंड लगाना चाहिए। इससे राज्य में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि तथा राजा-प्रजा दोनों को आनंद की अनुभूति होती है।[10]

ध्वजा किन दिनों में चढ़ाई जाए?– सामान्यतया ध्वजदंड और ध्वजा की स्थापना जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा के दिन शुभ लग्न में करनी चाहिए। उसके पश्चात प्रतिवर्ष प्रतिष्ठा की वर्षगांठ वाले दिन पुन: नई ध्वजा चढ़ानी चाहिए। यदि किसी कारणवश ध्वजा फट जाए या बदरंग हो जाए तो शीघ्रातिशीघ्र उसका परिवर्तन कर लेना चाहिए, क्योंकि ऐसी ध्वजा अशुभ एवं अमंगलकारी मानी जाती है। कहीं-कहीं तीर्थ स्थानों पर संघपति के द्वारा हर्ष अभिव्यक्ति एवं धर्मप्रभावना हेतु भी नूतन ध्वजा चढ़ाई जाती है।

कई लोग प्रश्न करते हैं कि जो पुरानी ध्वजा उतारी जाती है उसका क्या करना चाहिए?

पुरानी ध्वजा को पूजनीय एवं मंगलकारी मानकर कुछ लोग उसे अपनी

अलमारी आदि में या पूजा घर में रखते हैं। यदि आशातना की संभावना हो तो इसे गंगा आदि पवित्र नदियों में जलशरण कर देना चाहिए।

ध्वजा कौन चढ़ाएं?– वर्तमान में प्रतिष्ठा आदि प्रसंगों पर चढ़ावा लेने वाले पुण्यशाली परिवार श्रीसंघ के साथ अत्यंत हर्ष एवं उल्लासपूर्वक ध्वजारोहण करते हैं। यह कार्य साधु-साध्वी हों तो उनके सान्निध्य में अथवा योग्य विधिकारक या श्रावक के मार्गदर्शन में करना चाहिए। वर्षगांठ आदि के दिन चढ़ावा लेने वाले परिवार के द्वारा अथवा जिस संघ में जैसी व्यवस्था हो उसके अनुसार करना चाहिए। परिवार में भी बड़े-बुजुर्गों एवं धर्म रुचि सम्पन्न व्यक्ति से यह कार्य करवाना चाहिए, जिससे वह और भी मंगलकारी हो। ध्वजा को प्रदक्षिणा दिलवाने हेतु सोलह शृंगार से युक्त कुंवारी कन्याएँ अथवा सधवा स्त्रियाँ होनी चाहिए। दादा गुरुदेव की ध्वज पूजा में इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि

सज सोलह श्रृंगार सहेल्यां, श्री सद्गुरु के द्वार खड़ी रे।
अपछर रूप सुतन सुकुलिनी, ठम-ठम पग झणकार करी रे।
गावत मंगल देत प्रदक्षिणा, धन-धन आनंद आज घड़ी रे।।

ध्वजा बनाने की विधि– दिगम्बर परम्परा के अनुसार ध्वजा बारह अंगुल लम्बी और आठ अंगुल चौड़ी तथा मजबूत और उत्तम वस्त्र की बनानी चाहिए। ध्वजा का कपड़ा सफेद-लाल, सफेद-पीला अथवा सफेद-काला होना चाहिए तथा इसी क्रम के अनुसार रंगवाली ध्वजा तैयार करनी चाहिए। उस ध्वजा में चन्द्रमा, माला, छोटी-छोटी घंटिया, तारा आदि अनेक प्रकार के चित्र बनवाएँ। ध्वजा के ऊपर जिनबिम्ब का आकार बनाएं। उसमें एक छत्र लगाएं। उस ध्वजा में अशोक, चंपा, आम, कदंब, सुपारी आदि के वृक्ष चिह्नित करें। जिस मन्दिर की जितनी ऊँचाई हो उससे चौथाई भाग का ध्वज दंड बनाएँ। नवकार मन्त्र का 108 बार जाप करके ध्वजा को अच्छी तरह दंड में बांधें। फिर ध्वजारोहण मंत्र बोलकर उसे शुभ लग्न में शिखर पर आरोहित करें।

जिन मन्दिर की शोभा ध्वजा से होती है और सभी के लिए शुभकारी भी है इसलिए ध्वजा अवश्य चढ़ानी चाहिए।

ध्वजा की ऊँचाई और उसका फल– पं.आशाधर रचित प्रतिष्ठा सारोद्धार के मतानुसार यदि ध्वजा मन्दिर कलश से एक हाथ ऊँची हो तो संघ को रोग मुक्त करती है, यदि दो हाथ ऊँची हो तो पुत्रादि की वृद्धि होती है, यदि

तीन हाथ ऊँची हो तो संपत्ति में वृद्धि होती है, यदि चार हाथ ऊँची हो तो राज्य सुख की प्राप्ति होती है, यदि पाँच हाथ ऊँची हो तो दुर्भिक्ष नहीं होता है तथा छह हाथ ऊँची हो तो राष्ट्र वृद्धि होती है।[11]

मन्दिर पर ध्वजा चढ़ाने एवं फड़कने का फल– नूतन प्रतिष्ठित ध्वजा सर्वप्रथम लहराती हुई पूर्व दिशा की ओर जाए तो चढ़ाने वाले की सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। यदि ध्वजा आग्नेय कोण में जाए तो संताप उत्पन्न होता है। यदि दक्षिण दिशा में जाए तो रोग-शोक और भय उत्पत्ति की संभावना रहती है। यदि नैऋत्य कोण में जाए तो दुःसाध्य रोगोत्पत्ति का संकेत प्राप्त होता है। यदि पश्चिम दिशा में जाए तो कर्ता को मैत्री भाव का विशेष लाभ होता है। यदि ध्वजा वायव्य कोण में जाए तो धान्य-संपत्ति की वृद्धि होती है। यदि उत्तर दिशा में जाए तो धन लाभ की सम्भावना होती है। यदि ईशान कोण की ओर जाए तो दीर्घ आयु सूचक गिनी जाती है।

ध्वजा अशुभ दिशा की ओर लहराए तो एक हजार नमस्कार मन्त्र का जाप करना चाहिए और शान्ति स्नात्र पूजा करवानी चाहिए।[12]

ध्वजदंड के विभिन्न नाम– अपराजित पृच्छा में शुभाशुभ फल के आधार पर ध्वजदंड के 13 नाम बताये गये हैं– एक पर्ववाला जयंत, तीन पर्ववाला शत्रुमर्दन, पाँच पर्व वाला पिंगल, सात पर्व वाला सम्भव, नव पर्व वाला श्रीमुख, ग्यारह पर्व वाला आनन्द, तेरह पर्व वाला त्रिदेव, पन्द्रह पर्व वाला दिव्य शेखर, सत्रह पर्व वाला कालदंड, उन्नीस पर्व वाला महा उत्कट, इक्कीस पर्व वाला सूर्य, तेईस पर्व वाला कमल और पच्चीस पर्व वाला विश्वकर्मा कहा जाता है। इन तेरह प्रकार के ध्वज दंडों के नाम पर्व के अनुसार जानने चाहिए तथा उनका शुभाशुभ फल नामानुसार जानना चाहिए।[13]

ध्वजदंड कैसा हो?– प्रासादमंडन के अनुसार ध्वजदंड किसी प्रकार की गाँठ अथवा पोलापन आदि दोषों से रहित, मजबूत लकड़ी का सुन्दर एवं गोलाकार होना चाहिए। उसके पर्व विषम संख्या में और चूड़ियाँ समसंख्या वाली होनी चाहिए।[14]

ध्वजारोहण करते समय क्या भावना करें?– ध्वजारोहण एक श्रेष्ठ मांगलिक प्रसंग है। ध्वजा फहराते समय सकल विश्व के मंगल की भावना करनी चाहिए। जिस प्रकार फहराती हुई ध्वजा तीनों लोक में सुशोभित होती है, उसी प्रकार परमात्मा के द्वारा प्ररूपित रत्नत्रयी का कल्याणकारी मार्ग मेरे हृदय

में सुशोभित हो तथा जिनधर्म की कीर्ति चारों दिशाओं में गूंजित हो। इस ध्वज महिमा को सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित करूं ऐसी शुभ भावना भी समस्त लोगों को करनी चाहिए।

ध्वजारोहण सम्बन्धी लौकिक धारणाएँ– ध्वजारोहण के सम्बन्ध में कई लौकिक धारणाएँ प्रसिद्ध हैं। जैसे ध्वजारोहण के पश्चात ध्वजा यदि अच्छे से लहराए तो वह शुभ एवं मंगलकारी होती है। यदि प्रथम बार ध्वजा पूर्व या उत्तर दिशा में लहराए तो वह सर्वकामना सिद्ध करने वाली तथा सुख-संपदा एवं आरोग्यवर्धक होती है। ध्वजा का पश्चिम, वायव्य या ईशान कोण में लहराना शुभ एवं वृष्टि का सूचक है। यदि ध्वजा दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य आदि दिशाओं में लहराये तो अशुभ है। उसके निवारण हेतु दान, पूजा, शांति आदि करनी चाहिए।

यदि ध्वजा न लहराए, उल्टी हो जाए अथवा दक्षिण दिशा में लहराए तो अशुभ होती है। यदि गर्भवती महिला ध्वजा को शुभ भावों से आँचल (पल्लु) में ग्रहण करें तो पुत्र की प्राप्ति होती है और वन्ध्यत्व दूर होता है। ध्वजा को मस्तक पर धारण करने से अशुभ कर्म नष्ट होते हैं। ध्वजा सदा सुहागिन सन्नारियों अथवा कन्या के द्वारा ग्रहण की जानी चाहिए इससे निर्धन को धनलाभ होता है। इसी प्रकार की अन्य धारणाएँ भी व्यवहार में प्रसिद्ध हैं।

ध्वजारोहण की उपादेयता– ध्वजारोहण एक सामुहिक मंगलकारी प्रसंग है। विविध दृष्टियों से इसके भिन्न-भिन्न लाभ परिलक्षित होते हैं।

व्यक्तिगत संदर्भ में ध्वजारोहण का लाभ लेने वाले परिवार की कीर्ति चारों दिशाओं में प्रसरित होती है। लक्ष्मी का सद्व्यय होने से पुण्य बंध होता है जिससे लौकिक एवं लोकोत्तर सुख की प्राप्ति होती है।

सामाजिक संदर्भ में चिंतन किया जाए तो ध्वजारोहण के द्वारा सामाजिक वैमनस्य समाप्त होता है। आपसी बंधुत्व एवं मैत्री भाव की स्थापना होती है। सभी लोगों के सम्मिलित होने से आनंद का माहौल बनता है।

आध्यात्मिक संदर्भ में इस अनुष्ठान के द्वारा हृदयगत भक्तिभाव प्रकट होते हैं। परमात्म भक्ति, गुरुभक्ति, साधर्मिक भक्ति का लाभ प्राप्त होता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मंगल होता है, जिससे उत्तम मोक्षरूपी फल की प्राप्ति होती है।

लौकिक दृष्टि से धर्म का उन्नयन होता है और जिनशासन के अनुयायियों की वृद्धि होती है।

कुंभ स्थापना विधि का मांगलिक स्वरूप

मिट्टी का घड़ा या कलश कुंभ कहलाता है। प्रत्येक मांगलिक कार्य में कलश की स्थापना की जाती है क्योंकि भारतीय संस्कृति में कलश को मंगलकारी माना गया है अतः उसमें मंगल द्रव्यों का क्षेपण करके श्रेष्ठ स्थान पर उसकी स्थापना करते हैं। कलश स्थापना के माध्यम से मांगलिक कार्य का संकल्प किया जाता है।

प्रतिष्ठा आदि के समय कलशों के जल से ही जिनबिम्ब आदि की शुद्धि की जाती है। जन्म कल्याणक मनाते समय अभिषेक हेतु क्षीर सागर के जल को कलशों में ही रखते हैं, क्योंकि साक्षात तीर्थंकर का जन्माभिषेक क्षीरसागर के जल से ही किया जाता है। महोत्सव के प्रारम्भ में मंगल एवं स्थिरता के ध्येय से पूर्व निर्धारित स्थान पर कुंभ को स्थापित करना कुंभ स्थापना कहलाता है।

कुंभ स्थापना की आवश्यकता क्यों?— कुंभ पूर्णता, शुभता एवं श्रेष्ठता का सूचक है। लौकिक व्यवहार में भी विवाह आदि मांगलिक प्रसंगों में तथा गृह प्रवेश आदि के समय कुंभ स्थापना की जाती है जिससे कार्य निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न होता है। कुंभ एक मांगलिक चिह्न है। इसे अमृत कलश भी कहते हैं। भगवद् पुराण के अनुसार कलश स्थापना के पीछे यह हेतु भी माना जाता है कि जब देवों ने क्षीरसमुद्र का मंथन किया तब उसमें से 14 रत्न प्राप्त हुए। उन रत्नों में एक कामकुंभ नाम का श्रेष्ठ कलश भी था। जिसको पाने के लिए देवों और दानवों के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस कारण कलश से चार जगह अमृत गिर गया। अंततोगत्वा वह अमृत कलश देवों को प्राप्त हुआ, जिसे पीकर वे अमर कहलाए। इस अपेक्षा से भी कुंभ की स्थापना की जाती है।

जल अखण्डता का प्रतीक है। यह पूर्ण आयु प्रदान करता है। कुंभ के सभी भागों में देवों का वास माना गया है। इस अपेक्षा से भी सभी मांगलिक एवं धार्मिक स्थानों में इसकी प्रमुखता है। इस पर आलेखित अष्ट मंगल आदि भी मंगल का कार्य करते हैं।

जिस प्रकार कुंभ में जल स्थिर रहता है, वैसे ही इसकी स्थापना करने से महोत्सव में मंगल भावों की स्थिरता रहती है। मंगल गान पूर्वक कुंभ को स्थापित करने से वातावरण में मधुरता, सौम्यता आदि के परमाणुओं का वर्धन होता है जिससे समस्त लोगों की भावधारा निर्मल बनती है और उत्सव के माहौल का निर्माण होता है।

कुंभ स्थापना किस दिन करें?– कुंभ स्थापना प्रतिष्ठा, दीक्षा, महापूजन अथवा किसी भी बृहद अनुष्ठान आदि में महोत्सव के प्रारंभ में की जाती है। कल्याण कलिका के उल्लेखानुसार उत्सव के प्रथम दिन अथवा पाँच या सात दिन पूर्व अथवा अन्तिम दिन में जिस दिन भी कुंभचक्र और चंद्रबल श्रेष्ठ हो उस दिन कुंभ स्थापना करनी चाहिए।[15]

कुंभ स्थापना किस दिशा में की जाए?– कल्याण कलिका में प्रतिष्ठा महोत्सव के दौरान दो जगहों पर कुंभ स्थापना करने का उल्लेख है– पहली कुंभ स्थापना मूल गर्भगृह के दाहिनी तरफ तथा दूसरी कुंभ स्थापना उत्सव मंडप में भी नूतन प्रतिमाओं के दाहिनी तरफ ही करनी चाहिए। महापूजन आदि के अवसरों पर भी जिन बिम्ब के दाहिनी तरफ ही कुंभ स्थापना की जानी चाहिए।[16]

कुंभ स्थापना करने से पूर्व उस स्थान को शुद्ध करें। सुहागिन स्त्री के द्वारा कुंकुम का स्वस्तिक बनवाकर उस पर सवा सेर जौ और चावल रखवायें अथवा जवार का स्वस्तिक बनवायें। फिर उसके ऊपर कुंभ की स्थापना करें।

कुंभ कैसा हो?–

कुंभ काले दाग आदि से रहित, सुंदर आकार वाला और पक्का होना चाहिए। उस कुंभ के ऊपर अष्ट मंगल उकेरने चाहिए। कुंभ को श्रेष्ठ चावलों के चूर्ण आदि से शुद्ध कर सुवासित करना चाहिए। फिर उसके भीतर केसर चंदन का स्वस्तिक करना चाहिए। तत्पश्चात उस घड़े में पंचरत्न की पोटली, सुवर्ण मुद्रा एवं सुपारी डालकर जलयात्रा के द्वारा लाए गए शुद्ध जल से उसे भरें। फिर उसके ऊपर नागरवेल (पान) के पत्ते और श्रीफल रखकर उसे हरे वस्त्र से ढकते हुए कांकण डोरे से बांधें। फिर उस वस्त्र पर केशर-बरख आदि लगाकर उसे पुष्पमाला भी पहनायें। इस प्रकार कुंभ स्थापना हेतु कलश तैयार किया जाता है। वर्तमान में मिट्टी के घड़े के स्थान पर चाँदी का कलश भी प्रयोग में लिया जाता है।

कुंभ स्थापना कौन करें?– इस मंगल स्थापना का विधान सौभाग्यवती नारियों के द्वारा किया जाता है। लोक व्यवहार में भी मांगलिक कार्य सुहागिन महिलाओं के द्वारा ही सम्पन्न किए जाते हैं, क्योंकि सौभाग्यवती स्त्री को शुभ माना गया है।

गुरु भगवंत उपस्थित हों तो उनके द्वारा अथवा विधिकारक के द्वारा कुंभ स्थापना करवाई जानी चाहिए।

कुंभ स्थापना करते समय क्या भावना करें?– कुंभ स्थापना मंगल का सूचक है। यह विधि करते समय जगत कल्याण की भावना की जाती है। इसी के साथ जिस प्रकार कुंभ जल के लिए आधारभूत है उसी प्रकार मैं भी दीन-दुखी जीवों के लिए सहायक बनूं, मेरी आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी रत्नत्रयी से परिपूर्ण बने, कुंभ स्थित जल की भाँति मेरा मन भी धर्म में स्थिर हो, इस प्रकार की उच्च भावनाएँ करनी चाहिए।

कुंभ स्थापना सम्बन्धी जन धारणा– लोक व्यवहार में कुंभ स्थापना एक बहु प्रचलित प्रथा है। मंगलकारी प्रसंगों जैसे गृह प्रवेश, दुकान आदि का उद्घाटन, महापूजन आदि कुंभ स्थापना पूर्वक ही किये जाते हैं अत: इसे मांगलिक विधान माना गया है।

कुंभ स्थापना करने से अशुभ का निवारण और शुभ भावों की स्थिरता रहती है। इससे संघ में शान्ति की स्थापना भी होती है।

कुंभ स्थापना की उपादेयता– कुंभ स्थापना एक शुभसूचक एवं लोकप्रसिद्ध मंगल विधान है। इसके द्वारा जन मानस में शान्ति, तनाव, मुक्ति एवं आनंद के भाव प्रस्थापित होते हैं। यह मांगलिक कार्यों के प्रारंभ का भी सूचक है। इस विधान के द्वारा सम्यक्त्वी देवी-देवताओं की स्थापना हो जाती है, जो कार्यों की निर्विघ्नता एवं पूर्णता में सहायक बनते हैं। शुभ भावों की उत्पत्ति में भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

दीपक स्थापना विधि का वैज्ञानिक स्वरूप

एक निर्धारित स्थान पर अखण्ड दीपक स्थापित करना दीपक स्थापना कहलाता है। इस अनुष्ठान में घी से भरे हुए बड़े पात्र में रूई की बत्ती को प्रज्वलित करते हैं और यह क्रिया मन्त्रोच्चार के साथ सम्पन्न की जाती है।

दीपक स्थापना की आवश्यकता क्यों?– दीपक अंधकार का नाश कर प्रकाश फैलाता है। प्रकाश सभी को प्रिय होता है। दीपक स्थापना के द्वारा द्रव्यत: बाह्य अंधकार एवं भावत: आत्मा पर आवृत्त अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने के भाव किए जाते हैं।

जिस प्रकार दीपक की लौ ऊर्ध्वगामी होती है उसी प्रकार अज्ञानावरण से मुक्त होकर सर्व आत्माएँ ऊर्ध्वगामी बनें। जैसे दीपक बिना किसी भेदभाव एवं स्वार्थवृत्ति के अन्यों को प्रकाश देता है और बाह्यत: स्वयं भी प्रकाशित रहता है

वैसे ही मेरी आत्मा भी स्वस्वरूप के उन्मुख होकर अन्यों के लिए भी आत्मज्ञान में सहायक बने। ऐसे उद्देश्यपूर्ण भावनाओं को जागृत करने हेतु यह विधि करते हैं।

दीपक की उष्मा से मन्दिर का पर्यावरण विशुद्ध होता है। शास्त्रज्ञों के अनुसार जहाँ दीपक होता है वहाँ पवित्र परमाणुओं का वास होता है। इसी के साथ दीपक की पवित्रता से आकृष्ट होकर देवी-देवता कार्य की सिद्धि में विशेष सहायक बनते हैं।

रुद्राष्टाध्यायी के अनुसार किसी भी अनुष्ठान आदि को प्रारम्भ करने से पूर्व उस कर्म की साक्षी के लिए दीपक की स्थापना अवश्य करनी चाहिए। इससे अग्निदेव कार्य के साक्षी बनते हैं। वैसे सामान्य तौर पर सूर्य की साक्षी मानी जाती है, परन्तु पूजन आदि कार्यों में अग्निदेव को साक्षी मानते हैं।

वैदिक मान्यतानुसार सम्यक् वृत्ति वाले देवों को घी का दीपक तथा आसुरी प्रकृति वाले देवताओं को तेल का दीपक प्रिय होता है। वे इससे बहुत जल्दी आकृष्ट होकर वहाँ आ पहुँचते हैं। इस नियम से सिद्ध होता है कि सम्यक्दृष्टि देवी-देवताओं की उपस्थिति हेतु घृत का अखण्ड दीपक जलाकर स्थापित किया जाता है।

महोत्सव के मंगलमय और आनन्दमय वातावरण के उद्देश्य से भी दीपक स्थापना की जाती है।

वैज्ञानिक दृष्टि से दीपक के द्वारा जो परमाणु वातावरण में फैलते हैं वे वैचारिक निर्मलता में निमित्तभूत बनते हैं। अत: मांगलिक कार्यों में मानसिक तनाव की निवृत्ति हेतु भी दीपक स्थापना की जाती है।

दीपक स्थापना कब और कहाँ की जाए?– दीपक स्थापना एक मांगलिक विधान है। इसलिए यह विधि प्रतिष्ठा, दीक्षा महापूजन आदि किसी भी बृहद अनुष्ठान अथवा जाप साधना आदि में की जानी चाहिए। तत्पश्चात कार्य की पूर्णाहुति न हो जब तक दीपक की स्थापना अखण्ड रखनी चाहिए।

दीपक स्थापना कहाँ?– दीपक स्थापना कुंभ स्थापना के समीप में दाहिनी तरफ की जाती है, क्योंकि दाहिनी तरफ देवताओं का स्थान माना गया है।

दीपक कैसा हो?– अखण्ड दीपक की स्थापना करने के लिए चाँदी, ताँबा या पीतल का दीपक होना चाहिए। दीपक को प्रज्वलित करने से पूर्व उसके

मध्य में स्वस्तिक रचकर पंचरत्न की पोटली और चाँदी या ताँबे का सिक्का रखें। फिर उसे गाय के घी से भरें। उसके बाद दीपक को फणस में रखकर उसे कंकण डोरे से बांधें। तत्पश्चात मन्त्रोच्चारपूर्वक बत्ती प्रज्वलित करें।

दीपक स्थापना कौन करें?– दीपक स्थापना सधवा स्त्रियों के द्वारा की जाती है क्योंकि यह एक मंगलकारी प्रसंग है और सधवा या सुहागिन स्त्रियों को शुभ माना जाता है। यह कार्य विधिकारक एवं योग्य श्रावक के मार्गदर्शन में किया जाता है।

दीपक स्थापना के समय क्या भावना करें?– दीपक स्थापना करने वाला लोक कल्याण की भावना के साथ यह स्थापना करें। जैसे दीपक अंधकार को दूर करता है उसी प्रकार मेरा अज्ञान रूपी अंधकार दूर हो। दीपक की लौ की तरह मेरा जीवन, परिवार और समाज उन्नति और प्रकाश को प्राप्त करें। समस्त देवी-देवता मेरे कार्य में सहयोगी बनें, ऐसी परमार्थ भावनाओं का चिन्तन करना चाहिए।

दीपक स्थापना के सम्बन्ध में लौकिक धारणाएँ– जन सामान्य में दीपक प्रज्वलित करने के पीछे यह धारणा है कि इसके प्रकाश के तले इष्ट देवों का निवास होता है। यह क्रिया पूजा-आराधना के रूप में भी की जाती है। जैन धर्म में दीपक पूजा को द्रव्य पूजा के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। इतर परम्पराओं में भी दीपक जलाना पूजा का अंग माना गया है।

दीपक की अखण्ड स्थापना के पीछे भी यही मान्यता है कि इसके द्वारा वातावरण पवित्र हो जाने से वहाँ देवी-देवताओं का स्थायी वास होता है क्योंकि देवों का निवास अशुद्ध स्थानों में नहीं होता। जहाँ देवी-देवता हाजिर रहते हैं वहाँ भक्तों की मनोकामना भी शीघ्र फलती है तथा कई अपूर्व चमत्कार भी हो जाते हैं जिससे सामान्य जनता धर्माभिमुख बनती है।

तीर्थ स्थलों, प्राचीन मन्दिरों एवं प्रतिष्ठा जैसे श्रेष्ठ उत्सवों में इन्हीं हेतुओं से अखण्ड दीपक रखते हैं। इसकी स्थापना मात्र से 'कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होगा, ऐसी दृढ़ मानसिकता का सहज निर्माण होता है।

पाटला पूजन विधि का परम्परिक स्वरूप

नवग्रह, दशदिक्पाल और अष्टमंगल इन तीनों के चित्रित पट्टों का विधिवत पूजन करना पाटला पूजन कहलाता है।

इस पूजन में नवग्रह आदि देवी-देवता जिस वर्णवाले हैं अथवा उन्हें जो वर्ण प्रिय हैं जैसे इन्द्र देवता को पीला वर्ण प्रिय है, यम देव को श्याम वर्ण प्रिय है तो उनके इच्छित वर्ण के अनुसार पुष्प, फल, नैवेद्य, धान्य आदि चढ़ाये जाते हैं।

पाटला पूजन की आवश्यकता क्यों?– प्रश्न हो सकता है कि प्रतिष्ठा एवं जिनबिम्ब स्थापना एवं परमात्म भक्ति का मांगलिक कार्यक्रम है, उसमें देवी-देवताओं की स्थापना-पूजन आदि क्यों?

प्रतिष्ठा आदि महोत्सवों पर समस्त नगर जनों एवं सरकारी पदाधिकारियों आदि को आमंत्रित किया जाता है, जिससे उन लोगों के मन में जिनधर्म के प्रति राग उत्पन्न हो और वे धर्म प्रभावना में किसी भी प्रकार से बाधा उत्पन्न न करें। इसी प्रकार देवी-देवताओं को भी जिनधर्मानुरागी बनाने हेतु उनका आह्वान एवं स्थापन किया जाता है।

दूसरा प्रयोजन यह माना जाता है कि मांगलिक कार्यों में उन्हें तुष्ट रखने पर वे किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न नहीं करते प्रत्युत उस कार्य में सहायक बनते हैं। अत: मंगल एवं आतिथ्य सत्कार की भावना से देवी-देवताओं का आह्वान आदि किया जाता है।

यद्यपि नवग्रह से सम्बन्धित देवी-देवता सम्यक्त्वी हैं इसलिए इनका सम्मान न भी किया जाये तो वे शासन कार्यों में बाधक नहीं बनते किन्तु सम्यक्त्वी होने से हमारे साधर्मिक हैं। अत: अन्य साधर्मिकों की तरह उन्हें भी आमन्त्रित करना लोकाचार है। दूसरे, नवग्रहादि सम्यग्दृष्टि देवों का पूजन आदि करने पर मिथ्यात्व का दोष भी नहीं लगता है।

दसों दिशाओं के अधिपति देवों का सम्मान करने से सभी कार्य निर्विघ्न होते हैं।

अष्टमंगल, आठ मांगलिक चिह्नों का समूह है जिसका पूजन करने से अमंगल का नाश होता है। पूर्वकाल में मंगल की स्थापना हेतु उनकी रचना की जाती थी। वर्तमान में अष्टमंगल का बना-बनाया पट्ट उपलब्ध होने से उसी के ऊपर पूजादि सामग्री चढ़ाते हैं। नवग्रह और दशदिक्पाल का पूजन भी पट्ट पर ही करते हैं।

प्राचीन समय में काष्ठ पट्टों या वस्त्रों पर इन सभी के चित्र उल्लेखित किये जाते थे, परन्तु शनै:-शनै: आलेखन की परम्परा लुप्त होने से चित्रित पट्टों का

उपयोग किया जाने लगा और इसी कारण उक्त तीनों पूजन पाटला पूजन के नाम से प्रसिद्ध है।

पाटला पूजन कब और कहाँ किया जाए?– प्रचलित परम्परा के अनुसार यह पूजन प्रतिष्ठा, महापूजा, जाप अनुष्ठान आदि में किया जाता है। प्रतिष्ठा के अवसर पर यह विधान लग्न आदि की शुद्धि के अनुसार तीसरे या पाँचवें दिन किया जाता है। इन दिनों में नंद्यावर्त्त पूजन भी करते हैं जो अंजनशलाका विधि से सम्बन्ध रखता है।

यह पाटला पूजन जिनमंदिर अथवा पूजन मंडप में जिनबिम्ब के समक्ष किया जाता है। पूजन के पश्चात दश दिक्पाल का पट्टा परमात्मा के बायीं तरफ एवं नवग्रह का पट्टा परमात्मा के दाहिनी तरफ रखा जाता है। अष्टमंगल पट्ट परमात्मा के समक्ष रखते हैं।

पाटला पूजन के अधिकारी कौन?– वर्तमान में यह पूजन चढ़ावा लेने वाले लाभार्थी परिवार करते हैं। इसकी पूजा विधिकारक, योग्य श्रावक अथवा गुरु महाराज उपस्थित हों तो उनके द्वारा करवायी जाती है। आजकल प्राय: यह क्रिया विधिकारक ही करवाते हैं।

पाटला कैसा हो?– वर्तमान में लकड़ी के पट्टों पर चाँदी के पत्रों में अंकित दशदिक्पाल आदि से युक्त पाटले (पट्टे) प्रयोग में लिए जाते हैं। यदि इस तरह के पट्टे उपलब्ध न हों तो किसी काष्ठ आदि के पाटले पर नवग्रहादि का आलेखन करवाकर भी पूजन किया जा सकता है।

पाटला पूजन में क्या भावना करें?– पाटला पूजन करते समय पूजनकर्ता प्रयोजनभूत देवी-देवताओं को प्रसन्न एवं आमंत्रित करते हुए उनसे यह प्रार्थना करें कि 'हे नवग्रहादि देवों! यह अरिहंत परमात्मा की भक्ति का अपूर्व अनुष्ठान है अत: आप सभी इसमें पधारकर इस प्रसंग को और अधिक मंगलकारी बनाएँ तथा इन मंगल घड़ियों में आशंकित विघ्नों एवं उपद्रवों से हमारी रक्षा करें।'

पाटला पूजन सम्बन्धी आम मान्यताएँ– जन मान्यता के अनुसार यह पूजन करने से प्रकृति भी हमारे कार्य में सहायक बनती है। जिस प्रकार नगर में सुख-शान्ति पूर्वक रहने के लिए नगर प्रमुखों को खुश रखना जरूरी होता है ताकि वे हर कार्य में सहयोगी बन सकें। वैसे ही दिक्पाल देवों एवं नवग्रहपति देवों को प्रसन्न रखने से किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित हो तो उनका

निवारण करते हैं। इसलिए इन्हें भी संतुष्ट रखना चाहिए। परमात्मा के प्रभाव से हमारी ग्रह पीड़ा आदि भी नष्ट हो जाती है।

पाटला पूजन की उपादेयता– दिक्पाल आदि देव गाँव एवं समाज की रक्षा करते हैं। इससे सामूहिक समस्याओं एवं ग्रह पीड़ाओं का शमन होता है जिससे समाज के आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास में सहायता प्राप्त होती है।

ग्रहों एवं नक्षत्रों का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर परिलक्षित होता है ऐसा ज्योतिषशास्त्रियों का मानना है। अत: दिक्पाल एवं ग्रह देवताओं को सम्मान देने से विश्व स्तर की अनेक समस्याएँ हल की जा सकती हैं।

खनन विधि का प्रचलित स्वरूप

खनन का सामान्य अर्थ है– खोदना पोला करना। मन्दिर अथवा गृह आदि के नव निर्माण से पूर्व यह क्रिया की जाती है।

खनन की आवश्यकता क्यों?–

खनन गृह आदि निर्माण का प्रारम्भिक मंगल विधान है। इस विधि के द्वारा भूमि की श्रेष्ठता आदि का परीक्षण कर उस स्थान की अशुद्धि को दूर किया जाता है। इससे वह भूमि निर्मल और दोष मुक्त हो जाती है। इस प्रकार भूमि शुद्धि के लिए खनन करते हैं।

खनन विधि कब और किस दिशा तरफ की जाए?– मकान, दुकान आदि किसी भी वस्तु के नवनिर्माण हेतु सर्वप्रथम खनन क्रिया की जाती है। यह विधान शुभ लग्न में किया जाता है ताकि अथ से इति तक सम्पूर्ण कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो। शुभ मुहूर्त्त में भूमि खोदने की क्रिया प्रारम्भ करना ही खनन कहलाता है।

मन्दिर या गृहादि का निर्माण जिस दिशा या कोण में करना हो उसके लिए मुहूर्त्त के अनुसार खनन का स्थान निर्धारित रहता है। तदनुसार नियत कोण आदि में खनन क्रिया करते हैं। यह क्रिया करते समय सर्वप्रथम पुष्प आदि के द्वारा भूमि का सत्कार करते हैं। तत्पश्चात दश दिक्पालों का आह्वान, पूजन आदि करके मन्त्रपूर्वक भूत-प्रेतादि का निवारण किया जाता है। फिर पंचगव्य और स्वर्णजल का छिड़काव कर वाजिंत्रादि के साथ खनन विधि प्रारम्भ करते हैं।

खनन के अधिकारी कौन?– यह क्रिया विधिकारक, स्नात्रकार एवं लाभार्थी गृहस्थ परिवार मिलकर करते हैं। साधु-साध्वी उपस्थित हों तो उनके द्वारा खनन भूमि पर वासचूर्ण डाला जाता है।

भूमि परीक्षण की विधि— शुभ या अशुभ भूमि के परीक्षण हेतु पुरुष परिमाण या एक हाथ लम्बा-चौड़ा और गहरा गड्ढा खोदें। फिर खोदी हुई मिट्टी से ही पुन: उस गड्ढे को भरें। यदि गड्ढा भर जाये या मिट्टी बच जाए तो उस स्थान को उत्तम समझना चाहिए और यदि गड्ढा खाली रह जाए तो उसे निकृष्ट माना जाता है।

खनन करते समय क्या भावना करें?— खनन करते समय समस्त संघ एवं विश्व की मंगल कामना करते हुए यह कार्य करना चाहिए। उस भूमि के जो भी अधिकारी देवी-देवता हैं उनका स्मरण करते हुए उनसे आज्ञा ग्रहण करें तथा उन्हें सहायक बनने हेतु निवेदन करें एवं आने वाले उपद्रवों को शांत करने की प्रार्थना करें। इसी के साथ जिस कार्य को प्रारम्भ किया है वह शीघ्र, सुन्दर एवं निर्विघ्नता पूर्वक सम्पन्न हो, ऐसी मंगल भावना उपस्थित सकल संघ को करनी चाहिए।

खनन के विषय में जन धारणाएँ— खनन करते समय साँप आदि निकलें तो उसे शुभ माना जाता है। भूमि पोली हो और जल आदि से परिपूर्ण हो तो उसे अधिक उत्तम माना जाता है।

शुभ लग्न में किया गया कार्य शीघ्र सफलता देता है, इसलिए मंदिर निर्माण जैसे उत्तम कार्यों का प्रारंभ शुभ मुहूर्त आदि के विचार पूर्वक करना आवश्यक है।

शिलान्यास विधि का पौराणिक स्वरूप

शिला का अर्थ है पत्थर, चट्टान आदि और न्यास का अर्थ है स्थापना करना या रखना। किसी देवालय की नींव में पहले पत्थर को शुभ समय में विधिपूर्वक रखना शिलान्यास कहलाता है। इसे नींव का प्रारम्भ भी कह सकते हैं।

शिला स्थापना की आवश्यकता क्यों?— जिस प्रकार भवन निर्माण में खंभे मूलपाद रूप होते हैं उसी प्रकार मंदिर निर्माण में शिलाएँ मूल पाद रूप होती हैं। इस प्रकार जो शिलाएँ जिनालय-उपाश्रय आदि के लिए मूल पाये के रूप में होती हैं उनका उत्सव पूर्वक स्थापन करना सर्व संघ के लिए कल्याणकारी है। इसलिए शिलाओं को बहुमान पूर्वक स्थापित करते हैं। इसका पूजोपचार पूर्वक विधान करने से आस-पास के दुष्ट एवं कुपित देव भी प्रसन्न हो जाते हैं।

शिलाओं की स्थापना कब करें?– खनन के पश्चात जब मंदिर की नींव रखने का समय उपस्थित होता है उस समय नींव भराई के रूप में सर्वप्रथम पाँच या नौ शिलाएँ स्थापित करते हैं। यह कार्य शुभ समय में करने से श्रेष्ठ फलदायी होता है।

शिलाएँ कैसी हो?– कल्याणकलिका में स्थापना योग्य शिलाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यदि पाषाण का मंदिर बनाना हो तो शिलाएँ पाषाण की होनी चाहिए और ईंट का बनवाना हो तो अच्छी पकी हुई लाल ईंटों की स्थापना करनी चाहिए। शिलाएँ उत्तम कोटि की एवं अखंड होनी चाहिए। प्रत्येक शिला पर उसके संकेत चिह्न बनाए जाते हैं। कूर्म शिला को नौ भागों में बाँटकर उस पर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पानी की लहर, मछली, मेंढ़क, मगर, कछुआ, भोजन का ग्रास, पूर्ण कुंभ, सर्प और शंख के चित्र अंकित करते हैं। शेष शिलाओं पर दिक्पालों के क्रमानुसार उनके शस्त्र वज्र, शक्ति, दण्ड, तलवार, नागपाश, ध्वजा, गदा और त्रिशूल– इन्हें चिह्नित करते हैं। कूर्मशिला पर शस्त्र के रूप में विष्णु का चक्र बनाते हैं। कूर्म शिला संभव हो तो सोने या चाँदी की बनवानी चाहिए अथवा उस शिला पर स्वर्ण या रजत का कूर्म बनवाकर स्थापित करना चाहिए।[17]

शिलाएँ कितनी हो?– वास्तुसार प्रकरण, देवशिल्प, क्षीरार्णव आदि ग्रन्थों के अनुसार नौ शिलाएँ स्थापित करनी चाहिए। उनके नाम हैं– नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, अजिता, अपराजिता, शुक्ला, सौभागिनी और धरणी। अपराजित मत (पृ. 18) के अनुसार नौ शिलाओं के नाम इस प्रकार हैं– नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, विजया, मंगला, अजिता, अपराजिता और धरणी। कल्याणकलिका में पाँच शिलाओं का उल्लेख है।

शिलाओं की स्थापना कहाँ हो?– जिस वास्तु भूमि को खनन के द्वारा शल्य आदि से रहित किया जा चुका है और एक हाथ गहरा एवं समचौरस नौ गड्ढे जितना भाग छोड़कर शेष जगह को भर दिया गया है वहाँ शिला स्थापना करनी चाहिए। खनन के पश्चात मन्दिर निर्माण के लिए प्रथम नींव (पत्थर) रखना शिला स्थापना कहलाता है। शिला स्थापना के समय चार दिशाओं, चार विदिशाओं और एक अधोदिशा (मध्य भाग) में ऐसी नौ शिलाएँ रखी जाती है। मध्य शिला के ऊपर ढक्कन के रूप में 10वीं शिला भी रखते हैं जिसे ऊर्ध्व दिशा की शिला कह सकते हैं। इस प्रकार दस दिशाओं के प्रतीकार्थ दस

शिलाओं की स्थापना करते हैं।[18]

मध्य शिला कूर्म शिला कही जाती है। क्षीरार्णव के अनुसार कूर्मशिला के नौ भाग करके प्रत्येक भाग के ऊपर पूर्व-दक्षिण आदि दिशाओं के सृष्टिक्रम से पानी की लहर, मछली, मेंढ़क, मगर, ग्रास, कलश, सर्प और शंख– इन आठ चिह्नों को बनाएं और मध्य भाग में कच्छप बनाएं।

फिर कूर्मशिला की स्थापना करने के पश्चात उसके ऊपर से पोलापन लिए हुए एक तांबा का नल जिनबिम्ब के सिंहासन पर्यन्त रखा जाता है, जिसे जिनालय की नाभि कहते हैं।

तदनन्तर नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, अजिता, अपराजिता, शुक्ला, सौभागिनी और धरणी– इन नौ खुरशिलाओं को पूर्वादि दिशाओं के सृष्टिक्रम से स्थापित करें। नौवीं धरणी शिला मध्य में अवस्थित कूर्म शिला के सामने स्थापित करें। कुछ आधुनिक शिल्पकार धरणी शिला को ही कूर्मशिला कहते हैं। नन्दा आदि आठ खुरशिलाओं के ऊपर अनुक्रम से वज्र, शक्ति, दंड, तलवार, नागपाश, ध्वजा, गदा और त्रिशूल ऐसे दिक्पालों के शस्त्र के चिह्न अंकित करें तथा नौवीं धरणी शिला पर विष्णु का चक्र बनाएं।[19] स्पष्टीकरण के लिए देखिएँ निम्न चित्र।

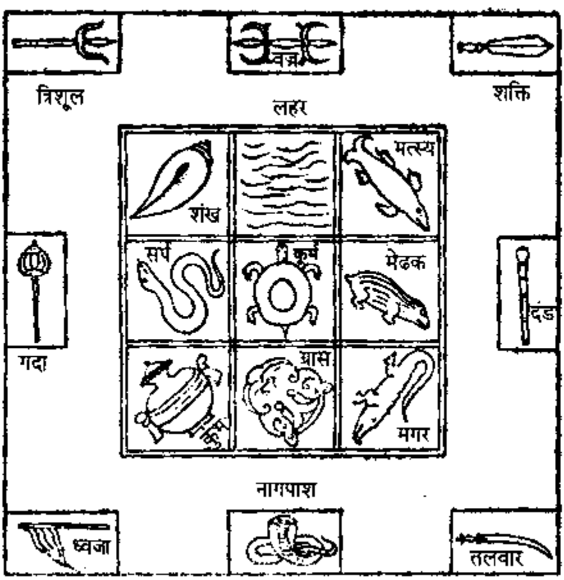

शिलान्यास की सामान्य विधि– कल्याणकलिका के अनुसार शिला स्थापना हेतु बनाए गए खड्डों में मिट्टी के छोटे कलशों को, कुलड़ी, सातधान्य एवं पंचरत्न सहित रखें और उन्हें मिट्टी के ढक्कन से ढ़क दें। उसके ऊपर शिला संपुट रखें। तत्पश्चात शिला का अभिषेक आदि करके उन्हें शुभ मुहूर्त में स्थापित करें। मध्यशिला पर स्वर्ण कूर्म रखा जाता है और कूर्म शिलाओं की प्रतिष्ठा की जाती है। मध्यशिला या कूर्म शिला के ऊपर एक लोह जाली स्थापित करते हैं जो मूलनायक भगवान के सिंहासन तक लम्बी होती है।

शिलान्यास किनके द्वारा किया जाए?– शिलान्यास करते समय गृहपति, शिल्पी, विधिकारक, स्नात्रकार एवं समस्त श्रीसंघ को उपस्थित रहना चाहिए।

शिला स्थापना के समय क्या भावना करें?– शिला स्थापना करते समय स्थापनाकर्ता चिन्तन करें कि आज जिनालय की मूल नींव स्थापित की जा रही है उसी तरह मेरे हृदय मन्दिर में धर्म का बीज मूल नींव के रूप में स्थापित हो।

मैंने अब तक पापकार्य के जनक घर, ऑफिस आदि कई स्थानों की नींव रखी है किन्तु धर्म रूपी नींव को स्थापित करने का अवसर प्रथम बार प्राप्त हुआ है। 'धर्म महान है' अत: यह कार्य सभी के लिए निश्चित रूप से कल्याणकारी होगा।

मेरे द्वारा अखंड शिलाओं का स्थापना की जा रही है इससे हम सभी के जीवन में अक्षुण्ण सुख की प्राप्ति हो।'

शिलान्यास का क्रम– शिलाओं का न्यास किस दिशा क्रम से करना चाहिए, इस सम्बन्ध में मतभेद हैं। चार शिलाओं की स्थापना करने के पक्षधर प्राय: आग्नेय कोण से प्रारम्भ कर ईशान कोण में समाप्त करने का सूचन करते हैं, पंचशिला के पक्षधर आग्नेय कोण से प्रारम्भ कर अंतिम शिला को मध्य में स्थापित करने का विधान करते हैं, किन्तु अग्निपुराण में शिलान्यास का क्रम मध्य से आरम्भ कर ईशान में पूर्ण करने के लिए कहा गया है। दाक्षिणात्य पद्धति में पाँच शिलाओं की स्थापना का क्रम– पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और मध्य इस प्रकार बतलाया गया है।

नवशिलाएँ रखने के पक्षधर– आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, पूर्व और मध्य– इन दिशाओं के क्रम से नन्दादि शिलाएँ स्थापित करने का विधान करते हैं। दाक्षिणात्य पद्धति में नवशिलाओं की स्थापना पूर्व

दिशा से आरम्भ कर मध्य में समाप्त करने का विधान करते हैं। स्पष्ट है कि सर्वप्रथम पूर्व दिशा में फिर आग्नेय कोण में इस सृष्टि क्रम से आठवीं ईशान में और नौवीं शिला मध्य में आती है।

इसी तरह अष्टशिलाओं का क्रम भी माना गया है। वर्तमान में प्रायः पाँच या नवशिला की प्रवृत्ति प्रचलित है।[20]

शिलान्यास के वास्तु स्थान– शिलाएँ निम्न स्थानों के निर्माण में रखी जाती हैं– माल भरने के गोदाम, राज्याभिषेक आदि के मंडप, संन्यासी मठ, उपाश्रय, पाकशाला, सर्वजाति के निवास गृह, नाटकशाला, देवमंदिर, सभामंडप, किला, नगर के द्वार आदि। इन स्थानों का निर्माण करवाते समय शिलान्यास विधि करनी चाहिए।[21]

शिलान्यास कितना नीचे करें?– शिलान्यास वास्तुभूमि के ऊपरी तल से कितना नीचे किया जाए, यह शिल्पियों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। अपराजितपृच्छा के निर्माण काल तक देवालय के वास्तु में जलान्त या पाषणान्त खात करके कूर्म विन्यास की परिपाटी प्रचलित हो चुकी थी जो आज भी प्रवर्तित है। गृहवास्तु के शिलान्यास में इतना गहरा खोदने की आवश्यकता नहीं है। इस वास्तु की भूमिशुद्धि के लिए पुरुष प्रमाण खड्डा खोदने का विधान है और उतना ही नीचे शिलान्यास करना चाहिए।[22]

शिलाओं का ढाल किस तरफ हो?– शिलान्यास में शिलाएँ किस दिशा की ओर ढलती हुई रखनी चाहिए? शिल्पियों को पहले से ही निश्चित करके फिर न्यास करना चाहिए, क्योंकि विधिपूर्वक स्थापित करने के बाद शिलाओं को चलायमान करना अशुभ है। शिलाओं का झुकाव (ढाल) पूर्व अथवा उत्तर दिशा की तरफ शुभ माना गया है। वास्तु का द्वार पूर्व तरफ हो तो शिला की ढाल पूर्व दिशा में और उत्तर तरफ हो तो उत्तर दिशा में रखनी चाहिए। वास्तु का द्वार पश्चिम में हो तो शिला का ढाल उत्तर में और दक्षिण में हो तो पूर्व में रखनी चाहिए।[23]

शिला स्थापना सम्बन्धी जन मान्यताएँ– शिला स्थापना के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की मान्यताएँ देखी जाती हैं। हिन्दू मान्यता है कि यह धरती कूर्म की पीठ पर टिकी हुई है। कूर्म पृथ्वी और जल दोनों पर रहता है और मुख्य रूप से जलतत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है। कूर्म शिला को मुख्य शिला के रूप में स्थापित करने पर वह जिनमंदिर को भी सम्यक् रूप से अपने ऊपर धारण करती

है। विधिपूर्वक की गई शिलास्थापना से निकटवर्ती क्षेत्रों के अधिष्ठायक देव भी प्रसन्न रहते हैं और सदैव उस भूमि की सुरक्षा करते हैं। शुभ समय में की गई शिला स्थापना व्यक्ति, परिवार एवं समाज के विकास में सहायक बनती है।

शिला स्थापना के लाभ– शिला स्थापना के द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर आयोजक का समय और अर्थ का शुभ कार्यों में उपयोग होता है, आन्तरिक परिणाम निर्मल बनते हैं तथा उससे पुण्य का बंधन होता है।

सामाजिक संदर्भ में यह विधान पारस्परिक सम्बन्धों में मधुरता स्थापित करता है तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक संस्कारों की वृद्धि करता है। इस प्रसंग पर कई लोगों की उपस्थिति होने से आम जनता का मन्दिर के प्रति रूझान बढ़ता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया जाए तो कूर्मशिला के ऊपरी भाग से जो लोहे की नली मुख्य प्रासाद तक ली जाती है। वह जिनबिम्ब आदि की बिजली आदि से रक्षा करती है।

शिला स्थापना सम्बन्धी विशिष्ट निर्देश– • जब तक भूमि शल्य रहित न हो अथवा जल का स्तर प्रारम्भ न हो तब तक भूमि को खोदना चाहिए। यह उल्लेख प्रासाद मंडन एवं अपराजित पृच्छा में प्राप्त होता है। यदि खड्डा अधिक गहरा हो जाए तो उसे पुनः शुद्ध मिट्टी आदि से भरकर चतुर्थांश जितना खाली रखना चाहिए।

• एक बार स्थापित की गई शिलाओं को पुनः चलित नहीं करना चाहिए, यह अशुभ का सूचक है।

• शिलाओं की ढलान उत्तर या पूर्व दिशा की तरफ रखनी चाहिए। दक्षिण एवं पश्चिम में ढलान रखना अशुभ माना गया है।

• सुवर्ण का कूर्म बनाने से शल्य दोष का निवारण हो जाता है।

अंजनशलाका विधि का आगमिक स्वरूप

अंजन विधि, प्रतिष्ठा का अभिन्न अंग है। इस महोत्सव में मूलनायक तीर्थंकर भगवान के च्यवन-जन्म-दीक्षा-केवलज्ञान-निर्वाण इन पाँचों कल्याणकों का विशेष उत्सव मनाया जाता है फिर भी सम्पूर्ण महोत्सव को अंजनशलाका महोत्सव कहते हैं, क्योंकि समस्त उत्सव का प्राण अंजनशलाका है। इसका मूल विधान आचार्य के द्वारा गुप्त रूप से किया जाता है और उस प्रक्रिया के द्वारा

ही प्रतिमा में वीतराग तत्त्व रूप परम चैतन्य का अवतरण होता है। इस विधि में किसी भी तरह की असावधानी नहीं चल सकती है।

अंजनशलाका का अर्थ– आचार्य भगवन्त के द्वारा जिनबिम्ब के नेत्र युगल में स्वर्ण की शलाका से मंत्र योग पूर्वक अंजन क्रिया करना अंजनशलाका कहलाता है। द्वितीय अर्थ के अनुसार प्रभु प्रतिमा में अरिहंत परमात्मा की सर्वोच्च शक्ति को संचरित करने का अनुष्ठान अंजनशलाका कहा जाता है। तृतीय अर्थ के अनुसार अंजन शलाका का शाब्दिक विवेचन इस प्रकार है–

'अंजन' अर्थात नेत्रों में लगाने का सुंदर पदार्थ, एक प्रकार का सुरमा या नेत्रांजन और 'शलाका' का अभिप्राय स्वर्णशलाका से है। आचार्य भगवन्त सुवर्ण की शलाका से बिम्ब के नेत्रों में अंजन करते हैं।

यद्यपि अंजनशलाका का एक स्वतन्त्र विधान है किन्तु इसका महत्त्व इतना अधिक बढ़ चुका है कि पाँच-पाँच कल्याणकों एवं अनेक पूजा-अर्चनों के साथ मनाये जानेवाले सम्पूर्ण महोत्सव का नाम ही अंजनशलाका हो गया है। अंजनशलाका की मुख्य क्रिया से जिनबिम्बों का केवलज्ञान कल्याणक ही मनाया जाता है फिर भी समस्त महोत्सव पर इस विधि का अद्भुत प्रभाव है।

अंजनशलाका की तात्त्विक परिभाषाएँ– • जिनाज्ञा पालक गृहस्थ श्रावक के न्यायोपार्जित लक्ष्मी से शिल्पशास्त्र में पारंगत शिल्पियों द्वारा निर्मित जिनबिम्ब को वंदनीय एवं पूजनीय बनाने की आगमिक प्रणाली अंजनशलाका है।

• पाषाण की प्रतिमा में जिनेश्वर के स्वरूप का दर्शन कराने वाली विशिष्ट प्रक्रिया अंजनशलाका है।

• 'सवि जीव करूं शासन रसी' की भावना से प्राणी मात्र का हित करने वाले तीर्थंकर परमात्मा के जीवन का अनुपम परिचय देने वाला महोत्सव अंजनशलाका के नाम से पहचाना जाता है।

• भौतिकवाद के बढ़ते माहौल में भक्तिवाद की स्थापना करने वाला तथा आसक्तिवाद को तोड़कर अनंत अनन्त शक्तियों को जागृत करने वाला अनुष्ठान अंजनशलाका है।

• परम ज्योति स्वरूप तीर्थंकर परमात्मा के अलौकिक आदर्श प्रसंगों का अविस्मरणीय उत्सव अंजनशलाका है।

इस प्रकार अंजनशलाका भव्य आत्माओं के हृदय मंदिर में प्रभु स्थापना का पुण्य मुहूर्त्त है, मुक्ति महल रूपी इमारत की नींव भरने का पुण्य प्रसंग है।

अंजनशलाका क्यों?– अंजनशलाका अनुष्ठान तीर्थंकर परमात्मा के केवलज्ञान कल्याणक की प्रतीक है। इस क्रिया के द्वारा भौतिकवाद की जगह भक्तिवाद की स्थापना की जाती है। नि:सन्देह अंजन-प्रतिष्ठा महोत्सव एक चिरस्थायी एवं भक्तिमय आंदोलन है।

अंजनशलाका विधि का महत्त्व इसलिए भी है कि इस विधान के बाद ही जिनप्रतिमा पूजनीय बनती है तथा इस विधान के पश्चात कभी भी प्रक्षाल एवं पूजा बंद नहीं होती।

यह प्रक्रिया जिनबिम्ब में सर्वज्ञता एवं सर्वदर्शिता का साक्षात्कार करवाती है जिससे मानव जाति वीतरागता से परिचित होकर उस मार्ग का अनुसरण कर सकती है।

इससे अखण्ड श्रद्धा का वर्धन और परमात्म भक्ति के वातावरण का निर्माण होता है।

जहाँ भी अंजनशलाका महोत्सव मनाया जाता है इस प्रसंग की उजवणी बहुत ही रंगीन बन जाती है। देवलोक हमें प्रत्यक्ष न होते हुए भी इस अवसर पर उसके साक्षात्कार की अनुभूति होने लगती है।

इस प्रकार अंजनशलाका एक उद्देश्य पूर्ण अनुष्ठान है।

अंजनशलाका का अधिकारी कौन?– यह आगम सम्मत परम्परा है कि आचार्य पद पर आरूढ़ मुनि ही अंजनशलाका करें। इस परम्परा का आग्रह रखना समुचित है क्योंकि इस अनुष्ठान के दौरान प्रतिष्ठाचार्य में कुछ विशिष्ट योग्यताओं की अपेक्षा रखी जाती है। वस्तुत: अंजनशलाका प्रतिष्ठाकारक वाले आचार्य भगवंतों की साधना का परीक्षा काल है। इसीलिए अंजनविधि सम्पन्न करने वाले आचार्य की विशेषताओं का शास्त्रकारों ने स्वतन्त्र वर्णन किया है। प्रतिष्ठाचार्य को मंत्र-तंत्र एवं आलेखन के विधान में पारंगत होना आवश्यक है और ध्यानाभ्यासी होना भी जरूरी है। प्रतिष्ठा के सम्पूर्ण महोत्सव का प्रत्येक विधान आचार्य के निर्देशन एवं उनकी देख-रेख में ही किया जाना चाहिए, तब अंजन विधि अन्य मुनि के द्वारा कैसे की जा सकती है? यद्यपि इसमें विधिकारक और गुणनिष्पन्न गृहस्थ श्रावक भी सहयोगी बनते हैं। अंजन घोटने का कार्य

अऋतुवती बालिकाएँ करती हैं किन्तु जिनबिम्बों के युगल नेत्रों में अंजन करने का कार्य आचार्य के द्वारा किया जाता है।

अंजनशलाका कब और कहाँ की जानी चाहिए– जैनाचार्यों के मतानुसार अंजनशलाका की मुख्य विधि मध्य रात्रि में की जाती है क्योंकि यह एक विशिष्ट मंत्र विधान है। इस विधि के अन्तर्गत प्रतिष्ठाचार्य गुरु प्रदत्त एवं तीर्थंकर प्रणीत सूरिमंत्र से अंजन चूर्ण को अधिवासित करते हैं। उसके पश्चात वह अभिमन्त्रित चूर्ण जिनबिम्बों के युग्म चक्षुओं में लगाया जाता है। इस प्रक्रिया को सम्पादित करने के लिए श्रद्धा, साहस, आत्मबल एवं वातावरण की शुद्धता परमावश्यक है। अर्धरात्रि का समय शांत, निर्मल और अनुकूल होता है। इस समय सम्यक्त्वी देवी-देवता भी कार्य में विशेष रूप से सहयोगी बनते हैं अत: विघ्नों का हरण होता है।

अंजनशलाका का विधान प्रतिष्ठा मंडप में जहाँ प्रमाणोपेत वेदिका पर मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं वहाँ सम्पन्न होता है अथवा जिनालय के चौकी मण्डप में किया जाता है।

यहाँ यह जानने योग्य है कि प्रत्येक प्रतिष्ठा के प्रसंग पर अंजनशलाका हो ही यह जरूरी नहीं है क्योंकि कई बार आस-पास के क्षेत्रों में हो रही अंजनशलाका के अन्तर्गत अन्य गाँव-नगरों में विराजमान होने वाली प्रतिमाओं की भी अंजन विधि करवा दी जाती है। इसलिए जिनबिम्ब का अंजन विधान तो होता ही है और वह भी प्रतिष्ठाचार्य के द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है परन्तु जहाँ प्रतिष्ठा हो वहीं अंजन विधि करवाना यह आवश्यक नहीं है। यह ध्यातव्य है कि अंजन निष्पन्न जिनबिम्ब की स्थापना प्रतिष्ठाचार्य के अतिरिक्त अन्य साधु-साध्वी भी करवा सकते हैं।

अंजनशलाका के समय करने योग्य भावना– अंजन की मुख्य विधि के समय प्रतिष्ठाचार्य और विधिकारक ऐसे दो जनों के रहने का ही प्रावधान है। वर्तमान में इन दो के साथ एक-दो श्रावक भी रहते हैं तथा अंजन विधि (केवलज्ञान कल्याणक) होने के पश्चात निर्वाण कल्याणक विधि की जाती है।

• अंजन क्रिया सम्पादित करते समय आचार्य को परम शुद्ध भावों से युक्त होकर 'सवि जीव करूं शासन रसी' की भावना से यह विधान करना चाहिए। प्रतिष्ठाचार्य के अध्यवसायों के अनुरूप ही प्रतिमा में वीतराग भाव स्थापित

होता है।

● आचार्य और उपस्थित दर्शकों को दृढ़ मनोयोग पूर्वक विश्व मैत्री की भावना करनी चाहिए।

● इस विधि के दौरान आत्मोत्कर्ष की भावना करते हुए यह चिन्तन करना चाहिए कि हे परमात्मन्! आपने प्रबल साधना के द्वारा स्वयं के आत्मस्वरूप एवं ज्ञान नेत्रों को उद्घाटित कर लिया है। मुझे भी इन्हीं भावों से भावित कर इसी भव में सम्यक् चारित्र के ग्रहण का आशीर्वाद दें।

हे देवाधिदेव! जिस भव्यता के साथ देवतागण केवलज्ञान कल्याणक मनाते हैं हमें भी वैसी सामर्थ्य प्रदान करें और उस प्रकार के उत्कृष्ट भावों को प्रकट करें।

हे त्रिकालदर्शी! जिस प्रकार आपने अष्ट कर्मों का क्षय कर शाश्वत सुख का वरण कर लिया है उसी प्रकार की भावनाएँ मुझ पामर के भीतर भी उद्दिप्त करें।

अंजनशलाका विधि के लाभ– ● आचार्य के द्वारा नाभि के नाद पूर्वक मंत्रोच्चार करने से समग्र वायु मंडल प्रभावित होता है जिससे सम्यग्दृष्टि देवी-देवताओं का सन्निधान प्राप्त होता है।

● यह क्रिया मन्त्र प्रधान होने से पुण्य परमाणुओं का प्रसारण होता है तथा जब तक जिनबिम्ब और जिनालय विद्यमान रहते हैं मानव कल्याण की परम्परा अनवरत रूप से चलती रहती है।

● यह अनुष्ठान आध्यात्मिक विकास करते हुए आधि-व्याधि-उपाधि का शमन करता है। इससे भौतिक सुखों की प्राप्ति के साथ वैराग्य भावों में उत्कर्ष होता है जिसके कारण आसक्ति एवं परिग्रह भावों का बहिर्गमन होता है।

● इस विधान में सम्मिलित होने के फलस्वरूप सुख-दुख, शत्रु-मित्र, अनुकूलता-प्रतिकूलता की प्रत्येक परिस्थिति में समता एवं समाधिमरण की भावना बनी रहती है।

● यह महोत्सव अरिहंत परमात्मा के नाम, स्थापना एवं द्रव्य निक्षेप को भाव निक्षेप में अंतरित करता है तथा भाव तीर्थंकर की परम भक्ति का आस्वाद करवाता है।

अंजनविधि की मूल्यवत्ता विविध दृष्टियों से– अंजन विधि से पूर्व के समस्त विधानों द्वारा जिनबिम्बों में अंगों एवं उपांगों की स्थापना होती है तथा अंजन के माध्यम से तीर्थंकरत्व एवं केवलज्ञान शक्ति का आरोपण किया जाता

है। इस विधान के पश्चात ही जिन प्रतिमा अष्टद्रव्य आदि से पूजनीय होती है इससे पूर्व नहीं।

• इस प्रसंग पर प्रभु भक्ति का रंग, जीवदया, दान, साधर्मिक बहुमान आदि से जिनशासन की जयनाद होती है जिससे सर्वत्र जिनधर्म की महिमा होती है। और अन्य धर्मी भी जिन शासन अनुरागी बनते हैं।

• यह उत्सव सामूहिक स्तर पर होने से समाज में संगठन, सामंजस्य, सहयोग, एकता आदि के भावों का स्थापन होता है ।

• मनोवैज्ञानिक स्तर पर यह क्रिया साहस एवं उत्साह के भावों का संचार करती है जिससे मनोबल दृढ़ और भाव जगत सहिष्णु बनता है।

• प्रबन्धन की दृष्टि से यह समाज प्रबंधन, ज्ञान प्रबंधन एवं भाव प्रबंधन में सहायक है।

• धार्मिक दृष्टि से अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव का वह अंग है जिससे श्रद्धा गुण विकसित होता है तथा वैयक्तिक जीवन में हरदम परमात्मा से निकटता की अनुभूति होती है।

प्राण प्रतिष्ठा : एक चिन्तन

पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित कुछ लोग मूर्ति आदि जड़ पदार्थों में प्राण प्रतिष्ठा करने को पाखण्ड, अन्धविश्वास, मिथ्यात्व और ढकोसला आदि कहकर उपहास करते हैं।

उनकी मान्यतानुसार जो जीव मोक्ष में चला गया और पुन: लौटने वाला नहीं है तब मात्र नाम के आह्वानपूर्वक जड़ मूर्ति में 'अत्रतिष्ठतिष्ठ:' कहकर प्रतिष्ठा करना कहाँ तक उचित है?

वस्तुत: प्राण प्रतिष्ठा के रहस्य को समझने के लिए प्राण शब्द के गूढ़ार्थ को समझना आवश्यक है। प्राण शब्द के अर्थ इस प्रकार हैं–

वायु, हवा, शरीर की वह हवा जिससे प्राणी जीवित कहलाता है; मनोबल, वाक्बल, कायबल, उच्छ्वास और आयु इन सबका समूह; जीव या आत्मा, इन्द्रिय, पुराणानुसार एक कल्प का नाम, काल का वह विभाग जिसमें दस दीर्घ मात्राओं का उच्चारण हो सके, ब्रह्म, विष्णु, धाता के पुत्र का नाम, मूलाधार में रहने वाली वायु और अग्नि आदि।

जैन धर्म के अनुसार प्राण दो प्रकार के होते हैं– 1. द्रव्य प्राण और भाव प्राण

द्रव्य प्राण दस हैं– पाँच इन्द्रियाँ– 1. स्पर्शेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय 4. चक्षुन्द्रिय 5. श्रोत्रेन्द्रिय

तीन बल– 6. मनोबल 7. वचन बल 8. काय बल 9. श्वासोश्वास और 10. आयुष्य

भाव प्राण चार हैं– 1. दर्शन 2. ज्ञान 3. चारित्र और 4. वीर्य

इन प्राणों में आत्मा का कहीं उल्लेख नहीं है। अत: समझना होगा कि जिस प्रकार सूर्य और उसकी किरणें भिन्न होती है उसी प्रकार आत्मा और आत्मा की चेतनता का आभास कराने वाला यह शरीर और ऊपर वर्णित प्राण भिन्न हैं। आत्मा अलग है और दृश्य शरीर अलग है।

चेतन गुण से समृद्ध आत्मा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द रहित है, अमूर्तिक होने से इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है। सहजानन्द स्वरूपी है और सम्यक्दर्शन, सम्यक ज्ञान, सम्यक चारित्र आदि अनन्त गुणों का पिण्ड है। आत्मा के इन गुणों की अपेक्षा से मुक्तात्मा की प्रतिष्ठा मूर्तियों में असंभव है। अत: कहा जा सकता है कि उस आत्मा के सिद्ध होने के पूर्व जिस पर्याय का आवरण था, जो प्राण कहलाते हैं और ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं उन्हीं की प्रतिष्ठा की जाती है।

वैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर किसी भी व्यक्ति के द्रव्य प्राणों को पौद्गलिक होने के कारण यंत्रों द्वारा वीडियो आदि में प्रतिष्ठित किया जा सकता है, जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर टेलीविजन सेट्स आदि में देखा जा सके।

यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि संसार के किसी भी कोने में होने वाले पौद्गलिक कार्यक्रमों को यंत्रों के माध्यम से कहीं भी देखा जा सकता है।

प्रत्येक जीव में पुराने पुद्गलों का क्षरण हो रहा है और उसके द्वारा नये पुद्गल ग्रहण किए जा रहे हैं। जो क्षरण हो रहा है वह ब्रह्माण्ड में उस छापयुक्त रहता है। यही कारण है कि किसी जगह चोरी हो जाने पर प्रशिक्षित कुत्ते उस चोर के क्षरण हुए पुद्गलों के आधार पर उन पुद्गलों का पीछा करते-करते चोरों को पकड़ लेते हैं। इस प्रकार पुद्गलों की सत्ता एवं उनकी अपनी-अपनी क्रियावती शक्ति इस संसार में अनादिकाल से है और रहेगी भी, जिसे विज्ञान ने भी प्रमाणित कर दिया है।

अत: यह प्रमाणित है कि प्रत्येक संसारी जीव के प्राणों के पुद्गल परमाणु, उस छाप युक्त इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। इसी मान्यता के आधार पर वैज्ञानिक इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि कुरुक्षेत्र में दिये गये गीता के

उपदेशात्मक परमाणुओं को टेप किया जाए।

आचार्य वसुनंदि ने प्रतिमा के प्रत्येक अंग में मन्त्र न्यास, अड़तालीस प्रकार के संस्कारों की स्थापना, नेत्रोन्मीलन, श्रीमुखोद्घाटन, सूरिमंत्र आदि क्रियाओं का अपने प्रतिष्ठा पाठ में उल्लेख किया है।

प्राण प्रतिष्ठा के आयोजन में अंजनशलाका करते समय जिस दर्पण में प्रतिमा का मुख देखा जाता है उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। ऐसा कई बार देखने-सुनने में आया है।

जिस प्रकार टेलीविजन में दर्शाये जाते भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का पारिणामिक भाव दर्शकों पर होता है, उसी प्रकार प्राण प्रतिष्ठा की गई प्रतिमा का प्रभाव साधक पर पड़ता है।

जिस प्रकार गरुड़ मुद्रा के दर्शन मात्र से सर्प विष का अपहरण होता है, उसी प्रकार जिन मुद्रा भी पापों को हरण करने वाली है। जिनमुद्रा के दर्शन मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं।[24]

भावात्मक दृष्टि से प्राण प्रतिष्ठा का अनुष्ठान हमारे अन्त:करण में शुभ भावों को जागृत कर शुद्ध की ओर जाने के लिए हमें प्रेरित करता है। इसी के साथ श्रेष्ठ मूल्यों को जीवन में उतारने के प्रति सचेत करता है।

जब प्रतिमा में परमात्मा के दस द्रव्यप्राणों और चार भाव प्राणों की प्रतिष्ठा हो जाती है उसके पश्चात प्रतिमा का दर्शन करने से उनकी निर्विकार छवि भावात्मक रूप से साधक के ध्यान में आ जाती है। इससे शुभ और शुद्ध दोनों प्रकार के परिणाम उभरते हैं जिससे साधक का मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता है।

इस प्रकार प्राण प्रतिष्ठा महापुरुषों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कराने वाला और जीवन में सद्गुणों की प्रतिष्ठा करने वाला अनुष्ठान है। अत: प्राण प्रतिष्ठा के तात्कालिक एवं दूरगामी परिणामों को ओझलकर उनकी भर्त्सना करना, उपहास करना, उसे पाखण्डपूर्ण, निरर्थक और खोखला बताना अनुचित है।

क्रयाणक अर्पण का ऐतिहासिक स्वरूप

प्रतिष्ठा कल्पकारों के निर्देशानुसार प्रतिष्ठा विधि के दौरान 360 क्रयाणक पुटिकाएँ जिनबिम्ब के समक्ष रखनी चाहिए और यह विधान नन्द्यावर्त्त पूजन के पश्चात करना चाहिए, ऐसा भी कहा गया है।

संस्कृत के 'क्रय' शब्द से क्रयाणक निष्पन्न है। क्रय का अर्थ खरीदना है,

क्रयाण का अर्थ है खरीदने वाला और क्रयाणक का अर्थ है खरीदा हुआ। हिन्दी के 'किराना' शब्द का संस्कृत में क्रयणम बनता है। इससे द्योतित होता है कि धान्यादि से सम्बन्धित वस्तुएँ क्रयाणक कही जा सकती हैं।

प्रतिष्ठा कल्पों में अन्नादि धान्य, शुष्क मेवा एवं विविध औषधियाँ क्रयाणक रूप मानी गयी हैं। पृथ्वी पर रोगों का हरण करने वाली जितनी भी औषधियाँ हैं वे सब क्रयाणकों में समाविष्ट हैं। जिसका भी क्रय-विक्रय हो सकता है वह सब क्रयाणक हैं– इस अपेक्षा से कुछ आचार्य चारों प्रकार के अन्न, वस्त्र, मणिरत्न, गाय आदि पशु और स्वर्ण आदि धातुओं को क्रयाणक मानते हैं किन्तु कुछ आचार्यों ने उपर्युक्त सभी वस्तुओं को क्रयाणक में सम्मिलित नहीं किया है।

प्रतिष्ठा सकल सृष्टि जगत का उत्तम और मंगलकारी विधान है। अतः प्रतिष्ठा के समय इस विधि के द्वारा समस्त प्राणी जगत के लिए मंगल कामना और कल्याण की भावना की जाती है। इस प्रकार यह लोक मंगल और विश्व कल्याण की दृष्टि से किया जाने वाला उत्तम अनुष्ठान है।

क्रयाणक पुटिका का न्यास करते समय यह चिन्तन करना चाहिए कि समस्त क्रयाणक सुलभ रहें, कभी भी दुर्भिक्ष को प्राप्त न हों। क्योंकि इन खाद्य पदार्थों के बिना चराचर जीवों का निर्वाह होना असम्भव है। क्रयाणकों की अभिवृद्धि में ही समस्त जीवों की समृद्धि है, अतः यह विधान ऊपरी तौर से सामान्य दिखने पर भी महत्त्वपूर्ण और भावपूर्ण है।

लोक कल्याण के अतिरिक्त क्रयाणकों का अपना विशिष्ट महत्त्व भी है। क्रयाणकों में धान्य, मेवा, औषधि आदि का अन्तर्भाव होता है, जिनमें विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ निहित हैं। प्रतिष्ठा के समय 360 क्रयाणकों को एकत्रित करने पर उसका ज्ञान चेतना एवं वातावरण पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। 360 पुटिकाओं को रखते हुए समस्त जनपद में यह सूचित किया जाता है कि इस पुण्य प्रसंग पर समस्त वसुधा परमात्मा के चरणों में स्वयं को धन्यातिधन्य मान रही हैं अतएव हमें भी प्रभु चरणों में सर्वात्मना अर्पित होना चाहिए।

इस प्रकार अरिहंत परमात्मा की अनिर्वचनीय महिमा को दर्शाने एवं समस्त प्राणी जगत के सुख की कामना को प्रत्यक्ष रूप देने के लिए तीन सौ साठ क्रयाणक बिम्ब के हाथ में रखे जाते हैं।

ज्ञातव्य है कि विक्रम की 13वीं शती के पूर्वकाल तक ये पुटिकाएँ

(पुड़िया) पृथक-पृथक रखी जाती थी। उसके पश्चात 360 क्रयाणकों की एक साथ पुटिका बनाकर रखने की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई, जो आज भी प्रवर्तित है। आचारदिनकर के अनुसार क्रयाणकों की नाम सूची इस प्रकार है–

मदनादिगण

1. मदन फल– मींढल
2. मधुयष्ठि– जेठी मध की लकड़ी
3. तुम्बी– तुंबड़ी की बेल
4. निम्ब– नीम का वृक्ष
5. बिम्बी– गिलोडा की बेल
6. महानिम्ब– नीम का बड़ा वृक्ष
7. इन्द्रवारूणी
8. स्थूलेन्द्र वारूणी
9. कर्कटी– ककड़ी की बेल
10. कुटज– एक प्रकार का वृक्ष
11. इन्द्रजव– कूटज वृक्ष के कड़वे बीज
12. देवदाली– कुकड बेल
13. विडंग फल
14. वेतस– नेतर का वृक्ष
15. निचुल
16. चित्रक– काली छाल का वृक्ष
17. दन्ती– एक प्रकार की औषधि
18. चित्रकरक्त– रक्त छाल का वृक्ष
19. उन्दरकर्णी
20. कोशातकी
21. राजकोशातकी
22. करंज– करंज नाम का वृक्ष
23. चिरबिल्ल
24. पिप्पली– अश्वत्थ नाम का वृक्ष
25. पिप्पलीमूल– पीपरामूल
26. सैंधव– पंजाब का नमक
27. सौवर्चल– लाल नमक
28. चिर बिल्ली
29. कृष्ण सौवर्चल– काला नमक
30. बिडलवण– इस नाम से प्रसिद्ध नमक की एक जाति
31. पाक्य लवण– पाँच प्रकार के नमक में से एक
32. समुद्रलवण– समुद्र का नमक
33. रोमक लवण– विदेशी नमक
34. सर्जिका– साजी का खार
35. वचा– घोड़ा बच (उग्र गंधा)
36. क्षुद्रैला– छोटी इलायची
37. एला– मध्यम इलायची
38. बृहदेला– मोटी इलायची
39. त्रुटि
40. यवक्षार
41. महात्रुटि
42. सर्षप– पीली सरसों
43. आसुरी– राई
44. कृष्ण सर्षप– काली सरसों

कुम्भादिगण

1. कुम्भ

2. त्रिबीज
3. मालविनी– नसोतर का वृक्ष
4. त्रिफला– हरड, बहेडा, आँवला का संयुक्त चूर्ण
5. स्नुही– थोर
6. शंखपुष्पी– एक प्रकार की औषधि
7. नीलिनी– नीलगिरि का वृक्ष
8. रोध्र– लोध
9. बृहद्लोध– पठानी लोध
10. कृतमाल– गरमाला की फली
11. कम्पिल्लक
12. स्वर्णक्षीरी– सत्यानाशी

कुष्ठादिगण

1. कुष्ट– सुगंधित द्रव्य
2. बिम्ब– बिम्बफल
3. काश्मिरी– चंदन
4. अरणी– बड़ी लकड़ियों का वृक्ष
5. अरणिका– छोटी लकड़ियों का वृक्ष
6. पाटला– पाढ़व का वृक्ष, बड़े आकार की झाड़ी
7. कुबेराक्षी
8. सेनाक
9. कण्टकारिका– बड़ी रींगणी
10. क्षुद्रकण्टकारिका– छोटी रींगणी
11. शालिपर्णी
12. पृश्निपर्णी
13. गोक्षारू
14. देवदारू– देवदारू का वृक्ष
15. रास्ना– इस नाम से प्रसिद्ध व्याधिनाशक औषधी
16. यव– जौ
17. शतपुष्पी– सौंफ
18. कुलत्थ– कुलथी नाम का धान्य
19. माक्षिक– मधु (शहद)
20. पौक्षिक– श्वेत मधु (लघु मक्षिका कृत)
21. क्षौद्र– चम्पक वृक्ष
22. सित्थुक
23. शर्करा– शक्कर

वेल्लादिगण

1. अपामार्ग– छोटे वृक्ष
2. त्रिकुट– सूंठ, काली मिर्च और पीपर मिश्रित चूर्ण
3. नागकेशर– इस नाम से प्रसिद्ध वनस्पति
4. त्वक्– छाल
5. पत्र– पत्ते
6. हरिद्रा– हलदी
7. दारूहरिद्रा– दारु हलदी
8. श्रीखण्ड– सूखा चंदन
9. शोभांजन– सरगव नाम का एक वृक्ष
10. रक्त शोभांजन– सरगव नाम का लाल वृक्ष
11. मधु शोभांजन– मीठा सरगव वृक्ष
12. मधूक– महुड़ा का वृक्ष या फल

13. रसाञ्जन– रसौंत
14. हिंगुपत्री
15. राल– इस नाम से प्रसिद्ध एक औषधि।

भद्रदार्वादिगण

1. तगर– इस नाम से प्रसिद्ध वनौषधि
2. बला– बल बीज का वृक्ष
3. अतिबला– छोटी कांकसी

दूर्वादिगण

1. दूर्वा– दूब
2. श्वेत दूर्वा– सफेद दूब
3. गण्डदूर्वा– गाँठ वाली दूब
4. जवासक– जवासो
5. दुरालभा
6. वासा
7. कपिकच्छू– कौंच की फली अथवा बीज
8. क्षुद्रा
9. शतावरी– इस नाम से प्रसिद्ध औषधी
10. गुञ्जा– लाल चना
11. श्वेत गुञ्जा– श्वेत चना
12. प्रियंगु– रायण का वृक्ष
13. पद्म– लाल कमल
14. पुष्कर– श्वेत कमल
15. नीलोत्पल– नील कमल
16. सौगन्धिक
17. कुमुद– रात्रि में विकसित होने वाला कमल
18. शालूक– कमल की जड़
19. वितुन्नक– नागरमोथ

जीवन्त्यादिगण

1. जीवन्ती– हरड़े का वृक्ष
2. काकोली– इस नाम से प्रसिद्ध एक कंद
3. क्षीरकंकोली– एक कंद विशेष
4. मेद– इस नाम से विख्यात एक औषधि
5. महामेद– द्वितीय अष्टक वर्ग की एक औषधि
6. मुद्‌गरपर्णी
7. माषपर्णी– उड़द
8. ऋषभक– इन नाम का प्रसिद्ध कंद
9. जीवक– इस नाम का एक कंद
10. मधुयष्टी

विदार्यादिगण

1. विदारी– इस नाम का प्रसिद्ध कंद
2. क्षीरविदारी
3. एरण्ड– एरण्ड
4. रक्तैरण्ड– लाल एरण्ड
5. वृश्चिककाली– घास का एक प्रकार
6. पुनर्नवा
7. श्वेत पुनर्नवा
8. नागबला

9. गांगेरुकी
10. सहदेवी– इस नाम से प्रसिद्ध एक औषधि
11. कृष्णसारिवा– इस नाम से प्रसिद्ध रक्त शोधक औषधि
12. हंसपदी

दार्व्यादिगण

1. उशीर– सुगंधित वृक्ष जाति
2. चंदन– मलयगिरि चंदन
3. रक्त चंदन– लाल चंदन
4. लामज्जक
5. कालेयक– अगर में से निकला हुआ रस
6. परुषक– फालसा नाम की औषधि

पद्मादिगण

1. पद्मक– कमल बीज
2. पुण्डरीक– श्वेत कमल
3. वृद्धि– एक औषधि
4. तुकाक्षीरी– वंश लोचन
5. सिद्धि– एक औषधि
6. कर्कटा श्रृंगी– काकड़ा शींगी
7. गुडूची

परुषादिगण

1. द्राक्षा– किसमिस
2. कट्फल– काय फल
3. कतक– कतक वृक्ष का फल
4. राजादन– रायण का फल
5. दाडिम– अनार
6. शाक– साग नाम की लकड़ी का वृक्ष

अंजनादिगण

1. अंजन– इस नाम का वृक्ष, काली लकड़ी का वृक्ष
2. सौवीर– काला सूरमा
3. मांसी– जटामांसी
4. गंधमांसी– मुरमांसी

पटोल्यादिगण

1. कडका– कंकरवाला नमक
2. पाठा– काली पहाड़

गुडूच्यादिगण

1. धान्यक– कोथमी / धनिया

आरग्वधादिगण

1. काकमची
2. ग्रन्थिल
3. किराततिक्त– चिरायता
4. शैलेय– शिलापुष्प
5. सहचर– एक औषध
6. सप्तपूर्ण
7. कारवेल्ली– करेला की बेल
8. बदली– बोर का वृक्ष

अशनादिगण

1. बीजक– बीया का वृक्ष
2. तिनस– तिनस का वृक्ष
3. भूर्ज– भोज पत्र का वृक्ष
4. अर्जुन– इस नाम का वृक्ष
5. खदिर– खेर का वृक्ष
6. कदर– कगह का वृक्ष

7. मेषश्रृंगी– सोनामुखी
8. धव– इस नाम का वृक्ष
9. शिंशपा–सीसम का वृक्ष
10. ताल–ताड़ का वृक्ष
11. अगुरु– अगर का वृक्ष
12. पलाश– खाखरा का वृक्ष
13. कुमुक– सुपारी का वृक्ष
14. अजकर्ण
15. अश्वकर्ण

वरूणादिगण

1. वरुण
2. मोराट
3. अजश्रृंगी– मरोडफली/ मरडासींगी
4. अरुष्कर– भीलामा का फल

रूषकादिगण

1. रूषक
2. तुत्थ–थूंथु
3. हिंगु– हींग
4. कासीस– हीराकसी
5. पुष्पकासीस– हीराकसी के पुष्प
6. शिलाजीत

वेल्लंतरादिगण

1. वेल्लंतर
2. बूकस्थल
3. पाषाण भेद– इस नाम की प्रसिद्ध औषधि
4. काश– दर्भ जाति का तृण औषधि
5. इक्कंटा
6. इक्षु– सेलडी
7. नल– काश जाति का तृण
8. दर्भ– डाभ, कुश
9. शितबार
10. अर्क– आकड़ा
11. पिप्पली– पीपली
12. सुवर्चला– ब्राह्मी
13. इन्दीवर

रोध्रादिगण

1. जिंगिणी
2. सरला– घीया, देवदारू
3. कदली– केला का वृक्ष
4. अशोक– आसोपालव
5. एलवालुक
6. सल्लकी– सालर का वृक्ष

अर्कादिगण

1. अर्क– अर्क
2. अलर्क– वेत आकड़ा
3. विशल्या
4. भारंगी– भाडंगी नाम की औषधि
5. ज्योतिष्मती– रतनज्योत
6. कटभी– मालकांगणी
7. श्वेत कटभी– सफेद माल कांगणी
8. इंगुदी– हिंगोट का वृक्ष

सुरसादिगण

1. सुरसा– तुलसी
2. श्वेत सुरसा– सफेद तुलसी
3. फणिज्जक– बीजोरा का वृक्ष

4. कुबेर– अजमा
5. कृष्ण कुबेर– काला अजमा
6. महवक
7. अजकर्णी
8. क्षुवक
9. कपित्थपत्री
10. नंदीकान्त
11. काकमाची
12. आवसु
13. केशमुष्टि
14. भूतृण
15. निर्गुंडी–नगोड का वृक्ष

मुष्कादिगण

1. मुष्कक– लता कस्तूरी

वत्सकादिगण

1. अतिविषा– अतिविष की कली
2. जीरक– श्वेत जीरा
3. कृष्णजीरक– काला जीरा
4. उपकुंचिता

प्रियंग्वादिगण

1. पुष्करपत्री– बिल्ली का वृक्ष
2. मंजिष्ठा– मजीठ
3. शाल्मली– सेमल का गुंदर
4. मोचरस
5. सुनन्दा
6. धातकी– धातकी वृक्ष

अंबष्ठादिगण

1. अंबष्ठा
2. नन्दी– इस नाम का वृक्ष
3. कच्छुरा

मुस्तादिगण

1. भल्लातक– भीलामा का वृक्ष

न्यग्रोधादिगण

1. वट– बड़ का वृक्ष
2. पिप्पल– पीपल का वृक्ष
3. उदुम्बर– गूलर
4. जंबू– जामुन का वृक्ष
5. राजजंबू– बड़े जामुन का वृक्ष
6. काकजंबू– छोटे जामुन का वृक्ष
7. आम्र– आम
8. पियाल– चारोली
9. तिंदुक– तिंदुआ का वृक्ष

एलादिगण

1. तुरष्क– शिलारस
2. वालक– सुगंधी वाल
3. नेत्र वालक– वाल की एक जाति
4. अधः पुष्पी
5. क्षेमक
6. त्वचा– दालचिनी
7. तमालपत्र– इस नाम का प्रसिद्ध वृक्ष
8. थोयेयक
9. नख
10. श्रीवेष्ट– सर्जवृक्ष का निकला चंदरस
11. कुन्दुरूक– एक प्रकार की धूप
12. कुंकुम– केसर

13. गुग्गुल– गुगल नाम की धूप

श्यामादिगण

1. सातला
2. वृषगंधा
3. पीलू– एक प्रकार का फल
4. खटी– सफेद मिट्टी
5. त्रायमाण
6. सोमराजी
7. श्रावणी
8. महाश्रावणी
9. मंडूकपत्री
10. हपुषा– चोपचीनी का वृक्ष
11. काक नाशा–कौआठोड़ी
12. काकजंघा– इस नाम की प्रसिद्ध बूंटी
13. पर्पटक
14. विषचारि
15. राजहंस– इस नाम का प्रसिद्ध औषधि
16. पुष्करमूल– पोकरमूल
17. अरमन्तक
18. कोविदार
19. रोहितक– रोहिडा का वृक्ष
20. वंश– बांस का वृक्ष
21. वेणु
22. अंकोल्ल– अंकोल का वृक्ष
23. कौडिन्य– लोबान का वृक्ष
24. फल्गु
25. श्लेष्मान्तक– गुंदा का वृक्ष
26. तिंतिडीक– आमली का वृक्ष
27. अम्लवेतस– इस नाम से प्रसिद्ध वृक्ष
28. कपित्थ– कोठ का फल
30. केशाम्र
31. नालिकेर– नारियल
32. शमी– इस नाम की प्रसिद्ध
33. सचलिंद
34. बीजपुर– बीजोरा
35. नारिंग– नारंगी
36. जंभीर– जंबेरी
37. निंबुक– नींबू
38. आम्रतक– आम
39. पालेवत
40. खर्जूर– खजूर
41. मदनफल– मींढल
42. अक्षोट– अखरोट
43. आरूक
44. वीर
45. कुरंटक
46. चांगीरी– खट्टा नमक
47. अम्लिका– आंबली का वृक्ष
48. करोर– केरडा का वृक्ष
49. काकंडी
50. वास्तुक– एक जाति की सब्जी
51. कुसुंभ– कुसुंबी के फूल
52. लाक्षा– लाख
53. लांगली– एक जाति की विषभरी बेल

54. मिश्रेया– सुवा
55. गंडरीक
56. काकसी
57. वरूणा
58. मूलक– मूली
59. तंदुलीयक
60. द्रोणपुष्पी– सूर्यमुखी वृक्ष
61. तामलकी– इस नाम से विश्रुत
62. ब्राह्मी– इस नाम से प्रसिद्ध औषधि
63. ब्रह्मजीरी
64. अरिष्ट– आरेठा का वृक्ष
65. पुत्रजीव– श्वेत पुष्प की भोंयरींगणी
66. सहदेवी
67. कुष्माण्डक
68. महातुंबी– बड़ीतुंबी की बेल
69. चिर्भटी– चिभड़ा की बेल
70. कटुचिर्भटी– कडवे चिभड़ा की बेल
71. शुनिकर्ण
72. अहिमार
73. विष्णुक्रान्ता– अपराजिता
74. क्षीरिणी– रायण का वृक्ष
75. सर्पाक्षी
76. नकुली
77. गृद्धनखी
78. अहिंस्रो
78. कर्दमपुष्पी– मूंग की दाल
79. करवीर– श्वेत कणेर
80. रक्त करवीर– लाल कणेर
81. धत्तूरक– धतूरा
82. यवानी– अजवायन
83. शतपुष्पा
84. लहसुन
85. पलांडू
86. वराही– खीलोड़ा नाम का कंद
87. मांसरोहिणी– कडु
88. कुलत्थिका
89. जतुका
90. पुष्पांजन
91. वृद्धदारू
92. वालमुट
93. वन्ध्या कर्कोवांकी– टांझकंकोडी
94. त्रिपत्रिका– तरवरण का वृक्ष
95. शंखपुष्पी
96. अश्वखुर
97. बंधन
97. पिंजीतक– लोबान धूप
98. स्वर्णक्षीरी
99. सिंदुबार– सिंदोडा का वृक्ष
100. अश्वगन्धा– आसगन्ध
101. मदयंती– मोगरा की बेल
102. भृंगराज– जल भांगरा
103. शिरीष
104. अगस्ति– अगथिओ
105. नली

106. मन्दारक
107. हिंताली
108. मोहिनी
109. गोधापदी
110. महाश्यामा
111. देवगंधा
112. विटिका– पीला चंदन
113. दुर्गंधिलिका
114. आधाटक
115. स्वर्णपुष्पी– केतकी नाम का पीला पुष्प
116. लक्ष्मणा– इस नाम का कंद
117. वज्रशूल
118. पलंकषा– रक्तपलाश
119. दधिपुष्पी– श्वेत अपराजिता
120. कुर्कटपाद
121. गोजिह्वा– गांजवा
122. तुनहिका
123. कस्तूरी– इस नाम से प्रसिद्ध
124. कर्पूर– कपूर
125. जातिपत्री– जावंत्री
126. जातीफल– जायफल
127. कक्कोलक– सुगंधी कोकला
128. लवंग– लौंग
129. नटी
130. दमनक– मरूआ नाम का वृक्ष
131. मुरा
132. कर्चूर– कचूरा
133. तुंबरू
134. मालती– चमेली की बेल
135. मल्लिका– एक प्रकार का पुष्प
136. यूथिका– जूही की बेल
137. सुवर्ण यूथिका
138. वासंती– एक जाति का पुष्प
139. चंपक– चम्पक नाम का वृक्ष
140. बकुल– बोलसिरि नाम का वृक्ष
141. तिलक– तिलक वृक्ष
142. अतिमुक्तक– बट मोगरा
143. कुमारी– गंवार फली
144. तरणी
145. कुन्द– कुन्द नाम का वृक्ष
146. अट्टहास
147. अतसी– अलसी की दाल
148. कोरंटक
149. सुबंधा
150. हिंगुल– पृथ्वी की एक जाति
151. मन:शिला– मनशील, एक प्रकार का पत्थर
152. गंधक– इसी नाम से प्रसिद्ध
153. गैरिक– सोना गेरू
154. खटिका
155. हरिताल– हरताल, पृथ्वीकाय की एक जाति
156. पारद– पारा
157. सौराष्ट्री– एक जाति की मिट्टी
158. गोरोचन– इस नाम से प्रसिद्ध चंदन
159. तुबरी
160. विटमाक्षिक

161. अभ्रक– अबरख
162. वाताम– बदाम
163. दांति
164. कारवेल्ल
165. कौशी
166. मुंडी– मुंडापाती बूंटी
167. महामुंडी– एक किस्म की बूंटी
168. प्रपुन्नाट– चक्रमर्द
169. बोल– हीलाबोल
170. सिंदूर– प्रसिद्ध नाम
171. शंखप्रस्तरी– शंखजीरू
172. शृंगाटक– सिंघोडा
173. रोध्र
174. कांपिल्ल
175. हंसपदी
176. कर मंद
177. घूनीरा– एक जाति का घास
178. छूनीरा
179. सेसकी
180. चोआ।

ऊपर वर्णित क्रयाणकों की सामग्री गुजरात और मारवाड़ प्रान्त में सुलभता से उपलब्ध हो जाती है। यदि कोई क्रयाणक वस्तु प्राप्त न हो तो उसके स्थान पर दूसरा क्रयाणक भी खरीद सकते हैं, बशर्तें उसमें क्रयाणक का लक्षण घटित होना चाहिए। शास्त्रों में क्रयाणक का निम्न लक्षण बताया गया है–

अप्रसिद्धं रोगहरं, भेषजं यन्महीतले ।
तत्क्रयाणकमुद्दिष्टं, शेषं वस्तु प्रकीर्तितम् ।।

उपर्युक्त सूची के अतिरिक्त जो पदार्थ अप्रसिद्ध होने पर भी रोगनाशक औषधि के रूप में उपयोगी हों उन्हें क्रयाणक में परिगणित कर लेना चाहिए और जिसमें क्रयाणक का उक्त लक्षण घटित न हो उन्हें सामान्य वस्तु के रूप में गिनना चाहिए। पंसारी की दुकान पर मिलती सभी वनस्पतियाँ और मृद्दारसींग आदि खनिज द्रव्यों को भी क्रयाणक में गिनना चाहिए।

मन्त्र न्यास का प्रासंगिक स्वरूप

भारतीय संस्कृति की अध्यात्म मूलक प्रवृत्तियों जैसे प्रतिष्ठा, दीक्षा, महापूजन, जाप आदि के अवसर पर अनुष्ठानकर्त्ता और आयोजक के शारीरिक अंगों पर मन्त्रों का न्यास किया जाता है।

न्यास का अर्थ है स्थापना करना। किसी मन्त्र या देवता (इष्ट) विशेष का इस पिण्ड रूप शरीर पर बाह्य एवं आभ्यन्तर रूप से स्थापन करना न्यास कहलाता है। लगभग सभी धर्मों में न्यास की यह प्रक्रिया किसी न किसी रूप में

प्रचलित है। जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम आदि के सभी धर्माचार्यों ने मन्त्र (इबादत) के साथ न्यास को महत्त्व दिया है।

मुद्रा विज्ञान के अनुसार न्यास एक अत्यन्त वैज्ञानिक विधि है। हाथ शरीर का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। हाथ की पाँचों अंगुलियों से अलग-अलग विद्युत प्रवाह निकलता है और पाँचों अंगुलियाँ पाँच तत्त्वों की प्रतीक भी हैं। जैसे अंगूठा– अग्नि तत्त्व, तर्जनी– वायु तत्त्व, मध्यमा– आकाश तत्त्व, अनामिका– पृथ्वी तत्त्व और कनिष्ठा– जल तत्त्व का नियंत्रक है। इस प्रकार जब हम हाथों की अंगुलियों से निकलने वाले विद्युत प्रवाह द्वारा शरीर के अन्य चक्रों को स्पर्श करते हैं तो उन अंगों में निहित शक्ति जागृत हो जाती है। शास्त्रों में भी इस प्रक्रिया का महत्त्व दर्शाते हुए कहा गया है कि केवल न्यास के द्वारा भी देवता की प्राप्ति और मन्त्र सिद्धि हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि न्यास शक्तियों को जागृत करने की रहस्यमय विधि है।

जैसे किसी यन्त्र को संचालित करने से पूर्व उसके मुख्य स्विच को दबाया जाता है, समायोजित (Adjust) किया जाता है तभी वह यन्त्र ठीक प्रकार से कार्य करता है वैसे ही इस शरीर रूपी अद्भुत यन्त्र को भी समायोजित करने के लिए हाथों के विशेष स्पर्श से शरीर के भिन्न-भिन्न चक्रों (स्विच) को ऑन करके जागृत किया जाता है। इससे शरीर में एक जैविक ऊर्जा का निर्माण होता है। तत्फलस्वरूप साधक के विचारों में अदम्य उत्साह, अद्‌भुत स्फूर्ति और नवीन चेतना का संचार होने लगता है।

मन्त्र विज्ञान के अनुसार किसी भी मन्त्र का निरन्तर जप वातावरण में एक विशेष प्रकार की विद्युत तरंग का कम्पन (Electric Vibration) उत्पन्न करता है जिससे साधक की आत्मशक्ति या मनोबल में वृद्धि होती है और संकल्प शक्ति दृढ़ होती है। जब साधित मन्त्र का एक दिव्य भावना के साथ शरीर के विभिन्न अवयवों पर स्पर्श किया जाता है तो भीतर में एक ऐसा आत्मविश्वास उत्पन्न हो जाता है जिससे सभी इच्छित कार्यों में पूर्ण सफलता मिलती है।

ईसाइयों में अशुभ का निर्गमन और शुभ का स्थापन करने के लिए हृदय के समीप हाथ को न्यास की तरह क्रॉस बनाते देखा जाता है। यवन धर्म में इबादत या प्रार्थना के समय कई बार न्यास की भाँति हाथों का प्रयोग किया जाता है। इसमें सीधा हाथ उल्टे कंधे पर और उल्टा हाथ सीधे कन्धे पर आ जाता है। इस तरह विभिन्न धर्मों में न्यास क्रिया प्रचलित और प्रवर्तित है।

यौगिक दृष्टिकोण से शरीर के प्रत्येक स्नायु गुच्छ पर एक चक्र उपस्थित है। उन अनन्त चक्रों में विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ काम करती हैं ऐसा यौगिक अभिमत है। विधि विशेष और भाव के द्वारा विभिन्न प्रकार के न्यासों को बार-बार करते रहने से उन चक्रों पर न्यासकर्त्ता की अंगुलियों से निकले विद्युत प्रवाह द्वारा विशेष कम्पन अथवा चक्रों में सजीवता उत्पन्न हो जाती है और उससे अध्यात्म मार्ग पर अग्रसर होने के लिए अद्वितीय सहायता प्राप्त होती है।

तान्त्रिक ग्रन्थों के अनुसार किसी एक मन्त्र को सिद्ध करने से पूर्व सम्पूर्ण विधि-विधान करने में कम से कम एक घण्टे का समय लग जाता है। इससे सुस्पष्ट होता है कि मन्त्रसिद्धि, कार्यसिद्धि एवं आत्मसिद्धि हेतु न्यास एक अनिवार्य क्रिया है।[25]

प्रतिष्ठा विषयक शंका-समाधान

शंका– आसन किसे कहते हैं?

समाधान– प्रतिष्ठा सम्बन्धी क्रियानुष्ठानों में आसन शब्द का प्रयोग बहुलता से देखा जाता है। एक मत के अनुसार आसन का अर्थ 'बैठना' है वहीं दूसरे मत के अनुसार बैठने योग्य स्थान को भी आसन कहा गया है। गणि कल्याणविजयजी ने बैठने योग्य स्थान को आसन कहा है। शिल्प शास्त्र में देवी-देवताओं को प्रतिष्ठित करने योग्य स्थान के लिए आसन शब्द प्रयुक्त है। कोई भी प्रतिमा पद्मासन में (बैठी हुई) हो अथवा कायोत्सर्ग मुद्रा में (खड़ी हुई) हो, उसे जिस स्थान पर प्रतिष्ठित किया जाता है उसे आसन, सिंहासन, पबासन आदि कहते हैं। यदि आसन का अर्थ 'बैठना' करें तो ऊर्ध्वस्थित प्रतिमा के लिए विरोध आयेगा, क्योंकि खड़ी प्रतिमा के लिए कोई दूसरा विधान नहीं है।

शंका– अर्वाचीन प्रतिष्ठा की पूजा विधियों में 'सेवंतरां' नाम का प्रयोग पुष्प के लिए होता है। यह सेवंतरां पुष्प क्या है तथा वर्तमान में इस नाम का पुष्प उपलब्ध है या नहीं?

समाधान– विधिकारकों ने जिसे सेवंतरां नाम का पुष्प कहा है उसे आधुनिक युग में गुलाब का पुष्प कहते हैं। गुलाब यह उर्दू शब्द है। संस्कृत में इसका अर्थ 'जलीयपुष्प' होता है। 'सेवंतरां' यह शतपत्र शब्द का अपभ्रंश है। संस्कृत कोश में जलकमल को सहस्रपत्र और स्थलकमल को शतपत्र नाम से

उल्लेखित किया गया है। जैसा कि मूलपाठ है– 'सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम्।' 'कण्टका पद्मनाले' इत्यादि वाक्यों में कमल को कांटा कहा गया है उसी प्रकार शतपत्र को गुलाब के आश्रित ही समझना चाहिए, जलकमल के सन्दर्भ में नहीं।

शंका– अंजनशलाका और प्राण प्रतिष्ठा एक है या भिन्न-भिन्न?

समाधान– अंजनशलाका प्राण प्रतिष्ठा नहीं है। जिन प्रतिमा में प्राण, अपान आदि वायु दशक का न्यास करना प्राण प्रतिष्ठा कहलाता है। वर्तमान की अंजनशलाकाओं में च्यवन कल्याणक की विधि के अन्तर्गत प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। अंजनशलाका को प्राणप्रतिष्ठा कहना अज्ञानता है।

शंका– खंडित प्रतिमा को विसर्जित करते समय की जाने वाली क्रिया सत्त्व को निस्तेज करने हेतु की जाती है तो यहाँ 'सत्त्व' शब्द का अभिप्राय क्या है?

समाधान– यह क्रिया मंत्र रूप सत्त्व को निस्तेज करने के उद्देश्य से नहीं करते हैं क्योंकि प्रतिमा के खंडित होने पर प्रतिष्ठा का सान्निध्य स्वयं समाप्त हो जाता है। इसलिए जीर्णोद्धार की क्रिया में व्यन्तरादि देवरूप सत्त्व को खींचा जाता है। किसी लाक्षणिक सुन्दर देवप्रतिमा के खंडित होने के पश्चात भूत-प्रेतादि की शक्तियों का उसमें अधिष्ठान होना सम्भव है। यदि खंडित प्रतिमा में निम्न जाति के देवों का वास हो जाये और उस प्रतिमा को उसी रूप में भंडारगत कर दिया जाये तो किसी तरह की हानि या उपद्रव होने का भय रहता है अतः अन्य देव के अधिष्ठित सत्त्व को दूर करने के लिए विसर्जन क्रिया करते हैं।

शंका– मातृशाटिका (माइसाडी) का अभिप्राय क्या है तथा उसका उपयोग कब और क्यों किया जाता है?

समाधान– लग्न प्रसंग पर कन्या मातृघर (ननिहाल) की साड़ी (वेश) पहनती है उसे मातृशाटिका कहा जाता है। उसी प्रकार के कुसुंबी (लाल) रंग के वस्त्र को प्रतिष्ठा विधिकारों ने 'माइसाड़ी' कहा है।

श्रीचन्द्रसूरिकृत सुबोधासामाचारी के अनुसार जिन प्रतिमा की अधिवासना और प्रतिष्ठा इन दो क्रियाओं के समय मातृशाटिका का विधान किया जाता है अर्थात मूर्ति के ऊपर माइसाड़ी ओढ़ाते हैं। इस प्रतिष्ठा पद्धति के अनुयायियों ने भी श्रीचन्द्रसूरि के मत का ही अनुसरण किया है। आचार्य पादलिप्तसूरिकृत निर्वाणकलिका के अनुसार केवल अधिवासना के समय ही माइसाड़ी का

आरोपण करते हैं तथा प्रतिष्ठा प्रसंग पर श्वेत वस्त्र का आच्छादन करते हैं।

इस प्रकार अधिवासना और प्रतिष्ठा– इन दोनों अवसरों पर मातृशाटिका का उपयोग होता है।

शंका– अंजनशलाका–प्रतिष्ठा सम्बन्धी प्रमुख विधि-विधानों को सम्पन्न करने के लिए प्राय: स्वतन्त्र मण्डपों की रचना की जाती हैं। वहाँ कुंभ स्थापना के निकट क्षेत्रपाल की स्थापना करके उसे तेल-सिंदूर चढ़ाते हैं, यह विधि कितनी उचित है ?

समाधान– प्रतिष्ठामंडप में क्षेत्रपाल स्थापना का विधान नहीं है, केवल जिनबिम्बों की दाहिनी ओर उसका मंत्र बोलकर पुष्पों एवं अक्षतों से पूजा करने का उल्लेख है। श्री सकलचन्द्रकृत प्रतिष्ठाकल्प में क्षेत्रपाल का वर्णन करते हुए एक काव्य रचा गया है उसमें अफीम, तेल, गुड़, चंदन, पुष्प एवं धूपादि के भोग को स्वीकार करने की प्रार्थना की गई है 'सिन्दूर' शब्द का संकेत नहीं है।

प्रतिष्ठा कल्पों में क्षेत्रपाल का आह्वान और पूजन करने का मंत्र तो प्राप्त होता है किन्तु स्थापना मंत्र नहीं है। गणि कल्याणविजयजी के अनुसार नारियल अथवा पत्थर के ऊपर तेल-सिंदूर चढ़ाकर क्षेत्रपाल की स्थापना करने का निर्देश उनके प्रतिष्ठाकल्प कल्याणकलिका तक किसी भी कल्प में नहीं है अत: तेल-सिंदूर चढ़ाने की परम्परा अर्वाचीन है।

शंका– यक्ष-यक्षिणी की प्रतिष्ठा के प्रसंग पर कुछ विधिकारक जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा के निमित्त भी होम करवाते हैं तो यह क्रिया कहाँ, कितनी उचित है? इसकी स्पष्टता आवश्यक है।

समाधान– जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा में होम क्रिया का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। यक्ष-यक्षिणी की स्वतन्त्र रूप से प्रतिष्ठा हो तो भी होम की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यक्ष-यक्षिणी परमात्मा के सेवक रूप में प्रतिष्ठित होते हैं, विशिष्ट देवी-देवता के रूप में नहीं। दूसरा हेतु यह है कि प्रभु भक्त देवी-देवता अरिहंत परमात्मा के सान्निध्य में अग्नि मुख से भोग्यवस्तु की इच्छा स्वप्न में भी नहीं रखते हैं।

आचारदिनकर में होम का निर्देश है जो तान्त्रिक मत का प्रभाव है। इस प्रतिष्ठाकल्प के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रतिष्ठा कल्पकारों ने इस क्रिया को स्वीकार नहीं किया है। आचार्य पादलिप्तसूरि तांत्रिक युग के समर्थ विद्वान थे, फिर भी स्वयं की प्रतिष्ठापद्धति में हवन के नाम तक का भी उल्लेख नहीं किया

है। इससे स्पष्ट होता है कि होम जैन परम्परा की क्रिया नहीं है।

शंका— प्रतिष्ठा होने के पश्चात जिनबिम्ब के हाथ से कंकण डोरा कब खोलना चाहिए?

समाधान— यदि विशेष कारण हो तो प्रतिष्ठा होने के पश्चात उसी दिन सौभाग्यमंत्र को पढ़कर कंकण डोरा खोल देना चाहिए। यदि शीघ्रता न हो तो प्रतिष्ठा के पश्चात तीसरे, पाँचवें, सातवें आदि विषम संख्या वाले दिन में कंकण खोलने की क्रिया करनी चाहिए। जिस दिन चन्द्रबल हो उस दिन स्नात्रकार अथवा विधिकार स्वयं के हाथ का कंकण डोरा तीन नवकार मन्त्र गिनकर भी खोल सकते हैं किन्तु जिनबिम्बों के हाथ से यह डोरा विधिवत खोला जाना चाहिए।

आजकल के कुछ विधिकारक दीक्षा कल्याणक की उजवणी के प्रसंग पर सभी प्रतिमाओं के कंकण डोरे खोल देते हैं जो अनुचित है। क्योंकि जिस कार्य के प्रयोजन से कंकण बांधा जाता है उस कार्य के पूर्ण होने के बाद ही यह खोलना चाहिए।

शंका— गृह मन्दिर में मल्लिनाथ, नेमिनाथ और महावीर स्वामी इन तीन तीर्थंकरों के बिम्बों की प्रतिष्ठा करवाने का निषेध क्यों?

समाधान— यह परिपाटी शास्त्रोक्त नहीं है, किन्तु सर्वप्रथम खरतरगच्छ के किसी आचार्य ने गृह चैत्य में अमुक प्रतिमाओं की स्थापना का निषेध किया और प्रवृत्ति रूढ़ हो गई। तदनन्तर 17वीं-18वीं शती में उपाध्याय सकलचन्द्रजी ने भी स्वयं के प्रतिष्ठाकल्प में उस गाथा का उद्धरण दिया है इससे पूर्वमत का पूर्ण समर्थन हो जाने के कारण आज भी इन प्रतिमाओं को गृह चैत्य में पूजने का निषेध किया जाता है। वस्तुतः गृह मन्दिर में इन प्रतिमाओं की पूजा करने में सन्देह रखना अनुचित है।

शंका— वर्तमान में कितने ही स्थानों पर प्रतिष्ठा मंडप अथवा उसके निकटवर्ती भाग में कई घटना चित्र दिखाये जाते हैं उनमें भयंकर उपसर्ग, पशुओं का क्रन्दन, शिकार आदि से सम्बन्धित चित्र भी होते हैं। प्रतिष्ठा के मंगल प्रसंग पर इस तरह की झाकियाँ दिखाना उचित है?

समाधान— जहाँ केवल मानसिक उत्साह और मंगलमय वातावरण होना चाहिए ऐसे शुभ प्रसंगों पर पूर्वसूचित चित्र नहीं दिखाने चाहिए, क्योंकि उपसर्ग आदि की घटनाएँ देखने से मन में खेद और दुःखानुभूति की स्थिति उत्पन्न हो

सकती है और उससे मानसिक प्रसन्नता खण्डित होने की संभावना रहती है। पूर्वाचार्यों ने भी कहा है कि जैसा चित्र होता है चित्त में वैसे ही भाव बनते हैं अतएव मंगलकारी अवसरों पर आनन्दवर्द्धक प्रदर्शनियाँ लगानी चाहिए।

शंका– कुछ आचार्यों के मतानुसार जिनालय में लोहधातु का उपयोग नहीं होना चाहिए, ऐसा क्यों?

समाधान– आजकल मन्दिरों के निर्माण में प्राय: पत्थरों का उपयोग होता है और उसकी स्थिति लगभग हजार वर्ष की होती है। ऐसे चिरस्थायी कार्यों में लोहे का सरिया आदि प्रयोग करना युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि पत्थर की अपेक्षा लोहे की स्थिति अल्प है। इसी के साथ लोहा कालान्तर में काट से फूलकर पत्थर को फाड़ सकता है इसलिए इस धातु के उपयोग का निषेध करते हैं। कुछ जन लोहा को निम्नधातु समझते हैं और इसी कारण मन्दिर में इसे वर्जित मानते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। पूर्वकाल में लोहा को पंचरत्नों में गिना जाता था और प्रतिष्ठा में कृष्ण लोहा की मुद्रिका का उपयोग होता था।

शंका– राद्धबलि और कोरक बलि किसे कहते हैं?

समाधान– राद्ध अर्थात रांधा हुआ। देवी-देवताओं को अर्पित एवं तुष्ट करने के लिए अग्नि पर सिझाया गया अथवा रांधा गया धान्य राद्धबलि कहलाता है तथा केवल भिगोया गया धान्यादि कोरकबलि कहलाता है। इन्हें बलि बाकला भी कहते हैं।

पूर्वकाल में रांधे हुए धान्य में घृत, शक्कर, मेवा आदि विशिष्ट पदार्थों को मिलाने के पश्चात उसे दसों दिशाओं में उछाला जाता था, किन्तु परवर्ती काल में इस परम्परा का निर्वहन मात्र करने की दृष्टि से कोरी बलि ही प्रक्षेपित की जाती है। कोरी से कोरक शब्द अस्तित्त्व में आया है। कई जगह आज भी राद्धबलि ही उछालते हैं और मूल विधि भी यही है।

प्रतिष्ठा सम्बन्धी विधि-विधानों का अनुशीलन एवं विविध पक्षों से उनका अध्ययन करते हुए जो तथ्य ज्ञात हुए या अनुभूत हुए उन्हें इस अध्याय में प्रस्तुत करने के बाद पाठक वर्ग से यही निवेदन है कि भ्रम, रूढ़, परम्परा, जन मान्यता आदि के बीच यदि प्रत्येक अनुष्ठान के आध्यात्मिक पक्ष को भी ध्यान में रखकर उसे सम्पन्न करने का प्रयास करें तो निश्चित ये सभी प्रसंग आत्मकल्याण में हेतुभूत बन सकते हैं। इसी के साथ इनके विविध पक्षों का संक्षिप्त ज्ञान प्रत्येक विधान के उचित सम्पादन में सहयोगी बन सकता है। यदि

इस ज्ञान को आचरण में लाने का प्रयास किया जाए। यही इस अनुशीलन की सार्थकता होगी।

सन्दर्भ-सूची

1. *कल्याण कलिका, भा.1, पृ. 191*
2. *प्रासाद मंडन, 4/48*
3. *वास्तुसार, पृ. 119*
4. *शिल्प रत्नाकर, 5/102*
5. *कल्याणकलिका, भा. 2, पृ. 250*
6. *प्रासाद मंडन, 4/44*
7. *कल्याण कलिका, भा. 2, श्लो. 13, पृ. 253*
8. *प्रासाद मंडन, 4/45*
9. *कल्याण कलिका, भा. 2 श्लो. 9-11*
10. *शिल्प रत्नाकर, 5/98*
11. *प्रतिष्ठा सारोद्धार, पृ. 81*
12. *वही, 16-18*
13. *अपराजित पृच्छा, 144 उद्धृत-प्रासाद मंडन, 4/44 की टीका*
14. *प्रासाद मंडन, 4/44*
15. *कल्याण कलिका, भा. 1, पृ. 59*
16. *वही, पृ. 59*
17. *वही, पृ. 6*
18. *प्रासाद मंडन, पृ. 18*
19. *वास्तुसार प्रकरण, पृ. 104*
20. *कल्याण कलिका, पृ. 7-8*
21. *वही, पृ. 8*
22. *वही, पृ. 8*
23. *वही, पृ. 9*
24. *गरापहारिणी मुद्रा, गरूडस्य यथा तथा।*
    जिनस्याऽप्येनसो हंत्री, दुरितारति पातिनः ॥
    आचारसार, 9/27
25. *मुद्रा विज्ञान, पृ. 49-51*

●

अध्याय—14

प्रतिष्ठा विधानों के अभिप्राय एवं रहस्य

प्रतिष्ठा अनुष्ठान से सम्बन्धित अनेक विषयों एवं विधि-विधानों की चर्चा हमने पूर्व अध्यायों में की जितने आवश्यक यह विधि-विधान हैं उतना ही जरूरी है इन विधि-विधानों में छुपे रहस्य, उनकी गहराई एवं उनके हेतुओं को जानना। क्योंकि तभी उन क्रियाओं एवं विधियों से हमारा संपर्क अंतर मन से जुड़ सकता है। ऐसे भी कई तथ्य है जो मन में विविध प्रकार की शंकाएँ उत्पन्न करते हैं तथा कई बार उनके मूल कारणों को न जानने के कारण विभ्रान्त मान्यताएँ जन मानस में स्थापित हो जाती है। जैसे कि जैन धर्म निवृत्ति प्रधान है और यहाँ पर वीतराग परमात्मा की आराधना का ही निर्देश है परन्तु प्रतिष्ठा विधानों में कई स्थानों पर देवी-देवताओं के आह्वान, पूजन या उन्हें सामग्री अर्पण करने का वर्णन क्यों आता है? ऐसे ही बलिप्रक्षेपण, अष्टाह्निका महोत्सव आदि कई विधान हैं जिनके विषय में लोग अनेक प्रकार के तर्क प्रस्तुत करते है। उन्हीं रहस्यों से आम जनता को अवगत करवाना, उसके शास्त्रीय निर्देश एवं प्रमाणों को प्रस्तुत करना आदि वर्तमान संदर्भों में आवश्यक प्रतीत होता है।

जब तक किसी भी क्रिया के मर्म एवं उसके प्रयोजन का ज्ञान न हो तब तक उस क्रिया के प्रति अहोभाव का वर्धन नहीं होता एवं भाव रहित क्रिया कभी भी कर्म निर्जरा में हेतुभूत नहीं बनती। इसीलिए प्रतिष्ठा संबंधी विधानों के रहस्य प्रामाणिक ग्रन्थों एवं गीतार्थ मुनि भगवंतों के अनुसार बताने का प्रयास किया जा रहा है।

देवी-देवताओं को फल आदि क्यों चढ़ाएँ जाते हैं?

प्रतिष्ठा के दिनों में सिद्धचक्र, बीशस्थानक, शान्तिस्नात्र आदि कई महापूजन पढ़ाए जाते हैं। उस समय आमन्त्रित देवी-देवताओं एवं क्षेत्रपाल आदि को विशिष्ट प्रकार के फलादि चढ़ाते है।

यह सामान्य लोक व्यवहार है कि आगन्तुक मेहमान गुजरात, मारवाड़,

राजस्थान, बंगाल आदि जिस प्रान्त का हो उसे उस प्रान्त का भोजन करवाकर ही सन्तुष्ट किया जा सकता है, अन्य प्रान्तों का स्वादिष्ट भोजन करवाने पर वह खुश हो ही ऐसा जरूरी नहीं हैं। जैसे गुजराती व्यक्ति पतली रोटी या थेपला, नमकीन, मीठी दाल आदि का भोजन कर अधिक प्रसन्न होता है। वैसे ही भिन्न-भिन्न जाति के आमन्त्रित देवी-देवताओं को जो भोजन प्रिय है उन्हें वैसा ही भोजन अर्पित करके प्रसन्न किया जा सकता है। देवों के सन्तुष्ट रहने से सभी अनुष्ठान निर्विघ्न एवं शुभ फलदायी होते हैं।

प्रतिष्ठा के दिनों में सकलीकरण के पश्चात शुचिविद्या आरोपण करने का क्या हेतु है?

सकलीकरण के द्वारा शरीर एवं आत्मा का रक्षा कवच बन जाता है। किन्तु प्रतिष्ठा एक श्रेष्ठतम मांगलिक अनुष्ठान होने से शुचिविद्या के द्वारा निर्मित कवच को और अधिक शक्तिशाली बनाया जाता है तथा इससे कवच का बल अनन्त गुणा बढ़ जाता है।

प्रतिष्ठा विधि पाठ में ''सकंकणहस्ताभिर्नारीभिः.....वर्त्तनं कारणीयं'' उल्लेख का क्या अभिप्राय है?

उक्त पाठ का भावार्थ यह है कि प्रतिष्ठा हेतु विविध औषधियाँ एवं मिट्टी आदि मंगवाकर उनका खंडन-पीसण आदि करना होता है। वह कार्य हाथ में कंकण धारण की हुई सधवा स्त्रियों के द्वारा करवाया जाना चाहिए।

वर्तमान में औषधियों के तैयार चूर्ण भी मिलते हैं फिर भी कई जगहों पर मूल विधि से औषधियाँ पिसवाई जाती है। स्मृति मानस मंदिर, अहमदाबाद की प्रतिष्ठा के दौरान ऐसी समग्र विधि की गई थी, नाभिनंदनोद्धार प्रबंध में इस विषय का स्पष्ट उल्लेख है। यथार्थतः नारियों द्वारा औषधि पिसवाना ही सही विधि है।

प्रतिष्ठा पाठ

'सूरिः कंकण मुद्रिका हस्तः.....चारोपयति' के अनुसार प्रतिष्ठाचार्य को स्वर्ण मुद्रिका एवं स्वर्ण कंकण पहनकर ही सकलीकरण करना चाहिए इसका क्या कारण है?

अंजन विधान के दौरान आचार्य इन्द्र सदृश बनते हैं ऐसा माना जाता है, अतः ककंण-मुद्रिका आदि धारण करने का निर्देश है। इस समय अखण्ड वस्त्र

यतना पालन एवं शुभ भावों की अक्षुण्णता को बनाए रखने के उद्देश्य से पहनते हैं। वर्तमान में कई आचार्य कंकण-मुद्रिका के स्थान पर केशर-बादला से भी उस प्रकार का आलेखन करवा कर नेकाचार पूर्ण करते हैं।

नूतन बिम्बों का आवश्यक कर्म सम्पन्न करते समय आचार्य के द्वारा तर्जनी और रौद्र मुद्रा क्यों दिखायी जाती है?

मुद्रा प्रयोग एक तान्त्रिक कर्म है। प्रतिमा में कोई दुष्ट देव अधिष्ठान कर बैठा हो तो उस क्षुद्रतत्त्व को भगाने के लिए तर्जनी एवं रौद्र मुद्रा दिखाते हैं।

नूतन बिम्बों को मुद्गर आदि अन्य मुद्राएँ दिखाने का अभिप्राय क्या है?

इस विधि का गूढ़ार्थ जानने के लिए मंत्र-तंत्र प्रधान शास्त्रों का ज्ञान आवश्यक है। सामान्यतया बिम्ब का रक्षण एवं उसे स्थायित्व प्रदान करने के लिए मुद्राओं के दर्शन करवाते हैं।

नूतन बिम्बों के दाहिने हाथ में पंचरत्न की पोटली एवं सफेद सरसों की पोटली क्यों बाँधते हैं?

यह एक रक्षा पोटली है। इसे जिनबिम्बों को बुरी नजर से बचाने एवं भूत-प्रेत आदि दुष्ट शक्तियों से रक्षा करने के उद्देश्य से बांधते हैं।

अठारह अभिषेक के दौरान गरूड़, मुक्ताशुक्ति एवं परमेष्ठी मुद्राएँ क्यों दिखाते हैं?

अठारह अभिषेक के अन्तर्गत गरूड़ मुद्रा दिखाने से यदि वातावरण में विष आदि व्याप्त हो तो उनका प्रभाव नष्ट हो जाता है। मुक्ताशुक्ति मुद्रा मूर्ति की उज्ज्वलता एवं सौम्यता में अधिक निखार लाती है तथा पंच परमेष्ठी मुद्रा के द्वारा मंगल भावों में अभिवृद्धि होती है।

अन्य सुपरिणाम ज्ञानी गम्य है।

नूतन बिम्बों को दीपक क्यों दिखाना चाहिए?

प्रतिष्ठा क्रिया के दौरान यह विधि केवलज्ञान के प्रतीक के रूप में की जाती है।

नूतन बिम्बों के समक्ष स्वर्ण पात्र में ही अर्घ्य का अर्पण क्यों?

प्रतिष्ठा एक उत्कृष्ट विधान है और तीर्थंकर प्रभु इस दुनिया में सर्वोत्तम हैं अतएव उत्तम पुरुष की पूजा का पात्र भी उत्तम होना जरूरी है। इसी दृष्टि से स्वर्ण पात्र में अर्घ्य चढ़ाते हैं।

नूतन बिम्बों का सर्वाङ्ग लेपन क्यों?

यह विधान सभी प्रतिमाओं में पूज्यत्व भावों का आरोपण एवं अशुद्धि का परिमार्जन करने के उद्देश्य से किया जाता है।

चल और अचल प्रतिष्ठा का तात्पर्य क्या है?

चल अर्थात गतिमान या अस्थिर और अचल का अर्थ है स्थिर। जिन प्रतिमाओं का प्रतिष्ठा के बाद भी स्थान आदि परिवर्तित किया जा सके वे चल प्रतिष्ठित होती हैं तथा जो एक स्थान पर निश्चल स्थापित रहती है उनकी अचल प्रतिष्ठा होती है। सामान्यत: गृह मंदिरों में चल प्रतिष्ठा होती है। स्नात्र योग्य पंचधातु की प्रतिमाएँ चल होती हैं पाषाण की प्रतिमा अचल होती है। चल बिम्ब की ईत्वर प्रतिष्ठा होती है और अचल बिम्ब की प्राय: यावत्कथिक की जाती है।

नूतन बिम्बों के दोनों हाथों में मदनफल और मरडासिंगी क्यों बांधते हैं?

उक्त दोनों औषधियों का शरीर एवं मन पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। प्रतिमा के हाथों में इन्हें सौभाग्यवर्धन हेतु बांधा जाता है। इन्हें बांधकर जिनबिम्ब के अक्षुण्ण प्रभावकता की भावना की जाती है।

जिनबिम्बों को अखण्ड लाल वस्त्र से आच्छादित करने का प्रयोजन क्या है?

प्रतिष्ठा सम्बन्धी कुछ आवश्यक क्रियाएँ पूर्ण होने के पश्चात नूतन बिम्बों को लाल वस्त्र ओढ़ाते हैं। यह विधि जिनबिम्बों के रक्षण, गुण स्थिरीकरण एवं सौभाग्य वर्धन के उद्देश्य से करते हैं। व्यवहार जगत में लाल वर्ण आकर्षण एवं सौभाग्य का सूचक माना गया है।

अंजनशलाका की विधि सम्पन्न करने से पूर्व नूतन बिम्बों के आगे घृतपात्र क्यों रखते हैं?

घृत आयु वृद्धिकर माना गया है। उसे बिम्ब के आगे रखने का तात्पर्य

प्रतिमा की प्रभावशीलता और अज्ञान तिमिर हरण शक्ति को निरन्तर प्रवर्द्धमान रखना तथा घृत की भाँति प्रतिमा के तेज को देदीप्यमान रखना है। इन्हीं शुभ भावों को मूर्तरूप देने हेतु यह विधि करते हैं।

अंजन विधि में किन-किन वस्तुओं का प्रयोग होता है और क्यों?

नूतन बिम्बों के चक्षु युगल में विशिष्ट चूर्णरस द्वारा मन्त्रों का न्यास करना अंजनशलाका कहलाता है। यह विधि केवलज्ञान कल्याणक के रूप में की जाती है। अंजन क्रिया के लिए सौवीर (अंजन), घृत, मधु, शक्कर, गजमद, कर्पूर, कस्तूरी– इन सामग्रियों का चूर्ण रस बनाकर चाँदी की कटोरी में लेते हैं फिर सुवर्ण की शलाका से नेत्रों का उद्घाटन करते हैं। इन औषधियों के चूर्ण रस में ओजस्विता एवं तेजस्विता का विशिष्ट गुण समाहित है इसलिए इनका उपयोग करते हैं।

नूतन जिनबिम्बों के दाहिने कर्ण में मंत्र क्यों सुनाते हैं?

प्रतिष्ठा विधि के अनुसार अंजनविधि होने के पश्चात नूतन बिम्बों को सूरिमन्त्र सुनाकर उनमें प्रभावकता उत्पन्न की जाती है।

इसी क्रम में मंगल एवं स्थिरता हेतु नूतन बिम्बों को दही पात्र दिखाते हैं, दर्पण का दर्शन करवाते हैं और शंख दर्शन भी करवाते हैं। प्रतिष्ठित बिम्बों के सौभाग्य एवं स्थैर्य बनाए रखने के लिए सौभाग्य, सुरभि, प्रवचन, अंजलि एवं गरूड़– इन पाँच मुद्राओं को भी दिखाते हैं।

नूतन बिम्बों पर मातृशाटिका (ननिहाल की साड़ी) का आरोपण क्यों करते हैं?

यह क्रिया अधिवासना विधि के अन्तर्गत सौभाग्यवर्धन एवं मंगल वृद्धि हेतु की जाती है। इन दिनों कल्याणक उत्सव के क्रम में भगवान के विवाह आदि दृश्य भी प्रस्तुत किये जाते हैं। उस सन्दर्भ में भी मातृशाटिका का अभिप्राय ग्रहण कर सकते हैं। श्रीचन्द्रसूरि ने सुबोधासामाचारी में दो स्थानों पर मातृशाटिका का विधान किया है वहीं आचार्य पादलिप्तसूरि ने अधिवासना के समय मातृशाटिका का विधान किया है तथा प्रतिष्ठा के अवसर पर श्वेत वस्त्र का उल्लेख किया है।

प्रतिष्ठा विधानों में बलि प्रक्षेपण की क्रिया से क्या अभिप्राय है?

बलि अर्थात पकाया हुआ अनाज नैवेद्य। आजकल इसे बाकुला कहते हैं। सामान्यतया गेहूँ, मूंग, जौ, चना आदि सात धान्यों का सम्मिश्रित पकाया हुआ द्रव्य बलि बाकुला कहा जाता है। ज्ञाताधर्मकथा, कल्पसूत्र आदि आगमों में जिनपूजा के अर्थ में 'ण्हायाकयबलिकम्मा' इस रूप में बलि शब्द प्रयुक्त है।

बलि का अर्थ तर्पण करना, उपहार स्वरूप देवों को दान करना आदि भी है। बलि शब्द हिंसासूचक भी माना गया है किन्तु प्रतिष्ठा विधि के अन्तर्गत देवताओं को तुष्ट करने के लिए धान्य के रूप में बलि बाकुला दिये जाते हैं।

परम्परागत मान्यता के अनुसार बलि बाकुला अपर्ण करने के निम्न लाभ हैं– 1. पकाया हुआ अन्न खिलाने से देवता प्रसन्न होते हैं। 2. भूत-प्रेत आदि भी पकाये हुए खीर, खीचड़े आदि की याचना करते हैं। 3. दश दिक्पाल देव भी पके हुए धान्य के बाकुले देने से प्रसन्न होते हैं। 4. निशीथ सूत्र के अनुसार उपद्रव का शान्ति करने के लिए बलि-नैवेद्य दिया जाता है।

नूतन बिम्बों पर प्रौंखण क्रिया क्यों?

प्रौंखण क्रिया प्रतिष्ठा का एक आवश्यक अंग है। प्रौंखण एक चुमाने (स्पर्श करने) एवं विवाह की रीति है। प्राकृत कोश के अनुसार वर के लिए सासू के द्वारा किया गया न्यौछावर प्रौंखणक कहलाता है। लौकिक जगत में इसे मंगलकारी माना गया है। यह विवाह का एक नेकाचार भी माना जाता है अतः लोक प्रणाली के अनुसार इसे विवाह के अवसर पर किया जाता है।

इस प्रक्रिया को करने के लिए कुलडि में लड्डू, पपड़ी, चाँदी, सुपारी, अक्षत आदि मंगलसूचक सामग्री रखते हैं, फिर उसके ऊपर मोली बांधी जाती है और जब वर राजा तोरण द्वार पर पहुँचता है तब चार-छह सौभाग्यवती नारियों द्वारा उस कुलड़ि को साड़ी के पल्ले से ढककर चुमाने (वर के कंधे को छुने) रूप नेकाचार किया जाता है।

दूसरी रीति के अनुसार इस क्रिया में पाँच साधनों का उपयोग करते हैं– 1. धोसरूं– बैलगाड़ी में सबसे आगे लगने वाला लकड़ी का पाटा 2. मूसल– धान से चावल अलग करने का उपकरण 3. मथनी– दही से मक्खन निकालने का साधन 4. तकली (चरखा)– रूई से धागा बनाने का साधन 5. सरीया– लौह खंड। उपाध्याय मणिप्रभसागरजी के अनुसार वर्तमान में ये पाँचों उपकरण चाँदी

से बनवाए जाते है। पाँच सुहागन महिलाएँ एक-एक कर उन्हें पल्लू में धारण कर प्रतिमा के कंधे, घुटने आदि का पौंखण कर परमात्मा की नजर उतारती है। वर्तमान में उपरोक्त दोनों ही विधियाँ देखी जाती हैं।

पौंखण करते समय उक्त साधनों का उपयोग किस प्रकार किया जाए, यह विधि व्यावहारिक रूप से सीखने योग्य है।

आचार्य हरिभद्रसूरि एवं आचार्य पादलिप्तसूरि ने इस सम्बन्ध में यह निर्देश दिया है कि प्रतिमा के अधिवासित हो जाने पर उस प्रतिमा पर चार पवित्र नारियाँ प्रौंखन करें। इस क्रिया में चार से अधिक नारियाँ हो जाए तो भी कोई आपत्ति नहीं है किन्तु चार से कम नहीं होनी चाहिए। आचार्य हरिभद्रसूरि ने इस विधान में "नारियों की वेश-भूषा उत्तम हो तो अति श्रेयस्कर है" इस बात पर विशेष बल देते हुए उसका प्रयोजन भी बतलाया है।[1]

यहाँ प्रश्न होता है कि प्रतिष्ठा विधान के अनन्तर प्रौंखणक क्रिया से क्या तात्पर्य है?

पूर्वाचार्यों के अनुसार इसके निम्न हेतु हो सकते हैं-

- प्रतिष्ठा के पूर्व किया जाने वाला यह अनुष्ठान बधाई का सूचक है। इस क्रिया के द्वारा सकल संघ में प्रभु आगमन का संदेश प्रसारित किया जाता है।
- यह नेकाचार प्रसन्नता अभिव्यक्ति के लिए भी करते हैं।
- पौंखण क्रिया करने से जैन धर्म की प्रभावना होती है, साधारण जनता में धर्मोत्साह बढ़ता है, सुपात्र दान की परम्परा का निर्वहन होता है, द्रव्य का अच्छे कार्यों में व्यय करने से उत्कृष्ट पुण्यबंध होता है। इस तरह अन्य भी कई लाभ होते हैं।
- इस क्रिया के माध्यम से जिनबिम्बों के प्रति विशिष्ट सत्कार-सम्मान का भाव प्रदर्शित किया जाता है। यह विवाह की रस्म होने से नारियों एवं उपस्थित दर्शकों के मन में स्वाभाविक उल्लास पैदा होता है जिससे मूर्ति का प्रभाव अभिवर्धित होता है। इस भाँति पौंखणक क्रिया अनेक रहस्यों से युक्त है।

आचार्य हरिभद्रसूरि ने पौंखणक विधान का इहलौकिक फल बतलाते हुए कहा है कि अधिवासित जिनबिम्ब का पौंखण करने और उसके निमित्त यथाशक्ति दान देने से स्त्रियों को कभी भी वैधव्य (विधवापन) और दारिद्र्य प्राप्त नहीं होता है।[2]

प्रतिष्ठा कार्यों में उत्तम वस्त्रों का परिधान क्यों?

आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि जिनबिम्ब प्रतिष्ठा के निमित्त शरीर शोभा के लिए सुन्दर वस्त्रों को धारण करना आदि शुभ कर्मबंध का कारण जानना चाहिए, क्योंकि इससे 1. उत्तम पुरुषों के प्रति बहुमान प्रकट होता है, 2. तीर्थंकरों का सम्मान होता है, 3. प्रभु आज्ञा का पालन होता है, 4. शास्त्रोक्त होने से शुभ प्रवृत्ति होती है, 5. प्रतिपल कर्मों का क्षयोपशम होने से आत्मा निर्मल होती है और 6. जिन आज्ञा पालन करते हुए शरीर शोभा करने से आसक्तिभाव न्यून होता है। इस प्रकार शुभ प्रसंगों में सुन्दर वस्त्र पुण्यबन्ध में कारणभूत हैं।[3]

अधिवासना के समय उत्कृष्ट पूजा क्यों?

पंचाशक प्रकरण के अनुसार अधिवासना करते समय चन्दन, कपूर, पुष्प आदि उत्तम द्रव्यों; मूलिका वर्ग, अक्षत आदि मंगल औषधियों; नारियल आदि फलों; वस्त्र, सुवर्ण, मोती, रत्न आदि विविध प्रकार के उपहारों, इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों, दूसरी वस्तुओं को भी सुगन्धित बनाने वाले विविध चूर्णों और भक्ति भाव वाली उत्तम रचनाओं जिनके द्वारा जिनेश्वर के अतिशय को प्रकट किया जा सके उन्हें अर्पित कर जिनबिम्ब की उत्कृष्ट पूजा करनी चाहिए।

इसका मुख्य आशय यह है कि उत्कृष्ट पूजा मुख्य मंगल रूप है। इस मंगल के द्वारा प्रतिष्ठित जिनबिम्ब का सत्कार उत्तरोत्तर बढ़ता है, क्योंकि मुख्य मंगल उत्तरोत्तर सत्कार वृद्धि का कारण है इसलिए उत्कृष्ट पूजा अवश्य करणीय है।[4]

प्रतिष्ठा विधि सम्पन्न होने पर कौन-कौन से मांगलिक विधान किए जाते हैं और क्यों?

पंचाशकप्रकरण, निर्वाणकलिका, श्रीचन्द्रसूरिकृत प्रतिष्ठाकल्प, विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों के मतानुसार प्रतिष्ठा होने के पश्चात प्रतिष्ठित जिनबिम्ब की पुष्प आदि से पूजा करना चाहिए। चतुर्विध संघ को चैत्यवन्दन करना चाहिए, उपसर्गों की शान्ति के लिए श्रुतदेवता, प्रतिष्ठादेवता आदि का कायोत्सर्ग करना चाहिए, शक्रस्तव और शान्तिस्तव का पाठ करना चाहिए, फिर अखण्ड अक्षतों से अंजलि भरकर उपस्थित सकल संघ के साथ पर्वत, द्वीप, समुद्र आदि की उपमा वाली सिद्धों की स्तुति करते हुए मंगल गाथाएँ

बोलनी चाहिए।[5] जैसे कि—

जह सिद्धाण पइट्ठा, तिलोग चूडामणिम्मि सिद्ध पए।
आचंदसूरियं तह, होउ इमा सुप्पइट्ठित्ति।।
एवं अचलादीसुवि, मेरुप्पमुहेसु होति वत्तव्वं।
एते मंगल सद्दा, तम्मि सुह निबंधणा दिट्ठा।।

जिस प्रकार त्रिभुवन चूड़ामणि रूप सिद्धालय में सिद्ध भगवंत शाश्वत रूप से प्रतिष्ठित हैं, जैसे चन्द्र और सूर्य शाश्वत हैं उसी प्रकार यह प्रतिष्ठा भी शाश्वत बने। इसी भाँति जिस प्रकार पर्वत, जम्बूद्वीप लवण, समुद्र आदि शाश्वत हैं, वैसे ही यह प्रतिष्ठा भी शाश्वत बने, इस तरह की मंगल गाथाएँ बोलनी चाहिए। प्रतिष्ठा के समय ऐसे मंगल वचन कल्याणकारी बनते हैं ऐसा शास्त्रज्ञों द्वारा कहा गया है।[6]

यहाँ प्रश्न होता है कि मनोगत भाव से भी मंगल हो सकता है फिर गाथाओं के उच्चारणपूर्वक ही मंगल कामना क्यों? इसके स्पष्टीकरण में आगमकारों का मन्तव्य है कि जिस प्रकार शकुन शास्त्र के अनुसार विजय आदि मांगलिक शब्द सुनने से इष्ट सिद्धि होती है उसी प्रकार प्रतिष्ठा में भी मंगल वचनों से इष्ट सिद्धि होती है, ऐसा जानना चाहिए।[7]

कुछ आचार्य पूर्ण कलश, मंगलदीप आदि रखते समय भी मंगल शब्द बोलते हैं किन्तु कुछ आचार्यों के अनुसार परमार्थ से जिनेन्द्र देव ही मंगल रूप हैं इसलिए प्रत्येक कार्य करने से पूर्व भावपूर्वक अरिहन्त परमात्मा के नामों का उच्चारण करना चाहिए।[8]

प्रतिष्ठा के दिनों में संघ पूजा क्यों?

पूर्वाचार्यों के उल्लेखानुसार प्रतिष्ठा उत्सव काल में एवं प्रतिष्ठा सम्पन्न होने के दिन यथाशक्ति चतुर्विध संघ की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि संघ के धर्माचार्य आदि की पूजा से संघ पूजा अधिक फल वाली होती है। इसका कारण यह है कि तीर्थंकर के बाद पूज्य के रूप में संघ का स्थान हैं और फिर धर्माचार्य आदि का स्थान है। इसलिए धर्माचार्य की पूजा से भी अधिक संघ पूजा का महत्त्व है।[9]

संघ अर्थात ज्ञानादि गुणों का समूह। आचार्य हरिभद्रसूरि ने प्रवचन और तीर्थ को संघ कहा है। उनके मतानुसार दोनों शब्द एकार्थवाची हैं। यहाँ संघ शब्द

का अभिप्राय व्यक्तियों के समूह से नहीं है अपितु गुण रूपी समुदाय से है। इसलिए तीर्थंकर भी देशना के पहले पूज्य भाव से संघ को नमस्कार करते हैं।[10]

नन्दी सूत्र में विविध उपमाओं के द्वारा संघ महिमा का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है।

नन्दीसूत्रकार संघ की स्तुति करते हुए कहते हैं कि संघ चक्र है, जिसमें 17 प्रकार का संयम नाभि रूप है, 12 प्रकार का तप बारह आरा रूप है और सम्यक्त्व उसका घेरा है। इस प्रकार यह संघ चक्र भव बन्धनों का सर्वथा विच्छेद करने वाला है अतः ऐसे संघ को नमस्कार हो।

नन्दी सूत्र में संघ को और भी उपमाएँ देते हुए कहा है-

संघ रथ है, जिस पर अट्ठारह सहस्र शीलांग रूप ऊँची पताकाएँ फहरा रही है, जिसमें संयम और तप रूप अश्व जुते हुए हैं, पाँच प्रकार के स्वाध्याय का मंगलमय मधुर घोष जिससे निकल रहा है ऐसे संघ का कल्याण हो।

संघ पद्म है। जिस प्रकार पद्म सूर्योदय होते ही विकसित हो जाता है, उसी प्रकार श्री संघ रूपी पद्म भी तीर्थंकर रूपी सूर्य के केवलज्ञान रूप तेज से विकसित होता है। इस प्रकार संघ को चन्द्र, सूर्य, समुद्र, महामन्दर आदि विशिष्ट उपमाओं से उपमित किया गया है।

प्रवचन और संघ को तीर्थ स्वरूप माना गया है, क्योंकि प्रवचन अर्थात प्रकृष्ट वचन जो द्वादशांगी रूप है और जिससे जीव भव रूप समुद्र को पार करते हैं, इसलिए तीर्थ भी कहलाता है। तीर्थ शब्द का अर्थ द्वादशांगी भी होता है। द्वादशांगी का आधार संघ है। संघ के बिना द्वादशांगी नहीं रह सकती। अतः द्वादशांगी आधेय और संघ आधार है। आधार और आधेय के अभेद की विवक्षा से प्रवचन और संघ को तीर्थ कहा जाता है।[11]

संघ पूजा का महत्त्व इतना अधिक है कि पूजा करने से सभी पूज्यों की पूजा हो जाती है क्योंकि समस्त लोक में संघ के अतिरिक्त दूसरा अन्य कोई पूज्य नहीं है।[12]

आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि जो किसी प्रकार का भेदभाव किए बिना संघ की पूजा करता है वह निकट भविष्य में मोक्ष को प्राप्त करता है।[13] वस्तुतः संघ पूजा महादान है, यही वास्तविक लोकसेवा है। यह गृहस्थ धर्म का सार है और इसमें सम्पत्ति का सही उपयोग है। इस प्रकार संघ पूजा सर्वोत्तम पूजा है।[14]

आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार संघ पूजा का मुख्य फल निर्वाण (मोक्ष)

है और इसका अनुषांगिक फल देवलोक और मनुष्य लोक के सुख हैं। जिस प्रकार खेती का मुख्य फल अनाज की प्राप्ति है, किन्तु अनाज के साथ पुआल भी मिलता है, उसी प्रकार संघ पूजा का मुख्य फल तो मोक्ष है तथा देव और मनुष्य रूप शुभ गति की प्राप्ति उसका आनुषांगिक फल है।[15]

वर्तमान में विशेष रूप से आचार्य की पूजा की जाती है और संघ के लिए प्रभावना और साधर्मिक वात्सल्य किया जाता है।

मुखोद्घाटन किन दृष्टियों से आवश्यक है?

प्रतिष्ठा के दूसरे दिन सूर्योदय की लालिमा के साथ प्रतिष्ठापित जिनेश्वर परमात्मा का चतुर्विध संघ के साथ दर्शन करना मुखोद्घाटन कहलाता है। इसे द्वारोद्घाटन भी कहते हैं।

इसमें प्रमुखतया ढोल-नगाड़े एवं मंगल-गीतों के साथ सकल संघ सम्मिलित होकर नूतन प्रतिमा के दर्शन करने जाते हैं और उनका प्रथम दर्शन कर सभी अपने-आपको धन्याति धन्य अनुभव करते हैं।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि प्रतिष्ठा विधान के समय विशिष्ट पूजोपचार एवं मन्त्र न्यास होने से जिनबिम्ब देवाधिष्ठित हो जाते हैं और उनमें अद्भुत शक्ति प्रवाह संचरित होने लगता है, तत्फलस्वरूप प्रथम दर्शन करने वाले दर्शकों को विशेष लाभ प्राप्त होता है। गीतार्थ आचार्यों एवं परम्परागत रूप से ऐसा ज्ञात होता है कि बिम्ब के देवाधिष्ठित होने पर नीरव रात्रि में देवी-देवता वहाँ भक्तिगान एवं नृत्यादि करते हैं जिससे देवालय की प्रभावक शक्ति कई गुणा बढ़ जाती है, अत: प्रथम दर्शन का अपना महत्त्व है।

सामाजिक दृष्टि से सकल संघ की उपस्थिति में मन्दिर खोलने से वह जिनालय सार्वजनिक घोषित हो जाता है जिससे नगरजन सहजतया वहाँ के दर्शन और पूजन के अधिकारी बन जाते हैं।

धार्मिक दृष्टि से नगर में जिन शासन की प्रभावना होती है जिससे प्रभावित होकर अन्यजन भी वीतराग परमात्मा के दर्शन करने आते हैं। यदि किसी का उपादान परिपक्व हो तो प्रभु दर्शन के माध्यम से सम्यग्दर्शन भी प्राप्त हो सकता है।

पारिवारिक दृष्टि से संस्कारों का बीजारोपण होता है और प्रतिदिन दर्शन की भावना का उद्भव होने से मानवीय गुणों का जागरण होता है।

आजकल इस विधान का प्रभुत्व इतना बढ़ गया है कि दीपावली आदि पर्व विशेष के दिन भी प्रभु के प्रथम दर्शन करने-करवाने की बोलियाँ बोली जाती हैं। आधुनिक विधिकारकों के अनुसार 'अणुजाणह मे भयवं दंसणं देहि' ऐसा मन्त्रोच्चार करते हुए मुख्य द्वार खोला जाता है। फिर लाभार्थी परिवार का एक सदस्य मन्दिर का कचरा निकालता है। उसके बाद उपस्थित सभी जन सामूहिक दर्शन करते हैं।

न्यास एवं सकलीकरण क्यों किया जाना चाहिए?

न्यास और सकलीकरण तांत्रिक साधना के प्राथमिक चरण हैं। वस्तुत: तंत्र साधना का मूलभूत उद्देश्य शक्ति को प्राप्त करना होता है। पुरुषार्थ चाहे आत्म विशुद्धि के लिए हो या लौकिक उपलब्धियों के लिए, अन्तरंग शक्ति को जागृत करना आवश्यक है। इस शक्ति के जागृत होने पर उसका सम्यक दिशा में नियोजन करना और भी अधिक जरूरी है। किन्तु जब शक्ति का उपयोग कर्ममल के शोधन के लिए अथवा लोकमंगल के लिए न करके वैयक्तिक क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिए मारण, मोहन, स्तम्भन, उच्चाटन आदि षट्कर्मों के हेतु किया जाता है तो उसके भयंकर दुष्परिणाम भी हो सकते हैं। शक्ति, शक्ति है वह कल्याणकारी भी हो सकती है और विनाशकारी भी। अत: इसके नियोजन में अत्यधिक सावधानी रखनी होती है।

जिस प्रकार विद्युत करंट से बचने के लिए तत्सम्बन्धी साधनों पर रक्षा कवच (इन्स्यूलेशन) आवश्यक होता है उसी प्रकार तंत्र साधना में रक्षा कवच के रूप में न्यास और सकलीकरण अनिवार्य है। इस विषय में जैनाचार्यों का भी स्पष्ट निर्देश है कि न्यास एवं सकलीकरण के बिना मन्त्र साधना या जाप साधना आदि नहीं करनी चाहिए।

न्यास अर्थात स्थापना करना अथवा शरीर के तन्त्र को चैतन्यमय और पवित्रमय बनाना है। यह न्यास बायें हाथ से शरीर के प्रमुख पाँच अंगों पर बीज मन्त्र पूर्वक किया जाता है। न्यास को तत्त्व मुद्रा से करने का विधान है। अंगुष्ठ के ऊपर अनामिका रखने से तत्त्व मुद्रा बनती है। मतान्तर में दाहिने हाथ से अथवा दोनों हाथ से भी न्यास करने की प्रथा है।[16]

जैनाचार्यों की मान्यतानुसार बीजाक्षरों से युक्त पंचपरमेष्ठी के न्यास द्वारा जो मान्त्रिक रक्षा कवच निर्मित किया जाता है, वह मंत्र अथवा मंत्र देवता के

कुपित होने से संभावित दुष्परिणामों से व्यक्ति की रक्षा करता है।

जैन परम्परा में न्यास की दो प्रमुख पद्धतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। 1. प्रथम पद्धति में बीजाक्षरों से कराङ्ग न्यास अथवा अंग न्यास किया जाता है, 2. दूसरी पद्धति में शरीर के विभिन्न अंगों पर पंच परमेष्ठी, नवपद अथवा चौबीस तीर्थंकरों की स्थापना करके भी अंग न्यास किया जाता है। ज्ञातव्य है कि बीजाक्षरों के द्वारा न्यास करने की पद्धति जैन परम्परा में अन्य तान्त्रिक परम्पराओं से ही गृहीत हुई है और उनके समरूप ही है जबकि पंच परमेष्ठी या चौबीस तीर्थंकरों के नाम के द्वारा न्यास की पद्धति जैन आचार्यों ने अपनी परम्परा के अनुरूप विकसित की गई है। इस सम्बन्ध में विशेष स्पष्टीकरण हेतु डॉ. सागरमल जैन द्वारा लिखित 'जैन धर्म और तान्त्रिक साधना' का अवलोकन करना चाहिए।[17]

शरीर के समस्त अंगों पर मन्त्र बीजों का न्यास करते हुए आत्मरक्षा करना सकलीकरण कहलाता है।

सामान्यत: निर्वाणकलिका,[18] मन्त्रराज रहस्य आदि कुछ वैधानिक ग्रन्थों में न्यास के पश्चात सकलीकरण का उल्लेख मिलता है और दोनों के पृथक-पृथक मन्त्र भी निर्दिष्ट हैं, अत: यह मानना होगा कि ये दोनों क्रियाएँ भिन्न हैं। परमार्थत: न्यास की पूर्णता ही सकलीकरण है। मूल रूप से सकलीकरण उपसर्ग निवारणार्थ किया जाता है। सिंहतिलकसूरि कृत मन्त्रराजरहस्य में कहा गया है कि 'क्रमोत्क्रम: (मेण) पञ्चांगरक्षा सकलीकरण'– क्रम एवं उत्क्रम से पंचांग रक्षा ही सकलीकरण है।[19]

स्पष्टार्थ है कि शरीर के मुख्य स्थानों को मन्त्र पाठ से कवचमय बनाकर चैतन्य स्वरूप को जागृत करने के लिए यह क्रिया की जाती है। निर्वाणकलिका, मन्त्रराजरहस्य, विधिमार्गप्रपा, सामाचारी संग्रह आदि में सकलीकरण की मन्त्र विधि निज परम्परा के अनुसार दी गई है, अत: उनमें किंचित अन्तर हैं। यह विधि आचार्य अथवा गीतार्थ मुनि के द्वारा स्वयं के लिए एवं स्नात्रकारों के लिए की जाती है। आचार्य भगवन्त अपनी सामाचारी के अनुसार किसी भी सकलीकरण मन्त्र का उपयोग कर सकते हैं। विधिमार्गप्रपा में सकलीकरण का निम्न मन्त्र है– **ॐ नमो अरिहंताणं (हृदय पर), ॐ नमो सिद्धाणं (मस्तक पर), ॐ नमो आयरियाणं (शिखा पर), ॐ नमो उवज्झायाणं (नाभि पर), ॐ नमो सव्व साहूणं पाँवों पर** बोले। इस प्रकार बीजाक्षरों से निर्मित

मन्त्र के द्वारा तथा पंचपरमेष्ठी नमस्कार मन्त्र के द्वारा सकलीकरण करने की परम्परा जैन ग्रन्थों में देखी जाती है।

इनमें बीजाक्षरों से निर्मित मन्त्र से सकलीकरण करने की परम्परा को जैनों ने अन्य तान्त्रिक धाराओं से गृहीत किया है, जबकि पंचपरमेष्ठी एवं तीर्थंकरों के नामों से न्यास एवं सकलीकरण की परम्परा जैन आचार्यों ने स्वयं विकसित की है।

न्यास की प्रस्तुत प्रक्रिया में विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या पंचपरमेष्ठी या तीर्थंकर इस प्रकार न्यास कर लेने पर रक्षा करते हैं? जैन परम्परा में तीर्थंकर वीतराग होते हैं वे धर्म तीर्थ के संस्थापक अवश्य कहे जाते हैं किन्तु हिन्दू परम्परा मान्य ईश्वर के अवतार की तरह वह न तो सज्जनों का रक्षक और न दुष्टों का संहारक है फिर जैन धर्म में उनके नाम से अंग न्यास या आत्मरक्षा की अभ्यर्थना का क्या अर्थ है?

यह सत्य है कि जैनधर्म मूलत: आध्यात्मिक एवं निवृत्ति प्रधान है तथा वीतराग परमात्मा किसी का हित-अहित भी नहीं करते। परन्तु उनके नाम स्मरण के पीछे निहित साधक की श्रद्धा एवं सकारात्मक भावना से व्यक्ति का रक्षण होता है।

इसी प्रकार प्रत्येक मंत्र देवाधिष्ठित होने से उन मन्त्रों का स्मरण करने पर अधिष्ठायक देव एवं तत्सम्बन्धी तीर्थंकर परमात्मा के अधिष्ठायक देवी-देवता शरीर रक्षा में सहायक बनते हैं।

डॉ. सागरमलजी की मान्यता है कि न्यास द्वारा व्यक्ति में यह आत्मविश्वास जागृत होता है कि कोई मेरा रक्षक है और यही दृढ़ विश्वास या श्रद्धा उसका रक्षा कवच बनता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से न्यास आत्म विश्वास जागृत करने एवं मनोबल को दृढ़ बनाने की प्रक्रिया है। व्यक्ति की सफलता का कारण मन्त्र या देवता नहीं, उसका दृढ़ मनोबल ही होता है। कहा भी है– मन के हारे हार है और मन के जीते जीत।[20]

छोटिका प्रदर्शन क्यों आवश्यक है?

प्रतिष्ठा सम्बन्धी पूजा-विधानों एवं मन्त्र साधना में विघ्न निवारण हेतु दिग्बन्धन किया जाता है। ठीक उसके पश्चात सभी दिशाओं में छोटिका प्रदर्शन अर्थात चुटकी बजाई जाती है। परम्परागत विश्वास यह है कि चुटकी बजाने से

देवता प्रसन्न होते हैं और परिणामस्वरूप दिशा रक्षक देवता विभिन्न दिशाओं से होने वाले विघ्नों का नाश करते हैं। यह चुटकी अंगूठे से तर्जनी अंगुली को उठाकर बजाई जाती है। मन्त्रराजरहस्य के अनुसार स्वरों के उद्घोष के साथ चुटकी बजाना चाहिए।

दिगबंधन एवं कवच निर्माण क्यों किया जाता है?

प्रत्येक लक्षणयुक्त एवं गुणयुक्त पदार्थ के कोई न कोई अधिष्ठायक देव होते हैं। मंगलकार्यों में अल्प सत्त्व वाले मिथ्यादृष्टि देव विघ्न उपस्थित कर सकते हैं। अत: दिग्बंधन के द्वारा निर्धारित क्षेत्र में अल्प सामर्थ्य वाले दुष्ट देवों का प्रवेश नहीं होता तथा कवच निर्माण के द्वारा दुष्ट शक्तियों एवं नकारात्मक ऊर्जा से स्वयं की रक्षा की जाती है।

प्रतिष्ठा के पश्चात लवणोत्तारण का अभिप्राय क्या है?

एक कटोरी में नमक और राई डालकर उसे ऊपर से नीचे की ओर उतारने की क्रिया लवणोत्तारण कहलाती है। जैन परम्परा में यह क्रिया स्नात्र पूजा एवं प्रतिष्ठा आदि मंगलकारी महोत्सवों के पश्चात जिनबिम्बों के सम्मुख की जाती है। लोक व्यवहार में यह रस्म नव परिणीत वर-वधू के समक्ष करते हैं।

नव प्रतिष्ठित जिनबिम्ब के मुखमण्डल की ओजस्विता एवं प्रभावकता अलौकिक होती है क्योंकि मंत्राक्षरों द्वारा अधिवासित होने से मूर्ति में विशिष्ट सौन्दर्य एवं शक्तियों का संचार हो जाता है। इसी के साथ प्राण प्रतिष्ठा के पश्चात जिन प्रतिमा में सजीवत्त्व की कल्पना भी की जाती है। ऐसी स्थिति में नजर लगने की पूर्ण संभावना रहती है। अत: नेकाचार का पालन करते हुए नव प्रतिष्ठित जिनबिम्बों को बुरी नजर से बचाने हेतु एवं उनकी तेजस्विता को अक्षुण्ण रखने हेतु यह क्रिया की जाती है।

प्रतिष्ठाजन विधानों में असंयमी देवों का आह्वान और पूजन क्यों?

पूर्वाचार्यों का ऐसा मन्तव्य है कि महामंगलकारी अनुष्ठानों में देवी-देवताओं को आमन्त्रित करने से सभी प्रकार के विघ्नों एवं भयों का निवारण हो जाता है। देवता जन्मत: अवधिज्ञानी होते हैं अतएव ज्ञानबल से उन आराधकों के उपद्रव निवारण में सहयोगी बनते हैं।

दूसरा उल्लेखनीय तथ्य यह है कि देवताओं को शक्तिपूर्ण बीजाक्षर मन्त्रों के द्वारा आमन्त्रण दिया जाता है जो तुरन्त असरकारक होता है। व्यवहार जगत

में देखते हैं कि सामान्य शब्द का प्रयोग करने से भी उसकी अनन्त ध्वनि तरंगें उत्पन्न होकर विश्व में व्याप्त हो जाती हैं। फिर तरंगों से गति, गति से उष्मा और उष्मा से व्यक्ति के विचार दूसरों पर अविलम्ब प्रभाव डालते हैं। मन्त्र प्रयोग से देवताओं के वैक्रिय शरीर पर तुरन्त आकर्षण रूप आघात लगता है, जिससे वे ज्ञानोपयोग द्वारा स्वयं के स्थान पर रहते हुए अथवा निर्धारित स्थान पर पहुँचकर शुभ कर्मोदय के अनुसार सहयोगी बनते हैं।

कुछ परम्परावादी देवता के नाम से ही चिढ़ते हैं किन्तु इस सम्बन्ध में यह सोचना और उस पर अमल करना आवश्यक है कि देहधारियों में जिसका जैसा स्थान हो उसे तद्रूप सम्मान देने पर किसी प्रकार से सम्यक्त्व में दूषण नहीं लगता है। यदि देवताओं को आमन्त्रित करने में कोई दोष होता तो आचार्य हरिभद्रसूरि जैसे विद्वान पंचाशक प्रकरण में स्पष्ट रूप से यह नहीं कहते कि

दिसिदेवयाण पूया, सव्वेसिं तह य लोगपालाणं।
ओसर कमेणऽण्णे, सव्वेसिं चेव देवाणं।।

सभी इन्द्रादि देवताओं की पूजा करनी चाहिए तथा सभी लोकपाल देव की पूर्व आदि दिशा में जिस क्रम से वे स्थित हैं उसी क्रम से उनकी पूजा करनी चाहिए। यहाँ ध्यातव्य है कि किसी भी देव की पूजा उसे आमन्त्रित करने पर ही संभव है।[21]

असंयमी देवों की पूजा क्यों की जाए? इस शंका का समाधान करते हुए आचार्य हरिभद्रसूरि लिखते हैं कि

जमहिगयबिम्बसामी, सव्वेसिं चेव अब्भुदयहेऊ।
ता तस्स पइट्ठाए, तेसिं पूयादि अविरूद्धं।।

मूलनायक तीर्थंकर भगवान् इन्द्रादि सभी देवों के अभ्युदय के कारण होते हैं, अतः प्रतिष्ठा के समय उन देवताओं की पूजा योग्य है।

आगे भी कहते हैं कि

साहम्मिया य एए, महिड्ढिया सम्मदिट्ठिणो जेण।
एत्तोच्चिय उचियं खलु, एतेसिं एत्थ पूजादी।।

दशदिक्पाल आदि देवी-देवता साधर्मिक हैं क्योंकि ये जिनेश्वर परमात्मा के प्रति भक्ति निष्ठ होते हैं। इसी के साथ ये महान ऋद्धिशाली और सम्यग्दृष्टि सम्पन्न भी होते हैं, इसीलिए प्रतिष्ठा आदि मांगलिक अवसरों पर उनका पूजन, सत्कार आदि करना उचित है।[22]

श्मशान भूमि में भोजन दान की परम्परा कब से और क्यों?

यह क्रिया प्रतिष्ठा दिन के ठीक पूर्व रात्रि की अर्धवेला में की जाती है। यद्यपि धार्मिक प्रसंगों पर अर्धरात्रि में भोजनदान आदि से सम्बन्धित कोई भी क्रिया करना उचित नहीं है तदुपरांत अपवाद बहुल कुछ कर्म किये जाते हैं। यह भोजन श्मशानवासी भूत, व्यन्तर, पिशाच, राक्षस आदि प्रेतात्माओं को प्रसन्न एवं तुष्ट करने के उद्देश्य से दिया जाता है। ये देवता अर्धरात्रि में जागृत रहते हैं।

परम्परानुमत विश्वास यह है कि इन प्रेतात्माओं को सन्तुष्ट रखने से जिनालय एवं जिनबिम्ब की सदा रक्षा होती है। यह क्रिया शास्त्रोक्त नहीं है, बल्कि विगत कुछ वर्षों से ही प्रारम्भ हुई है।

विधिकारकों के मतानुसार इस क्रिया को सम्पन्न करने के लिए बारह, सोलह या इक्कीस मिट्टी के सकोरों में खाद्य सामग्री भरकर उन्हें एक डिब्बे में रख देते हैं। फिर पाँच या सात निर्भीक श्रावक श्मशान भूमि में जाकर भूतादि को निमन्त्रित करते हुए डिब्बे को खुला छोड़कर अपने स्थान की ओर लौट आते हैं।

रक्षा पोटली क्यों बांधनी चाहिए?

प्रतिष्ठा के पूजा विधानों में रक्षा पोटली बांधने की भी एक परम्परा है। वर्तमान में इसका प्रचलन दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। कई व्यक्तियों के मानस पटल पर विचार उभरते हैं कि रक्षा पोटली क्या है और इसे क्यों बांधते हैं? इसके नाम से इतना तो स्पष्ट है कि यह हमारी रक्षा करती है।

रक्षा पोटली में सरसव या उसकी राख बांधते हैं। सरसों में आसुरी शक्तियों को निरस्त करने एवं अनिष्ट देवों को पराजित करने की अद्भुत क्षमता है। इस पोटली के बंधे रहने से भी असम्भावित विघ्नों से रक्षा होती है।

बृहद महापूजनों में मदनफल–मरडाशिंगी भी बाँधते हैं। ये औषधियाँ भी दुष्ट शक्तियों से संरक्षण करती हैं।

घण्ट नाद क्यों करना चाहिए?

कृत्रिम-अकृत्रिम प्रकार के चैत्यों एवं सर्व परम्पराओं के मन्दिरों में घण्ट नाद किया ही जाता है। इन घण्टों के निर्माण, आकार, नाप आदि के विशेष वैज्ञानिक नियम है, जो इनसे नि:सृत ध्वनि को प्रभावी बनाते हैं। इसी कारण तीनों लोकों के समस्त जिनालयों में घण्टनाद अवश्य किया जाता है।

यह ध्वनि व्यक्ति के शरीर, मन, बुद्धि और विचारों को बहुत हद तक प्रभावित करती है। आज वैज्ञानिक अनुसन्धानों से सिद्ध हो चुका है कि घण्टानाद तथा शंख ध्वनि से महाभयंकर संक्रामक रोगों के कीटाणु बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं।

सन् 1916 में लन्दन के कई वैज्ञानिकों ने सात माह तक घण्टा ध्वनि पर अनुसन्धान करके बताया है कि टी.बी. के मरीज को स्वस्थ करने हेतु घण्टा ध्वनि एक सरल औषधि है। पिछले कुछ वर्षों से रूस के बड़े हास्पीटल मास्को सेनीटोरियम में घण्टा ध्वनि सुनाकर टी.बी. के रोगियों को ठीक किया जा रहा है।

अफ्रीका की आदिवासी जनता केवल घण्टा बजाकर सर्प विष से ग्रसित व्यक्तियों को 95 प्रतिशत ठीक कर लेती हैं। घंटा की ध्वनि को निरन्तर सुनने से कान का बहना और बहरापन आदि कितने ही रोग बिल्कुल ठीक होने में सहायता मिलती है। ईसा के समकालीन एलाक्षा नामक सन्त ने घण्टानाद के द्वारा कई बहरे व्यक्तियों को ठीक किया था।

इस विश्व में घण्टनाद का इतिहास बड़ा ही रहस्यपूर्ण है। रूस की राजधानी मास्कों में दुनिया के छह विशालकाय घण्टे इस समय भी देखे जा सकते हैं। उनमें एक घण्टा का वजन 6500 मन है। चीन की राजधानी पेइचिंग के बौद्ध विहार में 4300 मण का घण्टा विद्यमान है और विश्व का सबसे बड़ा घण्टा बर्मा के बौद्ध मन्दिर में विद्यमान है।

भारत के ऋषियों ने इस प्रयोग के सुपरिणामों को बहुत पहले ही जान लिया था।[23]

शंख ध्वनि से वातावरण कैसे प्रभावित होता है?

शंखनाद का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। सांसारिक हो या धार्मिक, सभी शुभ प्रसंगों पर शंख की ध्वनि आज भी सुनायी जाती है।

शंखनाद हमारे तन-मन को अत्यधिक प्रभावित करता है। इस ध्वनि के अज्ञात रहस्यों पर कई शोध हो चुके हैं और वर्तमान में भी अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं।

सन् 1928 में जर्मनी की राजधानी बर्लिन के छह वैज्ञानिकों ने शंख ध्वनि पर किए गए अनुसन्धान के पश्चात बताया है कि इस ध्वनि के प्रसरित होने से बैक्टीरिया नामक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह ध्वनि मिरगी,

मूर्च्छा, कम्पज्वरी, हैजा, प्लेग आदि रोगों को भी दूर करने में सहायक है।

दूसरे प्रयोग के अनुसार यदि हकलाने वाला व्यक्ति प्रतिदिन शंख का जल पीने लगे तो कुछ समय में उसे अवश्य लाभ होता है। शंख बजाने से कई मानसिक समस्याओं का निवारण भी होता है।

बलिप्रक्षेपण क्यों और किसे?

प्रतिष्ठा, ध्वजारोहण, महापूजन, वर्षगांठ आदि मांगलिक विधानों में दस दिशाओं के अधिपति देव, नवग्रह देव एवं अन्य देवी-देवताओं के सम्मानार्थ और सर्व प्रकार के मंगल के रक्षणार्थ बलि क्षेपण किया जाता है।

संस्कृत हिन्दी कोश के अनुसार बलि का सामान्य अर्थ है– आहुति, भेंट, चढ़ावा।[24] जैन परम्परा में भेंट या चढ़ावे के रूप में बलि प्रक्षेपण करते हैं। अन्य परम्परा में मूर्ति पूजा एवं देवमूर्ति पर चढ़ाया नैवेद्य भी बलि कहा जाता है। यहाँ यह अर्थ ग्राह्य नहीं है।

बलि सामग्री के रूप में चावल, जौ, गेहूँ, मूंग, वाल, चना और चवला अथवा सन, कुलथी, मसूर, जौ, उड़द, कंगु और सरसों– इन सात धान्यों का उपयोग किया जाता है।

देवी-देवताओं को जो धान्य प्रिय होते हैं उनके तुष्टिकरण हेतु उन्हीं धान्यों का ही प्रक्षेपण करते हैं। देवता कवलाहार नहीं करते, किन्तु अवधिज्ञानी होने से बलिदाता के पूजा प्रधान भावों को ग्रहण कर लेते हैं। तदनन्तर कभी भी श्री संघ पर आपत्ति आए या मंगल कार्यों में विघ्न की संभावना हो तो उसके निवारण हेतु सदैव तत्पर रहते हैं। इस प्रकार पूजित देवी-देवता शुभ अनुष्ठानों को निर्विघ्नतः सम्पन्न करने में सहायक बनते हैं तथा परमात्म भक्ति के कार्यों में उपस्थित हो सम्यक्त्व गुण का उपार्जन करते हैं।

सुस्पष्ट है कि व्यन्तरादिकृत उपद्रवों से संरक्षित होने एवं मांगलिक विधानों को निराबाध रूप से सम्पन्न करने के उद्देश्य से बलिक्षेपण करते हैं। प्राचीन प्रतिष्ठा कल्पों में बलि सामग्री को उछालने की विधि कही गई है।

बलि के रूप में प्रयुक्त धान्यों का सामान्य वर्णन इस प्रकार है–

चावल– यह धान्य शाली, व्रीहि आदि नाम से भी जाना जाता है। आयुर्वेद के अनुसार चावल मलरोधक, रुचिकारक, पौष्टिक, शीतल, विषनाशक एवं कान्तिजनक है। इसके उपयोग से दुःस्वप्न बंद हो जाते हैं।

चावल अखंडता का भी प्रतीक है, अतः देवों को अर्पण करते हुए प्रतिष्ठा को अखण्डित रखने की प्रार्थना की जाती है।

गेहूँ– यह मधुर, स्निग्ध, पौष्टिक तथा ऊर्जावर्धक है एवं दुर्बलता आदि में लाभ पहुँचाता है।

मूँग– यह धान्य शीतल, स्वादिष्ट, नेत्र हितकारी, ज्वर नाशक, कंठरोग निवारक और मस्तक आदि के रोगों में लाभ देता है। इससे बल एवं रक्त में वृद्धि होती है।

वाल (सेम)– यह भारत में सर्वत्र उपलब्ध होने वाला विषनाशक, बिच्छू जहर संहारक एवं कंठ की मधुरता बढ़ाने वाला धान्य है।

चना– द्विदल में चना एक मुख्य धान्य है। यह रक्त दोष, खुजली, दुर्गन्ध, बुखार आदि रोगों में लाभकारी है।

चवला (राजमाष)– यह धान्य वायुहर्ता, श्रमहारक, पौष्टिक, सौन्दर्यवर्धक तथा मंदाग्नि, सूजन, अरुचि आदि में हितकारी है।

प्रतिष्ठादि शुभ कार्यों के अवसर पर उपर्युक्त धान्यों का अर्पण करने से तथाविध गुणों का आंशिक फल सकल संघ को भी हासिल होता है। इससे निम्न कोटि के देवगण भी सन्तुष्ट होकर जिनधर्म के प्रति श्रद्धावान बनते हैं और देवगति को सफल करते हैं।

प्रतिष्ठा विधि के आधार पर यहाँ शंका होती है कि शास्त्रोक्त विधिपूर्वक प्रतिमा की प्रतिष्ठा करने के अवसर पर विघ्नशांति के लिए बलि आदि का अर्पण करना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि प्रतिष्ठा के समय भावशुद्धि के द्वारा भी विघ्नों की शांति हो सकती है। इसलिए विघ्नशांति के लिए बलि अर्पण करना जरूरी नहीं है। इसका समाधान करते हुए आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि प्रतिष्ठा दो प्रकार की होती है– 1. आभ्यन्तर प्रतिष्ठा और 2. बाह्य प्रतिष्ठा। अरिहंत प्रभु की अपेक्षा आत्मा में आत्मस्वरूप की स्थापना करना आभ्यन्तर प्रतिष्ठा है।

यहाँ भावशुद्धि की प्रधानता से विघ्नों का नाश हो जाता है परन्तु प्रतिमागत प्रतिष्ठा में स्थापना सत्य होने से वीतरागता का उपचार करने में आता है इसलिए क्षेत्रदेवता की शान्ति के लिए और विघ्न का नाश करने के लिए बलि अर्पण जरूरी है।

बलि बाकला से प्रसन्न हुए क्षेत्र देवता जिनशासन की उन्नति और प्रभावना करते हैं। इसके द्वारा प्रतिष्ठाकर्ता और पूजाकर्ता के विशेष प्रकार से पुण्यानुबंधी पुण्य का उदय आदि होता हैं इसलिए बाह्य प्रतिष्ठा में बलिबाकुला जरूरी है।

सफेद सरसों की पोटली का उपयोग क्यों?

प्रतिष्ठा उत्सव के दौरान नवीन जिनबिम्बों के दायें हाथ में श्वेत सरसों की पोटली बांधी जाती है। इसके पीछे कई रहस्य अन्तर्निहित है। सर्वप्रथम सफेद सरसों सर्पादि विष एवं ग्रह पीड़ा नाशक मानी गयी है। तान्त्रिक विद्याओं में शक्ति प्रयोग, वशीकरण एवं अभिमन्त्रण हेतु इसका उपयोग किया जाता है। लोक व्यवहार में नजर आदि उतारने के लिए इसे विशेष प्रभावी माना गया है। इस वस्तु के प्रयोग द्वारा आसुरी शक्तियों से भी रक्षा की जा सकती है।

इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए जिन प्रतिमा के हाथ में सरसों की पोटली बांधी जाती है। इससे नूतन बिम्बों का आसुरी उपद्रवों एवं बुरी नजर से रक्षण होता है। लोक व्यवहार में भी नव विवाहित दम्पति युगल को राई की पोटली रखने हेतु कहा जाता है।

मींढ़ल और मरडाशिंग हाथ में क्यों बांधें?

कई लौकिक मांगलिक प्रसंगों, जैसे विवाह आदि में वर-कन्या के हाथों में और धार्मिक प्रसंगों, प्रतिष्ठा-पूजन आदि के समय मुख्य अभिषेककर्ता आदि के हाथ में कंकण डोरा बांधा जाता है जिसमें मींढल एवं मरडाशिंगी बंधी हुई रहती है।

मींढल को मदनफल या मेनफल तथा मरडाशिंग को मृगशिंगा अथवा मरोडफली भी कहते हैं। मींढल अखरोट जैसे आकार वाला होता है और मरडाशिंग एक लम्बी जड़ी-बूटी होती है। इन औषधियों को हाथ पर बांधने के कई प्रयोजन हैं–

मींढ़ल अपने गुणधर्म के अनुसार मीठा, गरम और हल्का होता है। यह जुकाम-कफ आदि को दूर करने वाला, हृदय हितकारी तथा मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों में लाभकारी है। यदि शुभ कार्यों को सम्पन्न करते हुए सिरदर्द आदि किसी तरह का व्यवधान उत्पन्न हो जाये तो इन जड़ी-बूटियों के प्रयोग से तुरन्त राहत मिल सकती है।

इन दोनों में सर्पादि विष को दूर करने का गुण भी होता है। विषैले जीव-जन्तु का उपद्रव होने पर उस जगह इन वनस्पतियों का चूर्ण लगा दिया जाये अथवा उसका विधिवत सेवन किया जाये तो सम्भावित पीड़ा या हानि से बचा जा सकता है और मंगल कार्यों को यथोचित रूप से पूर्ण किया जा सकता है।

इन औषधियों को वन्ध्यत्व निवारक भी माना गया है। विवाह के अवसर पर नव दम्पत्ति के हाथों में बांधकर उन्हें संकेत दिया जाता है कि यदि संतान उत्पत्ति में बाधा उपस्थित हो तो इस फल के उपयोग से सफलता मिल सकती है।

इन औषधियों में आसुरी उपद्रवों को निरस्त करने की ताकत भी होती है। मंगल विधानों के दरम्यान इस तरह की विषम परिस्थिति उपस्थित हो जाये तो इन बूटियों के प्रयोग द्वारा उसे तुरन्त उपशान्त किया जा सकता है।

मरडाशिंग उदर जनित पीड़ाओं में विशेष लाभ देती है। यह शान्ति प्रदाता भी मानी गई है। इसके अतिरिक्त अन्य दुष्प्रवृत्तियों का निरोध करने एवं बुरी नजर से बचाने के लिए भी इन औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार इन औषधियों को समीप रखने के अनेक उद्देश्य हैं। मंगल प्रसंगों में किसी भी समय इनका तत्क्षण प्रयोग किया जा सके, इस हेतु इन्हें हाथ में बाँधते हैं।

कौड़ी– हिन्दुस्तान में कौड़ी सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। इसका उपयोग विविध साज-सज्जा के कार्यों में तथा मंगल रूप में कंकण डोरा के साथ भी किया जाता है। प्राचीन काल में अनेक मांगलिक विधानों में इसका प्रयोग होता था। औषधि निर्माण के रूप में भी इसका महत्त्व स्वीकारा गया है।

यह नेत्रों के लिए हितकारी, कर्ण रोग में लाभदायक एवं केल्शियम आदि की कमी में परम सहायक है।

विवाह एवं प्रतिष्ठा जैसे प्रसंगों में इसके विधिवत प्रयोग से त्वरित लाभ पाया जा सकता है।

नूतन बिम्बों पर सप्तधान्यों का प्रक्षेपण क्यों किया जाता है?

प्रतिष्ठा सम्बन्धी कृत्यों में नूतन जिनबिम्बों पर दो-तीन बार सप्त धान्यों का प्रक्षेपण किया जाता हैं। इस क्रिया में 1. सन 2. लाज 3. कुलथी 4. जौ 5. कंगु 6. उड़द और 7. सरसों– इन सात धान्यों का प्रयोग करते हैं।

लौकिक जगत में सप्तधान्य की वृष्टि एक मांगलिक क्रिया है। जैसे धान्य उगने पर खेत-उपवन आदि हरे-भरे हो जाते हैं वैसे ही जिस नगर में तीन लोकों में पूज्य जिनेश्वर परमात्मा विराजमान हुए हैं वह क्षेत्र सुख-समृद्धि एवं धर्म संस्कारों से फलता-फूलता रहे, ऐसे मनोभावों को साकार रूप देने के उद्देश्य से धान्य वृष्टि की जाती है।

सप्त धान्य अर्पण का दूसरा प्रयोजन यह है कि इस विशिष्ट अवसर पर प्राणी मात्र के लिए आधारभूत धान्य आदि भी स्वयं को प्रभु चरणों में समर्पित कर तिर्यञ्चगति को सार्थक करते हैं और यह संदेश देते हैं कि अरिहंत परमात्मा के प्रति वसुधा ने सब कुछ न्योछावर कर दिया है इससे तीर्थंकरों का महिमावर्धन होता है।

तीसरा हेतु यह कहा जा सकता है कि अरिहंत प्रभु के अनंत गुणों को बधाने के रूप में यह विधि दर्शायी जाती है।

प्रक्षेपण के समय अखंड धान्यों का प्रयोग करते हैं जिसके द्वारा महोत्सव की निर्विघ्नता एवं जिनालय की अखंडता के भाव प्रस्तुत किये जाते हैं।

सन-लाज आदि सातों धान्य सर्वत्र सुलभता से उपलब्ध हो सकते हैं इसलिए इन्हीं धान्यों का उपयोग करते हैं।

सप्तधान्य का सामान्य स्वरूप निम्न प्रकार है–

1. शण (सन)– यह धान्य भारत में प्रायः सब जगह सुलभता से पाया जाता है। आयुर्वेद शास्त्रों में इसके प्रत्येक भाग को उपयोगी माना गया है। यह स्वभाव से ठंडा, चर्मरोग में लाभदायी एवं रक्त शोधक गुण वाला है।

2. कुलथी– भारत में पाया जाने वाला यह धान्य गरम, ज्वरनाशक, कृमिनाशक, मज्जावर्धक तथा श्वास, खाँसी, हिचकी, उदररोग, हृदय रोग, नेत्ररोग आदि में लाभदायक है। इसका प्रक्षेपण करने से जिनबिम्बों पर किसी भी प्रकार के प्राकृतिक जीवाणुओं का दुष्प्रभाव हो तो नष्ट हो जाता है और पाषाण की शुद्धि होती है।

3. जौ (जव)– जौ एक मशहूर अनाज है। यह मधुर, शीतल, बुद्धिवर्धक, स्वर संशोधक, बलवृद्धि कारक एवं कान्तिवर्धक है। मांगलिक प्रसंगों पर इसके प्रक्षेपण से प्रतिमा की अपूर्व कान्ति बढ़ती है।

4. कंगु (कांग, कंगुनी)– यह धान्य गरम प्रदेशों में पाया जाता है और बरी के जैसा होता है। इसे स्वभावतः मीठा, तिक्त, मज्जावर्धक, हड्डियों को

जोड़ने वाला और पौष्टिक माना गया है।

5. उड़द (माष)— यह एक सुप्रसिद्ध पुष्टिकारक द्रव्य है। आयुर्वेद के अनुसार इसे तृप्तिजनक, पौष्टिक, श्रमनिवारक, स्निग्ध एवं शीतल आदि गुणों से युक्त कहा गया है।

6. सरसव— सरसों का पौधा राई की तरह होता है। यह मुख्य रूप से विषनाशक एवं ग्रहपीड़ा को दूर करने में सहायक है। इसका तेल भी बहुउपयोगी है। तान्त्रिक मतानुसार मन को नियंत्रित करने के लिए सरसों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

इस प्रकार सप्तधान्य का प्रक्षेपण कई दृष्टियों से उपयोगी सिद्ध होता है।

प्रतिष्ठा के पश्चात अट्ठाई महोत्सव क्यों?

1444 ग्रन्थों के रचयिता आचार्य हरिभद्रसूरिजी प्रतिष्ठा सम्पन्न होने के पश्चात उसके अवशिष्ट कर्त्तव्यों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि प्रतिष्ठित जिनबिम्बों की आठ दिन तक पुष्प, बलि आदि के द्वारा पूजा करनी चाहिए तथा स्वयं के धन-वैभव के अनुसार जिन शासन की प्रभावना के उद्देश्य से सभी जीवों को अभय दान देना चाहिए।[25]

बड़े शहरों में जिनबिम्ब की प्राण प्रतिष्ठा जैसे महान प्रसंगों पर अट्ठाई महोत्सव अवश्य करना चाहिए जिससे प्रतिष्ठा का सानुबंध होता है। वर्तमान में आठ दिन का महोत्सव प्रतिष्ठा के दूसरे दिन तक समाप्त हो जाती है जबकि मुख्य परिपाटी के अनुसार पूजोत्सव प्रतिष्ठा के बाद होना चाहिए।

विधिमार्गप्रपा आदि कर्तृग्रन्थों में तीन दिन या आठ दिन का पूजा महोत्सव प्रतिष्ठा के पश्चात करने का उल्लेख किया है।

इस पुण्य प्रसंग पर शक्ति के अनुसार दान करना भी आवश्यक है। इससे जिन शासन की प्रभावना होती है। शासन प्रभावना के फलस्वरूप अन्य धर्मीजन भी भवान्तर में जैन धर्म की प्राप्ति रूप बीज का वपन करते हैं।

अभिषेक आदि में उपयोगी जल का संग्रह करते समय कुएँ आदि का पूजन क्यों करते हैं?

यह माना जाता है कि तालाब आदि में अधिष्ठायक देवों का वास होता है। तब उनकी आज्ञा के बिना वहाँ का जल कैसे लिया जा सकता है? अतः उनकी अनुमति प्राप्त करने हेतु पूजन करते हैं इससे वे प्रसन्न होते हैं और हमारे

कार्यों में इनकी सन्निधि भी रहती है।

शिला स्थापना करते समय मध्य शिला के अधो भाग में एवं प्रतिष्ठा के समय मूलनायक भगवान की गादी के नीचे स्वर्ण या चाँदी का कूर्म किस प्रयोजन से रखा जाता है?

हिन्दू मान्यता के अनुसार कूर्म पृथ्वी को धारण करता है वैसे ही यह जिनालय को धारण करके रहे। शिलास्थापना करते समय जब तक खनन के द्वारा पानी नहीं आता है तब तक यह विधि नहीं करते हैं। उसके पश्चात मध्य भाग में शिला रखकर उस पर कूर्म रखते हैं। कूर्म जल तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है। कूर्म नाड़ी भी है। जहाँ जलीय प्रदेश होते हैं वहीं मन्त्र आदि की साधना सिद्ध होती है। पानी में ग्राहकत्व शक्ति का विशिष्ट गुण है इसीलिए उपचार के लिए भी पानी को ही अभिमन्त्रित करते हैं। खनन के समय पानी न आने तक खोदने का अभिप्राय भी आध्यात्मिक है।

क्षेत्रपाल आदि देवों की स्थापना डाभ में ही क्यों की जाती है?

डाभ देवताओं का प्रिय फल है। हरा नारियल युवावस्था का प्रतीक है एवं देवता भी सदा युवा रहते हैं। इसी के साथ नारियल को श्रीफल या मंगल का प्रतीक भी माना गया है। महापूजन आदि की अवधि अल्प होने से इनमें डाभ की स्थापना की जाती है तथा प्रतिष्ठा आदि विधानों में दीर्घ समय लगने के कारण चोटी वाले नारियल की स्थापना करते हैं, क्योंकि डाभ के विकृत होने एवं मच्छर आदि जीवों की उत्पत्ति होने की सम्भावना रहती है।

मांगलिक प्रसंगों में की गई कुंभस्थापना आदि का विसर्जन क्यों आवश्यक है?

कुंभ आदि की स्थापना विशिष्ट उद्देश्य से की जाती है तथा उस उद्देश्य के पूर्ण होने तक उनकी पूजा-अर्चना भी विधिवत हो जाती है। विधान पूर्ण होने के बाद उस स्थापना का कोई प्रयोजन न रहने से उनका उचित आदर-सम्मान सम्यक प्रकार से नहीं हो पाता अत: इस आशातना से बचने के लिए विसर्जन करना आवश्यक है। इस विसर्जन क्रिया के द्वारा जलतत्त्व आदि के अधिवासित देव एवं नवग्रह आदि देवों को सम्मान पूर्वक अपने स्थान जाने का निवेदन किया जाता है। इससे सम्यक्त्वी देवी-देवता एवं स्थानीय देव हमेशा प्रसन्न रहते हैं।

अंजनशलाका विधान के तुरंत बाद दर्पण क्यों दिखाया जाता है?

अंजन विधान के दौरान की जा रही विविध क्रियाओं से जिनबिम्बों में वीतरागत्व आदि शक्तियों का संचरण होने से उनका तेज इतना बढ़ जाता है कि आचार्य आदि अपनी आँखों से देख नहीं सकते, अतः दर्पण के माध्यम से परमात्मा के दर्शन किए जाते हैं इसी के साथ प्रतिष्ठा-अंजनशलाका अच्छे से सम्पन्न हुई हो तो वह कांच या दर्पण भी उस तेज के प्रभाव से खंडित हो जाता है ऐसा प्रतिष्ठाचार्यों का अनुभव है।

प्रतिष्ठा विधान में कुंभ आदि की स्थापना आवश्यक क्यों?

प्रतिष्ठा के दौरान कुंभ आदि की स्थापना मुख्य रूप से मांगलिक क्रिया के रूप में की जाती है। इसी के साथ इन विधानों के माध्यम से पाँच तत्त्वों की स्थापना भी की जाती है। कुंभ पृथ्वी तत्त्व, कुंभ स्थित पानी-जल तत्त्व, दीपक-अग्नि तत्त्व, बली बकुला-आकाश तत्त्व, ज्वारारोपण-वनस्पति तत्त्व एवं वायु तत्त्व। जब इन पाँचों तत्त्वों में हमारी भावनाएँ व्याप्त होती हैं तो सारा वायुमण्डल उससे प्रभावित होता है। जिसके कारण सभी कार्यों की निर्विघ्न सिद्धि होती है।

प्रतिष्ठा आदि कार्यों में सुहागन स्त्रियों का ही उल्लेख है तो क्या विधवा स्त्रियाँ अमंगलकारी है?

भारतीय परम्परा में वैधव्य को पापोदय माना गया है। सद्यः विधवा हुई स्त्री का मन दुख एवं शोक से युक्त होता है। इस कारण वातावरण में भी शोक एवं विषाद छा जाता है। जबकि प्रतिष्ठा आदि मंगल विधानों में हर्ष एवं आनंद का वातावरण होना चाहिए। हकीकत यह है कि सामने जैसा दृश्य होता है वैसे ही भाव बनते हैं। दुःखी व्यक्ति को देखकर मन में करुणा, दया, खेद आदि की स्थिति उत्पन्न होती है। वहीं मांगलिक दृश्यों को देखकर मन में आनंद एवं प्रमोद के भाव उत्पन्न होते हैं। लोक व्यवहार एवं परम्परा में भी विधवा स्त्रियों को मांगलिक कार्यों में अग्रणी नहीं रखा जाता, अतः यह लौकिक व्यवहार के विरुद्ध भी है। इन्हीं अपेक्षाओं से विधवा स्त्रियों को मांगलिक कार्यों हेतु अयोग्य माना गया है।

अंजनशलाका-प्रतिष्ठा करवाने वाले आचार्य एवं खंडण-पीसण करने वाली महिलाएँ 'सकंकण' हों ऐसा क्यों कहा गया है तथा अंजनशलाका स्वर्ण शलाका से ही क्यों की जाती है?

धातु को बिजली का अच्छा संचालक माना जाता है। विविध धातुओं की प्रवाह शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। जैसे तांबे के तार की अपेक्षा चाँदी के तार से बिजली शीघ्र गति से प्रवाहित होती है एवं सोने के तार में उससे भी तीव्र गति से प्रवाहित होती है।

जिस प्रकार विद्युत शक्ति धातु तार के माध्यम से प्रवाहित होती है वैसे ही मन्त्र शक्ति भी प्रवाहित होती है। आचार्य एवं चूर्ण पीसने वाली नारियाँ कंकण युक्त हों इस उल्लेख के पीछे भी यही कारण होना चाहिए। स्वर्ण कंकण धारण करने से आचार्यों की साधना एवं मंत्र शक्ति जिनबिम्ब में शीघ्र प्रवाहित हो सकती है तथा खंडण पीसण करने वाली महिलाओं के भीतर के शुभ भाव एवं सर्व मंगल की भावना स्वर्ण कंकण के माध्यम से उन द्रव्यों में त्वरित वेग से पहुँचती है। सोना जन्तुनाशक भी है और उसमें प्रतिरोधात्मक शक्ति का विशिष्ट गुण भी रहा हुआ है।

जैन शास्त्रों में आराधना हेतु अखण्ड वस्त्र के प्रयोग का विधान क्यों है?

सामान्यतया अखंड वस्त्र को मंगलकारी माना जाता है। अखंड वस्त्र में शक्ति का संचय होता है वहीं सिले या फटे हुए वस्त्र में वह शक्ति टुकड़ों में बँट जाती है।

वस्त्र सिला हुआ हो तो ऊर्जा बंध जाती है तथा कटे एवं जले हुए वस्त्रों से बाहर की ओर प्रवाहित होती है। ब्राह्मण लोग भी यज्ञोपवीत आदि की क्रिया में तथा मुसलमान मक्का-मदीना की यात्रा में लुंगी के रूप में बिना सिला अखंड वस्त्र धारण करते हैं। साधुओं एवं श्रावकों के लिए भी अखंड वस्त्रों का विधान है। अखंड वस्त्र पहनने से शारीरिक अनुकूलता एवं खुलापन रहता है जिससे साधना में मानसिक एवं शारीरिक एकाग्रता सधती है। इन्हीं हेतुओं से अखंड वस्त्र का विधान धर्म क्रियाओं में किया गया है।

पूजन आदि विधानों में कुसुमांजलि करने का क्या अभिप्राय है?

पुष्पों को पवित्र, कोमल एवं शुद्ध माना जाता है। ऐसे साधनों से हमारी भावनाएँ शीघ्र गन्तव्य तक पहुँचती हैं। कमल एक रडार के समान माना है। उसके द्वारा भावनाएँ पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो जाती हैं। कुसुम की ग्राहक शक्ति तीव्र है, उसके माध्यम से भावनाओं एवं मन्त्रों का प्रतिमा में शीघ्र न्यास हो सकता है।

लोक व्यवहार में भी पुष्प देकर हर्ष-प्यार-शोक आदि की अभिव्यक्ति की जाती है। इसी प्रकार कुसुमांजलि द्वारा परमात्मा के आगे अपने विनय, आदर एवं सम्मान आदि के भावों को शीघ्र पहुँचाने का उपक्रम करते हैं।

वर्धमान सूरि ने आचार दिनकर में गणपति प्रतिष्ठा का उल्लेख किया है तथा बड़ी शांति में भी विनायक शब्द आता है तो क्या जैन धर्म में गणपति को मान्यता दी गई है?

पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.के अनुसार आचार्य वर्धमान सूरि एक कट्टर ब्राह्मण थे। उसी परम्परा से प्रभावित होकर उन्होंने जैन विधि-विधानों में गणपति प्रतिष्ठा का समावेश किया होगा। शांति पाठ में 'विनायक' शब्द मंगल करने वालों का सूचक है। य़हाँ पर मंगल करने वाले समस्त देवी-देवताओं का इसमें समावेश होता है।

मांगलिक क्रिया अनुष्ठानों में लड्डू ही क्यों चढ़ाया जाता है?

लड्डू को मंगल का सूचक माना गया है। जिस प्रकार लड्डू अखंड, परिपूर्ण एवं ओर-छोर से रहित होता है वैसे ही मांगलिक कार्य भी निर्विघ्न रूप से पूर्णता को प्राप्त करें तथा ओर-छोर रहित हो। इस प्रतीक के रूप में शुभ अनुष्ठानों पर लड्डू चढ़ाते जाते हैं। इसे माणक लड्डू भी कहते हैं।

महापूजन आदि में उपयोगी सामग्रियों का महत्त्व

सुपारी (पूंगीफल)— सुपारी का उपयोग एक प्रसिद्ध ताम्बुल के रूप में किया जाता है। यह अपने गुणधर्म के अनुसार स्वादिष्ट, रुचिवर्धक, मधुर, वात-पित्त-कफ आदि को दूर करने वाली और दुर्गन्ध नाशक है। पालनपुर के एक मंदिर में रोज 16 मण सुपारी चढ़ाई जाती थी। पूर्वकाल में जब नारियल या श्रीफल अधिक संख्या में उपलब्ध नहीं होते थे, तब उनके स्थान पर सुपारी रखी जाती थी।

लौकिक जगत में सुपारी को अखंड एवं मंगलकारी फल भी माना है। यह किसी भी श्रेष्ठ कार्य की अखंडता का सम्पूर्णता एवं प्रतीक है इसीलिए मंगल कार्यों में इसका उपयोग करते हैं।

नारियल (श्रीफल)— धर्मशास्त्रों में नारियल को एक मंगलकारी फल माना गया है। यह प्रकृति के अनुसार भारी, स्निग्ध, शीतल तथा तृषा, वमन, खुजली, पित्त आदि में लाभकारक है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में इसे आत्मा और शरीर के भेद का सूचक माना गया है। इसका प्रत्येक भाग विविध कार्यों में उपयोगी होता है। यह अन्य फलों की अपेक्षा अधिक समय तक टिकता है अत: किसी निर्जन स्थान में भी मंगल फल के रूप में इसका उपयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार कल्याण एवं मुक्ति का सूचक होने से प्रत्येक मांगलिक कार्यों में श्रेष्ठ वस्तु के रूप में सर्वप्रथम इसी की स्थापना करते हैं। वस्तु के गुणधर्म एवं तत्सम्बन्धी मान्यता के अनुसार आयोजनकर्त्ता के विचार तरंगों में भी तद्रूप भावों का उदय होता है। यह बाह्य और आभ्यन्तर द्विविध कोटियों से मंगलकारी है।

नागवल्ली (नागरवेल, पान)– नागवल्ली, यह पान के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यह स्वभावत: मुँह की दुर्गन्ध, मल, वात, त्रिदोष और श्रम को दूर करता है। इसका उपयोग करने से धारणा शक्ति बढ़ती है और अन्य भी कई लाभ होते हैं। गुणवत्ता की दृष्टि से यह स्त्रियों के सौभाग्य में वृद्धि करता है। धार्मिक दृष्टि से पान को मंगलकारी एवं वातावरण की शुद्धि करने वाला भी माना गया है। इन्हीं कारणों से पूजा-गृहप्रवेशादि मंगल कार्यों में इसका प्रयोग करते हैं।

प्रतिष्ठा अंजनशलाका विधान के संदर्भ में किया गया यह रहस्योद्घाटन जन मानस को प्रतिष्ठा विधानों का हार्द समझाने एवं उनके मौलिक उद्देश्यों से रूबरू करवाने में सहयोगी तो बनेगा ही साथ ही उन विधियों में अन्तर्भूत अनेक विध दृष्टिकोणों को भी स्पष्ट करेगा। कई ऐसे अनुष्ठान है जिनको मात्र परम्परा अनुकरण करते हुए किया जाता है तो कई ऐसे भी विधान है जिनका आगमन लोक व्यवहार या अन्य परम्पराओं से प्रभावित होकर जैन क्रिया अनुष्ठानों में हुआ। कई विधियों का निर्देशन सामाजिक एवं आध्यात्मिक उत्थान हेतु भी किया गया है तो कुछेक के पीछे विशिष्ट वैज्ञानिक तथ्य रहे हुए है। इन क्रिया-विधियों को यदि तत्सम्बन्धी जानकारी पूर्वक किया जाए तो यह अवश्य ही वैयक्तिक, सामाजिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर अनेक प्रकार से लाभकारी हो सकती है तथा एक सुदृढ़ समाज एवं उत्तम जिन मन्दिर के निर्माण में सहयोगी बन सकती है।

सन्दर्भ-सूची

1. *(क) पंचाशक प्रकरण, 8/25*
   (ख) निर्वाण कलिका, पृ. 45-46
2. *पंचाशक प्रकरण, 8/28*
3. *वही, 8/27*
4. *वही, 8/32-33*
5. *वही, 8/29-31*
6. *जह सिद्धाण पतिट्ठा, तिलोगचूडामणिम्मि सिद्धपदे।*
   आचंदसूरियं तह, होउ इमा सुप्पतिट्ठत्ति॥
   एवं अचलादीसुवि, मेरूप्पमुहेसु होति वत्तव्वं।
   एते मंगलसद्दा, तम्मि सुहनिबंधणा दिट्ठा॥
   पंचाशक प्रकरण, 8/34-35
7. *वही, 8/36*
8. *वही, 8/37*
9. *वही, 8/38*
10. *वही, 8/39*
11. *नन्दीसूत्र, गा. 4-19*
12. *पंचाशक प्रकरण, 8/41*
13. *वही, 8/43*
14. *वही, 8/44*
15. *वही, 8/45*
16. *ऋषिमंडल यन्त्र पूजन, पृ. 4*
17. *जैन धर्म और तान्त्रिक साधना, पृ. 222*
18. *निर्वाण कलिका, पृ. 49*
19. *मन्त्रराज रहस्य, पृ. 104*
20. *जैन धर्म और तान्त्रिक साधना, पृ. 43*
21. *पंचाशक प्रकरण, 8/18*
22. *वही, 8/19-20*
23. *मुद्रा विज्ञान, पृ. 45*
24. *संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 709*
25. *षोडशक प्रकरण, 8/16*

अध्याय–15

प्रतिष्ठा सम्बन्धी विधि-विधानों का ऐतिहासिक एवं आधुनिक दृष्टि से परिशीलन

प्रतिष्ठा सम्बन्धी विधि-विधानों के स्वरूप के विषय में यदि ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन किया जाए तो अनेक विचारणीय तथ्य परिलक्षित होते हैं। अब तक अनेक प्रतिष्ठा कल्प भिन्न-भिन्न आचार्यों द्वारा लिखे गए है। सभी ने अपने से पूर्व के प्रतिष्ठा कल्पों को आधार तो बनाया पर उस समय में रही विचारधारा, लौकिक प्रवृत्तियाँ एवं अन्य परम्पराओं में चल रही क्रियाओं का भी उनमें समावेश होता गया। शनैः शनैः आए इन परिवर्तनों का संकलित स्वरूप आज के प्रतिष्ठा विधानों में परिलक्षित होता है जिसमें कुछ अंश तो प्राचीन प्रतिष्ठा कल्पों का है एवं कुछ अन्य प्रतिष्ठा ग्रन्थों का। कई ऐसे विधान प्रतिष्ठित कल्पों में हैं जिनका वर्तमान में भी कोई औचित्य नहीं है, तो कहीं पर अनावश्यक परिवर्तन हुए हैं। ऐसे ही कई तथ्यों पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चिंतन करते हुए उनकी समीक्षा एवं आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उनकी आवश्यकता पर इस अध्याय में विचार करेंगे।

अधुनातन श्वेताम्बर प्रतिष्ठा कल्पों का एक समीक्षात्मक अध्ययन

जैन इतिहास के मर्मज्ञ, गणिवर्य्य कल्याणविजयजी महाराज साहब (विक्रम की 20 वीं शती) के अनुसंधान के आधार पर वर्तमान में कितने प्रतिष्ठाकल्प विद्यमान हैं? यह निश्चित रूप से कहना संभव नहीं है। कई प्रतिष्ठाकल्प सामाचारी ग्रन्थों, उपदेश ग्रन्थों और कथा ग्रन्थों में पृथक प्रकरण के रूप में लिखे गये हैं तो कुछेक स्वतन्त्र अस्तित्व भी रखते हैं। वर्तमान में आठ प्रतिष्ठाकल्प उपलब्ध हैं उनमें तीन सामाचारी के एक भाग के रूप में और पाँच स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में गिने जा सकते हैं। इन आठ प्रतिष्ठा कल्पों का परिचय कालक्रम के अनुसार प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्वेताम्बर की अर्वाचीन परम्परा में प्राचीन प्रतिष्ठा पद्धति आचार्य पादलिप्त सूरिकृत निर्वाणकलिका में दी गई है। आचार्य कल्याणसागर सूरीश्वरजी के मतानुसार यह प्रतिष्ठा कल्प दिगम्बर के प्रतिष्ठाकल्पों से भी अति प्राचीन है। वे कहते हैं कि दिगम्बर की प्रतिष्ठा पद्धतियाँ प्राय: निर्वाणकलिकागत प्रतिष्ठाकल्प का अनुसरण करती हैं। कुछ प्रमाणों से सहज अनुमान होता है कि दिगम्बरमान्य प्रतिष्ठा कल्पों का उद्गम स्थान निर्वाणकलिका है। अनेक दिगम्बर ग्रन्थ श्वेताम्बर सिद्धान्तों के आधार पर रचे गये हैं। इस न्याय से दिगम्बरीय प्रतिष्ठा कल्प के लिए भी यह संभव हो सकता है।

निर्वाण कलिकागत प्रतिष्ठा पद्धति का मूल आधार कोई अति प्राचीन प्राकृत प्रतिष्ठाकल्प है रचनाकार ने 'आगम' कहकर इसका बहुमान किया है। आचार्य पादलिप्तसूरि ने स्थान-स्थान पर प्राकृत प्रतिष्ठा के साक्षी पाठ उद्धृत कर निर्वाण कलिका को विशेष समृद्ध और पूर्ण प्रामाणिक बनाया है।

निर्वाण कलिका के रचनाकाल के सम्बन्ध में निश्चित कह पाना संभव नहीं है, किन्तु यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि इस ग्रन्थ की रचना चैत्यवास प्रारम्भ होने के पश्चात हुई है। इससे निर्वाणकलिका की रचना का काल विक्रम की 5 वीं शती के आस-पास सिद्ध होता है। दूसरे, इस प्रतिष्ठा पद्धति के अन्तरंग निरूपणों से भी पूर्वोक्त समय का ही अनुमान होता है।

निर्वाण कलिका के पश्चात श्रीचन्द्रसूरिकृत प्रतिष्ठा पद्धति उपलब्ध होती है। यह प्रतिष्ठा विधि सुबोधासामाचारी के अन्त में प्रकाशित है तथा प्रक्षिप्त होने पर भी अन्य प्रतिष्ठा पद्धतियों की तुलना में मौलिक और प्राचीन है। इस प्रतिष्ठा पद्धति का रचनाकाल विक्रम की 12 वीं शताब्दी माना गया है।

इसके अनन्तर आचार्य जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा सामाचारी में प्रतिष्ठा विधि प्राप्त होती है। यह प्रतिष्ठा पद्धति श्री चन्द्रसूरिकृत प्रतिष्ठा पद्धति का अनुसरण करती है। इसके प्राय: विधि-विधान श्रीचन्द्रसूरि की प्रतिष्ठा विधि से मिलते-जुलते हैं। इस प्रतिष्ठा पद्धति का रचनाकाल वि.सं.1363 है।

तदनन्तर विक्रम की 15वीं शती के जैनाचार्य वर्धमानसूरिकृत आचार दिनकर में प्रतिष्ठा विधि का स्वरूप देखा जाता है। इसमें उल्लिखित प्रतिष्ठा पद्धति आधुनिक प्रतिष्ठा कल्पों में सर्वाधिक विस्तृत तथा चैत्यवास और भट्टारक परम्परा से पूर्णत: प्रभावित है।

आचार्य कल्याणसागरसूरि के अनुसार आचार्य वर्धमानसूरि के समीप में

श्वेताम्बरीय और दिगम्बरीय विस्तृत प्रतिष्ठा पद्धतियाँ होनी चाहिए और उन्होंने उन पद्धतियों का न केवल अनुकरण ही किया है प्रत्युत अतिदोहन भी किया है। दूसरे, आचार दिनकर की प्रतिष्ठा पद्धति में निर्दिष्ट नन्द्यावर्त्त पूजन और महापूजा प्रकरण में अतिगम्भीर और विद्वत्तापूर्ण काव्यों की छटा के दर्शन होते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि वे काव्य आचार्य वर्धमानसूरि के पुरोगामी कोई समर्थ विद्वान् प्रतिष्ठा कल्पकार की प्रासादिक रचना होनी चाहिए। तीसरे, प्राचीन श्वेताम्बर आचार्यों ने नन्द्यावर्त्त पूजन को प्रतिष्ठा के प्रधान अंग के रूप में स्वीकार कर उस पूजन को विस्तृत किया है। इसीलिए आचार्य वर्धमानसूरि ने भी नन्द्यावर्त्त पूजन का सविस्तृत निरूपण किया है।

इसके पश्चात तपागच्छीय गुणरत्नसूरि सन्दर्भित प्रतिष्ठा कल्प उपलब्ध होता है। यह सभी प्रतिष्ठा कल्पों में सर्वश्रेष्ठ, परम विशुद्ध, सरल संस्कृत भाषा गुम्फित और अतिसुगम है। इस प्रतिष्ठा कल्प का रचनाकाल विक्रम की 15 वीं शती का उत्तरार्ध है।

इसके परवर्ती श्री विशालराज शिष्यकृत प्रतिष्ठाकल्प भी प्राय: शुद्ध है। उसका रचनाकाल विक्रम की 15 वीं शती का प्रान्त भाग अथवा 16 वीं शती का प्रारम्भिक काल है।

तत्पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि की प्रतिष्ठा विधि का अनुसरण करते हुए किसी खरतरगच्छीय विद्वान के हाथ से पडिमात्रा वाली लिपि में लिखा गया प्रतिष्ठाकल्प प्राप्त होता है। इसमें कर्ता का नामोल्लेख एवं उसके रचनाकाल का निर्देश नहीं है। फिर भी उसकी भाषा और लिपि के आधार पर वह प्रतिष्ठा कल्प 16 वीं शताब्दी के अन्त भाग का अथवा 17 वीं शताब्दी के प्रारम्भ का ज्ञात होता है।

तदनन्तर उपाध्याय सकलचन्द्रगणि कृत आठवाँ प्रतिष्ठा कल्प आधुनिक विधिकारकों में विशेष आदरणीय और प्रचलित है। इतना ही नहीं, आचार दिनकर की प्रतिष्ठा विधि से परवर्ती अन्य सभी विधियों की अपेक्षा यह प्रतिष्ठा कल्प अधिक विस्तृत भी है। इस प्रतिष्ठा कल्प का रचना काल विक्रम की 17 वीं शती का मध्य भाग है।

इस प्रकार निर्वाण कलिका से लेकर पाँचवें गुणरत्नसूरि तक के पाँच प्रतिष्ठा कल्प शुद्ध संस्कृत भाषा में रचित हैं तथा उससे परवर्ती छठां, सातवाँ एवं आठवाँ प्रतिष्ठा कल्प प्राचीन लोकभाषा में लिखे गये हैं।

यदि उपर्युक्त आठों प्रतिष्ठाकल्पों के मूल आधार के संबंध में विचार करें कि कौनसी प्रतिष्ठा विधि किस प्रतिष्ठा कल्प का अनुसरण करती है तो निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं-

कालक्रम के अनुसार दूसरी, तीसरी एवं सातवीं प्रतिष्ठा विधि एक-दूसरे का अनुकरण करती हैं। इसी तरह पाचवाँ और छठा प्रतिष्ठा कल्प अधिकांशतः एक-दूसरे का अनुसरण करता है। जबकि पहली, चौथी एवं आठवीं इन तीन प्रतिष्ठा कल्पों की विधियाँ किसी भी अन्य प्रतिष्ठा कल्प की विधि से समानता नहीं रखती हैं।

पहला निर्वाण कलिका का प्रतिष्ठा कल्प प्राचीन होने के कारण दूसरे कल्पों से कई विधि नियमों में पृथक मालूम होता है। इसमें जलयात्रा की विधि के समान अभिषेक विधि भी उल्लिखित नहीं हैं। यद्यपि अभिषेक की सामग्री सूची दी गई है।

इस प्रतिष्ठाकल्प में नन्द्यावर्त्त पूजन को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। इसमें नन्द्यावर्त्त पूजन के तुरन्त पश्चात प्रतिष्ठा विधि कही गई है। यहाँ दिक्पाल और नवग्रहों की स्थापना और पूजन को स्वतन्त्र रूप से आवश्यक नहीं माना है, किन्तु नन्द्यावर्त्त पूजन में उन सभी का समावेश करके प्रतिष्ठा विधि को अल्प व्यय और अल्प कष्ट साध्य वाली प्रस्तुत की गई है।

निर्वाण कलिका की प्रतिष्ठा विधि कितने ही अंशों में दिगम्बरीय प्रतिष्ठा पद्धति के समरूप है। दिगम्बर परम्परागत प्रतिष्ठा कल्पों का उद्गम स्थल इसी प्रतिष्ठा पद्धति को माना गया है, अतः दोनों प्रतिष्ठा कल्पों में न्यूनाधिक समानता होना स्वाभाविक है। वस्तुतः निर्वाण कलिकान्तर्गत प्रतिष्ठा पद्धति का मूल आधार भी कोई अति प्राचीन प्राकृत प्रतिष्ठाकल्प है।

दूसरा श्रीचन्द्रसूरि संकलित प्रतिष्ठा कल्प भी संभवतः किसी प्राचीन प्राकृत प्रतिष्ठा कल्प के आधार पर ही रचा गया है। तदुपरान्त इसमें किसी भी गाथा का प्रामाणिक रूप से उल्लेख नहीं है। इस प्रतिष्ठा कल्प का मंत्रभाग भी अत्यन्त संक्षिप्त है।

इससे प्रतीत होता है कि श्रीचन्द्रसूरि ने निर्वाण कलिका के आधार पर रचित किसी प्राचीन पद्धति का सहयोग प्राप्त कर इस प्रतिष्ठा पद्धति का निर्माण किया है।

तीसरा विधिमार्गप्रपागत प्रतिष्ठा कल्प दूसरे नं. के प्रतिष्ठा कल्प के आधार पर रचा गया सिद्ध होता है क्योंकि दोनों रचनाकारों की प्रतिष्ठा विषयक मान्यताएँ समान हैं। उनमें क्वचित अन्तर का मुख्य कारण समय और कर्त्ता की भिन्नता ही हो सकता है।

आचारदिनकर नामक चौथे प्रतिष्ठा कल्प के सम्बन्ध में रचनाकार आचार्य वर्धमानसूरि स्वयं बताते हैं कि

प्रतिष्ठा विधिरादिष्टः, पूर्वं श्रीचन्द्रसूरिभिः ।
संक्षिप्तो विस्तरेणाय, मागमार्थाद्वितन्यते ।।

प्रतिष्ठाकारयितुर्गृहि प्रथमं शान्तिकं पौष्टिकं कुर्यात् । अतश्च श्री चन्द्रसूरि प्रणीता प्रतिष्ठा युक्तिः महाप्रतिष्ठा कल्पापेक्षया लघु- तरेति ज्ञायते। ततः आर्यनन्दिक्षपक-चन्द्रनन्दि- इन्द्रनन्दि- श्री वज्रस्वामि प्रोक्त प्रतिष्ठा कल्प दर्शनात् सविस्तरा लिख्यते।

श्रीचन्द्रसूरि ने प्रतिष्ठा विधि संक्षेप में कही है। यह प्रतिष्ठा विधि आगम के अनुसार विस्तृत रची जा रही है। इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि गृहस्थ के घर पर प्रतिष्ठा करने से पूर्व प्रतिष्ठाकर्ता को शांतिक और पौष्टिक कर्म करना चाहिए, परन्तु श्रीचन्द्रसूरि रचित प्रतिष्ठा पद्धति महाप्रतिष्ठा कल्पों की अपेक्षा अत्यन्त लघु है इसीलिए आर्य नन्दिक्षपक, चन्द्रनन्दि, इन्द्रनन्दि और वज्रस्वामी कथित प्रतिष्ठा कल्पों का अवलोकन कर विस्तार से प्रतिष्ठा पद्धति लिखी जा रही है।[1]

उपर्युक्त पाठ में आचार्य वर्धमानसूरि ने आर्यनन्दिक्षपक और चन्द्रनन्दि आदि के नामों का उल्लेख किया है।

आर्यनन्दिक्षपक और चन्द्रनन्दी के नाम श्वेताम्बर परम्परा में नहीं हैं। ये दिगम्बर भट्टारकों के नाम प्रतीत होते हैं। यद्यपि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में 'इन्द्रनन्दी' नाम प्राप्त होता है परन्तु श्वेताम्बर 'इन्द्रनन्दी' आचार्य वर्धमानसूरि से परवर्ती हैं इसलिए प्रतिष्ठा कल्पकार के रूप में दिगम्बर इन्द्रनन्दी होना अधिक संभव है।

श्री वज्रस्वामी श्वेताम्बर संघ में एक महान प्रभावक आचार्य हुए हैं। फिर भी तत्सम्बन्धी प्रतिष्ठाकल्प के विषय में स्पष्ट जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई है।

ऐसा माना जाता है कि आचारदिनकर के कर्ता ने प्राचीनतम प्राकृत प्रतिष्ठाकल्प को ही वज्रस्वामीकृत स्वीकार कर लिया है जिसे आचार्य पादलिप्त सूरि ने स्वयं की प्रतिष्ठा पद्धति में आगम के नाम से उल्लेखित किया है। जो कुछ भी हो उपर्युक्त वर्णन से यह सुस्पष्ट है कि आचार्य वर्धमानसूरि के समक्ष श्वेताम्बर और दिगम्बर उभय सम्प्रदायों की विस्तृत प्रतिष्ठा पद्धतियाँ थीं।

आचारदिनकर में प्रतिपादित प्रतिष्ठा पद्धति में मुख्य रूप से 'नन्द्यावर्त्तपूजा' और 'महापूजा' के प्रकरणों की काव्य छटाएँ अवलोकनीय हैं। आचार्य वर्धमानसूरि ने श्वेताम्बर प्रतिष्ठा कल्पों के उपरान्त दिगम्बरीय प्रतिष्ठाकल्पों का भी स्वयं की विधि में उपयोग किया है। इसका प्रमाण यह है कि इस ग्रन्थ में 'जैनविप्र' 'क्षुल्लक' आदि शब्द प्रयुक्त हैं जिन्हें साक्षी रूप में गिना जा सकता है। इसके बावजूद इतना सत्य है कि श्वेताम्बर प्रतिष्ठा-कल्पों में जो सामग्री मूल रूप से विद्यमान नहीं थी, उसे दिगम्बर ग्रन्थों से उदधृत नहीं किया। प्राचीन श्वेताम्बराचार्यों ने प्रतिष्ठा के प्रधान अंग के रूप में नन्द्यावर्त्त पूजन का विस्तृत विधान किया है। इसी कारण वर्धमानसूरि ने भी इस पूजन का सविस्तृत वर्णन किया है। परन्तु कल्याणक विधि के प्रसंगों, जिनका इनसे पूर्व किसी भी श्वेताम्बर संप्रदाय के प्रतिष्ठाकल्प में वर्णन या विधान नहीं था, उन विधि-विधानों को स्वयं की प्रतिष्ठा विधि में स्थान नहीं दिया है।

पाँचवे और छठे प्रतिष्ठाकल्पों का आधार ग्रन्थ श्रीचन्द्रसूरिकृत प्रतिष्ठा पद्धति है किन्तु इन कल्पों में संकलन कर्ता द्वारा श्रीचन्द्रसूरिकृत प्रतिष्ठा का विशेष परिमार्जन किया गया प्रतीत होता है।

एक से चार पर्यन्त के प्रतिष्ठा कल्पों का संकलन करने वालों ने अंजनशलाका प्रतिष्ठा प्रसंग पर प्रतिष्ठाचार्य के लिए अंगुली में स्वर्ण मुद्रिका और कलाई में स्वर्ण कंकण धारण करने का स्पष्ट विधान किया है परन्तु पाँचवे और छठवें प्रतिष्ठा कल्पकारों ने स्वर्णमुद्रिका और कंकण के सम्बन्ध में चर्चा ही नहीं की है।

तदुपरान्त स्नात्रकारोचित कितनी ही पूजन प्रवृत्तियाँ, जिसे पूर्वकाल में प्रतिष्ठाचार्य के द्वारा स्वयं कर ली जाती थी, उन्हें पांचवें और छठें प्रतिष्ठाकल्प के संकलन कर्ताओं ने स्नात्रकारों के हाथ से करवाने का विधान किया है। इस नियम के परिणामस्वरूप इन प्रतिष्ठाकल्पों में गुरु और श्रावक के करने योग्य कार्यों का विभाजन हो गया है।

प्रतिष्ठाचार्य प्रतिष्ठा के मुख्य सूत्रधार होने से पूजा आदि अनुष्ठानों में शुद्ध उच्चारणपूर्वक मन्त्र एवं काव्य बोलना, सूरिमन्त्र से अभिमन्त्रित वासचूर्ण का प्रक्षेपण करना, जिन बिम्बों का नेत्रांजन करना, सम्यगदृष्टि देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा करना-करवाना आदि असावद्य प्रवृत्तियों का उन्हें एकमात्र अधिकार होता है। यह आचार शास्त्र सम्मत होने के कारण सर्वत्र मान्य है। स्नात्रकार शुद्ध सम्यक्त्वधारी, चतुर्थव्रत अंगीकार किए हुए, शक्ति अनुसार व्रत-प्रत्याख्यान करने वाले रात्रिभोजन और अभक्ष्य-अनन्तकाय के त्यागी हों तो भी प्रयत्न से प्रतिष्ठाचार्य के अधिकृत अनुष्ठानों को स्वयं करने का आग्रह नहीं रखे।

कदाच प्रतिष्ठादि के पुण्य प्रसंग पर प्रतिष्ठाचार्य का सुयोग न हो उस आपवादिक स्थिति में यदि गीतार्थ आचार्य प्रतिष्ठा करवाने की अनुमति पूर्वक सूरिमन्त्र से अभिमन्त्रित वासचूर्ण प्रदान करें तो उसे शुभ मुहूर्त में जिनबिंब के ऊपर प्रक्षिप्त करके प्रतिष्ठा करवा सकते हैं। परन्तु यह आचरणा आपवादिक होने से इसे औत्सर्गिक नहीं बनानी चाहिए।

सातवें प्रतिष्ठाकल्प का आधार जिनप्रभसूरि की प्रतिष्ठा पद्धति है। इस प्रतिष्ठा कल्पकार ने कितने ही अनुष्ठानों के सम्बन्ध में स्पष्टता से प्रतिपादन किया है। उनका उल्लेख जिनप्रभसूरिकृत प्रतिष्ठा पद्धति में नहीं है। कितनी ही सावद्य प्रवृत्तियाँ प्रतिष्ठाचार्य द्वारा नहीं, बल्कि स्नात्रकार श्रावकों के हाथ से करवाने का विधान किया गया है। परन्तु पाँचवें और छठें क्रम वाले प्रतिष्ठाकल्पों के विधानों से सातवें प्रतिष्ठाकल्पगत विधान भिन्न हैं।

आठवाँ प्रतिष्ठाकल्प उपाध्याय सकलचन्द्र की कृति मानी जाती है। इसके आधारभूत ग्रन्थ के विषय में रचनाकार ने ग्रन्थ की समाप्ति में निम्नानुसार सूचित किया है–

" इति श्री भद्रबाहु स्वामिना विद्याप्रवाद पूर्वात् प्रतिष्ठा कल्पोद्धृतः ।
तन्मध्याज्जगच्चन्द्रसूरीश्वरेण, यत्प्रतिष्ठा कल्पोद्धृतः ।।

तत एव प्रतिष्ठा कल्पः सुविहितवाचक श्री सकलचन्द्रगणिना भट्टारक श्री हरिभद्रसूरिकृत कल्प-हेमाचार्य कृतप्रतिष्ठा-श्यामचार्यकृत प्रतिष्ठाकल्प-श्रीगुणरत्नाकरसूरिकृत प्रतिष्ठाकल्प एभिः प्रतिष्ठाकल्पैः सह संयोजितः संशोधितश्च भ। श्री विजयदान सूरिश्वराग्रे।

उक्त समाप्ति लेख का तात्पर्य यह है कि आर्य भद्रबाहु स्वामी ने विद्याप्रवाद पूर्व में से प्रतिष्ठाकल्प को उद्धृत किया, उसमें से

श्री जगच्चन्द्रसूरिजी ने प्रतिष्ठाकल्प का उद्धार किया और उसमें से यह प्रतिष्ठाकल्प उपाध्याय सकलचन्द्रगणि ने निर्मित कर आचार्य हरिभद्रसूरि-हेमचन्द्राचार्य-श्यामाचार्य-गुणरत्नाकरसूरिकृत प्रतिष्ठाकल्पों के साथ संयुक्त करके श्री विजयदान सूरिजी के समक्ष संशोधित किया है।

प्रस्तुत प्रतिष्ठाकल्प उपाध्याय सकलचन्द्र की ही कृति है अथवा किसी के द्वारा इनके नाम से प्रसिद्ध की गई अर्वाचीन कूट कृति है, इस शंका का समाधान अपेक्षित है। ऊपर वर्णित समाप्ति लेख की अशुद्धियाँ और प्रशस्ति का अभाव देखकर यह ग्रन्थ सकलचन्द्र की कृति होने के विषय में शंका उत्पन्न करता है। इसके उपरान्त भी प्रचलित विधि-विधानों का अनुसरण करते हुए इसे सकलचन्द्र की कृति के रूप में स्वीकार भी कर लिया जाए तब भी यह वर्तमान रूप में तो उपाध्याय सकलचन्द्र की कृति नहीं हो सकती है क्योंकि इसमें कई अक्षम्य त्रुटियाँ है और इसके कितने ही विषय अस्त-व्यस्त देखे जाते हैं जैसे कि–

1. प्रस्तुत प्रतिष्ठा कल्प के अतिरिक्त अन्य प्रतिष्ठा कल्पों में पांचवाँ अभिषेक पंचगव्य से करने का निर्देश है जबकि इस कल्प में पंचगव्य अभिषेक को नौवाँ स्थान दिया गया है तथा पंचगव्य के स्थान पर 'सदौषधि' का उल्लेख है।

अभिषेक की सामग्री के संबंध में भी परिवर्तन दिखाई देता है। अन्य प्रतिष्ठाकारों ने गाय का दूध, दही, घी, मूत्र और छाणा– इन पाँच वस्तुओं को पंचगव्य के रूप में स्वीकार किया है उनके स्थान पर इस कल्प में दूध, दही, मक्खन, घृत और छाछ इन पाँच के समुदाय को 'पंचगव्य' कहा है, जो यथार्थ नहीं है। मक्खन और घृत, दही और छाछ-ये भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं एक-एक द्रव्य के ही अवस्थापरक दो भिन्न नाम हैं। इस प्रकार वास्तविक रीति से देखें तो पंचगव्य के स्थान पर त्रिगव्य का ही अभिषेक होता है। जबकि प्रत्येक प्रतिष्ठा कल्पकारों ने पंचगव्य अभिषेक का विधान किया है। उपाध्याय जैसे समर्थ विद्वान् दही और छाछ तथा मक्खन और घी को भिन्न द्रव्य के रूप में मानने की त्रुटि नहीं कर सकते हैं।

2. अन्य प्रतिष्ठा कल्पों में छठवाँ अभिषेक 'सदौषधि' का है वहीं प्रस्तुत प्रतिष्ठाकल्प में छठा अभिषेक प्रथम अष्टकवर्ग का माना गया है तथा इस

अष्टकवर्ग के दूसरे काव्य के द्वितीय चरण में 'वीरणिमूल' के स्थान पर 'हीरवणी' शब्द का उल्लेख कर स्वअज्ञता का प्रदर्शन किया गया है।

3. सभी प्रतिष्ठाकल्पों में सातवाँ अभिषेक 'मूलिका चूर्ण' का है किन्तु प्रस्तुत प्रतिष्ठा कल्प में सातवें क्रम पर द्वितीय अष्टकवर्ग का उल्लेख है।

4. अन्य प्रतिष्ठा कल्पों में आठवाँ अभिषेक प्रथम अष्टक वर्ग का और दसवाँ अभिषेक 'सर्वौषधि' का उल्लिखित है किन्तु प्रस्तुत कल्प में अनुक्रम से 'सर्वौषधि' और 'सुगन्धौषधि' का नामोल्लेख है।

5. अधिकांश प्रतिष्ठा कल्पों में अठारह अभिषेक होने के पश्चात शुद्ध जल से अष्टोत्तरशत (108) अभिषेक करने का विधान है। पाँचवें प्रतिष्ठा कल्प में दूध, दही, घी, इक्षुरस अथवा शक्कर और सर्वौषधि मिश्रित अभिषेक करने के पश्चात 108 अभिषेक करने का निर्देश किया गया है, परन्तु प्रस्तुत प्रतिष्ठा कल्प में 108 अभिषेक का उल्लेख निर्वाण कल्याणक के प्रसंग पर किया गया है जहाँ तत्सम्बन्धी कोई प्रसंग ही नहीं है।

6. अन्य प्रतिष्ठाकल्पों के साथ प्रस्तुत कल्प का महत्त्वपूर्ण मतभेद कल्याणक की उजवणी के सम्बन्ध में भी है। पहले से सातवें पर्यन्त किसी भी प्रतिष्ठा कल्प में कल्याणक की उजवणी के निमित्त 10 दिनों के कार्यक्रम का उल्लेख नहीं है। चौथे प्रतिष्ठाकल्प में नन्द्यावर्त्तपूजन और महापूजा आदि प्रकरणों में अनावश्यक विस्तार देखा जाता है। जबकि प्रस्तुत प्रतिष्ठा कल्प में कल्याणकों की उजवणी अथवा तत्सम्बन्धी मंत्र आदि किसी का भी वर्णन नहीं है।

7. इस प्रतिष्ठा कल्प के पूर्ववर्ती सभी प्रतिष्ठा कल्पकारों ने 360 क्रयाणकों की भिन्न-भिन्न पुड़िया अथवा 360 की एक पुड़ी बांधकर जिनबिम्ब के समक्ष रखने का विधान किया है। सप्तधान्य क्षेपण (धान्य स्नान) आदि के विधान 'अधिवासना' प्रसंग पर ही किये जाते हैं। अंजन विधि के बाद तो जिनबिम्बों की गंध, पुष्प, चन्दन आदि से पूजा करके उनके समक्ष मोदक आदि विविध मिष्ठानों को नैवेद्य के रूप में रखते हैं।

ऐसा वर्णन सभी प्रतिष्ठाकल्पों में किया गया है। जबकि प्रस्तुत प्रतिष्ठा कल्प में प्राण प्रतिष्ठा होने के पश्चात जिन बिम्ब के हाथ में 360 क्रयाणकों की पुड़िया रखने का निर्देश किया गया है। इसलिए यह विषय विचारणीय है।

8. प्रस्तुत आठवें प्रतिष्ठाकल्प में जिन बिम्बों का नेत्रांजन करने के पश्चात निर्वाण कल्याणक की विधि दर्शाई गई है। उसके बाद देववन्दन विधि के अन्तर्गत 'प्रतिष्ठा देवता' के विसर्जनार्थ कायोत्सर्ग करने का सूचन किया गया है। यह प्रत्यक्ष भूल है, क्योंकि प्रतिष्ठा होने के पश्चात कंकण मोचन विधि और सात मंगल गाथाओं को उच्च स्वर में बोलकर अक्षतांजलि के क्षेपण पूर्वक जिनबिम्बों को बधाने की मंगल विधि करनी चाहिए। इन अनुष्ठानों को किये बिना प्रतिष्ठा देवता के विसर्जन का कायोत्सर्ग कैसे संभव हो सकता है? प्रस्तुत प्रतिष्ठा कल्पकार के अतिरिक्त अन्य सभी प्रतिष्ठा कल्पकारों ने कंकण मोचन-विधि के पश्चात नन्द्यावर्त्त और प्रतिष्ठा देवता के विसर्जनार्थ कायोत्सर्ग करने का निर्देश किया है जबकि प्रस्तुत कल्प में कंकण मोचन-विधि का उल्लेख ही नहीं है केवल नन्द्यावर्त्त और प्रतिष्ठा देवता के विसर्जन हेतु मन्त्रोच्चार पूर्वक 'नन्द्यावर्त्त और प्रतिष्ठादेवता का विसर्जन करता हूँ' इस तरह उल्लेख किया गया है। इसी के साथ कंकण मोचन का आदेश मात्र है, वहीं अन्य प्रतिष्ठाकल्पों में विधिपूर्वक कंकण मोचन करने के पश्चात नन्द्यावर्त और प्रतिष्ठा देवता को विसर्जित करने का और अन्त में 108 जल कलशों द्वारा जिन बिम्बों के अभिषेक का विधान किया गया है।

9. इस कल्प में प्रतिष्ठा सामग्री में भी अपेक्षाधिक वृद्धि देखी जाती है इसीलिए आधुनिक युग की अंजनशलाका-प्रतिष्ठा अधिक महंगी हो गई है। जैसे– अन्य प्रतिष्ठा कल्पों की विधि के अनुसार अंजनशलाका युक्त प्रतिष्ठा में 1 दर्पण, 1 चांदी की कटोरी, 1 स्वर्ण की शलाका, 1 दीपक, 1 चामर की जोड़ इत्यादि सीमित सामग्री का उपयोग होता है वहीं प्रस्तुत कल्पविधि के अनुसार 9 दर्पण, 2 चांदी की कटोरी, 1 स्वर्ण की शलाका, 4 दीपक, 4 चामर की जोड़ी 1 सोने की कटोरी, 1 सोने की रकेबी, 1 स्वर्ण का थाल इत्यादि अनेक उपकरणों में और उपकरण संख्या में अभिवृद्धि हुई है, खर्च बढ़े हैं और प्रतिष्ठा के प्रसंग घटे हैं।[२]

प्राचीन और अर्वाचीन प्रतिष्ठा ग्रन्थों एवं विधियों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन

कोई भी विधि-विधान प्रारम्भिक अवस्था में जितना सीधा, सरल और अल्प खर्च वाला होता है उतना ही कालान्तर में जटिल, दुर्बोध और महंगा हो जाता है, इस अटल नियम से अंजनशलाका प्रतिष्ठा आदि के विधि-विधान भी

मुक्त नहीं रह सकें। प्रतिष्ठाकल्पों की उत्पत्ति का इतिहास चर्चित करने से पूर्व प्रतिष्ठा कल्पों और प्रतिष्ठा विधियों में हुए क्रमिक परिवर्तन आदि के सम्बन्ध में निरूपण अपेक्षित है।

प्राचीन काल में प्रतिष्ठा विधान अत्यन्त सुगम और अल्पव्यय साध्य होता था, आधुनिक युग में प्रचलित सामग्री की लम्बी सूची पूर्वकाल में नहीं थी। इस तरह की विधि-स्थितियों को समझने के लिए प्राचीन और अर्वाचीन प्रतिष्ठा कल्पों में उल्लिखित सामग्री आदि में कालक्रम से किस प्रकार वृद्धि हुई और आज कई अनुष्ठान मूल विधि से स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए किस स्थिति तक पहुँच गये हैं इस विषय पर उपलब्ध विवरण इस प्रकार है–

पाटला– निर्वाणकलिका की रचना के समय में श्रीअंजनशलाका प्रतिष्ठा में मात्र नन्द्यावर्त्त पूजन के लिए एक ही पट्टक आवश्यक माना जाता था। दिक्पालों का पूजन करने हेतु वेदिका के ऊपर पंचवर्णी चूर्ण से दिक्पालों का आलेखन कर लिया जाता था।

श्रीचन्द्रसूरि की प्रतिष्ठा पद्धति में दिक्पालों के पूजन हेतु एक पट्टा स्वतन्त्र रूप से अस्तित्व में आया। इस प्रकार विक्रम की 12 वीं शती से लेकर 15 वीं शती पर्यन्त प्रतिष्ठाकल्पों में नन्द्यावर्त्त और दिक्पाल पूजन के दो पट्टे प्रतिष्ठा उपकरणों में गिने जाते रहे।

श्री विशालराज शिष्यकृत प्रतिष्ठाकल्प में उपर्युक्त दो पट्टों के उपरान्त तीसरा 'नवग्रह' का पट्ट अस्तित्व में आया। इससे पूर्व कोई आचार्य नन्द्यावर्त्त के अंतिम वलय में नवग्रहों का पूजन करवाते थे, तो कोई आचार्य जिनबिम्ब के चरणों के नीचे नवग्रह का पूजन करवाते थे, परन्तु नवग्रह पट्ट का स्वतन्त्र अस्तित्व किसी ने भी स्वाकीर नहीं किया था। विक्रम की 16 वीं शती के प्रारम्भ से नवग्रह का पट्ट प्रचलन में आया । उस समय से प्रतिष्ठा विधि में तीन पट्ट उपकरण के रूप में मान्य हुए।

विक्रम संवत् 1848 से पूर्व रचित विधि ग्रन्थों में अष्टमंगल हेतु स्वतन्त्र पट्ट की आवश्यकता स्वीकार नहीं की गई है। यद्यपि आचारदिनकर में अष्टमंगल पट्ट का उल्लेख है परन्तु उस काल में अष्टमंगल पूजन के लिए पट्टा की आवश्यकता नहीं मानी जाती थी। स्वर्णजल से शुद्ध की गई भूमि के ऊपर अक्षतों द्वारा अष्टमंगल का आलेखन किया जाता था।

तदनन्तर विक्रम संवत् 1887 अथवा इससे परवर्ती काल में लिखित शान्तिस्नात्र-विधि में अष्टमंगल का पट्ट उपकरण के रूप में दृष्टिगोचर होता है। विक्रम संवत् 1639 एवं 1687 में लिखित अष्टोत्तरी स्नात्र विधि में अष्टमंगल पट्ट का नामोनिशान नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि अष्टमंगल पट्ट की अवधारणा अतिप्राचीन नहीं है। सम्भवत: वि.सं. 1687 के पश्चात और वि.सं. 1887 के पूर्व किसी काल में किसी विधि के साथ इसका प्रवेश हुआ है। विधि ग्रन्थों में तो अष्टमंगल के आलेखन का ही निर्देश है। अष्टमंगल की पूजा का विधान तो कहीं नहीं है तब वर्तमान में क्रियाकारक यह पूजन किस विधि-ग्रन्थ के आधार से करवाते हैं? उन ग्रन्थों के साक्षीपाठ प्रस्तुत कर स्पष्टता करना आधुनिक विधिकारकों का कर्तव्य बनता है। यदि साक्षीपाठ उपलब्ध नहीं होते हैं तो ऐसा समझना चाहिए कि किसी मनस्वी द्वारा प्रवर्त्तित अविहित प्रणाली है, जिसका बिना विचार किये अनुकरण किया जा रहा है। इस प्रकार मनो कल्पित विधानों का प्रवर्तन करने से कितने ही अनुष्ठानों की मौलिकता छिन्न-भिन्न होकर विपरीत स्वरूप में प्रवर्त्त रही है।

वस्त्र- उपकरण के रूप में पट्टों की अभिवृद्धि हुई तो तत्सम्बन्धी सामग्री में अभिवृद्धि होना स्वाभाविक है। जिस समय मात्र एक नन्द्यावर्त्त पट्ट का पूजन किया जाता था उस समय पट्ट को आच्छादित करने के लिए एक श्वेत रेशमी वस्त्र ही आवश्यक होता था तथा जिन बिम्बों की अधिवासना और प्रतिष्ठा के प्रसंग पर अखण्ड दो वस्त्र और मातृशाटिका इतनी ही वस्त्र सामग्री पर्याप्त थी।

तदनन्तर दशदिक्पाल के आह्वान हेतु स्वतन्त्र पट्ट का उपयोग प्रारम्भ हुआ। उस काल में पट्ट के ऊपर दिशाओं के क्रम अनुसार दिक्पालों के आह्वान पूर्वक चंदन-केशर का तिलक करते हुए उनकी स्थापना की जाती थी तथा सुगंधित द्रव्यों और सुवासित पुष्पों से पूजन किया जाता था, किन्तु वस्त्र पूजा या पट्ट के ऊपर वस्त्राच्छादन की कोई अपेक्षा प्रतीत नहीं हुई।

नन्द्यावर्त्त पट्ट के लिए 24 हाथ परिमाण के अखण्ड रेशमी वस्त्र का उपयोग होता था, उसे आचारदिनकर के कर्ता आचार्य वर्धमानसूरि ने सर्वप्रथम 291 हाथ परिमाण का स्वीकार किया। इसका मुख्य कारण यह माना जा सकता है कि आचार दिनकर में वर्णित बृहत नन्द्यावर्त्त में कुल मिलाकर 291 अधिकारी देवी-देवतागण हैं, उनमें प्रत्येक के लिए एक-एक हाथ का वस्त्र गिना गया है। तदनन्तर इसी तरह कालक्रम के अनुसार वस्त्र सामग्री में अभिवृद्धि होती गई।

अन्य प्रतिष्ठा कल्पकारों ने 291 हाथ परिमाण वस्त्र के सिद्धान्त को तद्रूप में तो मान्य नहीं किया है, परन्तु तदनुगामी आचार्यों के द्वारा किंचित प्रारम्भ करने से दिक्पाल पट्ट वस्त्र आच्छादित होने लगा। इसी प्रकार नवग्रह का पट्ट अस्तित्व में आने के पश्चात प्रत्येक ग्रह के वर्ण के समान वस्त्र चढ़ाना और नवग्रह पट्ट को वस्त्र से आच्छादित करना एक अविहित मार्ग के रूप में आज परम अनिवार्य बन गया है, परन्तु यह प्रणाली प्राचीन प्रतिष्ठा कल्पों से सर्वथा भिन्न है। इसी भाँति अष्टमंगल पट्ट के लिए भी वस्त्र आच्छादन की परम्परा शुरू हुई है।

प्राचीन प्रतिष्ठाकल्पों में मिट्टी की वेदिका के लिए वस्त्र का उल्लेख नहीं है किन्तु पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में लिखे गये प्रतिष्ठा कल्पों में वेदिका के लिए 12-12 हाथ परिमाण वस्त्र का निर्देश किया गया है।

प्राचीन काल में जलयात्रा के कलशों को नन्द्यावर्त्त पट्ट और जिन प्रतिमा के निकट स्थापित किया जाता था और कलशों के ऊपर जौ के पात्र रखते थे। आधुनिक विधिकारक उनके स्थान पर श्रीफल और रंगीन वस्त्र रखते हैं अर्थात श्रीफल को रंगीन वस्त्र से ढकते हैं। यह विधि आज भी प्रचलित हैं।

इस प्रकार प्रतिष्ठा विधियों में वस्त्र सामग्री ने धीरे-धीरे एक महत्त्व का स्थान प्राप्त कर लिया है। आज नवग्रहों और दश दिक्पालों का पूजन करने हेतु अमुक वर्ण के रेशमी वस्त्र होने ही चाहिये, इस प्रकार निर्धारित रंग के अनेक वस्त्र खरीदे जाते हैं। उसके पश्चात ही प्रतिष्ठा अथवा शान्ति स्नात्र जैसी धार्मिक क्रियाएँ होती हैं।

क्रयाणक– निर्वाण कलिका में आचार्य पादलिप्तसूरि ने क्रयाणकों का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु उसमें अष्टोत्तरशत मातृपुटिका का उल्लेख उपलब्ध होता है। यदि यह मातृपुटिका क्रयाणक के रूप में मानी जाती हो तो कहना चाहिए कि पादलिप्तसूरि के समय तक 108 क्रयाणकों की भिन्न-भिन्न पुड़िया ही परमात्मा के समक्ष रखना पर्याप्त माना जाता होगा। इसी कारण जिनबिम्ब के सम्मुख क्रयाणकों की 108 पुड़िया रखने का विधान किया गया है। परन्तु कालक्रम में 108 क्रयाणकों के स्थान पर 360 क्रयाणकों का निर्देश प्राप्त होता है, किन्तु यह परिवर्तन किस प्रतिष्ठा कल्पकार के द्वारा और कब किया गया? यह निश्चित रूप से कह पाना कठिन है।

श्रीचन्द्रसूरि के समय जिन प्रतिमा के आगे क्रयाणकों की भिन्न-भिन्न पुड़िया रखने-रखवाने की परिपाटी प्रवर्तित थी। तत्पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि स्वयं तो जिनबिम्ब के सम्मुख 360 क्रयाणकों की भिन्न-भिन्न पुड़िया रखने के पक्षधर थे परन्तु उनके समय में 360 क्रयाणकों को एक ही पुडी में बांधकर रखने-रखवाने की परम्परा प्रारम्भ हो चुकी थी। उसके बाद यह परिपाटी अद्यावधि पर्यन्त उसी रूप में प्रचलित है।

मुद्रा अर्थात रुपया-पैसा– पूर्वकालीन प्रतिष्ठाओं में अथवा स्नात्रादि पूजाओं में सामग्री के रूप में रुपया-पैसा का उपयोग नहीं होता था, केवल भेंटरूप में उसकी प्रधानता थी। शेष पूजाओं में तो वासचूर्ण, गंध, पुष्प, धूप आदि को ही स्थान प्राप्त था। फिर धीरे-धीरे इन विधानों में रुपये ने भी प्रवेश किया।

सर्वप्रथम एक-एक पूजा के पट्ट के ऊपर एक-एक रुपया चढ़ने लगा। इसके पश्चात शनैः शनैः प्रत्येक पद के लिए रुपया-पैसा होना चाहिए, ऐसा आग्रह प्रारम्भ हुआ। उसमें भी रुपया नहीं तो आठ आना, चार आना अथवा दो आना तो होना ही चाहिए, ऐसा कहकर विधिकारकों ने पैसा-रुपया रखने की प्रवृत्ति अनिवार्य रूप में शुरू कर दी। आधुनिक युग में शांतिस्नात्र पूजा हो अथवा अष्टोत्तरी वृद्धस्नात्र हो, उनमें पट्टे के ऊपर अभिषेक के अनुसार रुपये रखे जाएं तो पूजा अच्छी कही जाती है। फिर भले ही उन रुपयों का उपयोग किसी भी रूप में हो।

मेवा अथवा सूखा फल– निर्वाणकलिका में सूखे फल का कहीं उल्लेख नहीं है। फल के रूप में मात्र श्रीफल और तंबोल के रूप में सुपारी को स्वीकार किया गया है। किन्तु निर्वाणकलिका के अनन्तर प्रत्येक प्रतिष्ठा कल्पकों द्वारा संकलित प्रतिष्ठा कल्पों में मेवा अथवा सूखा फल प्रतिष्ठा विधि के एक अंग रूप में रूढ़ हो गये हैं।

प्रतिष्ठा आदि के उद्यापन के निमित्त से आयोजित श्री शान्तिस्नात्रादि बृहत् पूजा में जिन प्रतिमा के सम्मुख मेवा-सुपारी आदि रखने का विधान होने से आधुनिक विधिकारों द्वारा भी पूजनों में सूखा मेवा रखने का आग्रह होने लगा है। इससे आजकल भक्ष्याभक्ष्य का विवेक रखे बिना भी महापूजाओं में मेवा चढ़ाने की परिपाटी आवश्यक बन गई है।

उल्लेखनीय है कि फाल्गुन चातुर्मास से कार्तिक पूर्णिमा तक आठ महीना बादाम के सिवाय सूखा मेवा अकल्प्य है। उसमें भी आषाढ़ चातुर्मास से कार्तिक पूर्णिमा तक उसी दिन के फोड़े हुए बादाम ही कल्प्य होते हैं। इस नियम के अनुसार फाल्गुन से कार्तिक पूर्णिमा तक होने वाले पूजनों आदि में सूखा मेवा नहीं चढ़ाना चाहिए, परन्तु आधुनिक विधिकारक इन दिनों में भी सूखा मेवा चढ़ाने का आग्रह रखते हैं। आजकल कुछ विधिकारक ऐसे भी देखे जाते हैं जिन्हें न मन्त्रोच्चार की शुद्धि का ध्यान है और न ही उन्हें पूजन-अनुष्ठानों का मार्मिक बोध। फिर भी ध्वनिवर्धक लाउडस्पीकर में मन्त्रोच्चार करते हुए गतानुगतिक विधि से पूजादि अनुष्ठान सम्पन्न करते हैं और स्वयं को उस कोटि का मानते हैं कि शुद्ध मन्त्रोच्चार पूर्वक अनुष्ठान तो हम ही करवाते हैं। इस रीति से करवायी जाने वाली महा पूजाएँ कितनी फलदायी हो सकती है, यह तो सर्वज्ञ पुरुष अथवा बहुश्रुतज्ञानी गुरु भगवन्त ही जान सकते हैं।

नैवेद्य– निर्वाण कलिका से परवर्ती प्रतिष्ठा कल्पों में जैसे कालक्रम से अनेकविध सामग्रियों की अभिवृद्धि हुई, उसी प्रकार नैवेद्य रूप में मिष्ठान्नों की भी मन मुताबिक बढ़ोतरी होती रही।

निर्वाण कलिका में पक्वान्न के रूप में 1. दूध 2. गुडपिंड (शक्कर के पुडले) 3. कृसरा (खिचड़ी) 4. दध्योदन (दही का करवा) 5.सुकुमारिका (मीठा खाजा) 6. शाल्योदन (छिलका युक्त चावल) और 7. सिद्धपिण्डक (घी में तले हुए मुंठिया)- ये सात नाम आते हैं और ये नैवेद्य भी नन्द्यावर्त्त पूजन के समय पट्टे के आगे रखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त जिन प्रतिमा के सम्मुख अथवा पट्ट आदि के ऊपर कहीं भी फल, नैवेद्यादि चढ़ाने का उल्लेख नहीं हैं। परन्तु निर्वाण कलिका के परवर्ती प्रत्येक प्रतिष्ठाकल्पों में नन्द्यावर्त्त पट्ट के समक्ष विविध नैवेद्य चढ़ाने के उपरान्त जिन प्रतिमाओं के आगे पच्चीस साकरिया मोदक, जिसे प्राचीन काल में मोरींडा कहा जाता था उन मोदकों को चढ़ाने की परिपाटी का प्रवर्त्तन देखा जाता है।

इसके सिवाय नवग्रहों और दशदिक्पालों का पूजन करने हेतु चूरमे के लड्डू, तिल के लड्डू, उड़द के लड्डू, मूंग की दाल धाणी (सैके हुए अनाज के दाने), मुरमुरा, घिसी दाल आदि के लड्डू तथा इसी तरह के अन्य विविध पक्वान्न निर्मित करवाये जाते हैं। उनके तैयार होने के पश्चात ही दश-दिक्पालों

का पूजन हो सकता है, ऐसी अवधारणाएँ स्थापित हो गई हैं। इसी तरह अष्टमंगल का पट्ट, जिसका प्रारम्भ में अक्षतों द्वारा आलेखन करने के उद्देश्य से उपयोग किया जाता था उसके ऊपर आजकल अक्षतों के उपरान्त फल, फूल, पैसा और वस्त्र चढ़ाते हैं। पूर्वोक्त सभी कार्य विधिकारक इस ढंग से करवाते हैं, जिससे यह अनुभव किया जाता है कि इन सभी कृत्यों को किये बिना विधि अपूर्ण है।

इस प्रकार कालक्रम के अनुसार विधि-विधानों में मिठाइयों की अभिवृद्धि होते-होते आधुनिक पूजा अनुष्ठानों में मैसूर पाक, मोहनथाल, मोतीचूर लड्डू, घेवर, इमरती, बरफी, पेड़ा, गुंजापेठा, खाजा, ठोर आदि अनेक प्रकार के मिष्ठान्न अनिवार्य हो गये हैं। इसी भाँति दशदिक्पाल आदि तीन पट्टों का पूजन करना भी आवश्यक हो गया है।

अंजन– आचार्य पादलिप्तसूरि एवं उनसे परवर्ती कुछ प्रतिष्ठाकल्पकारों ने अंजन के रूप में केवल 'मधुघृत' के उपयोग का ही सूचन किया है जबकि 12 वीं शती से परवर्ती आचार्यों ने नेत्रोन्मीलन के लिए अनेक पदार्थों को आवश्यक माना है उनमें किसी आचार्य ने काला सूरमा, शक्कर और घी, किसी ने लाल सूरमा, शक्कर और घी, तो किसी ने सूरमा, शक्कर, बरास, कस्तूरी, मोती, प्रवाल, स्वर्ण और चांदी आदि सामग्री को बढ़ाकर नेत्रांजन तैयार करने का विधान किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि प्रतिष्ठा विधि-विधानों में कालक्रम के अनुसार कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं।

यहाँ मुख्य मुद्दों को ही स्पष्ट किया है। इसके सिवाय साधारण परिवर्तन इतने अधिक हुए हैं जिनकी गणना करना भी कठिन है। प्राचीन प्रतिष्ठा विधियों में क्या नहीं था और परवर्ती काल में किन सामग्रियों का समावेश हुआ। इसकी जानकारी प्राप्त करने हेतु कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। अब पूर्वकाल में क्या था और आधुनिक विधियों में क्या नहीं है इस सम्बन्ध में सामान्य निरूपण करेंगे।

जैसे प्राचीन अनुष्ठानों में अनेक वस्तुएँ नये रूप में प्रविष्ट हुईं वैसे ही कुछ आचार नियम प्राचीन विधियों में उपलब्ध थे किन्तु नवीन प्रतिष्ठा विधियों में अदृश्य हो गये हैं तद्विषयक कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है–

1. निर्वाणकलिका में बलि सामग्री के साथ कंदमूल ग्रहण का दो-तीन बार उल्लेख है।

2. निर्वाणकलिका के अन्तर्गत फल सामग्री में बोर एवं वृन्ताक को प्रशस्त फल के रूप में माना गया है।

3. निर्वाणकलिका में ऊर्णासूत्र एवं लौह मुद्रिका को उपकरण के रूप में स्वीकार किया गया है परन्तु इसके परवर्ती किसी भी प्रतिष्ठाकल्प की सामग्री में उपर्युक्त पदार्थों की परिगणना नहीं की गई है।

4. निर्वाणकलिका के अनुसार जिन प्रतिमा का प्रथम अभिषेक शिल्पी के द्वारा किया जाना चाहिए। उसके पश्चात अभिषेक चार स्नात्रकारों द्वारा करने का वर्णन है। इस विधि नियम को आचार्य जिनप्रभसूरि ने भी स्वीकार किया है किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रतिष्ठाकल्पकार ने उक्त विधि का समर्थन किया हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता है।

5. निर्वाणकलिका में नन्द्यावर्त्त पूजन हेतु सात वलय का उल्लेख किया गया है किन्तु अन्य प्रतिष्ठाकारों ने नन्द्यावर्त्त पूजन के लिए आठ वलय का विधान किया है।

निर्वाणकलिका में नन्द्यावर्त्त पूजन के प्रथम वलय के मध्यभाग में अरिहंत, पूर्व दिशा में सिद्ध, दक्षिण दिशा में आचार्य, पश्चिम दिशा में उपाध्याय, उत्तर दिशा में सर्वसाधु तथा आग्नेय आदि चार कोणों में अनुक्रम से ज्ञान-दर्शन-चारित्र और शुचि विद्या का आलेखन एवं पूजन करने का सूचन किया गया है, जबकि अन्य प्रतिष्ठाकारों ने मध्य वलय में 'श्री नन्द्यावर्त्त' स्वस्तिक का आलेखन कर उसके चारों ओर आठ दिशा-विदिशाओं में अनुक्रम से अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु-ज्ञान-दर्शन और चारित्र इन आठ पदों के आलेखन और पूजन का निर्देश किया है, शुचिविद्या के आलेखन और पूजन को छोड़ दिया है।

6. पूर्वकालीन स्थिर प्रतिष्ठा में मूलनायक प्रतिमा के अधोभाग में पंच धातु का स्थापन किया जाता था, जिसमें लौहधातु का भी समावेश होता था। किन्तु परवर्ती प्रतिष्ठाकारों ने पंचधातु की जगह पंचरत्न को स्थान दिया जिनमें सोना, चाँदी, तांबा, प्रवाल और मोती सम्मिलित है, लौह नहीं होता है।

7. विक्रम की चौदहवीं शताब्दी पर्यन्त जिनबिम्ब की चल प्रतिष्ठा में नन्द्यावर्त्त का पूजन कर उसके ऊपर प्रतिष्ठाप्य नूतन जिन बिम्ब की स्थापना

करते थे। उसके पश्चात कुछ अवधि तक कोई प्रतिष्ठाचार्य नन्द्यावर्त्त के ऊपर नूतन जिन बिम्ब की स्थापना करवाते थे और कोई प्रतिष्ठाचार्य नूतन जिन बिम्ब का मानसिक संकल्प पूर्वक चिन्तन कर साक्षात बिम्ब की स्थापना करने जितना संतोष कर लेते थे। कालान्तर में प्राय: यह प्रवृत्ति भी लुप्त हो गई। वर्तमान में नन्द्यावर्त्त पट्ट के ऊपर प्रतिमा की स्थापना अथवा उसका चिन्तन कुछ भी नहीं किया जाता है। अभी तो नन्द्यावर्त्त के चित्रित पट्ट का पूजन करके 'नन्द्यावर्त्त की पूजा की' ऐसा सन्तोष कर लेते हैं। परन्तु जिन प्रतिमा की स्थापना करने का मौलिक विधान लुप्त हो गया है।

8. पूर्वकाल में प्रतिष्ठाचार्य, इन्द्र अथवा मुख्य स्नात्रकार और प्रतिष्ठा कार्यों में प्रमुख रूप से जुड़ने वाले गृहस्थ प्रतिष्ठा के दिन उपवास करते थे, परन्तु आजकल कोई भी उपवास करते हो ऐसा देखने में नहीं आता है।

9. पूर्व काल में जिन बिम्ब की प्रतिष्ठा के बाद तीसरे, पाँचवें या सातवें दिन शुभ मुहूर्त्त में जिन बिम्बों का कंकण मोचन विधिपूर्वक किया जाता था। उस समय बृहत्स्नात्र अथवा एक सौ आठ अभिषेक भी कंकण मोचन से पूर्व कर लेते थे। साथ ही कंकण मोचन करने से पहले जिन बलि और भूतबलिपूर्वक चैत्यवंदन कर कायोत्सर्ग करते थे, जिसमें अन्तिम कायोत्सर्ग प्रतिष्ठा देवता के विसर्जनार्थ किया जाता था। उसके बाद सौभाग्यमंत्र के न्यासपूर्वक कंकण उतारकर सौभाग्यवती स्त्री को अथवा स्वजनों को अर्पण करते थे। अनिवार्य संयोगों में कंकण मोचन की विधि प्रतिष्ठा के दिन भी कर ली जाती थी, परन्तु आज के कुछ विधिकारकों ने इस विधि को उपेक्षित कर दिया है। इससे कंकण मोचन की विधि का अनुष्ठानों में कोई स्थान भी नहीं रह गया है।[3]

10. निर्वाण कलिका में प्रतिष्ठा मंडप को 'अधिवासना मंडप' कहा गया है। इसका अभिप्राय यह मालूम होता है कि अमुक मण्डप अधिवासना और प्रतिष्ठा संबंधी मुख्य क्रियाओं के सम्पादनार्थ ही बनाया जाता था, जिसमें प्रतिष्ठाचार्य, शिल्पी एवं चार स्नात्रकार ही जाते थे और वे ही आवश्यक कृत्य सम्पन्न करते-करवाते थे। प्रतिष्ठा मंडप के मुख्य द्वार के सामने दर्शकों के लिए पृथक सभामंडप बनाया जाता था। कालान्तर में चतुर्मुख प्रतिष्ठा मंडप का स्थान एक दिशागत त्रिद्वार और पंचद्वार युक्त मण्डप ने ले लिया। अब समचौरस के स्थान पर लम्बचौरस एवं मापविहीन मंडप बनने लगे हैं जिससे क्रियाकारक एवं दर्शनार्थी दोनों का एक मंडप में समावेश होने लगा है। इस वजह से वेदिका का

निर्माण मंडप के मध्य भाग में न होकर सामने भींत के निकट किया जाता है। यह परिवर्तन 'अंजन प्रतिष्ठा' एवं 'स्थापना प्रतिष्ठा' का भेद विस्मृत हो जाने के कारण हुआ है।

11. निर्वाण कलिका में वेदी पर जिन बिम्ब की स्थापना करने के पश्चात चैत्यवन्दन करने का उल्लेख है जबकि विधिमार्गप्रपा में देववन्दन करने का निर्देश है। यहाँ केवल शाब्दिक अन्तर ही ज्ञात होता है।

12. निर्वाण कलिका में सोलह आभूषणों से युक्त इन्द्र और इन्द्राणी को सकलीकरण के द्वारा अभिमन्त्रित करने का निर्देश है जबकि विधिमार्गप्रपा में स्नात्रकारों को अभिमन्त्रित करने का उल्लेख है। यों तो साक्षात तीर्थंकर का अभिषेक इन्द्र-इन्द्राणियों द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। परवर्ती काल में इन्द्र का स्थान स्नात्रकार ने ले लिया। वर्तमान में तो इसके लिए पुजारी शब्द का प्रयोग भी देखा जाता है।

13. निर्वाण कलिका एवं विधिमार्गप्रपा दोनों में नन्द्यावर्त्त आलेखन के छह वलय का वर्णन है किन्तु नाम एवं क्रम की दृष्टि से किंचित भेद है। इसी प्रकार आचार दिनकर में नन्द्यावर्त्त के नौ वलय का उल्लेख है और उनमें नाम एवं क्रम की अपेक्षा कुछ साम्य तो कुछ मतभेद दृष्टिगत होता है।

14. निर्वाण कलिका के अनुसार चांदी की कटोरी में मधु-घृत को अंजन के रूप में तैयार कर स्वर्णशलाका के द्वारा 'अर्हं' मन्त्र के उच्चारण के साथ जिन बिम्ब का नयनोन्मीलन किया जाता है जबकि विधिमार्गप्रपा के उल्लेखानुसार सौवीर-घृत-मधु-शर्करा-गजमद-कर्पूर-कस्तूरी आदि पदार्थों के संयोग से निर्मित अंजन द्वारा नयनोन्मीलन करना चाहिए। पूज्य सकलचन्द्र गणि के प्रतिष्ठाकल्प में अंजन सामग्री का विवरण और भी विस्तार से प्राप्त होता है।

इसी तरह निर्वाण कलिका आदि प्रतिष्ठा ग्रन्थों में भूतबलिमन्त्र, प्रतिष्ठामन्त्र, सकलीकरण मन्त्र आदि में भी मतभेद हैं। विधिमार्गप्रपा में मंगल पाठ की 5 गाथाएँ ही दी गई है किन्तु निर्वाणकलिका में इस सम्बन्ध में 15 गाथाएँ प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार अभिषेक, देववन्दन स्तुतियाँ, मंडप आदि का स्वरूप, उत्सव दिन, स्वर्ण मुद्रा धारण आदि कई उपविधियों के सम्बन्ध में न्यूनाधिक अन्तर हैं। ज्ञातव्य है कि प्राचीन और परवर्ती प्रतिष्ठा कल्पों में यत्किंचित जो भी भेद पाया जाता है वह मूलतः आचार्यों की अपनी-अपनी परम्परा पर आधारित हैं।

वर्तमान में सकलचन्द्रगणि कृत प्रतिष्ठा कल्प के आधार पर प्रतिष्ठा विधि करवाई जाती है जिसमें पूर्ववर्ती निर्वाणकलिका, विधिमार्गप्रपा, आचार दिनकर आदि के अनुसार युगानुकूल नवीनीकरण किया गया है और उसे धर्म प्रभावना की दृष्टि से विस्तृत रूप दे दिया गया है। वर्तमान में पंचकल्याणक महोत्सव की जो परम्परा देखी जाती है वह प्राचीन विधि-विधान में नहीं थी। उस समय विवाह- मामेरा आदि के लम्बे-चौड़े विधान नहीं थे।

आधुनिक प्रतिष्ठा सम्बन्धी विधि-विधानों के आधार ग्रन्थ एवं उनका समालोचनात्मक अध्ययन

प्राचीन काल में प्रतिष्ठाएँ होती थीं और वर्तमान काल में भी प्रतिष्ठाकर्म होता है। प्रतिष्ठा सम्बन्धी क्रिया विधान पूर्वयुग में भी होते थे और आधुनिक युग में भी होते हैं, परन्तु इन अनुष्ठानों को सम्पादित करने हेतु किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थ का आधार होना आवश्यक है। आज किसी प्रमुख ग्रन्थ के आधार पर क्रिया-विधान नहीं होते हैं। जलयात्रा विधि का आधार कोई एक ग्रन्थ है तो कुंभस्थापना विधि का आधार दूसरा है। दश-दिक्पालों का पूजन किसी ग्रन्थ के आधार से करवाया जाता है तो प्रतिष्ठा विधि किसी तीसरे ग्रन्थ के अनुसार करवायी जाती है। इन सभी अव्यवस्थाओं का मुख्य कारण इससे सम्बन्धित एक प्रामाणिक और सर्वांग सम्पन्न ग्रन्थ का अभाव ही माना जा सकता है।

गणि कल्याण विजयजी के निर्देशानुसार वर्तमान युग में प्रचलित अंजनशलाका प्रतिष्ठा, बिंब प्रवेश विधि और अष्टोत्तरी महापूजन इत्यादि के आधार ग्रन्थ चार हैं–

1. उपाध्याय सकलचन्द्रगणि का प्रतिष्ठा कल्प।
2. रत्नशेखरसूरि विरचित जलयात्रादि विधि।
3. यति कान्तिसागर संकलित बिम्ब प्रवेश विधि।
4. अष्टोत्तर स्नात्र पूजा।

उपर्युक्त चारों ग्रन्थों को संयुक्त कर उसे एक सर्वांग, पूर्ण और प्रामाणिक ग्रन्थ मानकर तदनुसार विधि-विधान करवाने का निर्णय किया जा सके, ऐसा भी नहीं है क्योंकि सकलचंद्र कृत प्रतिष्ठाकल्प का अधिकांश भाग अव्यवस्थित है।

जलयात्रा विधि की मुद्रित प्रति के ऊपर रचनाकार के रूप में रत्नशेखर सूरि का नाम प्रकाशित है लेकिन यह ग्रन्थ उसी रचयिता का हो इस सम्बन्ध में

कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं है। दूसरे, इस ग्रन्थ को अर्वाचीन सिद्ध कर सकें, ऐसे कई कारण प्रस्तुत ग्रन्थ की विषय वस्तु के आधार पर प्राप्त हो जाते हैं जो निम्नानुसार है-

1. इस जलयात्रा विधि में 'क्षीरोदधे स्वयंभूश्चा' इत्यादि श्लोक दृष्टिगोचर होते हैं, जो रत्नशेखरसूरि के समय में तो क्या? वि.सं. 1680 पर्यन्त लिखी गई किसी जलयात्रा विधि में नहीं है।
2. इस प्रति में वर्णित कुंभस्थापना विधि और बिंब प्रवेश विधियाँ 18 वीं शती से पूर्व की ज्ञात नहीं होती हैं।
3. इसमें गृह, दिक्पाल और अष्टमंगल के पट्टों पर यक्षकर्दम से आलेखन करने का सूचन किया गया है। यह विधि-नियम सकलचन्द्र गणि से पूर्ववर्ती नहीं है।
4. इसमें ग्रहादि पट्टों के उपरान्त 30 छोटे-छोटे पट्टे तैयार करवाने का उल्लेख किया गया है जो 18वीं शती के पहले किसी भी अष्टोत्तरी स्नात्र-विधि में देखने को नहीं मिलता है।
5. जलयात्रा के दौरान जल निकालते समय अंकुश, मत्स्य एवं कच्छप मुद्राएँ दिखाने का निर्देश सकल चन्द्रगणि से पूर्ववर्ती नहीं है।
6. इसमें धूप के स्थान पर अगरबत्ती का उल्लेख है जो इस विधि-ग्रन्थ को अर्वाचीन सिद्ध करता है।
7. मंडप पूजन में घंटाकर्ण के पाठ से सुखड़ी को अभिमंत्रित कर उसके हिस्से करने का विधान भी इस ग्रन्थ को अर्वाचीन सिद्ध करता है।
8. 'ॐ परमेष्ठी नमस्कारं' इत्यादि स्तोत्र के द्वारा सकलीकरण करने से भी यह ग्रन्थ नवीन सिद्ध होता है क्योंकि रत्नशेखरसूरि का समय 15वीं शती का उत्तरार्ध तथा 16वीं शती का प्रथम चरण है जबकि प्रस्तुत स्तोत्र का निर्माण 17वीं शती में हुआ है।
9. इस ग्रन्थ के अन्तर्गत जलयात्राविधि, ग्रह-दिक्पाल पूजन विधि, बिम्ब प्रवेश विधि आदि 'बिम्बप्रवेशविधि' के संदर्भ का ही अवतरण है इसलिए यह ग्रन्थ बिम्बप्रवेशविधि से भी अर्वाचीन है।
10. रचनाकार ने बिम्ब प्रवेश विधि में अनावश्यक क्रियानुष्ठानों को जोड़ दिया है, जिसमें कुछ तो केवल यतिधर्म के आडम्बर का ही प्रदर्शन

करते हैं। निर्वाणकलिका में बिम्ब प्रवेश की लघु विधि दी गई है वह अतिप्राचीन है। तदनुसार बिम्बप्रवेश की विधि करवाई जाये तो अल्पव्यय में कार्य हो सकता है।

अष्टोत्तरी स्नात्र विधि के विषय में भी कुछ बिन्दु विमर्शनीय हैं जैसे– यति कान्तिसागरजी ने अष्टोत्तरी स्नात्र-विधि को स्वकृत रचना के रूप में प्रस्तुत किया है।

• यति कांतिसागरजी ने अष्टोत्तरीस्नात्र विधि में सामग्री विषयक निरर्थक बढ़ोतरी की है उसका यथार्थ ज्ञान प्राचीन अष्टोत्तरी का स्वरूप और तत्सम्बन्धी सामग्री की सूची देखने से हो सकता है।

• अष्टोत्तरी की प्राचीन विधि में अष्टाह्निकोत्सव, जलयात्रा, कुंभस्थापना, अष्टमंगलस्थापना, सप्त स्मरण पाठ आदि की जरूरत उपदर्शित नहीं की गई है तथा ग्रहदिक्पालों का पूजन भी संक्षिप्त है।

• इसमें उपकरण सूची अति अल्प और अल्प मूल्य वाली दर्शायी गई है।

• 17वीं शती के पूर्वार्ध में लिखी गई अष्टोत्तरी स्नात्र की प्रति उपलब्ध है किन्तु इससे प्राचीन कोई भी प्रति देखने में नहीं आई है। आचारदिनकर गर्भित प्रतिष्ठाविधि में महापूजा का वर्णन है। इसी भाँति पञ्चामृत महास्नात्र के नाम से प्रसिद्ध पूजाएँ अन्यत्र भी दृष्टिगत होती हैं परन्तु अष्टोत्तरी स्नात्र के नाम से प्रचलित इस पूजा के साथ उन महापूजाओं का कोई सम्बन्ध नहीं है।

• उपलब्ध प्रतिष्ठाकल्पों में अष्टोत्तरी स्नात्र पूजा प्राप्त नहीं होती है। इससे ज्ञात होता है कि अष्टोत्तरी पूजा अति प्राचीन नहीं है। अनुमानत: विक्रम की पन्द्रहवीं अथवा सोलहवीं शती में इसका निर्माण हुआ है और यही वजह है कि 16वीं शती में इस स्नात्र की मौलिकता प्रसरित हो रही थी।

• उस युग में यह स्नात्र पूजा त्यागी साधुओं के द्वारा करवायी जाती थी, अत: सामग्री में अनुचित वृद्धि नहीं हुई, परन्तु कालान्तर में इसमें बहुतसी विकृतियाँ प्रवेश कर गईं जो आज भी यथावत हैं।

• विक्रम संवत् 1639 और 1887 के मध्य 248 वर्षों में सामग्रीगत पदार्थों के परिमाण में अधिक वृद्धि नहीं हुई, केवल अष्टमंगल का पट्टा, 12 अन्य पट्टे, कुछ वस्त्रों और कुछ सामान्य उपकरणों में वृद्धि हुई। प्राचीन विधि के अनुसार पूर्वकाल में अष्टोत्तरी स्नात्र होने के पश्चात जिनबिम्बों का शुद्ध जल

से प्रक्षाल करते थे। फिर अंगलूंछन से पानी को सोंख, नैवेद्यादि पूजा और आठ स्तुति से देववंदन किया जाता था। उसके अनन्तर लघु स्नात्र पढ़ाकर आरती करते थे। उन्नीसवीं शती में रचित स्नात्र विधियों में स्नात्र का अभिषेक होने के पश्चात प्रतिमाओं का प्रक्षालन और उनकी चंदन पूजा करते हैं। फिर चैत्यवन्दन करने के पश्चात लघु स्नात्र पढ़ाकर नैवेद्य चढ़ाते हैं और पुनः दूसरी बार देववन्दन करते हैं।

इसके उपरान्त अन्य साधारण परिवर्तन भी हुए हैं किन्तु खर्च की दृष्टि से इसमें अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है।

समाहार रूप में कहा जा सकता है कि विक्रम संवत् 1887 के पश्चात आज तक के लगभग 200 वर्षों में कितने ही परिवर्तन हुए हैं। जैसे ग्रह-दिक्पाल-अष्टमंगल के पट्टों के ऊपर रुपया-पैसा चढ़ाने की परिपाटी शुरू हुई। अष्टोत्तरी स्नात्र के लिए अट्ठाई उत्सव अनिवार्य हो गया।

यहाँ प्रस्तुत प्रसंग में यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि पिछले 100 वर्षों के अन्तर्गत प्रतिष्ठा विधियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन क्यों हुए और वह भी प्रतिष्ठा उपयोगी सामग्री के सन्दर्भ में ही क्यों?

इतिहासवेत्ताओं ने इसका समाधान करते हुए कहा है कि 19वीं शती का अन्तिम चरण और 20वीं शती का पूर्वार्ध इन 75 वर्षों में परिग्रहधारी और शिथिलाचारी श्रीपूज्यों और यतियों का प्राबल्य था। इस समय के दौरान प्रतिष्ठा, पूजा, उद्यापन आदि किसी भी मंगलकारी धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न करने हेतु विधिकारक के रूप में श्री पूज्यों अथवा उनके आज्ञाकारी यतियों की प्रधानता थी। उनके द्वारा ही सामग्री की सूचियाँ लिखी जाती थीं और उन सामग्रियों का उपयोग भी उनकी इच्छानुसार होता था। कई औषधि उपयोगी सामान श्रीपूज्यों के उपाश्रय में पहुँच जाता था और रुपया आदि के विषय में भी बहुत गोलमाल होता था।

ऐसे हेराफेरी के समय में सामग्री विषयक कई परिवर्तन हुए। सामग्री की सूची लिखने वालों ने वस्त्र, मेवा, फल, मिष्ठान और रोकड़ द्रव्य विषयक संख्या में यथेच्छा बढ़ोतरी की। यह परिवर्तित सामग्री सूची अर्वाचीन विधि पुस्तकों में प्रविष्ट हुई और उन पुस्तकों के आधार पर ही विधि-विधान करवाने की परिपाटी विकसित हुई। बीसवीं सदी से आज इक्कीसवीं सदी में प्रवर्त्तमान विधि-पुस्तकों

में बतायी गयी सामग्री को सामने रखकर सभी विधिकारक प्रतिष्ठाओं एवं महापूजाओं के विधि-विधान करवाते हैं। आधुनिक विधियाँ किन विधिकारकों के द्वारा विकृत हुई, इस यथार्थ को यदि समझ लें तो उक्त पुस्तकोक्त सामग्री विषयक आग्रह अवश्य छूट सकता है।[4]

पूर्वकालीन प्रतिष्ठाओं और उसके फल के विषय में लौकिक कल्पनाएँ

पूर्वकाल में प्रतिष्ठाएँ अत्यन्त सात्त्विक और सुख साध्य पूर्ण होती थीं। जिनालय का कार्य सम्पूर्णता की ओर होने पर शुभ समय में प्रतिमा का निर्माण करवाया जाता और जिनबिम्ब तैयार हो जाने के पश्चात दस दिनों के अन्तराल में ही उसकी प्रतिष्ठा हो जाती थी।

यदि गृहस्थ किसी एक तीर्थंकर विशेष की प्रतिष्ठा करवाता तो निकटवर्ती गाँवों में भी उसकी सूचना पहुँच जाती। यदि उस क्षेत्र के अतीत, वर्तमान या अनागत चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिष्ठा करवायी जाती, तब कुछ विशेष आकर्षण बढ़ता था और संघ समुदाय एकत्रित होता था। यदि भरत आदि पन्द्रह क्षेत्रों के सभी तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ विराजमान की जातीं, तब सर्वाधिक संघ समुदाय उपस्थित होकर अत्यन्त भावोल्लास एवं अद्भुत महोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा विधि का आयोजन करता था। इस विषय में बहुश्रुत आचार्य हरिभद्रसूरि ने कहा है कि प्रतिष्ठा तीन प्रकार की होती है। उनमें अनुक्रम से 1. व्यक्ति प्रतिष्ठा कनिष्ठ, 2. क्षेत्र प्रतिष्ठा मध्यम और 3. महाप्रतिष्ठा उत्कृष्ट कही जाती है। यहाँ प्रतिष्ठा के तीनों भेद विधि-आश्रित नहीं है परन्तु प्रतिमाओं की संख्या के अनुसार है। आजकल की प्रतिष्ठाओं में प्रतिमाओं की संख्या को लेकर नहीं बल्कि जनसंख्या एवं आवक की दृष्टि से प्रतिष्ठाओं को जघन्य और उत्कृष्ट माना जाता है, जो यथार्थ नहीं है।

वर्तमान में लोगों की मानसिकता ऐसी बन गई है कि प्रतिष्ठा होने के पश्चात प्रतिष्ठा कारक व्यक्ति, संघ अथवा गाँव की उन्नति या अवनति प्रतिष्ठा के फल रूप में मानी जाती है किन्तु यह मान्यता उचित नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि प्रतिष्ठा कार्य के प्रारम्भ में होने वाले शुभाशुभ निमित्तों को ध्यान में रखना चाहिए और प्रतिष्ठा के कार्य में निरन्तर विघ्न आते हों तो उस समय प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्य स्थगित कर देने चाहिए, जिससे अशुभ परिणाम के लिए

प्रतिष्ठा को दोषी नहीं माना जा सके।

1. निमित्त ज्ञात करने का मुख्य प्रकार यह है कि प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त निकलवाने के लिए स्थानीय ज्योतिषी श्रद्धावान हो तो उसके घर जायें अथवा दूसरे गाँव में ज्योतिषी अथवा आचार्य आदि के समीप जायें। गाँव से प्रस्थान करते वक्त शकुन देखने चाहिए। यदि अप्रार्थित शुभ शकुन हो जाये तो समझना चाहिए कि प्रतिष्ठा निर्धारित समय में हो जायेगी।

इस शकुन से प्रतिष्ठित मन्दिर भविष्य में उन्नतिकारक होगा या अवनतिकारक, निश्चित रूप से ज्ञात नहीं किया जा सकता। इस फलश्रुति के लिए मुहूर्त्त ज्ञाता तात्कालिक लग्न कुंडली बनाकर देखें। यदि कुंडली में लग्न, धन, पुत्र, स्त्री एवं लाभ स्थान गड़बड़ न हो और आठवें स्थान में कोई भी वर्जित ग्रह न हो तो ज्योतिषाचार्य मुहूर्त्त प्रदान करें। यदि तात्कालिक प्रश्न कुंडली में लग्न की स्थिति सही न हो तो ज्योतिषी कहे कि 'किसी दूसरे दिन पूछने के लिए आना।'

यदि गृहस्थ ज्योतिषाचार्य के निवेदन को स्वीकार करके उस समय प्रतिष्ठा स्थगित कर दें तो वह प्रतिष्ठा को दोष का निमित्त बनने से बचा सकता है। इसी के साथ अशुभ का उदय समाप्त होने पर प्राप्त शुभ निमित्त के लग्न में प्रतिष्ठा करवाकर अभ्युदय का भागी हो सकता है।

2. जिस प्रकार प्रतिष्ठाचार्य का आत्मबल शुभाशुभ निमित्तों के आधार पर विकास एवं पतन को सूचित करता है उसी प्रकार उनका मनोबल प्रतिष्ठा में प्रभाव उत्पन्न करता है। जिसका आचरण शुद्ध हो, संकल्पशक्ति दृढ़ हो और आत्मपरिणाम शुभ हो ऐसे प्रतिष्ठाचार्य के हाथ से सम्पन्न हुई प्रतिष्ठा प्राय: शुभ परिणाम देती है। इसके विपरीत यदि प्रतिष्ठाचार्य आत्मविशुद्धि हीन हो, भग्न हृदयी हो, रोगादि कारणों से शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ क्षीण हो चुकी हों तो उनके द्वारा सम्पादित प्रतिष्ठा का परिणाम अभ्युदय जनक नहीं होता।

3. प्रतिष्ठा होने के पश्चात तुरन्त अथवा उसी दिन किसी कारण से गाँव में अचानक लड़ाई-झगड़ा या क्लेशकारी स्थिति उत्पन्न हो जाये तो वह प्रतिष्ठा निश्चित रूप से अवनति का कारण बनती है इसलिए जिस गाँव में प्रतिष्ठा हो उस संघ के व्यक्तियों को यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिष्ठा के कुछ दिन बाद तक किसी तरह के दुर्निमित्त पैदा न हो।

4. 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' इस कथन के अनुसार प्रतिष्ठा जैसे कल्याणकारी अनुष्ठानों में भी विघ्न करने वाले होते हैं। मंडप में फोसफरस डालकर अथवा आग आदि लगाकर रंग में भंग करने वाले होते हैं इसलिए प्रतिष्ठाचार्य आदि अधिकारी वर्ग को ऐसी सुरक्षा अवश्य करनी चाहिए कि जिससे उक्त प्रकार की घटनाएँ न हों।[5]

विधिकारकों एवं स्नात्रकारों से कुछ निवेदन

वर्तमान में कितने ही विधिकारक एवं स्नात्रकार प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में क्वचित चमत्कार दिखाकर श्रीसंघ और लोगों के मानस पटल पर यह प्रभाव स्थापित करते हैं कि 'प्रतिष्ठा बहुत अच्छी हुई है।' जिस युग में श्रीपूज्यों एवं यतिओं के सान्निध्य में प्रतिष्ठाएँ होती थीं, उस समय शान्तिस्नात्र आदि में बलिक्षेपण के प्रसंग पर अखण्ड नारियल को आकाश में उछालकर उसका खाली खोखा नीचे गिरते हुए दिखाते थे। उपस्थित जन समुदाय इस तरह की आश्चर्यचकित करने वाली घटनाएँ देखकर यह मानता था कि "नारियल का भीतरी गोला देवताओं ने ग्रहण कर लिया है और कांचली का खोखा नीचे गिरा दिया है।"

इसमें यथार्थता यह थी कि बलिक्षेपण करने वाले यतिजन नारियल को चोटी सहित फोड़कर उसमें से गिरि निकाल लेते थे और कांचली को ठीक से जोड़कर ऊपर में मौली बांधकर बलि-बाकला के ऊपर रख देते। फिर बलिक्षेप करते समय नारियल को भी उछालते तथा नीचे पड़ते हुए खोखे को देखकर लोग उसे चमत्कार मानते थे, परन्तु आधुनिक युग में इस प्रकार का पाखण्ड नहीं किया जाता है।

आजकल के जो विधिकारक केमिकल्स आदि के द्वारा अमीझरणा दिखाकर वाह-वाह करवाते हैं और ऐसी प्रवृत्तियों में लाभ मानते हैं उन्हें उस तरह की परिपाटी बंद करनी-करवा देनी चाहिए।

यदि हम वर्तमान अनुष्ठानों एवं विधि-विधानों पर नजर दौड़ाते हैं तो प्रतीत होता है कि आज उनमें सबसे मुख्यपात्र विधिकारक बन गए हैं। विधिकारक जो करवाए, जैसे करवाए श्रावक वर्ग के लिए वही राजमार्ग है। साधु-साध्वी अपनी आचारगत मर्यादा एवं सीमित संख्या के कारण सर्वत्र पहुँच नहीं सकते। श्रावक वर्ग दौड़-भाग भरी प्रतिस्पर्धामय जीवन शैली में स्वाध्याय,

तत्त्वचर्चा आदि से विमुख होता जा रहा है और सम्यक जानकारी के अभाव में मात्र स्नात्रकार एवं विधिकारकों का अनुकरण किया जा रहा है। इन परिस्थितियों में विधिकारकों का सुज्ञ, सत्यान्वेषी, विद्वान एवं अनुभवी होना अत्यावश्यक है। धार्मिक क्रिया-कलापों को सम्यक स्वरूप देने के लिए कुछ ऐसे ही तथ्य हैं जिन विषयों पर चिन्तन करना नितांत जरूरी है।

• विधिकारकों का एक के बाद एक कार्यक्रम में व्यस्त रहना कहाँ तक उचित है?

कई सुप्रसिद्ध विधिकारकों के पास एक के बाद एक कार्यक्रम पहले से तय होते हैं। इसके कारण उनके मन में हमेशा एक हलचल बनी रहती है। उनके लिए किसी भी क्रिया को पूर्णमानसिक स्थिरता के साथ करवा पाना मुश्किल है।

जब क्रियाकारक ही एकाग्र एवं चित्त स्थैर्य के साथ वहाँ उपस्थित न हो तो वह अन्य लोगों की भावधारा को जोड़ने में कैसे हेतुभूत बन सकता है? आज प्रत्येक संघ अपने नगर में प्रसिद्ध विधिकारकों को बुलाना चाहता है एवं वर्तमान में उपलब्ध त्वरितगामी संसाधनों के माध्यम से व्यक्ति कुछ ही घंटों में मनचाहे स्थानों पर पहुँच भी सकता है अतः शासन प्रभावना हेतु विधिकारक क्या करें यह एक जटिल प्रश्न है?

उचित यह है कि विधिकारक अपने साथ रहने वाले सहयोगी विधिकारकों को उस योग्य बनाएँ और उन्हें भी अन्यत्र भेजें। आज यह प्रचलन देखा भी जाता है। व्यवस्था आदि का कार्यभार यदि उन लोगों को सौंप दिया जाए तो मुख्य विधिकारक निश्चिंत रह सकते हैं तथा पूर्ण मनोयोगपूर्वक एक सफल अनुष्ठान करवा सकते हैं। वरना शासन प्रभावना के उद्देश्य से बढ़ती कार्यक्रमों की गति शीघ्र ही व्यवसाय का रूप ले सकती है। विधिकारक जो करवाए, जितना करवाए वह सम्यक रूप से करवाए तो समाज के लिए वे क्रियाएँ अधिक सार्थक एवं उपयोगी बन सकेगी।

• विधिकारकों का उच्चारण कैसा हो?

विधि-विधान का मुख्य पक्ष होता है मंत्रोच्चार। किसी भी मंत्र की पूर्ण सिद्धि हेतु चार मुख्य घटक बताए गए हैं– शब्द, अर्थ, उच्चारण एवं भावना। इन चारों के सही होने पर मंत्र फलदायी बनता है। इसमें से किसी एक पक्ष का न्यून या गौण होना मंत्र फल को विपरीत भी कर सकता है। अतः विधिकारकों

के लिए यह नितांत आवश्यक है कि विधि-विधानों से सम्बन्धित मन्त्रों के उच्चारण शुद्ध रूप से गुरुगमपूर्वक सीखें। इसी के साथ उन्हें विधि मंत्र आदि के अर्थ, रहस्य, प्रयोजन आदि का भी ज्ञान होना चाहिए। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि बोलियों एवं भजन आदि में अधिक समय दिया जाता है और मंत्रोच्चार के भाग को फटाफट निपटाया जाता है जो कि सर्वथा अनुचित है। अत: विधिकारकों से अनुरोध है कि वे मंत्रोच्चार शुद्धि पर अवश्य ध्यान दें।

• पूजन-महापूजन में परमात्मभक्ति एवं गुणगान की अपेक्षा देवी-देवताओं की महिमा एवं चमत्कारों का बखान करना क्या औचित्यपूर्ण है?

गृहस्थ का ध्येय प्राय: लौकिक सुखों की प्राप्ति रहता है। इन्हीं सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए देवी-देवताओं को मनाना-रिझाना उन्हें प्रिय होता है। सामान्य जनता के रुझान को देखते हुए आजकल देवी-देवताओं एवं लौकिक वांछापूर्ति से सम्बन्धित अनुष्ठान अधिक होने लगे हैं। इन सब अनुष्ठानों से वीतरागता एवं सम्यक्त्व का उपासक मिथ्यात्व की ओर अभिमुख हो रहा है। विधिकारक भी लोकैषणा एवं प्रसिद्धि के वशीभूत होकर लोकप्रवाह का अनुकरण करते हुए ऐसे अनुष्ठानों को विकसित कर रहे हैं। आज जिनशासन प्रभावना का मुख्य कार्यभार विधिकारकों पर है। अपने दायित्व एवं पद के प्रति जागरूक रहते हुए उन्हें जिनधर्म के मूल उद्देश्यों को लक्ष्य में रखकर ही क्रिया-अनुष्ठान करवाने चाहिए तथा भ्रान्त जनता को भी सत्य से अवगत करवाना चाहिए। आजकल पार्श्व-पद्मावती पूजन में मुख्य गुणगान एवं चढ़ावे पद्मावती देवी के ही होते हैं। नवग्रह पूजन, भैरव पूजन, घंटाकर्ण पूजन आदि में लोगों का जो समूह उमड़ता है, वह सामान्य परमात्म पूजन में नहीं देखा जाता। ऐसी भ्रान्त मान्यताओं का उन्मूलन होना चाहिए। इस कार्य में विधिकारक वर्ग अहम भूमिका निभा सकता है।

जैन धर्म के उत्थान हेतु विधिकारकों से अनुरोध है कि वे आराधकों को परमात्म भक्ति से जोड़ने का सर्वाधिक प्रयास करें। श्रावक वर्ग को भी स्वाध्याय आदि द्वारा सम्यक जानकारी लेने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।

• विधिकारकों द्वारा कैसे अनुष्ठान करवाए जाने चाहिए?

विधिकारकों को जानकारी पूर्वक शुद्ध क्रिया करवाने का प्रयास करना चाहिए। वर्तमान का श्रावक वर्ग अपने व्यापारिक एवं सामाजिक कार्यों में इतना

व्यस्त है कि उसे धर्म कार्यों के लिए समय नहीं है। पर विशेष धार्मिक प्रसंगों या प्रतिष्ठा आदि अनुष्ठानों में सकल संघ पूर्ण मनोयोग से जुड़ने का प्रयास करता है। यदि विधिकारक वर्ग परार्थ एवं परोपकार की भावना से समाज के रुचिवन्त एवं अग्रगण्य नर-नारियों को पूर्ण जानकारी देते हुए इन क्रियाकलापों से जोड़ने एवं आगे बढ़ाने का प्रयास करें तो श्रावक वर्ग इसमें जागरूक बन सकता है। विधिकारक भी 'सवि जीव करूं शासन रसी' की भावना से तीर्थंकर नामकर्म का उपादान पुष्ट कर सकते हैं। सामान्य वर्ग के जुड़ने से क्रिया सम्यक रूपेण एवं शांतिपूर्वक सम्पन्न हो सकती है। प्रतिष्ठा आदि अनुष्ठानों का संघ और समाज के विकास एवं संघटन आदि पर भी विशेष प्रभाव पड़ता है। विधिकारकों द्वारा विधि रहस्यार्थ पूर्वक तथा पूर्ण मनोयोग से करवाई गई शुद्ध क्रिया इसमें निमित्तभूत बनती है। विधिकारकों का आचार पक्ष एवं ज्ञान पक्ष सुदृढ़ होना चाहिए। उन्हें अपने सहयोगी विधिकारक वर्ग को भी आगे बढ़ाने एवं प्रत्येक कार्य में निष्णात करने की भावना रखनी चाहिए। इस प्रकार विधिकारकों को सभी क्रियाएँ शास्त्रोक्त एवं शुद्ध आशय युक्त परोपकार के भाव से करवानी चाहिए।

• प्रतिष्ठा आदि में विधिकारकों का स्थान साधु-साध्वियों से बढ़कर होता है?

प्रतिष्ठा आदि महोत्सवों में विधिकारक साधु-साध्वी एवं स्नात्रकार के अपवाद (Substitute) होते है अत: उनका स्थान साधु-साध्वी से ऊपर हो ही नहीं सकता और वैसे भी श्रावक का स्थान हमेशा साधु-साध्वी से निम्न होता है। वर्तमान में बढ़ते क्रियाकांड, श्रावक वर्ग की अनभिज्ञता एवं साधु-साध्वियों की अल्पता के कारण विधिकारक क्रिया-अनुष्ठान के मुख्य अंग बन गए हैं। पर जहाँ साधु-साध्वी उपस्थित हों वहाँ साधु-साध्वी का स्थान ही प्रमुख होना चाहिए। यदि कोई अज्ञानवश अथवा अहंकारवश ऐसा आचरण करते हों तो सचेत हो जाएं। वरना आराधना का कार्य विराधना में हेतुभूत बन सकता है।

• प्रतिष्ठा-विधियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कब से और कैसे?

पूज्य कल्याणविजय गणि के अनुसार प्रतिष्ठा-विधियों में लगभग चौदहवीं शती से क्रान्ति आरम्भ हो गयी थी। बारहवीं शती तक प्रत्येक प्रतिष्ठाचार्य विधि-कार्य में सचित्त जल, पुष्पादि का स्पर्श और सुवर्ण मुद्रादि धारण करना

अनिवार्य गिनते थे, परन्तु तेरहवीं शती और उसके बाद के कतिपय सुविहित आचार्यों ने प्रतिष्ठा-विषयक कितनी ही बातों के सम्बन्ध में ऊहापोह किया और त्यागी गुरु को प्रतिष्ठा में कौन-कौन से कार्य करने चाहिए इसका निर्णय कर निम्नानुसार घोषणा की–

थुइदाण[1] मंतनासो[2]; आहवणं तह जिणाणं[3] दिसिबंधो[4]।
नित्तुम्मीलण[5] देसण[6], गुरु अहिगारा इहं कप्पे।।

1. स्तुतिदान-देववन्दन पूर्वक स्तुतियाँ बोलना 2. मन्त्रन्यास– प्रतिष्ठाप्य प्रतिमा पर सौभाग्यादि मन्त्रों का न्यास करना 3. जिनेश्वर परमात्मा का प्रतिमा में आह्वान करना 4. मन्त्र द्वारा दिग्बंध करना 5. नेत्रोन्मीलन-प्रतिमा के नेत्रों में सुवर्णशलाका से अंजन करना 6. प्रतिष्ठाफल-प्रतिपादक देशना (उपदेश) करना। प्रतिष्ठा कल्प में उक्त छह कार्य गुरु को करने चाहिए।

इनके अतिरिक्त सभी कार्य श्रावक के अधिकार के हैं। यह व्याख्या निश्चित होने के बाद सचित्त पुष्पादि के स्पर्श आदि कार्य त्यागी मुनियों ने छोड़ दिये और गृहस्थों के हाथ से होने शुरू हुए। परन्तु पन्द्रहवीं शती तक इस विषय में दो मत चलते रहे। कोई आचार्य सचित्त जल, पुष्पादि का स्पर्श एवं स्वर्ण मुद्रा आदि को धारण करना निर्दोष गिनते थे और कतिपय सुविहित आचार्य उक्त कार्यों को सावद्य जानकर निषेध करते थे। इस वस्तुस्थिति का निर्देश आचारदिनकर में नीचे लिखे अनुसार मिलता है–

ततो गुरुर्नवजिनबिम्बस्याग्रतः मध्यमांगुलीद्वयोर्ध्वीकरणेन रौद्रदृष्ट्या तर्जनीमुद्रां दर्शयति। ततो वामकरेण जलं गृहीत्वा रौद्रदृष्ट्या बिम्बमाछोटयति। केषांचिन्मते स्नात्रकारा वामहस्तोदकेन प्रतिमामा-छोटयन्ति।

उसके बाद गुरु नूतन जिनप्रतिमा के सामने दोनों मध्यमांगुलियों को खड़ी करके क्रूर दृष्टि से तर्जनी मुद्रा दिखायें और बायें हाथ में जल लेकर रौद्र दृष्टि पूर्वक प्रतिमा पर छिड़कें। कुछ आचार्यों के मत से बिम्ब पर जल छिड़कने का कार्य स्नात्रकार करते हैं। आचार्य वर्धमानसूरि के "केषाञ्चिन्मते' इस वचन से ज्ञात होता है कि उनके समय में अधिकांश आचार्यों ने सचित्त जल आदि-स्पर्श के कार्य छोड़ दिये थे और सचित्त जल, पुष्पादि सम्बन्धी कार्य स्नात्रकार करते थे।[6]

पूज्य गुणरत्नसूरिजी और विशालराज शिष्य ने अपने प्रतिष्ठाकल्पों में दी हुई प्रतिष्ठा सामग्री की सूचियों में कंकण और मुद्रिकाओं की संख्या 4-4 लिखी

है तथा साथ में यह भी कहा है कि ये कंकण और मुद्रिकाएँ चार स्नात्रकारों के लिए हैं। उपाध्याय सकलचन्द्रजी ने अपने कल्प में कंकण और मुद्राएँ 5-5 लिखी हैं, इनमें 1-1 इन्द्र के लिए और 4-4 स्नात्रकारों के लिए समझना चाहिए।

आचार्य के द्रव्य पूजाधिकार के विषय में विधिप्रपाकार श्री जिनप्रभसूरिजी लिखते हैं–

तदनन्तरमाचार्येण मध्यमांगुलीद्वयोर्ध्वीकरणेन बिम्बस्य तर्जनीमुद्रा रौद्रदृष्ट्या देया। तदनन्तरं वामकरे जलं गृहीत्वा आचार्येण प्रतिमा आछोटनीया। ततश्चन्दनतिलकं पुष्पैः पूजनं च प्रतिमायाः।

अर्थात उसके बाद आचार्य को दोनों मध्यमा अंगुलियाँ ऊँची उठाकर प्रतिमा को रौद्र दृष्टि से तर्जनी मुद्रा दिखानी चाहिए। तत्पश्चात बायें हाथ में जल लेकर क्रूर दृष्टि से प्रतिमा पर छिड़कें और अन्त में चन्दन का तिलक और पुष्प पूजा करें।[7]

इसी विधिप्रपागत प्रतिष्ठा-पद्धति के आधार पर लिखी गई अन्य खरतरगच्छीय प्रतिष्ठा-विधि में उपर्युक्त विषय में नीचे लिखा संशोधन दृष्टिगोचर होता है–

पछइ श्रावक डाबइ हाथिइं प्रतिमा पाणीइं छांटइ।

खरतरगच्छीय प्रतिष्ठाविधिकार का यह संशोधन तपागच्छ के संशोधित प्रतिष्ठा कल्पों का आभारी है। उत्तरवर्ती तपागच्छीय प्रतिष्ठाकल्पों में जलाछोटन एवं चन्दन आदि पूजा श्रावक के हाथ से ही करने का विधान है जिसका अनुसरण उक्त विधि लेखक ने किया है।

प्रतिमाओं में कला-प्रवेश क्यों नहीं होता?

पूर्वकालीन अधिकांश प्रतिमाएँ सातिशय होती थीं, पर आजकल की प्रतिमाएँ प्रभावशाली नहीं होती, जबकि पहले की तुलना में विधि-विषयक प्रवृत्तियाँ और बढ़ी हैं। आधुनिक युग में कला का विकास भी हुआ है। पर आज की अधिकांश प्रतिमाओं में लाक्षणिकता नहीं होती और केवल चतु:सूत्र अथवा पंचसूत्र मिलाने से ही प्रतिमा अच्छी नहीं होती है।

3. **प्रतिष्ठाचार्य और स्नात्रकार–** प्रतिष्ठाचार्यों और स्नात्रकारों में निर्मल श्रद्धा, सदाचार और नि:स्वार्थता की भावना होनी चाहिए। मारवाड़ में तो

आजकल प्रतिष्ठाओं के स्नात्रकारों का बहुधा अभाव ही है। वहाँ पर यतियों या विधिकारकों द्वारा ही स्नात्रकार एवं प्रतिष्ठाचार्य की भूमिका अदा की जाती है। उन लोगों में प्रतिष्ठाचार्य की शास्त्रोक्त योग्यता एवं अनुभव होना असंभव है। कई बार उनमें स्नात्रकार के योग्य लक्षण भी नहीं होते अतः ऐसी प्रतिमाओं का अतिशय युक्त या प्रभावशाली होना संभव नहीं है।

4. स्नात्रकार अच्छे होने पर भी प्रतिष्ठाचार्य यदि अयोग्य हो तो प्रतिष्ठा अभ्युदयजननी नहीं हो सकती, क्योंकि प्रतिष्ठा के तंत्रवाहकों में प्रतिष्ठाचार्य का स्थान मुख्य होता है। योग्य प्रतिष्ठाचार्य शिल्पी एवं इन्द्र सम्बन्धी कमजोरियों को सुधार सकता है, पर अयोग्य प्रतिष्ठाचार्य की कमी कोई पूर्ण नहीं कर सकता। इसलिये अयोग्य प्रतिष्ठाचार्य के हाथों से हुई प्रतिमा प्रतिष्ठा भी अभ्युदयजनी नहीं होती।

5. प्रतिष्ठा की सफलता में शुभ समय भी अनन्य सहयोगी है। जैसे अनुरूप समय में बोया हुआ बीज उगता है, फलता-फूलता है एवं अनेक गुणा समृद्धि करता है। वैसे ही अच्छे समय में की हुई प्रतिष्ठा उन्नतिकारक होती है। इसके विपरीत अवर्षण काल में धान्य बोने से बीज नष्ट होता है और परिश्रम निष्फल हो जाता है। यही सिद्धान्त प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए। ज्योतिष का रहस्य जानने वाले और ज्योतिष शास्त्र से अनभिज्ञ प्रतिष्ठाचार्य के मुहूर्त्त में होने वाली प्रतिष्ठाओं की सफलता में भी अन्तर देखा जाता है। जहाँ शुभ लग्न, शुभ षड्वर्ग अथवा शुभ पंचवर्ग में और पृथ्वी अथवा जल तत्त्व में प्रतिष्ठा होती है वहाँ वह अभ्युदय-कारिणी होती है। यदि पूर्वोक्त शुभ लग्न में नवमांश, षड्वर्ग, पंचवर्ग और तत्त्वशुद्धि न हो तो ऐसे समय में की गई प्रतिष्ठा उतनी सफल नहीं होती।

6. प्रतिष्ठा के उपक्रम में अथवा बाद में भी प्रतिष्ठा कार्य के निमित्त अपशकुन हों तो निर्धारित मुहूर्त्त में प्रतिष्ठा जैसे महाकार्य नहीं करने चाहिए, क्योंकि दिनशुद्धि और लग्नशुद्धि का सेनापति 'शकुन' माना गया है। सेनापति की इच्छा के विरुद्ध जैसे सेना कुछ भी कर नहीं सकती, उसी प्रकार शकुन के विरोध में दिनशुद्धि और लग्नशुद्धि भी शुभ फल नहीं देते। इस विषय में व्यवहार प्रकाशकार कहते हैं–

नक्षत्रस्य मुहूर्त्तस्य, तिथेश्च करणस्य च ।
चतुर्णामपि चैतेषां, शकुनो दण्डनायकः ।।1।।

अर्थात नक्षत्र, मुहूर्त, तिथि और कारण इन चार का दण्डनायक यानी सेनापति शकुन है। आचार्य लल्ल भी कहते हैं-

अपि सर्वगुणोपेतं, न ग्राह्यं शकुनं बिना।
लग्नं यस्मान्निमित्तानां, शकुनो दण्डनायकः ।।1।।

अर्थात भले ही सर्व गुण सम्पन्न लग्न हो पर शुभ शकुन बिना उसका स्वीकार नहीं करना चाहिए क्योंकि नक्षत्र, तिथि आदि निमित्तों का सेनानायक शकुन है। यही कारण है कि वर्जित शकुन में किये हुए प्रतिष्ठादि शुभ कार्य के परिणाम भी आशाजनक नहीं होते हैं।

7. **प्रतिष्ठाचार्य, स्नात्रकार और प्रतिमागत गुण-दोष–** उक्त त्रिक में रहे हुए गुण-दोष भी प्रतिष्ठा की सफलता और निष्फलता में अपना असर दिखाते हैं, यह बात पहिले ही कही जा चुकी है। शिल्पी की सावधानी या लापरवाही भी प्रतिष्ठा में कम असरकारक नहीं होती। शिल्पी की अज्ञता और असावधानी के कारण से आसन, दृष्टि आदि यथा-स्थान नियोजित न होने के कारण से भी प्रतिष्ठा की सफलता में अन्तर पड़ जाता है।

8. अविधि से प्रतिष्ठा करना यह भी प्रतिष्ठा की असफलता में एक मुख्य कारण है। आज का गृहस्थवर्ग यथाशक्ति द्रव्य खर्च करके ही अपना कर्त्तव्य पूरा हुआ मान लेते हैं। प्रतिष्ठा सम्बन्धी विधिकार्यों के साथ मानों इसका सम्बन्ध ही न हो ऐसा समझ लेते हैं। अधिकांश प्रदेशों में तो प्रतिष्ठा में होने वाली इनकम के आधार पर उसकी श्रेष्ठता और हीनता मानी जाती है। प्रतिष्ठाचार्य और विधिकारक कैसे हैं, विधि-विधान कैसे होते हैं इत्यादि बातों को देखने की किसी को फुरसत ही नहीं होती। आगन्तुक मेहमानों की व्यवस्था करने के अतिरिक्त मानो स्थानीय जैनों के लिए कोई काम ही नहीं होता। ऐसे में कई बार प्रतिष्ठाचार्य एवं विधिकारक अपनी स्वार्थपूर्ति भी कर लेते हैं। उन्हें मात्र अपनी लिस्ट में संख्या बढ़ाने से मतलब होता है, प्रतिष्ठा परिणामों से नहीं।

स्वार्थसाधक प्रतिष्ठाचार्यों के सम्बन्ध में आचार्य श्री पादलिप्तसूरि कहते हैं–

अवियाणिऊण य विहिं, जिणबिंबं जो ठवेति मूढमणो।
अहिमाणलोहजुत्तो, निवडइ संसार-जलहिंमि ।।77।।

अर्थात "प्रतिष्ठा-विधि को यथार्थ रूप में जाने बिना अभिमान और लोभ

के वश होकर जो "जिनप्रतिमा को स्थापित करता है, वह संसार-समुद्र में गिरता है।"

प्रतिष्ठाचार्य और प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में कतिपय ज्ञातव्य बातों का ऊपर सार मात्र दिया है। आशा है कि प्रतिष्ठा करने और कराने वाले इस वर्णन से कुछ बोध लेंगे।

परिवर्तन यह सृष्टि का नियम है। जैन दर्शन के अनुसार भी द्रव्य की पर्याय प्रति समय बदलती रहती है तथा व्यवहार में बदलाव यह मनुष्य का लक्षण है। यह परिवर्तन मात्र व्यक्ति या वस्तु में ही नहीं, अपितु काल क्रमानुसार नियम, सिद्धान्तों एवं संस्कृति में भी देखा जाता है। यदि प्रतिष्ठा सम्बन्धी विधि-विधानों पर दृष्टि डालें तो आद्योपरान्त अनेक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। कुछ परिवर्तन बदलते हुए समय एवं आधुनिक विचारधारा के कारण आए तो कुछ क्षेत्रों एवं मन्दिरों की बढ़ती संख्या और योग्य आचार्यों की घटती संख्या के कारण क्षेत्र एवं काल के प्रभाव से भी, कई फेर-बदल प्रतिष्ठाकल्प कर्ताओं द्वारा किए गए तो वैचारिक मतभेद भी इसमें एक प्रमुख कारण बना। पर यदि पूर्ण रूपेण इनका परिशीलन करें तो यही ज्ञात होता है कि पूर्व काल में यह विधान जितने सहज, सुसाध्य एवं अल्पव्ययी होते थे वर्तमान में वे उतने ही कठिन एवं खर्चिले हो गए है। ऐसा नहीं है कि यह परिवर्तन सिर्फ धार्मिक विधि-विधानों मे हुआ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे शादी ब्याह हो या शिक्षा या फिर गृहस्थी संचालन सबमें यही देखा जाता है। इसका मुख्य कारण है बदलती हुई जीवनशैली एवं विचारधारा, पर यदि यथार्थ चिंतन करें तो भले ही वर्तमान में मंदिर-प्रतिष्ठाओं की संख्या बढ़ रही हो उनके खर्चे एवं महोत्सव भी बढ़ रहे हो तो भी उनकी भावनात्मक गुणवत्ता में दिन-प्रतिदिन कमी ही आ रही है जिसके कारण मन्दिरों का प्रभाव पूर्ववत नहीं देखा जाता। आज बढ़ती हुई स्वार्थ वृत्ति, आशातनाएँ, नियमों के प्रति लापरवाही तथा नाम एवं प्रशंसा की भूख ने प्रतिष्ठा के मौलिक स्वरूप को पूर्णत: बदल दिया है। यदि समाज शीघ्र ही इस विषय में सचेत नहीं होता है तो मन्दिरों एवं प्राचीन तीर्थों की प्रभावकता एवं सातिशयता में अपूर्णिय क्षति का सामना करना पड़ सकता है। परिवर्तन तो स्वीकार्य है परंतु मूल को ही भूल जाना तो सर्वथा अनुचित एवं अग्राह्य है।

सन्दर्भ-सूची

1. *आचारदिनकर, भा. 2, पृ. 150*
2. *कल्याणकलिका, भा. 2 प्रस्तावना*
   (क) पृ. 8-14
   (ख) पृ. 49-45
3. *(क) वही, पृ. 3-8*
   (ख) वही, पृ. 16-25
4. *वही, पृ. 19-23*
5. *वही, पृ. 24-25*
6. *आचारदिनकर, पृ. 252*
7. *विधिमार्गप्रपा, पृ. 98*

●

अध्याय–16

सम्यक्त्वी देवी-देवताओं का शास्त्रीय स्वरूप

कई बार लोगों के मन में यह प्रश्न उठता है कि आखिर जैन धर्म में देवी-देवताओं का क्या स्वरूप है? उनका अस्तित्व किस रूप में है? यदि इस विषय में आगमों का अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि चार गतियों में से एक देव गति मानी गई है, जिसमें देवी-देवताओं का समावेश होता है। इनके मुख्य चार भेद करते हुए इन्हें मध्यलोक एवं ऊर्ध्वलोक का निवासी माना है। अत: उनका अस्तित्व जैन धर्म में स्वीकारा गया है यह स्पष्ट है। जब तीर्थंकरों के कल्याणक मनाए जाते हैं तो करोड़ों देवी-देवता उस समय उपस्थित रहते हैं तथा उनके समस्त कार्य जैसे कि जन्मशुचिकरण, दीक्षा की तैयारी, समवसरण रचना आदि सब कुछ देवों द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। इस तरह परमात्मा का स्थान सर्वोपरि, सर्वश्रेष्ठ एवं सर्व पूज्य है यह सिद्ध हो जाता है। हजारों देवी-देवता परमात्मा के सेवक के रूप में सदा उनके चरणों में उपस्थित रहते हैं। परमात्मा के प्रति अनुराग एवं श्रद्धा होने के कारण वे सम्यक्त्वी हैं यह निश्चित है। सम्यक्त्वधारी एवं परमात्म उपासक होने से एक श्रावक के लिए उनका स्थान साधर्मिक बंधु के समान होता है और साधर्मिक के रूप में ही उनका बहुमान आदि किया जाता है। देवी-देवताओं में उनके देवत्व गुण के कारण मनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक शक्तियाँ होती है, जिसके द्वारा वे विघ्नों एवं उपद्रवों के उपशमन में सहायक बन सकते हैं। अरिहंत भक्त होने से वे परमात्म भक्तों के उपद्रवों को सहज दूर करते हैं तथा अन्य कार्यों की सिद्धि में सहायक बनते हैं। तीर्थंकर परमात्मा की साक्षात उपस्थिति में विशेष सेवा रत देव युगल को शासन देव-देवी की उपमा दी जाती है। उन्हें मात्र धर्म रक्षक की उपमा दी गई है। जैन शास्त्रों में कहीं भी उनकी पृथक आराधना या विशेष आराधना करने का वर्णन नहीं है क्योंकि वे तो परमात्मा की सेवा से ही प्रसन्न हो जाते हैं अत: वर्तमान में देवी-देवताओं के पूजन का बढ़ता प्रचलन अवश्य विचारणीय है।

इसी कारण इस अध्याय में देवी-देवताओं का शास्त्रीय स्वरूप स्पष्ट किया जा रहा है जिससे जन समुदाय में परमात्म भक्ति का वर्धन हो तथा जिनेश्वर परमात्मा एवं देवी-देवताओं के बीच रही भेद रेखा और उनके स्वरूप का सम्यक ज्ञान हो।

चौबीस तीर्थंकरों के चरणों में करोड़ों देवी-देवता हाजिर रहते हैं किन्तु मुख्य रूप से एक देव युगल उनके महिमा वर्द्धन एवं विघ्न हरण आदि के लिए सदा तत्पर रहता है और तीर्थंकर परमात्मा के सेवक एवं भक्तों की रक्षा करता है। इन्हें शासन देव-देवी अथवा शासन यक्ष-यक्षिणी की संज्ञा दी गई है। इनका मुख्य कार्य तीर्थंकरों की सेवा में उपस्थित रहते हुए जिन शासन की प्रभावना करना है। इसी कारण जिन धर्मानुयायी धर्मरक्षक देवी-देवताओं की विशेष आराधना करते हैं।

यदि शासन देवी-देवताओं के सन्दर्भ में जैन आगम साहित्य एवं उससे परवर्ती साहित्य का अध्ययन किया जाए तो कल्पसूत्र आदि आगमों में तथा निर्युक्ति एवं चूर्णिकाल (छठी शती) तक भी इनका कोई वर्णन प्राप्त नहीं होता।

आइकॉनोग्राफी ऑफ जैन डायटिज के अनुसार सर्वप्रथम यक्ष और यक्षिणी के रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका का उल्लेख मिलता है इस प्रकार मध्यकाल में मुख्य रूप से यक्षिणी की प्रसिद्धि हुई। तदनन्तर श्वेताम्बर ग्रन्थों में शासन देवी-देवता का उल्लेख सर्वप्रथम 11वीं-12वीं शती के निर्वाणकलिका में प्राप्त होता है। तत्पश्चात इसी परम्परा के कहावली, मंत्राधिराजकल्प, त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र, प्रवचन सारोद्धार, आचार दिनकर, रूपमण्डन (देवतामूर्त्ति प्रकरण) आदि में इसका वर्णन दृष्टिगत होता है। यद्यपि दिगम्बर परम्परा में तिलोयपण्णति (लगभग छठीं-सातवीं शती) में इनका उल्लेख मिलता है, किन्तु विद्वानों की दृष्टि से यह अंश बाद में प्रक्षिप्त है। यद्यपि चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती आदि के अंकन और स्वतन्त्र मूर्तियाँ लगभग नवीं शताब्दी में मिलने लगती हैं, किन्तु चौबीस तीर्थंकरों के 24 यक्षों एवं 24 क्षिणियों की स्वतंत्र लाक्षणिक विशेषताएँ लगभग 11-12वीं शताब्दी में ही निर्धारित हुई है। दिगम्बर परम्परा के प्रतिष्ठासार संग्रह, प्रतिष्ठासारोद्धार, प्रतिष्ठातिलकम्, अपराजित पृच्छा आदि में भी इसका वर्णन किया गया है। ऐसे तो नौवीं-दसवीं शती के कन्नड़ कवि रत्न ने भी यक्षों और शासन देवियों के

नाम का उल्लेख किया है तथा 10वीं शती के आदिपुराण में भी इस विषयक वर्णन प्राप्त होता है। यदि अस्तित्व की अपेक्षा विचार करें तो तीर्थंकर पुरुषों की परम्परा अनादि निधन होने से शासन देव-देवियों की अवधारणा भी उतनी ही प्राचीन है।

यदि इस विषय में तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों में परस्पर कहीं-कहीं इनके नाम, वाहन, अस्त्र आदि को लेकर भिन्नता भी है और एक परम्परा के आचार्यों में भी मत भेद हैं।

यदि जैन शिल्प के अनुसार इसका परिशीलन करें तो दसवीं शती में कर्नाटक के शिल्पकारों को इसका पूर्ण रूप से ज्ञान था अत: कहीं न कहीं इनका अस्तित्व उससे पूर्व ही लोक व्यवहार में आ चुका था और यह लगभग वैदिक संस्कृति का प्रभाव था। यद्यपि देवी-देवताओं का उल्लेख तो आगमों में भी प्राप्त होता है जैसे कि कल्पसूत्र में सिद्धार्थ देव का महावीर स्वामी की सेवा में रहने का विशेष वर्णन प्राप्त होता है और वह उनका यक्ष भी है पर वहाँ उनका उल्लेख इस रूप में नहीं है।

• जिनालय में कौनसे शासन देवी-देवताओं की स्थापना करनी चाहिए?

पूर्व परम्परा के अनुसार मूलनायक परमात्मा के शासन देव-देवी की स्थापना करनी चाहिए। प्रश्न हो सकता है कि मन्दिर में अनेक जिन बिम्ब होते हैं, फिर उनके शासन देव-देवियों की स्थापना क्यों नहीं? इसका समाधान यही है कि मूलनायक भगवान के यक्ष याक्षिणी की स्थापना करने से शेष सभी की स्थापना हो जाती है।

आजकल के मन्दिरों में अधिकतर चक्रेश्वरी, पद्मावती या सिद्धायिका देवी की मूर्ति तथा देवों में लगभग गोमुख, भोमियाजी, भैंरूजी, घंटाकर्ण, मणिभद्र देव आदि की मूर्तियाँ स्थापित करते हैं, किन्तु मूलनायक परमात्मा के शासन देवी-देवताओं की स्थापना नहीं भी की जाती है, ऐसा क्यों? प्रतिष्ठाचार्यों एवं विधिकारकों के लिए यह अन्वेषणीय है। भले ही बढ़ रही श्रद्धा के कारण पद्मावती देवी आदि की स्थापना की जाए, किन्तु मूलनायक भगवान के शासन देवी-देवता की स्थापना भी करनी चाहिए।

• शासन देवी-देवता की स्थापना कहाँ करनी चाहिए?

प्राचीन प्रमाणों के अनुसार इन देवी-देवता को मूल गम्भारे (गर्भगृह) में स्थापित करना चाहिए। दूसरे, पुरुष प्रधानता के आधार पर तीर्थंकर के बायीं तरफ में शासन देवी तथा दाहिनी तरफ में शासन देव की स्थापना करनी चाहिए। वर्तमान में अधिकतर शासन देवी-देवता की मूर्तियों के लिए बाहरी रंग मंडप में देव कुलिकाएँ बनाई जाती है तो कई स्थानों पर प्रथम मंजिल में परमात्मा और नीचे के तल्ले में यक्ष-यक्षिणी को विराजमान करते हैं। शासन देव-देवी तीर्थंकर प्रभु के अनन्य सेवक होने से उनका स्थान स्वामी के निकट ही होना चाहिए। सम्भवतः गर्भगृह में स्थान की अल्पता के कारण उनकी स्थापना रंगमंडप में होने लगी है।

- शासन देव-देवी की स्थापना आवश्यक क्यों?

जैन धर्म को वीतराग धर्म कहा जाता है और जब वह वीतराग उपासना एवं वीतरागता प्राप्ति को ही लक्ष्य मानता है तथा वीतराग परमात्मा को ही अपना आराध्य तो फिर मन्दिरों में शासन देव-देवियों, अधिष्ठायक देव आदि की स्थापना क्यों करनी चाहिए? एक पक्ष से चिंतन करें तो यह तथ्य सही है, पर प्रत्येक पक्ष का चिंतन द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से होना चाहिए। सामान्य लौकिक परम्पराओं का प्रभाव तथा जैन गृहस्थों का अन्य धर्मों की ओर अभिमुख होना इनकी मान्यता के लिए मुख्य कारण रहा है। देव-देवियों की मान्यता तो चार निकायों के अन्तर्गत मानी ही गई है। इन देवों का समावेश व्यंतर देवों में होता है। ये सम्यक्त्वी होते हैं और हमेशा तीर्थंकरों की सेवा में हाजिर रहते हैं। पुराणों में अनेक स्थानों पर इनके द्वारा शासन कार्यों में सहायक होने के उल्लेख मिलते हैं। तदुपरान्त यह समझ लेना परम आवश्यक है कि शासन देवी-देवताओं को तीर्थंकर से उत्कृष्ट मानना अथवा तीर्थंकरों की अवहेलना कर इनकी पूजा-अर्चना करना घोर-मिथ्यात्व है।

वस्तुतः शासन देव-देवियों को स्वपूजा से नहीं तीर्थंकरों की पूजा से ही आनंद मिलता है। वे तीर्थंकर पूजकों को स्वधर्मी मानकर ही उनकी सहायता करने में तत्पर रहते हैं। वस्तु स्थिति यह है कि तीर्थंकर परमात्मा की पूजा भक्ति करने से जो पुण्य अर्जित पुण्य होता है उसके प्रभाव से शासन देवी-देवता जिन उपासकों के संकटों को दूर करने सहयोगी होते हैं। सामान्यतया वीतराग परमात्मा स्वयं हमारी आत्म शुद्धि में निमित्त भूत बनते हैं, भक्तों के मार्ग को प्रशस्त करते हैं तब उनके शासन देवी-देवता अवधिज्ञान के प्रयोग द्वारा एवं

देवलोक से तिरछालोक में गमन करने के कारण सहायता क्यों नहीं कर सकते?

जैन स्थापत्य कला में शासन देवी-देवता एक अभिन्न अंग के रूप में हैं। प्राचीनतम प्रतिमाओं में जैन शासन के देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ सारे देश में मिलती हैं। अनेक स्थानों पर शासन देव-देवियों के मन्दिर अपने चमत्कारों के लिए प्रसिद्ध हैं। उनमें हुम्मच पद्मावती, आरा एवं नरसिंह राजपुरा की ज्वालामालिनी देवी, महुडी में घंटाकर्ण महावीर आदि विख्यात है। पुरातत्त्व दृष्टि से भी जैन शासन देव-देवियों की प्रतिमाओं का अपना विशिष्ट स्थान है।

इस प्रकार अनेक दृष्टियों से शासन प्रभावक देव-देवियों की उपादेयता सिद्ध होती है। दूसरा हेतु यह है कि शासन देवी-देवता परमात्मा के प्रति दृढ़ श्रद्धावान होने से जिनालय एवं भक्तगणों पर आने वाली विपदाओं को पूर्व से ही सूचित कर देते हैं इससे लौकिक विघ्नों का भी निवारण होता है। अतएव इनकी स्थापना आवश्यक प्रतीत होती है।

• प्रश्न हो सकता है कि यदि शासन देवी-देवता जिनमन्दिर आदि की रक्षा करते हैं तो फिर मन्दिरों में बढ़ती चोरियों आदि का कारण क्या है?

शासन देवी-देवता परमात्मा का आदर-सत्कार होने से तुष्ट होते हैं किन्तु उनकी आशातना होने पर वे रूष्ट हो जाते हैं और फिर विघ्न निवारण में कार्यकारी नहीं बनते।

दूसरे, वर्तमान में प्रायः भक्ति-श्रद्धा में वह ताकत नहीं रह गई है जो उन्हें सहायता के लिए शीघ्र उपस्थित कर सकें। क्योंकि ये तो अधिकांश अपने ऐश्वर्य भोग या आनन्द क्रीड़ा में मग्न रहते हैं। इनका सच्चे मन से सुमिरण करने पर ही ये सहायक बनते हैं।

वर्तमान में बढ़ती आशातनाओं एवं अविवेक के कारण भी इनका प्रभुत्व मन्द हो गया है।

दुष्काल के प्रभाव से धर्मक्षेत्र में घटती लोगों की रुचि, कर्त्तव्य हीनता एवं पूजारियों के भरोसे सब कार्य होना भी चोरी आदि के प्रमुख कारण हैं।

जैन धर्म में वीतराग परमात्मा के साथ उनके शासन देव का भी प्रमुख स्थान रहा हुआ है। शिल्पकला के आधार पर इसकी ऐतिहासिकता भी सिद्ध हो जाती है। जैन वांगमय अनुसार श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा में प्रचलित चौबीस तीर्थंकरों के शासन देव-देवियों के नाम इस प्रकार हैं–

तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षिणी के नाम

	तीर्थंकर	यक्ष		यक्षिणी	
		श्वेताम्बर	दिगम्बर	श्वेताम्बर	दिगम्बर
1.	ऋषभनाथ	गोमुख	गोमुख (वृषभ)	चक्रेश्वरी	चक्रेश्वरी
2.	अजितनाथ	महायक्ष	महायक्ष	अजितबला	रोहिणी (अजिता)
3.	संभवनाथ	त्रिमुख	त्रिमुख	दुरितारी	प्रज्ञप्ति(नम्रा)
4.	अभिनन्दन	यक्षनायक	यक्षेश्वर	काली	वज्रशृंखला (दुरितारि)
5.	सुमतिनाथ	तुम्बरू	तुम्बुर	महाकाली	पुरुषदत्ता (संसारी)
6.	पद्मप्रभ	कुसुम	कुसुम	श्यामा	मनोवेगा (मोहिनी)
7.	सुपार्श्वनाथ	मातंग	वरनन्द (मातंग)	शान्ता	काली (मालिनी)
8.	चन्द्रप्रभ	विजय	विजय (श्याम)	भृकुटि	ज्वालामालिनी
9.	सुविधिनाथ	अजित	अजित	सुतारका	महाकाली (भृकुटि)
10.	शीतलनाथ	ब्रह्म	ब्रह्मेश्वर	अशोका	मानवी (चामुन्डा)
11.	श्रेयांसनाथ	यक्षराज	कुमार (ईश्वर)	मानवी	गौरी (गोमेधकी)
12.	वासुपूज्य	कुमार	षण्मुख (कुमार)	चण्डा	गांधारी (विद्युत्माली)
13.	विमलनाथ	षण्णुख	पाताल (चतुर्मुख)	विदिता	वैरोटी (विद्या)
14.	अनन्तनाथ	पाताल	किन्नर (पाताल)	अंकुशा	अनन्तमति (विजृंभिणी)

	तीर्थंकर	यक्ष		यक्षिणी	
		श्वेताम्बर	दिगम्बर	श्वेताम्बर	दिगम्बर
15.	धर्मनाथ	किन्नर	किंपुरुष (किन्नर)	कंदर्पा	मानसी (परिभृता)
16.	शांतिनाथ	गरूड़	गरुड़	निर्वाणी	महामानसी (कन्दर्प)
17.	कुंथुनाथ	गंधर्व	गंधर्व	बला	जया (गांधारिणी)
18.	अरहनाथ	यक्षेश	महेन्द्र (यक्षेन्द्र)	धारिणी	विजया (काली)
19.	मल्लिनाथ	कुबेर	कुबेर	धरणप्रिया	अपराजिता (अनजान)
20.	मुनिसुव्रतनाथ	वरूण	वरुण	नरदत्ता	बहुरूपिणी (सुगंधिनी)
21.	नमिनाथ	भृकुटी	विद्युत्प्रभ (भृकुटी)	गान्धारी	चामुन्डी (कुसुममालिनी)
22.	नेमिनाथ	गोमेध	सर्वान्ह (गोमेद)	अम्बिका	कूष्मांडी
23.	पार्श्वनाथ	पार्श्व	धरणेन्द्र	पद्मावती	पद्मावती
24.	वर्धमान	मातंग	मातंग	सिद्धायिका	सिद्धायनी

24 तीर्थंकरों के शासन देवी-देवताओं का सचित्र स्वरूप

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा के प्रचलित ग्रन्थों में 24 तीर्थंकरों के शासन देवी-देवताओं का वर्णन उपलब्ध होता है। किन्तु उनमें किंचित मतभेद होने से यह वर्णन श्वेताम्बर के आचार दिनकर और दिगम्बर के प्रतिष्ठासार संग्रह आदि ग्रन्थों के अनुसार दिया जा रहा है।

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार

1. ऋषभनाथ

यक्ष– गोमुख

मुख	गौ
कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	हाथी/वृषभ
दायें हाथों में	वरदान, माला
बायें हाथों में	बिजौरा, पाश

यक्षिणी– चक्रेश्वरी

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	आठ
वाहन	गरूड़ / सिंह
आसन	कमल
दायें हाथों में	वरदान, बाण, पाश, चक्र
बायें हाथों में	धनुष, वज्र, चक्र, अंकुश

2. अजितनाथ

यक्ष– महायक्ष

मुख	चार
कांति	कृष्ण
भुजाएँ	आठ
वाहन	हाथी
दायें हाथों में	वरदान,मुद्गर, माला,पाश
बायें हाथों में	बिजौरा,अभय,अंकुश, शक्ति

यक्षिणी– अजितबला

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
आसन	लोहासन
दायें हाथों में	वरदान, पाश
बायें हाथों में	बिजौरा, अंकुश

3. संभवनाथ

यक्ष– त्रिमुख

मुख	तीन
कांति	कृष्ण
भुजाएँ	छह
वाहन	मोर
नेत्र	तीन-तीन
दायें हाथों में	नेवला, गदा, अभय
बायें हाथों में	बिजौरा, सांप, माला

यक्षिणी– दुरितारी

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	मेंढा
दायें हाथों में	वरदान, माला
बायें हाथों में	फल, अभय

4. अभिनंदन स्वामी

यक्ष– यक्षनायक

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	हाथी
दायें हाथों में	बिजौरा, माला
बायें हाथों में	नेवला, अंकुश

यक्षिणी– काली

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	कमल
आसन	कमल
दायें हाथों में	वरदान, पाश
बायें हाथों में	नाग, अंकुश

5. सुमतिनाथ

यक्ष– तुम्बरू

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	गरुड़
दायें हाथों में	वरदान, शक्ति
बायें हाथों में	नाग, पाश/गदा

यक्षिणी– महाकाली

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	कमल
दायें हाथों में	वरदान, पाश
बायें हाथों में	नाग, अंकुश

6. पद्मप्रभ स्वामी

यक्ष– कुसुम

कांति	नील
भुजाएँ	चार
वाहन	हिरण
दायें हाथों में	फल, अभय
बायें हाथों में	नेवला, माला

यक्षिणी– श्यामा

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	पुरुष
दायें हाथों में	वरदान, बाण/पाश
बायें हाथों में	धनुष, अभय/बिजौरा, अंकुश

7. सुपार्श्वनाथ

यक्ष– मातंग

कांति	नील
भुजाएँ	चार
वाहन	हाथी
दायें हाथों में	बेलफल, पाश
बायें हाथों में	नेवला, अंकुश/वज्र

यक्षिणी– शान्ता

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	हाथी
दायें हाथों में	वरदान, माला
बायें हाथों में	शूली, अभय

8. चन्द्रप्रभ स्वामी

यक्ष– विजय

कांति	हरा
भुजाएँ	दो
वाहन	हंस
नेत्र	तीन
दायें हाथ में	चक्र
बायें हाथ में	मुद्गर

यक्षिणी– भृकुटि

कांति	पीला
भुजाएँ	चार
वाहन	वराल/ग्रास/सिंह/हंस
दायें हाथों में	तलवार, मुद्गर
बायें हाथों में	ढाल, फरसा

9. सुविधिनाथ

यक्ष– अजित

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	कछुआ
दायें हाथों में	माला/अभय,बिजौरा
बायें हाथों में	नेवला, भाला

यक्षिणी– सुतारका

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	बैल
दायें हाथों में	वरदान, माला
बायें हाथों में	कलश, अंकुश

10. शीतलनाथ

यक्ष– ब्रह्म

मुख	चार
कांति	श्वेत
भुजाएँ	आठ
नेत्र	तीन-तीन
आसन	कमल
दायें हाथों में	बिजौरा, मुद्गर, पाश,अभय
बायें हाथों में	नेवला,गदा, अंकुश, माला

यक्षिणी– अशोका

कांति	हरित
भुजाएँ	चार
आसन	कमल
दायें हाथों में	वरदान, पाश
बायें हाथों में	फल, अंकुश

11. श्रेयांसनाथ

यक्ष– यक्ष

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	बैल
नेत्र	तीन
दायें हाथों में	बिजौरा, गदा
बायें हाथों में	नेवला, माला/अंकुश, कमल

यक्षिणी– मानवी

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	सिंह
दायें हाथों में	वरदान, मुद्गर
बायें हाथों में	कलश/कुलिश, अंकुश

12. वासुपूज्य स्वामी

यक्ष– कुमार

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	हंस
दायें हाथों में	बिजौरा, बाण
बायें हाथों में	नेवला, धनुष

यक्षिणी– चण्डा

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	घोड़ा
दायें हाथों में	वरदान, शक्ति
बायें हाथों में	पुष्प, गदा

13. विमलनाथ

यक्ष— षण्मुख

कांति	श्वेत
भुजाएँ	बारह
वाहन	मोर
दायें हाथों में	फल, चक्र, बाण, खड्ग पाश, माला
बायें हाथों में	नेवला

यक्षिणी— विदिता

कांति	हरताल
भुजाएँ	चार
वाहन	कमल
दायें हाथों में	बाण, पाश
बायें हाथों में	धनुष, सर्प

14. अनन्तनाथ

यक्ष— पाताल

मुख	तीन
कांति	लाल
भुजाएँ	छह
वाहन	मगर
दायें हाथों में	कमल, खड्ग, पाश
बायें हाथों में	नेवला, ढाल, माला

यक्षिणी— अंकुशा

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	कमल
दायें हाथों में	खड्ग, पाश
बायें हाथों में	ढाल, अंकुश

15. धर्मनाथ

यक्ष– किन्नर

मुख	तीन
कांति	लाल
भुजाएँ	छह
वाहन	कछुआ
दायें हाथों में	बिजौरा, गदा, अभय
बायें हाथों में	नेवला,कमल, माला

यक्षिणी– कंदर्पा

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	मछली
दायें हाथों में	कमल, अंकुश
बायें हाथों में	कमल, अभय

16. शान्तिनाथ

यक्ष– गरूड़

मुख	वराह मुख
कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	शूकर
दायें हाथों में	बिजौरा, कमल
बायें हाथों में	नेवला, माला

यक्षिणी– निर्वाणी

कांति	श्वेत/सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	कमल
दायें हाथों में	पुस्तक,कमल
बायें हाथों में	कमंडल, कमल

17. कुन्थुनाथ

यक्ष– गंधर्व

कांति	कृष्णा
भुजाएँ	चार
वाहन	हंस
दायें हाथों में	पाश, वरदान
बायें हाथों में	बिजौरा, अंकुश

यक्षिणी– बला

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	मोर
दायें हाथों में	बिजौरा, शूली
बायें हाथों में	अरई, कमल

18. अरनाथ

यक्ष– यक्षेराज

मुख	छह
कांति	कृष्ण
भुजाएँ	बारह
वाहन	शंख
नेत्र	तीन-तीन
दायें हाथों में	बिजौरा, बाण, खड्ग, मुद्गर, पाश, अभय
बायें हाथों में	नेवला, धनुष, ढाल, शूल, अंकुश, माला

यक्षिणी– धारिणी

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
आसन	कमल
दायें हाथों में	बिजौरा, कमल
बायें हाथों में	पाश, माला

19. मल्लिनाथ

यक्ष– कुबेर

मुख	गरुड़ (चतुर्मुख)
कांति	इन्द्रधनुष
भुजाएँ	आठ
वाहन	हाथी
दायें हाथों में	वरदान, फरसा, शूल,अभय
बायें हाथों में	बिजौरा, शक्ति, मुद्गर, माला

यक्षिणी– धरणप्रिया

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
आसन	कमल
दायें हाथों में	वरदान, माला
बायें हाथों में	बिजौरा, शक्ति

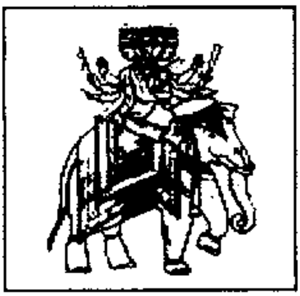

20. मुनिसुव्रत स्वामी

यक्ष– वरूण

मुख	चार
कांति	श्वेत
भुजाएँ	आठ
वाहन	बैल
मुकुट	जटा का
नेत्र	तीन-तीन
दायें हाथों में	बिजौरा, गदा, बाण, शक्ति
बायें हाथों में	नेवला, कमल, धनुष, फरसा

यक्षिणी– नरदत्ता

कांति	श्वेत/सुवर्ण/कृष्ण वर्ण
भुजाएँ	चार
आसन	भद्रासन
दायें हाथों में	बिजौरा, शूल
बायें हाथों में	वरदान, माला

21. नमिनाथ

यक्ष– भृकुटी

मुख	चार
कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	आठ
वाहन	नन्दी (बैल)
नेत्र	तीन-तीन
दायें हाथों में	नेवला, फरसा, वज्र, माला
बायें हाथों में	बिजौरा, शक्ति, मुद्गर, अभय

यक्षिणी– गांधारी

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	हंस
दायें हाथों में	वरदान, तलवार
बायें हाथों में	बिजौरा, कुंभकलश, भाला

22. नेमिनाथ

यक्ष– गोमेध

मुख	तीन
कांति	कृष्ण
भुजाएँ	छह
वाहन	मनुष्य
दायें हाथों में	बिजौरा, फरसा, चक्र
बायें हाथों में	नेवला, शूल, शक्ति

यक्षिणी– अम्बिका

कांति	सुवर्ण
वाहन	सिंह
भुजाएँ	चार
दायें हाथों में	बिजौरा/आम की डाली, पाश
बायें हाथों में	पुत्र, अंकुश

23. पार्श्वनाथ

यक्ष– पार्श्व

मुख	हाथी, सिर पर नागफणी
कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	कछुआ
दायें हाथों में	बिजौरा, सांप
बायें हाथों में	नेवला, सांप

यक्षिणी– पद्मावती

कांति	सुवर्ण
वाहन	मुर्गा/कुक्कुट, सर्प
भुजाएँ	चार
दायें हाथों में	कमल, पाश
बायें हाथों में	फल, अंकुश

24. महावीर स्वामी

यक्ष– मातंग

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	दो
वाहन	हाथी
दायें हाथों में	नेवला
बायें हाथों में	बिजौरा

यक्षिणी– सिद्धायिका

कांति	हरा
भुजाएँ	चार
वाहन	सिंह
दायें हाथों में	पुस्तक, अभय
बायें हाथों में	बिजौरा, वाणी / पाश, कमल

दिगम्बर परम्परा के अनुसार

1. ऋषभनाथ

यक्ष– गोमुख (वृषभ)

मुख	गौ
कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	बैल
दायें हाथों में	फरसा, बिजौरे का फल
बायें हाथों में	माला, वरदान
मस्तक पर	धर्मचक्र

यक्षिणी– चक्रेश्वरी

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	बारह
वाहन	गरूड़
आसन	कमल
दोनों तरफ के दो हाथों में	वज्र
दोनों तरफ के चार-चार हाथों में	चक्र
नीचे के बायें हाथ में	फल
नीचे के दायें हाथ में	वरदान

2. अजितनाथ

यक्ष– महायक्ष

मुख	चार
कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	आठ
वाहन	हाथी
दायें हाथों में	तलवार, दण्ड, फरसा, वरदान
बायें हाथों में	चक्र, त्रिशूल, कमल, अंकुश

यक्षिणी– रोहिणी (अजिता)

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
आसन	लोहासन
दायें हाथों में	शंख, अभय
बायें हाथों में	चक्र, वरदान

3. संभवनाथ

यक्ष– त्रिमुख

मुख	तीन
कांति	कृष्ण
भुजाएँ	छह
वाहन	मोर
नेत्र	तीन-तीन
दायें हाथों में	दण्ड, त्रिशूल, तीक्ष्ण कतरनी
बायें हाथों में	चक्र, तलवार, अंकुश

यक्षिणी– प्रज्ञप्ति (नम्रा)

कांति	श्वेत
भुजाएँ	छह
वाहन	पक्षी
दायें हाथों में	तलवार, इण्टी(तुम्बी), वरदान
बायें हाथों में	अर्धचन्द्र, फरसा, फल

4. अभिनन्दन स्वामी

यक्ष– यक्षेश्वर

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	हाथी
दायें हाथों में	बाण, तलवार
बायें हाथों में	धनुष, ढाल

यक्षिणी– वज्रश्रृंखला (दुरितारि)

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	हंस
दायें हाथों में	माला, वरदान
बायें हाथों में	नागपाश, बिजौरा

5. पद्मप्रभ

यक्ष– कुसुम

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	हिरण
दायें हाथों में	माला, वरदान
बायें हाथों में	ढाल, अभय

यक्षिणी– मनोवेगा (मोहिनी)

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	घोड़ा
दायें हाथों में	तलवार, वरदान
बायें हाथों में	ढाल, फल

6. सुमतिनाथ

यक्ष– तुम्बुर

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	गरूड़
यज्ञोपवीत	सर्प
दायें हाथों में	सर्प, वरदान
बायें हाथों में	सर्प, फल

यक्षिणी– पुरुषदत्ता(संसारी)

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	हाथी
दायें हाथों में	चक्र, वरदान
बायें हाथों में	वज्र, फल

7. सुपार्श्वनाथ

यक्ष– वरनन्द(मातंग)

मुख	टेढ़ा (कुटिल)
कांति	कृष्ण
भुजाएँ	दो
वाहन	सिंह
दायें हाथों में	त्रिशूल
बायें हाथों में	दण्ड

यक्षिणी– काली(मालिनी)

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	बैल
दायें हाथों में	त्रिशूल, वरदान
बायें हाथों में	घण्टा, फल

8. चन्द्रप्रभ

यक्ष– विजय (श्याम)

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	कबूतर
नेत्र	तीन
दायें हाथों में	माला, वरदान
बायें हाथों में	फरसा, फल

यक्षिणी– ज्वालामालिनी

कांति	श्वेत
भुजाएँ	आठ
वाहन	भैंसा
दायें हाथों में	त्रिशूल, बाण, मछली, तलवार
बायें हाथों में	चक्र, धनुष, नागपाश, ढाल

9. सुविधिनाथ (पुष्पदन्त)

यक्ष– अजित

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	कछुआ
दायें हाथों में	अक्षमाला, वरदान
बायें हाथों में	शक्ति, फल

यक्षिणी– महाकाली (भृकुटि)

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	कछुआ
दायें हाथों में	मुद्गर, वरदान
बायें हाथों में	वज्र, फल

10. शीतलनाथ

यक्ष– ब्रह्मेश्वर

मुख	चार
कांति	श्वेत
भुजाएँ	आठ
आसन	कमल
दायें हाथों में	बाण,फरसा, तलवार, वरदान
बायें हाथों में	धनुष, दण्ड, ढाल, वज्र

यक्षिणी– मानवी (चामुन्डा)

कांति	हरा
भुजाएँ	चार
वाहन	सूअर
दायें हाथों में	बिजौरा, वरदान
बायें हाथों में	मछली, माला

11. श्रेयांसनाथ

यक्ष– कुमार (ईश्वर)

कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	बैल
नेत्र	तीन
दायें हाथों में	माला, फल
बायें हाथों में	त्रिशूल, दण्ड

यक्षिणी– गौरी (गोमेधकी)

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	हरिण
दायें हाथों में	कलश, वरदान
बायें हाथों में	मुद्गर, कमल

12. वासुपूज्य

यक्ष– षण्मुख (कुमार)

मुख	तीन
कांति	श्वेत
भुजाएँ	छह
वाहन	हंस
दायें हाथों में	बाण, गदा, वरदान
बायें हाथों में	धनुष, नेवला, फल

यक्षिणी– गांधारी (विद्युत्माली)

कांति	हरा
भुजाएँ	चार
वाहन	मगर
दायें हाथों में	कमल, वरदान
बायें हाथों में	कमल, मूसल

13. विमलनाथ

यक्ष– पाताल (चतुर्मुख)

मुख	चार
कांति	हरा
भुजाएँ	बारह
वाहन	मोर
दायें हाथों में	फरसा, फरसा, फरसा फरसा, तलवार, माला
बायें हाथों में	फरसा, फरसा, फरसा फरसा, ढाल, वरदान

यक्षिणी– वैरोटी (विद्या)

कांति	हरा
भुजाएँ	चार
वाहन	सर्प
दायें हाथों में	सर्प, बाण
बायें हाथों में	सर्प, धनुष

14. अनन्तनाथ

यक्ष– किन्नर (पाताल)

मुख	तीन
कांति	लाल
भुजाएँ	छह
वाहन	मगर
मस्तक पर	नाग के तीन फण
दायें हाथों में	अंकुश, त्रिशूल, कमल
बायें हाथों में	चाबुक, हल, फल

यक्षिणी– अनन्तमति (विजृंभिणी)

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	हंस
दायें हाथों में	बाण, वरदान
बायें हाथों में	धनुष, बिजौरा, फल

15. धर्मनाथ

यक्ष– किंपुरुष (किन्नर)

मुख	तीन
कांति	मूंगा
भुजाएँ	छह
वाहन	मछली
दायें हाथों में	मुद्गर, माला, वरदान
बायें हाथों में	चक्र, वज्र, अंकुश

यक्षिणी– मानसी (परिभृता)

कांति	मूगा (लाल)
भुजाएँ	छह
वाहन	व्याघ्र
दायें हाथों में	कमल, बाण, अंकुश
बायें हाथों में	कमल, धनुष, वरदान

16. शान्तिनाथ

यक्ष– गरूड़

मुख	टेढ़ा (वराह मुख)
कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	शूकर
दायें हाथों में	चक्र, कमल
बायें हाथों में	वज्र, फल

यक्षिणी– महामानसी (कन्दर्प)

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	मयूर
दायें हाथों में	ईढ़ी, वरदान
बायें हाथों में	चक्र, फल

17. कुन्थुनाथ

यक्ष– गंधर्व

कांति	कृष्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	पक्षी
दायें हाथों में	नागपाश, बाण
बायें हाथों में	नागपाश, धनुष

यक्षिणी– जया (गांधारिणी)

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	काला शूकर
दायें हाथों में	तलवार, वरदान
बायें हाथों में	चक्र, शंख

18. अरनाथ

यक्ष– महेन्द्र (यक्षेन्द्र)

मुख	छह
कांति	कृष्ण
भुजाएँ	बारह
वाहन	शंख
नेत्र	तीन
दायें हाथों में	बाण, कमल, बिजौरा, माला बड़ी अक्षमाला, अभय
बायें हाथों में	धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश, वरदान

यक्षिणी– विजया (काली)

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	चार
वाहन	हंस
दायें हाथों में	वज्र, वरदान
बायें हाथों में	सांप, हरिण

19. मल्लिनाथ

यक्ष– कुबेर

मुख	चार
कांति	इन्द्रधनुष
भुजाएँ	आठ
वाहन	हाथी
दायें हाथों में	तलवार,बाण,नागपाश, वरदान
बायें हाथों में	ढाल, धनुष, दण्ड, कमल

यक्षिणी– अपराजिता (अनजान)

कांति	हरा
भुजाएँ	चार
वाहन	अष्टापद
दायें हाथों में	तलवार, वरदान
बायें हाथों में	ढाल, फल

20. मुनिसुव्रत

यक्ष– वरूण

मुख	आठ
कांति	श्वेत
भुजाएँ	चार
वाहन	बैल
मुकुट	जटा का
नेत्र	तीन-तीन
दायें हाथों में	ढाल, फल
बायें हाथों में	तलवार, वरदान

यक्षिणी– बहुरूपिणी (सुगंधिनी)

कांति	पीला
भुजाएँ	चार
वाहन	काला सर्प
दायें हाथों में	ढाल, फल
बायें हाथों में	तलवार, वरदान

21. नमिनाथ

यक्ष– विद्युत्प्रभ (भृकुटी)

मुख	चार
कांति	लाल
भुजाएँ	आठ
वाहन	नन्दी (बैल)
नेत्र	तीन-तीन
दायें हाथों में	चक्र, धनुष, बाण, ढाल
बायें हाथों में	कमल, तलवार, अंकुश, वरदान

यक्षिणी– चामुन्डी (कुसुममालिनी)

कांति	हरा
भुजाएँ	चार
वाहन	मगर
दायें हाथों में	दण्ड, ढाल
बायें हाथों में	माला, तलवार

22. नेमिनाथ

यक्ष– सर्वान्ह (गोमेद)

मुख	तीन
कांति	कृष्ण
भुजाएँ	छह
वाहन	पुरुष
आसन	पुष्प
दायें हाथों में	फल,वज्र,वरदान
बायें हाथों में	मुद्गर, फरसा, दण्ड

यक्षिणी– कूष्मांडी

कांति	हरा
भुजाएँ	दो
वाहन	सिंह (आम्र की छाया में रहने वाला)
दायें हाथों में	शुभंकर पुत्र
बायें हाथों में	प्रियंकर पुत्र की प्रीति के लिए आम्र की डाल को (गोद में पुत्र)

23. पार्श्वनाथ

यक्ष– धरणेन्द्र

कांति	आकाशी नीला
भुजाएँ	चार
मुकुट	सांप का चिह्न
वाहन	कछुआ
दायें हाथों में	वासुकी नाग, वरदान
बायें हाथों में	वासुकी नाग, नागपाश

यक्षिणी– पद्मावती

कांति	लाल
भुजाएँ	चार
आसन	कमल
वाहन	कुक्कुट सर्प
मस्तक	तीन फणा सांप का चिह्न
दायें हाथों में	कमल, वरदान
बायें हाथों में	अंकुश, माला

24. महावीर स्वामी

यक्ष– मातंग

कांति	मूंग जैसा हरा
भुजाएँ	दो
वाहन	हाथी
मस्तक	धर्मचक्र धारण
दायें हाथों में	वरदान
बायें हाथों में	बिजौरा फल

यक्षिणी– सिद्धायनी

कांति	सुवर्ण
भुजाएँ	दो
वाहन	सिंह
आसन	भद्रासन
दायें हाथों में	पुस्तक
बायें हाथों में	वरदान

तीर्थंकर पुरुषों के चिह्न

सभी तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ वीतराग स्वरूप को दर्शाती हुई एक समान होती है। किसी चिह्न विशेष के बिना किसी भी तीर्थंकर प्रतिमा की पहचान करना असंभव है इसलिए उनके चिह्नों का निर्धारण किया गया है। यह निश्चय सौधर्म इन्द्र के द्वारा प्रभु के जन्माभिषेक के अवसर पर उनके दाहिने अंगूठे पर बने चिह्न को देखकर किया जाता है। तीर्थंकर प्रतिमा की स्थापना के समय यही चिह्न उनकी पादपीठ पर अंकित करते हैं उससे अमुक-अमुक तीर्थंकर का स्पष्ट बोध हो जाता है।

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं में इस विषयक किंचिद् मतान्तर है। श्वेताम्बर अनुमत शिल्परत्नाकर एवं दिगम्बर मान्य पूज्यपादाचार्यकृत निर्वाणभक्ति के अनुसार चौबीस तीर्थंकरों की चिह्न सारणी निम्न प्रकार है–

क्रमांक	तीर्थंकर	चिह्न (श्वे.)	चिह्न (दिग.)
1.	ऋषभनाथ	बेल	बैल
2.	अजितनाथ	गज	गज
3.	संभवनाथ	अश्व	अश्व
4.	अभिनंदननाथ	वानर	वानर

क्रमांक	तीर्थंकर	चिह्न (श्वे.)	चिह्न (दिग.)
5.	सुमतिनाथ	क्रौंच पक्षी	चकवा
6.	पद्मप्रभु	लाल कमल	कमल
7.	सुपार्श्वनाथ	स्वस्तिक	स्वस्तिक
8.	चन्द्रप्रभु	अर्द्धचन्द्र	अर्द्धचन्द्र
9.	सुविधिनाथ	मगर	मगर
10.	शीतलनाथ	श्रीवत्स	श्रीवृक्ष
11.	श्रेयांसनाथ	खंगपक्षी	गेंडा

क्रमांक	तीर्थंकर	चिह्न (श्वे.)	चिह्न (दिग.)
12.	वासुपूज्य	भैंसा	भैंसा
13.	विमलनाथ	शूकर	शूकर
14.	अनंतनाथ	श्येनपक्षी	सेही
15.	धर्मनाथ	वज्र	वज्र
16.	शांतिनाथ	हरिण	हरिण
17.	कुंथुनाथ	बकरा	बकरा
18.	अरनाथ	नन्द्यावर्त	मत्स्य

क्रमांक	तीर्थंकर	चिह्न (श्वे.)	चिह्न (दिग.)
19.	मल्लिनाथ	कलश	कलश
20.	मुनिसुव्रतनाथ	कूर्म	कूर्म
21.	नमिनाथ	उत्पल (नील कमल)	उत्पल
22.	नेमिनाथ	शंख	शंख
23.	पार्श्वनाथ	सर्प	सर्प
24.	वर्धमान	सिंह	सिंह

सोलह विद्यादेवियों का सचित्र स्वरूप

जिस प्रकार सरस्वती को जिनवाणी की प्रतीकात्मक देवी की संज्ञा है उसी प्रकार जिनशासन में वाणी की विभिन्न प्रकृतियों को मूर्तरूप में देवी स्वरूप माना गया है और उन्हें विद्या देवियों के रूप में स्वीकार किया है। इनकी संख्या सोलह

है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं में इन्हें समान रूप से मान्यता प्राप्त है।

यौगिक साधना में विद्या और मंत्र का अंतर बताते हुए यह कहा गया है कि जो स्त्री-देवता से अधिष्ठित हो वे विद्याएँ हैं और जो पुरुष देवता से अधिष्ठित हो वे मंत्र हैं। प्राचीन स्तर के जैन ग्रन्थों में विद्याओं के उल्लेख अवश्य मिलते हैं, किन्तु वे मात्र विशिष्ट प्रकार की ज्ञानात्मक या क्रियात्मक योग्यताएँ अथवा शक्तियाँ हैं जिनमें लिपिज्ञान से लेकर अन्तर्ध्यान होने तक की कलाएँ सम्मिलित हैं किन्तु इन ग्रन्थों में उन्हें पापश्रुत ही कहा गया है। यहाँ विद्यादेवियों का अभिप्राय ज्ञान शक्ति से सम्पन्न वाणी रूप देवियाँ है।

आचार दिनकर में पूजोपासना की अपेक्षा देवी-देवताओं को तीन भागों में विभक्त किया गया है उनमें श्रुतदेवता या विद्यादेवियों को कुल देवताओं की श्रेणि में माना गया है।

यदि इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि इन 16 विद्यादेवियों की सूची तिजयपहुत्थन विसति संहितासार (636 ई.), स्तुति चतुर्विंशति, हरिवंश पुराण और बप्पभट्टसूरिकृत चतुर्विंशतिका में मिलती है। इनका प्राचीनतम अंकन ओसिया (6वीं शती), कुम्भारिया (11वीं शती), आबू (12वीं शती), आबू लूणवसही (13वीं शती) में मिलता है। दिगम्बर परम्परा में विद्यादेवियों का अंकन मात्र खजुराहो (11वीं शती) में ही उपलब्ध है। विद्यादेवियों का वर्तमान प्रचलित नाम क्रम नौवीं शती के बाद प्राप्त होता है।

श्वेताम्बर परम्परा में 16 विद्यादेवियों का अत्यधिक महत्त्व है। इनकी पूजोपासना मंगल रूप मानी गई है। एतदर्थ प्रतिष्ठा, महापूजन, ध्वजारोहण, शान्ति कलश, स्नात्र पूजा आदि मांगलिक अवसर पर इनका नाम स्मरण एवं पूजा-उपासना की जाती है। वैसे ये देवियाँ अपने नाम के अनुरूप ही शुभ कारक और सन्मति सूचक है।

इन देवियों की प्रतिमाएँ मन्दिर के भीतरी एवं बाह्य भाग में लगाई जाती है। खजुराहो एवं राणकपुर के जैन मन्दिरों में सोलह विद्यादेवियों की प्रतिमाएँ अत्यन्त मनोहारी हैं।

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं के अनुसार इनका सचित्र वर्णन निम्न प्रकार है-

क्र.	श्वेताम्बर मान्यता	दिगम्बर मान्यता
1.	रोहिणी	रोहिणी
2.	प्रज्ञप्ति	प्रज्ञप्ति
3.	वज्रश्रृंखला	वज्रश्रृंखला
4.	वज्रांकुशा	वज्रांकुशा
5.	अप्रतिचक्रा (चक्रेश्वरी)	जांबुनदा
6.	पुरुषदत्ता	पुरुषदत्ता
7.	काली	काली
8.	महाकाली	महाकाली
9.	गौरी	गौरी
10.	गांधारी	गांधारी
11.	ज्वाला	ज्वालामालिनी
12.	मानवी	मानवी
13.	वैरोट्या	वैरोटी
14.	अच्छुप्ता	अच्युता
15.	मानसी	मानसी
16.	महामानसी	महामानसी

1. रोहिणी

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	धवल	पीत
आसन	गौ (कामधेनु)	कमल
भुजा	चार	चार
बाएँ हाथ में	शंख, धनुष	कलश, कमल
दाएँ हाथ में	अक्षसूत्र, बाण	शंख, बीजपुर

2. प्रज्ञप्ति

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	श्वेत	श्याम
वाहन	मयूर	अश्व
भुजा	चार[2]	चार
बाएँ हाथ में	मातुलिंग, शक्ति	चक्र, खड्ग
दाएँ हाथ में	वरदान, शक्ति	कमल, फल

3. वज्रश्रृंखला

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	श्वेत	स्वर्ण
वाहन	कमल	हाथी
भुजा	चार[3]	चार
बाएँ हाथ में	श्रृंखला, वरदान	वज्रश्रृंखला, कमल
दाएँ हाथ में	श्रृंखला, कमल	शंख, बीजपुर

4. वज्रांकुशा

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	स्वर्ण	अंजन के समान श्याम
वाहन	गज	पुष्पयान
भुजा	चार[4]	चार
बाएँ हाथ में	बीजौरा, अंकुश	वीणा, कमल
दाएँ हाथ में	वरदान, वज्र	अंकुश, बीजपुर

5. अप्रतिचक्रा / जाम्बुनदा

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	सुवर्ण पीत	सुवर्ण पीत
वाहन	गरुड़	मयूर
भुजा	चार	चार
बाएँ हाथ में	चक्र, चक्र	बीजपुर, भाला
दाएँ हाथ में	चक्र, चक्र	कमल, खड्ग

6. पुरुषदत्ता

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	सुवर्ण	श्वेत
वाहन	महिषी	मोर
भुजा	चार[5]	चार
बाएँ हाथ में	बिजौरा, ढाल	वज्र, कमल
दाएँ हाथ में	वरदान, खड्ग	शंख, फल

7. काली

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	कृष्ण	पीत
वाहन	कमल	हरिण
भुजा	चार[6]	चार
बाएँ हाथ में	वज्र, अभय	मूसल, फल
दाएँ हाथ में	अक्षसूत्र, गदा	कमल, खड्ग

8. महाकाली

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	तमाकु	नील, श्याम
वाहन	नर	शरभ
भुजा	चार	चार
बाएँ हाथ में	घण्टा, अभय	धनुष, फल
दाएँ हाथ में	अक्षसूत्र, वज्र	खड्ग, बाण

9. गौरी

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	सुवर्ण	गौर
वाहन	गोह	गोह
भुजा	चार	चार
बाएँ हाथ में	अक्षमाला, कमल	कमल
दाएँ हाथ में	वरदान, मूसल	कमल

10. गांधारी

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	नील[7]	अंजनवत् कृष्ण
वाहन	कमल	कच्छप
भुजा	चार[8]	दो
बाएँ हाथ में	अभय, वज्र	चक्र
दाएँ हाथ में	वरदान, मूसल	खड्ग

11. सर्वास्त्रज्वाला / ज्वालामालिनी

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	श्वेत	श्वेत
वाहन	सुअर[9]	बैल
भुजा	असंख्य[10]	आठ
बाएँ हाथ में	शस्त्र	धनुष, खड्ग
दाएँ हाथ में	शस्त्र	बाण, खेट

12. मानवी

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	कृष्ण	नील
वाहन	नीलकमल	शूकर
भुजा	चार	चार
बाएँ हाथ में	अक्षसूत्र, वृक्ष	त्रिशूल, कमल
दाएँ हाथ में	पाश, वरदान	मत्स्य, खड्ग

13. वैरोट्या / वैरोटी

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	श्याम[12]	स्वर्ण[11]
वाहन	अजगर[13]	सिंह
भुजा	चार[14]	चार
बाएँ हाथ में	ढाल, सर्प	सर्प
दाएँ हाथ में	खड्ग, सर्प	सर्प

14. अच्छुप्ता / अच्युता

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	विद्युतवत्	स्वर्ण
वाहन	अश्व	अश्व
भुजा	चार[15]	चार
बाएँ हाथ में	खेटक, ढाल	नमस्कार मुद्रा, खड्ग
दाएँ हाथ में	खड्ग, बाण	नमस्कार मुद्रा, वज्र

15. मानसी

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	श्वेत[16]	लाल
वाहन	हंस	सर्प
भुजा	चार[17]	दो
बाएँ हाथ में	अक्षवलय, वज्र	नमस्कार मुद्रा
दाएँ हाथ में	वरदान, वज्र	नमस्कार मुद्रा

16. महामानसी

	श्वेताम्बर	दिगम्बर
वर्ण	श्वेत	लाल
वाहन	सिंह[18]	हंस
भुजा	चार[19]	चार
बाएँ हाथ में	कुंडिका, ढाल	अक्षमाला, वरदान
दाएँ हाथ में	वरदान, खड्ग	माला, अंकुश

दश दिक्पाल देवों का ऐतिहासिक अनुशीलन

पूर्व-पश्चिम आदि दस दिशाओं के मुख्य अधिपति देव अथवा दसों दिशाओं के रक्षक देव दिक्पाल कहलाते हैं। इन्हें लोकपाल भी कहा जाता है। भारतीय धर्म की सभी परम्पराओं में दिक्पालों की यह अवधारणा प्राय: सामान्य रूप से स्वीकृत रही है। जैन परम्परा में दिक्पालों की अवधारणाओं का विकास लोकपालों की अवधारणा के पश्चात ही हुआ है। जिस प्रकार ब्राह्मण परम्परा में दिक्पालों की अवधारणा थी, उसी प्रकार जैन परम्परा में लोकपालों की अवधारणा थी। तिलोयपण्णत्ति में चार लोकपालों का उल्लेख है उनके नाम हैं– सोम, यम, वरूण और कुबेर, इन्हें वैश्रमण भी कहा गया है। जैन परम्परा में इन चारों का प्राचीनतम उल्लेख ऋषिभाषित (4-3वीं शती ई.पू.) में अर्हत् ऋषि के रूप में मिलता है। तिलोयपण्णत्ति (3/71) में इन लोकपालों में सोम को पूर्व दिशा का, यम को दक्षिण दिशा का, वरूण को पश्चिम दिशा का और कुबेर को उत्तर दिशा का लोकपाल माना गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि चार लोकपालों की कल्पना से ही अष्ट दिक्पालों की कल्पना अस्तित्व में आई।

डॉ. सागरमल जैन के अनुसार इन्हीं चार लोकपालों की अवधारणा को

ब्राह्मण परम्परा की अष्ट दिक्पालों की अवधारणा से समन्वित करते हुए प्रारम्भ में अष्ट दिक्पालों और उसके पश्चात दस दिक्पालों की अवधारणा जैनों में भी विकसित हुई।

यदि ऐतिहासिक विकास क्रम को ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो प्रतिष्ठासारोद्धार (3/196-195) में आठ दिक्पालों की ही अवधारणा मिलती है। इसमें इन्द्र को पूर्व दिशा का, अग्नि को आग्नेय कोण का, यम को दक्षिण दिशा का, नैऋति को नैऋत्य कोण का, वरूण को पश्चिम दिशा का, वायु को वायव्य कोण का, कुबेर को उत्तर दिशा का और ईशान को ईशान कोण का अधिपति माना गया है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि जिन ग्रन्थों में दस दिक्पालों की अवधारणा उपलब्ध होती हैं, उनमें ब्रह्म या सोम को ऊर्ध्वलोक का और नागदेव या धरणेन्द्र को अधो दिशा का स्वामी बतलाया गया है। दूसरे, जहाँ जैन साहित्यिक स्तोत्रों में दस दिक्पालों का उल्लेख मिलता है, वहीं जैन मन्दिरों में प्रायः आठ दिक्पालों का ही अंकन पाया जाता है।

डॉ. मारुतिनंदन तिवारी की सूचना के अनुसार राजस्थान जिला पाली के धानेराव नगर में दस दिक्पालों का अंकन हैं। इस अपवाद को छोड़कर शेष सभी मंदिरों में लगभग आठ दिक्पालों का अंकन प्राप्त होता है। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि जैन धर्म में लोकपालों/दिक्पालों की यह अवधारणा कालक्रम में विकसित हुई है।

जैन परम्परा में अष्ट या दस दिक्पालों की अवधारणा कब अस्तित्व में आयी, यह निश्चित रूप से कह पाना तो कठिन है, किन्तु इन अष्ट दिक्पालों में से सोम, यम, वरूण और वैश्रमण (कुबेर)– इन चार का उल्लेख सर्वप्रथम अर्हत् ऋषि के रूप में ऋषिभाषित सूत्र (ई.पू. चतुर्थ शती) में मिलता है, आगे चलकर यही नाम दिक्पालों की सूची में सम्मिलित हो गये। निर्वाणकलिका (पृ. 81-82) में दसों दिक्पालों का स्वरूप स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। इन्द्र का उल्लेख तो भगवतीसूत्र, कल्पसूत्र आदि आगमों एवं पउमचरिय जैसे प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलता है। यद्यपि इन ग्रन्थों में इन्द्र को जिनेश्वर प्रभु के सेवक के रूप में उपस्थित किया गया है। ईशान को भी जैन परम्परा में इन्द्र के रूप में ही मान्यता प्राप्त है। इसी प्रकार कुबेर और ब्रह्मा की स्वीकृति सर्वानुभूति यक्ष और ब्रह्मशांति यक्ष के रूप में मिलती है।

दिक्पाल की स्थापना एवं पूजा कब और क्यों?

जैन परम्परा में दीक्षा, प्रतिष्ठा, अठारह अभिषेक, नन्द्यावर्त्त पूजन, बिम्ब प्रवेश, बिम्ब स्थापना आदि मांगलिक अवसरों पर नवग्रहों एवं दस दिक्पालों का आह्वान पूर्वक सम्मान और पूजा पूर्वक उनकी स्थापना की जाती है।

स्पष्ट है कि जैन प्रणाली में किसी भी तरह का मंगल विधान हो, उसकी निर्विघ्न सम्पन्नता हेतु नवग्रह एवं दस दिशा के देवताओं का स्मरण और पूजन किया जाता है। यह प्रक्रिया करने के पश्चात मन में यह विश्वास पैदा हो जाता है कि अब अशुभ ग्रह या दिशा सम्बन्धी कोई उपद्रव नहीं हो सकता।

वस्तुत: दसों दिशाओं से होने वाले उपद्रवों के निवारणार्थ दिक्पालों की स्थापना की जाती है। इससे अन्य विघ्नों का भी उपशमन होता है।

दिक्पाल स्थापना कहाँ और किसके द्वारा?

दीक्षा आदि की नन्दि विधियों में दिक्पालों के नामोच्चारण पूर्वक दसों दिशाओं की कल्पना करते हुए त्रिगड़े के चारों ओर उनकी स्थापना की जाती है अथवा एक पट्टे पर अक्षत की 10 ढ़िगली करके उनकी स्थापना करते हैं और उसी पट्ट पर उनके वर्ण आदि के अनुसार पुष्प-फल-नैवेद्यादि चढ़ाकर पूजा कर लेते हैं। वही आजकल काष्ठ के पट्ट पर नवग्रह और दशदिक्पाल के चित्र उत्कीर्ण किये हुए तैयार मिलते हैं उन्हीं पर आह्वान एवं पूजा आदि सामग्री चढ़ाते हैं।

इसे ही नवग्रह और दस दिक्पाल पूजा कहते हैं।

इस अनुष्ठान में मन्त्रोच्चार आदि की क्रिया गुरु भगवन्त या विधिकारक के द्वारा की जाती है और पूजादि सामग्री का अर्पण स्नात्रकार अथवा लाभार्थी परिवार द्वारा किया जाता है।

दिक्पाल पूजा की अवधारणा कब से और क्यों?

आमन्त्रित एवं आगन्तुक अतिथि का सत्कार आदि करना सामान्य लोक व्यवहार है। लोकाचार का पालन करने पर आगत अतिथि प्रसन्न और प्रमोदचित्त पूर्वक रहता है और उन्हीं भावों में पुन: लौटता है।

जब दिक्पालों के आह्वान एवं स्थापन की प्रक्रिया का उद्‌भव हुआ तब उनकी तुष्टि हेतु द्रव्योपचार करना भी आवश्यक होने से उनके पूजन की

अवधारणा भी प्रारम्भ हुई। दिक्पाल पूजन की यह अवधारणा जैन परम्परा में 10वीं शती के पश्चात ही अस्तित्व में आई है।

निर्वाणकलिका (पृ. 81-82) के अनुसार दश-दिक्पालों का सचित्र स्वरूप निम्न प्रकार हैं-

इन्द्र देव : पूर्व दिशा का स्वामी

वर्ण : तप्त सुवर्ण सदृश

वस्त्र : पीले

वाहन : ऐरावत हाथी

हाथ में : वज्र धारण

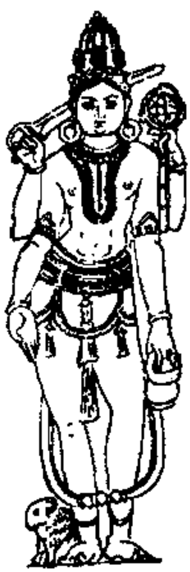

अग्नि देव : आग्नेय दिशा का स्वामी

वर्ण : कपिला (अग्नि जैसा)

वस्त्र : नीले

वाहन : बकरा

हाथ में : शक्ति

यम देव : दक्षिण दिशा का स्वामी

वर्ण : कृष्ण
वस्त्र : चर्म
वाहन : भैंसा
हाथ में : दण्ड

नैऋत देव : नैऋत्य दिशा का स्वामी

वर्ण : हरा
वस्त्र : व्याघ्र चर्म
वाहन : प्रेत
हाथ में : तलवार धारण

वरुण देव : पश्चिम दिशा का स्वामी

वर्ण : श्वेत
वस्त्र : पीला
वाहन : मगर
हाथ में : पाश

वायु देव (पवन) : वायव्य दिशा का स्वामी

वर्ण : श्वेत

वस्त्र : लाल

वाहन : हरिण

हाथ में : ध्वजा

कुबेर देव : उत्तर दिशा का स्वामी

वर्ण : विविध

वस्त्र : सफेद

वाहन : नवनिधि

हाथ में : निचुलक, गदा

ईशान देव : ईशान दिशा के स्वामी

वर्ण : सफेद

वस्त्र : गजचर्म

वाहन : बैल

हाथ में : त्रिशूल

नेत्र : तीन

नागदेव : पाताल लोक के स्वामी

वर्ण : कृष्ण
वाहन : कमल
हाथ में : सर्प

ब्रह्मदेव : ऊर्ध्व लोक के स्वामी

वर्ण : श्वेत
वस्त्र : चार
वाहन : हंस
हाथ में : कमंडलु

नवग्रह देवों का ऐतिहासिक विश्लेषण

सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु– ये सात ग्रह माने जाते हैं। जैन धर्म में इन्हें ज्योतिष देवता के रूप में स्वीकार किया गया है। ये देवता वैयक्तिक जीवन के शुभाशुभ कर्मोदय के समय बाधाओं का परिहार एवं पुण्य वर्धन में निमित्तभूत बनते हैं इसलिए भिन्न-भिन्न प्रकार के पाप कर्म की उपशान्ति के लिए पंच परमेष्ठी एवं चौबीस तीर्थंकरों आदि का जाप किया जाता है। पूर्वाचार्यों ने अपने विशिष्ट श्रुतबल के आधार पर नवग्रह जाप की व्यवस्था प्रदान की है। इसलिए साधकों को मनोयोग पूर्वक इसे स्वीकार करना चाहिए।

जैन साधना में यक्ष-यक्षिणियों, विद्यादेवियों, दिक्पालों आदि की उपासना के साथ-साथ नवग्रह की उपासना भी प्रचलित रही है।

जन सामान्य का यह विश्वास रहा है कि विभिन्न ग्रहों और नक्षत्रों का प्रभाव व्यक्ति की जीवन यात्रा पर पड़ता है और उनके आधार पर ही उसके जीवन में अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में ग्रह और नक्षत्रों के आधार पर व्यक्ति का जीवन चक्र निर्धारित होता है।

जहाँ विज्ञान ने ग्रह-नक्षत्रों को आकाशीय पिण्ड माना है, वहाँ अन्य भारतीय परम्पराओं के समान ही जैन परम्परा ग्रह-नक्षत्रों को देवता के रूप में स्वीकार करती है तथा उन आकाशीय पिण्डों को उन देवों का आवास-स्थल मानती है। इसीलिए वैयक्तिक जीवन के विपत्तियों की समाप्ति और सुख समृद्धि की प्राप्ति के लिए इन ग्रहों की उपासना प्रारम्भ हुई। यद्यपि ग्रहों की इस उपासना का मूलभूत प्रयोजन, वैयक्तिक जीवन में विपत्तियों के शमन के द्वारा भौतिक कल्याण अर्थात इहलौकिक सुख सुविधाओं की प्राप्ति ही रहा है।

यदि ऐतिहासिक अनुशीलन करें तो ज्ञात होता है कि जैन धर्म मूलत: निवृत्ति प्रधान धर्म है इसलिए प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में नवग्रहों की पूजा-उपासना के कोई उल्लेख नहीं मिलते हैं। ग्रहों के प्रभाव के सम्बन्ध में जो प्राचीनतम उल्लेख उपलब्ध हैं वे सूर्यप्रज्ञप्ति (ईसा पूर्व तीसरी दूसरी शती) के हैं। यद्यपि जैन-आगम साहित्य में चन्द्र, सूर्य आदि देवों के रूप में स्वीकृत तो अवश्य है, किन्तु लौकिक मंगल के लिए उनकी पूजा-उपासना के कोई उल्लेख जैनागमों में उपलब्ध नहीं होते हैं।

यह सत्य है कि प्राचीन जैन आगमों में न केवल निमित्त विद्या के उल्लेख उपलब्ध होते हैं अपितु यह भी निर्देश हैं कि केवल गृहस्थ ही नहीं, किन्तु कुछ मुनि एवं आचार्य भी निमित्त शास्त्र में पारंगत होते थे। यद्यपि उन निमित्त-शास्त्रों का सम्बन्ध ग्रह-नक्षत्रों से भी रहा है फिर भी निवृत्ति प्रधान जैन धर्म में ग्रहों की उपासना के कोई निर्देश नहीं मिलते हैं।

यदि मध्यकालीन ग्रन्थों का आलोडन किया जाए तो विधि-विधान सम्बन्धी ग्रन्थों में नवग्रह का पूर्ण स्वरूप सर्वप्रथम निर्वाणकलिका (पृ. 82) में प्राप्त होता है। तदनन्तर 16वीं शती पर्यन्त के सुबोधासामाचारी, विधिमार्गप्रपा, आचार दिनकर आदि में नामोल्लेख के साथ-साथ नवग्रह की आह्वान, स्थापना एवं पूजा विधि भी प्राप्त होती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि जैन मत में नवग्रहों की पूजा-उपासना की परम्परा लगभग आठवीं शती से आज तक यथावत रूप से चली आ रही है। श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं के

प्रतिष्ठा आदि विधानों में नवग्रह की स्थापना और पूजा की परम्परा अपनी समाचारी के अनुसार जीवित है।

यदि स्थापत्य कला की दृष्टि से मनन करें तो नौवीं-दसवीं शताब्दी के आस-पास के मन्दिरों में इनके पट्ट आदि भी प्राप्त होते हैं जैसे पार्श्वनाथ मन्दिर खजुराहो, शान्तिनाथ मन्दिर देवगढ़, महावीर जिनालय धानेराव आदि अनेक स्थानों पर नवग्रह के पट्ट आज भी देखे जा सकते हैं।

नवग्रह की स्थापना-पूजा क्यों और कब?

नवग्रह एवं दश दिक्पाल की स्थापना प्राय: एक साथ की जाती है। इसमें क्रम की अपेक्षा पहले नवग्रह और उसके बाद दिक्पालों का आह्वान किया जाता है। इससे सिद्ध है कि दीक्षा, प्रतिष्ठा, व्रतारोपण, पदस्थापना, ध्वजारोहण, महापूजन आदि बृहद् एवं मंगल विधानों में नवग्रह का आराधन करते हैं।

प्रतिष्ठा के दौरान नवग्रह देवों का स्मरण आदि करने पर दुष्ट ग्रहों की शान्ति होने से वैयक्तिक, पारिवारिक या सामाजिक विघ्न उपस्थित नहीं होते और इससे भूत-प्रेत आदि की बाधा भी दूर हो जाती है। इस प्रकार जिन शासन की महती प्रभावना एवं अशुभ कर्मों का शमन करने के उद्देश्य से यह पूजन किया जाता है।

नवग्रह की स्थापना कहाँ और किसके द्वारा?

यह वर्णन दश-दिक्पाल के समान जानना चाहिए।

निर्वाणकलिका (पृ. 82) के अनुसार नवग्रहों का सचित्र स्वरूप निम्न प्रकार है–

1. सूर्य ग्रह

वर्ण	लाल
हाथ	कमल
वाहन	सात अश्व
अधिपति	पूर्व दिशा

2. चन्द्र ग्रह

वर्ण	श्वेत
दाएँ हाथ में	माला
बाएँ हाथ में	कुंडी
वाहन	दस श्वेत अश्व
अधिपति	वायव्य दिशा

3. मंगल ग्रह

वर्ण	लाल
दाएँ हाथ में	माला
बाएँ हाथ में	कुंडी
अधिपति	दक्षिण दिशा

4. बुध ग्रह

वर्ण	पीला
हाथ	माला,कुंडी
वाहन	राजहंस
अधिपति	उत्तर दिशा

5. बृहस्पति ग्रह

वर्ण	पीला
हाथ	माला, कुंडी
वाहन	हंस
अधिपति	ईशान दिशा

6. शुक्र ग्रह

वर्ण	श्वेत
हाथ	माला, कमंड
वाहन	अश्व
अधिपति	आग्नेय दिशा

7. शनि ग्रह

वर्ण	कृष्ण
मस्तक पर	पीले रंग के लम्बे बाल
हाथ	अक्षसूत्र, कमंडलु
वाहन	बैल
अधिपति	पश्चिम दिशा

8. राहु ग्रह

वर्ण	कृष्ण
देह	अर्ध शरीर
हाथ	फरसी
वाहन	सिंह
अधिपति	नैर्ऋत्य दिशा

9. केतु ग्रह

वर्ण	कृष्ण
हाथ	माला, कुंडी
वाहन	साँप
प्रतिरूप	राहु

क्षेत्रपाल आदि देवों का सचित्र स्वरूप

क्षेत्रपाल देव

प्रत्येक जैन मन्दिर में क्षेत्रपाल की स्थापना अनिवार्य रूप से की जाती है। यह स्थापना उस क्षेत्र के अधिष्ठायक या रक्षक देव के रूप में मणिभद्र, वीरभद्र, भैरव आदि के नाम से करते हैं। क्षेत्रपाल के पाँच नाम हैं– 1. विजयभद्र 2. मणिभद्र 3. वीरभद्र 4. भैरव और 5. अपराजित। इन नामों से स्पष्ट होता है कि जिनालय में भैरव आदि क्षेत्रपाल देव माने जाते हैं। यद्यपि इनका स्वरूप उग्र है किन्तु पूजा के लिए उग्र स्वरूप का आधार सामान्यत: ठीक नहीं होता है अतएव क्षेत्रपाल की पूजा निमित्त शांत प्रतिबिम्ब रखा जाता है।

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों जैन सम्प्रदायों में क्षेत्रपाल की पूजा-आरती समान रूप से मान्य है यद्यपि निज परम्परानुसार पूजा पद्धतियों में किंचित् अन्तर हो सकता है फिर भी प्रतिमा पर सिंदूर लेपन और तेल चढ़ाना– ये विधियाँ दोनों जगह समान है। ये देव तात्कालिक रूप से फलदायक माने जाते हैं। इनकी स्थापना एवं पूजा-अर्चना से मन्दिर के आस-पास की सारी जगह सुरक्षित हो जाती है तथा वहाँ जल्दी से किसी तरह का उपद्रव या अनिष्ट नहीं हो सकता।

जैन परम्परा में शासन देवता के रूप में यक्ष-यक्षिणियों और क्षेत्रपालों के रूप में भैरवों की उपासना आज भी जीवित है। वर्तमान में भोमियाजी, नाकोड़ा भैरव, घण्टाकर्ण महावीर, मणिभद्रवीर आदि यक्ष अति प्रभावक माने जाते हैं।

क्षेत्रपाल की स्थापना मूलनायक प्रतिमा के दाहिनी ओर ईशान कोण से जोड़े हुए दक्षिणाभिमुख (दक्षिण दिशा की तरफ मुख रखते हुए) करनी चाहिए।

क्षेत्रपाल की पूजादि के विषय में यह स्मरण रखना अत्यंत आवश्यक है कि इन देवों का विनयादि व्यवहार एवं पूजादि उपचार जिनेश्वर प्रभु के समान नहीं किया जाता। तीर्थंकर प्रभु की पूजा एवं क्षेत्रपाल देव के सम्मानादि में महत अन्तर है। क्षेत्रपाल की विनय आदि भक्ति साधर्मिक बन्धुवत की जानी चाहिए,

क्योंकि ये हमारे विघ्न निवारण में ही सहायक हैं जबकि जिनेश्वर प्रभु की आराधना सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान एवं सम्यकचारित्र की उत्पत्ति का कारण है तथा परम्परा से मोक्ष का हेतु है इसलिए अरिहंत परमात्मा के प्रति सर्वात्मना समर्पित होकर पूजादि उपचार करने चाहिए। वर्तमान में क्षेत्रपाल आदि देवों को भगवान से अधिक महत्त्व दिया जा रहा है जो सर्वथा अनुचित है।

निर्वाणकलिका (पृ. 82-83) के अनुसार क्षेत्रपाल का स्वरूप इस प्रकार है–

नाम : अपने क्षेत्र के अनुरूप नाम
वर्ण : श्याम
केश : बर्बर
नेत्र : पीले
दाँत : विरूप एवं बड़े
आसन : पादुका पर
रूप : नग्न
भुजा : छह
दाहिने हाथ में : मुद्गर पाश, डमरू
बायें हाथ में : कुत्ता, अंकुश, लाठी

आचारदिनकर में क्षेत्रपाल का निम्न स्वरूप बतलाया गया है।

नाम : कृष्ण, गौर, सुवर्ण, पांडु, भूरे वर्ण
भुजा : बीस
केश : बर्बर तथा बड़ी जटाएँ
यज्ञोपवीत : वासुकी नाग
मेखला : तक्षक नाग
हार : शेष नाग
हाथों में : अनेक भाँति के शस्त्रों का धारण
धार : सिंह चर्म
आसन : प्रेत
वाहन : कुत्ता
नेत्र : मस्तक पर तीन नेत्र

सर्वाह्न यक्ष

सर्वाह्न यक्ष की प्रतिमा तीर्थंकर की प्रतिमाओं के साथ ही बनाई जाती है। इसका दूसरा नाम सर्वानुभूति है। इन नाम के देव अकृत्रिम (शाश्वत) चैत्यालयों में रहते हैं। इस भरत क्षेत्र के मन्दिरों में भी इस यक्ष नाम की स्थापना की जाती है। तिलोयपण्णत्ति में भी तत्सम्बन्धी उल्लेख है। इनका स्वरूप कुबेर की भाँति होता है और ये देव हाथी पर आरूढ़ होकर विचरण करते हैं। ये मुख्य रूप से जिनपूजा आदि चैत्य महोत्सवों की रक्षा करते हैं।

सर्वाह्न का सामान्य स्वरूप यह है–

वर्ण	:	श्याम
वाहन	:	दिव्य गज
भुजा	:	चार
हाथों में	:	दो हाथों से धर्मचक्र को मस्तक पर धारण करते हैं तथा दो हाथ अंजलि बद्ध मुद्रा में है।

मणिभद्र देव

सामान्यत: क्षेत्रपाल देवों में मणिभद्र देव का समावेश हो जाता है किन्तु जैन शासन के प्रभावक देव के रूप में इनकी विशेष मान्यता है।

वर्ण	:	श्याम
वाहन	:	सप्त सूंड वाला ऐरावत हाथी
मुख	:	वराह
दंत पर	:	जिन चैत्य धारण
भुजा	:	छह
बायीं भुजा	:	अंकुश, तलवार, शक्ति
दायीं भुजा	:	ढाल, त्रिशूल, माला

इस अध्याय में देवी-देवताओं के शास्त्रीय स्वरूप की चर्चा करने के बाद उनका स्पष्ट स्वरूप हमारे सामने रेखांकित हो जाता है। तदनुसार सिद्ध होता है कि 24 तीर्थंकरों के शासन रक्षक देवी-देवता, सोलह विद्या देवियाँ, दश दिक्पाल, नवग्रह, क्षेत्रपाल आदि सम्यक्त्वी हैं। इनकी आराधना या उपासना

करके श्रावक का सम्यक्त्वव्रत दूषित नहीं होता, परन्तु यदि परमात्मा से भी अधिक इनको प्रमुखता दी जाए अथवा मात्र इन्हीं की आराधना की जाए तो यह सर्वथा अनुचित है। वर्तमान में भोमियाजी, भैरूजी, मणिभद्रवीर, पद्मावती देवी आदि के प्रति लोगों की श्रद्धा स्वार्थ वृत्ति के कारण अतिरेक को पार कर रही है। कई लोग ऐसे हैं जो तीर्थों पर जाकर परमात्मा के दर्शन करें या न करें उन्हें कोई फरक नहीं पड़ता, परन्तु इन देवी-देवताओं की आराधना होनी चाहिए क्योंकि वे मनोकामनाओं को पूर्ण करते है।

यदि इस विषय में सूक्ष्मता से चिन्तन किया जाए तो सामान्य लोक व्यवहार है कि बाप और बेटा दोनों उपस्थित हो तो पहले पिता का सम्मान होता है फिर पुत्र का। जहाँ उच्च अधिकारी स्वयं आपका मित्र हो तो आप चपरासी की चापलुसी नहीं करते तो फिर शाश्वत सुख के दाता परमात्मा के समक्ष हम उन्हीं के सेवक का अधिक सम्मान करें, यह कहाँ तक उचित है? यद्यपि परमात्मा को इससे कोई फरक नहीं पड़ता क्योंकि वे तो वीतरागी हैं। परन्तु जैन धर्म जहाँ संसार समाप्ति की शिक्षा देता है वहाँ सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए देवी-देवताओं के पूजन को बढ़ावा देना कहाँ तक सही है? यह निश्चित विचारणीय है। जिन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को समझते हुए अपनी विचारधारा को सम्यक बनाएं यही प्रयास इस अध्याय के माध्यम से किया गया है।

सन्दर्भ-सूची

1. *त्रिकालवर्ती महापुरुष, पृ. 140-149 बृहत् शान्ति धारा*
2. *आचार दिनकर के अनुसार दो हाथ हैं, जिसमें दाएं हाथ में शक्ति एवं बाएं हाथ में कमल धारण किया हुआ है।*
3. *आचार दिनकर के अनुसार दो हाथों में श्रृंखला और गदा।*
4. *आचार दिनकर के अनुसार खड्ग, वज्र, ढाल, भाला।*
5. *आचार दिनकर के अनुसार दो हाथों में खड्ग और ढाल।*
6. *आचार दिनकर के अनुसार दो हाथों में गदा और वज्र।*
7. *आचार दिनकर के अनुसार कृष्ण वर्ण।*
8. *आचार दिनकर के अनुसार दो हाथों में मूसल और व्रज।*
9. *आचार दिनकर के अनुसार बिल्ली का वाहन तथा ज्वाला युक्त दो हाथ।*

10. *आचार दिनकर के अनुसार बिल्ली का वाहन।*
11. *ग्रन्थान्तर से नील।*
12. *आचार दिनकर के अनुसार श्वेत वर्ण।*
13. *आचार दिनकर के अनुसार सिंह का वाहन।*
14. *आचार दिनकर के अनुसार हाथों में खड्ग, ढाल, सर्प, वरदान।*
15. *आचार दिनकर के अनुसार बाएं हाथ में धनुष-ढाल तथा दाएं हाथ में खड्ग-बाण।*
16. *आचार दिनकर के अनुसार कंचन वर्ण।*
17. *आचार दिनकर के अनुसार दो हाथों में वज्र और वरदान।*
18. *आचार दिनकर के अनुसार मगर का वाहन।*
19. *आचार दिनकर के अनुसार दो हाथों में तलवार और वरदान।*

●

अध्याय—17

उपसंहार

जिनमंदिर विषयक विधि-विधानों में प्रतिष्ठा अति महत्त्वपूर्ण विधान है। जिस प्रकार बालक के बिना राजमहल भी सूना प्रतीत होता है वैसे ही परमात्मा से रहित ग्राम, नगर एवं घर भी विरान रेगिस्तान से लगते हैं। प्रतिष्ठा विधान के द्वारा व्यवहार में तो जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा होती है किन्तु निश्चय से भक्त के हृदय में जिनेश्वर परमात्मा एवं जिनाज्ञा की स्थापना होती है।

प्रश्न हो सकता है कि हृदय में ही यदि परमात्मा की स्थापना कर दी जाए तो फिर जिनालय आदि की क्या आवश्यकता है?

मनुष्य के मन को समय से भी अधिक गतिशील माना गया है। मन चंचल घोड़े की भाँति सर्वत्र घूमता रहता है। उसे एक स्थान या एक विषय पर स्थिर करना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। शास्त्रों के अनुसार मनुष्य का मन एक विषय पर अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक स्थिर नहीं रह सकता तो फिर बिना किसी आलम्बन के परमात्मा की स्थापना मन में कब तक स्थिर रह सकती है? जिन प्रतिमा द्वारा साधक को आत्मार्थी बनने का श्रेष्ठ आलम्बन प्राप्त होता है तथा एक सकारात्मक ऊर्जा का अनुभव होता है।

जिनालय बिजली घर की भाँति शक्ति का संग्रहालय है तथा जिनप्रतिमा उस ऊर्जा का स्रोत। जिस प्रकार स्वीच ऑन करने से बत्ती जलती है, वैसे ही प्रतिष्ठा अनुष्ठान जिनप्रतिमा में दिव्य शक्ति का संचार कर उसे जीव के आध्यात्मिक उत्थान में सहयोगी बनाता है। भक्त और भगवान का सम्बन्ध जोड़ने में प्रतिष्ठा विधान सेतु का काम करता है।

द्रव्य आलम्बन के द्वारा अंततोगत्वा मन में भी परमात्मा की स्थापना हो जाती है, परन्तु सर्वप्रथम तो द्रव्य आलम्बन आवश्यक है और जीव को निज स्वरूप का भान करवाने के लिए जिनप्रतिमा श्रेष्ठ आलम्बन है। अतः जिनप्रतिमा एवं जिनालय की बाह्य द्रव्य स्थापना अत्यन्त आवश्यक है।

पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिष्ठा की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। उनके अनुसार मात्र विधिपूर्वक जिनप्रतिमा की स्थापना करना ही प्रतिष्ठा नहीं है। जिनप्रतिमा में

आत्म गुणों का आरोपण तो मात्र उपचार रूप है यथार्थत: तो स्वयं में वीतरागत्व आदि भावों की स्थापना की जाती है। इसी के साथ प्रतिष्ठाकर्ता आचार्य आदि की साधना शक्ति का आरोपण भी जिन प्रतिमा में होता है और इन्हीं गुणों एवं शक्ति संचार के कारण प्रतिमा पूजनीय बन जाती है।

प्रतिष्ठा जब इतना प्रभावशाली अनुष्ठान है तो फिर प्रतिष्ठाकर्ता आचार्य एवं प्रतिष्ठा कारक गृहस्थ आदि में भी विशेष योग्यता होनी चाहिए। वर्तमान में विधिकारकों द्वारा प्रतिष्ठा करवाना कितना उचित है?

शास्त्रकारों ने प्रतिष्ठा कर्ता आचार्य, जिनमंदिर निर्माता गृहस्थ, शिल्पी आदि के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया है। प्रतिष्ठाचार्य का आचरण एवं साधना पक्ष जितना सुंदर, सम्यक और सरस होता है प्रतिष्ठा उतनी ही प्रभावशाली और कल्याणकारी बनती है। जिन मंदिर निर्माता के द्वारा प्रयुक्त द्रव्य न्यायोपार्जित एवं शुद्ध हों तथा भावों में यदि निर्मलता हो तो वह जिनमंदिर दर्शनार्थियों के शुभ भावों को उत्पन्न करने में भी निमित्तभूत बनता है। शिल्पी के द्वारा जितनी प्रसन्नता एवं मनोयोगपूर्वक प्रतिमा का निर्माण किया जाता है, प्रतिमा में उतनी सौम्यता एवं सुन्दरता के दर्शन होते हैं और मन प्रसन्नचित्त बनता है। अत: इन सबका तद्योग्य होना अत्यन्त आवश्यक है।

वर्तमान के प्रतिष्ठा आयोजनों पर दृष्टिपात करें तो ये सभी पक्ष गौण होते नजर आ रहे हैं। आज प्रतिष्ठा अनुष्ठानों की सफलता का निर्णय प्रतिष्ठा में एकत्रित द्रव्य, जन समुदाय एवं प्रतिष्ठा की भोजन व्यवस्था आदि के आधार पर किया जाता है। जितनी महंगी प्रतिष्ठा हो वह उतनी अच्छी, फिर उसमें चाहे जिनवाणी गौण ही क्यों न हो जाए। रात्रि में भट्ठी जलना, भक्ष्य-अभक्ष्य का अविवेक, बरफ, द्विदल, बासी का तो खुले आम प्रयोग होता है। आजकल आयोजित होने वाले रात्रि भक्ति के कार्यक्रम आध्यात्मिक रस की अपेक्षा फिल्मी माहौल से अधिक युक्त होते हैं।

वर्तमान में साधु-साध्वियों की घटती संख्या एवं उनकी आचार मर्यादाओं के कारण प्रतिष्ठा अनुष्ठान विधिकारकों द्वारा सम्पन्न करवाए जाते हैं। जब आचार्य आदि मुनि भगवंत जिनका आचरण पक्ष गृहस्थ की अपेक्षा बहुत अधिक सुदृढ़ होता है उनके लिए भी कई नियमों का प्रावधान है तब फिर गृहस्थ विधिकारक का आचरण एवं साधना पक्ष कैसे गौण किया जा सकता है। विधिकारक की प्रसिद्धि के साथ उसकी परमात्म भक्ति एवं जिनाज्ञा पालन पक्ष पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

प्रतिष्ठा सम्बन्धी कई आवश्यक तत्त्व एवं नियम हैं। जिनका पालन होने पर प्रतिष्ठा की आध्यात्मिक एवं धार्मिक उपलब्धि और प्रतिमा की प्रयोजनीयता सिद्ध होती है।

यह नियम शास्त्रविहित है कि जिनमंदिर एवं जिनबिम्ब का निर्माण होने के बाद दस दिनों में प्रतिष्ठा करवा देनी चाहिए, वरना वहाँ व्यन्तर, भवनपति आदि देवों का वास हो जाता है। पर आजकल श्रीसंघ के विशेष उपकारी साधु-साध्वियों की प्रतीक्षा में वर्षों तक प्रतिष्ठा कार्यक्रम लटकते रहते हैं या फिर ट्रस्टियों के कारण कार्यक्रम स्थगित होते रहते हैं। उपकारी एवं प्रेरणादाता गुरु भगवंतों की निश्रा हेतु प्रयास अवश्य करना चाहिए पर उसके लिए आग्रह रखना कि आप आएंगे तो ही प्रतिष्ठा होगी सर्वथा अनुचित है। साधु-साध्वी एवं गृहस्थ वर्ग को इस विषय में जागृत होना जरूरी है। कई बार इन कारणों से भी विघ्न उपस्थित होते हैं।

आजकल मुहूर्त्त आदि के विषय में भी लापरवाही देखी जाती है क्योंकि हर व्यक्ति अपनी सुविधा को प्रमुखता देता है। प्रतिष्ठा का श्रेष्ठतम मुहूर्त्त प्राप्त करने की अपेक्षा, छुट्टी है या नहीं? मुख्य ट्रस्टियों के घर में शादी तो नहीं है? साधु-साध्वी उपस्थित हो पाएंगे या नहीं? आदि कई पक्षों का अधिक ध्यान रखा जाता है। इस कारण कई बार प्रतिष्ठा आदि उतने श्रेष्ठ मुहूर्त्त में सम्पन्न नहीं करवाई जाती। जिससे भविष्य में उसके उतने सुफल प्राप्त नहीं होते तथा विघ्न आदि उपस्थित होते रहते हैं।

प्रतिष्ठा का प्रभाव, ग्राम, नगर, राष्ट्र आदि सभी पर पड़ता है अत: वह समस्त जगत के लिए कल्याणकारी बने इस ध्येय से प्रत्येक क्रियानुष्ठान सम्पन्न किया जाना चाहिए। प्रतिष्ठा हेतु ग्रन्थों में वर्णित बारह कर्तव्य जैसे- मुहूर्त्त निर्णय, राज्य पृच्छा, भूमि शुद्धि, मण्डप निर्माण आदि का सम्यक रूप से पालन किया जाए तो एक सुनियोजित, सफल एवं निर्विघ्न कार्यक्रम का आयोजन किया जा सकता है।

जिनमंदिर एवं जिनबिम्ब निर्माण के विषय में कई नियमों का उल्लेख शास्त्रों में प्राप्त होता है। वर्तमान में बढ़ती आबादी, महंगाई और जमीनों के बढ़ते दाम के कारण मंदिरों के लिए मनचाही भूमि प्राप्त करना मुश्किल है। पर जब घर बनाना होता है तो उसके लिए मनचाहा स्थान तलाश कर ही लेते हैं। भूमि का प्रभाव हमारे मन, मस्तिष्क एवं स्वास्थ्य पर देखा जाता है। कई बार व्यन्तर देवों आदि से भूमि अधिवासित होने पर वहाँ अनेक प्रकार के उपद्रव

उत्पन्न होते हैं। वहीं निर्मल भूमि सृजन विशुद्ध भावों का सृजन करती है एवं पुण्य में भी वर्धन करती हैं। जिन मंदिर सार्वजनिक संपत्ति है इसलिए उसके सुप्रभाव या दुष्प्रभाव भी सम्पूर्ण संघ पर देखे जाते हैं। इसी के साथ जिनमंदिर एक स्थायी संपत्ति एवं सांस्कृतिक धरोहर है। हमारे घरों की भाँति स्वेच्छा अनुसार उनका पुनः निर्माण बार-बार संभव नहीं है अतः उसके लिए उत्कृष्ट कोटि के द्रव्य का उपयोग होना चाहिए। जिनमंदिर निर्माण हेतु भूमि शुद्धि, दल शुद्धि, चूना, ईंट, पत्थर आदि की शुद्धि, भृतकानति संस्थान-कर्मचारी वर्ग की प्रसन्नता, स्वाशय वृद्धि-शुभ भावों में वृद्धि एवं यतना– इन पाँच नियमों का पालन जरूरी है। शास्त्रोक्त विधि से निर्मित जिनमंदिर अधिक मजबूत एवं प्रभावी होते हैं।

जिनप्रतिमा जिनमंदिर की आभा है, जैसे आत्मा के बिना शरीर का कोई मूल्य नहीं है वैसे ही जिनप्रतिमा के बिना जिनमंदिर का भी कोई मूल्य नहीं है। जिनप्रतिमा जितनी प्रभावी होती है दर्शनार्थियों का मन उतना ही जुड़ता है अतः मूर्ति का सही निर्माण होना अत्यन्त आवश्यक है।

मूर्ति निर्माण यद्यपि शिल्पी के द्वारा होता है परन्तु बिम्ब निर्माण हेतु उचित पाषाण (पत्थर) का चयन, सदाचारी, कर्म कुशल, अनुभवी, निर्लोभी शिल्पी का शोधन आवश्यक है। श्रावक को सदा शिल्पी का उत्साह वर्धन करते रहना चाहिए तथा अपनी आय के अनुसार उदार भाव से मूर्ति घड़न का शुल्क देना चाहिए, जिससे शिल्पी प्रसन्नचित्त होकर मूर्ति का निर्माण कर सके। जैसे माता के स्वभाव एवं आचरण का प्रभाव गर्भस्थित बालक पर पड़ता है वैसे ही शिल्पी के भावों के अनुसार जिन प्रतिमा में प्रभाव उत्पन्न होता है। वर्तमान में प्रसिद्ध मूर्ति भंडारों से निर्मित मूर्तियाँ ले ली जाती हैं या देकर बनवाई जाती हैं। परन्तु यहाँ भी मूर्ति निर्माता शिल्पी आमिष भोजी एवं व्यसनी न हो यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए। जिनप्रतिमा का सर्वोत्तम फल प्राप्त करने हेतु प्रतिष्ठा कारक श्रावक और नगर आदि नामों के साथ तीर्थंकर का राशि मिलान करना चाहिए।

यहाँ शंका होती है कि प्रतिष्ठा-अंजनशलाका के पूर्व पंच कल्याणक महोत्सव के आयोजन का क्या अभिप्राय है?

यह व्यावहारिक तथ्य है कि हम जब भी कोई वस्तु खरीदते हैं तो उससे पूर्व उसके विषय में सम्पूर्ण जानकारी करते हैं, ताकि उस वस्तु का पूर्ण उपयोग कर पाएं। इसी प्रकार नगर में जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा करने से पूर्व उनके विषय में सम्पूर्ण ज्ञान करने हेतु कल्याणक महोत्सव एक अनुपम प्रक्रिया है।

कल्याणक अर्थात परमात्मा के जीवन की विशिष्ट घटनाएँ। परमात्मा का जीवन सम्पूर्ण जगत के लिए एक आदर्श चरित्र है तथा जीवन जीने की कला सिखाने हेतु सर्वश्रेष्ठ मार्गप्रदर्शक है। परमात्मा के जीवन के विषय में जानने के पश्चात उनके प्रति स्वयमेव श्रद्धा के भाव अभिवृद्ध होने लगते हैं। परमात्मा को देखते ही अन्तरंग में आल्हाद एवं अहोभाव प्रस्फुटित होते हैं। जिससे जीव अनन्त कर्मों की निर्जरा कर परमात्म अवस्था की ओर शीघ्र अग्रसर हो सकता है। किसी कवि ने कहा है– "कल्याणक थी कल्याण" कल्याणक, यह कल्याण का मंगल स्रोत है। परमात्मा ने जन्म से लेकर मृत्यु तक कैसे जीवन जिया? कैसे अपने कर्तव्यों का निर्वाह किया? सम एवं विषम परिस्थितियों में स्वयं को कैसे समत्व भाव से युक्त रखा? न उपकारी के प्रति राग किया न अपकारी के प्रति द्वेष। इन सबको जानने एवं समझने हेतु पंचकल्याणक महोत्सव एक अभिष्ट अनुष्ठान है। कल्याणक की महिमा का वर्णन करते हुए शास्त्रकार कहते हैं–

सयल जिणेसर पायनमी, कल्याणक विधि तास।
वर्णवतां सुणतां थकां, संघनी पूरे आस।।

पंच कल्याणक की मात्र प्रत्यक्ष आराधना ही नहीं अपितु परोक्ष रूप में उसका वर्णन और श्रवण भी समस्त आशाओं को पूर्ण करता है। इसीलिए प्रतिष्ठा-अंजनशलाका आदि अनुष्ठानों से पूर्व पंच कल्याणक उत्सव का आयोजन किया जाता है। ताकि नगरवासीजन अहोभाव पूर्वक परमात्मा को अपना स्वामी समझकर उनकी भक्ति कर सकें।

कुछ लोगों के मन में प्रश्न हो सकता है कि परमात्मा की स्थापना मात्र करने के लिए इतने अधिक विधि-विधानों का विधिपूर्वक पालन क्यों आवश्यक है? यहाँ प्रमुखता तो वैसे भी भावों को दी गई है। जिन धर्म भाव प्रधान है और प्रतिष्ठा में भी भावों की प्रमुखता रहती है पर द्रव्य क्रियाओं का भी अपना स्थान एवं महत्त्व है। कोई भी क्रिया विधि पूर्वक सम्पन्न करने पर ही अभीष्ट फलदायक होती है। केवल एक प्याली चाय बनानी हो या एक कटोरी हलवा बनाना हो तो उसकी भी सम्यक विधि क्रमानुसार ज्ञात होना आवश्यक है। हलवा बनाने की सम्पूर्ण विधि का पालन किया जाए और यदि शक्कर के स्थान पर नमक डाल दिया जाए तो क्या होगा? चाय बनाते हुए चाय पत्ती के प्रमाण में मसाला और मसाले के स्थान पर शक्कर डाल दी जाए तो क्या होगा? क्या यह चीजें किसी

के भी उपयोगी बनेगी? नहीं न! वैसे ही प्रतिष्ठा विधि-विधानों का भी विधिपूर्वक किया जाना अत्यंत आवश्यक है तथा इनका पालन करने से अचिंत्य लाभ की प्राप्ति होती है।

प्रतिष्ठा-अंजनशलाका में अठारह अभिषेक करवाए जाते हैं इसका मूल हार्द क्या है?

अभिषेक यह तीर्थंकर परमात्मा के जन्मकल्याणक महोत्सव का अनुकरण है। परमात्मा का साक्षात जन्मोत्सव मनाते समय हजारों देवी-देवता गण विभिन्न तीर्थों एवं सरोवरों के जल से प्रभु का अभिषेक करते हैं। आज हमारा सामर्थ्य उतनी नदियों से जल लाने का नहीं है। अत: अठारह प्रकार के भिन्न-भिन्न जलों द्वारा महाभिषेक किया जाता है। इन जलों में मिश्रित औषधियों के प्रभाव से पत्थर में आंतरिक दूषण हो तो प्रकट हो जाते हैं। जिनबिम्ब निर्माण के समय अथवा उसे निर्माण स्थल आदि से लाते समय कोई आशातना हुई हो, अथवा मंदिर के वातावरण में गृहस्थ के अविवेक या मलीन परिणामों के कारण कोई अशुद्धि व्याप्त हो गई हो तो उसका निवारण भी इससे हो जाता है। इससे वातावरण शुद्ध, सुगंधित एवं आह्लादजनक बनता है। अभिषेक कर्ता व्यक्ति भी मानसिक स्थिरता, आध्यात्मिक उच्चता एवं शारीरिक स्वस्थता को प्राप्त करता है। कई लोग न्हवण जल को महाप्रभावी मानकर उसे घर में रखते हैं तथा विशेष प्रसंग या संकट के समय में उसका प्रयोग करते हैं क्योंकि प्रतिमा से निकलती हुई सकारात्मक ऊर्जा प्रक्षाल जल में अभिसंचरित हो जाती है।

प्रतिष्ठा सम्बन्धित ऐसे अनेक विधि-विधान हैं जिनके विषय में शंकाएँ उपस्थित होती रहती हैं जैसे– जवारारोपण, कुंभस्थापना, कलशारोहण, अधिवासना आदि अनुष्ठान क्यों किए जाते हैं? इनका वैशिष्ट्य क्या है? इन अनुष्ठानों का जीवन एवं मंदिर पर क्या प्रभाव पड़ता है? आदि कई प्रश्नों के समाधान करने का प्रयत्न इस कृति में किया गया है।

परिवर्तन यह प्रकृति का एक अटल नियम है। देश-काल परिस्थिति के अनुसार धर्म के क्षेत्र में भी अनेक परिवर्तन कभी लोकव्यवहार वश, तो कभी सामाजिक रीति-रिवाजों के प्रभाव से आए। अन्य धर्मियों द्वारा जैन धर्म स्वीकार करने के कारण भी कई परिवर्तन दोनों संस्कृतियों के मिश्रण के कारण आए। विवाह प्रसंगों में होने वाले अनेक मांगलिक उत्सवों का प्रवेश भी शनै: शनै: प्रतिष्ठा प्रसंगों में हुआ जैसे– पौंखण करना, कंकण डोरा बांधना, मेंहदी वितरण, लवण उतारना आदि।

जैन धर्म वीतराग उपासक धर्म है। यहाँ पर ईश्वर कर्तृत्व को मान्य नहीं किया गया है। सभी जीव अपने-अपने कर्म अनुसार फल प्राप्त करते हैं। किन्तु वर्तमान में देवी-देवताओं की भक्ति के प्रति लोगों के बढ़ते रूझान से जैन धर्म भी अछुता नहीं है। जैन शास्त्रों में भी सम्यक्त्वी देवी-देवताओं का वर्णन प्राप्त होता है तथा कई स्थानों पर उनके पूजन करने या उनसे स्वीकृति प्राप्त करने का विधान उल्लेखित है। उपाश्रय, कूप, तालाब, जिनालय आदि का निर्माण करने से पूर्व क्षेत्रपाल आदि की आज्ञा ली जाती है अथवा स्थापना की जाती है। प्रश्न उपस्थित होता है कि आखिर ऐसा क्यों?

आचार्य जयसेन इस शंका का समाधान करते हुए कहते हैं कि जिस स्थान पर निर्माण कार्य करना हो उस स्थान के स्वामी देवों से क्षमायाचना कर आदर पूर्वक उन्हें संतुष्ट करना चाहिए तथा आज्ञा प्राप्त करके मंगल कार्य में अतिथि रूप में आमंत्रित करना चाहिए। यह एक सामान्य लोक व्यवहार है। क्योंकि जीव जहाँ रहता है, उस स्थान के प्रति सहज राग उत्पन्न हो जाता है। उस स्थान का छूटना या किसी ओर का वहाँ आना उसे गवारा नहीं होता। अत: पूर्व में ही उन्हें संतुष्ट एवं प्रसन्न करने से वे कार्य में बाधा उपस्थित नहीं करते अपितु सहायक बनते हैं। जैन दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण मध्यलोक में व्यंतर देवों का निवास है और इसी कारण साधु-साध्वी एक तिनका उठाने से पहले भी तत्भूमि सम्बन्धी देवों की आज्ञा लेते हैं। सम्यक्त्वी देवी-देवता स्वयं वीतराग उपासक होते हैं। परमात्म भक्ति के कार्यों में आमंत्रित करने पर वे प्रसन्न, संतुष्ट एवं आनंदित होते हैं। उन्हें एक साधर्मिक रूप में ही ऐसे कार्यों में आमंत्रित किया जाता है।

वर्तमान में देवी-देवताओं की चमत्कारिक सिद्धियों की वजह से उनके प्रति बढ़ता आकर्षण एवं उनकी पूजा-उपासना अवश्य विचारणीय है। प्रस्तुत कृति में ऐसे अनेक तथ्यों पर शास्त्रीय, प्रासंगिक एवं समालोचनात्मक अध्ययन पाठक वर्ग की अपेक्षा से किया गया है। इसी क्रम में प्रतिष्ठा अनुष्ठान को रोचक एवं नव्य रूप देकर सत्रह अध्यायों के माध्यम से प्रतिष्ठा विधि और उससे सम्बन्धित विभिन्न क्रिया कलापों पर मौलिक दृष्टि से भी विचार करने का प्रयास किया गया है।

●

परिशिष्ट

जिन प्रासाद सम्बन्धी विभाग-उपविभाग आदि के संकेतार्थ

अण्डक : लघु शिखर की एक डिजाइन, श्रृंग, शिखर, आमलसार, कलश का पेटा, ईडा

अंतर पत्र : केवाल और कलश इन दोनों थरों के मध्य का अन्तर।

अंतराल : गर्भगृह और मंडप के मध्य का भाग

अग्रमण्डप : प्रवेश मंडप, मुख मंडप

अनुग : कोने के समीप का दूसरा कोना।

अतिभंग : जिसमें अत्यधिक वक्रता हो।

अंधकारिका : परिक्रमा, प्रदक्षिणा, अंधारिका

अधिष्ठान : मन्दिर की गोटेदार चौकी

अश्व थर : अश्वों की पंक्ति

अष्टापद : चारों दिशाओं में आठ-आठ सीढ़ी वाला पर्वत

अर्धचन्द्र : प्रासाद की देहली के आगे की अर्ध गोल आकृति

अलिन्द : बरामदा, दालान

अवलम्ब : ओलम्मा, रस्सी से बंधा हुआ लोहे का छोटासा लट्टु, जिसे शिल्पी निर्माण कार्य करते समय अपने पास रखता है।

अष्टास्रक : आठ कोना वाला स्तम्भ।

अस्र : कोना, हद

अर्धमण्डप : एक खांचे वाला स्तम्भ आधारित मण्डप, जो प्रायः प्रवेश द्वार से संयुक्त होता है।

आगार : देवालय, घर, स्थान।

आमलसार : शिखर के स्कन्ध के ऊपर कुम्हार के चाक जैसा गोल कलश

आमलसारिका : आमलसार के ऊपर चन्द्रिका के ऊपर की गोलाकृति

आयतन : देवालय

आरात्रिक : आरती

आलय : गृह देवालय

आसन पट्ट : बैठने का आसन, तकिया, चैत्य गवाक्ष (छज्जेदार) आक समतल गोटा।

आयाग पट्ट : जैन मूर्तियों और प्रतीकों से अंकित शिला पट।

आय : इसके द्वारा गृहादिक का शुभाशुभ देखा जाता है।

इन्द्रकील : स्तंभिका जो ध्वजा दण्ड को मजबूत रखने के लिए साथ रखा जाता है।

इष्टिका : ईंट, इष्टका

उदय : ऊँचाई

उच्छ्राय : ऊँचाई

उत्क्षिप्त : गुम्बज का ऊँचा उठा हुआ चन्दोवा, छत।

उत्तरंग : द्वार शाखा के ऊपर का मथाला।

उत्तानपट्ट : बड़ा पाट

उत्सेध : ऊँचाई

उद्गम : चैत्य तोरणों की त्रिकोणिका जो सामान्यतः देव कोष्ठों पर शिखर की भाँति प्रस्तुत की जाती है।

उदुम्बर : द्वार शाखा का निचला भाग, देहरी, देहली

उद्गम : प्रासाद की दीवार का आठवाँ थर, जो सीढ़ी के आकार वाला है।

उद्भिन्न : चार प्रकार की आकृति वाली छत, छत का एक भेद।

उप पीठ : दक्षिण भारतीय अधिष्ठान के नीचे का उप अधिष्ठान।

उपान : दक्षिण भारतीय अधिष्ठान के सबसे नीचे का भाग या पाया, जो उत्तर भारतीय खुर से मिलता जुलता है।

उरुश्रृंग : मध्यवर्ती क्षेत्र से संयुक्त कंगूरा, शिखर के भद्र के ऊपर चढ़ाये हुए श्रृंग, छातिया श्रृंग।

ऊर्ध्वार्चा : खड़ी मूर्ति

कपोत : कार्निश की तरफ का नीचे की ओर झुका हुआ गोटा, जो सामान्यतः चौकी (अधिष्ठान) के ऊपर होता है।

कणक : कणी, जाड्यकुम्भ और कणी, दो थर वाली प्रासाद की पीठ।

कणाली : कणी नाम का थर
कपिली : शुक नास के दोनों तरफ शिखराकृति मंडप, अंतराल मंडप।
कपोताली : केवाल थर, कपोतिका।
करोटक : गुम्बज
कर्ण : कोना, पट्टी, सिंह कर्ण, कोना प्रक्षेप, कोण प्रस्तर।
कर्णक : थरों के ऊपर-नीचे रखी जाने वाली पट्टी।
कर्ण कूट : कर्ण या कोने के ऊपर निर्मित लघु मंदिर या कंगूरा।
कर्ण गूढ़ : छिपा हुआ कोना, बन्द कोना।
कर्ण श्रृंग : कर्ण या कोने पर निर्मित कंगूरा
कर्णिका : थरों के ऊपर नीचे की पट्टी, छोटा कोना, कोण और प्ररथ के बीच में कोणी का फालना, असिधार की तरह का गोटा, पतला पट्टी जैसा गोटा।
कर्ण दर्दरिका : गुम्बज की ऊँचाई में निचला थर
कर्ण सिंह : प्रासाद के कोने पर रखा सिंह
कर्णाली : कणी, जाड्यकुम्भ के ऊपर का थर।
कर्म / क्रम : श्रृंगों का समूह
कलश : पुष्प कोश के आकार का गोटा जिसका आकार घट के समान होता है। दक्षिण भारतीय शैली में स्तम्भ शीर्ष का सबसे नीचे का भाग।
कलशाण्डक : कलश के पेट
कला : रेखा विशेष
कलास्र : सोलह कोने
कामदपीठ : गज आदि थरों से रहित पीठ।
कीर्ति वक्त्र : ग्रास मुख
कीर्ति स्तम्भ : विजय स्तम्भ तोरण वाले स्तम्भ।
कीर्ति मुख : सिंह के शीर्ष की बनावट वाली प्रतीकात्मक डिजाइन।
कायोत्सर्ग : खड्गासन, तीर्थंकर की खड़ी प्रतिमा।
कीलक : कील, खूंटा
कुंचिता : प्रासाद के 3/10 भाग के मान की कोली।

कुम्भ	:	मन्डोवर का दूसरा थर, कलश, अधिष्ठान का खुर के ऊपर का एक गोटा, दक्षिण भारतीय स्तम्भ शीर्ष का एक ऊपरी भाग।
कुंभिका	:	स्तम्भ की अलंकृत चौकी, स्तंभ के नीचे की कुंभी।
कूटच्छाय	:	छज्जा
कूर्म	:	स्वर्ण या रजत का कछुआ जो नींव में रखा जाता है।
कूर्मशिला	:	कछुए के चिन्ह वाली धरणी शिला।
केसरिन	:	पाँच श्रृंग वाला प्रासाद
कोटर	:	पोलापन, पोला भाग
कोल	:	गुम्बज की ऊँचाई में गज़ तालू थर के ऊपर का थर।
आण	:	खण्ड, विभाग
क्षिप्त	:	लटकती हुई छत
क्षेत्र	:	प्रासाद तल
क्षोभ	:	कोनी
कनीयस	:	लघु, छोटा
क्षेत्रपाल	:	अमुक मर्यादित भूमि का देव।
कुडू(तमिल)	:	चैत्य गवाक्ष
कट्टू(तमिल)	:	स्तम्भ के ऊपर के तथा नीचे के दो चतुष्कोण भागों के बीच का अष्टकोण वाला भाग।
खण्ड	:	विभाग, मंजिल
खर शिला	:	जगती के दासा के ऊपर तथा भिट्ट के नीचे बनी हुई प्रासाद को धारण करने वाली शिला।
खात	:	भवन की नींव
खुर	:	प्रासाद की दीवार का प्रथम खर, अधिष्ठान का सबसे नीचे का गोटा, खुरक, खुरा।
खत्तक	:	अत्यंत अलंकृत प्रक्षिप्त आला, गवाक्ष सदृश।
गगारक	:	देहरी के आगे अर्धचन्द्राकृति के दोनों ओर फूलपत्ती वाली आकृति।
गजतालू	:	छत का एक अवयव जो मंजूषाकार सुई के अगले भाग के

		समान होता है, गुम्बज की ऊँचाई में रुपकण्ट के ऊपर की थर।
गजथर	:	गजों की पंक्ति
गजपृष्ठाकृति	:	अर्धवृत्ताकार, गजपृष्ठ के आकार का मन्दिर।
गजधर	:	देवालय एवं भवन निर्माता शिल्पी।
गंडान्त	:	तिथि, नक्षत्र आदि की संधि का समय।
गर्भकोष्ठ	:	गर्भगृह का भीतरी भाग।
गर्भगृह	:	मन्दिर का मूल भाग, गर्भ गर्भालय, गेह।
गव्हर	:	गुफा
गुण	:	रस्सी, डोरी।
गूढ़ मण्डप	:	गूढ़, दीवार वाला मंडप।
गृह	:	मकान, घर, भवन, आलय।
गेह	:	गर्भगृह।
गोपुर	:	किला के द्वार के ऊपर का गृह, मुख्य द्वार, प्रासाद के अग्रभाग में किले का सुन्दर दरवाजा।
ग्रास पट्टी	:	कीर्ति मुखों की पंक्ति,ग्रास के मुख वाला दासा।
ग्रन्थि	:	गांठ
ग्रास	:	जलचर प्राणी विशेष
ग्रीवा	:	शिखर का स्कंध और आमलसार के बीच का भाग, मुख्य शिखर के नीचे का भाग।
ग्रीवा पीठ	:	कलश के नीचे का गला
गूमट	:	घण्टा, मन्दिर के ऊपर की छत।
घट	:	कलश, आमलसार।
घण्टा	:	कलश, आमलसार, गूमट।
घण्टिका	:	छोटी आमलसारिका, संवरणा के कलश।
घट पल्लव	:	पल्लवांकित घट की डिजाइन।
चतुर्मुख	:	चौमुख, सर्वतोभद्र, मंदिर का ऐसा प्रकार जो चारों दिशाओं में खुला होता है।
चतु:शाल	:	घर के चारों तरफ का दालान।

चतुर्विंशति पट : ऐसा पट्ट, जिसमें चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हों।
चतुस्की : खांचा, चौकी, चार स्तम्भों के मध्य का स्थान, चत्वर।
चतुरस्र : वर्गाकार, सम चौरस, चतुष्किका।
चण्ड : शिव का गण, जिसके द्वारा स्नात्रजल उसके मुख तक जाकर पीछे गिरता है। इससे जल उल्लंघन का दोष नहीं लगता है।
चन्द्रशाला : खुली छत।
चन्द्रावलोकन : खुला भाग, जालीदार गोख (चन्द्र की किरण पड़े इस प्रकार का खुला गवाक्ष)।
चन्द्रिका : आमलसार के नीचे औंधे कमल की आकृति वाला भाग।
चन्द्र शिला : सबसे नीचे का अर्धचन्द्राकर सोपान।
चापाकार : धनुष के आकार का मंडल।
चार : जिसमें पॉव-पॉव सोलह बार बढ़ाया जाता है ऐसी संख्या।
चूर्ण : चूना
चैत्य : देव प्रतिमा।
चैत्य गवाक्ष : वक्र कार्निस (कपोत) से आरम्भ होने वाला एक ऐसा प्रक्षिप्त भाग जो तोरण के नीचे खुला होता है, चैत्य वातायन, कुडू।
चैत्यालय : मन्दिर, देवालय।
छन्दस : तल विभाग
छाद्य : छदितट प्रक्षेप, छज्जा।
जगती : ऐसा पीठ जो सामान्यत: गोटेदार होता है, पीठिका, प्रासाद की मर्यादित भूमि, प्रासाद का ओटला।
जंघा : प्रासाद की दीवार की सातवाँ थर, मन्दिर का वह मध्यवर्ती भाग जो अधिष्ठान से ऊपर और शिखर से नीचे होता है।
जाड्यकुम्भ : पीठ के नीचे का बाहर निकलता गलताकार थव, पीठ (चौकी) का सबसे नीचे का गोटा।
जालक : जाल, जालीदार खिड़की, जाली जो सामान्यत: गवाक्ष या शिखर में होती है, तराशी हुई बारी।
जीर्ण : पुराना
तल्प : शय्या, आसन।

तवंग : प्रासाद के थर आदि में छोटे आकार के तोरण वाले स्तंभ युक्त रूप।
तल : मन्दिर, विमान या गोपुर का एक खंड, नीचे का भाग।
तरंग : एक लहरदार डिजाइन जो पश्चिम के एक गोटे से मिलती जुलती है।
तरंग पोतिका : तोड़ा युक्त शीर्ष, जिसका गोटा घुमावदार होता है।
ताडि : दक्षिण भारतीय स्तम्भ का एक गद्दीनुमा भाग।
ताल : बारह अंगुली का मान।
तिलक : एक प्रकार की कंगूरों की डिजाइन।
तोरण : अनेक प्रकारों एवं डिजाइनों का अलंकृत द्वार, दोनों स्तम्भों के बीच में वलयाकार आकृति, मेहराब, कमान।
त्रिक : चौकी मंडप
त्रिक मंडप : तीन चतुष्कियों का खांचों सहित मंडप।
त्रिकूट : तीन विमान जो एक ही अधिष्ठान पर निर्मित हो अथवा एक ही मंडप से संयुक्त हो।
त्रिशाख : तीन अलंकृत पक्खों सहित चौखट द्वार।
त्रिवलि : पेट के ऊपर पड़ती तीन सलवटें।
त्र्यंश : तीसरा भाग, तृतीयांश।
दण्ड : ध्वजा लटकाने का दण्ड (लकड़ी)।
दण्ड छाद्य : छत का सीधा किनारा, (छदितट प्रक्षेप)।
दल : फालना।
दारु : लकड़ी, कारीगर।
दारुण : भयंकर।
दिक् : दिशा
दिक्पाल : दिशा के अधिपति देव।
दिक्साधन : दिशा का ज्ञान करने की क्रिया।
दिग्मूढ़ : प्रासाद, गृह का टेढ़ापन।
दीर्घ : लम्बाई।
देवकुलिका : लघु मंदिर, भमती के सम्मुख स्थित सह मन्दिर।

देवायतन : देवों की पंचायत।
दैर्घ्य : लम्बाई
दोला : झूला, हिण्डोला
द्राविड़ : अधिक श्रृंगों वाले प्रासाद की दीवार, जंघा।
द्वारपाल : चौकीदार, दरवाजे का रक्षक।
धनद : कुबेर, उत्तर दिशा के अधिपति देव।
धरणी : गर्भगृह के मध्य नींव में स्थापित नवमी शिला।
ध्वज : पताका, झंडा, ध्वजा।
ध्वजादंड : ध्वजा लटकाने का दण्ड।
ध्वज्ञाधार : ध्वजा रखने का कलावा।
ध्वांक्ष : काक, कौआ।
नन्दिनी : पंच शाखा वाला द्वार।
नन्दी : कोणी, भद्र के पास की छोटी कोनी।
नर थर : पुरुष की आकृति वाली पट्टी, मानवाकृतियों की पंक्ति।
नर्तकी : नाच करती हुई पुतली।
नष्ट छंद : जिसकी तल विभक्ति बराबर न हो।
नवरंग : वह महामंडप, जिसमें चार मध्यवर्ती एवं बारह परिधीय स्तम्भों की ऐसी संयोजना होती है कि उससे नौ खांचे बन जाते हैं।
नाग : हाथी
नाभि : मध्य भाग।
नाभिवेध : एक देव के सामने दूसरे देव की स्थापना करना अथवा एक मन्दिर के समक्ष दूसरा मन्दिर बनवाना नाभिवेध कहलाता है।
नागरी : बिना रूपक की सादी जंघा।
नाभि भेद : गर्भ भेद।
नाभिच्छद : दो जाति की मिश्र आकृति वाली छत, एक प्रकार की अलंकृत छत, जिस पर मंजूषाकार सूच्यग्रों की डिजाइन होती है।
नाल : पानी निकलने का परनाला, नाली।
नाल मंडप : आवृत्त सोपानयुक्त प्रवेश द्वार, वलाणक।

नासक : कोना।

नासिका : दक्षिण भारतीय विमान का वह खुला भाग जो प्रक्षिप्त और तोरण युक्त होता है। अल्प नासिका या क्षुद्र नासिका छोटी होती है तथा महानासिका उससे बड़ी होती है।

निरंधार : प्रकाश सहित, व्यक्त, प्रदक्षिणा पथ से रहित मंदिर।

निषीधिका : जैन महापुरुष का स्मारक स्तम्भ या शिला, निषद्या, समाधि अथवा मोक्ष गमन का स्थल।

निर्गम : बाहर निकलता हुआ भाग।

निशाकर : आमलसार का देव, चन्द्रमा।

नि:स्वन : शब्द।

नृत्यमंडप : रंग मंडप, परिस्तम्भीय सभा मंडप।

प्लव : पानी का बहाव।

पट्ट : पाषाण का पाट, अलंकरण से रहित या सहित पट्टी।

पट्टभूमिका : ऊपर की मुख्य खुली छत।

पट्टिका : दालान, बरामदा

पताका : ध्वजा

पंचदेव : ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, ईश्वर और सदाशिव इन् पाँच देवों का समूह, उरुश्रृंग के देव।

पंच रथ : पाँच प्रक्षेपों वाला मन्दिर।

पंच शाखा : द्वार की पाँच अलंकृत पक्खों सहित चौखट।

पंचायतन : चार लघु मंदिरों से परिवृत्त मन्दिर।

पंजर : लघु अर्धवृत्ताकार मन्दिर, नीड।

पद : भाग, हिस्सा।

पत्र लता : पत्रांकित लताओं की पंक्ति।

पत्र शाखा : प्रवेश द्वार का वह पक्खा जिस पर पत्रांकन होता है, द्वार की प्रथम शाखा।

पद्म : कमलाकार गोटा या एक भाग, दक्षिण भारतीय फलक को आधार देने के लिये बनाया जाने वाला एक कमलाकार शीर्षभाग।

पद्मक : समतल छत।

पद्मकोश	:	कमल की कली जैसा आकार, शिखर का गूमटनुमा उठान।
पद्मपत्र	:	पत्तियों के आकार वाला थर, दासा।
पद्मबंध	:	एक अलंकृत पट्टी जो दक्षिण भारतीय स्तम्भ के मध्य भाग और शीर्ष भाग में होती है।
पद्मशिला	:	गुम्बज के ऊपर की मध्य शिला जो नीचे लटकती दिखती है, छत का अत्यलंकृत कमलाकार लोलक, पद्मा।
पद्मा	:	पद्मशिला।
पद्मिनी	:	नवशाखा वाला द्वार।
पर्यंक	:	पलंग, खाट, पल्यंक।
पबासन	:	देव के बैठने का स्थान, पीठिका।
परिकर	:	मूर्ति के साथ की अन्य आकृतियाँ।
पर्वन्	:	ध्वजादण्ड की दो चूड़ी का मध्य भाग।
पाद	:	चरण, चौथा भाग।
पार्श्व	:	एक तरफ, समीप।
पालव	:	छज्जा के ऊपर छाद्य का एक थर।
पाश	:	जाल, फंदा, शत्रु को बांधने की डोरी का गुंजला।
पिण्ड	:	मोटाई।
पिशाच	:	क्षेत्र गणित के आय और व्यय दोनों बराबर जानने की संज्ञा।
परीठ	:	प्रासाद की खुरसी, आसन, चौकी पादपीठ।
पुर	:	नगर, ग्राम।
पुरुष	:	सुवर्ण पुरुष जिसे आमलसार में पलंग पर रखा जाता है।
पुष्पकंठ	:	दासा, अंतराल
पुष्कर	:	जलाश्रय का मंडप, वलाणक।
पुष्करिणी	:	मकान में बना हुआ पानी का टांका।
पुष्पगेह	:	पूजनगृह
पृथु	:	विस्तार, चौड़ाई।
पेट	:	पाट आदि के नीचे का तल, पेटक।
पौरुष	:	प्रासाद पुरुष की विधि।
पौली	:	प्रासाद की पीठ के नीचे भिट्ट का थर।
प्रणाल	:	परनाला, पानी निकलने की नाली।

प्रतिकर्ण : कोने के समीप का दूसरा कोना।
प्रति भद्र : मुख भद्र के तीनों तरफ के खांचे।
प्रतिरथ : कोने के समीप का चौथा कोना, भद्र और कर्ण के मध्य का प्रक्षेप।
प्रतिष्ठा : देव स्थापना विधि।
प्रतोली : पोल, प्रासाद आदि के आगे तोरण युक्त दो स्तम्भ वाला देवालय अथवा चार स्तम्भ और उसके ऊपर मूर्ति एवं मेहराबदार बना हुआ सुन्दर स्तम्भ।
प्रत्यंग : शिखर के कोने के दोनों तरफ लम्बा चतुर्थांश मान का श्रृंग।
प्रदक्षिणा : परिक्रमा, फेरी।
प्रवाह : पानी का बहाव, प्लव।
प्रवेश : थरों के भीतर का भाग।
प्रहार : श्रृंगों के नीचे का थर।
प्रस्तार : दक्षिण भारतीय विमान का विस्तार, कोणी मंडप।
प्राक् : पूर्व दिशा, प्राची।
प्राकार : मन्दिर को परिवृत्त करने वाली भित्ति।
प्रासाद : देव मन्दिर, राजमहल।
प्राग्ग्रीव : मंडप, मुख मंडप का प्रक्षेप, गर्भगृह के आगे का मंडप।
फलक : स्तम्भ का शीर्ष भाग।
फालना : प्रासाद की दीवार के खांचे।
फांसना : भवन का आड़े पीठों से बना भाग, पश्चिमी भारत में प्रचलित जिसे उड़ीसा में पीढ़ा देउल कहते हैं।
बलाणक : बलाण, कक्षासन वाला मंडप, गर्भगृह के आगे का मुख मंडप, आवृत्त सोपानबद्ध प्रवेश द्वार, टंकारखाना, नगारखाना।
बाण : शिवलिंग।
बीजपुर : कलश के ऊपर का बिजौरा।
बांधना : जंघा को ऊपरी और निचले भागों में विभक्त करने वाला एक प्रक्षिप्त गोटा।

भग्न	:	खंडित।
भद्र	:	प्रासाद का मध्य भाग, गर्भगृह का मध्यवर्ती प्रक्षेप।
भद्रक	:	भद्र वाला स्तम्भ।
भद्रपीठ	:	गोटेदार पादपीठ का एक दक्षिण भारतीय प्रकार।
भमती	:	मन्दिरों में दृष्टव्य स्तम्भों के मध्य का मार्ग।
भरणी	:	स्तम्भ शीर्ष, प्रासाद की दीवार का एवं स्तम्भ के ऊपर का थर।
भवन	:	मन्दिर, मकान, गृह प्रासाद।
भवनाजिर	:	घर का आंगन।
भिट्ट	:	प्रासाद की पीठ के नीचे का थर, उप अधिष्ठान।
भित्ति	:	दीवार।
भित्र	:	सूर्य किरण से भेदित गर्भगृह, दोष विशेष, वितान की एक जाति।
भूमि	:	मंजिल।
भ्रम	:	परिक्रमा, फेरी, भ्रमणी, भ्रमन्तिका।
भ्रमा	:	प्रासाद के 1/3 भाग के मान का कोली मंडप।
मकर	:	मगर के मुख वाली नाली।
मकर तोरण	:	प्रवेश द्वार का अलंकरण या मकर मुखों से निकलता वंदनवार।
मंच	:	अधिष्ठान का एक दक्षिण भारतीय प्रकार।
मंची	:	प्रासाद के दीवार की जंघा के नीचे का एवं केवाल के ऊपर का थर विशेष।
मंचिका	:	पट्टिका के समान एक ऊपर कोटा, कुर्सी या ऊँचा आसन।
मंजरी	:	प्रासाद का शिखर अथवा श्रृंग।
मठ	:	ऋषि आश्रम, धर्म गुरु का स्थान।
मंडन	:	आभूषण।
मंडप	:	गर्भगृह के आगे का मंडप।
मंडल	:	गोल आदि आकार वाली पूजन की आकृति।
मंडुकी	:	ध्वजादंड के ऊपर की पाटली जिसमें ध्वजा लगाई जाती है।

मंडोवर : प्रासाद की दीवार, पीठ, वेदिबंध, जंघा से मिलकर बने भाग का नाम, पश्चिमी भारतीय स्थापत्य में प्रचलित।

मंदारक : प्रासाद का उदय भाग, द्वार की अलंकृत देहरी, देहरी के मध्य का गोल अर्द्धचन्द्र भाग।

मत्तक् : कटहरा।

मत्तावलम्ब : गवाक्ष, झरोखा, आला, ताक।

मंत्र : जाप विशेष।

मध्यस्था : प्रासाद के 1/4 भाग के मान का कोली मंडप का नाम।

मर्कटी : ध्वजा दण्ड के ऊपर की पाटली जिस पर ध्वजा लटकाई जाती है।

महामंडप : मध्यवर्ती स्तम्भ आधारित मंडप, जिसके दोनों पार्श्व अनावृत्त होते हैं, मध्यकालवर्ती मंदिरों में प्रचलित।

महानस : रसोईघर।

माड : मंडप, मंडवा।

मिश्र संघाट : ऊँचे नीचे खांचे वाला गुम्बद का चंदोवा, छत।

मुकुली : आठ शाखा वाले द्वार का नाम।

मुख भद्र : प्रासाद का मध्य भाग

मुख मण्डप : गर्भगृह के आगे का मंडप, बलाणक, प्रवेश द्वार से संयुक्त मंडप।

मुण्डलीक : छज्जा के ऊपर का एक थर।

मूढ़ : टेढ़ा, तिरछा।

मूल : नीचे का भाग।

मूल कर्ण : शिखर के नीचे का कोना।

मूल रेखा : शिखर के नीचे के दोनों कोण के बीच का नाप, कोना।

मूल प्रासाद : मुख्य मन्दिर।

मूलनायक : मुख्य स्थान पर स्थापित तीर्थंकर मूर्ति।

मुख्य चतुष्की : प्रवेशद्वार से संयुक्त मुख मंडप या सामने का खांचा।

मान स्तम्भ : चारों ओर से निराधार स्तम्भ, जिसके शीर्ष पर चार तीर्थंकर मूर्तियाँ होती है।

मृषा : लम्बा अलिन्द, वरांडा।
मृत : मिट्टी, मृत्तिका।
मेखला : दीवार का खांचा।
मेढ्र : पुरुष चिह्न, लिंग।
मेरू : प्रासाद विशेष पर्वत।
यक्ष : आय से व्यय जानने की संज्ञा।
यमचुल्ली : सम्मुख लम्बा गर्भगृह।
यान : आसन, सवारी।
रत्न शाखा : प्रवेश द्वार का हीरक अलंकरण सहित पक्खा।
रथ : मन्दिर का प्रक्षेप, कोने के समीप का दूसरा कोना, फालना विशेष।
रंग मंडप : स्तम्भ आधारित मंडप जो चारों ओर से अनावृत्त होता है।
रंग भूमि : गर्भगृह के सामने पांचवाँ मंडप, नृत्य मंडप।
रथिका : भद्र का गवाक्ष, आला।
रन्ध्र : प्रवेश द्वार।
राजसेन : मण्डप की पीठ के ऊपर का थर।
रीति : पीतल धातु।
रुचक : समचौरस स्तम्भ।
रूपकण्ठ : आकृतियों से अलंकृत एक अंतरित पट्टी या पंक्ति।
रूप स्तम्भ : द्वार शाखा के मध्य का स्तम्भ।
रूप शाखा : प्रवेश द्वार का आकृतियों से अलंकृत पक्खा।
राक्षस : आय से व्यय जानने की संज्ञा।
राज सेनक : कक्षा या छज्जेदार गवाक्ष का सबसे नीचे का गोटा।
रेखा : खांचा, कोना।
लय : मकान, गृह।
ललितासन : विश्राम का एक आसन, जिसमें एक पैर मोड़कर पीठ पर रखा जाता है तथा दूसरा पीठ से लटककर मनोज्ञ लगता है।
लाटी : स्त्री युगल वाली प्रासाद की जंघा।
वक्त्र : मुख।

वज्र : हीरा।
वत्स : आकाशीय कल्पित एक संज्ञा।
वपुस : शरीर।
वराल : ग्रास, जलचर विशेष, मगर।
वर्धमान : प्रतिकर्ण वाला स्तम्भ।
वाजिन् : अश्वथर।
वापी : बावड़ी।
वामन : मंडप के व्यास के आधे मान की ऊँचाई वाला गुम्बद, जगती के आगे का वलाणक मंडप।
वाराह : मंडप के व्यासार्ध के 2/3 मान की ऊँचाई वाला गुम्बज।
वारि : जल।
वारिमार्ग : दीवार के बाहर निकला हुआ खांचा, बरसाती पानी के बहाव के लिए बारिक नालियाँ, सलिलांतर।
विधु : चन्द्रमा।
विद्ध : वेध, रुकावट।
विपर्यास : उल्टा।
विलोक्य : खुला भाग।
विस्तीर्ण : विस्तार, चौड़ाई।
वृत : गोलाई, गोलाकृत्ति।
वेदिका : पीठ, प्रासाद आदि का आसन।
वरद : वर प्रदान करने की सूचक हस्त मुद्रा।
वरंडिका : शिखर और जंधा के मध्य कुछ गोटों से मिलकर बना हुआ भाग।
विद्याधर : गुम्बज में नृत्य करने वाले विशिष्ट देवों का रूप।
वेदी : पीठ, राजसेन के ऊपर का थर।
वेदिबन्ध : अधिष्ठान, आधार, जगती।
वेश्मन : मन्दिर, घर।
वैराटी : प्रासाद की कमलपत्र वाली दीवार।
व्यक्त : प्रकाश वाला।

व्यंग : टेढ़ा।
व्यजन : पंखा।
व्यक्तिक्रम : मर्यादा से अधिक।
व्यास : विस्तार, गोल के समान दो भाग करने वाली रेखा।
व्योमन् : शून्य, आकाश।
वितान : गूमट के नीचे का भाग, छत।
विस्तार : चौड़ाई।
शंकु : छाया मापक यंत्र।
शंखावर्त्त : प्रासाद की देहरी के आगे की अर्धचन्द्र आकार वाली शंख और लताओं वाली आकृति
शदुरम् : स्तम्भ का चतुष्कोण भाग
शाखा : द्वार की चौखट का पक्खा, जो भित्ति स्तम्भ के समान होता है।
शस्या : प्रासाद के 2/5 मान का कोली मंडप।
शाखोदर : शाखा का पेटा भाग
शाल भंजिका : नाच करती हुई पाषाण की पुतलियाँ।
शाला : प्रासाद, गंभारा, छोटा कमरा, भद्र, परसाल, बरामदा, ढोल के आकार का छत सहित आयताकार मन्दिर।
शिखर : शिवलिंग के आकार वाला गुम्बज, मन्दिर का ऊपरी भाग या छत, दक्षिण भारतीय शिखर गुम्बजाकार, अष्टकोणवाला या चतुष्कोण, होता है।
शिर : शिखर शिरावटी, ग्रास मुख।
शिरपत्रिका : ग्रास मुख वाली पट्टी, दासा।
शिरावटी : भरणी के ऊपर का थर, शीर्ष।
शुक नास : प्रासाद की नासिका, उत्तर भारतीय शिखर के सम्मुख भाग से संयुक्त एक बाहर निकला भाग जिसमें एक बड़े चैत्य गवाक्ष की संयोजना होती है। शुक नासा शिखर के जिस भाग पर सिंह की मूर्ति बनाई जाती है, वह स्थान।
शुण्डिकाकृति : हाथी।

शुद्ध संघाट : गुम्बज का समतल चंदोवा, छत।
श्रृंग : छोटे-छोटे शिखर के आकार वाले अंडक।
श्रीवत्स : एक ही सादा श्रृंग।
षड्दारु : दो दो स्तम्भ और उसके ऊपर एक एक पाट।
सभा मंडप : रंग मण्डप।
सभा मार्ग : एक प्रकार की अलंकृत छत, जिसकी रचना अनेकों मंजूषाकार सूच्यग्रों से होती है। तीन प्रकार की आकृति वाली छत।
समतल वितान: अवनतोन्नत तलवाली ऐसी छत जो साधारण: पंक्ति बद्ध सूचियों से अलंकृत होती है।
समवशरण : तीर्थंकर प्रभु की बारह खण्डों की धर्मसभा, तीन प्राकार वाली वेदी।
सकलीकरण : जिनबिम्ब प्रतिष्ठा की विधि विशेष।
सत्रागार : यज्ञ शाला
सभ्रमा : प्रासाद के 1/2 मान का कोली मंडप।
सर्वतोभद्र : चतुर्मुख, एक प्रकार का चारों ओर सम्मुख मंदिर, चारों ओर मूर्तियों से संयोजित एक प्रकार की मंदिर अनुकृति।
सलिलांतर : खड़ा अंतराल, वारिमार्ग, बरसाती जल निकालने की बारीक नालियाँ, जहाँ फालनाओं के जोड़ मिलते हैं।
सहस्त्रकूट : पिरामिड के आकार की एक मन्दिर अनुकृति जिस पर एक सहस्त्र तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण होती है।
संवरणा : अनेक छोटे-छोटे कलशों वाला गुम्बज छत जिसके तिर्यक रेखाओं में आयोजित भागों पर घंटिकाओं के आकार के लघु शिखर होते हैं, गूमट के ऊपर का भाग।
संघाट : तल विभाग।
संधि : सांध, जोड़।
सांधार : परिक्रमा युक्त नागर जाति के प्रासाद।
सारदारु : श्रेष्ठ काष्ठ।
सिद्धासन : ध्यान आसन में आसीन तीर्थंकर की एक मुद्रा।
सिंह स्थान : शुकनास।

सुरवेश्मन् : देवालय।
सुषिर : पोलापन, छेद।
सुवर्ण पुरुष : इसे जिनमन्दिर का जीवस्थान (हृदय) माना जाता है। इसे शिखर, आमलसार, छज्जा, शृंग, शुकनास आदि पर लगाया जाता है।
सूत्रधार : शिल्पी, मंदिर बनाने वाला कारीगर।
सूत्रारम्भ : नींव खोदते समय वास्तु भूमि में कीले ठोंककर उसमें सूत बांधने का आरम्भ।
सृष्टि : दाहिनी ओर से गिनना।
सोपान : सीढ़ी।
सौध : राजमहल, हवेली।
स्कन्ध : शिखर के ऊपर का भाग।
स्तम्भ : थंभा, खम्भा, ध्वजा दण्ड।
स्तम्भवेध : ध्वजाधार, कलावा।
स्थन्डिल : प्रतिष्ठा मंडप में बालुका वेदी जिसके ऊपर देव को स्नान कराया जाता है।
स्थावर : प्रासाद के थर।
स्मरकीर्ति : एक शाखा वाले द्वार।
स्वयंभू : अघड़ित शिवलिंग।
हर्म्य : मकान, मध्यवर्ती तल, दक्षिण भारतीय विमान का मध्यवर्ती भाग।
हर्म्यशाल : घर के द्वार के ऊपर का बलाणक।
हस्तांगुल : एक हाथ के लिए एक अंगुल, दो हाथ के लिए दो अंगुल इस प्रकार जितने हाथ उतने अंगुल।
हस्तिनी : सात शाखा वाला द्वार।
ह्रस्व : कम होना, न्यून, छोटा।
हार : कूट, शाला और पंजर नामक लघु मन्दिरों की पंक्ति जो दक्षिण भारतीय विमान के प्रत्येक तल को अलंकृत करती है।

●

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
1.	अभिधान राजेन्द्र कोश (भा. 5)	आचार्य राजेन्द्रसूरि	अभिधान राजेन्द्र कोश प्रकाशन संस्था, रतनपोल, अहमदाबाद	1986
2.	अष्टाध्यायी भाष्य	पं. ब्रह्मदत्त जी	श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर	1981
3.	आचारदिनकर (भा. 2)	आचार्य वर्धमानसूरि	निर्णय सागर मुद्रणालय, मुंबई	1922
4.	आदिजिनबिम्ब निर्माण प्रबंध	रचित हेमरत्नसूरि	अर्हद् धर्म प्रभावक ट्रस्ट, मुंबई	वि.सं. 2058
5.	आरम्भसिद्धि, लग्नशुद्धि, दिनशुद्धि	रचित उदयप्रभसूरि, हरिभद्रसूरि, रत्नशेखरसूरि	श्रावक भीमसिंह माणक, मांडवी, मुंबई	1910
6.	अंजनशलाकानां रहस्यों	आचार्य कीर्तियशसूरि	सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद	वि.सं. 2053
7.	उपासकाध्ययन	रचित सोमदेवसूरि	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1964
8.	उमास्वामि श्रावकाचार (श्रावकाचार संग्रह भा.3)	संपा.पं.हीरालाल शास्त्री	जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर	1977
9.	ऋग्वेद	—	संस्कृति संस्थान, बरेली	1962
10.	कल्याणकलिका (भा.1-2)	कल्याणविजयगणि	श्री क.वि.शास्त्र संग्रह समिति, जालोर	1956
11.	कथारत्न कोश (भा.1)	आचार्य देवभद्रसूरि	जैन आत्मानंद सभा, भावनगर	1951
12.	घण्टाकर्ण कल्प	शान्ति चन्द्रोपाध्याय	बुद्धिसागरसूरि जैन ज्ञान मन्दिर, बीजापुर	वि.सं. 2042

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
13.	चैत्यवन्दनकुलक वृत्ति	रचित जिनकुशल सूरि अनु.प्रवर्त्तिनी सज्जनश्री	श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ, कोलकाता	वि.सं. 2044
14.	चैत्यवंदन महाभाष्य	रचित शान्तिसूरि	जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर	वि.सं. 1977
15.	जिनबिम्ब प्रवेश-प्रतिष्ठा-शान्तिस्नात्रादि विधि समुच्चय: (भा.1)	गुणरत्नसूरि, संकलन कल्याणसागर	सीमंधर स्वामी जिन मंदिर कार्यालय, ओसिया जी	वि.सं. 2052
16.	जैन धर्म और तांत्रिक साधना	डॉ. सागरमल जैन	पार्श्वनाथ विद्यापीठ,बनारस	1997
17.	जैन प्रतिमा विज्ञान	डॉ. मारूति नन्दन प्रसाद तिवारी	पार्श्वनाथ शोध संस्थान, बनारस	1989
18.	जम्बूदीव पण्णत्ति संगहो	संपा.प्रो.हीरालाल जैन	जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर	1958
19.	तीर्थंकर	मुनि प्रमाणसागर	निर्ग्रन्थ फाउण्डेशन,भोपाल	2001
20.	तीर्थंकर राशि मेलापक चक्र	पन्यास देवेन्द्रसागरजी	आगमोद्धारक ग्रन्थमाला	–
21.	दशभक्त्यादिसंग्रह	पूज्यपाद स्वामी	सेठ प्रेमचन्द सखाराम, लेंगरेकर, बारामती	वी.सं. 2462
22.	द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका प्रकरण (भा.2)	संपा. मुनि यशोविजय	दिव्यदर्शन ट्रस्ट, धोलका	वि.सं. 2062
23.	दीपार्णव	संपा.प्रभाशंकर सोमपुरा	पालीताणा	1960
24.	देव शिल्प	संपा. नरेन्द्र कुमार	प्रज्ञाश्रमण दिगम्बर जैन संस्कृति न्यास, नागपुर	2000

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
25.	धर्मसंग्रह (भा.3)	उपाध्याय मानविजय	जिनशासन आराधना ट्रस्ट, भुलेश्वर, मुम्बई	1984
26.	धवला टीका	वीरसेनाचार्य	जैन साहित्योद्धारक फण्ड, अमरावती	1956
27.	निबन्ध निचय	पं. कल्याणविजयगणि	शास्त्र-संग्रह समिति, जालोर	1965
28.	निर्वाणकलिका	पादलिप्ताचार्य	निर्णय सागर मुद्रणालय, मुम्बई	1926
29.	पद्मपुराण (भा.2)	रविषेणाचार्य	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	1959
30.	पतंजलि महाभाष्य	—	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई	1935
31.	प्रतिमा विज्ञान	डॉ. इन्दुमती मिश्र	हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल	1987
32.	प्रवचनसारोद्धार (भा.1-2)	अनु. साध्वी हेमप्रभाश्री	प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर	2000
33.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार	सकलकीर्ति	दिगम्बर जैन मंदिर, गुलाब वाटिका, दिल्ली	1990
34.	प्रतिष्ठा मयूख	—	काशी	वि.सं. 1941
35.	प्रतिष्ठा संग्रह	पं. रामलाल	वेंकटेश्वर, मुंबई	संवत् 1942
36.	प्रतिष्ठापाठ सटीका	आचार्य जयसेन	सेठ हीराचन्द्र, नेमचन्द्र दोशी, मंगलवार पेठ, सोलापुर	वि.सं. 2552
37.	प्रतिष्ठाकल्प (अंजनशलाका विधि)	संपा.सोमचन्द्र विजयगणि	जैन वाडी उपाश्रय ट्रस्ट, गोपीपुरा, सूरत	वि.सं. 2042

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
38.	प्रतिष्ठा रत्नाकर	पं. गुलाबचन्द्र पुष्प	महावीर स्वामी जिनालय, प्रीत विहार, दिल्ली	—
39.	प्रतिष्ठा सारोद्धार (सटीका)	पं. आशाधर		
40.	प्रतिष्ठा विधि समुच्चय-प्रतिष्ठा कल्प (श्री शान्तिस्नात्रादिविधि समुच्चय: भा. 2)	—	श्री जैन साहित्य वर्धक सभा, शिरपुर	वि.सं. 2017
41.	प्राकृत हिन्दी कोश	संपा.डॉ. के. आर.चन्द्र	प्राकृत जैन विद्या विकास फंड, अहमदाबाद	1987
42.	प्राचीन भारतीय प्रतिमा एवं मूर्तिकला	वृजभूषण श्रीवास्तव	शिक्षा प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी	1981
43.	प्रासाद मण्डन	संपा.पं.भगवानदास जैन	बी.एस. शर्मा, यति श्यामलाल जी उपाश्रय, जयपुर	1961
44.	प्रासाद मंजरी	संपा. प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा	सरस्वती पुस्तक भंडार, अहमदाबाद	1965
45.	पंचाशक प्रकरण	अनु.डॉ.दीनानाथ शर्मा	पार्श्वनाथ विद्यापीठ, बनारस	1977
46.	बिम्ब प्रवेश विधि	—	पोपटलाल साकरचंद शाह, पंचभाईनी पोल,अहमदाबाद	1938
47.	भगवान महावीर पंच कल्याणक विशेषांक (मंगलायतन)	—	श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़	2002

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
48.	महाभारत (खं. 1-6)	—	चित्रशाला प्रेस, पूना	1929 -33
49.	मंत्रराज रहस्य	सिंहतिलकसूरि	भारतीय विद्याभवन, मुंबई	1980
50.	रत्नकरण्ड श्रावकाचार	आचार्य समन्तभद्र	माणकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, बम्बई	वि.सं. 1982
51.	वसुनन्दि श्रावकाचार	संपा.पं.हीरालाल जैन	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1952
52.	वनौषधि चन्द्रोदय (भा.1-2)	श्री चन्द्रराज भण्डारी	चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी	—
53.	वास्तुसार प्रकरण	अनु.पं.भगवानदास जैन	राज-राजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, अहमदाबाद	1989
54.	वाल्मीकि रामायण (भा. 2)	—	गीता प्रेस गोरखपुर	वि.सं. 2017
55.	विधिमार्गप्रपा	रचित जिनप्रभसूरि	प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर	2000
56.	विधिमार्गप्रपा	अनु.साध्वी सौम्यगुणाश्री	महावीर स्वामी जैन देरासर पायधुनी, मुंबई	2006
57.	वेदी प्रतिष्ठा	आचार्य कुन्थुसागरजी	संदीप शाह, मोदीखाना, जयपुर	1997
58.	बृहत्संहिता	रचित वराहमिहिर	चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी	1959
59.	शान्तिस्नात्रादिविधि-समुच्चय:(कुंभ स्थापना, सिद्धचक्र पूजन सहित)	संपा. धर्मधुरन्धरसूरि	श्री अमृतोदय पुण्य पौषधशाला, रीलिफ रोड, अहमदाबाद	वि.सं. 2047

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
60.	शिल्पदीपक	गंगाधर प्रणीत	महादेव रामचन्द्र जगुष्टे बुकसेलर त्रण दरवाजा, अहमदाबाद	1927
61.	शिल्परत्नाकर	कर्त्ता नर्मदा शंकर	शिल्प शास्त्री, नर्मदा शंकर मूलजी भाई सोमपुरा ध्रांगध्रा	1939
62.	शुद्ध नीति	—	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	1956
63.	षट्खण्डागम (भा. 13)	श्री भगवत पुष्पदन्त भूतबलि आचार्य	जैन साहित्योद्धारक फण्ड, अमरावती	1956
64.	षोडशक प्रकरण (भा. 1)	संपा. यशोविजयजी	दिव्यदर्शन ट्रस्ट, धोलका	वि.सं. 2052
65.	सावयधम्मदोहा	संपा. हीरालाल जैन	कारंजा जैन पब्लिकेशन सोसायटी, कारंजा	वि.सं. 1989
66.	संबोध प्रकरण	रचित हरिभद्रसूरि	जैन ग्रन्थ प्रकाश सभा, अहमदाबाद	1916
67.	सुबोधासामाचारी	संकलित श्री चन्द्राचार्य	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था, बम्बई	1924
68.	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	1969
69.	सूत्रकृतांग टीका	रचित शीलांकाचार्य	गोडीजी पार्श्वनाथ जैन देरासर, पायधुनी, बम्बई	1950
70.	श्राद्धविधिप्रकरण टीका	संपा.जयदर्शनविजयगणि	जिनाज्ञा प्रकाशन, वापी	वि.सं. 2056
71.	क्षीरार्णव	संपा. प्रभाशंकर ओ. सोमपुरा	सरस्वती पुस्तक भंडार, अहमदाबाद	1967

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
72.	त्रिलोकसार	नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवती	दिगम्बर जैन संस्थान, महावीरजी	वी.सं. 2501
73.	श्रीमद्भागवत पुराण (खं. 1-2)	—	गीता प्रेस, गोरखपुर	—
74.	हिन्दू तथा जैन प्रतिमा विज्ञान	डॉ.पंकजलता श्रीवास्तव	सुलभ प्रकाशन, लखनऊ	1990
75.	Elements of Hindu Iconography (Vol. I-II)	T.A.G. Rao	Madras	1914 -15
76.	Iconography of jaina Deities (Vol. 1-2)	Shantilal Nagar	B.R. Publishing Corporation, Delhi	1999
77.	Visnu Dharmottara Purana (Vol. 1)	Dr. Priyabela Shah	Oriental Institute, Baroda	1958

सज्जनमणि ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त सूची पत्र

क्र.	नाम	ले./संपा./अनु.	मूल्य
1.	सज्जन जिन वन्दन विधि	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
2.	सज्जन सद्ज्ञान प्रवेशिका	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
3.	सज्जन पूजामृत (पूजा संग्रह)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
4.	सज्जन वंदनामृत (नवपद आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
5.	सज्जन अर्चनामृत (बीसस्थानक तप विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
6.	सज्जन आराधनामृत (नव्वाणु यात्रा विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
7.	सज्जन ज्ञान विधि	साध्वी प्रियदर्शनाश्री	सदुपयोग
		साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
8.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
9.	तप से सज्जन बने विचक्षण	साध्वी मणिप्रभाश्री	सदुपयोग
	(चातुर्मासिक पर्व एवं तप आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
10.	मणिमंथन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
11.	सज्जन सद्ज्ञान सुधा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
12.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
13.	सज्जन गीत गुंजन (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
14.	दर्पण विशेषांक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
15.	विधिमार्गप्रपा (सानुवाद)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
16.	जैन विधि-विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध सार	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
17.	जैन विधि विधान सम्बन्धी साहित्य का बृहद् इतिहास	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
18.	जैन गृहस्थ के सोलह संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

19.	जैन गृहस्थ के व्रतारोपण सम्बन्धी संस्कारों का प्रासंगिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
20.	जैन मुनि के व्रतारोपण सम्बन्धी विधि-विधानों की त्रैकालिक उपयोगिता, नव्ययुग के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
21.	जैन मुनि की आचार संहिता का सर्वाङ्गीण अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
22.	जैन मुनि की आहार संहिता का समीक्षात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
23.	पदारोहण सम्बन्धी विधियों की मौलिकता, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
24.	आगम अध्ययन की मौलिक विधि का शास्त्रीय अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
25.	तप साधना विधि का प्रासंगिक अनुशीलन, आगमों से अब तक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
26.	प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रीय पर्यवेक्षण व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
27.	षडावश्यक की उपादेयता, भौतिक एवं आध्यात्मिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
28.	प्रतिक्रमण, एक रहस्यमयी योग साधना	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
29.	पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता, मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
30.	प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
31.	मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
32.	नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

33.	जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
34.	हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता, चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
35.	बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
36.	यौगिक मुद्राएँ, मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
37.	आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
38.	सज्जन तप प्रवेशिका	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
39.	शंका नवि चित्त धरिए	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00

विधि संशोधिका का अणु परिचय

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी (D.Lit.)

नाम	: नारंगी उर्फ निशा
माता-पिता	: विमलादेवी केसरीचंद छाजेड
जन्म	: श्रावण वदि अष्टमी, सन् 1971 गढ़ सिवाना
दीक्षा	: वैशाख सुदी छट्ठ, सन् 1983, गढ़ सिवाना
दीक्षा नाम	: सौम्यगुणा श्री
दीक्षा गुरु	: प्रवर्त्तिनी महोदया प. पू. सज्जनमणि श्रीजी म. सा.
शिक्षा गुरु	: संघरत्ना प. पू. शशिप्रभा श्रीजी म. सा.
अध्ययन	: जैन दर्शन में आचार्य, विधिमार्गप्रपा ग्रन्थ पर Ph.D. कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम कंठस्थ, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान।
रचित, अनुवादित एवं सम्पादित साहित्य	: तीर्थंकर चरित्र, सद्ज्ञानसुधा, मणिमंथन, अनुवाद-विधिमार्गप्रपा, पर्युषण प्रवचन, तत्वज्ञान प्रवेशिका, सज्जन गीत गुंजन (भाग : १-२)
विचरण	: राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, थलीप्रदेश, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़।
विशिष्टता	: सौम्य स्वभावी, मितभाषी, कोकिल कंठी, सरस्वती की कृपापात्री, स्वाध्याय निमग्ना, गुरु निश्रारत।
तपाराधना	: श्रेणीतप, मासक्षमण, चत्तारि अट्ठ दस दोय, ग्यारह, अट्ठाई बीसस्थानक, नवपद ओली, वर्धमान ओली, पखवासा, डेढ़ मासी, दो मासी आदि अनेक तप।

सज्जन वीणा की मधुर सरगम

- जिन बिम्ब को स्थापित करना यही प्रतिष्ठा है अथवा शास्त्र और भी कुछ कहते हैं ?
- जिनालय निर्माण में हिंसा का आधिपत्य या निर्जरा का ?
- अष्टाह्निका महोत्सव प्रतिष्ठा से पहले करना या बाद में ? जैनाचार्य क्या कहते हैं ?
- Please be alert! मंदिर निर्माण करवाते वक्त अवश्य ध्यान रखें ?
- प्रतिष्ठा सम्बन्धित विधि-विधानों के वैज्ञानिक रहस्य ?
- खण्डित प्रतिमा की पूजा क्यों नहीं करना चाहिए ?
- जिन मंदिर में देवी-देवताओं की स्थापना का औचित्य क्या है ?
- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रतिष्ठा विषयक शंकाओं के शास्त्रोक्त समाधान ?
- पंच कल्याणक महोत्सव का सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्य ?
- प्रतिष्ठा की सफलता किसमें ?
- प्रतिष्ठा एवं पत्रिकाओं का बढ़ता स्वरूप वर्तमान में कितना प्रासंगिक ?
- अभिषेक जल वंदनीय क्यों ?
- अठारह अभिषेक में प्रयुक्त औषधियों के अद्भुत रहस्य ?

SAJJANMANI GRANTHMALA
Website : www.jainsajjanmani.com,E-mail : vidhiprabha@gmail.com
ISBN 978-81-910801-6-2 (XIV)